• ॐ श्रीपरमात्मने नमः •

कल्याण

श्रीमद्देवीभागवताङ्क

[जनवरी सन् २००९ ई०]

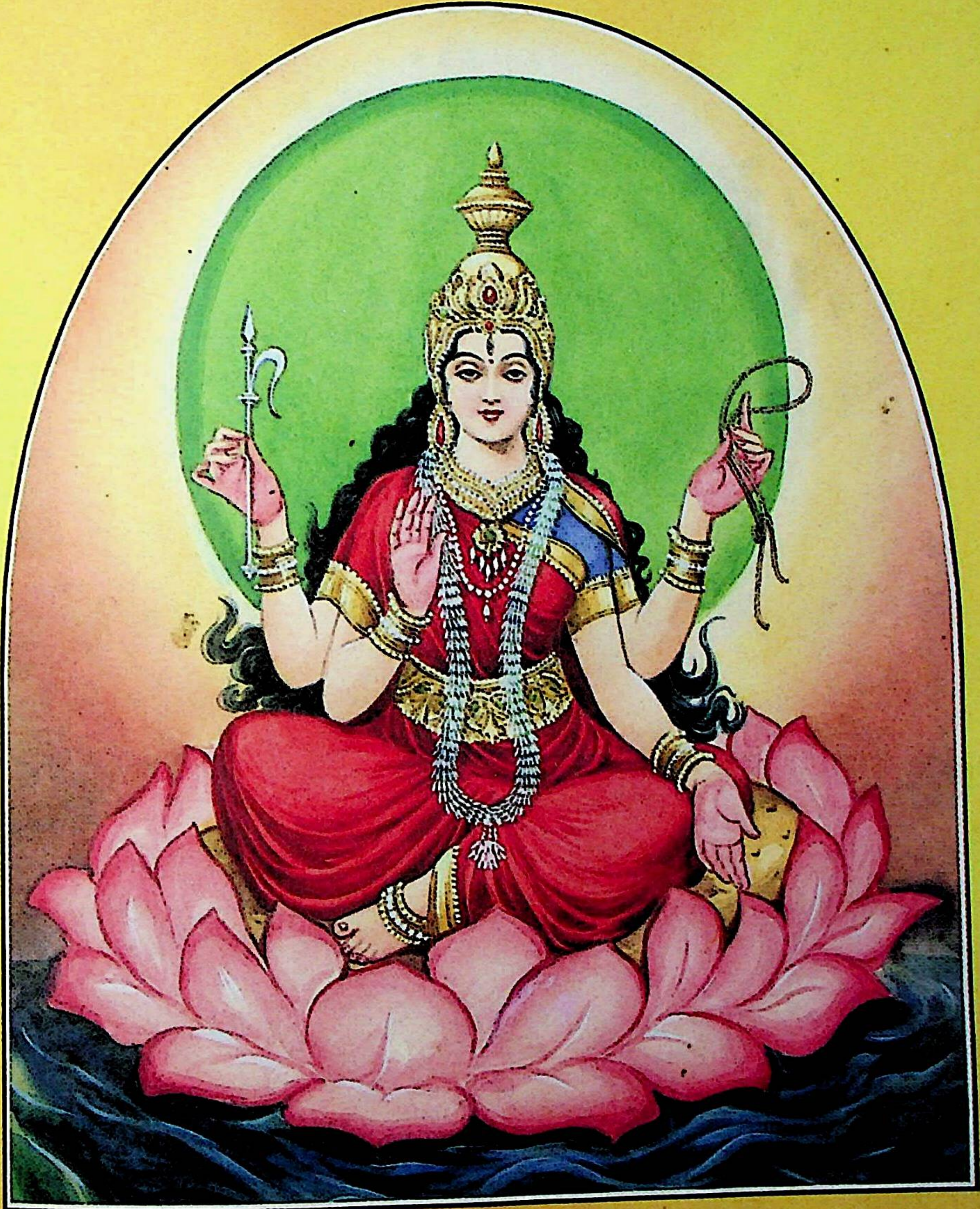


वर्ष ८३ संख्या १

गीताप्रेस, गोरखपुर

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण



श्रीमद्देवीभागवताङ्क

(उत्तरार्ध)

[श्लोकसंख्यासहित भाषानुवाद]

वर्ष ८३

संख्या १

गीताप्रेस, गोरखपुर

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,२५,०००)

'नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै'

यस्याः प्रभावमखिलं न हि वेद धाता
नो वा हरिर्न गिरिशो न हि चाप्यनन्तः।
अंशांशका अपि च ते किमुतान्यदेवा-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥
यत्पादपङ्कजरजः समवाप्य विश्वं
ब्रह्मा सृजत्यनुदिनञ्च बिभर्ति विष्णुः।
रुद्रश्च संहरति नेतरथा समर्था-
स्तस्यै नमोऽस्तु सततं जगदम्बिकायै॥

जिनके सम्पूर्ण प्रभावको ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा भगवान् शेष भी भलीभाँति नहीं जान सकते, जबकि वे उन्हींके अंशज भी हैं, तब भला दूसरे देवता उन्हें कैसे जान सकेंगे? ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है। जिनके चरण-कमलोंकी धूलि पाकर ब्रह्मा समस्त संसारकी रचना करते हैं, भगवान् विष्णु निरन्तर पालन करते हैं और रुद्र संहार करते हैं; दूसरे किसी उपायसे वे अपना-अपना कार्य करनेमें समर्थ नहीं हो सकते—ऐसी उन भगवती जगदम्बिकाको मेरा निरन्तर प्रणाम है।

विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें।

वार्षिक शुल्क*
भारतमें १५० रु०
सजिल्द १७० रु०
विदेशमें—सजिल्द
US$25 (Rs.1250)
(Sea Mail)
US$40 (Rs.2000)
(Air Mail)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पञ्चवर्षीय शुल्क*
भारतमें
अजिल्द ७५० रु०
सजिल्द ८५० रु०

सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

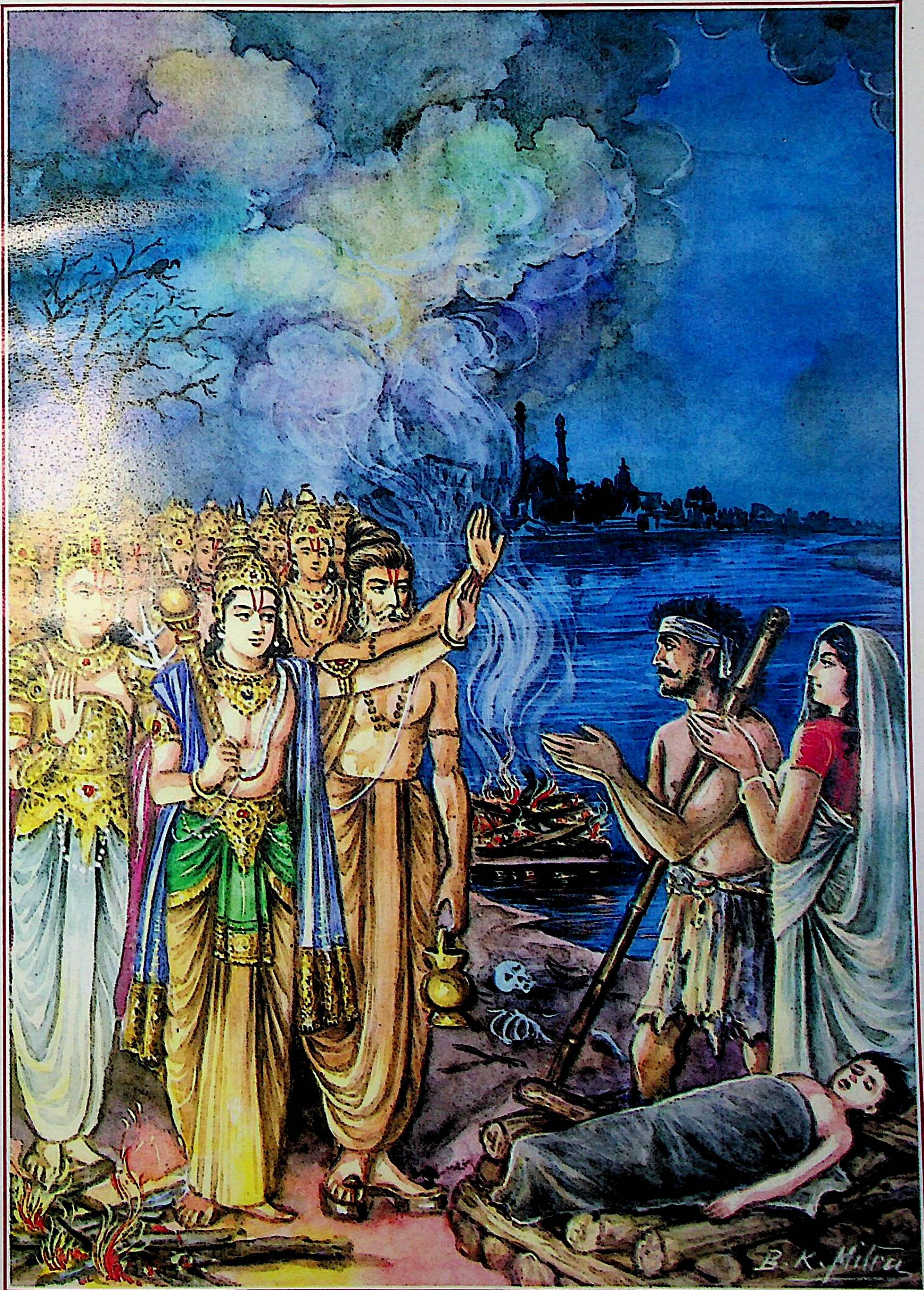
website : www.gitapress.org | e-mail : Kalyan@gitapress.org | © (0551) 2334721



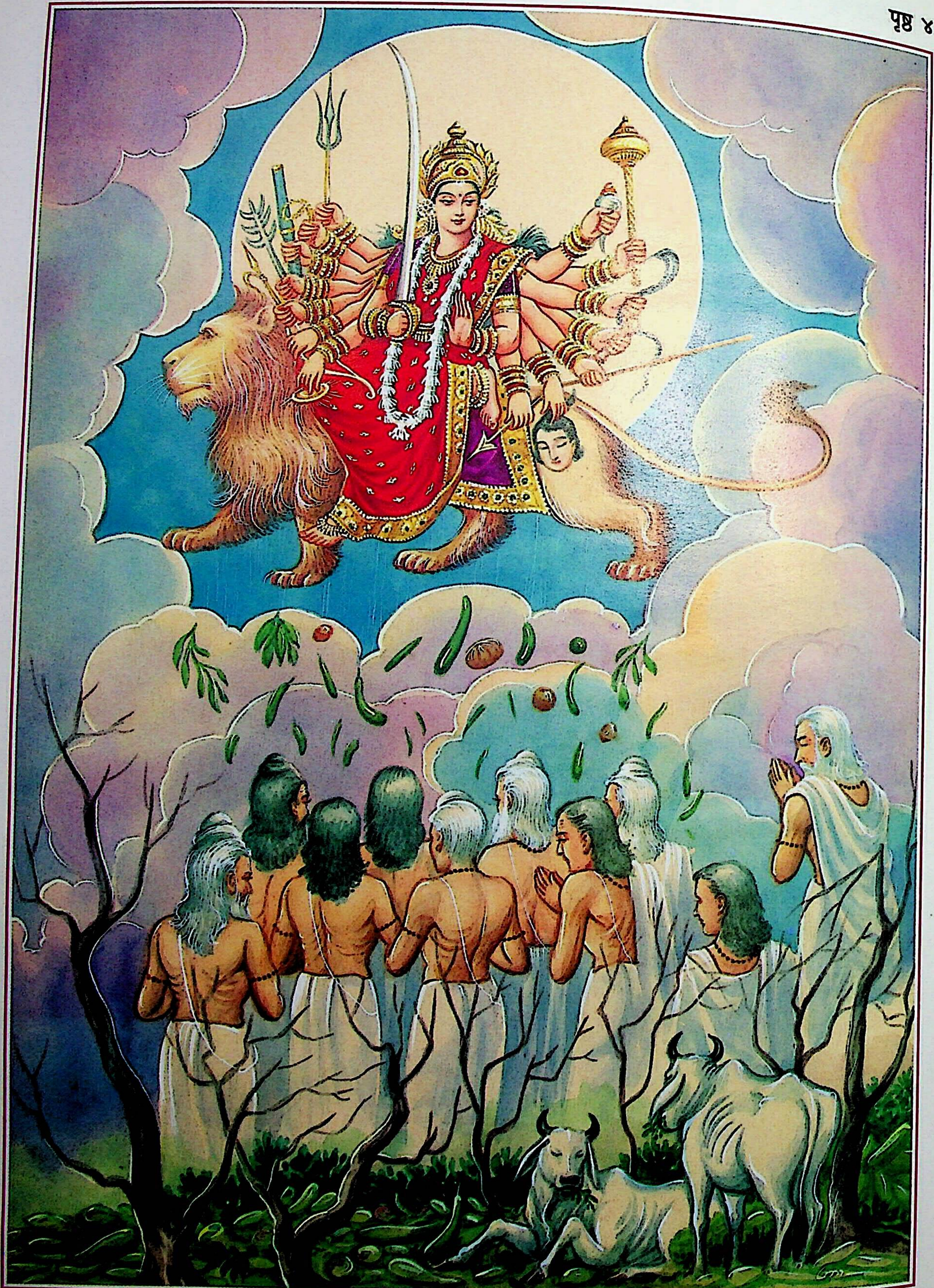
मूलप्रकृतिके दक्षिण अंगसे राधाका और वाम अंगसे लक्ष्मीका प्राकट्य



मकरवाहिनी भगवती श्रीगंगा



इन्द्र आदि देवताओं तथा महर्षि विश्वामित्रद्वारा हरिश्चन्द्रको आशीर्वाद



भगवती शाकम्भरीदेवीद्वारा शाककी वर्षा



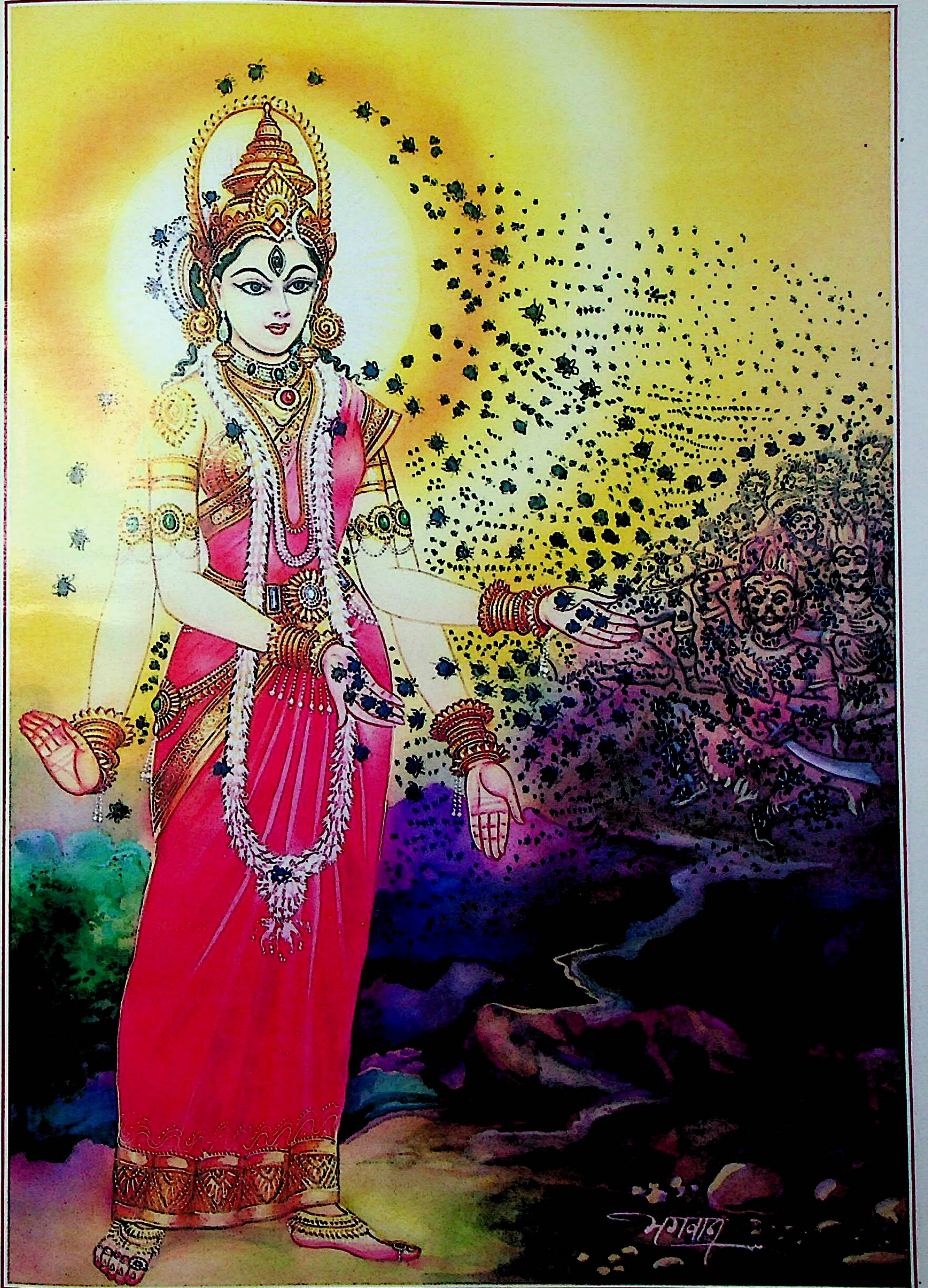




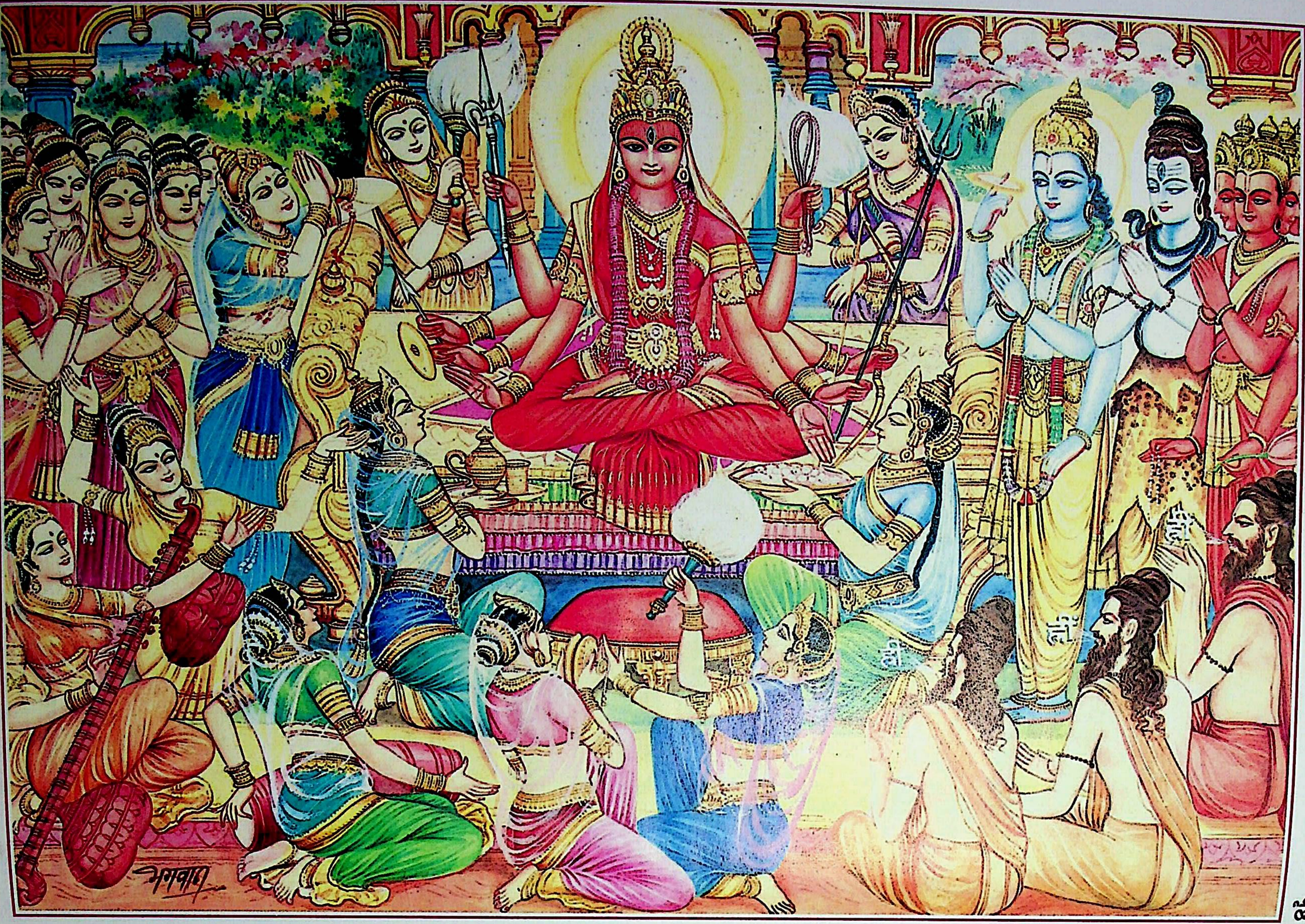
भगवती गायत्रीके प्रातः, मध्याह्न तथा सायं—तीनों सन्ध्या-कालोंका ध्यान-स्वरूप



श्रीकृष्णसे पंचमुख महादेवका प्राकट्य

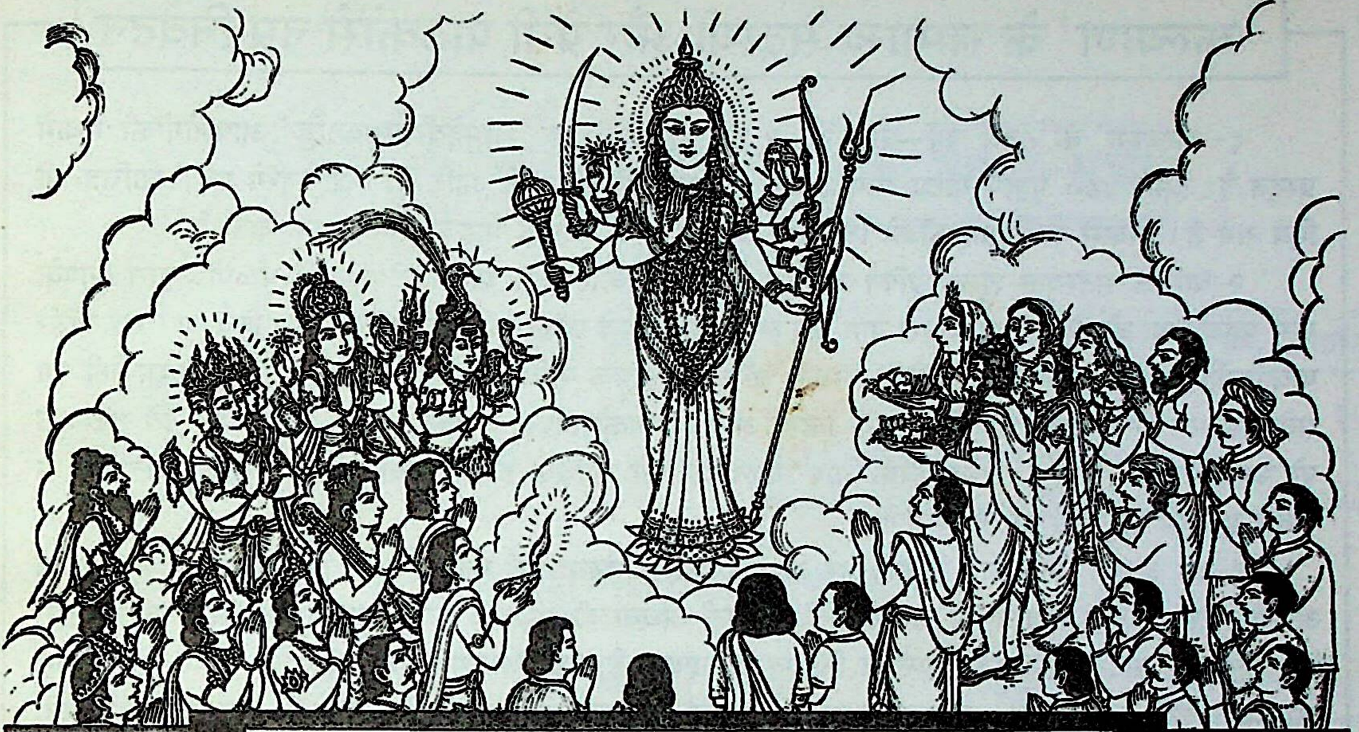


भगवती भ्रामरीदेवी



मणिद्वीपाधिष्ठात्री भगवती श्रीभुवनेश्वरी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



कल्याण

नमो देव्यै जगद्धात्र्यै शिवायै सततं नमः। दुर्गायै भगवत्यै ते कामदायै नमो नमः॥
नमः शिवायै शान्त्यै ते विद्यायै मोक्षदे नमः। विश्वव्याप्त्यै जगन्मातर्जगद्धात्र्यै नमः शिवे॥

वर्ष ८३ गोरखपुर, सौर माघ, वि० सं० २०६५, श्रीकृष्ण-सं० ५२३४, जनवरी २००९ ई० संख्या १
पूर्ण संख्या ९८६

दिव्य मणिद्वीपमें देवी भुवनेश्वरीकी उपासना

ब्रह्मलोकादूर्ध्वभागे सर्वलोकोऽस्ति यः श्रुतः। मणिद्वीपः स एवास्ति यत्र देवी विराजते॥×××
सर्वशृङ्गारवेषाढ्या सुकुमाराङ्गवल्लरी। सौन्दर्यधारासर्वस्वा निर्व्याजकरुणामयी॥
निजसंलापमाधुर्यविनिर्भर्त्सितकच्छपी। कोटिकोटिरवीन्दूनां कान्तिं या बिभ्रती परा॥
नानासखीभिर्दासीभिस्तथा देवाङ्गनादिभिः। सर्वाभिर्देवताभिस्तु समन्तात्परिवेष्टिता॥×××
या यास्तु देवतास्तत्र प्रतिब्रह्माण्डवर्तिनाम्॥
समष्टयः स्थितास्तास्तु सेवन्ते जगदीश्वरीम्। सप्तकोटिमहामन्त्रा मूर्तिमन्त उपासते॥
महाविद्याश्च सकलाः साम्यावस्थात्मिकां शिवाम्। कारणब्रह्मरूपां तां मायाशबलविग्रहाम्॥

ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती भुवनेश्वरी विराजमान रहती हैं। वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं। वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं। वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं। [श्रीमद्देवीभागवत स्कन्ध १२]

'कल्याण' के सम्मान्य सदस्यों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण' के ८३वें वर्ष—सन् २००९ का यह विशेषाङ्क 'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' आपलोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४८० पृष्ठोंमें पाठ्य-सामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे एवं रेखाचित्र भी दिये गये हैं। डाकसे सभी ग्राहकोंको विशेषाङ्क-प्रेषणमें लगभग एक माहका समय लग जाता है।

२-वार्षिक सदस्यता-शुल्क प्रेषित करनेपर भी किसी कारणवश यदि विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा आपके पास पहुँच गया हो तो उसे डाकघरसे प्राप्त कर लेना चाहिये एवं प्रेषित की गयी राशिका पूरा विवरण (मनीऑर्डर पावतीसहित) यहाँ भेज देना चाहिये जिससे जाँचकर आपके सुविधानुसार राशिकी उचित व्यवस्था की जा सके। सम्भव हो तो उक्त वी०पी०पी० से किसी अन्य सज्जनको ग्राहक बनाकर उसकी सूचना यहाँ नये सदस्यके पूरे पतेसहित देनी चाहिये। ऐसा करके आप 'कल्याण' को आर्थिक हानिसे बचानेके साथ-साथ 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी भी हो सकेंगे।

३-इस अङ्कके लिफाफे (कवर)-पर आपकी सदस्य-संख्या एवं पता छपा है, उसे कृपया जाँच लें तथा अपनी सदस्य-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी०पी०पी० का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें सदस्य-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पता एवं पिन-कोड आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा अपना पता जाँच लेना चाहिये।

४-*'कल्याण'* एवं *'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग'* की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र तथा मनीऑर्डर आदि सम्बन्धित विभागको अलग-अलग भेजना चाहिये।

'कल्याण' के उपलब्ध पुराने विशेषाङ्क

वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)	वर्ष	विशेषाङ्क	मूल्य (रु०)
९	शक्ति-अङ्क	१२०	३५	सं० योगवासिष्ठ	१००	६६	सं० भविष्यपुराण	११०
१०	योगाङ्क	१००	३६	सं० शिवपुराण (बड़ा टाइप)	१३०	६७	शिवोपासनाङ्क	८५
१९	सं० पद्मपुराण	१५०	३७	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१३०	६९	गो-सेवा-अङ्क	७५
२१	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०	४४-४५	गर्गसंहिता [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	१००	७०	धर्मशास्त्राङ्क	९०
२१	सं० ब्रह्मपुराण	८०				७१	कूर्मपुराण	८०
२३	उपनिषद्-अङ्क	१२५				७२	भगवल्लीला-अङ्क	६५
२४	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क	१५०	४४-४५	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी अनुवाद)	१३०	७३	वेदकथाङ्क	८०
२५	सं० स्कन्दपुराण	२००				७४	सं० गरुडपुराण	१००
२६	भक्त-चरिताङ्क	१४०	४५	नरसिंहपुराण-सानुवाद	६०	७५	आरोग्य-अङ्क (संवर्धित सं०)	१३०
२७	बालक-अङ्क	११०	४८	श्रीगणेश-अङ्क	९०	७७	भगवत्प्रेम-अङ्क (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)	१००
२८	सं० नारदपुराण	१२०	४९	श्रीहनुमान-अङ्क	९०			
२९	संतवाणी-अङ्क	११०	५१	सं० श्रीवराहपुराण	७५	७९	देवीपुराण [महाभागवत] शक्तिपीठाङ्क	८०
३१	तीर्थाङ्क	१२०	५३	सूर्याङ्क	७०			
३४	सं० देवीभागवत (मोटा टाइप)	१५०	५६	वामनपुराण	८५	८१	अवतार-कथाङ्क	९०
			५९	श्रीमत्स्यमहापुराण	१६५	८२	श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध)	१००

सभी अङ्कोंपर डाक-व्यय अतिरिक्त देय होगा। गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभागसे प्राप्य हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५, जनपद—गोरखपुर, (उ०प्र०)

॥ श्रीहरिः ॥

'श्रीमद्देवीभागवताङ्क' [उत्तरार्ध]-की विषय-सूची

मङ्गलाचरण

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अष्टम स्कन्ध

चित्र-सूची

(रंगीन-चित्र)

(रेखा-चित्र)

श्रीमद्देवीभागवतमाहात्म्य

श्रुत्वैतत्तु महादेव्याः पुराणं परमाद्भुतम्। कृतकृत्यो भवेन्मर्त्यो देव्याः प्रियतमो हि सः॥
मूलप्रकृतिरेवैषा यत्र तु प्रतिपाद्यते। समं तेन पुराणं स्यात्कथमन्यन्नृपोत्तम॥
पाठे वेदसमं पुण्यं यस्य स्याज्जनमेजय। पठितव्यं प्रयत्नेन तदेव विबुधोत्तमैः॥
नित्यं यः शृणुयाद्भक्त्या देवीभागवतं परम्। न तस्य दुर्लभं किञ्चित्कदाचित्क्वचिदस्ति हि॥
अपुत्रो लभते पुत्रान्धनार्थी धनमाप्नुयात्। विद्यार्थी प्राप्नुयाद्विद्यां कीर्तिमण्डितभूतलः॥
वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवन्ध्या च याङ्गना। श्रवणादस्य तद्दोषान्निवर्तेत न संशयः॥
यद्गेहे पुस्तकं चैतत्पूजितं यदि तिष्ठति। तद्गेहं न त्यजेन्नित्यं रमा चैव सरस्वती॥
नेक्षन्ते तत्र वेतालडाकिनीराक्षसादयः। ज्वरितं तु नरं स्पृष्ट्वा पठेदेतत्समाहितः॥
मण्डलान्नाशमाप्नोति ज्वरो दाहसमन्वितः। शतावृत्त्यास्य पठनात्क्षयरोगो विनश्यति॥
प्रतिसन्ध्यं पठेद्यस्तु सन्ध्यां कृत्वा समाहितः। एकैकमस्य चाध्यायं स नरो ज्ञानवान्भवेत्॥
नवरात्रे पठेन्नित्यं शारदीयेऽतिभक्तितः। तस्याम्बिका तु सन्तुष्टा ददातीच्छाधिकं फलम्॥
वैष्णवैश्चैव शैवैश्च रमोमा प्रीयते सदा। सौरैश्च गाणपत्यैश्च स्वेष्टशक्तेश्च तुष्टये॥
पठितव्यं प्रयत्नेन नवरात्रचतुष्टये। वैदिकैर्निजगायत्रीप्रीतये नित्यशो मुने॥
वेदसारमिदं पुण्यं पुराणं द्विजसत्तमाः। वेदपाठसमं पाठे श्रवणे च तथैव हि॥

[महर्षि व्यासने राजा जनमेजयसे कहा—] महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है। हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूलप्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है? हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। **[श्रीसूतजी मुनियोंसे बोले—]** जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है। जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो; वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है। यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्याविधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है। शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं। वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है। **[श्रीमद्देवीभागवत]**

श्रीमद्देवीभागवतसुभाषितसुधा

नासत्यं क्वापि वक्तव्यं नामार्गे गमनं क्वचित्॥

असत्य कभी नहीं बोलना चाहिये और न कभी असत्-मार्गपर ही जाना चाहिये। (७।११।३४)

धर्मे मतिः सदा कार्या दानं दद्याच्च नित्यशः॥
शुष्कवादो न कर्तव्यो दुष्टसङ्गं च वर्जयेत्।
यष्टव्या विविधा यज्ञाः पूजनीया महर्षयः॥

धर्ममें सदा बुद्धि लगाये रखनी चाहिये और प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये। नीरस सम्भाषण नहीं करना चाहिये, दुष्टोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये, विविध यज्ञानुष्ठान करते रहना चाहिये और महर्षियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। (७।११।३८-३९)

दैवं पुरुषकारश्च माननीयाविमौ नृभिः।
उद्यमेन विना कार्यसिद्धिः सञ्जायते कथम्॥

मनुष्योंको भाग्य तथा पुरुषार्थ—इन दोनोंका आदर करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्योग किये कार्यसिद्धि कैसे हो सकती है? (७।१४।३६)

दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥

दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। (७।१६।३९)

दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः।

जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय; उसीसे सन्तोष करता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। (७।१६।४१-४२)

अन्नदाता भयत्राता तथा विद्याप्रदश्च यः।
तथा वित्तप्रदश्चैव पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

अन्न प्रदान करनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्याका दान करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और जन्म देनेवाला—ये पाँच पिता कहे गये हैं। (७।१७।२७)

प्राप्य तीर्थं महापुण्यमस्नात्वा यस्तु गच्छति।
स भवेदात्महा भूय इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥

जो परम पवित्र तीर्थमें पहुँचकर बिना स्नान किये ही लौट जाता है, वह आत्मघाती होता है—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है। (७।१९।४)

व्यर्थं हि जीवितं तस्य विभवं प्राप्य येन वै॥
नोपार्जितं यशः शुद्धं परलोकसुखप्रदम्।

वैभव प्राप्त करके भी जिसने परलोकमें सुख देनेवाले पवित्र यशका उपार्जन नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है। (७।१९।२४-२५)

चिन्तया क्षीयते देहो नास्ति चिन्तासमा मृतिः।

चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है, चिन्ताके समान तो मृत्यु भी नहीं है। (७।१९।४२)

विचारयित्वा यो ब्रूते सोऽभीष्टं लभते नरः।

जो मनुष्य सम्यक् सोच-समझकर बोलता है, वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है। (७।२३।१२)

असत्यान्नरके गच्छेत्सद्यः क्रूरे नराधमः॥

असत्य भाषण करनेके कारण अधम मनुष्य शीघ्र ही भयानक नरकमें जाता है। (७।२३।१३)

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥

उस कार्य-कारणरूप परमात्माको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी ग्रन्थिका भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्मपदार्थोंमें स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं। (७।३६।११)

न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा
न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः।
न यत्र यज्ञेशमखा महोत्सवाः
सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम्॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ उसके उद्गमस्थानस्वरूप भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ समारोहपूर्वक भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा-अर्चा नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये। (८।११।२५)

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

जो मनुष्य सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा'—इस

प्रकार उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है। (९।११।५०)

किं वा ज्ञानेन तपसा जपहोमप्रपूजनैः।
किं विद्यया च यशसा स्त्रीभिर्यस्य मनो हृतम्॥

जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो; उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन! (९।१८।८०)

नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि॥
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग किये कर्मका क्षय नहीं होता। अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। (९।२९।६९-७०)

पितुः शतगुणा माता गौरवे चेति निश्चितम्।
मातुः शतगुणः पूज्यो ज्ञानदाता गुरुः प्रभो॥

पिताकी अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ है, यह निश्चित है; किंतु ज्ञान प्रदान करनेवाला गुरु मातासे भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है। (९।३८।६)

ऐश्वर्यं विपदां बीजं ज्ञानप्रच्छन्नकारणम्।
मुक्तिमार्गकुठारश्च भक्तेश्च व्यवधायकम्॥

[लौकिक] ऐश्वर्य समस्त विपत्तियोंका बीजस्वरूप है, ज्ञानका आच्छादन कर देनेवाला है, मुक्तिमार्गका कुठार है तथा भक्तिमें व्यवधान उत्पन्न करनेवाला है। (९।४०।४६)

महाविपत्तौ संसारे यः स्मरेन्मधुसूदनम्।
विपत्तौ तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥

जो मनुष्य इस संसारमें घोर विपत्तिके समयमें भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है—ऐसा भगवान् शंकरने कहा है। (९।४०।९१)

सर्वान्तरात्मा भगवान् सर्वदेहेष्ववस्थितः।
यस्य देहात्स प्रयाति स शवस्तत्क्षणं भवेत्॥

सभीकी अन्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीरसे निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है। (९।४१।८)

यत्र शङ्खध्वनिर्नास्ति तुलसी न शिवार्चनम्।
न भोजनं च विप्राणां न पद्मा तत्र तिष्ठति॥

जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहतीं, शिवकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं। (९।४१।३०)

यः पूजयेच्च सुरभिं स च पूज्यो भवेद्भुवि॥

जो मनुष्य सुरभि (गौ)-की पूजा करता है, वह पृथ्वीलोकमें पूज्य हो जाता है। (९।४९।२१)

प्रायः शूरो न किं कुर्यादुत्पथे वर्त्मनि स्थितः॥

कुमार्गपर चलनेवाला शक्तिशाली व्यक्ति क्या नहीं कर लेता है? (१०।३।१८)

नष्टे स्वाहास्वधाकारे लोके कः शरणं भवेत्।

लोकमें स्वाहा (यज्ञ, पूजा आदि) तथा स्वधाकार (श्राद्धादि)-के विलुप्त हो जानेपर कौन शरण देनेवाला होता है? (१०।४।१५)

अविमुक्तं न मोक्तव्यं सर्वथैव मुमुक्षुभिः।

मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंको अविमुक्त काशीक्षेत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। (१०।७।६)

विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥

विप्र वृक्ष है, सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ें हैं, वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उस वृक्षके पत्ते हैं। अतएव प्रयत्नके साथ मूल अर्थात् सन्ध्याकी ही रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट जानेपर न तो वृक्ष रहता और न तो शाखा। (११।१६।६)

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात्प्रतिनिवर्तते॥
स तस्मै दुष्कृतं दत्त्वा पुण्यमादाय गच्छति।

जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, वह अतिथि उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है। (११।२२।१९-२०)

कुर्यादन्यन्न वा कुर्यादनुष्ठानादिकं तथा।
गायत्रीमात्रनिष्ठस्तु कृतकृत्यो भवेद् द्विजः॥

द्विज कोई दूसरा अनुष्ठान आदि कर्म करे अथवा न करे, किंतु एकनिष्ठ होकर केवल गायत्रीका अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है। (१२।१।८)

देहत्यागो वरस्तस्मान्मानो हि महतां धनम्।
माने नष्टे जीवितं तु मृतितुल्यं न संशयः॥

[मानके लिये] शरीरका त्याग कर देना भी श्रेष्ठ है; क्योंकि मान ही महापुरुषोंका धन है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यका जीवित रहना मृत्युके समान है, इसमें कोई संशय नहीं है। (१२।८।४७)

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण (उत्तरार्ध)—सिंहावलोकन

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

नरश्रेष्ठ भगवान् श्रीनर, नारायण और भगवती सरस्वती तथा व्यासदेवको नमन करके पुराणकी चर्चा करनी चाहिये।

श्रीमद्देवीभागवतमें वेदोंने भगवती देवीकी स्तुति करते हुए कहा है—

नमो देवि महामाये विश्वोत्पत्तिकरे शिवे।
निर्गुणे सर्वभूतेशि मातः शङ्करकामदे॥
त्वं भूमिः सर्वभूतानां प्राणः प्राणवतां तथा।
धीः श्रीः कान्तिः क्षमा शान्तिः श्रद्धा मेधा धृतिः स्मृतिः॥
त्वमुद्गीथेऽर्धमात्रासि गायत्रीव्याहृतिस्तथा।
जया च विजया धात्री लज्जा कीर्तिः स्पृहा दया॥

(श्रीमद्देवीभा० १।५।५३-५५)

'देवी! आप महामाया हैं, जगत्‌की सृष्टि करना आपका स्वभाव है, आप कल्याणमय विग्रह धारण करनेवाली एवं निर्गुणा हैं, अखिल जगत् आपका शासन मानता है तथा भगवान् शंकरके आप मनोरथ पूर्ण किया करती हैं। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय देनेके लिये आप पृथ्वीस्वरूपा हैं, प्राणधारियोंके प्राण भी आप ही हैं। धी, श्री, कान्ति, क्षमा, शान्ति, श्रद्धा, मेधा, धृति और स्मृति—ये सभी आपके नाम हैं। ॐकारमें जो अर्धमात्रा है, वह आपका ही निर्विशेष रूप है। गायत्रीमें आप प्रणव हैं। भूः, भुवः आदि व्याहृतियाँ भी आप ही हैं। जया, विजया, धात्री, लज्जा, कीर्ति, स्पृहा और दया—इन नामोंसे आप प्रसिद्ध हैं। माता! हम आपको नमस्कार करते हैं।'

सभी देवी-देवता और दानवोंके लिये ये चिन्मयी पराशक्ति ही आराधना करनेयोग्य हैं। त्रिलोकीमें इन भगवतीसे बढ़कर अन्य कोई नहीं है—यह बात सत्य है, सत्य है। वेद और शास्त्रोंका भी यही सच्चा तात्पर्य—निर्णय है कि निर्गुण तथा सगुणरूपा चिन्मयी पराशक्ति ही पूजनीय हैं।

पिछले वर्ष कल्याणके विशेषांकके रूपमें श्रीमद्देवीभागवत (पूर्वार्ध)-में छः स्कन्धतककी कथा प्रकाशित की जा चुकी है। इस वर्ष श्रीमद्देवीभागवत (उत्तरार्ध) प्रकाशित हो रहा है, जिसमें सप्तम स्कन्धसे कथा प्रारम्भ हो रही है—

सप्तम स्कन्ध

व्यासजी राजा जनमेजयको कथा सुना रहे हैं। सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विस्तृत वर्णन सुननेकी इच्छा व्यक्त करनेपर राजा जनमेजयको व्यासजी सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित कथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

सर्वप्रथम भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए; ब्रह्माजीने मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन सात मानस पुत्रोंका सृजन किया। ब्रह्माजीकी गोदसे नारदजीका प्राकट्य हुआ, अँगूठेसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए; इसी प्रकार सनक आदि अन्य मानसपुत्रोंकी भी उत्पत्ति हुई। बायें हाथके अँगूठेसे वीरिणी नामकी एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, जो दक्षप्रजापतिकी पत्नी बनी।

दक्षप्रजापतिके द्वारा वीरिणीके गर्भसे पाँच हजार पुत्र उत्पन्न हुए, जिन्हें ब्रह्माजीसे प्रजाकी वृद्धि करनेकी प्रेरणा मिली, परंतु देवर्षि नारदने यह कहकर 'पृथ्वीकी वास्तविक परिमितिका बिना ज्ञान किये प्रजाकी सृष्टिकार्यमें तुमलोग कैसे तत्पर हो गये' उन्हें इस कार्यसे विरत कर दिया। दृढ़निश्चयी दक्षप्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये पुनः अन्य पुत्र उत्पन्न किये, परंतु उन्हें भी नारदजीने यही कहकर इस कार्यसे विरत कर दिया। यह सब देखकर दक्षने पुत्रशोकसे अत्यन्त कुपित होकर नारदजीको शाप दिया कि तुमने मेरे पुत्रोंको भ्रष्ट किया है, अतएव इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें भी गर्भमें वास करना होगा और मेरा पुत्र बनना पड़ेगा। इस प्रकार शापके प्रभावसे मुनि नारद भी वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए, तदनन्तर दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया। उनमेंसे

तेरह कन्याएँ मरीचिपुत्र महात्मा कश्यपको अर्पित कर दीं तथा अन्य कन्याएँ धर्म, चन्द्रमा, भृगुमुनि, अरिष्टनेमि तथा अंगिराऋषिको प्रदान कीं। उन्हीं कन्याओंके पुत्र तथा पौत्र देवता एवं दानवके रूपमें उत्पन्न हुए, जो परस्पर विरोधका भाव रखते थे। देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, पशु और पक्षी—सब-के-सब कश्यपजीसे उत्पन्न हुए, अत: यह सृष्टि काश्यपी-सृष्टि कहलाती है।

सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा— राजा जनमेजय के पूछनेपर व्यासजी कहते हैं—देवताओंमें सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं, उनका नाम विवस्वान् भी है। उनके पुत्र वैवस्वत मनु थे। वैवस्वत मनुसे इक्ष्वाकु तथा शर्याति आदि नौ पुत्र उत्पन्न हुए। शर्याति एक ऐश्वर्यशाली राजा थे, जिनकी चार हजार पत्नियाँ थीं, उन सबके बीचमें सुकन्या नामकी एक सुन्दर पुत्री थी। उनके नगरसे थोड़ी दूरपर एक सुन्दर सरोवर था; जहाँ महातपस्वी, भृगुवंशी च्यवनमुनि तपस्यामें निमग्न थे। वे जल ग्रहण किये बिना बहुत समयसे जगदम्बाका ध्यान करते थे। उनके शरीरको दीमकोंने पूरी तरहसे ढक लिया था। दीमकोंके कारण वे मिट्टीके ढेरसदृश हो गये थे।

किसी समय वे राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करते हुए उस उत्तम सरोवरपर आये। चंचल स्वभाववाली उनकी पुत्री सुकन्या खेलती हुई वल्मीक बने हुए च्यवनमुनिके निकट पहुँच गयी। उस वल्मीकके भीतर च्यवनऋषिकी दोनों आँखें जुगुनूकी तरह चमक रही थीं। सुकन्याने कौतूहलवश काँटेसे दोनों आँखोंको खोद दिया, जिससे रक्तप्रवाह होने लगा और च्यवनमुनि अन्धे हो गये। सुकन्याके इस कृत्यसे राजाके साथ आनेवाले सभी सैनिक और मन्त्री कष्टमें पड़ गये, राजाको जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने च्यवनऋषिसे क्षमा-प्रार्थना की। च्यवनऋषिने यह इच्छा व्यक्त की कि आप सुकन्यासे मेरा विवाह कर दें, इससे राजा अत्यन्त चिन्तित हो गये, परंतु सुकन्याके द्वारा स्वीकृतिपूर्वक आग्रह करनेपर राजाने च्यवनऋषिसे सुकन्याका विवाह कर दिया। सुकन्या वल्कल आदि धारणकर च्यवनमुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी।

सुकन्या पातिव्रत्यधर्मका पूर्ण पालन करती हुई वृद्ध एवं अन्धे पति च्यवनऋषिकी सेवामें पूर्ण तत्पर थी। उन्हीं दिनों किसी समय सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए च्यवनमुनिके आश्रमके पास आ पहुँचे। वे सर्वांगसुन्दरी सुकन्याको देखकर उसकी ओर कामासक्त हो गये। सुकन्यासे पूरी बात जानकर उन्होंने उसे च्यवनमुनिकी सेवासे विरत करनेका प्रयास किया, परंतु सुकन्याने पतिपरायणा होनेके कारण दृढ़तासे उनकी बातोंका विरोध किया। सुकन्याकी दृढ़ता देखकर अश्विनीकुमारोंने भयभीत होते हुए च्यवनऋषिको युवावस्था तथा सुन्दरता प्रदान करनेका प्रस्ताव रखा। साथ ही एक शर्त रखी—'एक सरोवरमें च्यवनमुनि तथा हमदोनों एक साथ स्नान करेंगे और तीनों एकरूप हो जायँगे, उनमेंसे तुम किसी एकको पतिरूपमें चुन लेना।' यह सुनकर सुकन्या असमंजसमें पड़ गयी। उसने सब बातें अपने पति च्यवनमुनिको बतायीं। अन्तमें च्यवनमुनिकी आज्ञासे सुकन्याने इस शर्तको स्वीकार कर लिया।

एक सरोवरमें च्यवनऋषि तथा अश्विनीकुमारोंने एक साथ स्नान किया और तीनों एकरूप हो गये। सुकन्यासे कहा गया—इन तीनोंमेंसे तुम अपना पति चुन लो। सुकन्या अत्यन्त दुविधामें पड़ गयी, वह पतिपरायणा थी। उसने भगवतीसे प्रार्थना की और भगवतीकी कृपासे अपने पति च्यवनऋषिको युवारूपमें प्राप्त कर लिया। च्यवनऋषि युवावस्था प्राप्तकर अत्यन्त प्रसन्न थे, उन्होंने प्रत्युपकारकी दृष्टिसे अश्विनीकुमारोंको यज्ञमें सोमरस-पानका अधिकारी बनानेका वचन दिया।

एक दिन महाराज शर्याति अपनी कन्याको देखनेके लिये च्यवनऋषिके आश्रममें पहुँचे। वहाँ युवा पतिके साथ अपनी कन्याको देखकर विस्मयमें पड़ गये। जब सब बातें स्पष्ट हुईं तो च्यवनमुनिके आदेशसे शर्यातिने एक यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको सोमरस-पानका अधिकारी बना दिया।

सूर्यवंशी राजाओंका पावन चरित्र— सूर्यवंशमें शर्यातिके पौत्र महाराज रेवत हुए, जो अपनी कन्याका वर जाननेके लिये पितामह ब्रह्माजीके पास सशरीर ब्रह्मलोक गये। ब्रह्माजीके आदेशसे उन्होंने अपनी कन्या रेवतीका

विवाह भगवान् श्रीकृष्णके ज्येष्ठ भ्राता शेषावतार श्रीबलरामजीसे कर दिया।

इसी वंशमें ककुत्स्थ नामके प्रचण्ड पराक्रमी राजा हुए, जिन्होंने वृषभरूपधारी देवराज इन्द्रपर सवार होकर देवताओंके लिये भी अजेय दानवोंको परास्त किया था। ककुत्स्थके पुत्र राजा पृथु हुए, जो भगवान् विष्णुके अंशावतार कहे जाते हैं। इसी वंशमें यौवनाश्व नामक धार्मिक नरेश हुए, जो सन्तानहीन होनेके कारण अत्यन्त चिन्तित थे। ब्राह्मणों तथा ऋषियोंने उनपर दयाकर उनसे सन्तानके निमित्त एक यज्ञ कराया। पण्डितोंने जलसे परिपूर्ण एक कलशका पुत्रप्राप्तिके निमित्त अभिमन्त्रण किया। यह विधिपूर्वक अभिमन्त्रित जल रानीके लिये रखा गया था, जिसे प्यास लगनेके कारण भूलसे राजा यौवनाश्वने पी लिया। मन्त्रके प्रभावसे राजाने गर्भ धारण कर लिया, उनकी दाहिनी कोखका भेदन करके मान्धाता उत्पन्न हुए, जिनका पालन स्वयं देवराज इन्द्रने किया। इस वंशके सभी राजा भगवती जगदम्बाके उपासक थे। इसी वंशमें महाराज अरुण हुए, उन न्यायप्रिय सम्राट्ने धर्म और सदाचारका उल्लंघन करते देखकर अपने एकमात्र पुत्र सत्यव्रतको अपने राज्यसे निकाल दिया।

सत्यव्रतने देवीकी उपासना की, जिससे वे पुनः पिताके प्रेमभाजन बन गये। महाराज अरुणने राजकुमार सत्यव्रतको अपना लिया तथा उसे अपने निकट बैठाकर नीतिशास्त्रका उपदेश दिया—हे पुत्र! तुम सदा धर्ममें ही अपनी बुद्धि लगाना, न्यायपूर्वक प्राप्त धन ही ग्रहण करना। कभी असत्यभाषण मत करना, निन्दित मार्गका अनुसरण मत करना। तुम्हें प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये; द्यूत, मदिरा, अश्लील संगीत तथा वेश्याओंसे बचना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर मनुष्यको स्नान आदि नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर भक्तिपूर्वक पराशक्ति जगदम्बाकी आराधना करनी चाहिये। तुम वेद-वेदान्तके पारगामी आदरणीय विद्वानोंकी विधिवत् पूजा करके सुयोग्य पात्रोंको गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका सदा दान करना। तुम कभी भी किसी मूर्ख ब्राह्मणकी पूजा मत करना और मूर्ख व्यक्तिको कभी भी भोजनसे अधिक कुछ भी मत देना। किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन मत करना। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका पालन करे और न्यायसे उपार्जित धनका निरन्तर संग्रह करे।

इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकु (सत्यव्रत)-ने कहा—मैं वैसा ही करूँगा। तत्पश्चात् महाराज अरुणने त्रिशंकुको राज्यपर विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपनी धर्मपत्नीके साथ वानप्रस्थ-आश्रमको ग्रहण किया।

राजा सत्यव्रत देवेश्वरी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हुए राज्यपर सम्यक् शासन करने लगे। त्रिशंकुके पुत्र हरिश्चन्द्र हुए। कुछ समय बाद राजा त्रिशंकुने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रको युवराज बनाकर मानवशरीरसे ही स्वर्गसुख भोगनेका निश्चय किया। उन्होंने अपनी इच्छा महर्षि वसिष्ठजीसे व्यक्त की और इसके लिये यज्ञ करानेका आग्रह किया। वसिष्ठजीने 'मानवशरीरसे स्वर्गमें निवास अत्यन्त दुर्लभ है'—यह कहकर यज्ञ करानेमें अपनी असमर्थता व्यक्त की। राजा त्रिशंकुने वसिष्ठजीसे कहा कि यदि आप यज्ञ नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्यको आचार्य बनाकर यज्ञ सम्पन्न करूँगा। यह सुनकर वसिष्ठजीने क्रोधित होकर राजा त्रिशंकुको शाप दे दिया कि मरनेके बाद भी तुम किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते। उनके शापसे राजा त्रिशंकु चाण्डाल बनकर जंगलकी ओर चले गये। जंगलमें कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वे समय व्यतीत करने लगे।

कुछ समय पूर्व विश्वामित्रजी अपनी भार्याको जंगलमें छोड़कर तपस्यामें रत थे। उन दिनों उनकी पत्नी अपने पुत्रोंके साथ अत्यधिक संकटमें पड़ गयी थी। तब सत्यव्रतने कई प्रकारसे उनकी रक्षा की। यह बात विश्वामित्रजीकी पत्नीने विश्वामित्रजीको बतायी और कहा कि इनका हमपर बड़ा उपकार है, आपको भी इनका प्रत्युपकार करना चाहिये। तदनन्तर विश्वामित्रजी सत्यव्रत (त्रिशंकु)-से मिले। सत्यव्रतने सशरीर स्वर्ग जानेकी इच्छा व्यक्त की। विश्वामित्रजीने अपने तपके प्रभावसे उन्हें सशरीर स्वर्ग भेज दिया। स्वर्गलोकमें उनका चाण्डालशरीर देखकर देवतागण नाराज हुए तथा इन्द्रने उन्हें वापस

नीचेकी ओर धकेल दिया। यह बात विश्वामित्रजीको मालूम होते ही उन्होंने अपने तपोबलसे उन्हें बीचमें ही रोक दिया तथा नये स्वर्गलोककी सृष्टि करनी चाही। इन्द्रको यह बात मालूम होनेपर उन्होंने विश्वामित्रजीसे क्षमा-प्रार्थना की और उनके इच्छानुसार वे त्रिशंकुको दिव्य शरीरवाला बनाकर अपनी पुरी ले गये।

राजा हरिश्चन्द्रकी कथा—राजा हरिश्चन्द्र राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु)-के पुत्र थे, अपने पिताके स्वर्गगमनसम्बन्धी समाचारको सुनकर वे अत्यन्त हर्षित हुए और राज्यका शासन करने लगे। बहुत समय व्यतीत होनेपर भी जब उन्हें कोई सन्तान नहीं हुई तो वे अत्यन्त चिन्तित हुए। उन्होंने महर्षि वसिष्ठसे इसके लिये प्रार्थना की। वसिष्ठजीने सन्तानप्राप्तिके लिये वरुणदेवकी आराधनाका उपदेश किया। वरुणदेवकी उपासना करनेपर वे प्रसन्न होकर राजाके समक्ष प्रकट हुए। राजा हरिश्चन्द्रने उनसे सन्तानप्राप्तिका वर माँगा। 'पुत्र हो जानेपर उसे बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें'—इस शर्तके साथ वरुणदेवने राजाको पुत्रप्राप्तिका वर प्रदान किया। राजा हरिश्चन्द्रने भी सन्तानहीन न रहूँ—यह सोचकर इसे स्वीकार कर लिया।

कुछ समय बाद पुत्र हो जानेपर वरुणदेव यज्ञके लिये प्रकट हुए, राजाने जननाशौचसे निवृत्त होनेके अनन्तर यज्ञ करनेकी बात कही। अशौचनिवृत्तिके बाद राजाने बच्चेके दाँत आनेतकका बहाना बनाया। दाँत आ जानेपर राजाने चूडाकर्मसंस्कारके बाद यज्ञ करनेका वरुणदेवको आश्वासन दिया। चूडाकरणसंस्कार सम्पन्न होनेपर राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवके प्रकट होनेपर उनसे प्रार्थना की कि बिना उपनयनसंस्कारके द्विजत्वकी प्राप्ति नहीं होती, अतः इसके बाद मैं अवश्य यज्ञ करूँगा। उपनयनसंस्कारके अनन्तर राजाके पुत्र राजकुमार रोहित अपनी बलिकी बातसे सशंकित होकर नगरसे बाहर वनकी ओर भाग गये। राजा अत्यन्त चिन्तित हुए। वरुणदेव भी प्रकट हुए, पुत्रको न पाकर उन्होंने अत्यन्त कुपित होकर राजा हरिश्चन्द्रको जलोदर रोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया। जलोदर रोगके कष्टसे अत्यधिक पीड़ित राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे इस रोगके नाशका निश्चित उपाय पूछा। वसिष्ठजीने उपाय बताया कि धनके द्वारा खरीदे गये पुत्रसे आप यज्ञ कीजिये, इससे आप शापसे मुक्त हो जायँगे।

राजा हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त नामका एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, उसने धनके लोभमें अपने पुत्र शुनःशेपको बलिपशुके निमित्त राजाको बेच दिया। यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधे गये उस बालकको अत्यधिक व्याकुल देखकर तथा उसका कोलाहल सुनकर विश्वामित्रजी दयार्द्र हो गये। उन्होंने राजासे शुनःशेपको छोड़नेका अनुरोध किया तथा कहा कि दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। यज्ञोंमें हिंसा करनेका जो विधान बना, उसका उद्देश्य जिह्वालोलुपोंके जिह्वा-स्वादकी पूर्तिके माध्यमसे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना है, किंतु यथासम्भव हिंसासे विरत रहना ही शास्त्रका आशय है। अपना कल्याण चाहनेवालेको अपने शरीरकी रक्षाके लिये दूसरेके शरीरको नष्ट नहीं करना चाहिये। जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीसे सन्तोष करता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं।* हे नृपश्रेष्ठ! सभी प्राणियोंमें आत्मभावका चिन्तन करना चाहिये, जिस प्रकार अपनेको देह प्रिय होती है, उसी प्रकार सभी जीवोंको अपना शरीर प्रिय होता है। जो व्यक्ति अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये किसी प्राणीका वध करता है, दूसरी योनिमें जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ताका वध कर देता है। राज्यमें जो कोई व्यक्ति पापकर्म करता है, तो उसके पापका छठा अंश राजाको भोगना पड़ता है, अतः राजाको इससे बचना चाहिये।

विश्वामित्रजीकी इन बातोंको सुनकर भी राजाने

---

* दयासमं नास्ति पुण्यं पापं हिंसासमं नहि॥
रागिणां रोचनार्थाय नोदनेयं विचारय। आत्मदेहस्य रक्षार्थं परदेहनिकृन्तनम्॥
न कर्तव्यं महाराज सर्वतः शुभमिच्छता। दयया सर्वभूतेषु सन्तुष्टो येन केन च॥
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जगत्पतिः। (श्रीमद्देवीभा० ७।१६।३९—४२)

शुनःशेपको मुक्त नहीं किया, तब विश्वामित्रजीने शुनःशेपके निकट जाकर उसे वरुणदेवका मन्त्र प्रदान किया तथा वरुणदेवका स्मरण करते हुए मन्त्र-जप करनेका उपदेश दिया। शुनःशेपके इस प्रकार मन्त्र-जप करनेपर वरुणदेव प्रकट हुए, राजाने भी उनसे विनती करते हुए क्षमा-याचना की। वरुणदेवने दयार्द्र होकर शुनःशेपको बन्धनमुक्त कराया और राजाको भी रोगमुक्त कर दिया।

राजा हरिश्चन्द्र अपनी स्त्री तथा पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे। कुछ समय बाद महर्षि विश्वामित्र कुछ कारणवश उनसे रुष्ट हो गये। वे कपटपूर्वक एक ब्राह्मणका वेश बनाकर राजासे मिले। राजाने उनसे कहा—मैंने राजसूय यज्ञ किया है, आप जो भी कुछ माँगेंगे, मैं उसे पूरा करूँगा। उस ब्राह्मणके प्रभावमें आकर राजाने अपना सम्पूर्ण राज्य विश्वामित्रको दान कर दिया। बादमें विश्वामित्रजीने इस दानकी सांगता-सिद्धिहेतु ढाई भार स्वर्णकी दक्षिणा देनेके लिये कहा; क्योंकि किसी भी दानकी सांगता-दक्षिणाके बिना वह दान सफल नहीं होता। राजा हरिश्चन्द्र अत्यधिक चिन्ताग्रस्त हो गये, दक्षिणाके लिये विश्वामित्रके क्रूर वचनोंको सुनकर वे अपनी पत्नी तथा पुत्रके साथ काशीपुरी आये। अपने पतिको अत्यधिक चिन्ताग्रस्त देखकर उनकी पत्नीने उनसे कहा—हे महाराज! आप चिन्ता छोड़कर अपने धर्मका पालन कीजिये। अपने सत्य वचनका अनुपालनरूप जो धर्म है, उससे बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म मनुष्यके लिये नहीं है। जिस व्यक्तिका वचन मिथ्या हो जाय; उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते हैं।

इसी बीच एक वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण वहाँ आ गये, रानीने राजासे कहा—ब्राह्मण तीनों वर्णोंका पिता कहा जाता है, पुत्रके द्वारा पितासे धन लिया जा सकता है; अतः इनसे धनके लिये प्रार्थना की जाय। राजाने उत्तर दिया—मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिये किसीसे दान लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता। याचना करना ब्राह्मणोंका कार्य है, क्षत्रियोंका नहीं। ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है और सर्वदा पूजनीय है। इसलिये गुरुसे याचना नहीं करनी चाहिये।

इसपर रानीने कहा—अपने सत्यकी रक्षाके लिये आप मुझे बेचकर मुनिकी दक्षिणा चुका दें। उसी समय वहाँ एक ब्राह्मण प्रकट हुए, जिन्होंने ग्यारह करोड़ स्वर्ण-मुद्रा देकर रानी तथा राजकुमार रोहितको खरीद लिया, परंतु यह दक्षिणा विश्वामित्रके लिये पूर्ण नहीं थी। राजाने उनकी दक्षिणाको पूर्ण करनेके लिये स्वयंको भी बेचनेका प्रयास किया, उसी समय चाण्डालका रूप धारणकर धर्मदेव वहाँ आ पहुँचे। राजा चाण्डालके हाथों बिकना नहीं चाहते थे, परंतु विश्वामित्रके क्रोधयुक्त क्रूर वचनोंके कारण उन्होंने विश्वामित्रकी आज्ञासे चाण्डालका दासत्व स्वीकार कर लिया। इसके बदलेमें उन्हें दक्षिणाके लिये पूर्ण धनकी प्राप्ति हो गयी।

राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालने श्मशानमें मृत व्यक्तिका वस्त्र तथा कर आदि लेनेका काम सौंप दिया।

एक समयकी बात है, राजकुमार रोहित खेलते हुए कुश उखाड़ने लगा। उसी समय एक सर्पने बालक रोहितको डस लिया। उसकी मृत्यु हो गयी। करुण विलाप करती हुई रानी शैब्या उसके निष्प्राण शरीरको लेकर श्मशान आयी, वहाँ उसने राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके रूपमें देखा। प्रारम्भमें रानी अपने पतिको पहचान नहीं पायी तथा राजा हरिश्चन्द्र भी अपनी पत्नी और पुत्रको नहीं पहचान सके। रानीने जब विलाप करना प्रारम्भ किया तो कुछ देर बाद राजा अपनी पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा टूटनेपर पति-पत्नी दोनोंने दुःखसे विह्वल होकर यह निश्चय किया कि पुत्रकी चितापर हम दोनों भी अपना शरीर त्याग देंगे। जैसे ही उन्होंने चिता निर्माणकर भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए चितामें प्रवेश करना चाहा, उसी समय तत्काल पितामह ब्रह्मा, इन्द्रादि सभी देवगण धर्मदेवको आगेकर वहाँ उपस्थित हो गये। देवगणोंने राजा हरिश्चन्द्रकी अत्यधिक प्रशंसा की और कहा कि आप अपनी भार्या और पुत्रको साथमें लेकर स्वर्गके लिये प्रस्थान कीजिये। तत्पश्चात् चिताके मध्यभागमें रोहितपर अपमृत्युका नाश करनेवाली अमृतमयी वृष्टि होने लगी तथा विपुल पुष्पोंकी वर्षा एवं दुन्दुभियोंकी तेज ध्वनि होने लगी, मृतपुत्र रोहित जीवित हो गया।

राजा हरिश्चन्द्रने कहा कि मैं अयोध्यावासियोंको

छोड़कर अकेले स्वर्गलोक नहीं जाऊँगा, सबको साथ लेकर ही जा सकता हूँ। इन्द्रकी अनुमति मिलनेपर पुत्र रोहितका राजतिलककर राजा हरिश्चन्द्र समस्त अयोध्या-वासियोंके साथ विमानपर आरूढ़ होकर स्वर्ग चले गये।

भगवती शताक्षी और शाकम्भरीके प्राकट्यकी कथा—प्राचीनकालमें दुर्गम नामक एक अत्यन्त भयंकर महादैत्य था, ब्रह्माजीके वरदानसे समस्त वेदमन्त्र उसके पास आ गये और ब्राह्मणोंको विस्मृत हो गये। वेदविहीन होनेसे स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदिका लोप हो गया। इसलिये देवताओंको हव्य मिलना और पृथ्वीपर वर्षा होना—दोनों बन्द हो गये। चारों ओर अकाल पड़ गया, समस्त प्राणी असमय कालकवलित होने लगे। जगत्‌की इस विषम स्थितिको देखकर ब्राह्मणोंने हिमालयपर्वतपर जाकर भगवतीकी स्तुति की और उनसे दुःख दूर करनेकी प्रार्थना की। भगवती उनकी करुणापूर्ण स्थिति देखकर द्रवित हो गयीं। उन्होंने शताक्षी-रूप धारण किया, उनके शत नेत्रोंसे अविरल जलधारा प्रवाहित होने लगी, जिससे धरती प्लावित हो गयी। उनके हाथोंमें विभिन्न प्रकारके शाक और फल थे, अतः उन्हें शाकम्भरी कहा जाने लगा। इस प्रकार सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये खाद्य-व्यवस्थाकर और पृथ्वीको सस्य-श्यामला बना भगवतीने दुर्गम दैत्यसे युद्धकर उसका संहार कर दिया। उन शक्तिस्वरूपा भगवतीके लिये उस क्षुद्र दैत्यका वध करना कौन बड़ी बात है; क्योंकि उन्हींकी शक्तिसे तो भगवान् शंकर और भगवान् विष्णु भी शक्तिमान् होते हैं।

शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा—भगवान् शंकरके प्रति द्वेषबुद्धि रखनेवाले दक्षप्रजापतिके यज्ञमें भगवती सतीने आत्मदाह कर दिया था, उस समय भगवान् शंकरकी कोपाग्निसे प्रलयकी-सी स्थिति उत्पन्न हो गयी, परंतु देवताओंकी प्रार्थनापर वे शान्तचित्त हुए। इसके अनन्तर भगवान् शिवने यज्ञस्थलपर जाकर भगवती सतीके शरीरको अपने कन्धेपर रख लिया और उन्मत्त होकर भ्रमण करने लगे। तब भगवान् विष्णुने बाणोंसे सतीके विभिन्न अंगोंको काटकर गिरा दिया। एक सौ आठकी संख्यामें कटे वे अंग जहाँ-जहाँ गिरे, वहाँ-वहाँ शक्तिपीठ उत्पन्न हो गये। उन-उन स्थानोंपर भगवान् शंकर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गये। भगवान् शिवने देवताओंसे कहा कि जो लोग इन स्थानोंपर महान् श्रद्धाके साथ भगवती शिवाकी आराधना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि उन स्थानोंपर साक्षात् भगवती पराम्बा अपने अंगोंमें सदा निहित हैं। इन तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये तथा विधिपूर्वक भगवतीकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा वटुओं आदिको भोजन कराना चाहिये।

भगवती पार्वतीके प्राकट्यकी कथा—सतीके दग्ध हो जानेपर भगवान् शिव व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे। अन्तमें मनको समाधिस्थ करके भगवतीके ध्यानमें निमग्न हो गये। उसी समय तारक नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ, जिसने अपनी तपस्याद्वारा ब्रह्माजीसे यह वरदान प्राप्त कर लिया कि भगवान् शंकरके औरस पुत्रद्वारा ही उसकी मृत्यु हो सकेगी। वरके प्रभावसे उन्मत्त वह असुर महान् अत्याचारी हो गया था। यह देखकर भगवान् विष्णुने देवताओंकी प्रार्थनापर उन्हें भगवतीकी शरणमें जानेकी सलाह दी। देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवीने कहा—'गौरी नामक मेरी शक्ति हिमालयके घर उत्पन्न होगी, आपलोग उसे शिवको प्रदान करा दीजियेगा।' इस प्रकार हिमालयकी पुत्रीके रूपमें भगवतीका पार्वती-अवतार हुआ।

भगवतीद्वारा हिमालयको देवीगीताका उपदेश—पराम्बा भगवतीने हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका तात्त्विक विवेचन किया। तत्पश्चात् देवीने अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए हिमालय तथा देवताओंको अपने विराट्‌रूपके दर्शन कराये, जिसे देखकर देवगण भयभीत हो गये, इसपर भगवतीने पुनः अपना सौम्यरूप धारण कर लिया। देवीने हिमालयको अपने मन्त्र '**ह्रीं**' का उपदेश दिया तथा अष्टांगयोग और कुण्डलिनीजागरणकी विधि बतायी। इसके बाद उन्होंने परब्रह्मके स्वरूप और अपनी भक्तिकी महिमा तथा उसके प्रकारका वर्णन किया; साथ ही उन्होंने अपने तीर्थों, व्रतों और पूजन-विधान का वर्णन करनेके अनन्तर बताया कि यह देवीगीता (अध्याय ३२—४०) अत्यन्त गोपनीय तथा

समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। ऐसा कहकर वे भगवती वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और देवीके दर्शनसे सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालयके यहाँ उत्पन्न हुईं, जो गौरी नामसे प्रसिद्ध हुईं। बादमें वे शंकरजीको प्रदान की गयीं। तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुरका संहार किया।

अष्टम स्कन्ध

अष्टम स्कन्धका प्रारम्भ नारदजीकी इस जिज्ञासासे होता है कि यह जगत् किससे उत्पन्न होता है, किससे इसकी रक्षा होती है, किसके द्वारा इसका संहार होता है? किस पूजासे, किस जपसे और किस ध्यानसे तथा किस ज्ञानसे इस मोहमयी मायाका नाश हो जाता है। नारदजीके प्रश्नके उत्तरमें श्रीनारायण कहते हैं—इस जगत्का एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा ही हैं। तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से युक्त होनेके कारण वे भगवती ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करती हैं, वे ही पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं।

प्रजाकी सृष्टिके लिये मनुका देवी-आराधन—स्वायम्भुव मनु पितामह ब्रह्माजीके पुत्र थे। उनकी पत्नीका नाम शतरूपा था। ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे प्रजाकी सृष्टिके लिये भगवती जगदम्बाकी भक्तिपूर्वक तपस्या करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बाने उन्हें वरदान दिया कि प्रजासृष्टिका तुम्हारा कार्य निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न होगा और इसमें निरन्तर वृद्धि होती रहेगी।

वराहावतारकी कथा—मनुने जब प्रजासृष्टि करनी चाही तो देखा कि पृथ्वी जलमें डूबी हुई है—यह बात उन्होंने ब्रह्माजीसे बतायी। इसपर ब्रह्मा आदिपुरुषका चिन्तन करने लगे। उनके ध्यान करते ही सहसा उनकी नासिकाके अग्रभागसे एक अंगुष्ठ-परिमाणका वाराह-शिशु निकला, जो देखते-ही-देखते पर्वताकार हो गया। वहाँ उपस्थित देवताओं और विप्रवरोंने उत्तम स्तोत्रों तथा ऋक्, साम और अथर्ववेदसे सम्भूत पवित्र सूक्तोंसे आदिपुरुषकी स्तुति प्रारम्भ कर दी। उनकी स्तुति सुनकर भगवान् श्रीहरि उन्हें अनुग्रहीत करते हुए जलमें प्रविष्ट हो गये। उस समय अगाध जलके भीतर प्रविष्ट तथा सभी प्राणियोंको आश्रय देनेवाली उस पृथ्वीको देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने दाढ़ोंपर उठा लिया। उन्हें देखकर देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे। इस प्रकार सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत होनेपर भगवान् श्रीहरिने उस समय वहाँ आये महान् असुर तथा भयंकर दैत्य हिरण्याक्षको अपनी गदासे मार डाला। तत्पश्चात् भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको अपनी दाढ़से उठाकर लीलापूर्वक जलपर स्थापित कर दिया। इसके बाद वे लोकनाथेश्वरभगवान् अपने लोकको चले गये।

महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन—नारदजीसे श्रीनारायण कहते हैं—पृथ्वीको यथास्थान प्रतिष्ठित करके भगवान् जब वैकुण्ठ चले गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको समुचितरूपसे प्रजाओंकी सृष्टिकी प्रेरणा करते हुए यह उपदेश दिया—शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका आचरण करो तथा वर्णाश्रम-व्यवस्थाका पालन करो और यज्ञके स्वामी परमपुरुषका भजन करो। इस क्रमसे प्रवृत्त रहनेपर प्रजाकी वृद्धि होती रहेगी।

पिताकी इस आज्ञाको पृथ्वीपति स्वायम्भुव मनुने हृदयमें धारण कर लिया और वे प्रजाकी सृष्टि करने लगे। मनुसे प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और आकूति, देवहूति तथा प्रसूति—ये तीन कन्याएँ हुईं। उनकी प्रसूति नामक कन्याका दक्षप्रजापतिसे विवाह हुआ, जिनकी कन्याओंके सन्तानके रूपमें देवता, पशु और मानव आदि उत्पन्न हुए। मनुके पुत्र महाराज प्रियव्रतने पृथ्वीकी सात बार प्रदक्षिणा की, जिससे उनके रथके पहियोंके निशानसे पूरी पृथ्वीमें सात समुद्र और सात द्वीप बन गये। उन महाराज प्रियव्रतके दस पुत्र हुए, उनमेंसे तीन पुत्र वीतराग होकर परमहंस भावसे रहने लगे और शेष सात पुत्रोंको उन्होंने एक-एक द्वीपका अधिपति बना दिया। उन सातों द्वीपोंके नाम इस प्रकार हैं—जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप।

जम्बूद्वीपमें कुल नौ वर्ष हैं, भारतवर्ष इसीके अन्तर्गत है। अन्य वर्षोंके नाम इस प्रकार हैं—इलावृतवर्ष, भद्राश्ववर्ष, हरिवर्ष, केतुमालवर्ष, रम्यकवर्ष, हिरण्मयवर्ष, उत्तरकुरुवर्ष तथा किम्पुरुषवर्ष। इन सभी वर्षोंमें भगवान् श्रीहरिके विभिन्न रूपोंकी उपासना होती रहती है।

गंगावतरणका आख्यान—सुमेरुपर्वतके शिखरपर ठीक मध्यमें ब्रह्माजीकी पुरी है। यह दस हजार योजनके विस्तारमें विराजमान है।

सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके बायें पैरके अँगूठेके नखसे आघातके कारण ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुए छिद्रके मध्यसे गंगाजी प्रकट हुईं और वे स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण देवनदियोंकी स्वामिनी भगवती गंगा स्वर्गके शिखरपर जहाँ आयी थीं, वह स्थान तीनों लोकोंमें विष्णुपद नामसे विख्यात है। मोक्षस्वरूपिणी ये गंगा तपस्या करनेवाले पुरुषोंको सिद्धि देनेवाली हैं—यह जानकर सिद्धगण उनमें निरन्तर स्नान करते रहते हैं। विष्णुपदसे चलकर गंगा चन्द्रमण्डलका भेदन करती हुईं ब्रह्मलोकमें पहुँचीं; वहाँसे सीता, चतुः (चक्षु), अलकनन्दा और भद्रा—इन चार नामोंसे चारों दिशाओंमें प्रवाहित हुईं। अन्तमें वे नदियोंके स्वामी समुद्रमें मिल गयीं।

नौ वर्षोंमें भारतवर्ष कर्मक्षेत्र कहा गया है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्गभोग प्रदान करनेवाले हैं। ये वर्ष स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके शेष पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं।

जम्बूद्वीपके विभिन्न वर्षोंमें आदिपुरुष नारायणके विभिन्न स्वरूपोंकी उपासना—जम्बूद्वीपके सभी नौ वर्षोंमें आदिपुरुष नारायण लोकोंपर अनुग्रह करनेकी दृष्टिसे भगवतीकी आराधना करते हुए लोकोंसे पूजा स्वीकार करनेके निमित्त अपनी विभिन्न मूर्तियोंके रूपमें समाहित होकर वहाँ विराजमान रहते हैं।

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीके नेत्रसे उत्पन्न भवरूपमें अपनी भार्या भवानीके साथ निवास करते हैं। वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न अपने करोड़ों गणोंसे घिरे हुए देवेश्वर भगवान् शिव सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ तामस प्रकृतिवाली अपनी ही **संकर्षण** नामक मूर्तिका एकाग्रमनसे ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करते हुए आराधना करते हैं।

इसी प्रकार **भद्राश्ववर्ष**में भद्रश्रवा नामक धर्मपुत्र भगवान् वासुदेवकी हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध हयमूर्तिको अपने हृदयमें धारण करते हुए **हयग्रीवरूप** देवेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करते हैं और उनके गुणोंका संकीर्तन करते हैं।

हरिवर्षमें पापोंका नाश करनेवाले, योगसे युक्त आत्मावाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले **भगवान् नृसिंह** प्रतिष्ठित हैं। भगवान्‌के गुणतत्त्वोंको जाननेवाले परमभागवत असुर प्रह्लाद उनके दयामय रूपका दर्शन करते हुए भक्ति-भावसे युक्त होकर उनकी स्तुति करते हैं।

भक्त प्रह्लाद प्रार्थना करते हैं—हे प्रभो! अखिल जगत्‌का कल्याण हो, सभी प्राणी अपने मनमें एक-दूसरेके कल्याणका चिन्तन करें। घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धु-बान्धवोंमें हमारी आसक्ति न हो; यदि आसक्ति हो तो भगवान्‌के प्रियजनोंमें हो। भगवान्‌में जिस पुरुषकी निष्काम भक्ति होती है; उस पुरुषके हृदयमें धर्म, ज्ञान आदि सभी गुणोंसहित देवता निवास करते हैं। जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही सभी देहधारियोंकी आत्मा हैं। इस प्रकार दैत्यपति प्रह्लाद भगवान् नृसिंहकी भक्तिपूर्वक निरन्तर स्तुति करते रहते हैं।

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि **कामदेव**का रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं। इस वर्षकी अधीश्वरी समुद्रतनया लक्ष्मीजी निरन्तर उनकी उपासना करती हैं।

रमा कहती हैं—हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंके पूजनकी कामना करती है और अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं, किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और भोगके पश्चात् जब वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे दुःखी होना पड़ता है।

इन्द्रियसुख पानेका विचार रखनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव तथा दानव आदि मेरी (लक्ष्मीकी) प्राप्तिके लिये कठिन तप करते हैं, किंतु आपके चरणकमलोंकी उपासना करनेवालेके अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकता; क्योंकि मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है। इस प्रकार लक्ष्मीजी तथा अन्य प्रजापति आदि प्रमुख अधीश्वर भी कामनासिद्धिके लिये कामदेवरूपधारी श्रीहरिकी

स्तुति करते हैं।

रम्यकवर्षमें मनुजी भगवान् श्रीहरिकी देव-दानव-पूजित सर्वश्रेष्ठ **मत्स्यमूर्ति**की निरन्तर इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं।

मनुजी कहते हैं—हे अजन्मा प्रभो! जब ऊँची लहरोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्र विद्यमान था, तब आप औषधियों और लताओंकी निधिस्वरूप पृथ्वी तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें उत्साहपूर्वक क्रीडा कर रहे थे। जगत्के समस्त प्राणिसमुदायके नियन्ता आप भगवान् मत्स्यको नमस्कार है।

इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ मनुजी सभी संशयोंको समूल समाप्त कर देनेवाले मत्स्यरूपमें अवतीर्ण श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक उपासना करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित रहते हैं।

हिरण्मयवर्षमें भगवान् श्रीहरि **कूर्मरूप** धारण करके विराजमान हैं। यहाँ अर्यमाके द्वारा उन योगेश्वर भगवान्की पूजा तथा स्तुति की जाती है।

अर्यमा कहते हैं—हे प्रभो! अनेक रूपोंमें दिखायी देनेवाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका रूप है। एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, चर-अचर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र—इन नामोंसे विख्यात हैं। विद्वानोंने असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंवाले आपमें जिन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है; वह भी वस्तुतः आपका स्वरूप है। ऐसे सांख्यसिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है।

इस प्रकार अर्यमा हिरण्मयवर्षके अन्य अधीश्वरोंके साथ सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले कूर्मरूप भगवान् श्रीहरिकी स्तुति तथा उनका गुणानुवाद करते हैं।

उत्तरकुरुवर्षमें प्रेमरससे परिपूर्ण पृथ्वीदेवी दैत्योंका नाश करनेवाले **यज्ञपुरुष आदिवराहरूप** श्रीहरिकी उपासना करती हैं।

किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्के शासक आदिपुरुष **भगवान् श्रीसीतारामजी**की इस प्रकार स्तुति करते हैं—हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं। त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। न उत्तम कुलमें जन्म, न सुन्दरता, न वाक्-चातुर्य, न तो बुद्धि और न तो श्रेष्ठ योनि ही आपकी प्रसन्नताके कारण हो सकते हैं। यही कारण है कि हे भगवन्! आपने इन सभी गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है।

इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें वानरश्रेष्ठ हनुमान् भगवान् श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हुए उनके गुण गाते हैं।

भारतवर्ष और उसकी महिमा—भारतवर्षमें आदिपुरुष **श्रीनारायण** स्वयं विराजमान रहते हैं तथा देवर्षि नारद विभिन्न प्रकारसे उनकी स्तुति करते हैं। श्रीनारायण भारतवर्षकी अनेक नदियों तथा पर्वतोंका वर्णन करते हैं, इसके साथ ही देवर्षि नारदके समक्ष भारतवर्षकी महिमाका भी वर्णन करते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—भारतवर्षमें निवास करनेवाले सभी लोगोंको अनेक प्रकारके भोग सुलभ होते हैं, अपने वर्णधर्मके नियमोंका पालन करनेसे मोक्षतक निश्चित-रूपसे प्राप्त हो जाता है, इसी कारण स्वर्गके निवासी वेदज्ञ मुनिगण भारतवर्षकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं— अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें जन्म प्राप्त किया है, उनका कितना पुण्य है? उनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हमलोग भी लालायित रहते हैं।

हम सबने कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दान आदिके द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है, इससे क्या लाभ! स्वर्गके निवासियोंकी आयु एक कल्पकी होनेपर भी उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ता है, इसकी अपेक्षा भारतभूमिमें अल्प आयुवाला होकर भी जन्म लेना श्रेष्ठ है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष अपने इस मर्त्यशरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान्को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेते हैं। भारतवर्षमें मानवयोनि प्राप्त करके भी जो प्राणी आवागमनरूप बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न नहीं करते, वे व्याघ्रकी फाँसीसे मुक्त होकर भी फल आदिके लोभसे

जंगली पशुओंकी भाँति पुनः बन्धनमें पड़ जाते हैं।

अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ और पूर्तकर्मों (बावली, कुँआ, धर्मशाला आदि बनवाने)-से यदि कुछ भी पुण्य अवशिष्ट हो तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें भगवान्‌की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले प्राणियोंका परम कल्याण करते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—हे नारद! इस प्रकार स्वर्गको प्राप्त देवता, सिद्ध और महर्षिगण भारतवर्षकी उत्तम महिमाका गान करते हैं।

खगोलवर्णन—त्रिलोकीकी सीमाका निर्धारण करनेके लिये भगवान्‌ने लोकालोकपर्वतका निर्माण किया। इस पर्वतके एक ओरके लोक प्रकाशित होते हैं और दूसरी ओर अन्धकार बना रहता है।

पृथ्वी तथा स्वर्गके बीच ब्रह्माण्डके केन्द्रमें सूर्यकी स्थिति है। ये जीवसमूहोंकी आत्मा और नेत्रेन्द्रियके स्वामी हैं। ये अपने तेजसे तीनों लोकोंको प्रकाशित तथा प्रतप्त करते हैं। शीघ्र, सम तथा मन्द—ये इनकी तीन गतियाँ हैं। जब इनका रथ उत्तरायणमार्गपर रहता है तब ध्रुवद्वारा उसका कर्षण होनेसे उसकी गति मन्द हो जाती है, जिससे दिनकी अवधि बड़ी और रात्रि छोटी होती है। इसके विपरीत दक्षिणायनमार्गपर इनकी शीघ्र गति होती है, जिससे दिन छोटा और रात्रि बड़ी होती है। विषुवरेखापर इनकी सम गति रहती है।

सूर्यसे एक लाख योजनकी ऊँचाईपर चन्द्रमा स्थित हैं। चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है, उससे दो लाख योजन ऊपर शुक्रग्रह तथा शुक्रसे दो लाख योजन ऊपर बुध ग्रह है। बुधसे दो लाख योजन ऊपर मंगल तथा उससे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति है। बृहस्पतिसे दो लाख योजन ऊपर शनि तथा शनिसे ग्यारह लाख योजन ऊपर सप्तर्षिमण्डल है, ये सप्तर्षिगण ध्रुवलोककी प्रदक्षिणा करते हैं, जो उनसे तेरह लाख योजन ऊपर है। परमभागवत ध्रुव यहाँ विराजमान हैं। सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल है, इससे नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके लोक हैं। इन लोकोंसे नीचे यक्षों, राक्षसों, भूत, प्रेत और पिशाचोंके लोक हैं। इससे नीचे अन्तरिक्ष और अन्तरिक्षसे सौ योजन नीचे पृथ्वी है।

अधोलोकोंका वर्णन—पृथ्वीके नीचे सात विवर हैं, प्रत्येक विवर दस हजार योजन लम्बा, चौड़ा और गहरा है। इनके नाम क्रमशः अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल और पाताल हैं। दानवशिल्पी मयने इनमें अनेक भव्य प्रासादोंका निर्माण किया है, जिनमें महाबली दैत्य, नाग तथा दानव रहते हैं। सुतललोकमें भक्तश्रेष्ठ बलिका निवास है, जिनके द्वारपालके रूपमें स्वयं श्रीहरि विराजमान रहते हैं। पाताललोकसे तीस हजार योजन नीचे भगवान् अनन्त विराजमान हैं। यह गोलाकार समग्र भूमण्डल उनके सिरपर एक सरसोंके दानेकी भाँति सुशोभित होता है।

नरकों तथा नरक प्रदान करनेवाले विविध पापोंका वर्णन—त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें पृथ्वीसे नीचे तथा अतललोकसे ऊपर पितृलोक है, वहाँ पितृराज भगवान् यम अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं। वे मृतप्राणियोंके कर्मोंके अनुसार फलका विधान करते हैं तथा पापियोंको यातना भोगनेके लिये विभिन्न नरकोंमें भेजते हैं। ये नरक बड़े भयंकर हैं।

नारदजीके प्रश्न करनेपर श्रीनारायण विभिन्न नरकोंको प्राप्त करानेवाले पापोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

जो पुरुष दूसरेके धन, स्त्री और सन्तानका हरण करता है, वह भयानक 'तामिस्र' नामक नरकमें गिराया जाता है। जो व्यक्ति किसीके पतिको धोखा देकर उसकी स्त्रीके साथ भोग करता है, वह यमदूतोंद्वारा 'अन्धतामिस्र' नरकमें गिराया जाता है। यह शरीर ही मैं हूँ और यह धन, स्त्री-पुत्र आदि मेरे हैं—ऐसा सोचकर जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करता हुआ केवल अपने परिवारके भरण-पोषणमें प्रतिदिन लगा रहता है, वह स्वार्थलोलुप प्राणी 'रौरव' नरकमें गिरता है।

अत्यन्त क्रोधी, निर्दयी तथा मूर्ख पुरुष जो पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस पकाता है, यमराजके दूत उसे 'कुम्भीपाक' नरकमें डालते हैं।

जो अपने पिता, विप्र तथा ब्राह्मणसे द्रोह करता है,

वह 'कालसूत्र' नामक नरकमें डाला जाता है।

विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डके मार्गका आश्रय लेता है, उसे यमदूत 'असिपत्रवन' नरकमें डाल देते हैं।

जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मका सहारा लेकर प्रजाको दण्डित करता है, वह 'सूकरमुख' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो पुरुष खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह 'अन्धकूप' नामक नरकमें गिरता है।

जो कुछ भी धन आदि प्राप्त हो, उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञोंमें विभक्त किये बिना जो भोजन करता है, वह 'कृमिभोजन' नामक नरकमें गिरता है।

जो प्राणी किसीसे चोरी या बलात् रत्न छीन लेता है, उसे 'सन्दंश' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो पुरुष अथवा स्त्री अगम्यके साथ समागम करते हैं, यमदूत उन्हें 'तप्तसूर्मि' नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं।

जो घोर पापी मनुष्य जिस किसीके साथ व्यभिचार करता है, उसे 'शाल्मलि' नरकमें गिराया जाता है।

जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादा तोड़ते हैं, वे 'वैतरणी' नामक नरकमें गिरते हैं।

जो लोग सदाचारके नियमोंसे विमुख तथा शौचाचारसे रहित होकर शूद्राओंके पति बन जाते हैं तथा निर्लज्जतापूर्वक पशुवत् आचरण करते हैं, यमराजके दूत उन्हें विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे युक्त 'पूयोद' नामक नरकमें गिराते हैं।

जो द्विजातिगण कुत्ते और गधे आदिको पालते हैं तथा शास्त्रके विपरीत पशुओंका वध करते हैं, उन्हें यमदूत 'प्राणरोध' नामक नरकमें गिराकर बाणोंसे वेधते हैं।

जो दम्भी मनुष्य अभिमानपूर्वक यज्ञोंका आयोजनकर उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें 'विशसन' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो मूर्ख द्विज कामसे मोहित होकर सवर्ण भार्याको वीर्यपान कराता है, उसे 'लालाभक्ष' नामक नरकमें गिराया जाता है।

जो चोर अथवा राजपुरुष आग लगाते हैं, विष देते हैं, दुश्मनोंकी सम्पत्ति नष्ट करते हैं, गाँव तथा धनिकोंको लूटते हैं, वे 'सारमेयादन' नामक नरकमें गिरते हैं।

जो दान और धनके आदान-प्रदानमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं, वे 'अवीचि' नामक भयंकर नरकमें गिरते हैं।

जो ब्राह्मण अथवा अन्य कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय और वैश्य सोमपान करता है, उसका 'अयःपान' नामक नरकमें पतन होता है।

जो द्विज अपने घर पधारे हुए अतिथियोंको पापपूर्ण दृष्टिसे देखता है, उसे यमराजके सेवक 'पर्यावर्तन' नरकमें गिराते हैं।

श्रीनारायण कहते हैं—पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना देनेके लिये ये अनेक प्रकारके नरक हैं। इसी प्रकार और भी सैकड़ों तथा हजारों नरक हैं, उनमेंसे कुछ ही बताये गये हैं। बहुत-से नरकोंका वर्णन नहीं किया गया है। पापी मनुष्य अनेक यातनाओंसे भरे इन नरकोंमें जाते हैं और धर्मपरायणलोग सुखप्रद लोकोंमें जाते हैं।

देवीका पूजन तथा आराधन करनेवाले सदाचारी पुरुषको नरकमें नहीं जाना पड़ता। सुपूजित होनेपर भगवती जगदम्बा संसारसागरसे मनुष्यका उद्धार कर देती हैं।

देवीकी उपासनाके विविध प्रसंग—भगवती जगदम्बाका पूजन प्रत्येक नर-नारीको अवश्य करना चाहिये। उनके पूजनमें प्रत्येक तिथि, प्रत्येक वार, प्रत्येक नक्षत्र, प्रत्येक योग और प्रत्येक करण प्रशस्त है अर्थात् किसी भी क्षण उनका ध्यान-पूजन किया जा सकता है। तृतीया तिथि भगवतीको विशेष प्रिय होनेसे प्रत्येक माहमें उस तिथिको प्रशस्त नैवेद्यसे उनकी महुएके वृक्षमें भावना करके पूजा करनी चाहिये। उनके पूजनसे मनुष्यकी सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं, वह पापरहित निर्मल बुद्धि प्राप्त कर लेता है तथा उसे नरक-सम्बन्धी किंचिन्मात्र भी भय नहीं होता।

नवम स्कन्ध

नवम स्कन्धका प्रारम्भ मूलप्रकृति और उनके विभिन्न अंशोंके वर्णनसे होता है।

नारदजीके प्रश्न करनेपर कि 'मूलप्रकृतिका स्वरूप

क्या है, उनका लक्षण क्या है तथा वे किस प्रकार प्रकट हुईं?' श्रीनारायण कहते हैं—हे वत्स! देवी प्रकृतिके सम्पूर्ण लक्षण कौन बता सकता है; फिर भी धर्मराजके मुखसे जो मैंने सुना है, उसे यत्किंचित्रूपसे बताता हूँ।

महामायासे युक्त परमेश्वर सृष्टिके निमित्त अर्धनारीश्वर बन गये, जिनका दक्षिणार्ध भाग पुरुष और वामार्ध भाग प्रकृति कहा जाता है। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति अभिन्नरूपसे स्थित है, वैसे ही परमात्मा और प्रकृतिरूपा शक्ति भी अभिन्न है। इसीलिये योगीजन स्त्री और पुरुषका भेद नहीं करते और सभी कुछ ब्रह्म है—ऐसा निरन्तर चिन्तन करते हैं। भगवती मूलप्रकृति सृष्टि करनेकी कामनासे भक्तोंपर अनुग्रह करनेहेतु पाँच रूपोंमें अवतरित हुईं।

गणेशमाता **दुर्गा** शिवप्रिया तथा शिवरूपा हैं, जो पूर्णब्रह्मस्वरूपा हैं। शुद्ध सत्त्वरूपा **महालक्ष्मी** धनधान्यकी अधिष्ठात्री तथा आजीविकास्वरूपिणी हैं, वे वैकुण्ठमें अपने स्वामी विष्णुकी सेवामें तत्पर रहती हैं। वे स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंमें राज्यलक्ष्मी, गृहस्थ मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी और सभी प्राणियों तथा पदार्थोंमें शोभारूपमें विराजमान रहती हैं। **भगवती सरस्वती** परमात्माकी वाणी, बुद्धि, विद्या एवं ज्ञानकी अधिष्ठात्री हैं तथा सभी विद्याओंकी विग्रहरूपा हैं; वे देवी मनुष्योंको बुद्धि, कवित्वशक्ति, मेधा, प्रतिभा और स्मृति प्रदान करती हैं। **भगवती सावित्री** चारों वर्णों, वेदांगों, छन्दों, सन्ध्यावन्दनके मन्त्रों एवं समस्त तन्त्रोंकी जननी हैं। पंचप्राणोंकी अधिष्ठात्री, पंचप्राणस्वरूपा तथा सभी शक्तियोंमें परम सुन्दर **भगवती राधा** परमात्मप्रभु श्रीकृष्णकी रासलीलाकी अधिष्ठात्री हैं। जिन्होंने व्रजमण्डलमें वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया तथा ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भी जो अदृष्ट थीं, वे ही श्रीराधा भारतवर्षमें सर्वसाधारणको दृष्टिगत हुईं।

प्रत्येक भुवनमें सभी देवियाँ तथा नारियाँ इन्हीं प्रकृतिदेवीके अंश, कला तथा कलांशसे उत्पन्न हैं।

भगवतीके पूर्णावताररूपमें प्रधान अंशस्वरूपा देवियोंका वर्णन—लोकपावनी **गंगा** भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं, वे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे प्रकट हुईं हैं तथा सनातनरूपसे ब्रह्मद्रव होकर विराजती हैं। विष्णुवल्लभा **तुलसी** भी भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं। वे सती सदा भगवान् विष्णुके चरणपर विराजती हैं और उनकी आभूषणरूपा हैं। कश्यपकी पुत्री **मनसादेवी** भी शक्तिके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं, वे भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या हैं तथा अत्यन्त ज्ञानविशारद हैं। सभी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा जो मातृकाओंमें पूज्यतम देवसेना हैं, वे ही **षष्ठीदेवी**के नामसे कही गयी हैं। वे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करनेवाली तथा तीनों लोकोंकी जननी हैं। वे मूलप्रकृतिकी षष्ठांशस्वरूपा होनेके कारण षष्ठीदेवी कही जाती हैं। जल, स्थल, आकाश और गृहमें भी बालकोंके कल्याणमें ये सदा निरत रहती हैं। **मंगलचण्डिका** देवी भी मूलप्रकृतिकी अंशस्वरूपा हैं। वे प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं और सभी प्रकारके मंगल प्रदान करनेवाली हैं। उत्पत्तिके समय वे मंगलरूपा तथा संहारके समय कोपरूपिणी हैं। पराशक्तिके प्रधान अंशस्वरूपसे कमललोचना **भगवती काली**का प्राकट्य हुआ है, वे शुम्भ-निशुम्भके साथ युद्धकालमें जगदम्बा दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुईं। ये धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—सबकुछ देनेमें समर्थ हैं। भगवती प्रकृतिके प्रधान अंशस्वरूपसे **भगवती वसुन्धरा** प्रकट हुईं हैं। इनके बिना सम्पूर्ण चराचर जगत् निराधार हो जाता है।

तदनन्तर श्रीनारायण प्रकृतिकी कलाओं तथा देवताओंकी भार्याओंका वर्णन करते हैं। स्वाहा अग्निदेवकी भार्या हैं। यज्ञदेवकी पत्नी दीक्षा तथा दक्षिणा हैं। पितृदेवोंकी पत्नी स्वधादेवी हैं। वायुदेवकी पत्नी स्वस्तिदेवी, गणपतिकी पत्नी पुष्टिदेवी, भगवान् अनन्तदेवकी पत्नी तुष्टिदेवी, सत्यदेवकी पत्नी सतीदेवी, मोहकी पत्नी दयादेवी और पुण्यदेवकी पत्नी प्रतिष्ठादेवी हैं। उद्योगदेवकी पत्नी क्रियादेवी हैं, जो सभीके द्वारा पूजित तथा मान्य हैं। अधर्मकी पत्नी मिथ्यादेवी हैं, जिन्हें सभी धूर्तजन पूजते हैं। सत्ययुगमें ये मिथ्यादेवी तिरोहित रहती हैं, त्रेतायुगमें सूक्ष्मरूपसे रहती हैं, द्वापरमें आधे शरीरवाली होकर रहती हैं, किंतु कलियुगमें ये सर्वत्र व्याप्त रहती हैं और अपने भाई कपटके साथ घर-घर घूमती रहती हैं। सुशीलकी दो

पत्नियाँ हैं—शान्ति और लज्जा। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—बुद्धि, मेधा और धृति। रुद्रकी पत्नी कालाग्नि हैं। कालकी तीन पत्नियाँ हैं—सन्ध्या, रात्रि और दिवा। लोभकी दो पत्नियाँ हैं—क्षुधा और पिपासा।

कालकी दो पुत्रियाँ मृत्यु और जरा हैं, जो ज्वरकी पत्नियाँ हैं। निद्राकी एक पुत्री तन्द्रा तथा दूसरी प्रीति है, ये दोनों सुखकी पत्नियाँ हैं। वैराग्यकी दो पत्नियाँ—श्रद्धा और भक्ति सभीकी पूज्या हैं।

प्रकृतिदेवीकी अन्य बहुत-सी कलाएँ हैं, जिनका वर्णन यहाँ दिया गया है। ग्रामदेवियाँ तथा नारियाँ सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इसीलिये किसी नारीके अपमानसे प्रकृतिका अपमान माना जाता है। जिसने पति-पुत्रवती सुवासिनी ब्राह्मणीका पूजन कर लिया तथा जिसने आठ वर्षकी कन्याका पूजन कर लिया, उसने मानो स्वयं प्रकृतिदेवीकी पूजा कर ली। भारतवर्षमें प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, वे सभी तथा प्रत्येक ग्राम और नगरमें जो ग्रामदेवियाँ हैं, वे सभी पूजित हैं।

भगवान् श्रीकृष्णसे देव-देवियोंका प्राकट्य— इसके बाद दूसरे अध्यायमें परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन प्राप्त होता है। भगवान् श्रीकृष्ण ही सर्वप्रपंचके स्रष्टा तथा सृष्टिके एकमात्र बीजस्वरूप हैं। वे स्वेच्छामय प्रभु सृष्टिकी इच्छासे वामभागसे स्त्री और दक्षिणांशसे पुरुषरूपमें विभक्त हो गये। सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए उन देवीके शरीरसे जो स्वेद उत्पन्न हुआ, उससे विश्वगोलकका निर्माण हुआ और उस स्वेदरूप जलके अधिष्ठाता वरुणदेव तथा उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं। उन देवीके निःश्वाससे वायुका सृजन हुआ और उसके अधिष्ठाता वायुदेव एवं उनकी पत्नी तथा पुत्र उत्पन्न हुए। उन देवीके जिह्वाग्रसे सरस्वतीदेवी प्रकट हुईं तथा उनके वामांशसे कमला और दक्षिणांशसे राधिका प्रकट हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्ण भी द्विधारूप हो गये। उनके वामांशसे जो चतुर्भुजरूप प्रकट हुआ, वे ही नारायण विष्णु हैं, उन्हें उन्होंने कमला और सरस्वतीको पत्नीरूपमें प्रदान किया। राधिका द्विभुज भगवान् श्रीकृष्णकी हृदयेश्वरी बनीं। भगवान्‌के नाभिकमलसे सपत्नीक ब्रह्माजी और वाम अर्धांशसे महादेव प्रकट हुए।

महाविराट्‌की उत्पत्ति— परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे एक बालककी उत्पत्ति हुई, जिसे उन देवीने ब्रह्माण्डगोलकके जलमें छोड़ दिया। वह बालक ब्रह्माजीके आयुपर्यन्त जलमें ही पड़ा रहा। तत्पश्चात् वह महाविराट् और क्षुद्रविराट् रूपमें—दो भागोंमें विभक्त हो गया। शतकोटिसूर्योंकी प्रभावाले उस महाविराट्‌के प्रत्येक रोमकूपमें अखिल ब्रह्माण्ड स्थित थे। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विद्यमान थे। महाविराट्‌के अंशसे ही क्षुद्रविराट् प्रकट हुए, वे श्यामवर्ण पीताम्बरधारी जनार्दन जलकी शय्यापर शयन करते हैं।

गोलोकमें गंगाका प्रादुर्भाव— एक समय गोलोकमें कार्तिक पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। उस समय ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर भगवान् शंकर मधुर गीत गाने लगे। इस मधुर गानको सुनकर सभी देवता सम्मोहित-से हो गये और भगवान् श्रीकृष्ण तथा राधाजी तो विगलित होकर द्रवरूप ही हो गये और वही ब्रह्मद्रव भगवती गंगाके रूपमें जाना गया। वे ही भगवती गंगा इक्ष्वाकुवंशी राजा भगीरथकी तपस्यासे उनके साठ हजार पूर्वजोंको तारनेके लिये पृथ्वीपर आयीं।

लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना— लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगा—तीनों भगवान् विष्णुकी भार्या हैं। एक समयकी बात है, भगवती गंगा प्रीतियुक्त मधुर मुसकानके साथ भगवान्‌की ओर देख रही थीं, यह देखकर सरस्वती कुपित हो गयीं। भगवती लक्ष्मीने उन्हें शान्त करनेका प्रयास किया, परंतु क्रुद्ध सरस्वतीने गंगा और लक्ष्मी दोनोंको नदी बनकर मृत्युलोकमें जानेका शाप दे दिया। निर्दोष लक्ष्मीको ईर्ष्यावश सरस्वतीने शाप दे दिया है—यह देखकर गंगाने भी सरस्वतीको नदी होकर मर्त्यलोकमें जानेका शाप दे दिया। भगवान् श्रीहरिने भी उन सबके शापोंका अनुमोदन करते हुए उन्हें पाँच हजार वर्षतक भारतवर्षमें रहनेका आदेश दिया। इसीलिये लक्ष्मीजी 'पद्मा', गंगाजी 'भागीरथी' और सरस्वतीजी 'सरस्वतीनदी' के रूपमें भारतवर्षमें आयीं।

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग— पृथ्वीकी उत्पत्तिके

कई प्रकार बताये गये हैं, उनमें मुख्य कथा इस प्रकार है—

महाविराट् पुरुष अनन्त कालसे जलमें स्थित रहते हैं, यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वांगव्यापी शाश्वत मन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वह मन उस महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूपोंमें प्रविष्ट हो गया। हे मुने! बहुत समयके पश्चात् उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी प्रकट हुई। उस महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमें सर्वदा स्थित रहनेवाली यह पृथ्वी एक-एक करके जलसहित बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है। यह पृथ्वी सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित हो जाती है और प्रलयके समय अदृश्य होकर जलके भीतर स्थित रहती है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी पर्वतों तथा वनोंसे सम्पन्न रहती है, सात समुद्रोंसे घिरी रहती है और सात द्वीपोंसे युक्त रहती है।

इसके अनन्तर पृथ्वीकी पूजा, ध्यान, स्तवन और उनका मूल मन्त्र आदि यहाँ प्रस्तुत किया गया है। पृथ्वीका मूल मन्त्र है—**'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा।'** भगवान् विष्णुने प्राचीन कालमें इसी मन्त्रसे पृथ्वीका पूजन किया था।

भगवती तुलसीका कथा-प्रसंग—भगवती तुलसी मूलप्रकृतिकी ही प्रधान अंश हैं। प्रारम्भमें वे गोलोकमें तुलसी नामकी गोपी थीं। भगवान्के चरणोंमें उनका अतिशय प्रेम था। रासलीलामें उनकी श्रीकृष्णके प्रति अनुरक्ति देखकर राधाजीने कुपित होकर उन्हें मानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। इससे वे भारतवर्षमें राजा धर्मध्वजकी पुत्री हुईं। गोलोकमें ही सुदामा नामका एक गोप भी था, जो भगवान् श्रीकृष्णका मुख्य पार्षद था, उसे भी किसी कारणसे क्रुद्ध होकर राधाजीने दानवयोनिमें जन्म लेनेका शाप दे दिया। उनके शापसे अगले जन्ममें वह सुदामा शंखचूड़ दानव बना। ब्रह्माजीकी प्रेरणासे भगवती तुलसीका शंखचूड़ दानवसे गान्धर्वविवाह सम्पन्न हुआ। ब्रह्माजीका वरदान प्राप्तकर उस दानवराजने अपने पराक्रमद्वारा देवताओंको स्वर्गसे निष्कासितकर उसपर अपना अधिकार कर लिया। देवतागण त्रस्त होकर भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। भगवान् विष्णुने देवताओंको शंखचूड़के जन्म एवं वरदान आदिकी सब कथा सुनायी तथा उसकी मृत्युका उपाय बताते हुए उसे मारनेके लिये भगवान् शंकरको एक त्रिशूल प्रदान किया तथा यह भी बताया कि तुलसीका सतीत्व नष्ट होनेपर ही उसकी मृत्यु सम्भव हो सकेगी। इसका भी आश्वासन भगवान् विष्णुने देवताओंको दिया। अपने कथनानुसार भगवान् विष्णुने छलपूर्वक तुलसीका सतीत्व नष्ट किया, उधर भगवान् शंकरने त्रिशूलद्वारा शंखचूड़का वध कर डाला। पतिव्रता तुलसीको भगवान्के द्वारा छलपूर्वक अपना सतीत्व नष्ट करनेकी जानकारी हुई तो अत्यन्त शोकसन्तप्त होकर उसने भगवान्को पाषाण होनेका शाप दे दिया।

तुलसीकी कारुणिक अवस्था देखकर उसे समझाते हुए भगवान्ने कहा—हे भद्रे! तुमने भारतमें रहकर मेरे लिये बहुत समयतक तपस्या की है और साथ ही इस शंखचूड़ने भी उस समय तुम्हारे लिये दीर्घ समयतक तपस्या की थी। तुम्हें पत्नीरूपमें प्राप्त करनेके बाद अन्तमें वह गोलोक चला गया। अब मैं तुम्हें तुम्हारी तपस्याका फल प्रदान करना उचित समझता हूँ। तुम्हारा यह शरीर गण्डकीनदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। तुम्हारा केशसमूह पुण्यवृक्षके रूपमें प्रकट होगा, जो तुलसी नामसे प्रसिद्ध होगा। देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले समस्त पुष्पों और पत्रोंमें तुलसीकी प्रधानता होगी। सभी लोकोंमें निरन्तर तुम मेरे सान्निध्यमें रहोगी।

मैं भी तुम्हारे शापसे पाषाण बनकर भारतवर्षमें गण्डकीनदीके तटके समीप निवास करूँगा।* चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शालग्रामशिलाके पूजनसे निश्चितरूपसे सुलभ हो जाता है। उसी समय तुलसीके शरीरसे गण्डकीनदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम बन गये।

इस अध्यायमें श्रीनारायणने नारदसे तुलसी एवं शालग्रामशिलाकी विशेष महिमाका समारोहपूर्वक वर्णन करते हुए भगवती तुलसीके पूजनका विधि-विधान तथा

* आज भी नेपालमें मुक्तिनाथधामके निकट गण्डकीनदीके तटपर शिलारूपमें शालग्राम प्राप्त होते हैं।

स्तोत्रादिका वर्णन प्रस्तुत किया है।

भगवती सावित्रीकी उपासना—नारदजीने प्रश्न किया—ऐसा सुना गया है कि सावित्री वेदोंकी जननी हैं। जगत्‌में सर्वप्रथम इनकी पूजा किसने की तथा बादमें किन लोगोंने इनकी पूजा की? श्रीनारायणने कहा—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीकी पूजा की, इसके बाद वेदोंने, तदनन्तर विद्वज्जनोंने इनका पूजन किया। तत्पश्चात् भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनका पूजन किया। इसके बाद चारों वर्णोंके लोग इनकी पूजा करने लगे।

नारदजीके प्रश्न करनेपर श्रीनारायणने कहा—मद्रदेशमें अश्वपति नामके एक महान् राजा हुए। उनकी मालती नामक महारानी थीं, उन्हें कोई सन्तान नहीं थी। वे पुष्करक्षेत्रमें जाकर तपस्या करने लगे। संयोगवश वहाँ पराशरमुनि आ गये। उन्होंने राजाको गायत्रीमन्त्रकी महिमा बताते हुए दस लाख जप करनेकी प्रेरणा की और कहा कि इससे आपके तीन जन्मोंके पापोंका नाश हो जायगा और आप भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन प्राप्त करेंगे। इसके साथ ही उन्होंने त्रिकाल-सन्ध्या करनेकी प्रेरणा दी और कहा कि सन्ध्या न करनेवाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य हो जाता है। वह जो भी सत्कर्म करता है, उसके फलका अधिकारी नहीं रह जाता। जो प्रातः एवं सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्रके समान है।

पराशरमुनिने राजा अश्वपतिको कई प्रकारसे उपदेश प्रदान करते हुए भगवती सावित्रीका पूजा-विधान, स्तोत्र तथा मन्त्र बताया। इसीके अनुसार आराधना करनेपर राजा अश्वपतिको भगवती सावित्रीका दर्शन हुआ तथा उनसे मनोभिलषित वर भी प्राप्त हुआ। सावित्रीकी कृपासे राजाकी पत्नीको कन्याकी प्राप्ति हुई, जिसका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री रखा। युवावस्था प्राप्त होनेपर उसने अनेक गुणोंसे युक्त सत्यवान्‌का पतिरूपमें वरण किया। एक वर्षके अनन्तर किसी वृक्षसे गिर जानेके कारण सत्यवान्‌के प्राण निकल गये। उसके सूक्ष्मशरीरको जब यमराज ले जाने लगे तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी। यहाँ सावित्रीसे धर्मराजकी वार्ता होती है। धर्मराज सावित्रीसे कहते हैं कि यदि तुम अपने पतिके साथ जानेकी इच्छा रखती हो तो पहले इस शरीरका त्याग करो। विनाशशील मनुष्य अपने इस नश्वर तथा पांचभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोक कभी नहीं जा सकता। प्राणी कर्मके अनुसार ही जन्म प्राप्त करता है और कर्मानुसार ही मृत्युको भी प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय और शोक भी कर्मसे ही मिलते रहते हैं। अपने कर्मानुसार ही प्राणीको जंगम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, वृक्ष, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, दैत्य-दानव आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। यमराजकी बात सुनकर पतिव्रता सावित्रीने परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की तथा कर्म आदिके सम्बन्धमें बहुत सारे प्रश्न पूछे। सावित्रीकी बुद्धि और जिज्ञासाको देखकर यमराजने अत्यधिक प्रसन्न होकर सावित्रीको सत्यवान्‌की सौभाग्यवती प्रियाके रूपमें सुशोभित होनेका वर प्रदान किया। इसके साथ ही दूसरा अभीष्ट वर माँगनेके लिये सावित्रीसे कहा। सावित्रीने यमराजसे निम्नलिखित वर माँगे और कहा—हे महाभाग! सत्यवान्‌से मुझे सौ पुत्र प्राप्त हों, मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे श्वसुरको नेत्रज्योति मिल जाय तथा उन्हें राज्य भी प्राप्त हो जाय। अन्तमें एक लाख वर्ष बीतनेके पश्चात् मैं सत्यवान्‌के साथ भगवान् श्रीहरिके धाम चली जाऊँ। जीवके कर्मोंका फल तथा संसारसे उसके उद्धारका उपाय सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है, अतः वह सब मुझे बतानेकी कृपा करें। धर्मराज बोले कि हे महासाध्वी! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। इसके अनन्तर कर्मफलके विषयमें बताते हुए धर्मराजने कहा—भारतवर्षमें समस्त योनियोंमें मानवयोनि परम दुर्लभ है। पुण्यभूमि भारतमें ही शुभ और अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। दूसरी जगह लोग केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। शुभ कर्मोंके प्रभावसे प्राणी स्वर्ग आदि लोकोंमें जाता है तथा अशुभ कर्मोंके कारण वह विभिन्न नरकोंमें पड़ता है।

हे साध्वी! सकाम तथा निष्काम भावसे साधक

दो प्रकारके होते हैं। सकाम साधक वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। निष्काम भक्तोंको पुनः इस लोकमें नहीं आना पड़ता।

चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें संलग्न रहकर ही शुभ कर्मोंका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपने कर्तव्यकर्मोंसे विमुख हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं और अपने कर्मोंका फल भोगते हैं। वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतः चारों वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्मोंका पालन करना चाहिये।

दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले कर्म—इसके अनन्तर धर्मराज दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंके अन्तर्गत दानका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति ब्राह्मणको अन्न, आसन, गो, वस्त्र, छत्र, वस्त्रसहित शालग्राम, सज्जा, दीपक, हाथी, घोड़ा, शिबिका, वाटिका, चँवर, पंखा, धान्य, रत्न, तिल, फल, भवन, भूमि आदिका दान देता है। वह इस पुण्यकर्मसे दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति भगवती जगदम्बा, भगवान् विष्णु, भगवान् शंकर, भगवान् श्रीराम अथवा भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा-उपासना करता है, उससे उसे उनके दिव्य लोकोंकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार जो व्यक्ति प्रतिदिन गंगास्नान करता है; रामनवमी, जन्माष्टमी, शिवरात्रि, एकादशी एवं रविवार आदिका व्रत करता है तथा प्रतिदिन पार्थिव लिंग बनाकर शिवकी पूजा करता है। शालग्रामशिलाका पूजन तथा उसके जलका पान करता है, वह दिव्य लोकोंमें जानेका अधिकारी होता है।

अशुभ कर्मोंका फल—इसके बाद यमराज विभिन्न प्रकारके पापोंका तथा नरकोंका वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति अपने बन्धु-बान्धवोंको अपमानपूर्वक कटु वचन कहता है, घर आये भूखे-प्यासे व्यक्तिको भोजन नहीं कराता, जो भगवती जगदम्बा, भगवान् विष्णु, शिव तथा वेद-पुराणोंकी निन्दा करता है, जो किसीकी वृत्तिको छीनता है, जो माता-पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, पुत्री तथा अनाथका भरण-पोषण नहीं करता, जो अतिथिको देखकर उसके प्रति उपेक्षाभावसे दृष्टिको वक्र कर लेता है, जो परपुरुष अथवा परस्त्रीगमन करता है, जो सहृदयके साथ शठताका व्यवहार करता है, जो किसी विकलांगको देखकर हँसता है और उसकी निन्दा करता है, जो लोभके वशीभूत होकर अपने भरण-पोषणके लिये जीवोंकी हत्या करता है, जो अपनी कन्याको धनके लोभसे बेच देता है, जो व्रतों, उपवासों और श्राद्धोंके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, जो दयाहीन मनुष्य विषके द्वारा किसी प्राणीकी हत्या करता है, जो किसी दूसरेकी पैतृक सम्पत्तिका हरण तथा दूसरेके सामानकी चोरी करता है एवं इस प्रकारके और भी कई पाप करता है तो इन पापोंको करनेवाला व्यक्ति विभिन्न नरकोंमें पड़कर दारुण कष्ट भोगता है। यहाँ धर्मराजने छियासी नरककुण्डों तथा उनके लक्षणोंका वर्णन करते हुए उनके नाम भी गिनाये हैं। अन्तमें धर्मराज सावित्रीको भगवतीकी भक्ति प्रदान करते हैं और उनकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—स्वयं परमपुरुष ही प्रकृति हैं। वे दोनों परस्पर उसी प्रकार अभिन्न हैं, जैसे—अग्निसे उसकी दाहिका शक्ति अभिन्न है। वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति महामाया हैं, वे निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये अनेक रूप धारण करती हैं। भगवती दुर्गाकी भावना करके जो स्त्री भक्तिपूर्वक उनका पूजन करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें ऐश्वर्यमयी भक्तिके परमपदको प्राप्त होती है।

ऐसा कहकर धर्मराज अपने लोकको चले गये और अपने पतिको साथ लेकर सावित्री भी अपने घर चली गयी। पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुख भोगकर वह पतिव्रता सावित्री अपने पतिके साथ देवीलोक चली गयी।

सविताकी अधिष्ठात्री देवी होने अथवा सूर्यके ब्रह्मप्रतिपादक गायत्रीमन्त्रकी अधिदेवता होने तथा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे ये जगत्में सावित्री नामसे प्रसिद्ध हैं।

भगवती लक्ष्मीके प्राकट्यकी कथा तथा दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना—इसके अनन्तर भगवती राधाके दाहिने अंशसे लक्ष्मीका प्राकट्य

तथा भगवान् कृष्णके दाहिने अंशसे भगवान् विष्णुका प्राकट्य होता है।

प्राचीन कालकी बात है कि तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त होकर वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जा रहे थे। उन्होंने मार्गमें दुर्वासामुनिको देखकर उन्हें प्रणाम किया। दुर्वासाने प्रसन्न होकर इन्द्रको आशीर्वाद दिया तथा भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया। मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके ऊपर फेंक दिया। यह देखकर दुर्वासामुनि अत्यन्त कुपित हो गये और उन्होंने इन्द्रको शाप दे दिया कि हे इन्द्र! तुमने अभिमानवश इस पारिजात-पुष्पको हाथीपर डाल दिया। अतः लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ। मुनि दुर्वासाके शापसे इन्द्र श्रीहीन हो गये और अमरावतीपर दैत्योंका शासन हो गया। देवतागण गुरु बृहस्पति और ब्रह्माजीको साथ लेकर भगवान् विष्णुके पास गये और उनसे प्रार्थना की। भगवान् विष्णुने कहा—जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहती, शिवकी पूजा नहीं होती, अतिथियोंको भोजन नहीं कराया जाता, जो साधक व्रत-उपवास नहीं करते, सन्ध्या-वन्दन नहीं करते, सदा अपवित्र रहते हैं, जो परमात्म-प्रभुकी भक्तिसे रहित हैं, जो दूसरोंकी निन्दा करता है, द्वेषभाव रखता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव नहीं रखता, वहाँसे भगवती लक्ष्मी दूर चली जाती हैं।

यह कहकर भगवान् विष्णुने भगवती लक्ष्मीको क्षीरसागरके यहाँ जन्म लेनेकी आज्ञा प्रदान की तथा देवताओंको समुद्रमन्थन करनेका सुझाव दिया। भगवान्के आज्ञानुसार समस्त देवताओंने राक्षसोंके साथ मन्दराचल-पर्वतको मथानी, कच्छपको आधार और शेषनागको मथानीकी रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया, जिसके फलस्वरूप अमृत, नानाविध रत्न आदि अनेक वस्तुएँ प्राप्त हुईं। साथ ही समुद्रसे भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ, जिन्होंने क्षीरसागरमें शयन करनेवाले सर्वेश्वर विष्णुको वरमाला समर्पित कर दी। तत्पश्चात् ब्रह्मा, शिव तथा देवताओंके द्वारा पूजा तथा स्तुति किये जानेपर देवी लक्ष्मीने देवताओंके भवनपर अपनी कृपादृष्टि डाली। फलस्वरूप वे देवगण मुनि दुर्वासाके शापसे मुक्त हो गये तथा सभी अपने-अपने लोकोंको चले गये।

भगवती स्वाहाका उपाख्यान—नारदजी कहते हैं—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवनके समय स्वाहादेवी, श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी तथा यज्ञादि कर्मोंमें दक्षिणादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं।

सृष्टिके प्रारम्भमें देवतागण ब्रह्माजीके पास आये तथा अपने आहारके लिये प्रार्थना की। उन दिनों ब्राह्मणोंद्वारा अग्निमें जो हवि प्रदान की जाती थी, उसे देवता प्राप्त नहीं कर पाते थे। इस प्रकार वे आहारसे वंचित रह जाते थे। देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने श्रीकृष्णके आदेशानुसार मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना की। जिसके फलस्वरूप स्वाहादेवी मूलप्रकृतिकी कलासे प्रकट हो गयीं। ब्रह्माजीने उनसे प्रार्थना की कि आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। स्वाहादेवीने इसे स्वीकार नहीं किया तथा वे श्रीकृष्णकी उपासनामें संलग्न हो गयीं। स्वाहादेवीकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि वराहकल्पमें तुम मेरी भार्या बनोगी, इस समय तुम दाहिकाशक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। इस प्रकार स्वाहादेवीका पाणिग्रहण अग्निसे हो गया, तभीसे अग्निमें हवन करनेपर मन्त्रके अन्तमें 'स्वाहा' शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करनेपर देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं और वे सन्तुष्ट हो गये।

भगवती स्वधाका उपाख्यान—सृष्टिके आरम्भमें जगद्विधाता ब्रह्माने पितरोंके लिये श्राद्ध-तर्पण आदिका विधान किया, परंतु किसी व्यक्तिद्वारा जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण किया जाता था, उसे पितृगण प्राप्त नहीं कर पाते थे; अतः क्षुधासे व्याकुल सभी पितरोंने ब्रह्माजीकी सभामें जाकर उनको सारी बात बतायी। तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। मूल-प्रकृतिकी अंशरूपा स्वधा नामक ये देवी पितरोंकी पत्नीस्वरूपा और कमलके समान सुन्दर थीं। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको

सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया तथा द्विजोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि पितरोंको कव्यपदार्थ अर्पण करते समय स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। तभीसे द्विजगण उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे।

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है।

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान—अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये। देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्य-लक्ष्मीको प्रकट किया, जिसका नाम उन्होंने दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया, जिससे दक्षिणासे युक्त यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे, ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है। जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है।

भगवती षष्ठीका उपाख्यान—भगवती षष्ठी मूल-प्रकृतिके छठे अंशसे आविर्भूत हैं, ये बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ये स्वामी कार्तिकेयकी भार्या हैं, और देवसेनाके नामसे विख्यात हैं। ये बालकोंको आयु प्रदान करती हैं और उनका भरण, पोषण तथा रक्षण भी करती हैं। ये सिद्धयोगिनी हैं, स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रतके मृतपुत्रको इन्होंने जीवनदान दिया तथा तभीसे सर्वत्र इनकी पूजा होने लगी। यह कथा नवमस्कन्धके ४६वें अध्यायमें विस्तारपूर्वक लिखी गयी है।

भगवती मंगलचण्डीका उपाख्यान—भगवती मंगलचण्डी मूलप्रकृति दुर्गाका ही एक रूप हैं, ये स्त्रियोंकी अभीष्ट देवता हैं। त्रिपुरासुरके वधके लिये भगवान् शिवने इन्हींका आराधन किया और इन भगवतीने शक्तिस्वरूपा होकर उनकी सहायता की थी, जिससे भगवान् शिव उस दैत्यका वध कर सके। तदनन्तर स्वयं भगवान् शिवने उनका पूजन किया था।

भगवती मनसाका उपाख्यान—भगवती मनसा महर्षि कश्यपकी मानसी कन्या हैं। वे मनसे ध्यान करनेपर प्रकाशित होती हैं, इसीलिये मनसादेवी नामसे विख्यात हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्होंने नागोंकी प्राणरक्षा की थी, अत: ये नागेश्वरी कही जाती हैं। इन्होंने भगवान् शिवसे सिद्धयोग प्राप्त किया था, अत: ये सिद्धयोगिनीके नामसे जानी जाती हैं। मुनीश्वर आस्तीककी माता होनेके कारण ये आस्तीकमाता नामसे जगत्‌में विख्यात हैं। ये महात्मा जरत्कारुकी प्रियपत्नी थीं, इसलिये ये जरत्कारुप्रिया कहलाती हैं। इनकी रोचक कथा विस्तारपूर्वक ४८वें अध्यायमें प्रस्तुत की गयी है।

आदि गौ सुरभिका आख्यान—देवी सुरभि गौओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इनका प्राकट्य परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णकी दुग्धपानकी इच्छापूर्तिके लिये उनके ही वामभागसे हुआ था। इनका दूध जन्म-मृत्यु तथा बुढ़ापेको हरनेवाला, अमृतसे बढ़कर था। पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभिकी पूजा की थी, तभीसे तीनों लोकोंमें देवी सुरभिकी पूजाका प्रचार हो गया।

भगवती राधा तथा भगवती दुर्गाका उपाख्यान—जगत्‌की उत्पत्तिके समय मूलप्रकृतिस्वरूपिणी ज्ञानमयी भगवतीसे प्राण तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवियोंके रूपमें दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी तथा श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे शक्तियाँ ही सम्पूर्ण जीवोंको सदा नियन्त्रित तथा प्रेरित करती हैं। विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं शक्तियोंके अधीन है। जबतक उन दोनों शक्तियोंकी कृपा नहीं होती, तबतक मोक्ष दुर्लभ रहता है। अतएव उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये उनकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये।

भगवती श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सदा

प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीराधिकाका ध्यान करते रहते हैं। राधिकाकी पूजाके बिना श्रीकृष्णकी पूजाका अधिकार नहीं है। अतः सभीको भगवती राधाका पूजन अवश्य करना चाहिये।

भगवती दुर्गा समस्त प्राणियोंकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा अन्तर्यामीस्वरूपिणी हैं। ये घोर संकटसे रक्षा करती हैं। अतः जगत्‌में दुर्गा नामसे विख्यात हैं। ये सभी वैष्णवों तथा शैवोंकी उपास्य हैं, मूलप्रकृतिस्वरूपिणी हैं तथा जगत्‌का सृजन, पालन एवं संहार करनेवाली हैं।

दशम स्कन्ध

दशम स्कन्धका प्रारम्भ नारदजीकी इस जिज्ञासासे होता है कि सभी मन्वन्तरोंमें देवी कौन-कौन-सा स्वरूप धारण करती हैं तथा किन-किन स्वरूपोंमें माहेश्वरीका प्रादुर्भाव होता है। श्रीनारायण वर्णन करते हुए कहते हैं—पूर्वकालमें भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे ब्रह्माजीका प्राकट्य हुआ। चतुर्मुख ब्रह्माने स्वायम्भुव नामक मनुको अपने मनसे उत्पन्न किया। इस बार वे मनु परमेष्ठी ब्रह्माके मानसपुत्र कहलाये। पुनः ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको उत्पन्न किया और उन्हें मनुकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे मनु क्षीरसागरके पवित्र तटपर भगवती जगदम्बाकी आराधना करने लगे। उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवती जगदम्बा प्रकट हो गयीं तथा उन्हें यह वर प्रदान किया कि सृष्टिकार्यमें आनेवाले सभी विघ्न क्षीण होकर नष्ट हो जायँ। इस प्रकार उन महात्मा मनुको वर देकर वे विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं।

विन्ध्याचलका आख्यान—एक बार देवर्षि नारद पृथ्वीलोकमें विचरण करते हुए विन्ध्यपर्वतपर पहुँच गये। विन्ध्यपर्वतके आग्रह करनेपर नारदजीने बताया कि सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा तथा समस्त ग्रह-नक्षत्रोंके अधिपति श्रीसूर्यनारायण सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते हैं, जिसके कारण वह सुमेरुपर्वत अभिमानपूर्वक अपनेको पर्वतोंमें श्रेष्ठ तथा महान् मानता है। महर्षि नारदकी बात सुनकर विन्ध्यपर्वत चिन्तित हो गया तथा उसने यह निश्चय किया कि मैं सूर्यका मार्ग अवरुद्ध करूँगा। विन्ध्याचलने अपना विशाल स्वरूप धारणकर अपने उच्च शिखरोंसे सूर्यका मार्ग अवरुद्ध कर दिया। इससे सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मच गयी। एक ओर प्रचण्ड गरमी पड़ने लगी तो दूसरी ओर रात्रि ही बनी रही। यह देखकर सभी देवता भगवान् विष्णुके पास गये और उन्हें सारी बात बतायी। भगवान् विष्णुने देवताओंको भगवतीके परम उपासक वाराणसीमें निवास करनेवाले अगस्त्यजीके पास भेजा। देवताओंने अगस्त्यजीसे विन्ध्याचलकी वृद्धिको रोकनेकी प्रार्थना की। अगस्त्यजी बड़े धर्मसंकटमें पड़ गये; क्योंकि उन्हें इसके लिये काशीका त्याग करके दक्षिणमें जाना पड़ रहा था। लोकहितके लिये वे अपनी पत्नी लोपामुद्राको साथ लेकर दक्षिणके लिये प्रस्थान कर गये। विन्ध्यपर्वत उन्हें सामने देखकर सद्भावनत होकर साष्टांग लेट गया। अगस्त्यजीने विन्ध्याचलसे कहा—हे वत्स! जबतक मैं लौटकर आता हूँ तबतक तुम इसी प्रकार रहो; क्योंकि हे पुत्र! मैं तुम्हारे ऊँचे शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ। इस प्रकार कहकर वे अगस्त्यमुनि उस विन्ध्यके शिखरोंपर होते हुए मलयाचलपर आकर आश्रममें निवास करने लगे।

मनुद्वारा पूजित वे भगवती भी वहीं विन्ध्यगिरिपर आ गयीं। वे ही देवी समस्त लोकोंमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हो गयीं।

अन्य मनुओंद्वारा भगवतीकी आराधना—आद्य स्वायम्भुव मनुके बाद उनके पौत्र अर्थात् प्रियव्रतके पुत्र स्वारोचिष दूसरे मनु बने। उन्होंने यमुनातटपर सूखे पत्तोंका आहार करते हुए भगवतीकी बारह वर्षोंतक आराधना की। उनकी इस तपस्यासे प्रसन्न होकर भगवतीने उन्हें मन्वन्ताधिप बननेका वरदान दिया। इनके बाद उनके भाई उत्तम तीसरे मनु हुए। उन्होंने तीन वर्षतक भगवतीके वाग्भवमन्त्रका जपकर उनका अनुग्रह प्राप्त किया। उत्तमके बाद उनके भाई तामस चौथे मनु हुए। नर्मदाके दक्षिणी तटपर कामबीज मन्त्रका जप करते हुए उन्होंने भगवती परमेश्वरीकी कृपा प्राप्त की। तामसके बाद उनके अनुज रैवत पाँचवें मनु हुए। यमुनातटपर कामसंज्ञक बीजमन्त्रका जप करते हुए उन्होंने भगवतीकी आराधना की। रैवतके बाद चाक्षुष छठे मनु हुए। ब्रह्मर्षि पुलहकी सत्प्रेरणासे वे भगवतीकी आराधनामें प्रवृत्त हुए। उन्होंने बारह वर्षोंतक भगवतीके

बीजमन्त्रका निरन्तर जप किया। तब देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया। श्राद्धदेव (वैवस्वत) सातवें मनु हुए। पराम्बा भगवतीकी तपस्यासे उनकी अनुकम्पा प्राप्त करके वे मन्वन्तराधिप हुए। आठवें मनु सावर्णि हुए। पूर्वजन्ममें वे सुरथ नामक राजा थे। उन्होंने भगवतीकी पार्थिव मूर्ति बनाकर आराधना की थी। उन्हींकी कृपासे वे अगले जन्ममें सावर्णि मनु हुए।

मधु-कैटभका वध—प्रलयकालमें जब भगवान् विष्णु शेषशय्यापर शयन कर रहे थे, उसी समय उनके कानोंकी मैलसे मधु-कैटभ नामक दो दानवोंकी उत्पत्ति हुई, वे दानव भगवान् विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न कमलपर आसीन भगवान् ब्रह्माका वध करनेको उद्यत हो गये, तब ब्रह्माजीने भगवान् विष्णुको जगाना चाहा, पर वे योगनिद्राके वशीभूत होनेसे जाग न सके। यह देख ब्रह्माजीने भगवती योगनिद्राकी स्तुतिकर भगवान् विष्णुको प्रबोधित किया और भगवतीद्वारा मधु-कैटभको मोहित किये जानेपर भगवान् विष्णुने उनका वध किया।

भगवतीद्वारा महिषासुर, शुम्भ-निशुम्भ और चण्ड-मुण्डका वध—पूर्वकालमें महिषासुर नामक एक दैत्य हुआ, जिसने देवताओंको जीतकर उन्हें स्वर्गसे निष्कासित कर दिया। तब पराजित देवता भगवान् विष्णुके पास गये। भगवान् विष्णुके परामर्शसे सभी देवताओंने अपना-अपना तेज प्रकट किया। वही तेज पुंजीभूत होकर भगवती महिषमर्दिनी दुर्गाके रूपमें प्रकट हुआ। सभी देवताओंने उन्हें अपने-अपने अस्त्र-शस्त्र समर्पित किये और उनसे महिषासुरका वध करनेकी प्रार्थना की। देवताओंके कष्ट-निवारणार्थ भगवतीने युद्धमें महिषासुरका संहार किया। इसी प्रकार एक समय शुम्भ-निशुम्भ नामके दो अत्यन्त शक्तिशाली दानव हुए, उन्होंने भी देवताओंका राज्य छीनकर उन्हें स्वर्गसे निष्कासित कर दिया, तब देवताओंकी प्रार्थनापर भगवतीने युद्ध करके सेनापतियों—धूम्राक्ष, रक्तबीज, चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध किया।

वैवस्वत मनुके छः पुत्रोंका आख्यान—वैवस्वत मनुके करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु नामके छः पुत्र थे, जो क्रमशः दक्षसावर्णि, मेरुसावर्णि, सूर्यसावर्णि, इन्द्रसावर्णि, रुद्रसावर्णि और विष्णुसावर्णिके नामसे प्रसिद्ध हैं। इन सबने भक्तिभावसे भगवतीकी आराधना की, जिसके फलस्वरूप वे सब क्रमशः नौवें, दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें और चौदहवें मनु हुए।

भगवती भ्रामरीका आख्यान—पूर्वकालमें अरुण नामका एक महान् बलशाली दैत्य था। उसने ब्रह्माजीकी तपस्या करके अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया था। युद्धमें पुरुषसे, स्त्रीसे, दो पैर या चार पैरवाले प्राणियोंसे या उभय आकारवाले प्राणीसे उसकी मृत्यु नहीं हो सकती थी। वरके प्रभावसे उन्मत्त हुए उस अरुण नामक दैत्यने सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मचा दी। तब देवताओंकी प्रार्थनापर भगवती भ्रामरीदेवीके रूपमें प्रकट हुईं। उनकी माला और हाथोंमें असंख्य षट्पद—भ्रमर स्थित थे, उन भ्रमरोंने अरुण और उसकी सेनापर आक्रमणकर सबको मार डाला। इस प्रकार भगवती भ्रामरीकी कृपासे देवताओं तथा सम्पूर्ण जगत्को अरुणदैत्यके अत्याचारसे मुक्ति मिली।

इस दशम स्कन्धमें ये सम्पूर्ण कथाएँ अत्यन्त विस्तारपूर्वक लिखी गयी हैं, जो यहाँ स्थानाभावके कारण संक्षिप्तरूपमें प्रस्तुत की गयी हैं।

एकादश स्कन्ध

ग्यारहवें स्कन्धमें नारदजीके जिज्ञासा करनेपर श्रीनारायण जिस सदाचारके अनुष्ठानसे देवी सदा प्रसन्न रहती हैं, उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि माता-पिता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी अपना कल्याण करनेमें सहायक नहीं होता, केवल धर्म ही साथ रहता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये।

'आचारः प्रथमो धर्मः' आचार ही प्रथम धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है। अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने हितार्थ सदाचारके पालनमें सदा संलग्न रहे। मनुष्य सदाचारसे आयु, अन्न, धन, सम्पत्ति, सन्तान आदि तथा अक्षय सुख प्राप्त करता है। आचार पापको भी नष्ट कर देता है।

शास्त्रीय तथा लौकिक भेदसे आचार दो प्रकारका

बताया गया है—एक शौचाचार, दूसरा सदाचार। नारदजीके यह पूछनेपर कि जगत्में शास्त्रोंका बाहुल्य है। अतः धर्ममार्गका निर्णय किस प्रकार किया जाय। इसपर श्रीनारायणजी कहते हैं कि श्रुति, स्मृति और पुराण— इन तीनोंमें जो कुछ भी कहा गया है; वही धर्म है। इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं। इन तीनोंमें जहाँ परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रुतिको प्रमाण मानना चाहिये। इसी प्रकार स्मृति तथा पुराणमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ है। वेद ही पूर्णरूपसे धर्मतत्त्वके प्रमाण हैं। उस वेदराशिसे विरोध न रखनेवाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है, दूसरा नहीं।

विद्वान् पुरुषको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आचार-सम्बन्धी सभी नियमोंका पालन करना चाहिये। प्रातःकाल योगी पुरुष अपने इष्टदेवका चिन्तन करे तथा ब्रह्मका ध्यान करे। ऐसा निरन्तर करनेसे जब जीव तथा ब्रह्मका ऐक्य स्थापित हो जाता है, तब उसी क्षण वह जीवन्मुक्त हो जाता है। इस अध्यायमें उषःकाल, अरुणोदयकाल, प्रातःकाल तथा सूर्योदयकालका समय बताया गया है। इसके साथ ही मल-मूत्रके त्याग, दन्तधावन, स्नान तथा आचमन आदिकी विधिका वर्णन हुआ है। श्रीनारायण कहते हैं कि प्रातःस्नान न करनेवालेकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। अतएव प्रातःकालीन स्नान अवश्य करना चाहिये। स्नानके अनन्तर सन्ध्या-वन्दन तथा गायत्रीमन्त्रके जपकी विधि बतायी गयी है। गायत्रीमन्त्रसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है; क्योंकि यह उच्चारण करनेवालेकी रक्षा करता है, अतः इसे गायत्रीनामसे अभिहित किया जाता है।

रुद्राक्ष-माहात्म्य—भगवान् शंकर त्रिपुरासुरके वधके लिये एक हजार दिव्य वर्षोंतक अघोरास्त्र नामक महान् अस्त्रका चिन्तन करते रहे, उस समय अत्यन्त व्याकुल होकर उनके नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा। उनके दाहिने नेत्रसे कपिलवर्ण, बायें नेत्रसे श्वेतवर्ण तथा तीसरे नेत्रसे कृष्णवर्णके रुद्राक्ष उत्पन्न हुए। ये रुद्राक्ष एकसे लेकर चौदह मुखतकके होते हैं, जो शिवके विभिन्न स्वरूप हैं। इन्हें सिर, हृदय, बाहुवलय तथा मणिबन्धपर धारण करना चाहिये। इनके धारणका अनन्त फल होता है और धारणकर्ता साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है। रुद्राक्षको भक्तिपूर्वक पवित्र अवस्थामें ही धारण करना चाहिये, अपवित्र अवस्थामें इसे नहीं धारण करना चाहिये। शिव-सम्बन्धी मन्त्रोंकी सिद्धिके लिये रुद्राक्षकी ही जपमाला बनानी चाहिये।

रुद्राक्ष-धारणका इतना माहात्म्य है कि वह समस्त पापोंको नष्टकर शिव-सायुज्यकी प्राप्ति करा देता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है कि विन्ध्यपर्वतपर एक गर्दभ रुद्राक्ष ढोया करता था, एक दिन रुद्राक्ष ढोते हुए लड़खड़ाकर गिरनेसे उसकी मृत्यु हो गयी, परंतु रुद्राक्षके स्पर्शके प्रभावसे उसकी महिमा न जानते हुए भी वह गर्दभ शिवस्वरूप धारणकर शिवलोक चला गया। एक अन्य आख्यानके अनुसार कोसलदेशमें गुणनिधि नामक एक ब्राह्मण था। उस पापीसे कोई भी महापातक छूटा नहीं था, जब उसकी मृत्यु हुई तो यमदूत उसे नारकीय ताड़ना देनेके लिये ले जाने लगे तो उसी समय शिवदूत वहाँ आ पहुँचे और बोले कि जिस स्थानपर इसकी मृत्यु हुई है, वहाँ दस हाथ नीचे रुद्राक्ष विद्यमान है, उसीके प्रभावसे हमलोग इसे शिवके धाम ले जायँगे।

भस्म-धारण एवं उसका माहात्म्य—भगवान् शंकरकी प्रीति प्राप्त करनेके लिये भस्मधारण करना अत्यन्त आवश्यक माना गया है। इसे शिरोव्रत कहा गया है। भस्मधारणका इतना माहात्म्य है कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देवता भी भस्म धारण करते हैं। देवताओंमें देवत्वकी प्रतिष्ठा उनके भस्म धारण करनेके कारण ही कही गयी है। जो तीनों सन्ध्याओंके समय भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित हो जाता है। सम्पूर्ण शरीरमें भस्मलेपनको भस्मस्नानकी संज्ञा दी गयी है। यहाँ भस्मस्नानकी अत्यधिक महिमा बताते हुए दुर्वासामुनिके एक आख्यानका भी वर्णन किया गया है।

सन्ध्योपासन और उसका माहात्म्य—विप्र वृक्ष है, सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ हैं; वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं। अतः प्रयत्नके साथ मूल (जड़)-की रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट

जानेपर न तो वृक्ष रहता है और न शाखा। अतः द्विजको नित्य सन्ध्या करनी चाहिये। सन्ध्या न करनेवाला अन्य किसी भी शुभ कर्मको करनेका अधिकारी नहीं होता। सन्ध्योपासन देवीकी उपासना है। अतः देवीकी सन्निधिमें ही तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल)-की सन्ध्या करनी चाहिये।

गायत्री-महिमा—गायत्री छन्दोंकी माता और अक्षरब्रह्मस्वरूपिणी हैं। भगवती जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये वेदमाता गायत्रीका ध्यान एवं जप परम आवश्यक है। इस ग्यारहवें स्कन्धके इक्कीसवें अध्यायमें गायत्रीपुरश्चरण और उसके फलका वर्णन है। इस स्कन्धके अन्तिम अध्यायमें गायत्रीजपसे विभिन्न कामनाओंकी सिद्धि तथा उपद्रवोंके शमनका विस्तारसे वर्णन किया गया है।

भगवतीकी पंचायतन-पूजा—भगवतीकी पंचायतन-पूजामें शिवा, शिव, गणेश, सूर्य तथा विष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। इसमें मण्डलके मध्यमें भवानी, ईशानकोणमें माधव, अग्निकोणमें शंकर, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायव्यकोणमें सूर्यका अर्चन करना चाहिये। सोलह ऋचाओंका पाठ करते हुए षोडशोपचार पूजन करना चाहिये, परंतु विष्णुपर अक्षत, गणेशपर तुलसी, दुर्गापर दूर्वा और शिवपर केतकीपुष्प नहीं चढ़ाना चाहिये। इस स्कन्धके अठारहवें अध्यायमें भगवतीकी पूजा-विधिका विस्तारसे वर्णन है।

बलिवैश्वदेव—गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली तथा जलका घड़ा—इन पाँच वस्तुओंसे होनेवाले पापकी शान्तिके लिये बलिवैश्वदेव किया जाता है। भोजनके लिये जो हविष्यान्न घरमें पकाया जाता है, उसी सामग्रीसे अग्निमें बलिवैश्वदेवके लिये हवन करनेकी विधि है। इस स्कन्धके बाईसवें अध्यायमें बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधिका विस्तृत विवरण दिया गया है।

तप्तकृच्छ्र, चान्द्रायण और प्राजापत्यव्रत—विभिन्न पातकों, उपपातकों और महापातकोंके प्रायश्चित्तरूप ये व्रत पाप-शमनके लिये किये जाते हैं। गायत्री-पुरश्चरण आदिके पूर्व इन व्रतोंको किया जाता है। इस स्कन्धके तेईसवें अध्यायमें इन व्रतोंका विस्तारसे वर्णन है।

द्वादश स्कन्ध

गायत्रीजप-माहात्म्य—गायत्रीजप अत्यन्त मंगलकारी, सिद्धिदाता, महापापोंका विनाशक और भगवतीकी प्रसन्नताकी प्राप्ति करानेवाला है। इस गायत्रीमन्त्रमें चौबीस अक्षर हैं, इन चौबीस अक्षरोंके चौबीस ऋषि, चौबीस छन्द और चौबीस देवता हैं। इन चौबीस अक्षरोंके चौबीस वर्ण (रंग) और चौबीस मुद्राएँ हैं। इसके चौबीस वर्णोंके पृथ्वी, जल, तेज आदि चौबीस तत्त्व कहे गये हैं। गायत्रीका ध्यान करने और गायत्रीकवचको धारण करनेसे मनुष्य ब्रह्मरूपत्व प्राप्त कर सकता है। भगवती गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये अथर्ववेदमें वर्णित गायत्रीहृदयका पाठ किया जाता है, इसके ऋषि स्वयं भगवान् नारायण हैं। श्रीमद्देवीभागवत नामक इस ग्रन्थरत्नके अन्तिम स्कन्धमें गायत्री-उपासना-सम्बन्धी विस्तृत वर्णन प्राप्त है। इसके पाँचवें अध्यायमें गायत्री-स्तोत्र तथा छठे अध्यायमें भगवती गायत्रीके सहस्रनामोंवाला 'गायत्री-सहस्रनामस्तोत्र' दिया गया है। यह महान् उन्नतिकारक और भाग्योदय करनेवाला है, परंतु देवीमन्त्रके जपका अधिकार बिना दीक्षाके प्राप्त नहीं होता। अतः आगे सातवें अध्यायमें दीक्षाविधिका सविस्तार वर्णन किया गया है।

भगवती उमाद्वारा देवताओंका गर्वभंजन—पूर्वकालमें दानवोंके साथ देवताओंका सौ वर्षोंतक युद्ध चला, जिसमें भगवतीकी कृपासे देवताओंको विजय प्राप्त हुई; परंतु अज्ञानवश देवता उसे अपने पराक्रमसे मिली विजय समझकर गर्व करने लगे थे। यह देखकर भगवती उमाने एक तेजस्वी यक्षके रूपमें प्रकट होकर अग्निदेवके समक्ष एक तृण रखकर उसे जलानेको कहा, परंतु वे उसे जला नहीं सके। इसी प्रकार वायुदेव भी उस तृणको उड़ा न सके। अन्तमें जब इन्द्र उनके पास आये तो वह तेजस्वी यक्ष अन्तर्धान हो गया और उसके स्थानपर भगवती उमाने इन्द्रको दर्शन दिया। भगवती उमाने इन्द्रसे कहा कि तुम्हारेसहित समस्त देवता मेरी ही शक्तिसे शक्तिमान् हैं और मेरी ही शक्तिसे तुम सबने दैत्योंपर विजय प्राप्त की है, अतः तुम्हें किसी प्रकारका गर्व नहीं

करना चाहिये। यह सुनकर सभी देवता नतमस्तक होकर भगवतीकी उपासनामें संलग्न हो गये। गायत्रीकी उपासना सभी वेदोंके द्वारा नित्य कही गयी है। केवल गायत्रीकी उपासना करके द्विज कृतकृत्य हो जाता है, उसे किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रहती। इस साधनासे वह मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है।

भगवती गायत्रीकी कृपासे सम्बद्ध गौतममुनिका आख्यान—एक बार पन्द्रह वर्षोंकी अनावृष्टिसे अत्यन्त विनाशकारी दुर्भिक्षकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। घर-घरमें शवोंके ढेर लग गये। ऐसे समयमें बहुत-से ब्राह्मणोंने मिलकर विचार किया कि हमें गौतममुनिके आश्रममें चलना चाहिये; क्योंकि भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतममुनिके आश्रममें इस समय भी सुभिक्ष है। इस प्रकार आपसमें विचार-विमर्शकर सभी ब्राह्मण गौतममुनिके आश्रममें पहुँचे। मुनिने उनका स्वागत किया और उनके उपयोगकी सभी वस्तुएँ प्रदान करते हुए उनसे वहीं रहनेका निवेदन किया। इस प्रकार सभी ब्राह्मण गौतममुनिके आश्रमपर रहने लगे और भगवतीकी कृपासे वहाँ नित्य उत्सव होने लगा। कालान्तरमें वृष्टि होनेसे पृथ्वीतलपर चारों ओर सुभिक्ष हो गया। अब वे कृतघ्न ब्राह्मण गौतममुनिकी प्रतिष्ठासे द्वेष करते हुए उनकी लोकनिन्दा करानेका प्रयास करने लगे। उन्होंने मायासे एक मरणासन्न वृद्ध गौकी रचना की। मुनि जब हवन कर रहे थे तो वह गौ उनकी यज्ञशालामें जाने लगी, जिसे मुनिने 'हुं-हुं' करते हुए रोका। उसी समय मायारचित उस गौने प्राण त्याग दिये। तब वे कृतघ्न ब्राह्मण उन मुनिश्रेष्ठ गौतमपर गोहत्या लगाने लगे। आश्चर्यचकित गौतममुनिने समाधिमें स्थित हो जब इस घटनापर विचार किया तो उन्हें सारी सच्चाई पता चल गयी, तब तो उन मुनिश्रेष्ठने क्रुद्ध होकर उन कृतघ्न ब्राह्मणोंको शाप देते हुए कहा—अधम ब्राह्मणो! तुमलोग वेदमाता गायत्रीकी उपासना, ध्यान और उनके मन्त्रजपसे सर्वथा विमुख हो जाओ। वेद और स्मृतियाँ तुम्हें विस्मृत हो जायँ। शापदग्ध वे ब्राह्मण वेदों और स्मृतियोंको भूल गये। गायत्रीमन्त्र भी उन्हें विस्मृत हो गया। तब वे सभी ब्राह्मण एकत्र होकर पश्चात्ताप करने लगे और मुनिवर गौतमसे प्रसन्न होनेकी बार-बार प्रार्थना करने लगे। करुणार्द्र होकर गौतममुनिने कहा—मेरे द्वारा कही गयी सारी बातें अन्यथा नहीं हो सकतीं। यदि मेरे शापसे मुक्तिकी तुमलोगोंकी इच्छा है तो तुम सब भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सदा उपासना करो।

मणिद्वीपधामका वर्णन—इसके अनन्तर व्यासजी ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें स्थित मणिद्वीपका वर्णन करते हैं, जहाँ भगवती स्वयं विराजमान रहती हैं। जिस प्रकार भगवान् शिवका लोक कैलास, विष्णुका वैकुण्ठ और गोलोक है; उससे भी श्रेष्ठ धाम पराम्बा भगवतीका धाम मणिद्वीप है। यह मणिद्वीप तीनों लोकोंका छत्रस्वरूप है। तीनों लोकोंमें इससे सुन्दर कुछ भी नहीं है। इसीलिये इसे सर्वलोक कहा गया है। इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और मृत्युकालमें इसका स्मरण हो जानेपर प्राणी उसी पुरीको प्राप्त हो जाता है। इस स्कन्धके दसवें, ग्यारहवें एवं बारहवें अध्यायमें देवीके धाम इस मणिद्वीपका विस्तृत वर्णन किया गया है।

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका माहात्म्य—श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है, इसके पढ़ने-सुननेसे वेदपाठके समान फलकी प्राप्ति होती है। वैष्णव, शैव, सौर और गणेशभक्तोंको भी चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका पाठ करना चाहिये, इससे उनके इष्टदेवोंकी शक्तियाँ उनपर प्रसन्न रहती हैं। सर्पदंशके कारण राजा परीक्षित् अपमृत्युको प्राप्त हुए थे, परंतु उनके पुत्र जनमेजयने इस पुराणका श्रवण किया था, जिसके पुण्यसे राजा परीक्षित् भगवती जगदम्बाके लोक मणिद्वीपको चले गये। इस पुराणकी जितनी महिमा कही जाय, कम ही है। संक्षेपमें यह पुराण संसार-सागरसे पार करनेके लिये नौका-स्वरूप है।

—राधेश्याम खेमका

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

[उत्तरार्ध]

सप्तम स्कन्ध

पहला अध्याय

पितामह ब्रह्माकी मानसी सृष्टिका वर्णन, नारदजीका दक्षके पुत्रोंको सन्तानोत्पत्तिसे विरत करना और दक्षका उन्हें शाप देना, दक्षकन्याओंसे देवताओं और दानवोंकी उत्पत्ति

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] तपस्वी व्यासजीसे यह दिव्य कथा सुनकर परीक्षित्‌के पुत्र धर्मात्मा राजा जनमेजयने प्रसन्नतापूर्वक पुनः व्यासजीसे पूछा॥ १॥

जनमेजय बोले—हे स्वामिन्! मैं सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजाओंके वंशका विस्तृत वर्णन सम्यक् प्रकारसे सुनना चाहता हूँ॥ २॥

हे पुण्यात्मन्! हे सर्वज्ञ! आप उन राजाओंके चरित्र तथा उनके दोनों वंशोंसे सम्बन्धित उस पापनाशिनी कथाका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ ३॥

मैंने ऐसा सुना है कि वे सभी पराशक्ति जगदम्बाके महान् भक्त थे; अतः देवीभक्तका चरित्र सुननेसे भला कौन विमुख होना चाहेगा?॥ ४॥

राजर्षि जनमेजयके ऐसा पूछनेपर प्रसन्न मुखमण्डलवाले सत्यवतीनन्दन मुनि व्यासने उनसे कहा॥ ५॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! अब मैं सूर्यवंश, चन्द्रवंश तथा अन्य वंशोंकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित कथाओंका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ, आप सुनिये॥ ६॥

भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे चार मुखवाले ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उन्होंने घोर तपस्या करके अत्यन्त कठिनतापूर्वक प्राप्त होनेवाली महादेवीकी आराधना की॥ ७॥

उन भगवतीसे वरदान प्राप्त करके ब्रह्माजी जगत्‌की रचना करनेमें प्रवृत्त हुए, किंतु लोकपितामह ब्रह्माजी मानवी सृष्टि कर पानेमें सफल नहीं हुए॥ ८॥

ब्रह्माजीके मनमें सृष्टिके लिये अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हुए, किंतु वे महात्मा अपनी रचनाको शीघ्र विस्तार प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ ९॥

(तत्पश्चात् प्रजापति ब्रह्माजीने अपने सात मानस पुत्रोंका सृजन किया।) मरीचि, अंगिरा, अत्रि, वसिष्ठ, पुलह, क्रतु और पुलस्त्य—इन नामोंसे उन सात मानस पुत्रोंकी प्रसिद्धि हुई॥ १०॥

ब्रह्माजीके रोषसे रुद्र उत्पन्न हुए तथा उनकी गोदसे नारदजीका प्राकट्य हुआ। अँगूठेसे दक्षप्रजापति उत्पन्न हुए। इसी प्रकार सनक आदि अन्य मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई॥ ११॥

बायें हाथके अँगूठेसे समस्त सुन्दर अंगोंवाली दक्षपत्नीका प्रादुर्भाव हुआ। हे राजन्! वे पुराणोंमें 'वीरिणी' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ १२॥

वे असिक्नी नामसे भी विख्यात हैं और उन्हींसे ब्रह्माजीके मानसपुत्र देवर्षिश्रेष्ठ नारदजीका प्रादुर्भाव हुआ है॥ १३॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! अभी-अभी आपने जो बात कही है कि महान् तपस्वी नारदजी दक्षसे तथा वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस विषयमें मुझे सन्देह हो रहा है॥ १४॥

धर्मके पूर्ण ज्ञाता तथा तपस्वियोंमें श्रेष्ठ नारदमुनि तो ब्रह्माके मानस पुत्र हैं तो फिर वे दक्षपत्नी वीरिणीसे किस प्रकार उत्पन्न हुए?॥ १५॥

आपके द्वारा कथित यह वार्ता अत्यन्त विस्मयमें डालनेवाली है। दक्षसे तथा उनकी भार्या 'वीरिणी' से इन नारदजीके जन्मके विषयमें आप मुझे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १६॥

हे मुने! विपुल ज्ञान रखनेवाले महात्मा नारदजीने किसके शापसे अपने पूर्व शरीरका त्याग करके किसलिये फिरसे जन्म धारण किया?॥ १७॥

व्यासजी बोले—स्वयम्भू ब्रह्माजीने सबसे पहले दक्षप्रजापतिको सृष्टिके लिये आज्ञा दी और कहा कि तुम प्रजाकी रचनामें तत्पर हो जाओ, जिससे प्रजाकी अधिकाधिक वृद्धि हो सके॥ १८॥

तब दक्षप्रजापतिने वीरिणीके गर्भसे अत्यन्त बलशाली तथा पराक्रमी पाँच हजार पुत्र उत्पन्न किये॥ १९॥

प्रजाकी वृद्धिहेतु विपुल उत्साहसे सम्पन्न उन सभी पुत्रोंको देखकर कालकी प्रेरणाके अनुसार देवर्षि नारदजी हँसते हुए यह बात कहने लगे॥ २०॥

पृथ्वीकी वास्तविक परिमितिका बिना ज्ञान किये ही तुमलोग प्रजाके सृष्टिकार्यमें कैसे तत्पर हो गये? इससे तो तुमलोग निःसन्देह जगत्‌में उपहासके पात्र बनोगे॥ २१॥

पृथ्वीका परिमाण जानकर ही तुम्हें इस कार्यमें संलग्न होना चाहिये। ऐसा करनेपर ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध होगा, अन्यथा नहीं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २२॥

तुमलोग तो मूर्ख हो जो कि पृथ्वीके परिमाणको जाने बिना ही प्रजोत्पत्तिमें संलग्न हो गये हो; इसमें सफलता कैसे मिल सकती है?॥ २३॥

व्यासजी बोले—नारदजीके इस प्रकार कहनेपर दैवयोगसे दक्षपुत्र हर्यश्व परस्पर कहने लगे कि मुनिने तो ठीक ही कहा है। अब हमलोग पृथ्वीका परिमाण जान लेनेके पश्चात् ही सुखपूर्वक प्रजाकी सृष्टि करेंगे। ऐसा विचार करके वे सभी पृथ्वीका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् नारदजीके कथनानुसार पृथ्वीके सम्पूर्ण तलका ज्ञान करनेके लिये कुछ पूर्व दिशामें, कुछ पश्चिम दिशामें, कुछ उत्तर दिशामें तथा कुछ दक्षिण दिशामें बड़े उत्साहके साथ चले। इधर, दक्षप्रजापति सभी पुत्रोंको गया हुआ देखकर बहुत ही शोकाकुल हो गये॥ २६-२७॥

दृढ़निश्चयी दक्षप्रजापतिने प्रजाओंकी सृष्टिके लिये पुनः अन्य पुत्र उत्पन्न किये। वे सभी पुत्र भी प्रजा-सृष्टिके कार्यमें उत्साहपूर्वक तत्पर हो गये॥ २८॥

उन्हें देखकर नारदमुनिने पूर्वकी भाँति वही बात उनसे भी कही—तुमलोग बड़े ही मूर्ख हो। अरे, पृथ्वीके वास्तविक परिमाणका ज्ञान किये बिना ही तुमलोग प्रजाकी सृष्टि करनेमें किस कारणसे संलग्न हो गये हो?॥ २९½॥

मुनिकी वाणी सुनकर तथा उसे सत्य मानकर वे भी भ्रमित हो गये। वे सभी पुत्र उसी प्रकार भूमण्डलका विस्तार जाननेके लिये चल पड़े, जिस प्रकार उनके भाईलोग पहले चले गये थे। उन पुत्रोंको वहाँसे प्रस्थित देखकर दक्ष अत्यन्त कुपित हो उठे और पुत्रशोकजन्य



कोपसे उन्होंने नारदजीको शाप दे दिया॥ ३०-३१½॥

दक्ष बोले—[हे नारद!] जिस प्रकार तुमने मेरे पुत्रोंको नष्ट किया है, उसी प्रकार तुम भी नाशको प्राप्त हो जाओ। हे दुर्बुद्धे! तुमने मेरे पुत्रोंको भ्रष्ट किया है, अतएव इस पापके परिणामस्वरूप तुम्हें गर्भमें वास करना होगा और मेरा पुत्र बनना पड़ेगा॥ ३२-३३॥

इस प्रकार शापके प्रभावसे मुनि नारद वीरिणीके गर्भसे उत्पन्न हुए। तदनन्तर दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याओंको उत्पन्न किया, ऐसा हमने सुना है॥ ३४॥

पुत्रोंका शोक त्यागकर परम धर्मनिष्ठ दक्षप्रजापतिने उन कन्याओंमेंसे तेरह कन्याएँ महात्मा कश्यपको अर्पित कर दीं। हे पृथ्वीपते! उनमेंसे दस कन्याएँ धर्मको, सत्ताईस चन्द्रमाको, दो भृगुमुनिको, चार अरिष्टनेमिको, दो अंगिरा-ऋषिको तथा शेष दोको पुनः अंगिराऋषिको ही सौंप दिया। उन्हीं कन्याओंके पुत्र तथा पौत्र देवता एवं दानवके रूपमें उत्पन्न हुए। वे महान् बलशाली तथा आपसमें विरोधभाव रखते थे। एक-दूसरेके विरोधी तथा परस्पर रागद्वेषकी भावना रखनेवाले वे सभी पराक्रमी देवता तथा दानव अत्यन्त मायावी थे तथा सदा मोहसे ग्रस्त रहते थे॥ ३५—३८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'सोमवंश-सूर्यवंशके वर्णनमें दक्षप्रजापतिका वर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

सूर्यवंशके वर्णनके प्रसंगमें सुकन्याकी कथा

जनमेजय बोले—हे महाभाग! आप मुझसे राजाओंके वंशका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये और विशेषरूपसे सूर्यवंशमें उत्पन्न धर्मज्ञ राजाओंके वंशके विषयमें बताइये॥ १॥

व्यासजी बोले—हे भारत! ऋषिश्रेष्ठ नारदजीसे पूर्वकालमें जैसा मैंने सुना है, उसीके अनुसार सूर्यवंशका विस्तृत वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ २॥

एक समयकी बात है—श्रीमान् नारदमुनि स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हुए सरस्वतीनदीके पावन तटपर पवित्र आश्रममें पधारे॥ ३॥

मैं सिर झुकाकर उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनके सामने स्थित हो गया। तत्पश्चात् बैठनेके लिये आसन प्रदान करके मैंने आदरपूर्वक उनकी पूजा की॥ ४॥

उनकी विधिवत् पूजा करके मैंने उनसे यह वचन कहा—हे मुनिवर! आप पूजनीयके आगमनसे मैं पवित्र हो गया॥ ५॥

हे सर्वज्ञ! इन सातवें मनुके वंशमें जो विख्यात राजागण हो चुके हैं, उन राजाओंके चरित्रसे सम्बन्धित कथा कहिये। उन राजाओंकी उत्पत्ति अनुपम है और उनका चरित्र अत्यन्त अद्भुत है; अतएव हे ब्रह्मन्! मैं विस्तारके साथ सूर्यवंशका वर्णन सुननेका इच्छुक हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! संक्षिप्त या विस्तृत जिस किसी भी रूपमें आप मुझसे इसका वर्णन कीजिये॥ ६-७१/२॥

हे राजन्! मेरे ऐसा पूछनेपर परमार्थके ज्ञाता नारदजी हँसते हुए मुझे सम्बोधित करके प्रेमपूर्वक प्रसन्नताके साथ कहने लगे॥ ८१/२॥

नारदजी बोले—हे सत्यवतीतनय! राजाओंके अत्युत्तम वंशके विषयमें सुनिये। कानोंको सुख प्रदान करनेवाला यह वंशचरित अत्यन्त पवित्र और धर्म, ज्ञान आदिसे समन्वित है॥ ९१/२॥

सर्वप्रथम जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट हुए; ऐसा उनके विषयमें पुराणोंमें प्रसिद्ध है। सम्पूर्ण जगत्के कर्ता स्वयम्भू ब्रह्माजी सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न हैं॥ १०-११॥

सृष्टि करनेकी अभिलाषावाले उन विश्वात्मा ब्रह्माजीने पहले देवी शिवाका ध्यान करके दस हजार वर्षोंतक तपस्या की और उनसे महान् शक्ति प्राप्त करके शुभ लक्षणोंवाले मानस पुत्र उत्पन्न किये। उन मानस पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि उत्पन्न हुए, जो सृष्टि-कार्यमें प्रवृत्त हुए॥ १२-१३॥

उन मरीचिके परम प्रसिद्ध तथा सर्वमान्य पुत्र कश्यपजी हुए। दक्षप्रजापतिकी तेरह कन्याएँ उन्हींकी भार्याएँ थीं॥ १४॥

देवता, दैत्य, यक्ष, सर्प, पशु और पक्षी—सब-के-सब उन्हींसे उत्पन्न हुए; अतएव यह सृष्टि काश्यपी है॥ १५॥

देवताओंमें सूर्य सबसे श्रेष्ठ हैं। उनका नाम विवस्वान् भी है। उनके पुत्र वैवस्वत मनु थे, वे परम प्रसिद्ध राजा हुए॥ १६॥

उन वैवस्वत मनुके पुत्ररूपमें सूर्यवंशकी वृद्धि करनेवाले इक्ष्वाकुका प्रादुर्भाव हुआ। इक्ष्वाकुके जन्मके बाद उन मनुके नौ पुत्र और उत्पन्न हुए। हे राजेन्द्र! आप एकाग्रचित्त होकर उनके नाम सुनिये; इक्ष्वाकुके अतिरिक्त नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नृग, सातवें दिष्ट एवं करूष और पृषध्र—ये नौ 'मनुपुत्र' के रूपमें प्रसिद्ध हैं॥ १७—१९॥

इन मनुपुत्रोंमें इक्ष्वाकु सबसे पहले उत्पन्न हुए थे। उनके सौ पुत्र हुए; उनमें आत्मज्ञानी विकुक्षि सबसे बड़े थे॥ २०॥

अब आप मनुवंशमें जन्म लेनेवाले पराक्रमी सभी नौ मनुपुत्रोंके वंश-विस्तारके विषयमें संक्षेपमें सुनिये॥ २१॥

नाभागके पुत्र अम्बरीष हुए। वे प्रतापी, धर्मज्ञ, सत्यप्रतिज्ञ और प्रजापालनमें तत्पर रहनेवाले थे॥ २२॥

धृष्टसे धार्ष्ट हुए, जो क्षत्रिय होते हुए भी ब्राह्मण बन गये। संग्रामसे विमुख रहकर वे सम्यक्‌रूपसे ब्राह्मणोचित कर्ममें निरत रहते थे॥ २३॥

शर्यातिके आनर्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए; वे अति प्रसिद्ध हुए। रूप तथा सौन्दर्यसे युक्त एक सुकन्या नामक पुत्री भी उनसे उत्पन्न हुई। राजा शर्यातिने अपनी वह सुन्दरी पुत्री नेत्रहीन च्यवनमुनिको सौंप दी। बादमें उसी सुकन्याके शील तथा गुणके प्रभावसे च्यवनमुनि सुन्दर नेत्रोंवाले हो गये। सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारोंने उन्हें नेत्रयुक्त कर दिया था—ऐसा हमने सुना है॥ २४-२५½॥

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! आपने कथामें जो यह कहा कि राजा शर्यातिने अन्धे मुनिको अपनी सुन्दर नेत्रोंवाली कन्या प्रदान कर दी; तो इसमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है। यदि उनकी पुत्री कुरूप, गुणहीन और शुभ लक्षणोंसे हीन होती, तब वे राजा शर्याति उसका विवाह नेत्रहीनके साथ कर भी सकते थे, किंतु [च्यवनमुनिको] दृष्टिहीन जानते हुए भी उन नृपश्रेष्ठने उन्हें अपनी सुमुखी कन्या कैसे सौंप दी? हे ब्रह्मन्! मुझे इसका कारण बतायें; मैं सदा आपके अनुग्रहके योग्य हूँ॥ २६—२८½॥

सूतजी बोले—परीक्षित्‌के पुत्र राजा जनमेजयकी बात सुनकर प्रसन्न मनवाले व्यासजी हँसते हुए उनसे कहने लगे॥ २९½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! वैवस्वत मनुके पुत्र शर्याति नामवाले ऐश्वर्यशाली राजा थे। उनकी चार हजार भार्याएँ थीं। वे सभी राजकुमारियाँ अत्यन्त रूपवती तथा समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त थीं। राजाकी सभी पत्नियाँ प्रेमयुक्त रहती हुई सदा उनके अनुकूल व्यवहार करती थीं॥ ३०-३१½॥

उन सबके बीचमें सुकन्या नामक एक ही सुन्दरी पुत्री थी। सुन्दर मुसकानवाली वह कन्या पिता तथा समस्त माताओंके लिये अत्यन्त प्रिय थी॥ ३२½॥

उस नगरसे थोड़ी ही दूरीपर मानसरोवरके तुल्य एक तालाब था। उसमें उतरनेके लिये सीढ़ियोंका मार्ग बना हुआ था। वह सरोवर स्वच्छ जलसे परिपूर्ण था। हंस, बत्तख, चक्रवाक, जलकाक और सारस पक्षियोंसे वह सरोवर व्याप्त और सुशोभित था। अन्य पक्षिसमूहोंसे भी वह आवृत रहता था। वह पाँच प्रकारके कमलोंसे सुशोभित था, जिनपर भौंरे मँडराते रहते थे॥ ३३—३५॥

उस सरोवरका तट बहुत-से वृक्षों तथा सुन्दर पौधों आदिसे घिरा हुआ था। वह सरोवर साल, तमाल, देवदारु, पुन्नाग और अशोकके वृक्षोंसे सुशोभित था। वट, पीपल, कदम्ब, केला, नीबू, बीजपूर (बिजौरा नीबू), खजूर, कटहल, सुपारी, नारियल तथा केतकी, कचनार, जूही, मालती-जैसी सुन्दर एवं स्वच्छ लताओं तथा वृक्षोंसे वह सम्यक् प्रकारसे सम्पन्न था। जामुन, आम, इमली, करंज, कोरैया, पलाश, नीम, खैर और बेल तथा आमला आदि वृक्षोंसे सुशोभित था॥ ३६—३९॥

कोकिलों और मयूरोंकी ध्वनिसे वह सदा निनादित रहता था। उस सरोवरके पासमें ही वृक्षोंसे घिरे हुए एक शुभ स्थानपर शान्त चित्तवाले महातपस्वी भृगुवंशी च्यवनमुनि रहते थे। उस स्थानको निर्जन समझकर उन्होंने मनको एकाग्र करके तपस्या प्रारम्भ कर दी॥ ४०-४१॥

वे आसनपर दृढ़तापूर्वक विराजमान होकर मौन धारण किये हुए थे। प्राणवायुपर उनका पूर्ण अधिकार था तथा सभी इन्द्रियाँ उनके वशमें थीं। उन तपोनिधिने भोजन भी त्याग दिया था॥ ४२॥

वे जल ग्रहण किये बिना जगदम्बाका ध्यान करते थे। हे राजन्! उनके शरीरपर लताएँ घिरी हुई थीं तथा दीमकोंद्वारा वे पूरी तरहसे ढक लिये गये थे॥ ४३॥

हे राजन्! बहुत दिनोंतक इस प्रकार बैठे रहनेके कारण उनपर दीमककी चींटियाँ चढ़ गयीं और उनसे वे घिर गये। वे बुद्धिसम्पन्न मुनि पूरी तरहसे मिट्टीके ढेर-सदृश हो गये थे॥ ४४॥

हे राजन्! किसी समय वे राजा शर्याति अपनी रानियोंके साथ विहार करनेके लिये उस उत्तम सरोवरपर आये॥ ४५॥

सरोवरका जल स्वच्छ था, कमल खिले हुए थे। अतएव राजा शर्याति सुन्दरियोंको साथ लेकर जल-क्रीड़ा करने लगे॥ ४६॥

लक्ष्मीकी तुलना करनेवाली तथा चंचल स्वभाववाली वह सुकन्या वनमें आकर सुन्दर फूलोंको चुनती हुई सखियोंके साथ विहार करने लगी। वह सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थी तथा उसके चरणके नूपुर मधुर ध्वनि कर रहे थे। इधर-उधर भ्रमण करती हुई वह राजकुमारी [सुकन्या] वल्मीक बने हुए च्यवनमुनिके निकट पहुँच गयी। क्रीडामें आसक्त वह सुकन्या वल्मीकके निकट बैठ गयी और उसे वल्मीकके छिद्रोंसे जुगुनूकी तरह चमकनेवाली दो ज्योतियाँ दिखायी पड़ीं॥ ४७—४९॥

यह क्या है?—ऐसी जिज्ञासा होनेपर उसने आवरण हटानेका मनमें निश्चय किया। तत्पश्चात् वह सुन्दरी एक नुकीला काँटा लेकर शीघ्रतापूर्वक मिट्टी हटाने लगी॥ ५०॥

मुनि च्यवनने विचरण करनेवाली, कामदेवकी स्त्री रतिके सदृश तथा सुन्दर केशोंवाली उस राजकुमारीको पासमें स्थित होकर मिट्टी हटानेमें संलग्न देखा॥ ५१॥

क्षीण स्वरवाले तपोनिधि च्यवनमुनि सुन्दर दाँतोंवाली उस सुन्दरी सुकन्याको देखकर उससे कहने लगे—यह क्या! हे विशाल नयनोंवाली! दूर चली जाओ। हे सुमुखि! मैं एक तपस्वी हूँ। हे कृशोदरि! इस बाँबीको काँटेसे मत हटाओ॥ ५२-५३॥

मुनिके कहनेपर भी उसने उनकी बातें न सुनीं। यह कौन-सी [चमकनेवाली] वस्तु है—यह कहकर उसने



मुनिके नेत्र भेद डाले॥ ५४॥

दैवकी प्रेरणासे राजकुमारी उनके नेत्र बींधकर सशंक भावसे खेलती हुई और 'मैंने यह क्या कर डाला'—यह सोचती हुई वहाँसे चली गयी। नेत्रोंके बिँध जानेसे महर्षिको क्रोध हुआ और अत्यधिक वेदनासे पीड़ित होनेके कारण वे बहुत दु:खित हुए॥ ५५-५६॥

उसी समयसे राजाके सभी सैनिकोंका मल-मूत्र अवरुद्ध हो गया। मन्त्रीसहित राजाको विशेषरूपसे यह कष्ट झेलना पड़ा। हाथी, घोड़े और ऊँट आदि सभी प्राणियोंके मल तथा मूत्रका अवरोध हो जानेपर राजा शर्याति अत्यन्त दु:खी हुए॥ ५७-५८॥

सैनिकोंने मल-मूत्रके अवरोधकी बात उन्हें बतायी, तब उन्होंने इस कष्टके कारणपर विचार किया। कुछ समय सोचनेके बाद राजा घरपर आकर अपने परिजनों तथा सैनिकोंसे अत्यन्त व्याकुल होकर पूछने लगे—किसके द्वारा यह निकृष्ट कार्य किया गया है? उस सरोवरके पश्चिमी तटवाले वनमें महान् तपस्वी च्यवनमुनि कठिन तपस्या कर रहे हैं॥ ५९—६१॥

अग्निके समान तेजस्वी उन तपस्वीके प्रति किसीने कोई अपकार अवश्य ही किया है। इसलिये हम सबको ऐसा कष्ट हुआ है—यह निश्चित है॥ ६२॥

महातपस्वी, वृद्ध तथा श्रेष्ठ भृगुनन्दन महात्मा च्यवनका अवश्य ही किसीने अनिष्ट कर दिया है—ऐसा मैं मानता हूँ॥ ६३॥

यह अनिष्ट जानमें किया गया हो अथवा अनजानमें, उसका नियत फल तो भोगना ही पड़ेगा। न जाने किन दुष्टोंने उन तपस्वीका अपमान किया है?॥ ६४॥

राजाके ऐसा पूछनेपर दु:खसे व्याकुल हुए सैनिकोंने उनसे कहा—हमलोगोंके द्वारा मन-वाणी-कर्मसे मुनिका कुछ भी अपकार हुआ हो—इसे हमलोग नहीं जानते॥ ६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'शर्यातिराजवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

सुकन्याका च्यवनमुनिके साथ विवाह

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस घटनासे अत्यन्त चिन्तित राजा शर्यातिने उन सबसे पूछनेके पश्चात् शान्ति तथा उग्रतापूर्वक भी अपने बन्धुजनोंसे पूछा॥ १॥

समस्त प्रजाजन और अपने पिताको अत्यन्त दुःखी देखकर तथा अपने द्वारा उन छिद्रोंमें काँटा चुभानेकी बातको सोचकर उस सुकन्याने यह कहा—हे पिताजी! वनमें खेलती हुई मैंने लताओंसे घिरा हुआ दो छिद्रोंवाला एक विशाल वल्मीक देखा॥ २-३॥

उन छिद्रोंमेंसे जुगनूकी भाँति तीव्र प्रकाशमान दो ज्योतियाँ मैंने देखीं। तब हे महाराज! जुगनूकी शंका करके मैंने उन छिद्रोंमें सूई चुभो दी॥ ४॥

हे पिताजी! उस समय मैंने देखा कि वह सूई जलसे भींग गयी थी और उस वल्मीकमेंसे 'हा-हा' की मन्द-मन्द ध्वनि मुझे सुनायी पड़ी॥ ५॥

हे राजन्! तब मैं आश्चर्यमें पड़ गयी कि यह क्या हो गया। मैं इस शंकासे ग्रस्त हो गयी कि न जाने मेरे द्वारा उस वल्मीकके मध्यमें कौन-सी वस्तु बिँध गयी॥ ६॥

सुकन्याका यह मधुर वचन सुनकर राजा शर्याति इस कृत्यको मुनिका अपमान समझकर शीघ्रतापूर्वक उस वल्मीकके पास जा पहुँचे॥ ७॥

वहाँ उन्होंने महान् कष्टमें पड़े हुए परम तपस्वी च्यवनमुनिको देखा। तत्पश्चात् उन्होंने मुनिके शरीरपर जमी हुई विशाल वल्मीक (बाँबी)-को हटाया॥ ८॥

इसके बाद राजा शर्यातिने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर मुनि भार्गवको प्रणाम करके उनकी स्तुति की और पुनः वे हाथ जोड़कर विनम्रतापूर्वक उनसे कहने लगे—हे महाभाग! मेरी पुत्री खेल रही थी, उसीने यह दुष्कर्म कर दिया है। हे ब्रह्मन्! उस बालिकाके द्वारा अनजानमें किये गये इस अपराधको आप क्षमा कर दें। मुनिगण क्रोधशून्य होते हैं—ऐसा मैंने सुना है; अतएव आप इस समय बालिकाका अपराध क्षमा कर दीजिये॥ ९—११॥

व्यासजी बोले—उनकी बात सुनकर च्यवनमुनि नम्रतापूर्वक खड़े उन राजाको अत्यन्त दुःखित जानकर उनसे कहने लगे॥ १२॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं कभी भी लेशमात्र क्रोध नहीं करता। आपकी पुत्रीके द्वारा मुझे पीड़ा पहुँचाये जानेपर भी मैंने अभीतक आपको शाप नहीं दिया है॥ १३॥

हे महीपते! इस समय मुझ निरपराधके नेत्रोंमें पीड़ा उत्पन्न हो रही है। मैं जानता हूँ कि इसी पापकर्मके कारण आप कष्टमें पड़ गये हैं॥ १४॥

भगवतीके भक्तके प्रति घोर अपराध करके कौन-सा व्यक्ति सुख पा सकता है, चाहे साक्षात् शंकर ही उसके रक्षक क्यों न हों॥ १५॥

हे महीपाल! मैं क्या करूँ? मैं अन्धा हो गया हूँ और बुढ़ापेने मुझे घेर रखा है। हे राजन्! अब मुझ अन्धेकी सेवा कौन करेगा?॥ १६॥

राजा बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मेरे बहुत-से सेवक दिन-रात आपकी सेवा करेंगे। आप अपराध क्षमा करें; क्योंकि तपस्वीलोग अत्यन्त अल्प क्रोधवाले होते हैं॥ १७॥

च्यवन बोले—हे राजन्! मैं अन्धा हूँ, अतः अकेले रहकर मैं तप करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? क्या आपके वे सेवक सम्यक् रूपसे मेरा प्रिय कार्य कर सकेंगे?॥ १८॥

हे राजन्! यदि आप क्षमा करनेके लिये मुझसे कहते हैं तो मेरी एक बात मान लीजिये। मेरी सेवाके लिये कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या मुझे सौंप दीजिये॥ १९॥

हे महाराज! मैं आपकी इस कन्यापर प्रसन्न हूँ। हे महामते! मैं तपस्या करूँगा और वह मेरी सेवा करेगी॥ २०॥

हे राजन्! ऐसा करनेपर मुझे सुख मिलेगा और

आपका भी कल्याण होगा। मेरे प्रसन्न हो जानेपर आपके सैनिकोंको भी सुख प्राप्त होगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ २१॥

हे भूप! मनमें यह विचार करके आप कन्यादान कर दीजिये। इसमें आपको कुछ भी दोष नहीं लगेगा; क्योंकि मैं एक संयमशील तपस्वी हूँ॥ २२॥

व्यासजी बोले—हे भारत! मुनिकी बात सुनकर राजा शर्याति घोर चिन्तामें पड़ गये। 'दूँगा' या 'नहीं दूँगा'—कुछ भी उन्होंने नहीं कहा॥ २३॥

वे सोचने लगे कि देवकन्याके तुल्य अपनी यह पुत्री इस अन्धे, कुरूप तथा बूढ़े मुनिको देकर मैं कैसे सुखी रह सकता हूँ!॥ २४॥

ऐसा अल्पबुद्धि तथा पापी कौन होगा, जो शुभ तथा अशुभका ज्ञान रखते हुए भी अपने सुखके लिये अपनी ही कन्याके सांसारिक सुखको नष्ट कर देगा!॥ २५॥

अन्धे तथा वृद्ध च्यवनमुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके सुन्दर भौंहोंवाली तथा कामबाणसे व्यथित वह कन्या उनके साथ किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करेगी!॥ २६॥

अपने अनुकूल पति पाकर भी यौवनावस्थामें [किसी स्त्रीके द्वारा] और वह भी विशेष रूपसे रूपसम्पन्न स्त्रीके द्वारा कामको जीतना अत्यन्त कठिन है तो फिर इस वृद्ध तथा नेत्रहीन पतिको पाकर उसकी क्या स्थिति होगी?॥ २७॥

तपस्वी गौतमऋषिको पतिरूपमें प्राप्त करके रूप तथा यौवनसे युक्त सुन्दरी अहल्या इन्द्रके द्वारा शीघ्र ही ठग ली गयी थी और बादमें इसे धर्मविरुद्ध जानकर उसके पति गौतमने शाप दे दिया था। अतएव मुझे कष्ट भले ही मिले, किंतु मैं मुनिको अपनी पुत्री सुकन्या नहीं दूँगा॥ २८-२९॥

ऐसा विचार करके राजा शर्याति सन्तप्त मनसे अपने घर चले गये और अत्यन्त विषादग्रस्त होकर उन्होंने मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे मन्त्रणा की—हे मन्त्रियो! आपलोग बताइये कि मैं इस समय क्या करूँ? अपनी पुत्री मुनिको सौंप दूँ अथवा स्वयं दुःख भोगूँ? अब आपलोग मिलकर इसपर सम्यक् विचार कीजिये कि मेरा हित किस प्रकार होगा?॥ ३०-३१½॥

मन्त्रिगण बोले—हे महाराज! इस विषम संकटकी स्थितिमें हम आपसे क्या कहें? यह अत्यन्त लावण्यमयी सुकन्या इस अभागेको देना कैसे उचित होगा?॥ ३२½॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपने पिता तथा मन्त्रियोंको चिन्तासे आकुल देखकर सुकन्या उनका अभिप्राय समझ गयी और मुसकराकर बोली—हे पिताजी! आज आप चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियोंवाले किसलिये हैं? निश्चित ही आप मेरे लिये ही अत्यन्त दुःखार्त तथा म्लानमुख हैं। अतएव हे पिताजी! मैं अभी भयाक्रान्त मुनि च्यवनके पास जाकर और उन्हें आश्वस्त करके अपनेको अर्पितकर प्रसन्न करूँगी॥ ३३—३५½॥

इस प्रकार सुकन्याने जो बात कही, उसे सुनकर प्रसन्न मनवाले राजा शर्यातिने सचिवोंके समक्ष उससे कहा—हे पुत्रि! तुम अबला हो, अतएव वृद्धतासे ग्रस्त उस अन्धे तथा विशेष रूपसे क्रोधी मुनिकी सेवा उस वनमें कैसे कर पाओगी?॥ ३६-३७½॥

मैं इस प्रकारके रूपसे युक्त तथा रतिके तुल्य सुन्दरी कन्याको वार्धक्यसे ग्रस्त शरीरवाले अन्धे मुनिको अपने सुखके लिये भला कैसे दे दूँ? पिताको चाहिये कि वह अपनी पुत्री समान अवस्था, जाति तथा सामर्थ्यवाले और धन-धान्यसे सम्पन्न व्यक्तिको सौंपे, किंतु धनहीनको कभी भी नहीं सौंपे॥ ३८-३९½॥

हे विशाल नयनोंवाली पुत्रि! कहाँ तो तुम ऐसी रूपवती और कहाँ वनमें रहनेवाला वह वृद्ध मुनि! ऐसी स्थितिमें मैं अपनी पुत्रीको उस अयोग्यको भला कैसे अर्पित करूँ?॥ ४०½॥

हे मनोहरे! हे कमलपत्रके समान नेत्रोंवाली! छोटी-सी पर्णकुटीमें जो सदा निवास करता है, ऐसे वरके साथ तुम्हारे विवाहकी कल्पना भी मैं कैसे कर सकता हूँ!॥ ४१½॥

मेरी तथा मेरे सैनिकोंकी मृत्यु हो जाय यह तो मेरे लिये उत्तम है, किंतु हे पिकभाषिणि! तुम्हें एक अन्धेको

सौंप देना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है॥ ४२१/२ ॥

होनहार तो होकर ही रहता है, किंतु मैं अपने धैर्यका त्याग नहीं करूँगा और हे सुश्रोणि! तुम निश्चिन्त रहो; मैं तुम्हें उस अन्धे मुनिको कभी भी नहीं सौंप सकता॥ ४३१/२ ॥

हे पुत्रि! मेरा राज्य और यहाँतक कि मेरा शरीर भी रहे अथवा चला जाय, किंतु मैं उस नेत्रहीन मुनिको तुम्हें किसी भी स्थितिमें नहीं दूँगा॥ ४४१/२ ॥

तत्पश्चात् पिताका वह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न मुखवाली सुकन्याने उनसे यह स्नेहयुक्त वचन कहा—॥ ४५१/२ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! मेरे लिये आप चिन्ता न करें और अब मुझे मुनिको सौंप दीजिये; क्योंकि मेरे लिये ऐसा कर देनेसे सम्पूर्ण प्रजाको सुख प्राप्त होगा। मैं हर प्रकारसे सन्तुष्ट होकर उस निर्जन वनमें अपने परम पवित्र वृद्ध पतिकी अगाध श्रद्धासे सेवा करूँगी और शास्त्रसम्मत सती-धर्मका पूर्ण तत्परताके साथ पालन करूँगी। हे निष्पाप पिताजी! भोग-विलासमें मेरी अभिरुचि नहीं है। आप अपने चित्तमें स्थिरता रखिये॥ ४६—४८१/२ ॥

व्यासजी बोले—उस सुकन्याकी बातें सुनकर सभी मन्त्री आश्चर्यमें पड़ गये और राजा भी परम प्रसन्न होकर मुनिके पास गये॥ ४९१/२ ॥

वहाँ पहुँचकर उन तपोनिधिको सिर झुकाकर प्रणाम करके राजाने कहा—हे स्वामिन्! हे प्रभो! मेरी इस पुत्रीको आप अपनी सेवाके लिये विधिपूर्वक स्वीकार कीजिये॥ ५०१/२ ॥

ऐसा कहकर उन राजाने विधि-विधानसे विवाह सम्पन्न करके अपनी पुत्री मुनिको सौंप दी और उस कन्याको ग्रहण करके च्यवनऋषि भी प्रसन्न हो गये। मुनिने राजाके द्वारा प्रदत्त उपहार ग्रहण नहीं किया। अपनी सेवाके लिये उन्होंने केवल राजकुमारीको ही स्वीकार किया॥ ५१-५२१/२ ॥

उन मुनिके प्रसन्न हो जानेपर सैनिकोंको सुख प्राप्त हो गया। उसी समयसे राजा भी परम आह्लादित रहने लगे॥ ५३१/२ ॥

जब राजा शर्यातिने मुनिको पुत्री सौंपकर घर चलनेका विचार किया, तब कोमल अंगोंवाली राजकुमारी सुकन्या राजासे कहने लगी—॥ ५४१/२ ॥

सुकन्या बोली—हे पिताजी! आप मेरे वस्त्र तथा आभूषण ले लीजिये और पहननेके लिये मुझे वल्कल एवं उत्तम मृगचर्म प्रदान कीजिये। मैं मुनिपत्नियोंका वेष बनाकर तपमें निरत रहती हुई पतिसेवा करूँगी; जिससे पृथ्वीतल, रसातल और स्वर्गलोकमें भी आपकी कीर्ति अक्षुण्ण रहेगी; परलोकके सुखके लिये मैं दिन-रात मुनिकी सेवा करती रहूँगी॥ ५५—५७१/२ ॥

सुन्दर तथा यौवनसम्पन्न अपनी पुत्री मुझ सुकन्याको एक अन्धे तथा वृद्ध मुनिको सौंपकर मेरे आचरण-च्युत हो जानेकी शंका करके आप तनिक भी चिन्ता न कीजियेगा॥ ५८१/२ ॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें वसिष्ठकी धर्मपत्नी अरुन्धती थी, उसी प्रकार मैं भी होऊँगी और जिस प्रकार अत्रिकी साध्वी भार्या अनसूया प्रसिद्ध हुईं, उसी प्रकार आपकी पुत्री मैं सुकन्या भी [अपने पातिव्रत्यके प्रभावसे] कीर्ति बढ़ानेवाली होऊँगी; इसमें आपको सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ५९-६०१/२ ॥

सुकन्याकी बात सुनकर महान् धर्मज्ञ राजा शर्याति वस्त्रके रूपमें उसे मृगचर्म प्रदान करके रोने लगे। उस सुन्दर मुसकानवाली अपनी पुत्रीको शीघ्र ही आभूषण तथा वस्त्र त्यागकर मुनिवेष धारण किये देखकर राजा म्लानमुख होकर वहींपर ठहरे रहे॥ ६१-६२१/२ ॥

अपनी पुत्रीको वल्कल तथा मृगचर्म धारण की हुई देखकर सभी रानियाँ भी रो पड़ीं। वे परम शोकाकुल हो उठीं और काँपने लगीं॥ ६३१/२ ॥

[व्यासजी बोले—] हे राजन्! तत्पश्चात् अपनी उस समर्पित पुत्री सुकन्यासे विदा लेकर तथा उसे वहीं छोड़कर चिन्तित राजा मन्त्रियोंके साथ अपने नगरको चले गये॥ ६४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'च्यवन और सुकन्याके गार्हस्थ्यका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

सुकन्याकी पतिसेवा तथा वनमें अश्विनीकुमारोंसे भेंटका वर्णन

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] राजा शर्यातिके चले जानेपर सुकन्या अपने पति च्यवनमुनिकी सेवामें संलग्न हो गयी। धर्मपरायण वह उस आश्रममें अग्नियोंकी सेवामें सदा निरत रहने लगी॥ १॥

सर्वदा पतिसेवामें संलग्न रहनेवाली वह बाला विविध प्रकारके स्वादिष्ट फल तथा कन्द-मूल लाकर मुनिको अर्पण करती थी॥ २॥

वह [शीतकालमें] ऊष्ण जलसे उन्हें शीघ्रतापूर्वक स्नान करानेके पश्चात् मृगचर्म पहनाकर पवित्र आसनपर विराजमान कर देती थी। पुन: उनके आगे तिल, जौ, कुशा और कमण्डलु रखकर उनसे कहती थी—मुनिश्रेष्ठ! अब आप अपना नित्यकर्म करें॥ ३-४॥

मुनिका नित्यकर्म समाप्त हो जानेपर वह सुकन्या पतिका हाथ पकड़कर उठाती और पुन: किसी आसन अथवा कोमल शय्यापर उन्हें बिठा देती थी॥ ५॥

तत्पश्चात् वह राजकुमारी पके हुए फल तथा भली-भाँति सिद्ध किये गये नीवारान्न (धान्यविशेष) च्यवन-मुनिको भोजन कराती थी॥ ६॥

वह सुकन्या भोजन करके तृप्त हुए पतिको आदरपूर्वक आचमन करानेके पश्चात् बड़े प्रेमके साथ उन्हें ताम्बूल तथा पूगीफल प्रदान करती थी॥ ७॥

च्यवनमुनिके मुखशुद्धि कर लेनेपर सुकन्या उन्हें सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् उनसे आज्ञा लेकर वह अपने शरीर-सम्बन्धी कृत्य सम्पन्न करती थी॥ ८॥

तत्पश्चात् स्वयं फलाहार करके वह पुन: मुनिके पास जाकर नम्रतापूर्वक उनसे कहती थी—'हे प्रभो! मुझे क्या आज्ञा दे रहे हैं? यदि आपकी सम्मति हो तो मैं अब आपके चरण दबाऊँ।' इस प्रकार पतिपरायणा वह सुकन्या उनकी सेवामें सदा संलग्न रहती थी॥ ९-१०॥

सायंकालीन हवन समाप्त हो जानेपर वह सुन्दरी स्वादिष्ट तथा मधुर फल लाकर मुनिको अर्पित करती थी। पुन: उनकी आज्ञासे भोजनसे बचे हुए आहारको बड़े प्रेमके साथ स्वयं ग्रहण करती थी। इसके बाद अत्यन्त कोमल तथा सुन्दर आसन बिछाकर उन्हें प्रेमपूर्वक उसपर लिटा देती थी॥ ११-१२॥

अपने प्रिय पतिके सुखपूर्वक शयन करनेपर वह सुन्दरी उनके पैर दबाने लगती थी। उस समय क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कुलीन स्त्रियोंके धर्मके विषयमें उनसे पूछा करती थी॥ १३॥

चरण दबा करके रातमें वह भक्तिपरायणा सुकन्या जब यह जान जाती थी कि च्यवनमुनि सो गये हैं, तब वह भी उनके चरणोंके पास ही सो जाती थी॥ १४॥

ग्रीष्मकालमें अपने पति च्यवनमुनिको बैठा देखकर वह सुन्दरी सुकन्या ताड़के पंखेसे शीतल वायु करती हुई उनकी सेवामें तत्पर रहती थी। शीतकालमें सूखी लकड़ियाँ एकत्रकर उनके सम्मुख प्रज्वलित अग्नि रख करके वह उनसे बार-बार पूछा करती थी कि आप सुखपूर्वक तो हैं?॥ १५-१६॥

ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर वह सुकन्या जल, पात्र तथा मिट्टी पतिके पास रखकर उन्हें शौचके लिये उठाती थी। इसके बाद उन्हें आश्रमसे कुछ दूर ले जाकर बैठा देनेके बाद वहाँसे स्वयं कुछ दूर हटकर बैठी रहती थी। 'मेरे पतिदेव शौच कर चुके होंगे'—ऐसा जानकर वह उनके पास जा करके उन्हें उठाती थी और आश्रममें ले आकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक एक सुन्दर आसनपर बिठा देती थी। तत्पश्चात् मिट्टी और जलसे विधिवत् उनके दोनों



चरण धोकर फिर आचमनपात्र दे करके दन्तधावन

(दातौन) ले आती थी। शास्त्रोक्त दातौन मुनिको देनेके बाद वह राजकुमारी मुनिके स्नानके लिये लाये गये शुद्ध तथा परम पवित्र जलको गरम करने लगती थी। तत्पश्चात् उस जलको ले आकर प्रेमपूर्वक उनसे पूछती थी—'हे ब्रह्मन्! आप क्या आज्ञा दे रहे हैं? आपने दन्तधावन तो कर लिया? उष्ण जल तैयार है, अत: अब आप मन्त्रोच्चारपूर्वक स्नान कर लीजिये। हवन और प्रात:कालीन संध्याका समय उपस्थित है; आप विधिपूर्वक अग्निहोत्र करके देवताओंका पूजन कीजिये'॥ १७—२३॥

इस प्रकार वह श्रेष्ठ सुकन्या तपस्वी पति प्राप्तकर तप तथा नियमके साथ प्रेमपूर्वक प्रतिदिन उनकी सेवा करती रहती थी॥ २४॥

सुन्दर मुखवाली वह सुकन्या अग्नि तथा अतिथियोंकी सेवा करती हुई प्रसन्नतापूर्वक सदा च्यवनमुनिकी सेवामें तल्लीन रहती थी॥ २५॥

किसी समय सूर्यके पुत्र दोनों अश्विनीकुमार क्रीड़ा करते हुए च्यवनमुनिके आश्रमके पास आ पहुँचे॥ २६॥

उन अश्विनीकुमारोंने जलमें स्नान करके निवृत्त हुई तथा अपने आश्रमकी ओर जाती हुई उस सर्वांगसुन्दरी सुकन्याको देख लिया॥ २७॥

देवकन्याके समान कान्तिवाली उस सुकन्याको देखकर दोनों अश्विनीकुमार अत्यधिक मुग्ध हो गये और शीघ्र ही उसके पास पहुँचकर आदरपूर्वक कहने लगे—॥ २८॥

हे वरारोहे! थोड़ी देर ठहरो। हे गजगामिनि! हम दोनों सूर्यदेवके पुत्र अश्विनीकुमार तुमसे कुछ पूछनेके लिये यहाँ आये हैं। हे शुचिस्मिते! सच-सच बताओ कि तुम किसकी पुत्री हो, तुम्हारे पति कौन हैं? हे चारुलोचने! इस सरोवरमें स्नान करनेके लिये तुम अकेली ही उद्यानमें क्यों आयी हुई हो?॥ २९-३०॥

हे कमललोचने! तुम तो सौन्दर्यमें दूसरी लक्ष्मीकी भाँति प्रतीत हो रही हो। हे शोभने! हम यह रहस्य जानना चाहते हैं, तुम बताओ॥ ३१॥

हे कान्ते! हे चंचल नयनोंवाली! जब तुम्हारे ये कोमल तथा नग्न चरण कठोर भूमिपर पड़ते हैं तथा आगेकी ओर बढ़ते हैं, तब ये हमारे हृदयमें व्यथा उत्पन्न करते हैं। हे तन्वंगि! तुम विमानपर चलनेयोग्य हो; तब तुम नंगे पाँव पैदल ही क्यों चल रही हो? इस वनमें तुम्हारा भ्रमण क्यों हो रहा है?॥ ३२-३३॥

तुम सैकड़ों दासियोंको साथ लेकर घरसे क्यों नहीं निकली? हे वरानने! तुम राजपुत्री हो अथवा अप्सरा हो, यह सच-सच बता दो॥ ३४॥

तुम्हारी माता धन्य हैं, जिनसे तुम उत्पन्न हुई हो। तुम्हारे वे पिता भी धन्य हैं। हे अनघे! तुम्हारे पतिके भाग्यके विषयमें तो हम तुमसे कह ही नहीं सकते॥ ३५॥

हे सुलोचने! यहाँकी भूमि देवलोकसे भी बढ़कर है। पृथ्वीतलपर पड़ता हुआ तुम्हारा चरण इसे पवित्र बना रहा है॥ ३६॥

इस वनमें रहनेवाले सभी मृग तथा दूसरे पक्षी जो तुम्हें देख रहे हैं, वे परम भाग्यशाली हैं। यह भूमि भी परम पवित्र हो गयी है॥ ३७॥

हे सुलोचने! तुम्हारी अधिक प्रशंसा क्या करें? अब तुम सत्य बता दो कि तुम्हारे पिता कौन हैं और तुम्हारे पतिदेव कहाँ रहते हैं? उन्हें आदरपूर्वक देखनेकी हमारी इच्छा है॥ ३८॥

व्यासजी बोले—अश्विनीकुमारोंकी यह बात सुनकर परम सुन्दरी राजकुमारी सुकन्या अत्यन्त लज्जित हो गयी। देवकन्याके सदृश वह राजपुत्री उनसे कहने लगी—॥ ३९॥

आपलोग मुझे राजा शर्यातिकी पुत्री तथा च्यवनमुनिकी भार्या समझें। मैं एक पतिव्रता स्त्री हूँ। मेरे पिताजीने स्वेच्छासे मुझे इन्हें सौंप दिया है॥ ४०॥

हे देवताओ! मेरे पतिदेव वृद्ध तथा नेत्रहीन हैं। वे परम तपस्वी हैं। मैं प्रसन्न मनसे दिन-रात उनकी सेवा करती रहती हूँ॥ ४१॥

आप दोनों कौन हैं और यहाँ क्यों पधारे हुए हैं? मेरे

पतिदेव इस समय आश्रममें विराजमान हैं। आपलोग वहाँ चलकर आश्रमको पवित्र कीजिये॥ ४२॥

हे राजन्! अश्विनीकुमारोंने सुकन्याकी बात सुनकर उससे कहा—हे कल्याणि! तुम्हारे पिताने तुम्हें उन तपस्वीको कैसे सौंप दिया?॥ ४३॥

तुम तो बादलमें चमकनेवाली विद्युत्‌की भाँति इस वन-प्रदेशमें सुशोभित हो रही हो। हे भामिनि! तुम्हारे सदृश स्त्री तो देवताओंके यहाँ भी नहीं देखी गयी है॥ ४४॥

काले केशपाशवाली तुम दिव्य वस्त्र तथा सर्वविध आभूषण धारण करनेके योग्य हो। इन वल्कल वस्त्रोंको धारण करके तुम शोभा नहीं पा रही हो॥ ४५॥

हे रम्भोरु! हे विशालनेत्रे! हे प्रिये! विधाताने यह कैसा मूर्खतापूर्ण कृत्य किया है, जो कि तुम वार्धक्यसे पीड़ित इस नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें प्राप्त करके इस वनमें महान् कष्ट भोग रही हो!॥ ४६॥

हे नृत्यविशारदे! तुमने इन्हें व्यर्थ ही वरण किया। नवीन अवस्था प्राप्त करके तुम उनके साथ शोभा नहीं पा रही हो। भलीभाँति लक्ष्य साध करके कामदेवके द्वारा वेगपूर्वक छोड़े गये बाण किसपर गिरेंगे; तुम्हारे पति तो इस प्रकारके [असमर्थ] हैं॥ ४७॥

विधाता निश्चय ही मन्द बुद्धिवाले हैं, जो उन्होंने नवयौवनसे सम्पन्न तुम्हें नेत्रहीनकी पत्नी बना दिया। हे विशाललोचने! तुम इनके योग्य नहीं हो। अत: हे चारुलोचने! तुम किसी दूसरेको अपना पति बना लो॥ ४८॥

हे कमललोचने! ऐसे नेत्रहीन मुनिको पतिरूपमें पाकर तुम्हारा जीवन व्यर्थ हो गया है। हमलोग इस तरहसे वनमें तुम्हारे निवास करने तथा वल्कलवस्त्र धारण करनेको उचित नहीं मानते हैं॥ ४९॥

अत: हे प्रशस्त अंगोंवाली! तुम सम्यक् विचार करके हम दोनोंमेंसे किसी एकको अपना पति बना लो। हे सुलोचने! हे मानिनि! हे सुन्दरि! तुम इस [अन्धे तथा बूढ़े] मुनिकी सेवा करती हुई अपने यौवनको व्यर्थ क्यों कर रही हो?॥ ५०॥

भाग्यसे हीन तथा पोषण-भरण और रक्षाके सामर्थ्यसे रहित उस मुनिकी सेवा तुम क्यों कर रही हो? हे निर्दोष अंगोंवाली! सभी प्रकारके सुखोपभोगोंसे वंचित इस मुनिको छोड़कर तुम हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो॥ ५१॥

हे कान्ते! हमें वरण करके तुम इन्द्रके नन्दनवनमें तथा कुबेरके चैत्ररथवनमें स्वेच्छापूर्वक विहार करो। हे मानिनि! तुम इस अन्धे तथा वृद्धके साथ सुदीर्घकालतक अपना जीवन कैसे बिताओगी?॥ ५२॥

तुम समस्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न एक राजकुमारी हो तथा सांसारिक हाव-भावोंको भलीभाँति जानती हो। अत: तुम भाग्यहीन स्त्रीकी भाँति इस निर्जन वनमें अपना समय व्यर्थ क्यों बिता रही हो?॥ ५३॥

अत: हे पिकभाषिणि! हे सुमुखि! हे विशालनेत्रे! तुम अपने सुखके लिये हम दोनोंमेंसे किसी एकको स्वीकार कर लो। कृश कटि-प्रदेशवाली हे राजकुमारी! तुम इस वृद्ध मुनिको शीघ्र छोड़कर हमारे साथ देवभवनोंमें चलकर नानाविध सुखोंका भोग करो॥ ५४॥

हे सुन्दर केशोंवाली! हे मृगनयनी! इस निर्जन वनमें एक वृद्धके साथ रहते हुए तुम्हें कौन-सा सुख है? एक तो तुम्हारी यह नयी युवावस्था और उसपर भी एक अन्धेकी सेवा तुम्हें करनी पड़ रही है। हे राजकुमारी! क्या दु:ख भोगना ही तुम्हारा अभीष्ट है?॥ ५५॥

हे चन्द्रमुखी! तुम अत्यन्त कोमल हो, अत: [वनसे] तुम्हारा इस प्रकार फल तथा जल ले आना कदापि उचित नहीं है॥ ५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'अश्विनीकुमारोंका सुकन्याके प्रति बोधवचन-वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

अश्विनीकुमारोंका च्यवनमुनिको नेत्र तथा नवयौवनसे सम्पन्न बनाना

व्यासजी बोले—उन अश्विनीकुमारोंकी वह बात सुनकर मितभाषिणी राजपुत्री सुकन्या थर-थर काँपने लगी और धैर्य धारण करके उनसे बोली॥ १॥

हे देवताओ! आप दोनों सूर्यपुत्र हैं। आपलोग सर्वज्ञ तथा देवताओंमें सम्मान्य हैं। मुझ पतिव्रता तथा धर्मपरायणा स्त्रीके प्रति आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ २॥

हे सुरश्रेष्ठो! मेरे पिताजीने मुझे इन्हीं योगपरायण मुनिको सौंप दिया है, तब मैं व्यभिचारिणी स्त्रियोंके द्वारा सेवित उस मार्गका अनुसरण कैसे करूँ?॥ ३॥

कश्यपसे उत्पन्न हुए भगवान् सूर्य समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं। ये सब कुछ देखते रहते हैं। [इन्हींके साक्षात् पुत्ररूप] आपलोगोंको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ४॥

कोई भी कुलीन कन्या अपने पतिको छोड़कर किसी अन्य पुरुषको इस सारहीन जगत्‌में भला कैसे स्वीकार कर सकती है? धर्मसिद्धान्तोंको जाननेवाले आप दोनों अपनी इच्छाके अनुसार जहाँ चाहें चले जाइये, अन्यथा हे निष्पाप देवताओ! मैं आपलोंगोको शाप दे दूँगी; पतिकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाली मैं महाराज शर्यातिकी पुत्री सुकन्या हूँ॥ ५-६॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सुकन्याकी यह बात सुनकर अश्विनीकुमार बहुत विस्मयमें पड़ गये। उसके बाद मुनि च्यवनके भयसे सशंकित उन दोनोंने सुकन्यासे कहा—॥ ७॥

सुन्दर अंगोंवाली हे राजपुत्रि! तुम्हारे इस पतिधर्मसे हम दोनों परम प्रसन्न हैं। हे सुश्रोणि! तुम वर माँगो, हम तुम्हारे कल्याणार्थ अवश्य देंगे॥ ८॥

हे प्रमदे! तुम यह निश्चय जान लो कि हम देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं। हम [अपनी चिकित्सासे] तुम्हारे पतिको रूपवान् तथा युवा बना देंगे। हे चातुर्यपण्डिते! जब हम ऐसा कर दें, तब तुम समानरूप और देहवाले हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना॥ ९-१०॥

तब उन दोनोंकी बात सुनकर सुकन्याको बड़ा आश्चर्य हुआ। अपने पतिके पास जाकर वह सुकन्या अश्विनीकुमारोंके द्वारा कही गयी वह अद्भुत बात उनसे कहने लगी॥ ११॥

सुकन्या बोली—हे स्वामिन्! आपके आश्रममें सूर्यपुत्र दोनों अश्विनीकुमार आये हुए हैं। हे भृगुनन्दन! दिव्य देहवाले उन देवताओंको मैंने स्वयं देखा है॥ १२॥

मुझ सर्वांगसुन्दरीको देखते ही वे दोनों कामासक्त हो गये। हे स्वामिन्! उन्होंने मुझसे यह बात कही—'हमलोग तुम्हारे पति इन च्यवनमुनिको निश्चय ही नवयौवनसे सम्पन्न, दिव्य शरीरवाला तथा नेत्रोंसे युक्त बना देंगे, इसमें यह एक शर्त है, उसे तुम मुझसे सुन लो। जब हम तुम्हारे पतिको अपने समान अंग तथा रूपवाला बना दें, तब तुम्हें हम तीनोंमेंसे किसी एकको पति चुन लेना होगा'॥ १३—१५॥

उनकी यह बात सुनकर आपसे इस अद्भुत कार्यके विषयमें पूछनेके लिये मैं यहाँ आयी हूँ। हे साधो! अब आप मुझे बतायें कि इस संकटमय कार्यके आ जानेपर मुझे क्या करना चाहिये? देवताओंकी माया बड़ी दुर्बोध होती है। उन दोनोंके इस छद्मको मैं नहीं समझ पा रही हूँ। अतः हे सर्वज्ञ! अब आप ही मुझे आदेश दीजिये, आपकी जो इच्छा होगी, मैं वही करूँगी॥ १६-१७॥

च्यवन बोले—हे कान्ते! हे सुव्रते! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम देवताओंके श्रेष्ठ चिकित्सक अश्विनीकुमारोंके समीप जाओ और उन्हें मेरे पास शीघ्र ले आओ। तुम उनकी शर्त तुरंत स्वीकार कर लो, इसमें किसी प्रकारका सोच-विचार नहीं करना चाहिये॥ १८½॥

व्यासजी बोले—इस प्रकार च्यवनमुनिकी आज्ञा पा जानेपर वह अश्विनीकुमारोंके पास जाकर उनसे बोली—हे देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमारो! आपलोग प्रतिज्ञाके अनुसार

शीघ्र ही कार्य करें॥ १९$^{१}/_{२}$॥

सुकन्याकी बात सुनकर वे अश्विनीकुमार वहाँ आये और राजकुमारीसे बोले—'तुम्हारे पति इस सरोवरमें प्रवेश करें।' तब रूपप्राप्तिके लिये च्यवनमुनि शीघ्रतापूर्वक सरोवरमें प्रविष्ट हो गये। उनके बादमें दोनों अश्विनीकुमारोंने भी उस उत्तम सरोवरमें प्रवेश किया॥ २०-२१$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर वे तीनों तुरंत ही उस सरोवरसे बाहर निकल आये। उन तीनोंका शरीर दिव्य था, वे समान रूपवाले थे और एकसमान युवा बन गये थे। शरीरके सभी समान अंगोंवाले वे तीनों युवक दिव्य कुण्डलों तथा आभूषणोंसे सुशोभित थे॥ २२-२३॥

वे सभी एक साथ बोल उठे—'हे वरवर्णिनि! हे भद्रे! हे अमलानने! हम लोगोंमें जिसे तुम चाहती हो, उसका पतिरूपमें वरण कर लो। हे वरानने! जिसमें तुम्हारी सबसे अधिक प्रीति हो, उसे पतिरूपमें चुन लो॥ २४$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—देवकुमारोंके समान प्रतीत होनेवाले उन तीनोंको रूप, अवस्था, स्वर, वेषभूषा तथा आकृतिमें पूर्णतः एक-जैसा देखकर वह सुकन्या बड़े असमंजसमें पड़ गयी॥ २५-२६॥

वह अपने पति [च्यवनमुनि]-को ठीक-ठीक पहचान नहीं पा रही थी, अतः व्याकुल होकर सोचने लगी—मैं क्या करूँ? ये तीनों देवकुमार एक-जैसे हैं। अतः मैं यह नहीं समझ पा रही हूँ कि इनमेंसे मैं पतिरूपमें किसका वरण करूँ? मैं तो बड़े संशयकी स्थितिमें पड़ गयी हूँ। दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने यह विचित्र इन्द्रजाल यहाँ रच डाला है; इस स्थितिमें मुझे अब क्या करना चाहिये? मेरे लिये तो यह मृत्यु ही उपस्थित हो गयी है। मैं अपने पतिको छोड़कर किसी दूसरेको कभी नहीं चुन सकती, चाहे वह कोई परम सुन्दर देवता ही क्यों न हो—यह मेरा दृढ़ विचार है॥ २७—२९$^{१}/_{२}$॥

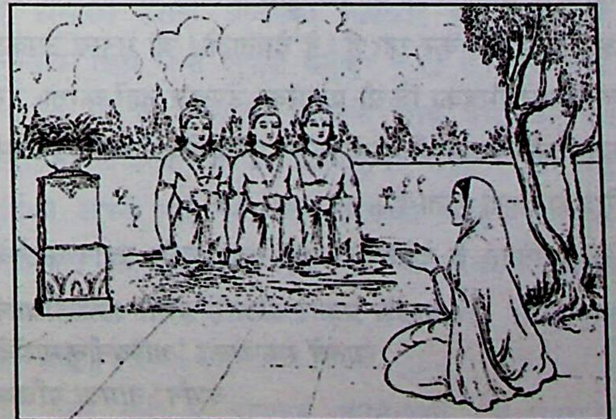
इस प्रकार मनमें भलीभाँति सोचकर क्षीण कटि-प्रदेशवाली वह सुकन्या कल्याणस्वरूपिणी पराम्बा भगवती भुवनेश्वरीके ध्यानमें लीन हो गयी और उनकी स्तुति करने लगी॥ ३०$^{१}/_{२}$॥

सुकन्या बोली—हे जगदम्बे! मैं महान् कष्टसे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पातिव्रत्य धर्मकी रक्षा करें; मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करती हूँ। हे पद्मोद्भवे! आपको नमस्कार है। हे शंकरप्रिये! हे देवि! आपको नमस्कार है। हे विष्णुकी प्रिया लक्ष्मी! हे वेदमाता सरस्वती! आपको नमस्कार है॥ ३१-३२$^{१}/_{२}$॥

आपने ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्का सृजन किया है। आप ही सावधान होकर जगत्का पालन करती हैं और [प्रलयकालमें] लोक-शान्तिके लिये इसे अपनेमें लीन भी कर लेती हैं॥ ३३$^{१}/_{२}$॥

आप ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशकी सुसम्मत जननी हैं। आप अज्ञानियोंको बुद्धि तथा ज्ञानियोंको सदा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परम पुरुषके लिये प्रिय दर्शनवाली आप आज्ञामयी तथा पूर्ण प्रकृतिस्वरूपिणी हैं। आप श्रेष्ठ विचारवाले प्राणियोंको भोग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं। आप ही अज्ञानियोंको दुःख देती हैं तथा सात्त्विक प्राणियोंके सुखका साधन भी आप ही हैं। हे माता! आप ही योगिजनोंको सिद्धि, विजय तथा कीर्ति भी प्रदान करती हैं॥ ३४—३६$^{१}/_{२}$॥

हे माता! महान् असमंजसमें पड़ी हुई मैं इस समय आपकी शरणमें आयी हूँ। आप मेरे पतिको दिखानेकी कृपा करें। मैं इस समय शोक-सागरमें डूबी हुई हूँ; क्योंकि इन दोनों देवताओं (अश्विनीकुमारों)-ने अत्यन्त कपटपूर्ण चरित्र उपस्थित कर दिया है। मेरी बुद्धि तो कुण्ठित हो गयी है। मैं इनमें किसका वरण करूँ? हे सर्वज्ञे! मेरे पातिव्रत्यपर सम्यक् ध्यान देकर आप मेरे पतिका दर्शन करा दें॥ ३७-३८$^{१}/_{२}$॥



व्यासजी बोले—इस प्रकार सुकन्याके स्तुति करनेपर भगवती त्रिपुरसुन्दरीने शीघ्र ही सुखका उदय करनेवाला ज्ञान उसके हृदयमें उत्पन्न कर दिया॥ ३९१/२ ॥

तदनन्तर [अपने पतिको पा लेनेका] मनमें निश्चय करके साध्वी सुकन्याने समान रूप तथा अवस्थावाले उन तीनोंपर भलीभाँति दृष्टिपात करके अपने पतिका वरण कर लिया॥ ४०१/२ ॥

इस प्रकार सुकन्याके द्वारा च्यवनमुनिके वरण कर लिये जानेपर वे दोनों देवता परम सन्तुष्ट हुए और सुकन्याका सतीधर्म देखकर उन्होंने उसे अति प्रसन्नतापूर्वक वर प्रदान किया॥ ४११/२ ॥

तत्पश्चात् भगवतीकी कृपासे प्रसन्नताको प्राप्त वे दोनों देवश्रेष्ठ अश्विनीकुमार मुनिसे आज्ञा लेकर तुरंत वहाँसे प्रस्थान करनेको उद्यत हो गये॥ ४२१/२ ॥

सुन्दर रूप, नेत्र, यौवन तथा अपनी भार्याको पाकर च्यवनमुनि अत्यन्त हर्षित हुए। उन महातेजस्वी मुनिने अश्विनीकुमारोंसे यह वचन कहा—हे देववरो! आप दोनोंने मेरा यह महान् उपकार किया है। क्या कहूँ, ऐसा हो जानेसे इस सुन्दर संसारमें अब मुझे परम सुख मिल गया है। इसके पूर्व मुझ अन्धे, अत्यन्त वृद्ध तथा भोग-सामर्थ्यसे हीन पुरुषको ऐसी सुन्दर केशपाशवाली भार्या पाकर भी इस वनमें सदा दुःख-ही-दुःख रहता था॥ ४३—४५१/२ ॥

आपलोगोंने मुझे नेत्र, युवावस्था तथा अद्भुत रूप प्रदान किया है, अतः मैं भी आपका कुछ उपकार करूँ; इसके लिये आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। हे देवताओ! जो मनुष्य उपकार करनेवाले मित्रका किसी प्रकारका उपकार नहीं करता, उस मनुष्यको धिक्कार है। ऐसा मनुष्य पृथ्वीलोकमें अपने उपकारी मित्रका ऋणी होता है॥ ४६-४७१/२ ॥

अतएव हे देवेश्वरो! मुझे नूतन शरीर प्रदान करनेके आपके ऋणसे मुक्तिके लिये मैं इस समय आपकी कोई अभिलषित वस्तु आपको प्रदान करना चाहता हूँ। मैं आप दोनोंको वह अभीष्ट वस्तु प्रदान करूँगा, जो देवताओं तथा दानवोंके लिये भी अलभ्य है। मैं आपलोगोंके इस उत्तम कार्यसे बहुत प्रसन्न हूँ; अब आपलोग अपना मनोरथ व्यक्त करें॥ ४८-४९१/२ ॥

च्यवनमुनिका वचन सुनकर परस्पर विचार-विमर्श करके वे दोनों अश्विनीकुमार सुकन्याके साथ बैठे हुए उन मुनिश्रेष्ठसे कहने लगे—हे मुने! पिताजीकी कृपासे हमारा सारा मनोरथ पूर्ण हो चुका है, किंतु देवताओंके साथ सम्मिलित होकर सोमरस पीनेकी हमारी इच्छा शेष रह गयी है। एक बार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्माजीके महायज्ञमें इन्द्रदेवने हम दोनोंको 'वैद्य' कहकर सोमपात्र ग्रहण करनेसे रोक दिया था। अतएव हे धर्मज्ञ! हे तापस! यदि आप समर्थ हों तो हमारा यह कार्य कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हमारी इस प्रिय इच्छापर विचार करके आप हम दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दीजिये। सोमपानकी अभिलाषा हमारे लिये अत्यन्त दुर्लभ हो गयी है, वह आपसे शान्त हो जायगी॥ ५०—५४१/२ ॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर च्यवनमुनिने मधुर वाणीमें कहा—आप दोनोंने मुझ वृद्धको रूपवान् तथा युवावस्थासे सम्पन्न बना दिया है और [आपके अनुग्रहसे] मैंने साध्वी भार्या भी प्राप्त कर ली है। अतः मैं अमित-तेजस्वी राजा शर्यातिके विशाल यज्ञमें देवराज इन्द्रके समक्ष ही आप दोनोंको प्रसन्नतापूर्वक सोमपानका अधिकारी बना दूँगा; मैं यह सत्य कह रहा हूँ। यह बात सुनकर अश्विनीकुमारोंने हर्षपूर्वक स्वर्गके लिये प्रस्थान किया और च्यवनमुनि भी सुकन्याको साथ लेकर अपने आश्रमपर चले गये॥ ५५—५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'अश्विनीकुमारोंके लिये सोमपानहेतु च्यवनकी प्रतिज्ञाका वर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

राजा शर्यातिके यज्ञमें च्यवनमुनिका अश्विनीकुमारोंको सोमरस देना

जनमेजय बोले—[हे व्यासजी!] च्यवनने उन दोनों वैद्योंको सोमरस पीनेका अधिकारी किस प्रकार बनाया? उन महात्मा च्यवनकी बात कैसे सत्य सिद्ध हुई?॥ १॥

देवराज इन्द्रके बलके सामने मानव-बलकी क्या तुलना हो सकती है? फिर भी उन इन्द्रके द्वारा सोमरसके पानसे निषिद्ध किये गये उन दोनों अश्विनीकुमारोंको च्यवनमुनिने सोमरस-पानका अधिकारी बना दिया। हे धर्मनिष्ठ! हे प्रभो! इस आश्चर्यमय विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि मैं इस समय च्यवनमुनिका चरित्र पूर्णरूपसे सुननेका इच्छुक हूँ॥ २-३॥

व्यासजी बोले—हे महाराज! हे भारत! राजा शर्यातिने जब भूमण्डलपर यज्ञ किया था, च्यवनमुनिके तत्कालीन उस अत्यन्त अद्भुत चरित्रके विषयमें सुनिये। दूसरे देवताके समान तेजस्वी मुनि च्यवन सुन्दर रूपवाली उस देवकन्यास्वरूपिणी सुकन्याको पाकर प्रसन्नचित्त हो गये और उसके साथ विहार करने लगे॥ ४-५॥

एक समयकी बात है—महाराज शर्यातिकी पत्नी [अपनी कन्याके विषयमें] अत्यन्त चिन्तित हो उठीं। काँपती और रोती हुई वे अपने पतिसे बोलीं—हे राजन्! आपने वनमें एक अन्धे मुनिको पुत्री सौंप दी थी। वह न जाने जीवित है अथवा मर गयी। अत: आपको उसे सम्यक् रूपसे देखना चाहिये॥ ६-७॥

हे नाथ! आप मुनि च्यवनके आश्रममें आदरपूर्वक यह देखनेके लिये जाइये कि उस प्रकारका पति पाकर वह सुकन्या क्या कर रही है?॥ ८॥

हे राजर्षे! पुत्रीके दु:खके कारण मेरा हृदय जल रहा है। तपस्या करनेसे क्षीण शरीरवाली मेरी उस विशालनयना पुत्रीको मेरे पास ले आइये॥ ९॥

नेत्रहीन पति पाकर महान् कष्ट भोगनेवाली, [तपके कारण] कृश शरीरवाली, वल्कल धारण करनेवाली तथा क्षीण कटिप्रदेशवाली अपनी पुत्रीको मैं देखना चाहती हूँ॥ १०॥

शर्याति बोले—हे विशालाक्षि! हे वरारोहे! मैं अभी अपनी प्रिय पुत्री सुकन्याको आदरपूर्वक देखनेके लिये उत्तम व्रतका आचरण करनेवाले उन च्यवनऋषिके पास जा रहा हूँ॥ ११॥

व्यासजी बोले—शोकसे अत्यन्त व्याकुल अपनी पत्नीसे ऐसा कहकर राजा शर्याति रथपर बैठकर च्यवनमुनिके आश्रमकी ओर तुरंत चल पड़े॥ १२॥

आश्रमके निकट पहुँचकर राजा शर्यातिने देवपुत्रके समान प्रतीत होनेवाले एक नवयौवनसे सम्पन्न मुनिको वहाँ देखा॥ १३॥

देवताओंके स्वरूपवाले उस मुनिको देखकर राजा शर्याति विस्मयमें पड़ गये। वे सोचने लगे कि मेरी पुत्रीने लोकमें निन्दा करानेवाला यह कैसा नीच कर्म कर डाला है?॥ १४॥

प्रतीत होता है कि इसने कामपीड़ित होकर उन वृद्ध, शान्तचित्त तथा अति निर्धन मुनिका वध कर दिया एवं किसी अन्यको अपना पति बना लिया है। यह कामदेव बड़ा दु:सह है और युवावस्थामें तो यह विशेषरूपसे और भी दु:सह हो जाता है। इस पुत्रीने तो मनुवंशमें बड़ा भारी कलंक लगा दिया॥ १५-१६॥

जिस मनुष्यकी पुत्री ऐसा नीच कर्म करनेवाली हो, संसारमें उसके जीवनको धिक्कार है। ऐसी पुत्री मनुष्योंके लिये सभी पापोंसे बढ़कर दु:ख देनेवाली होती है। मैंने भी तो स्वार्थकी सिद्धिके लिये ऐसा अनुचित कार्य कर दिया था, जो कि जानबूझकर नेत्रहीन और वृद्ध मुनिको अपनी पुत्री सौंप दी। पिताको चाहिये कि वह भलीभाँति सोच-समझकर ही एक योग्य वरको अपनी कन्या प्रदान करे। मैंने जैसा कर्म किया था, वैसा फल भी पाया॥ १७—१९॥

अब यदि मैं पापकर्म करनेवाली इस दुश्चरित्र कन्याको मार डालता हूँ, तो मुझे दुस्तर स्त्री-हत्या और

विशेषरूपसे पुत्री-हत्याका बड़ा भारी दोष लगेगा॥ २०॥

मैंने तो इस परम प्रसिद्ध मनुवंशको कलंकित कर दिया। एक ओर बलवती लोकनिन्दा है और दूसरी ओर न छोड़ी जा सकनेवाली [सन्तानके प्रति] स्नेह-शृंखला; अब मैं क्या करूँ? इस प्रकार सोचते हुए राजा शर्याति जब चिन्ताके सागरमें डूबे हुए थे, उसी समय सुकन्याने चिन्तासे आकुल अपने पिताको संयोगवश देख लिया॥ २१-२२॥

उन्हें देखते ही प्रेमसे परिपूर्ण हृदयवाली वह सुकन्या अपने पिता राजा शर्यातिके पास गयी और वहाँ जाकर उनसे पूछने लगी—हे राजन्! कमलके समान नेत्रवाले बैठे हुए इन युवा मुनिको देखकर चिन्ताके कारण व्याकुल मुखमण्डलवाले आप इस समय क्या सोच रहे हैं? हे पुरुषव्याघ्र! इधर आइये और मेरे पतिको प्रणाम कीजिये। हे मनुवंशी राजेन्द्र! इस समय आप शोक मत कीजिये॥ २३—२५॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] तब अपनी पुत्री सुकन्याकी बात सुनकर क्रोधसे सन्तप्त राजा शर्याति अपने सामने खड़ी उस कन्यासे कहने लगे॥ २६॥

राजा बोले—हे पुत्रि! परम तपस्वी, वृद्ध तथा नेत्रहीन वे मुनि च्यवन कहाँ हैं और यह मदोन्मत्त युवक कौन है? इस विषयमें मुझे महान् सन्देह हो रहा है॥ २७॥

दुराचारमें लिप्त रहनेवाली हे पापिनि! हे कुल-नाशिनि! क्या तुमने च्यवनमुनिको मार डाला और कामके वशीभूत होकर इस पुरुषका नये पतिके रूपमें वरण कर लिया?॥ २८॥

इस आश्रममें रहनेवाले उन मुनिको मैं इस समय नहीं देख रहा हूँ, इसीलिये मैं चिन्ताग्रस्त हूँ। तुमने यह नीच कर्म क्यों किया? यह तो निश्चय ही व्यभिचारिणी स्त्रियोंका चरित्र है॥ २९॥

हे दुराचारिणि! इस समय तुम्हारे पास इस दिव्य पुरुषको देखकर तथा उन च्यवनमुनिको न देखकर मैं तुम्हारे द्वारा उत्पन्न किये गये शोकसागरमें डूबा हुआ हूँ॥ ३०॥

अपने पिताकी बात सुनकर उन्हें साथ लेकर वह सुकन्या तुरंत पतिके पास पहुँची और उनसे आदरपूर्वक कहने लगी—॥ ३१॥

हे तात! ये आपके जामाता च्यवनमुनि ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अश्विनीकुमारोंने इन्हें ऐसा कान्तिमान् तथा कमलके समान नेत्रवाला बना दिया है॥ ३२॥

वे दोनों अश्विनीकुमार एक बार दैवयोगसे मेरे आश्रममें पधारे थे। उन्होंने ही दयालुतापूर्वक च्यवनमुनिको ऐसा कर दिया है॥ ३३॥

हे पिताजी! मैं आपकी पुत्री हूँ। हे राजन्! [मेरे पतिदेवका] यह रूप देखकर संशयमें पड़े हुए आप मोहके वशीभूत होकर मुझे जैसी समझ रहे हैं, मैं वैसी पापकृत्य करनेवाली नहीं हूँ॥ ३४॥

हे राजन्! भृगुवंशको सुशोभित करनेवाले च्यवनमुनिको आप प्रणाम करें। हे पिताजी! आप इन्हींसे पूछ लीजिये; ये आपको सारी बात विस्तारपूर्वक बता देंगे॥ ३५॥

तब पुत्रीकी यह बात सुनकर राजा शर्यातिने तुरंत मुनिके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और वे उनसे आदरपूर्वक पूछने लगे॥ ३६॥

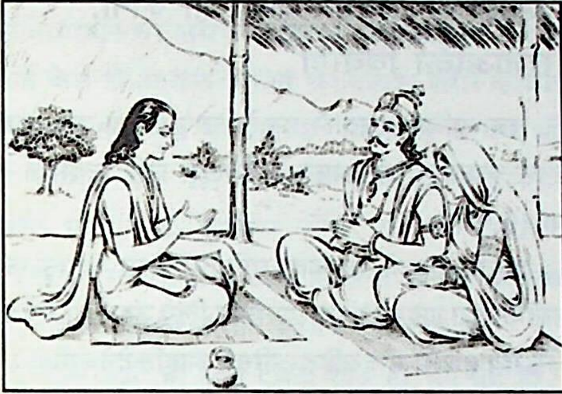
राजा बोले—हे भार्गव! आप अपना सारा वृत्तान्त समुचितरूपसे मुझे शीघ्र बतलाइये। आपने फिरसे किस प्रकार अपने दोनों नेत्र प्राप्त किये और आपका बुढ़ापा कैसे दूर हुआ? आपका परम सुन्दर रूप देखकर मुझे यह महान् सन्देह हो रहा है। हे ब्रह्मन्! आप विस्तारपूर्वक यह सब बतलाइये, जिसे सुनकर मुझे सुख प्राप्त हो॥ ३७-३८॥

च्यवन बोले—हे नृपश्रेष्ठ! देवताओंकी चिकित्सा करनेवाले दोनों अश्विनीकुमार एक बार यहाँ आये थे। उन दोनोंने ही कृपापूर्वक मेरा यह उपकार किया है। उस उपकारके बदले मैंने उन दोनोंको वर दिया है कि मैं आप दोनोंको राजा शर्यातिके यज्ञमें सोमपानका अधिकारी बना दूँगा॥ ३९-४०॥

हे महाराज! इस प्रकार अश्विनीकुमारोंद्वारा मुझे यह युवावस्था तथा ये विमल नेत्र प्राप्त हुए हैं; आप निश्चिन्त रहें और इस पवित्र आसनपर विराजमान हों॥ ४१॥

मुनिके यह कहनेपर राजा शर्याति रानीसहित सुखपूर्वक

आसनपर बैठ गये। इसके बाद वे महात्मा च्यवनजीसे कल्याणमयी बातें करने लगे॥ ४२॥



तत्पश्चात् भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजाको सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—हे राजन्! मैं आपसे यज्ञ कराऊँगा, आप यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाइये। मैं दोनों अश्विनीकुमारोंसे प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि 'मैं आप दोनोंको सोमपानका अधिकारी बना दूँगा?' हे नृपश्रेष्ठ! आपके महान् यज्ञमें मुझे वह कार्य सम्पन्न करना है और हे राजेन्द्र! आपके सोमयज्ञमें इन्द्रके कोप करनेपर मैं अपने तेजबलसे उन्हें शान्त कर दूँगा और [उन देववैद्योंको] सोमरस पिलाऊँगा॥ ४३—४५॥

हे राजन्! इस बातसे राजा शर्याति परम सन्तुष्ट हुए और उन्होंने च्यवनमुनिकी उस बातको आदरपूर्वक स्वीकार कर लिया॥ ४६॥

तत्पश्चात् च्यवनमुनिका सम्मान करके परम सन्तुष्ट होकर राजा शर्याति अपनी पत्नीके साथ मुनिसे सम्बन्धित चर्चा करते हुए अपने नगरको चले गये॥ ४७॥

तदनन्तर सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण राजा शर्यातिने किसी शुभ मुहूर्तमें एक उत्तम यज्ञशालाका निर्माण कराया॥ ४८॥

इसके बाद वसिष्ठ आदि प्रमुख पूज्य मुनियोंको बुलाकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने राजा शर्यातिसे यज्ञ कराना आरम्भ कर दिया॥ ४९॥

उस महायज्ञमें इन्द्रसहित सभी देवता उपस्थित हुए और दोनों अश्विनीकुमार भी सोमपानकी इच्छासे वहाँ आये॥ ५०॥

वहाँ दोनों अश्विनीकुमारोंको भी उपस्थित देखकर इन्द्र सशंकित हो उठे और वे सभी देवताओंसे पूछने लगे—'ये दोनों यहाँ क्यों आये हुए हैं? ये चिकित्सक हैं; अतः ये सोमरस पीनेके अधिकारी नहीं हैं। इन्हें यहाँ किसने बुलाया है?' इसपर राजाके उस महायज्ञमें उपस्थित देवताओंने कोई उत्तर नहीं दिया॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् जब च्यवनमुनि दोनों अश्विनीकुमारोंको सोमरस ग्रहण कराने लगे, तब इन्द्रने [यह कहते हुए] उन्हें रोका—'इन दोनोंको सोमभाग ग्रहण मत कराइये'॥ ५३॥

तब च्यवनमुनिने इन्द्रसे कहा—ये सूर्यपुत्र अश्विनीकुमार सोमरस ग्रहण करनेके अधिकारी कैसे नहीं हैं? हे शचीपते! आप इस बातको प्रमाणित कीजिये॥ ५४॥

ये वर्णसंकर नहीं हैं, अपितु सूर्यकी धर्मपत्नीसे उत्पन्न हुए हैं। तब हे देवेन्द्र! ये दोनों श्रेष्ठ चिकित्सक किस दोषके कारण सोमपानके योग्य नहीं हैं?॥ ५५॥

हे इन्द्र! इस यज्ञमें उपस्थित सभी देवता ही इसका निर्णय कर दें। मैं तो इन्हें सोमरस अवश्य पिलाऊँगा; क्योंकि मैंने इन्हें सोमपानका अधिकारी बना दिया है॥ ५६॥

हे मघवन्! मैंने ही इस यज्ञके लिये राजा शर्यातिको प्रेरित किया है। हे विभो! इनके लिये मैं ऐसा अवश्य करूँगा; मेरा यह कथन सत्य है॥ ५७॥

हे शक्र! मुझे नवीन अवस्था प्रदान करके इन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है, अतः उसके बदलेमें मुझे सभी प्रकारसे इनका प्रत्युपकार करना चाहिये॥ ५८॥

इन्द्र बोले—चिकित्सावृत्तिवाले ये दोनों अश्विनीकुमार देवताओंके द्वारा निन्दनीय माने गये हैं। अतः ये सोमपानके अधिकारी नहीं हैं। इनके लिये सोमरसका भाग मत ग्रहण कीजिये॥ ५९॥

च्यवनमुनि बोले—हे अहल्याजार! इस समय व्यर्थ कोप मत करो। वृत्रका वध करनेवाले हे इन्द्र! ये देवपुत्र अश्विनीकुमार सोमपानके अधिकारी क्यों नहीं हैं?॥ ६०॥

[व्यासजी बोले—] हे जनमेजय! इस प्रकारका विवाद छिड़ जानेपर वहाँ उपस्थित कोई भी देवता च्यवनमुनिसे कुछ भी नहीं कह सका। तब अपने तपोबलके द्वारा अत्यन्त तेजस्वी च्यवनमुनिने सोमरसका भाग लेकर अश्विनीकुमारोंको दे दिया॥ ६१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'च्यवनके द्वारा अश्विनीकुमारोंके लिये सोमपानाधिकारत्वचेष्टावर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

क्रुद्ध इन्द्रका विरोध करना; परंतु च्यवनके प्रभावको देखकर शान्त हो जाना, शर्यातिके बादके सूर्यवंशी राजाओंका विवरण

व्यासजी बोले—हे राजेन्द्र! [च्यवनमुनिके द्वारा अश्विनीकुमारोंको] सोमभाग दे दिये जानेपर इन्द्र अत्यन्त कुपित हुए और उन्होंने अपना पराक्रम दिखाते हुए मुनिसे कहा—हे ब्रह्मबन्धो! आप इस प्रकारकी अनुचित मर्यादा स्थापित मत कीजिये, अन्यथा मेरा विरोध करनेवाले आप मुनिका भी दूसरे विश्वरूपकी भाँति वध कर डालूँगा॥ १-२॥

च्यवन बोले—हे मघवन्! जिन महात्मा अश्विनीकुमारोंने रूपसम्पदाके तेजके द्वारा मुझे दूसरे देवताकी भाँति बना दिया है, उनका अपमान मत कीजिये। हे देवेन्द्र! आपके अतिरिक्त अन्य देवता सोमभाग क्यों पाते हैं? परम तपस्वी इन अश्विनीकुमारोंको भी आप देवता समझें॥ ३-४॥

इन्द्र बोले—हे मन्दात्मन्! ये दोनों चिकित्सक किसी प्रकार भी यज्ञमें सोमभाग पानेके अधिकारी नहीं हैं। यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं अभी आपका सिर काट दूँगा॥ ५॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] इन्द्रकी उस बातकी उपेक्षा करके उनकी बहुत भर्त्सना करते हुए च्यवनमुनिने अश्विनीकुमारोंको यज्ञ-भाग प्रदान कर दिया॥ ६॥

जब उन दोनोंने पीनेकी इच्छासे सोमपात्र ग्रहण किया, तब शत्रुसेनाका भेदन करनेवाले इन्द्रने मुनिसे यह वचन कहा—यदि आप इन्हें सोमरस देंगे, तो मैं स्वयं आपके ऊपर वज्रसे उसी प्रकार प्रहार करूँगा, जैसे मैंने विश्वरूपको वज्रसे मार डाला था॥ ७-८॥

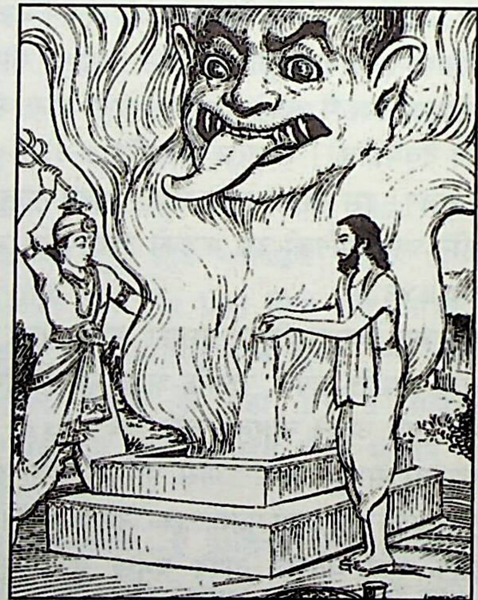
इन्द्रके ऐसा कहनेपर [तपोबलसे] गर्वित च्यवनमुनि अत्यन्त कुपित हो उठे और उन्होंने विधिपूर्वक अश्विनीकुमारोंको सोमरस दे दिया॥ ९॥

इसपर इन्द्रने भी क्रोध करके करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाला अपना आयुध वज्र सभी देवताओंके सामने ही च्यवनमुनिपर चला दिया॥ १०॥

तब अमित तेजवाले इन्द्रके चलाये गये उस वज्रको देखकर च्यवनमुनिने अपने तपोबलसे उसे स्तम्भित कर दिया॥ ११॥

इसके बाद वे महाबाहु मुनियोंमें श्रेष्ठ च्यवन कृत्या राक्षसीके द्वारा इन्द्रको मरवा डालनेके लिये उद्यत हो गये और पकाये गये हव्यसे मन्त्रसहित अग्निमें आहुति देने लगे॥ १२॥

उन च्यवनके तपोबलसे वहाँपर कृत्या उत्पन्न हो गयी। अत्यन्त बलशाली तथा क्रूर पुरुषके रूपमें वह आविर्भूत हुई। उस पुरुषका शरीर महान् दैत्यके समान बहुत विशाल था॥ १३॥



उसका नाम 'मद' था। वह अत्यन्त उग्र तथा संसारके प्राणियोंके लिये बहुत भयदायक था। वह शरीरसे पर्वतके आकारका था, उसके दाँत तीक्ष्ण थे, वह बड़ा ही भयावह था। उसके चार दाँत तो सौ-सौ योजन लम्बे थे और इसके अन्य दाँत दस योजनके विस्तारवाले थे। देखनेमें क्रूर लगनेवाली उसकी दोनों भुजाएँ पर्वतके समान दूरतक फैली हुई थीं। अत्यन्त क्रूर तथा भयानक लगनेवाली उसकी जिह्वा आकाश

और पातालको चाट रही थी॥ १४—१६॥

उसकी अत्यन्त डरावनी तथा कठोर गर्दन पर्वतकी चोटीके समान थी, उसके नाखून बाघके नाखूनके सदृश थे, उसके केश तो अत्यन्त भयंकर थे। उसका शरीर काजलकी आभावाला तथा मुख भयानक था और उसके अत्यन्त भीषण तथा भयावह दोनों नेत्र दावानलके समान प्रतीत हो रहे थे। उसका एक ओठ पृथ्वीपर स्थित था तो दूसरा ओठ आकाशतक गया हुआ था। इस प्रकारका विशाल शरीरवाला 'मद' नामक दानव उत्पन्न हुआ॥ १७—१९॥

उसे देखते ही सभी देवता शीघ्र ही भयभीत हो गये। इन्द्र भी भयसे व्याकुल हो उठे और उनके मनमें युद्धका विचार नहीं रह गया॥ २०॥

वह दैत्य वज्रको मुखमें लेकर सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके सामने खड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो भयावनी दृष्टिवाला वह दानव तीनों लोकोंको निगल जायगा॥ २१॥

इन्द्रको खा जानेके विचारसे वह क्रोधित होकर उनकी ओर दौड़ा। इसपर 'हाय, हम सब मारे गये'—ऐसा कहकर सभी देवता जोर-जोरसे चीखने-चिल्लाने लगे॥ २२॥

इन्द्र वज्र चलाना चाहते थे, किंतु भुजाओंके कुण्ठित हो जानेके कारण वे उसपर वज्र-प्रहार करनेमें समर्थ नहीं हुए॥ २३॥

तब हाथमें वज्र धारण करनेवाले देवराज इन्द्रने काल-सदृश उस दानवको देखकर सामयिक समस्याका समाधान करनेमें कुशल देवगुरु बृहस्पतिका मन-ही-मन स्मरण किया॥ २४॥

इन्द्रके स्मरण करते ही उदार बुद्धिवाले गुरु बृहस्पति वहाँ शीघ्र आ गये। इन्द्रकी बड़ी दयनीय दशा देखकर तथा मन-ही-मन सारे कृत्यपर विचार करके वे शचीपति इन्द्रसे कहने लगे—॥ २५ $^{1}/_{2}$॥

हे इन्द्र! मद नामक इस असुरको महामन्त्रोंसे अथवा वज्रसे मार पाना अत्यन्त कठिन है। च्यवनमुनिका तपोबलस्वरूप यह महाबली दैत्य सम्यक् रूपसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुआ है। यह शत्रु तुम्हारे, देवगणोंके तथा मेरे द्वारा भी पराभूत नहीं किया जा सकता। अत: हे देवेश! आप महात्मा च्यवनकी शरणमें जायँ, वे अपने द्वारा उत्पन्न की गयी इस 'कृत्या' का शमन अवश्य कर देंगे। आदिशक्तिके भक्तका रोष निवारण करनेमें कोई भी समर्थ नहीं है॥ २६—२९॥

व्यासजी बोले—गुरु बृहस्पतिके यह कहनेपर इन्द्र च्यवनमुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके भयभीत होते हुए उनसे बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! क्षमा कीजिये। संहारके लिये तत्पर इस असुरको शान्त कीजिये। आप प्रसन्न हो जाइये। हे सर्वज्ञ! मैं आपकी आज्ञाका पालन अवश्य करूँगा॥ ३०-३१॥

हे भार्गव! ये दोनों अश्विनीकुमार आजसे सोमपानके अधिकारी हो जायँगे। हे विप्र! मेरा यह वचन सत्य है, अब आप प्रसन्न हो जायँ॥ ३२॥

हे तपोधन! अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बनानेका आपका उद्यम व्यर्थ नहीं हुआ; यह उचित ही है। हे धर्मज्ञ! मैं जानता हूँ कि आप निष्प्रयोजन कोई भी कार्य नहीं करेंगे। आपने इन अश्विनीकुमारोंको सोमपानका अधिकारी बना दिया, अत: अब ये यज्ञोंमें सदा सोमरसका पान कर सकेंगे। साथ ही राजा शर्यातिका महान् यश भी संसारमें स्थापित हो जायगा॥ ३३-३४॥

हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने यह जो भी कार्य किया है, उसे आपके पराक्रमको प्रकट करनेके उद्देश्यसे ही किया है—ऐसा आप समझिये॥ ३५॥

हे ब्रह्मन्! आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये। अपने द्वारा उत्पन्न किये गये इस 'मद' नामक दैत्यको तिरोहित कर दीजिये और ऐसा करके सभी देवताओंका पुन: कल्याण कीजिये॥ ३६॥

इन्द्रके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर परमार्थ-तत्त्वके ज्ञाता च्यवनमुनिने विरोधके कारण उत्पन्न अपने क्रोधको दबा लिया। तत्पश्चात् उद्विग्न चित्तवाले देवराज इन्द्रको सान्त्वना देकर भृगुवंशी च्यवनमुनिने स्त्री, मदिरापान, द्यूत और आखेट—इन सबमें 'मद' को स्थापित कर दिया॥ ३७-३८॥

इस प्रकार 'मद' को विभिन्न जगहोंपर विभक्त करके, भयसे घबराये हुए इन्द्रको आश्वासन देकर तथा सभी देवताओंको अपने-अपने कार्यपर लगाकर च्यवनमुनिने राजा शर्यातिका यज्ञ सम्पन्न कराया॥ ३९॥

तदनन्तर सभी धर्मोंके आत्मास्वरूप भृगुवंशी च्यवनमुनिने महात्मा इन्द्रको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको परिष्कृत सोमरस पिलाया॥ ४०॥



हे राजन्! इस प्रकार च्यवनमुनिने अपने तपके प्रभावसे उन दोनों सूर्यपुत्र श्रेष्ठ अश्विनीकुमारोंको पूर्णरूपसे सोमपानका अधिकारी बना दिया॥ ४१॥

उसी समयसे यज्ञ-स्तम्भसे सुशोभित वह सरोवर भी विख्यात हो गया तथा मुनिके आश्रमकी प्रसिद्धि सम्यक्-रूपसे पृथ्वीपर सर्वत्र व्याप्त हो गयी॥ ४२॥

उस कर्मसे राजा शर्याति भी सन्तुष्ट हो गये और यज्ञसम्पन्न करके मन्त्रियोंके साथ नगरको चले गये॥ ४३॥

इसके बाद धर्मज्ञ तथा प्रतापी मनुपुत्र शर्याति राज्य करने लगे। उनके पुत्र 'आनर्त' हुए और आनर्तसे 'रेवत' उत्पन्न हुए। शत्रुओंका दमन करनेवाले वे रेवत समुद्रके मध्य कुशस्थली नामक नगरी स्थापित करके वहींपर रहकर आनर्त आदि देशोंपर शासन करने लगे॥ ४४-४५॥

उनके सौ पुत्र हुए, उनमें ककुद्मी सबसे ज्येष्ठ तथा उत्तम था। उनकी रेवती नामक एक पुत्री भी थी, जो परम सुन्दर तथा शुभ लक्षणोंसे युक्त थी॥ ४६॥

जब वह कन्या विवाहके योग्य हो गयी, तब महाराज रेवत उत्तम कुलमें उत्पन्न राजकुमारोंके विषयमें सोचने लगे॥ ४७॥

उस समय वे बलशाली नरेश 'रैवत' नामक पर्वतपर रहते हुए आनर्त आदि देशोंपर राज्य कर रहे थे॥ ४८॥

वे मन-ही-मन सोचने लगे 'मैं यह कन्या किसे प्रदान करूँ, अतः सर्वज्ञ तथा देवपूजित ब्रह्माजीके पास जाकर उन्हींसे पूछ लूँ'—ऐसा विचार करके राजा रेवत अपनी पुत्री रेवतीको साथ लेकर पितामह ब्रह्माजीसे वर पूछनेकी अभिलाषासे शीघ्र ही ब्रह्मलोक जा पहुँचे; जहाँपर देवता, यज्ञ, छन्द, पर्वत, समुद्र और नदियाँ दिव्य रूप धारण करके विराजमान थे और सनातन ऋषि, सिद्ध, गन्धर्व, पन्नग तथा चारणवृन्द—ये सभी हाथ जोड़कर स्तुति करते हुए खड़े थे॥ ४९—५२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'रेवतका रेवतीके वरार्थ ब्रह्मलोकगमनका वर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

राजा रेवतकी कथा

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! मेरे मनमें यह महान् संशय हो रहा है कि स्वयं राजा रेवत अपनी कन्या रेवतीको साथ लेकर ब्रह्मलोक चले गये। मैंने पूर्वकालमें ब्राह्मणोंसे कथा-प्रसंगमें यह अनेक बार सुना है कि ब्रह्मको जाननेवाला शान्त-स्वभाव ब्राह्मण ही ब्रह्मलोक प्राप्त कर सकता है॥ १-२॥

राजा रेवत अत्यन्त दुष्प्राप्य सत्यलोकमें स्वयं अपनी पुत्री रेवतीके साथ पृथ्वीलोकसे कैसे पहुँच गये—इसी बातका मुझे सन्देह है। सभी शास्त्रोंमें यही निर्णय विद्यमान है कि मृत व्यक्ति ही स्वर्ग प्राप्त कर सकता है; (इस मानवदेहसे ब्रह्मलोकमें जाना कैसे सम्भव है?) और स्वर्गसे पुनः इस मनुष्यलोकमें पहुँच जाना कैसे हो सकता है? हे विद्वन्! महाराज रेवत जिस तरह ब्रह्माजीसे अपनी कन्याके लिये वर पूछनेकी इच्छासे वहाँ गये थे—इसे बताकर इस समय मेरे इस सन्देहको दूर करनेकी कृपा करें॥ ३—५॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुमेरुपर्वतके शिखरपर ही इन्द्रलोक, वह्निलोक, संयमिनीपुरी, सत्यलोक, कैलास और वैकुण्ठ—ये सभी लोक प्रतिष्ठित हैं। वैकुण्ठको ही वैष्णव पद कहा जाता है॥ ६-७॥

जैसे धनुष धारण करनेवाले कुन्तीपुत्र अर्जुन इन्द्रलोक गये थे और वे इसी मनुष्य-शरीरसे उस इन्द्रलोकमें पाँच वर्षतक इन्द्रके सान्निध्यमें रहे, उसी प्रकार ककुत्स्थ आदि अन्य प्रमुख राजा भी स्वर्गलोक जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त महाबलशाली दैत्य भी देवताओंको जीतकर स्वर्गलोकपर अधिकार करके वहाँ अपनी इच्छाके अनुसार रह चुके हैं॥ ८—१०॥

पूर्वकालमें महाराज महाभिष भी ब्रह्मलोक गये थे। उन नरेशने परम सुन्दरी गंगाजीको आते देखा। हे राजन्! उस समय दैवयोगसे वायुने उनके वस्त्र उड़ा दिये, जिससे राजाने उन सुन्दरी गंगाको कुछ अनावृत अवस्थामें देख लिया। इसपर कामसे व्यथित राजा मुसकराने लगे और गंगाजी भी हँस पड़ीं। उस समय ब्रह्माजीने उन दोनोंको देख लिया और शाप दे दिया, जिससे उन दोनोंको पृथ्वीपर जन्म लेना पड़ा। दैत्यों और दानवोंसे पीड़ित सभी देवताओंने भी वैकुण्ठधाममें जाकर कमलाकान्त जगत्पति भगवान् विष्णुकी स्तुति की थी॥ ११—१४॥

अतएव हे नृपश्रेष्ठ! इस विषयमें किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहिये। हे नराधिप! पुण्यात्मा, तपस्वी और महापुरुष सभी लोकोंमें जा सकते हैं। हे नरेन्द्र! हे राजन्! जैसे पवित्र सदाचरण ही ब्रह्मादि लोकोंमें जानेका कारण है, वैसे ही पवित्र मनवाले यजमानलोग भी यज्ञके प्रभावसे वहाँ पहुँच जाते हैं॥ १५-१६१/२॥

जनमेजय बोले—महाराज रेवत सुन्दर नेत्रोंवाली अपनी पुत्री रेवतीको साथमें लेकर ब्रह्मलोक पहुँच गये; उसके बाद उन्होंने क्या किया, ब्रह्माजीने उन्हें क्या आदेश दिया और उन रेवतने अपनी पुत्री किसे सौंपी? हे ब्रह्मन्! अब आप इन सारी बातोंको विस्तारपूर्वक मुझको बतलाइये॥ १७-१८१/२॥

व्यासजी बोले—हे महीपाल! सुनिये, जब राजा रेवत अपनी पुत्रीके वरके विषयमें पूछनेके लिये ब्रह्मलोक पहुँचे, उस समय गन्धर्वलोगोंका संगीत हो रहा था। वे अपनी कन्याके साथ कुछ देरतक सभामें रुककर संगीत सुनते हुए परम तृप्त हुए। पुनः गन्धर्वोंका संगीत समाप्त हो जानेपर परमेश्वर (ब्रह्माजी)-को प्रणाम करके उन्हें अपनी कन्या रेवतीको दिखाकर अपना आशय प्रकट कर दिया॥ १९—२११/२॥

राजा बोले—हे देवेश! यह कन्या मेरी पुत्री है, मैं इसे किसको प्रदान करूँ—यही पूछनेके लिये आपके पास आया हूँ। अतः हे ब्रह्मन्! आप इसके योग्य वर बतायें। मैंने उत्तम कुलमें उत्पन्न बहुतसे राजकुमारोंको देखा है, किंतु किसीमें भी मेरा चंचल मन स्थिर नहीं होता है। इसलिये हे देवदेवेश! [वरके विषयमें] आपसे पूछनेके लिये यहाँ आया हूँ। हे सर्वज्ञ! आप किसी योग्य राजकुमार वरके विषयमें बताइये। ऐसे राजकुमारका निर्देश कीजिये; जो कुलीन, बलवान्, समस्त लक्षणोंसे सम्पन्न, दानी तथा धर्मपरायण हो॥ २२—२५१/२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब राजाकी बात सुनकर जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी कालपर्यय (ब्रह्मलोकके थोड़े समयमें पृथ्वीलोकका बड़ा लम्बा समय बीता हुआ) देखकर हँस करके उनसे कहने लगे—॥ २६१/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे राजन्! आपने अपने हृदयमें जिन राजकुमारोंको वरके रूपमें समझ रखा था, वे सब-के-सब पुत्र-पौत्र तथा बन्धुओंसमेत काल-कवलित हो चुके हैं। इस समय वहाँ सत्ताईसवाँ द्वापर चल रहा है। आपके सभी वंशज मृत हो चुके हैं और दैत्योंने आपकी पुरी भी विनष्ट कर डाली है। इस समय वहाँ चन्द्रवंशी राजा शासन कर रहे हैं। अब मथुरा नामसे प्रसिद्ध उस पुरीके अधिपतिके रूपमें उग्रसेन विख्यात हैं। ययातिवंशमें उत्पन्न वे उग्रसेन सम्पूर्ण मथुरामण्डलके नरेश हैं। उन महाराज उग्रसेनका एक कंस नामक पुत्र हुआ, जो महान् बलशाली तथा देवताओंसे द्वेष रखनेवाला था। राजाओंमें सबसे अधिक मदोन्मत्त उस दानववंशी कंसने अपने पिताको भी कारागारमें डाल दिया और वह स्वयं राज्य करने लगा॥ २७—३११/२॥

तब पृथ्वी असह्य भारसे व्याकुल होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। श्रेष्ठ देवगणोंने ऐसा कहा है कि दुष्ट राजाओं तथा उनके सैनिकोंके भारसे पृथ्वीके अति व्याकुल होनेपर ही भगवान्‌का अंशावतार होता है। अतः उस समय कमलके समान नेत्रवाले वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण देवीस्वरूपा देवकीके गर्भसे उत्पन्न

हुए, वे साक्षात् नारायणमुनि ही थे॥ ३२—३४॥

उन सनातन धर्मपुत्र नरसखा नारायणमुनिने बदरिकाश्रममें गंगाजीके तटपर अत्यन्त कठोर तपस्या की थी। वे ही यदुकुलमें अवतार लेकर 'वासुदेव' नामसे विख्यात हुए। हे महाभाग! उन्हीं वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णने पापी कंसका संहार किया और इस प्रकार उस दुष्ट राजाको मारकर उन्होंने [उसके पिता] उग्रसेनको सम्पूर्ण राज्य दे दिया॥ ३५-३६१/२॥

कंसका श्वसुर जरासन्ध महान् बलशाली तथा पापी था। वह अत्यन्त क्रोधित हो मथुरा आकर श्रीकृष्णके साथ आवेगपूर्वक युद्ध करने लगा। अन्तमें श्रीकृष्णने उस महाबली जरासन्धको युद्धमें जीत लिया। तब उसने सेनासहित कालयवनको [कृष्णके साथ] युद्ध करनेके लिये भेजा॥ ३७-३८१/२॥

महापराक्रमी यवनाधिप कालयवनको सेनासहित आता सुनकर (कृष्ण मथुरा छोड़कर द्वारका चले गये। भगवान् श्रीकृष्णने कुशल शिल्पियोंके द्वारा बड़े-बड़े दुर्ग तथा बाजारोंसे सुशोभित उस नष्ट-भ्रष्ट पुरीका पुनः निर्माण कराया, उस पुरीका जीर्णोद्धार करके प्रतापी श्रीकृष्णने उग्रसेनको वहाँका अपना आज्ञाकारी राजा बनाया।) तत्पश्चात् यदुश्रेष्ठ श्रीकृष्णने उस द्वारकापुरीमें यादवोंको भलीभाँति बसाया। इस समय वे वासुदेव अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ उस द्वारकामें रह रहे हैं॥ ३९-४०॥

उनके बड़े भाई बलराम हैं। हल तथा मूसलको आयुधके रूपमें धारण करनेवाले वे शूरवीर बलराम शेषके अंशावतार कहे जाते हैं। वे ही आपकी कन्याके लिये उपयुक्त वर हैं॥ ४१॥

अब आप वैवाहिक विधिके अनुसार शीघ्र ही संकर्षण बलरामको कमलके समान नेत्रोंवाली अपनी कन्या रेवती सौंप दीजिये। हे नृपश्रेष्ठ! उन्हें कन्या प्रदानकर आप तप करनेके लिये देवोद्यान बदरिकाश्रम चले जाइये; क्योंकि तप मनुष्योंकी सारी अभिलाषाएँ पूर्ण कर देता है और उनके अन्तःकरणको पवित्र बना देता है॥ ४२-४३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! पद्मयोनि ब्रह्माजीसे यह आदेश पाकर राजा रेवत अपनी कन्याके साथ शीघ्र ही द्वारका चले गये। वहाँ उन्होंने बलरामजीको शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न अपनी पुत्री सौंप दी। उसके बाद सुदीर्घ कालतक कठोर तपस्या करके वे राजा रेवत नदीके तटपर अपना शरीर त्यागकर देवलोक चले गये॥ ४४-४५१/२॥

राजा बोले—हे भगवन्! आपने यह तो महान् आश्चर्यजनक बात कही कि राजा रेवत कन्याके योग्य वर जाननेके उद्देश्यसे ब्रह्मलोक गये और उनके वहाँ ठहरे हुए एक सौ आठ युग बीत गये, तबतक वह कन्या तथा वे राजा वृद्ध क्यों नहीं हुए अथवा इतने दीर्घ समयकी पूर्ण आयु ही उन्हें कैसे प्राप्त हुई?॥ ४६—४८॥

व्यासजी बोले—हे निष्पाप जनमेजय! ब्रह्मलोकमें भूख, प्यास, मृत्यु, भय, वृद्धावस्था तथा ग्लानि—इनमें कोई भी विकार कभी भी उत्पन्न नहीं होता॥ ४९॥

जब राजा रेवत वहाँसे सुमेरुपर्वतपर चले गये, तब राक्षसोंने शर्याति-वंशकी संततियोंको नष्ट कर डाला। वहाँके सभी लोग भयभीत होकर कुशस्थली छोड़कर इधर-उधर भाग गये॥ ५०॥

कुछ समयके बाद क्षुव नामक मनुसे एक परम ओजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। इक्ष्वाकु नामसे विख्यात वे ही सूर्यवंशके प्रवर्तक माने जाते हैं॥ ५१॥

नारदजीके उपदेशसे और उनसे श्रेष्ठ दीक्षा प्राप्त करके उन्होंने वंशवृद्धिके उद्देश्यसे भगवतीके ध्यानमें निरन्तर संलग्न रहकर कठोर तपस्या की॥ ५२॥

हे राजन्! ऐसा सुना गया है कि उन इक्ष्वाकुके एक सौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े विकुक्षि थे, जो बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे॥ ५३॥

महाराज इक्ष्वाकु अयोध्याके राजा थे—यह बात प्रसिद्ध है। उनके शकुनि आदि पचास परम बलवान् पुत्र उत्तरापथ नामक देशके रक्षक नियुक्त किये गये और हे राजन्! उनके जो अड़तालीस पुत्र थे, वे सब उन महात्मा इक्ष्वाकुके द्वारा दक्षिणी देशोंकी रक्षाके लिये आदेशित किये गये। इनके अतिरिक्त अन्य दो पुत्र राजा इक्ष्वाकुकी सेवाके लिये उनके पास रहने लगे॥ ५४—५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'इक्ष्वाकुवंशवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

सूर्यवंशी राजाओंके वर्णनके क्रममें राजा ककुत्स्थ, युवनाश्व और मान्धाताकी कथा

व्यासजी बोले—हे राजन्! किसी समय अष्टका-श्राद्धके अवसरपर बुद्धिमान् भूपति इक्ष्वाकुने विकुक्षिको आज्ञा दी कि हे पुत्र! इस समय वनमें जाकर श्राद्धके लिये शीघ्र ही आदरपूर्वक पवित्र कव्य ले आओ॥ १$^{१}/_{२}$॥

राजाके इस प्रकार कहनेपर विकुक्षि आयुध धारण करके तुरंत वनकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर वह थक गया तथा भूखसे व्याकुल हो उठा। इस कारणसे वह अष्टका-श्राद्धकी बात भूल गया और उसने वनमें ही एकत्रित किये गये श्राद्धद्रव्यके कुछ अंशका भक्षण कर लिया और बचा हुआ लाकर पिताजीको दे दिया। तब प्रोक्षणके निमित्त समक्ष लाये गये उस कव्यको देखकर और फिर उसे श्राद्धके लिये अनुपयुक्त जानकर मुनिश्रेष्ठ गुरु वसिष्ठ अत्यन्त कुपित हो उठे॥ २—५॥

'भोजनसे शेष बचे हुए द्रव्यका श्राद्धमें प्रोक्षण नहीं करना चाहिये—ऐसा नियम है'—इस पाकदोषके विषयमें वसिष्ठने राजाको बता दिया॥ ६॥

गुरु वसिष्ठके कथनानुसार अपने पुत्र विकुक्षिका वह दुष्कर्म जानकर विधिलोपके कारण उन्होंने उसे अपने देशसे बाहर निकाल दिया। वह राजकुमार तभीसे 'शशाद'—इस नामसे विख्यात हो गया। वह शशाद पिताके कोपसे किंचित् भयभीत होकर वनमें चला गया॥ ७-८॥

वह विकुक्षि वहाँ वन्य आहारपर जीवनयापन करते हुए धर्मपरायण होकर रहने लगा। तत्पश्चात् पिताकी मृत्यु हो जानेपर उस मनस्वी शशादको राज्य प्राप्त हो गया और वह शासन करने लगा। उस अयोध्यापति शशादने स्वयं सरयूनदीके तटपर अनेक यज्ञ सम्पन्न किये॥ ९-१०॥

उस शशादको एक पुत्र हुआ जो 'ककुत्स्थ'—इस नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस ककुत्स्थके इन्द्रवाह और पुरंजय—ये दो नाम और भी थे॥ ११॥

जनमेजय बोले—हे निष्पाप मुने! उस राजकुमारके अनेक नाम कैसे हुए? उसके जिस-जिस कर्मके कारण ये नाम हुए, वह सब मुझे बताइये॥ १२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! शशादके स्वर्गवासी हो जानेपर 'ककुत्स्थ' राजा बने। (वे धर्मज्ञ ककुत्स्थ पिता-पितामहसे परम्पराप्राप्त राज्यपर बलपूर्वक शासन करने लगे।) उसी समय सभी देवगण दैत्योंसे पराजित होकर तीनों लोकोंके स्वामी अविनाशी भगवान् विष्णुकी शरणमें गये। तब सनातन भगवान् श्रीहरि उन देवताओंसे कहने लगे॥ १३-१४॥

भगवान् विष्णु बोले—हे श्रेष्ठ देवगण! आपलोग शशादपुत्र राजा ककुत्स्थसे युद्धमें सहायक बननेके लिये प्रार्थना कीजिये। वे ही युद्धमें दैत्योंको मार सकेंगे। वे धर्मात्मा ककुत्स्थ धनुष धारण करके सहायताके लिये अवश्य आयेंगे। भगवती पराशक्तिकी कृपासे उनके पास अतुलनीय सामर्थ्य है॥ १५-१६॥

हे महाराज! भगवान् विष्णुकी यह उत्तम वाणी सुनकर इन्द्रसमेत सभी देवतागण अयोध्यामें रहनेवाले शशादपुत्र महाराज ककुत्स्थके पास जा पहुँचे॥ १७॥

राजा ककुत्स्थने उन आये हुए देवताओंका धर्मपूर्वक अत्यन्त उत्साहके साथ पूजन किया और इसके बाद वे उनसे आनेका प्रयोजन पूछने लगे॥ १८॥

राजा बोले—हे देवगण! मैं धन्य और पवित्र हो गया; मेरा जीवन सार्थक हो गया, जो कि आप-लोगोंने मेरे घर पधारकर मुझे अपना महनीय दर्शन दिया है। हे देवेश्वरो! आप मुझे अपने कार्यके विषयमें बतलाएँ। आपका वह कार्य चाहे मनुष्योंके लिये परम दुःसाध्य ही हो, मैं वह महान् कार्य हर प्रकारसे सम्पन्न करूँगा॥ १९-२०॥

देवता बोले—हे राजेन्द्र! हमारी सहायता कीजिये; शचीपति इन्द्रके सखा बन जाइये और देवताओंके लिये भी अजेय महान् दैत्योंको युद्धमें परास्त कर दीजिये। पराशक्ति जगदम्बाके अनुग्रहसे आपके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। भगवान् विष्णुके भेजनेपर ही हमलोग आपके पास आये

हैं ॥ २१-२२ ॥

राजा बोले—हे श्रेष्ठ देवतागण! यदि इन्द्र उस युद्धमें मेरा वाहन बनें तो मैं अभी देवताओंकी ओरसे सेनापति बन जाऊँगा। मैं इसी समय इन्द्रपर आरूढ़ होकर युद्धक्षेत्रमें जाऊँगा और देवताओंके लिये युद्ध करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ॥ २३-२४॥

तब देवताओंने इन्द्रसे कहा—हे शचीपते! [इस समय] आपको यह अद्भुत कार्य करना है। आप लज्जा छोड़कर राजा ककुत्स्थका वाहन बन जाइये॥ २५॥

उस समय इन्द्र बड़े संकोचमें पड़ गये, फिर भगवान् श्रीहरिके बार-बार प्रेरणा करनेपर वे तुरंत एक ऐसे वृषभके रूपमें प्रकट हो गये मानो भगवान् रुद्रके दूसरे महान् नन्दी ही हों॥ २६॥

तब संग्राममें जानेके लिये वे राजा उस वृषभपर चढ़े और उसके ककुद्पर बैठे, इसी कारणसे वे 'ककुत्स्थ' नामवाले हो गये। उन्होंने इन्द्रको अपना वाहन बनाया था, इसलिये वे 'इन्द्रवाहक' नामसे प्रसिद्ध हुए और उन्होंने दैत्योंके पुर (नगर)-पर विजय प्राप्त की थी, इसलिये वे 'पुरंजय' नामवाले भी हो गये॥ २७-२८॥

तत्पश्चात् उन महाबाहु ककुत्स्थने दैत्योंको जीतकर उनका धन देवताओंको दे दिया और [फिर वहाँसे प्रस्थान करनेके लिये देवताओंसे] पूछा। इस प्रकार इन्द्रके साथ राजर्षि ककुत्स्थकी मैत्री हुई॥ २९॥

महाराज ककुत्स्थ महान् प्रसिद्ध राजा थे। उनके वंशमें उत्पन्न सभी राजा 'काकुत्स्थ' नामसे पृथ्वीलोकमें अत्यधिक प्रसिद्ध हुए॥ ३०॥

राजा ककुत्स्थकी धर्मपत्नीके गर्भसे एक महाबली पुत्र हुआ, जो 'अनेना' नामसे विख्यात हुआ। उस 'अनेना' को एक पृथु नामक पराक्रमी पुत्र हुआ; उसे साक्षात् भगवान् विष्णुका अंश कहा गया है। वह पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंका उपासक था, उन पृथुके पुत्ररूपमें राजा विश्वरन्धिको जानना चाहिये॥ ३१-३२॥

उन 'विश्वरन्धि' के चन्द्र नामक परम ऐश्वर्यशाली पुत्र हुए, वे चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले कहे जाते हैं। उनके पुत्र युवनाश्व थे, जो परम तेजस्वी तथा महान् बलशाली थे॥ ३३॥

उन युवनाश्वके 'शावन्त' नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने इन्द्रपुरीके समान प्रतीत होनेवाली शावन्ती नामकी पुरीका निर्माण कराया॥ ३४॥

उन महात्मा शावन्तके 'बृहदश्व' नामक पुत्र हुए और बृहदश्वके पुत्र राजा कुवलयाश्व हुए। उन कुवलयाश्वने 'धुन्धु' नामक दैत्यका संहार किया, तभीसे उन्होंने पृथ्वीलोकमें 'धुन्धुमार' नामसे परम प्रसिद्धि प्राप्त की॥ ३५-३६॥

उनके पुत्र दृढाश्व हुए, जिन्होंने पृथ्वीकी भलीभाँति रक्षा की। उन दृढाश्वके पुत्र श्रीमान् हर्यश्व कहे गये हैं॥ ३७॥

उन हर्यश्वके 'निकुम्भ' नामक पुत्र कहे गये हैं। वे महान् राजा हुए; निकुम्भके पुत्र बर्हणाश्व और उनके पुत्र कृशाश्व हुए॥ ३८॥

उन कृशाश्वके प्रसेनजित् नामक बलवान् तथा सत्यपराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए और प्रसेनजित्के एक भाग्यशाली पुत्र उत्पन्न हुए, वे 'यौवनाश्व'—इस नामसे प्रसिद्ध हुए॥ ३९॥

उन यौवनाश्वके पुत्र श्रीमान् राजा मान्धाता थे। हे मानद! उन्होंने भगवती जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये महातीर्थोंमें एक हजार आठ देवालयोंका निर्माण कराया था। ये माताके गर्भसे जन्म न लेकर पिताके उदरसे उत्पन्न हुए थे। पिताकी कुक्षिका भेदनकर उन्हें वहाँसे निकाला गया था॥ ४०-४१$^1/_2$॥

राजा बोले—हे महाभाग [व्यासजी!] उन महाराज मान्धाताके जन्मके विषयमें जैसा आपने कहा है, वह तो असम्भव-सी घटना है, मैंने ऐसा न तो सुना है और न देखा ही है। अब आप राजा मान्धाताके जन्मका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक बताइये। वह सर्वांगसुन्दर पुत्र राजा यौवनाश्वके उदरसे जिस प्रकार उत्पन्न हुआ, उसे कहिये॥ ४२-४३$^1/_2$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! परम धर्मनिष्ठ राजा यौवनाश्व सन्तानहीन थे। उन महाराजकी एक सौ रानियाँ थीं, किंतु किसीसे भी सन्तान न होनेके कारण वे प्रायः चिन्तित रहते और सन्तानके लिये नित्य सोचमें पड़े रहते थे। अन्तमें अत्यन्त दुःखित होकर वे यौवनाश्व वनमें चले

गये ॥ ४४-४५१/२ ॥

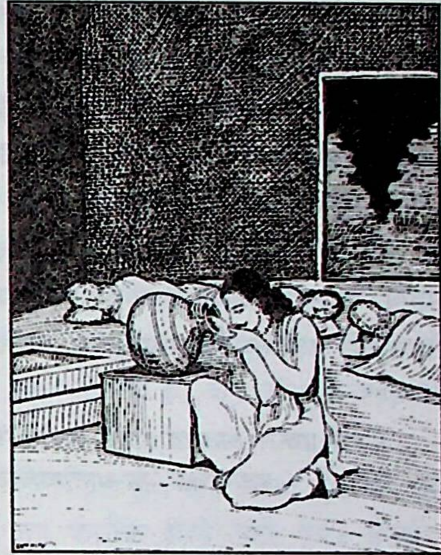
वहाँ ऋषियोंके पवित्र आश्रममें रहते हुए वे महाराज यौवनाश्व सदा खिन्न रहते थे और व्यथित होकर सदा दीर्घ श्वास छोड़ते रहते थे, इसे वहाँ रहनेवाले तपस्वीजन बराबर देखा करते थे। उन्हें इस प्रकार दु:खित देखकर सभी विप्रोंको उनपर दया आ गयी। ब्राह्मणोंने उनसे पूछा—हे राजन्! आप यह चिन्ता किसलिये कर रहे हैं? हे पार्थिव! आपको कौन-सा कष्ट है? हे महाराज! आप अपने मनकी बात सच-सच बताइये, हमलोग हर तरहसे आपका दु:ख दूर करनेका उपाय करेंगे ॥ ४६—४८१/२ ॥

यौवनाश्व बोले—हे मुनियो! मेरे पास राज्य, धन तथा उत्तम कोटिके बहुत-से घोड़े विद्यमान हैं; दिव्य प्रभासे युक्त एक सौ साध्वी रानियाँ मेरे पास हैं, तीनों लोकोंमें मेरा कोई भी बलवान् शत्रु नहीं है और मेरे सभी मन्त्री तथा सामन्त सदा मेरे आज्ञापालनमें तत्पर रहते हैं ॥ ४९-५०१/२ ॥

हे तपस्वियो! मुझे एकमात्र दु:ख सन्तान न होनेका है; इसके अतिरिक्त दूसरा कोई भी दु:ख मेरी दृष्टिमें नहीं है। हे विप्रेन्द्रो! पुत्रहीन व्यक्तिकी न तो सद्गति होती है और न उसे स्वर्ग ही मिलता है, अत: सन्तानके लिये मैं सदा अत्यधिक शोकाकुल रहता हूँ। हे तपस्वियो! आपलोग महान् परिश्रम करके वेद-शास्त्रोंके रहस्य जाननेवाले हैं, मुझ सन्तानकामीके लिये करणीय जो उपयुक्त यज्ञ हो, उसे सोच-समझकर मुझे बतायें। हे तापसो! यदि मुझपर आपलोगोंकी कृपा हो, तो मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें ॥ ५१—५३१/२ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा यौवनाश्वकी बात सुनकर दयासे परिपूर्ण हृदयवाले उन ब्राह्मणोंने इन्द्रको प्रधान देवता बनाकर अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन नरेशसे एक यज्ञ करवाया। ब्राह्मणोंने वहाँपर जलसे परिपूर्ण एक कलश स्थापित कराया और राजा यौवनाश्वकी पुत्रप्राप्तिके निमित्त वेदमन्त्रोंके द्वारा उस कलशका अभिमन्त्रण किया ॥ ५४-५५१/२ ॥

राजा यौवनाश्वको रातमें प्यास लग गयी, जिससे वे यज्ञशालामें चले गये। [वहाँ कहीं भी जल न देखकर तथा] ब्राह्मणोंको सोता हुआ देखकर उन्होंने कलशवाला



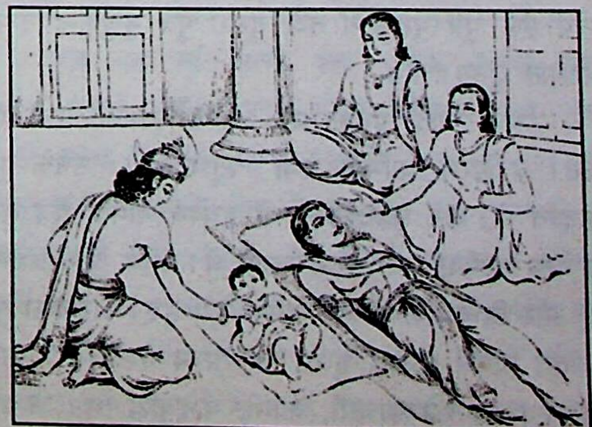
अभिमन्त्रित जल स्वयं ही पी लिया ॥ ५६१/२ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! प्याससे व्याकुल राजा यौवनाश्व ब्राह्मणोंके द्वारा विधिपूर्वक अभिमन्त्रित करके रानीके लिये रखे गये उस पवित्र जलको अज्ञानपूर्वक पी गये ॥ ५७१/२ ॥

तत्पश्चात् कलशको जल-विहीन देखकर ब्राह्मण सशंकित हो गये। उन विप्रोंने राजा यौवनाश्वसे पूछा कि इस जलको किसने पीया है? ॥ ५८१/२ ॥

स्वयं राजा यौवनाश्वने जल पीया है—इस बातको जानकर और दैव सबसे बढ़कर बलवान् होता है—यह समझकर उन महर्षियोंने यज्ञ सम्पन्न किया और बादमें वे अपने-अपने घर चले गये ॥ ५९१/२ ॥

तदनन्तर मन्त्रके प्रभावसे राजा यौवनाश्वने गर्भ धारण कर लिया। तब गर्भके पूर्ण होनेपर राजाकी दाहिनी कोखका



भेदन करके वे (मान्धाता) उत्पन्न हुए॥ ६०१/२॥

राजाके मन्त्रियोंने पुत्रको बाहर निकाला। देवताओंकी कृपासे राजा यौवनाश्वकी मृत्यु नहीं हुई। तब चिन्तित होकर मन्त्रीलोग यह कहकर जोरसे चिल्ला उठे—यह कुमार किसका दूध पीयेगा? इतनेमें इन्द्रने उसके मुखमें अपनी तर्जनी अँगुली डाल दी और यह वचन कहा—**'मां धाता'** अर्थात् यह मेरा दुग्ध-पान करेगा। वे ही मान्धाता नामक महान् बलशाली राजा हुए। हे राजन्! इस प्रकार मैंने उनकी उत्पत्तिका विस्तारपूर्वक वर्णन आपसे कर दिया॥ ६१—६३॥



॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'मान्धातोत्पत्तिवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

सूर्यवंशी राजा अरुणद्वारा राजकुमार सत्यव्रतका त्याग, सत्यव्रतका वनमें भगवती जगदम्बाके मन्त्र-जपमें रत होना

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] वे महाराज मान्धाता सत्यप्रतिज्ञ तथा चक्रवर्ती नरेश हुए। उन राजाधिराजने सम्पूर्ण पृथ्वीको जीत लिया था॥ १॥

उनके भयसे त्रस्त होकर सभी दस्यु (लुटेरे) पर्वतोंकी गुफाओंमें छिप गये थे। इसी कारण इन्द्रने इन्हें 'त्रसद्दस्यु' इस नामसे विख्यात कर दिया॥ २॥

महाराज शशबिन्दुकी पुत्री बिन्दुमती उनकी भार्या थीं; जो पतिव्रता, रूपवती तथा सभी शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न थीं॥ ३॥

हे राजन्! मान्धाताने उनसे दो पुत्र उत्पन्न किये। उनमें एक पुत्र पुरुकुत्स तथा दूसरा पुत्र मुचुकुन्द नामसे विख्यात हुआ॥ ४॥

उसके बाद पुरुकुत्ससे अरण्य नामक एक पुत्र हुआ। वे परम धार्मिक तथा पितृभक्त थे। उनके पुत्र बृहदश्व थे। उन बृहदश्वके भी हर्यश्व नामक पुत्र हुए, जो परम धर्मिष्ठ तथा परमार्थज्ञानी थे। उनके पुत्र त्रिधन्वा हुए और त्रिधन्वाके अरुण नामक पुत्र हुए। अरुणका पुत्र सत्यव्रत नामसे प्रसिद्ध हुआ, वह परम ऐश्वर्यसे सम्पन्न था; किंतु वह स्वेच्छाचारी, कामी, मन्दबुद्धि तथा अत्यन्त लोभी निकला॥ ५—७॥

एक समयकी बात है—उस पापीने कामासक्त होकर एक विप्रकी भार्याका अपहरण कर लिया। जब उस विप्रका विवाह कन्याके साथ हो रहा था, उसी समय विवाह-मण्डपमें ही उस राजकुमारने यह विघ्न उपस्थित किया था॥ ८॥

हे राजन्! तत्पश्चात् सभी ब्राह्मण एक साथ राजा अरुणके पास पहुँचे और अत्यधिक दुःखित होकर बार-बार कहने लगे—'हाय, हमलोग मारे गये'॥ ९॥

तब राजा अरुणने दुःखसे पीड़ित उन नगरवासी ब्राह्मणोंसे पूछा—हे विप्रगण! मेरे पुत्रने आपलोगोंका क्या अनिष्ट किया है?॥ १०॥

तब राजाकी यह वाणी सुनकर विप्रगण विपुल आशीर्वाद देते हुए उनसे विनम्रतापूर्वक कहने लगे॥ ११॥

ब्राह्मण बोले—बलशालियोंमें श्रेष्ठ हे राजन्! आज आपके पुत्र सत्यव्रतने विवाहमण्डपसे एक ब्राह्मणकी विवाहिता कन्याका बलपूर्वक हरण कर लिया है॥ १२॥

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] उनकी तथ्यपूर्ण बात सुनकर परम धार्मिक राजा अरुणने पुत्रसे

कहा—इस कुकर्मके कारण तुम्हारा 'सत्यव्रत' नाम व्यर्थ हो गया है। हे दुर्बुद्धि! दुराचारी! तुम मेरे घरसे दूर चले जाओ। अरे पापी! अब तुम मेरे राज्यमें ठहरनेके योग्य बिलकुल ही नहीं रह गये हो॥ १३-१४॥

अपने पिताको कुपित देखकर वह बार-बार कहने लगा कि मैं कहाँ जाऊँ? तब राजा अरुणने उससे कहा कि तुम चाण्डालोंके साथ रहो। विप्रकी भार्याका अपहरण करके तुमने चाण्डालका कर्म किया है, इसलिये अब तुम उन्हींके साथ संसर्ग करते हुए स्वेच्छापूर्वक रहो। अरे कुलकलंकी! तुझ-जैसे पुत्रसे मैं पुत्रवान् नहीं बनना चाहता। अरे दुष्ट! तुमने मेरी सारी कीर्ति नष्ट कर दी है; इसलिये जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ॥ १५—१७॥

कोपसे युक्त अपने महात्मा पिताकी बात सुनकर सत्यव्रत उस नगरसे तत्काल निकल गया और चाण्डालोंके पास चला गया। उस समय ऐश्वर्यसम्पन्न तथा करुणालय सत्यव्रत कवच पहनकर तथा धनुष-बाण लेकर उन चाण्डालोंके साथ रहने लगा॥ १८-१९॥

जब महात्मा राजा अरुणने कुपित होकर अपने पुत्र सत्यव्रतको निष्कासित किया था, तब गुरु वसिष्ठने उन्हें इस कार्यके लिये प्रेरित किया था। इसलिये राजकुमार सत्यव्रत निष्कासनसे न रोकनेवाले उन धर्मशास्त्रके ज्ञाता वसिष्ठजीपर कुपित था॥ २०-२१॥

एक समय किसी प्रसंगवश उस सत्यव्रतके पिता राजा अरुण अयोध्यापुरी छोड़कर पुत्रकी कल्याण-कामनासे तप करनेके लिये वनमें चले गये॥ २२॥

हे महाराज! उस समय उस अधर्मके कारण इन्द्रने उस राज्यमें बारह वर्षोंतक बिलकुल जल नहीं बरसाया॥ २३॥

हे राजन्! उस समय मुनि विश्वामित्र अपनी पत्नीको उस राज्यमें छोड़कर स्वयं कौशिकीनदीके तटपर कठोर तपस्या करने लगे थे॥ २४॥

विश्वामित्रकी सुन्दर रूपवाली भार्या उस अकालके समय कुटुम्बके भरण-पोषणकी समस्याके कारण दुःखित होकर चिन्तासे व्याकुल हो उठीं॥ २५॥

भूखसे पीड़ित होकर रोते-कलपते तथा नीवार अन्न माँगते हुए अपने पुत्रोंको देख-देखकर उस पतिव्रताको महान् कष्ट होता था॥ २६॥

भूखसे आक्रान्त पुत्रोंको देखकर दुःखसे व्याकुल हो वे सोचने लगीं कि इस समय नरेश भी नगरमें नहीं हैं; अतः अब मैं किससे माँगूँ अथवा अन्य कौन-सा उपाय करूँ॥ २७॥

यहाँ मेरे पुत्रोंकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। मेरे पतिदेव भी इस समय मेरे पास नहीं हैं। ये बालक बहुत रो रहे हैं, अब तो मेरे जीवनको धिक्कार है॥ २८॥

मैं धनरहित हूँ—ऐसा जानते हुए भी मुझे छोड़कर पतिदेव तप करनेके लिये चले गये। समर्थ होकर भी वे इस बातको नहीं समझते कि धनके अभावमें मैं यह कष्ट भोग रही हूँ॥ २९॥

पतिकी अनुपस्थितिमें अब मैं किसकी सहायतासे बालकोंका भरण-पोषण करूँ। अब तो भूखसे तड़प-तड़पकर मेरे सभी पुत्र मर जायँगे। अतः अब एक यह उपाय मुझे सूझ रहा है कि इनमेंसे एक पुत्रको बेचकर जो कुछ भी धन प्राप्त हो, उस धनसे अन्य पुत्रोंका पालन-पोषण करूँ॥ ३०-३१॥

इस प्रकार भूखसे सभी पुत्रोंको मार डालना मेरे विचारसे उचित नहीं है। अतः इस संकटकी स्थितिसे निबटनेके लिये मैं एक पुत्रको बेचूँगी॥ ३२॥

मन-ही-मन इस तरहका संकल्प करके अपने हृदयको कठोर बनाकर वह साध्वी एक पुत्रके गलेमें कुशकी रस्सी बाँधकर घरसे निकल पड़ी॥ ३३॥

जब वह मुनि-पत्नी शेष पुत्रोंके रक्षार्थ अपने औरस मझले पुत्रके गलेमें रस्सी बाँधकर उसे लेकर अपने घरसे निकली, तभी [उसके कुछ दूर जानेपर] राजकुमार सत्यव्रतने उस शोकसन्तप्त तथा घबरायी हुई तपस्विनीको देख लिया और उससे पूछा—हे शोभने! आप क्या करना चाहती हो? हे सर्वांगसुन्दरि! आप कौन हैं और इस रोते हुए बालकके गलेमें रस्सी बाँधकर किसलिये ले जा रही हैं? यह सब आप मेरे समक्ष सच-

सच बताइये ॥ ३४—३६ ॥

ऋषिपत्नी बोलीं—हे राजकुमार! मैं ऋषि विश्वामित्रकी पत्नी हूँ और यह मेरा पुत्र है। विषम संकटमें पड़कर मैं अपने इस औरस पुत्रको बेचनेके लिये जा रही हूँ। हे राजन्! मेरे पास अन्न नहीं है और मेरे पति मुझे छोड़कर तपस्या करनेके लिये कहीं चले गये हैं, अतः भूखसे व्याकुल मैं अब अपने शेष पुत्रोंके भरण-पोषणके निमित्त इसे बेचूँगी ॥ ३७-३८ ॥

राजा बोले—हे पतिव्रते! आप अपने पुत्रकी रक्षा करें। जबतक आपके पति वनसे यहाँ वापस नहीं आ जाते, तबतक मैं आपके भरण-पोषणका प्रबन्ध कर दे रहा हूँ। मैं आपके आश्रमके समीपवाले वृक्षपर कुछ भोज्य-सामग्री प्रतिदिन बाँधकर चला जाया करूँगा, मैं यह सत्य कह रहा हूँ ॥ ३९-४० ॥

राजकुमारके यह कहनेपर विश्वामित्रकी भार्या अपने पुत्रके गलेसे रस्सी खोलकर अपने आश्रमको लौट गयीं ॥ ४१ ॥

गला बँधनेके कारण उस बालकका नाम 'गालव' पड़ गया और वह महान् तपस्वी हुआ। अपने आश्रममें जाकर वे बालकोंके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगीं ॥ ४२ ॥

राजकुमार सत्यव्रत भी आदर और दयासे परिपूर्ण होकर मुनि विश्वामित्रकी पत्नीका भरण-पोषण करने लगे। वे वन्य भोज्य-पदार्थोंको लाकर विश्वामित्रके तपोवनके समीपवाले वृक्षपर बाँध दिया करते थे और ऋषिपत्नी प्रतिदिन उसे लाकर अपने पुत्रोंको देती थी। वह उत्तम भोज्य-पदार्थ प्राप्त करके उसे परम तृप्ति मिलती थी ॥ ४३—४५ ॥

राजा अरुणके तपस्या करनेके लिये चले जानेके बाद महर्षि वसिष्ठ अयोध्यानगरीके सम्पूर्ण राज्य तथा अन्तःपुरकी भलीभाँति रक्षा करने लगे ॥ ४६ ॥

धर्मात्मा सत्यव्रत भी पिताकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा नगरके बाहर ही रहते थे तथा वनमें पशुओंका आखेट किया करते थे ॥ ४७ ॥

अकस्मात् एक समय राजकुमार सत्यव्रत किसी कारणवश महर्षि वसिष्ठके प्रति अत्यधिक कुपित हो उठे और उनका यह कोप निरन्तर बढ़ता ही गया ॥ ४८ ॥

[वे बार-बार यही सोचते थे कि] जब मेरे पिता राजा अरुण मुझ धर्मपरायण तथा प्रिय पुत्रका त्याग कर रहे थे, उस समय मुनि वसिष्ठने उन्हें किस कारणसे नहीं रोका? ॥ ४९ ॥

सप्तपदी होनेके अनन्तर ही विवाहके मन्त्रोंकी पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। [जब मैंने सप्तपदीके पहले ही कन्याका हरण कर लिया तो] यह विवाहित विप्रस्त्रीका हरण हुआ ही नहीं—यह सब जानते हुए भी धर्मात्मा वसिष्ठने उन्हें ऐसा करनेसे नहीं रोका ॥ ५० ॥

किसी दिन वनमें आखेटके लिये गये सत्यव्रतको कोई भी मृग न मिलनेपर वे घूमते-घूमते वनके मध्यमें पहुँच गये। वहाँपर उन्हें मुनि वसिष्ठकी दुधारू गौ दिखायी पड़ गयी। भूखसे पीड़ित रहने तथा मुनि वसिष्ठपर कुपित होनेके कारण अज्ञानपूर्वक राजकुमार सत्यव्रतने एक दस्युकी भाँति उसका वध कर डाला। 'सत्यव्रतने मेरी दुधारू गायको मार डाला है'—यह जानकारी होनेपर मुनि वसिष्ठने कुपित होकर उससे कहा—अरे दुरात्मन्! पिशाचकी भाँति गायका वध करके तुमने यह कैसा पाप कर डाला! उन्होंने [शाप देते हुए] कहा—'गोवध, विप्रभार्याके हरण और पिताके भयंकर कोप—इन तीनोंके कारण तुम्हारे मस्तकपर तत्काल तीन गहरे शंकु (पाप-चिह्न) पड़ जायँ। अब सभी प्राणियोंको अपना पैशाचिक रूप दिखलाते हुए तुम संसारमें 'त्रिशंकु' नामसे प्रसिद्ध होओगे' ॥ ५१—५६ ॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] तब मुनि वसिष्ठसे इस तरह शापग्रस्त होकर राजकुमार सत्यव्रतने उसी आश्रममें रहते हुए कठोर तप आरम्भ कर दिया। किसी मुनि-पुत्रसे श्रेष्ठ देवी-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त करके परम कल्याणमयी प्रकृतिस्वरूपिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए वह सत्यव्रत उस मन्त्रका जप करने लगा ॥ ५७-५८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'सत्यव्रताख्यानवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भगवती जगदम्बाकी कृपासे सत्यव्रतका राज्याभिषेक और राजा अरुणद्वारा उन्हें नीतिशास्त्रकी शिक्षा देना

जनमेजय बोले—हे महामते! वसिष्ठजी द्वारा शापित वह राजकुमार त्रिशंकु उस शापसे किस प्रकार मुक्त हुआ, उसे मुझे बताइये॥ १॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार शापग्रस्त सत्यव्रत पिशाचत्वको प्राप्त हो गये। वे देवीभक्तिमें संलग्न होकर उसी आश्रममें रहने लगे॥ २॥

किसी समय राजा सत्यव्रत नवाक्षर मन्त्रका जप समाप्त करके हवन करानेके लिये ब्राह्मणोंके पास जाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनसे बोले—हे भूदेवगण! आपलोग मुझ शरणागतकी प्रार्थना सुनिये। इस समय आप सभी लोग मेरे यज्ञमें ऋत्विक् होनेकी कृपा कीजिये। आप सब कृपालु तथा वेदवेत्ता विप्रगण मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये जपके दशांशसे हवन-कर्म सम्पन्न करा दीजिये। हे ब्रह्मविदोंमें श्रेष्ठ विप्रगण! मेरा नाम सत्यव्रत है; मैं एक राजकुमार हूँ। मेरे सर्वविध सुखके लिये आपलोग मेरा यह कार्य सम्पन्न कर दें॥ ३—६॥

यह सुनकर ब्राह्मणोंने उस राजकुमारसे कहा—अपने गुरुसे शापग्रस्त होकर इस समय तुम पिशाच बन गये हो, इसलिये वेदोंपर अधिकार न रहनेके कारण तुम यज्ञ करनेके योग्य नहीं हो। तुम सभी लोकोंमें निन्द्य पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुके हो॥ ७-८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी बात सुनकर राजा अत्यन्त दु:खित हुए। [वे सोचने लगे—] मेरे जीवनको धिक्कार है, अब मैं वनमें रहकर क्या करूँ? पिताने मेरा परित्याग कर दिया है, गुरुने मुझे घोर शाप दे दिया है, राज्यसे च्युत हो गया हूँ और पैशाचिकतासे ग्रस्त हो चुका हूँ, तो ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ?॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् उस राजकुमारने लकड़ियोंसे बहुत बड़ी चिता तैयार करके उसमें प्रवेश करनेका विचार करते हुए भगवती चण्डिकाका स्मरण किया॥ ११॥

भगवती महामायाका स्मरण करके उसने चिता प्रज्वलित की और स्नान करके उसमें प्रविष्ट होनेके लिये दोनों हाथ जोड़कर चिताके सामने खड़ा हो गया॥ १२॥

राजकुमार सत्यव्रत मरनेहेतु उद्यत हैं—ऐसा जानकर भगवती जगदम्बा उनके सामने आकाशमें प्रत्यक्ष स्थित हो



गयीं। हे महाराज! सिंहपर आरूढ़ वे देवी राजकुमारको दर्शन प्रदान करके मेघके समान गम्भीर वाणीमें उनसे कहने लगीं॥ १३-१४॥

देवी बोलीं—हे साधो! आप यह दुष्प्रयास क्यों कर रहे हैं? इस तरह अग्निमें देहत्याग मत कीजिये। हे महाभाग! आप स्वस्थचित्त हो जाइये। आपके वृद्ध पिता आपको राज्य सौंपकर तपस्याके लिये वनमें जानेवाले हैं। हे वीर! शोकका त्याग कीजिये। हे राजन्! आपके पिताके मन्त्रीगण आपको ले जानेके लिये परसों आयेंगे। मेरी कृपाके प्रभावसे आपके पिताजी राजसिंहासनपर आपका अभिषेक करके कामनापर विजय प्राप्तकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थान करेंगे; यह सुनिश्चित है॥ १५—१७½॥

व्यासजी बोले—राजकुमारसे ऐसा कहकर देवी वहींपर अन्तर्धान हो गयीं। तब राजकुमार सत्यव्रतने चितामें जलकर मरनेका विचार छोड़ दिया॥ १८½॥

तत्पश्चात् महात्मा नारदजीने अयोध्यामें आकर आरम्भसे लेकर सत्यव्रतका सारा वृत्तान्त राजा अरुणसे कह दिया॥ १९½॥

अपने पुत्रकी उस प्रकारकी जलकर मरनेकी चेष्टा सुनकर राजा अत्यन्त दु:खीचित्त होकर तरह-तरहकी बात सोचने लगे॥ २०१/२॥

पुत्रके शोकमें निमग्न धर्मात्मा राजा अरुणने मन्त्रियोंसे कहा—आपलोग मेरे पुत्रके द्वारा की गयी अत्यन्त भीषण चेष्टाके विषयमें जान गये हैं। मैंने अपने बुद्धिमान् पुत्र सत्यव्रतका वनमें त्याग कर दिया था। परमार्थका ज्ञान रखनेवाला वह पुत्र यद्यपि राज्यका अधिकारी था, फिर भी मेरी आज्ञासे वह तत्काल वन चला गया। मेरा वह क्षमाशील पुत्र धनहीन होकर अभी उसी वनमें [देवीकी] उपासनामें रत होकर रह रहा है। वसिष्ठजीने उसे शाप दे दिया है और पिशाचतुल्य बना दिया है॥ २१—२३१/२॥

दु:खसे सन्तप्त वह सत्यव्रत आज अग्निमें प्रवेश करनेको तत्पर हो गया था, किंतु भगवतीने उसे ऐसा करनेसे मना कर दिया। इस समय वह वहींपर स्थित है। अत: आपलोग शीघ्र जाइये और मेरे उस महाबली ज्येष्ठ पुत्रको अपने वचनोंसे आश्वासन देकर तुरंत यहाँ ले आइये। प्रजापालन करनेमें समर्थ अपने औरस पुत्रका राज्याभिषेक करके मैं शान्त होकर वनमें चला जाऊँगा। अब मैंने तपस्याके लिये निश्चय कर लिया है॥ २४—२६१/२॥

ऐसा कहकर पुत्रप्रेममें प्रवृत्त मनवाले राजा अरुणने सत्यव्रतको लानेके लिये अपने सभी मन्त्रियोंको वहाँ भेज दिया॥ २७१/२॥

वनमें जाकर वे मन्त्री महात्मा राजकुमार सत्यव्रतको आश्वासन देकर उन्हें सम्मानपूर्वक अयोध्या ले आये॥ २८१/२॥

सत्यव्रतको अत्यन्त दुर्बल, मलिन वस्त्र धारण किये, बड़े-बड़े जटा-जूटवाला, भयंकर तथा चिन्तासे व्यग्र देखकर राजा [अरुण] सोचने लगे कि मैंने यह कैसा निष्ठुर कर्म कर डाला था, जो कि धर्मका वास्तविक स्वरूप जानते हुए भी मैंने राजपदके योग्य तथा अत्यन्त मेधावी पुत्रको निर्वासित कर दिया था॥ २९-३०१/२॥

[हे राजन्!] इस प्रकार मन-ही-मन सोचकर महाराज [अरुण]-ने राजकुमार सत्यव्रतको वक्ष:स्थलसे लगा लिया और उसे सम्यक् आश्वासन देकर अपने पासमें ही स्थित आसनपर बैठा लिया। तत्पश्चात् नीतिशास्त्रके पारगामी विद्वान् राजा अरुण पासमें बैठे हुए अपने उस पुत्रसे प्रेमयुक्त गद्गद वाणीमें कहने लगे॥ ३१-३२१/२॥

राजा बोले—हे पुत्र! तुम सदा धर्ममें ही अपनी बुद्धि लगाना, विप्रोंका सम्मान करना, न्यायपूर्वक प्राप्त धन ही ग्रहण करना, प्रजाओंकी सर्वदा रक्षा करना, कभी असत्य भाषण मत करना, निन्दित मार्गका अनुसरण मत करना, शिष्टजनोंके आज्ञानुसार कार्य करना, तपस्वियोंकी पूजा करना, क्रूर लुटेरोंका दमन करना और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना। हे पुत्र! कार्यसिद्धिके लिये राजाको अपने मन्त्रियोंके साथ सदा गुप्त मन्त्रणा करते रहना चाहिये। हे सुत! सबके आत्मास्वरूप राजाको चाहिये कि छोटे-से-छोटे शत्रुकी भी उपेक्षा न करे। शत्रुसे मिले हुए अपने अत्यन्त विनम्र मन्त्रीपर भी राजाको विश्वास नहीं करना चाहिये॥ ३३—३७॥

सर्वत्र शत्रु तथा मित्रकी गतिविधियोंको जाननेके लिये सर्वदा गुप्तचरोंकी नियुक्ति करनी चाहिये, धर्ममें सदा बुद्धि लगाये रखनी चाहिये और प्रतिदिन दान देते रहना चाहिये। नीरस सम्भाषण नहीं करना चाहिये, दुष्टोंकी संगतिका त्याग कर देना चाहिये, विविध यज्ञानुष्ठान करते रहना चाहिये और महर्षियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। स्त्री, नपुंसक तथा द्यूतपरायण व्यक्तिपर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये और आखेटके प्रति अत्यन्त आदरबुद्धि कभी नहीं रखनी चाहिये॥ ३८—४०॥

द्यूत, मदिरा, अश्लील संगीत तथा वेश्याओंसे स्वयं बचना चाहिये और अपनी प्रजाओंको भी इनसे बचाना चाहिये। ब्राह्ममुहूर्तमें [शयनसे] सदा निश्चय ही उठ जाना चाहिये। तत्पश्चात् दीक्षित मनुष्यको स्नान आदि सभी नित्य नियमोंसे निवृत्त होकर भलीभाँति भक्तिपूर्वक पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करनी चाहिये। हे पुत्र! पराशक्ति जगदम्बाके चरणोंकी पूजा ही इस जन्मकी सफलता है॥ ४१—४३॥

एक बार भी भगवती जगदम्बाकी महापूजा करके

उनके चरणोदकका पान करनेवाला मनुष्य फिर कभी माताके गर्भमें नहीं जाता, यह सर्वथा निश्चित है॥ ४४॥

सारा जगत् दृश्य है और महादेवी द्रष्टा तथा साक्षी हैं—इस प्रकारकी भावनासे युक्त होकर सदा भयमुक्त चित्तसे रहना चाहिये॥ ४५॥

[हे पुत्र!] तुम प्रतिदिन नित्य-नियमका पालन करके सभामें जाना और द्विजोंको बुलाकर उनसे धर्मशास्त्रसम्बन्धी निर्णय पूछना॥ ४६॥

वेद-वेदान्तके पारगामी आदरणीय विद्वानोंकी विधिवत् पूजा करके सुयोग्य पात्रोंको गौ, भूमि तथा सुवर्ण आदिका सदा दान करना॥ ४७॥

तुम कभी भी किसी मूर्ख ब्राह्मणकी पूजा मत करना और मूर्ख व्यक्तिको कभी भी भोजनसे अधिक कुछ भी मत देना। हे पुत्र! तुम किसी भी परिस्थितिमें लोभवश धर्मका उल्लंघन मत करना। इसके अतिरिक्त तुम्हें कभी भी विप्रोंका अपमान नहीं करना चाहिये। पृथ्वीके देवतास्वरूप ब्राह्मणोंका प्रयत्नपूर्वक सम्मान करना चाहिये। क्षत्रियोंके एकमात्र आधार ब्राह्मण ही हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४८—५०॥

जलसे अग्निकी, ब्राह्मणसे क्षत्रियकी और पत्थरसे लोहेकी उत्पत्ति हुई है। उनका सर्वत्रगामी तेज अपनी ही योनिमें शान्त होता है। अतः ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले राजाको विशेषरूपसे विनम्रतापूर्वक दानके द्वारा ब्राह्मणोंका सत्कार करना चाहिये। राजाको चाहिये कि वह धर्मशास्त्रके अनुसार दण्डनीतिका पालन करे और न्यायसे उपार्जित धनका निरन्तर संग्रह करे॥ ५१—५३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'सत्यव्रतके लिये राजनीतिके उपदेशका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

राजा सत्यव्रतको महर्षि वसिष्ठका शाप तथा युवराज हरिश्चन्द्रका राजा बनना

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] इस प्रकार पिताके समझानेपर राजकुमार त्रिशंकुने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक गद्गद वाणीमें पितासे कहा—'मैं वैसा ही करूँगा'॥ १॥

तत्पश्चात् महाराज अरुणने वेदशास्त्रके पारगामी विद्वान् तथा मन्त्रवेत्ता ब्राह्मणोंको बुलाकर अभिषेककी सारी सामग्रियाँ तुरंत एकत्र करायीं और सम्पूर्ण तीर्थोंका जल मँगाकर तथा सभी मन्त्रियों, सामन्तों और नरेशोंको बुलाकर शुभ दिनमें उस राजकुमारको विधिपूर्वक श्रेष्ठ राज्यासनपर आसीन कर दिया॥ २-३$^1/_2$॥

इस प्रकार पिताने पुत्र त्रिशंकुको राज्यपर विधिपूर्वक अभिषिक्त करके अपनी धर्मपत्नीके साथ पवित्र तीसरे आश्रम (वानप्रस्थ)-को ग्रहण किया और वे वनमें गंगाके तटपर कठोर तप करने लगे॥ ४-५॥

आयु समाप्त हो जानेपर वे स्वर्गको चले गये। वहाँ वे देवताओंके द्वारा भी पूजित हुए और इन्द्रके समीप स्थित रहते हुए सदा सूर्यकी भाँति सुशोभित होने लगे॥ ६॥

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] आप पूज्यवरने कथाके प्रसंगमें अभी-अभी बताया कि गुरुदेव वसिष्ठने पयस्विनी गौका वध कर देनेके कारण राजकुमार सत्यव्रतको कुपित होकर शाप दे दिया और वह पिशाचत्वको प्राप्त हो गया। हे प्रभो! तदनन्तर पैशाचिकतासे उसका कैसे उद्धार हुआ? इस विषयमें मुझे संशय हो रहा है। शापग्रस्त मनुष्य सिंहासनके योग्य नहीं होता। सत्यव्रतके दूसरे किस कर्मके प्रभावसे मुनि वसिष्ठने उसे अपने शापसे मुक्त कर दिया। हे विप्रर्षे! शापसे मुक्तिका कारण बताइये और मुझे यह भी बताइये कि वैसे [निन्द्य] आकृतिवाले पुत्रको उसके पिता [राजा अरुण]-ने अपने घर वापस क्यों बुला लिया?॥ ७—१०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] मुनि वसिष्ठके द्वारा शापित वह सत्यव्रत तत्काल पैशाचिकताको प्राप्त हो गया। इसके फलस्वरूप वह कुरूप, दुर्धर्ष तथा सभी

प्राणियोंके लिये भयंकर हो गया, किंतु हे राजन्! जब उस सत्यव्रतने भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना की, तब भगवतीने प्रसन्न होकर क्षणभरमें उसे दिव्य शरीरवाला बना दिया॥ ११-१२॥

भगवतीके कृपारूपी अमृतसे उसकी पैशाचिकता समाप्त हो गयी और उसका पाप विनष्ट हो गया। अब वह पापरहित तथा अतितेजस्वी हो गया॥ १३॥

भगवतीकी कृपासे वसिष्ठजी भी प्रसन्नचित्त हो गये और उसके पिता [अरुण] भी प्रेमसे परिपूर्ण हो गये॥ १४॥

पिताके मृत हो जानेपर धर्मात्मा राजा सत्यव्रत राज्यपर सम्यक् शासन करने लगा। वह अनेक प्रकारके यज्ञोंद्वारा देवेश्वरी सनातनी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहने लगा॥ १५॥

उस त्रिशंकु (सत्यव्रत)-के पुत्र हरिश्चन्द्र हुए, जो शास्त्रोक्त शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा परम सुन्दर स्वरूपवाले थे॥ १६॥

[कुछ समयके बाद] राजा त्रिशंकुने अपने पुत्र हरिश्चन्द्रको युवराज बनाकर मानव-शरीरसे ही स्वर्ग-सुख भोगनेका निश्चय किया॥ १७॥

तब राजा त्रिशंकु वसिष्ठके आश्रममें गये और उन्हें विधिवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक उनसे यह वचन कहने लगे॥ १८॥

राजा बोले—हे ब्रह्मपुत्र! हे महाभाग! हे सर्वमन्त्र-विशारद! हे तापस! आप प्रसन्नतापूर्वक मेरी प्रार्थना सुननेकी कृपा कीजिये। अब स्वर्ग-लोकका सुख भोगनेकी इच्छा मेरे मनमें उत्पन्न हुई है। अप्सराओंके साथ रहने, नन्दनवनमें क्रीड़ा करने तथा देव-गन्धर्वोंका मधुर गीत सुनने आदि दिव्य भोगोंको मैं इसी मानव-शरीरसे भोगना चाहता हूँ॥ १९—२१॥

हे महामुने! आप शीघ्र ही मुझसे ऐसा यज्ञ सम्पन्न कराइये, जिससे मैं इसी मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास कर सकूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! आप सर्वसमर्थ हैं, अतः मेरा यह कार्य अब पूर्ण कर दीजिये; यज्ञ सम्पन्न कराकर मुझे अत्यन्त दुर्लभ देवलोककी प्राप्ति करा दीजिये॥ २२-२३॥

वसिष्ठजी बोले—हे राजन्! मानव-शरीरसे स्वर्ग-लोकमें निवास अत्यन्त दुर्लभ है। मरनेके पश्चात् ही पुण्य कर्मके प्रभावसे स्वर्गकी सुनिश्चित प्राप्ति कही गयी है। अतः हे सर्वज्ञ! तुम्हारे इस दुर्लभ मनोरथको पूर्ण करनेमें मैं डर रहा हूँ। जीवित प्राणीके लिये अप्सराओंके साथ निवास दुर्लभ है। अतः हे महाभाग! आप अनेक यज्ञ कीजिये, मृत्युके अनन्तर आप स्वर्ग प्राप्त कर लेंगे॥ २४-२५१/२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वसिष्ठजीका यह वचन सुनकर अत्यन्त उदास मनवाले राजा त्रिशंकुने पहलेसे ही कुपित उन मुनिवर वसिष्ठसे कहा—हे ब्रह्मन्! यदि आप अभिमानवश मेरा यज्ञ नहीं करायेंगे, तो मैं किसी दूसरेको अपना पुरोहित बनाकर इसी समय यज्ञ करूँगा॥ २६-२७१/२॥

उनका यह वचन सुनते ही वसिष्ठजीने क्रोधित होकर राजाको शाप दे दिया—'हे दुर्बुद्धि! चाण्डाल हो जाओ। इसी शरीरसे तुम अभी नीच योनिको प्राप्त हो जाओ। स्वर्गको नष्ट करनेवाले तथा सुरभीके वधके दोषसे युक्त हे पापिष्ठ! विप्रकी भार्याका हरण करनेवाले तथा धर्ममार्गको दूषित करनेवाले हे पापी! मरनेके बाद भी तुम किसी प्रकार स्वर्ग नहीं प्राप्त कर सकते॥ २८—३०१/२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! गुरु वसिष्ठके ऐसा कहते ही त्रिशंकु तत्क्षण उसी शरीरसे चाण्डाल हो गये। उनके रत्नमय कुण्डल उसी क्षण पत्थर हो गये तथा शरीरमें लगा हुआ सुगन्धित चन्दन दुर्गन्धयुक्त हो गया। उनके शरीरपर धारण किये हुए दिव्य पीताम्बर कृष्ण वर्णके हो गये। महात्मा वसिष्ठके शापसे उनका शरीर गजवर्ण-जैसा धूमिल हो गया॥ ३१—३३१/२॥

हे राजन्! भगवतीके उपासक मुनि वसिष्ठके रोषके कारण ही त्रिशंकुको यह फल प्राप्त हुआ। इसलिये भगवती जगदम्बाके भक्तका कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ बड़ी निष्ठाके साथ गायत्रीजपमें संलग्न रहते थे॥ ३४-३५॥

[हे राजन्!] उस समय अपना कलंकित शरीर

देखकर राजा त्रिशंकु अत्यन्त दु:खित हुए। इस प्रकार दीन-दशाको प्राप्त वे राजा घर नहीं गये, अपितु जंगलकी ओर चले गये॥ ३६॥

शोक-सन्तप्त वे त्रिशंकु दु:खित होकर सोचने लगे—अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? मेरा शरीर तो अत्यन्त निन्दित हो गया। मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, जिससे मेरा दु:ख दूर हो सके। यदि मैं आज घर जाता हूँ, तो मुझे इस स्वरूपमें देखकर पुत्रको महान् पीड़ा होगी और भार्या भी मुझे चाण्डालके रूपमें देखकर स्वीकार नहीं करेगी। इस प्रकारके चाण्डाल रूपवाले मुझ निन्द्यको देखकर मेरे मन्त्रीगण तथा जातिवाले भी आदर नहीं करेंगे और भाई-बन्धु भी संगमें नहीं रहेंगे। इस प्रकार सभी लोगोंके द्वारा परित्यक्त किये जानेवाले मेरे लिये तो जीनेकी अपेक्षा मर जाना ही अच्छा है। अत: अब मैं विष खाकर, जलाशयमें कूदकर या गलेमें फाँसी लगाकर देह-त्याग कर दूँ अथवा विधिवत् प्रज्वलित अग्निमें अपने देहको जला डालूँ या फिर अनशन करके अपने कलंकित प्राणोंका त्याग कर दूँ॥ ३७—४२॥

[ऐसा विचार आते ही उन्होंने पुन: सोचा] आत्महत्या करनेसे मुझे निश्चय ही जन्म-जन्मान्तरमें पुन: चाण्डाल होना पड़ेगा और आत्महत्या-दोषके परिणामस्वरूप मैं शापसे कभी मुक्त नहीं हो सकूँगा॥ ४३॥

ऐसा सोचनेके बाद राजाने अपने मनमें पुन: विचार किया कि इस समय मुझे किसी भी स्थितिमें आत्महत्या नहीं करनी चाहिये, अपितु वनमें रहकर मुझे अपने द्वारा किये गये कर्मका फल इसी शरीरसे भोग लेना चाहिये; क्योंकि इससे इस कुकर्मका फल सर्वथा समाप्त हो जायगा॥ ४४-४५॥

भोगसे ही प्रारब्ध कर्मोंका क्षय होता है, अन्यथा इनका क्षय नहीं होता। इसलिये अब यहींपर तीर्थोंका सेवन, भगवती जगदम्बाका स्मरण तथा साधुजनोंकी सेवा करते हुए मुझे अपने द्वारा किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोग लेना चाहिये। इस प्रकार वनमें रहते हुए मैं अपने कर्मोंका क्षय अवश्य ही करूँगा। साथ ही, सम्भव है कि भाग्यवश किसी साधुजनसे मिलनेका भी कभी अवसर प्राप्त हो जाय॥ ४६—४८॥

मनमें ऐसा सोचकर राजा [त्रिशंकु] अपना नगर छोड़कर गंगाके तटपर चले गये और अत्यधिक चिन्तित रहते हुए वहीं रहने लगे॥ ४९॥

उसी समय पिताके शापका कारण जानकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दु:खित हुए और उन्होंने अपने मन्त्रियोंको पिता त्रिशंकुके पास भेजा॥ ५०॥

मन्त्रीगण वहाँ शीघ्र पहुँचकर बार-बार दीर्घ श्वास ले रहे चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुको प्रणामकर विनम्रतापूर्वक उनसे बोले—हे राजन्! आपके पुत्र हरिश्चन्द्रकी आज्ञासे यहाँ आये हुए हमलोगोंको आप मन्त्री समझिये। हे महाराज! आपके पुत्र युवराज हरिश्चन्द्रने [हमसे] जो कहा है, उसे आप सुनिये—'आपलोग मेरे पिता राजा त्रिशंकुको सम्मानपूर्वक यहाँ ले आइये'॥ ५१—५३॥

अत: हे राजन्! अब आप सारी चिन्ता छोड़कर अपने राज्य वापस लौट चलिये। वहाँ सभी मन्त्रीगण तथा प्रजाजन आपकी सेवा करेंगे॥ ५४॥

हमलोग भी गुरु वसिष्ठको प्रसन्न करेंगे, जिससे वे आपके ऊपर दया करें। प्रसन्न हो जानेपर वे महान् तेजस्वी आपका कष्ट अवश्य दूर कर देंगे॥ ५५॥

हे राजन्! इस प्रकार आपके पुत्रने बहुत प्रकारसे कहा है। अत: अब शीघ्रतापूर्वक अपने घर लौट चलनेकी कृपा कीजिये॥ ५६॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर चाण्डालकी आकृतिवाले राजा त्रिशंकुने अपने घर चलनेका कोई विचार मनमें नहीं किया। उस समय राजाने उनसे कहा—हे सचिवगण! आपलोग नगरको लौट जाइये और हे महाभाग! वहाँ जाकर [हरिश्चन्द्रसे] मेरे शब्दोंमें कह दीजिये—'हे पुत्र! मैं नहीं आऊँगा। तुम अनेकविध यज्ञोंके द्वारा ब्राह्मणोंका सम्मान करते हुए तथा देवताओंकी पूजा करते हुए सदा सावधान होकर राज्य करो'॥ ५७—५९॥

[हे सचिवगण!] महात्माओंके द्वारा सर्वथा निन्दित

इस चाण्डाल-वेशसे अब मैं अयोध्या नहीं जाऊँगा। आप सभी लोग यहाँसे शीघ्र लौट जाइये। [वहाँ जाकर] मेरे महाबली पुत्र हरिश्चन्द्रको सिंहासनपर बिठाकर आपलोग मेरी आज्ञासे राज्यके समस्त कार्य कीजिये॥ ६०-६१॥

इस प्रकार त्रिशंकुके उपदेश देनेपर सभी मन्त्री अत्यधिक दुःखी होकर रोने लगे और उन्हें प्रणाम करके वानप्रस्थ-आश्रममें जीवन व्यतीत करनेवाले उन [राजा त्रिशंकु]-के पाससे लौट आये। अयोध्यामें आकर उन मन्त्रियोंने शुभ दिनमें हरिश्चन्द्रके मस्तकपर विधिपूर्वक अभिषेक किया॥ ६२-६३॥

राजा [त्रिशंकु]-की आज्ञासे मन्त्रियोंके द्वारा राज्याभिषिक्त होकर तेजस्वी तथा धर्मपरायण हरिश्चन्द्र अपने पिताका निरन्तर स्मरण करते हुए राज्य करने लगे॥ ६४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'त्रिशंकुके उपाख्यानका वर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

राजर्षि विश्वामित्रका अपने आश्रममें आना और सत्यव्रतद्वारा किये गये उपकारको जानना

राजा [जनमेजय] बोले—[हे व्यासजी!] राजा त्रिशंकुके आदेशसे सचिवोंने हरिश्चन्द्रको राजा बना दिया, किंतु स्वयं त्रिशंकुने उस चाण्डाल-देहसे मुक्ति कैसे प्राप्त की? वे वनमें कहीं मर गये अथवा गंगा-तटपर जलमें डूब गये अथवा गुरु वसिष्ठने कृपा करके उन्हें शापसे मुक्त कर दिया। यह सम्पूर्ण वृत्तान्त आप मेरे समक्ष कहिये; मैं राजा त्रिशंकुका चरित्र भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अपने पुत्रका राज्याभिषेक करके राजा त्रिशंकुका चित्त बहुत प्रसन्न हुआ और वे वहीं जंगलमें कल्याणकारिणी भगवती जगदम्बाका ध्यान करते हुए समय व्यतीत करने लगे॥ ४॥

इस तरह कुछ समय बीतनेके बाद कौशिक-मुनि एकाग्रचित्त होकर तपस्या पूर्ण करके अपनी पत्नी तथा पुत्रों आदिको देखनेके लिये [अपने आश्रममें] आये। वहाँ आकर अपने स्त्री-पुत्रादिको स्वस्थ देखकर वे परम हर्षित हुए। मेधावी ऋषिने पूजाके लिये आगे स्थित अपनी भार्यासे पूछा—हे सुनयने! दुर्भिक्षकी स्थितिमें तुमने समय कैसे व्यतीत किया? तुमने अन्नके बिना इन बालकोंको किस उपायसे पाला; यह मुझे बताओ॥ ५—७॥

हे सुन्दरि! मैं तो तपस्यामें संलग्न था, इसलिये नहीं आ सका। हे प्रिये! हे शोभने! बिना धनके तुमने क्या व्यवस्था की?॥ ८॥

यहाँ पर भीषण अकालका समाचार सुनकर मैं अत्यधिक चिन्तित था, किंतु यह सोचकर नहीं आया कि धनहीन मैं [वहाँ जाकर] करूँगा ही क्या!॥ ९॥

हे सुजघने! वनमें एक दिन मैं भी भूखसे अत्यधिक विकल होकर चोरकी भाँति एक चाण्डालके घरमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ चाण्डालको सोया हुआ देखकर भूखसे अत्यन्त व्याकुल मैं रसोईघर खोजकर कुछ खानेके लिये उसमें पहुँच गया॥ १०-११॥

बर्तन खोलकर भोजन प्राप्त करनेके लिये मैंने ज्यों ही बर्तनमें हाथ डाला, तभी उस चाण्डालने मुझे देख लिया। उसने आदरपूर्वक मुझसे पूछा—आप कौन हैं? रातके समय मेरे घरमें आप क्यों प्रविष्ट हुए हैं और मेरे बर्तनको क्यों खोल रहे हैं? आप अपना उद्देश्य बताइये॥ १२-१३॥

हे सुन्दर केशोंवाली! चाण्डालके यह पूछनेपर क्षुधासे अत्यधिक पीड़ित मैं गद्गद वाणीमें उससे कहने लगा—हे महाभाग! मैं एक तपस्वी ब्राह्मण हूँ। मैं भूखसे विकल होकर चोरीके विचारसे युक्त होकर यहाँ आया

हूँ और इस बर्तनमें कोई खानेकी वस्तु देख रहा हूँ। हे महामते! चोरीके विचारसे यहाँ आया हुआ मैं आपका अतिथि हूँ। इस समय मैं भूखा हूँ। अत: आप मुझे आज्ञा दीजिये, जिससे मैं आपके द्वारा भलीभाँति पकाये गये पदार्थका भक्षण करूँ॥ १४—१६॥

विश्वामित्र बोले—[हे सुन्दरि!] मेरी बात सुनकर चाण्डालने मुझसे कहा—हे चारों वर्णोंमें अग्रगण्य! इसे चाण्डालका घर जानिये, अत: आप मेरे यहाँ भोजन मत कीजिये; क्योंकि एक तो मानव-योनिमें जन्म पाना दुर्लभ है, उसमें भी द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-के यहाँ बड़ा ही दुर्लभ है। द्विजोंमें भी ब्राह्मण-कुलमें जन्म तो सर्वथा दुर्लभ है। क्या आप इसे नहीं जानते हैं? उत्तम लोककी कामना करनेवाले व्यक्तिको कभी भी दूषित आहार ग्रहण नहीं करना चाहिये। भगवान् मनुने कर्मानुसार सात जातियोंको अन्त्यज मानकर उन्हें अग्राह्य बतलाया है। हे विप्र! मैं चाण्डाल हूँ, अत: अपने कर्मके अनुसार त्याज्य हूँ; इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे द्विज! मैं अपना धर्म समझकर ही आपको भोजन करनेसे रोक रहा हूँ, न कि [अपने पदार्थके] लोभसे। हे द्विजवर! वर्णसंकरताका दोष आपको न लगे, केवल यही मेरा अभिप्राय है॥ १७—२०१/२॥

विश्वामित्र बोले—हे धर्मज्ञ! तुम सत्य कह रहे हो। हे अन्त्यज! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त विशाल है, फिर भी मैं तुम्हें आपत्तिकालमें पालनीय धर्मका सूक्ष्म मार्ग बता रहा हूँ॥ २११/२॥

हे मानद! मनुष्यको चाहिये कि जिस किसी भी उपायसे शरीरकी रक्षा करे। इसमें यदि कोई पाप हो जाय, तो बादमें पापसे मुक्तिके लिये प्रायश्चित्त कर लेना चाहिये। आपत्तिकालमें किये गये पापकर्मके कारण दुर्गति नहीं होती, किंतु सामान्य समयमें किये गये पापके कारण दुर्गति अवश्य होती है॥ २२-२३॥

भूखसे मरनेवालेको नरक होता है, इसमें सन्देह नहीं है। अत: अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको भूख मिटानेका प्रयत्न करना चाहिये। हे अन्त्यज! इसीलिये मैं भी चौर-कर्मसे अपने देहकी रक्षा कर रहा हूँ। विद्वानोंने कहा है कि अनावृष्टिके समय चोरी करनेसे जो पाप होता है, वह पाप उस मेघको लगता है, जो पानी नहीं बरसाता है॥ २४-२५१/२॥

विश्वामित्र बोले—हे प्रिये! मेरे ऐसा यह वचन कहते ही आकाशसे हाथीकी सूँड़की तरह मोटी धारवाली मनोभिलषित जलवृष्टि सहसा होने लगी। बिजलीकी चमकके साथ बरसते हुए मेघको देखकर मैं अत्यन्त आनन्दित हुआ॥ २६-२७॥

उसी समय उस चाण्डालका घर छोड़कर मैं परम प्रसन्नतापूर्वक बाहर निकल पड़ा। हे सुन्दरि! अब यह बताओ कि तुमने प्राणियोंका विनाश करनेवाले उस अत्यन्त भीषण समयको इस वनमें किस प्रकार बिताया?॥ २८१/२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] पतिकी यह बात सुनकर उस प्रियभाषिणी स्त्रीने पतिसे कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने जिस प्रकार उस अत्यन्त कष्टकारी समयको व्यतीत किया, उसे आप सुनिये। आपके चले जानेके बाद यहाँ अकाल पड़ गया था। मेरे सभी पुत्र अन्नके लिये बड़े दु:खित हुए॥ २९-३०१/२॥

बालकोंको भूखा देखकर घोर चिन्तासे ग्रस्त मैं नीवार (जंगली धान्य)-के लिये वन-वन घूमती रही। उस समय मुझे कुछ फल मिल गये। इस प्रकार नीवार अन्नके द्वारा मैंने कुछ महीने व्यतीत किये॥ ३१-३२॥

हे कान्त! उसके भी समाप्त हो जानेपर मैं मन-ही-मन पुन: सोचने लगी—'इस वनमें अब नीवारान्न भी नहीं मिल रहा है और इस अकालमें भिक्षा भी नहीं मिल सकती। वृक्षोंपर फल नहीं रह गये और धरतीमें कन्द-मूल भी नहीं रहे। भूखसे पीड़ित बालक व्याकुल होकर बहुत रो रहे हैं। अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और भूखसे तड़पते हुए इन बालकोंसे क्या कहूँ'॥ ३३-३४१/२॥

ऐसा सोचकर मैंने मनमें यही निश्चय किया कि

किसी धनी व्यक्तिके हाथ आज अपने एक पुत्रको बेचूँगी और उसका मूल्य लेकर उस द्रव्यसे भूखसे पीड़ित अपने बालकोंका पालन करूँगी; क्योंकि इनके पालन-पोषणका कोई दूसरा उपाय नहीं रह गया है॥ ३५-३६१/२॥

अपने मनमें यह विचार करके मैंने इस पुत्रको बेचनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। हे महाभाग! उस समय मेरा यह पुत्र व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने-चिल्लाने लगा, किंतु मैं निर्लज्ज होकर अपने रोते-चिल्लाते इस पुत्रको लेकर घरसे निकल पड़ी॥ ३७-३८॥

उस समय राजर्षि सत्यव्रतने मार्गमें मुझ अति व्याकुल चित्तवालीको देखकर पूछा कि यह बालक क्यों रो रहा है?॥ ३९॥

हे मुनिवर! तब मैंने उनसे यह वचन कहा—हे राजन्! मैं इस बालकको आज बेचनेके लिये ले जा रही हूँ॥ ४०॥

तब मेरी बात सुनकर राजाका हृदय दयासे भर गया और उन्होंने मुझसे कहा—'तुम इस बालकको लेकर अपने घर लौट जाओ। जबतक मुनि विश्वामित्र लौटकर आ नहीं जाते, तबतक तुम्हारे इन बालकोंके भोजनके लिये सामग्री प्रतिदिन तुम्हारे यहाँ पहुँचा दिया करूँगा'॥ ४१-४२॥

तभीसे दयालु राजा सत्यव्रत प्रतिदिन कुछ भोज्य-सामग्री इस पेड़पर रखकर चले जाते थे॥ ४३॥

हे कान्त! उन्होंने ही संकटके सागरसे इन बालकोंकी रक्षा की, किंतु मेरे ही कारण राजा सत्यव्रतको मुनि वसिष्ठके शापका भागी होना पड़ा॥ ४४॥

किसी दिन राजा सत्यव्रत जंगलमें कोई सामग्री नहीं पा सके। तब उन्होंने वसिष्ठजीकी दूध देनेवाली गाय मार डाली; इससे मुनि वसिष्ठ उनपर बहुत कुपित हुए॥ ४५॥

कुपित महात्मा वसिष्ठने राजाका नाम 'त्रिशंकु' रख दिया और गोवध करनेके कारण राजाको चाण्डाल बना दिया॥ ४६॥

हे कौशिक! उनके इसी कष्टसे मैं अत्यन्त दुःखित हूँ; क्योंकि मेरे ही कारण वे राजकुमार सत्यव्रत चाण्डाल हो गये हैं। इसलिये अब आपको जिस किसी भी उपायसे; यहाँतक कि अपनी उग्र तपस्याके प्रभावसे राजाकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये॥ ४७-४८॥

व्यासजी बोले—हे शत्रुका दमन करनेवाले [राजा जनमेजय]! अपनी पत्नीकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र उस दुःखित स्त्रीको सान्त्वना देते हुए कहने लगे॥ ४९॥

विश्वामित्र बोले—हे कमलनयने! जिन्होंने तुम्हारा उपकार किया है और घोर वनमें तुम्हारी रक्षा की है, उन राजा सत्यव्रतको मैं शापमुक्त अवश्य करूँगा। मैं अपनी योगविद्या तथा तपस्याके प्रभावसे उनका दुःख दूर कर दूँगा॥ ५०१/२॥

परमतत्त्ववेत्ता विश्वामित्रजी अपनी भार्याको इस तरह आश्वस्त करके सोचने लगे कि राजा सत्यव्रतका दुःख किस प्रकार दूर हो सकता है? तब भलीभाँति विचार करके मुनि विश्वामित्र उस स्थानपर गये, जहाँ राजा सत्यव्रत (त्रिशंकु) दीन अवस्थाको प्राप्त होकर चाण्डालके रूपमें एक कुटियामें रह रहे थे॥ ५१-५२१/२॥

मुनिको आते देखकर राजा त्रिशंकु विस्मयमें पड़ गये। वे तत्काल मुनिके चरणोंपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब भूमिपर पड़े हुए राजाको हाथसे पकड़कर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने उठाया और उन्हें सान्त्वना देते हुए यह वचन कहा—'हे राजन्! मेरे ही कारण वसिष्ठमुनिने आपको शाप दिया है, अतः मैं आपकी सारी कामना पूर्ण करूँगा। अब आप बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?'॥ ५३—५५१/२॥

राजा बोले—पूर्वकालमें मैंने यज्ञ करानेके लिये वसिष्ठजीसे यह प्रार्थना की थी—हे मुनिश्रेष्ठ! मैं महान् यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः आप मुझसे यज्ञ सम्पन्न कराइये। हे विप्रेन्द्र! आप मेरा यह अभीष्ट कार्य कीजिये, जिससे मैं स्वर्ग चला जाऊँ; मैं इसी मानव-देहसे सुखोंके निधान इन्द्रलोक जाना चाहता हूँ॥ ५६-५७१/२॥

इसपर वसिष्ठमुनिने क्रोधित होकर मुझसे कहा—अरे दुर्बुद्धि! इस मानवशरीरसे तुम्हारा स्वर्गमें वास कैसे

हो सकता है ? ॥ ५८½ ॥

तब स्वर्गकी उत्कट लालसावाले मैंने भगवान् वसिष्ठसे पुनः कहा—हे निष्पाप! तब मैं किसी अन्यको पुरोहित बनाकर वह श्रेष्ठ यज्ञ आरम्भ करूँगा। उसी समय उन्होंने मुझे यह शाप दे दिया 'हे नीच! तुम चाण्डाल हो जाओ' ॥ ५९-६० ॥

हे मुनीश्वर! इस प्रकार मैंने शाप पानेका सारा कारण आपसे कह दिया। अब एकमात्र आप ही मेरा दुःख दूर करनेमें समर्थ हैं ॥ ६१ ॥

कष्टकी पीड़ासे व्यथित राजा त्रिशंकु इतना कहकर चुप हो गये और विश्वामित्रजी भी उनके शापको दूर करनेका उपाय सोचने लगे ॥ ६२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'त्रिशंकुके शापोद्धारके लिये विश्वामित्रद्वारा सान्त्वनाका वर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

विश्वामित्रका सत्यव्रत (त्रिशंकु)-को सशरीर स्वर्ग भेजना, वरुणदेवकी आराधनासे राजा हरिश्चन्द्रको पुत्रकी प्राप्ति

व्यासजी बोले—हे राजन्! महातपस्वी गाधिपुत्र विश्वामित्रने यज्ञानुष्ठानका विचार करके यज्ञसम्बन्धी सामग्रियाँ जुटाकर सभी मुनियोंको निमन्त्रित किया। तत्पश्चात् विश्वामित्रके द्वारा निमन्त्रित किये गये मुनिगण उस यज्ञके बारेमें जानकर भी वहाँ नहीं आये; क्योंकि वसिष्ठजीने उन सबको आनेसे मना कर दिया था ॥ १-२ ॥

यह जानकर गाधिपुत्र विश्वामित्र खिन्नमनस्क तथा अतिदुःखित हुए और उस आश्रममें आये, जहाँ राजा [त्रिशंकु] विराजमान थे ॥ ३ ॥

कुपित विश्वामित्रने उन त्रिशंकुसे कहा—हे नृपश्रेष्ठ! वसिष्ठजीके मना कर देनेके कारण सभी ब्राह्मण तो यज्ञमें नहीं आये, किंतु हे महाराज! मेरे तपका वह प्रभाव देखिये, जिससे मैं आपको अभी सुरलोक पहुँचाता हूँ और आपकी अभिलाषा पूरी करता हूँ ॥ ४-५ ॥

यह कहकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रने हाथमें जल लेकर गायत्रीजपसे अर्जित अपना समस्त पुण्य उन्हें दे दिया ॥ ६ ॥

राजाको अपना पुण्य देकर विश्वामित्रने उन पृथ्वीपतिसे कहा—हे राजर्षे! अब आप अपने अभीष्ट स्वर्गलोकको जाइये। हे राजेन्द्र! बहुत दिनोंसे मेरे द्वारा अर्जित किये गये पुण्यसे अब आप प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रलोक जायँ और वहाँ देवलोकमें आपका कल्याण हो ॥ ७-८ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] विप्रेन्द्र विश्वामित्रके इतना कहते ही राजा त्रिशंकु मुनिके तपोबलसे बड़े वेगसे उड़नेवाले पक्षीकी भाँति तुरंत ऊपरकी ओर उड़े ॥ ९ ॥

आकाशमें उड़कर जब राजा त्रिशंकु इन्द्रपुरी पहुँचे, तब सभी देवताओंने देखा कि चाण्डालवेषधारी कोई क्रूर व्यक्ति चला आ रहा है। तत्पश्चात् उन लोगोंने इन्द्रसे पूछा कि चाण्डालके समान आकृतिवाला तथा दुर्दर्श यह कौन व्यक्ति देवताकी भाँति आकाशमार्गसे बड़े वेगसे चला आ रहा है ? ॥ १०-११ ॥

तब इन्द्रने सहसा उठकर उस अधम पुरुषकी ओर देखा। उसे त्रिशंकुके रूपमें पहचानकर तत्काल डाँटते हुए इन्द्र कहने लगे—हे चाण्डाल! घृणित कर्मवाले तुम देवलोकमें कहाँ चले आ रहे हो! तुम अभी पृथ्वीलोकको लौट जाओ; क्योंकि तुम्हारे लिये यहाँ निवास करना सर्वथा उचित नहीं है ॥ १२-१३ ॥

[व्यासजी बोले—] हे शत्रुओंका दमन करनेवाले जनमेजय! इन्द्रके ऐसा कहते ही त्रिशंकु स्वर्गसे वैसे ही नीचे गिरने लगे, जैसे पुण्यके क्षीण होनेपर देवताओंका स्वर्गसे पतन हो जाता है ॥ १४ ॥

तब राजा त्रिशंकु वहींसे बार-बार चिल्लाने लगे—हे विश्वामित्र! हे विश्वामित्र! मैं स्वर्गसे च्युत होकर बड़े वेगसे नीचेकी ओर गिर रहा हूँ, अतः आप मुझ कष्टपीड़ितकी रक्षा कीजिये ॥ १५ ॥

हे राजन्! गिरते हुए त्रिशंकुका करुणक्रन्दन सुनकर

तथा उन्हें नीचेकी ओर गिरते देखकर विश्वामित्रने कहा—'वहीं रुक जाइये'॥ १६॥

[हे राजन्!] यद्यपि त्रिशंकु देवलोकसे च्युत हो चुके थे तथापि मुनि विश्वामित्रके ऐसा कहते ही उनके तपोबलके प्रभावसे वे त्रिशंकु वहींपर आकाशमें ही स्थित हो गये॥ १७॥

तत्पश्चात् विश्वामित्रने नयी सृष्टिकी रचनाद्वारा दूसरा स्वर्गलोक बनानेके लिये जलका स्पर्श करके एक दीर्घकालीन यज्ञ आरम्भ किया॥ १८॥

उनके उस प्रकारके प्रयत्नको जानकर इन्द्र गाधि-पुत्र मुनि विश्वामित्रके पास तुरंत आ पहुँचे। [इन्द्र बोले—] हे ब्रह्मन्! आप यह क्या कर रहे हैं? हे साधो! आप कुपित क्यों हैं? हे मुनिश्रेष्ठ! आप दूसरी सृष्टि मत कीजिये और बताइये कि मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ?॥ १९-२०॥

विश्वामित्र बोले—हे विभो! आपके लोकसे च्युत होकर अत्यन्त दुःखमें पड़े हुए राजा त्रिशंकुको आप प्रेमपूर्वक अपने निवास-स्थान (स्वर्गलोक)-में ले जाइये॥ २१॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! विश्वामित्रका वह निश्चय जानकर इन्द्रको बहुत भय हुआ। उन्होंने मुनिका उग्र तपोबल समझकर कहा—'ठीक है।' तत्पश्चात् राजाको



दिव्य शरीरवाला बनाकर तथा उन्हें एक उत्तम विमानपर बैठाकर इन्द्रने विश्वामित्रसे आज्ञा लेकर अपनी पुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २२-२३॥

राजा त्रिशंकुसहित इन्द्रके स्वर्ग चले जानेके उपरान्त विश्वामित्र सुखी होकर अपने आश्रममें निश्चिन्त होकर रहने लगे॥ २४॥

इधर राजा हरिश्चन्द्र मुनि विश्वामित्रके द्वारा किये गये अपने पिताके स्वर्गगमन-सम्बन्धी उपकारको सुनकर अत्यन्त हर्षित हुए और राज्य-शासन करने लगे॥ २५॥

अयोध्यापति [हरिश्चन्द्र] रूप, यौवन तथा चातुर्यसे सम्पन्न अपनी भार्याके साथ प्रेमपूर्वक विहार करने लगे॥ २६॥

इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जानेपर भी जब वह युवती रानी गर्भवती नहीं हुई, तब राजा बड़े चिन्तित तथा दुःखी हुए॥ २७॥

इसके बाद वसिष्ठमुनिके आश्रममें जाकर तथा मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम करनेके पश्चात् उन्होंने सन्तान उत्पन्न न होनेके कारण अपनी चिन्ता व्यक्त करते हुए गुरुसे कहा—हे धर्मज्ञ! हे मानद! आप महान् ज्योतिर्विद् तथा मन्त्रविद्याके परम विद्वान् हैं। अतः आप मेरे लिये सन्तानप्राप्तिका कोई उपाय कीजिये॥ २८-२९॥

हे द्विजश्रेष्ठ! आप तो जानते ही हैं कि पुत्रहीनकी गति नहीं होती। मेरे दुःखको जानते हुए तथा [उसे दूर करनेमें] समर्थ होते हुए भी आप उपेक्षा क्यों कर रहे हैं?॥ ३०॥

ये गौरैया पक्षी बड़े धन्य हैं, जो अपने शिशुका लालन-पालन कर रहे हैं। मैं ही ऐसा भाग्यहीन हूँ, जो सदा दिन-रात चिन्तित रहता हूँ॥ ३१॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] उनकी व्यथाभरी वाणी सुनकर ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजी भलीभाँति मनमें विचार करके उनसे कहने लगे॥ ३२॥

वसिष्ठजी बोले—हे महाराज! आप ठीक कह रहे हैं। जो दुःख पुत्र न होनेके कारण होता है, वैसा अद्भुत दुःख इस संसारमें नहीं है। अतएव हे राजेन्द्र! आप प्रयत्नपूर्वक जलाधिपति वरुणदेवकी आराधना कीजिये, वे ही आपका कार्य करेंगे॥ ३३-३४॥

हे धर्मिष्ठ! वरुणदेवसे बढ़कर कोई दूसरा सन्तानदाता देवता नहीं है। इसलिये आप उन्हींकी आराधना कीजिये, इससे आपका प्रयोजन अवश्य सिद्ध हो जायगा॥ ३५॥

मनुष्योंको भाग्य तथा पुरुषार्थ—इन दोनोंका आदर

करना चाहिये; क्योंकि बिना उद्योग किये कार्य-सिद्धि कैसे हो सकती है?॥ ३६॥

हे नृपश्रेष्ठ! तत्त्वदर्शी मनुष्योंको न्यायपूर्वक उद्योग करना चाहिये। वैसा करनेसे सिद्धि अवश्य मिलती है, अन्यथा नहीं॥ ३७॥

अपरिमित तेजवाले उन गुरु वसिष्ठकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने तप करनेका निश्चय किया और गुरुको प्रणाम करके वे निकल पड़े॥ ३८॥

राजा हरिश्चन्द्र गंगानदीके तटपर एक शुभ स्थानमें पद्मासन लगाकर बैठ गये और अपने मनमें पाशधारी वरुणदेवका ध्यान करते हुए कठोर तप करने लगे॥ ३९॥

हे महाराज! इस प्रकारका तप करनेवाले उन [राजा हरिश्चन्द्र]-पर कृपा करके प्रसन्न मुख-कमलवाले वरुणदेव उनके सम्मुख प्रकट हो गये। जलाधिपति वरुणदेवने हरिश्चन्द्रसे यह वचन कहा—हे धर्मज्ञ! आपके तपसे मैं प्रसन्न हूँ, आप मुझसे वर माँगिये॥ ४०-४१॥

राजा बोले—हे देवेश! मैं सन्तानहीन हूँ, अतः आप मुझे सुखदायक पुत्र दीजिये। मैंने देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋण—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेके लिये यह [तपरूप] उद्यम किया है॥ ४२॥

तब दुःखित राजाका यह प्रगल्भ वचन सुनकर वरुणदेव अपने सम्मुख स्थित राजा हरिश्चन्द्रसे मुसकराते हुए कहने लगे॥ ४३॥

वरुण बोले—हे राजन्! यदि आपको मनोवांछित गुणवान् पुत्र उत्पन्न हो तब मनोरथ पूरा हो जानेके पश्चात् आप मेरा कौन-सा प्रिय कार्य करेंगे?॥ ४४॥

हे राजन्! यदि आप शंकारहित भावसे उस पुत्रको बलिपशु बनाकर मेरा यज्ञ करें, तो मैं आपको वर प्रदान करूँगा॥ ४५॥

राजा बोले—हे देव! मैं सन्तानहीन न रहूँ। हे जलाधिप! मैं उस पुत्रको बलिपशु बनाकर आपका यज्ञ करूँगा। मैं आपसे यह सत्य कह रहा हूँ। हे मानद! इस पृथ्वीलोकमें मनुष्योंके लिये सन्तान न होनेका दुःख अत्यन्त असह्य होता है, अतः आप मुझे कल्याणकारी तथा मेरी शोकाग्निको शान्त करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये॥ ४६-४७॥

वरुण बोले—राजन्! आपको अपनी कामनाके अनुकूल पुत्र प्राप्त होगा। अब आप घर लौट जाइये, किंतु अभी मेरे सामने आपने जो वचन कहा है, उसे सत्य कीजियेगा॥ ४८॥

व्यासजी बोले—वरुणदेवके ऐसा कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र घर चले गये और वरदान-सम्बन्धी सारा वृत्तान्त अपनी रानीसे कहा॥ ४९॥

उनकी एक सौ परम सुन्दर रानियाँ थीं। उनमेंसे कल्याणी तथा पतिव्रता शैव्या ही उनकी प्रधान धर्मपत्नी तथा पटरानी थीं॥ ५०॥

कुछ समय बीतनेपर सुन्दरी शैव्याने गर्भ धारण किया। तब उनकी गर्भकालीन अभिलाषाको सुनकर राजा परम प्रसन्न हुए॥ ५१॥

उस समय राजाने विधिपूर्वक [पुंसवन आदि] सभी संस्कार सम्पन्न कराये। दसवाँ महीना पूरा होनेपर रानीने नक्षत्र तथा ग्रहके उत्तम प्रभावसे युक्त शुभ दिनमें देवपुत्रके समान कान्तिमान् पुत्रको जन्म दिया॥ ५२१/२॥

पुत्रके जन्म लेनेपर राजाने ब्राह्मणोंके साथ जाकर स्नान करके सर्वप्रथम बालकका जातकर्म-संस्कार किया और बहुत दान दिये। पुत्रका जन्म होनेसे राजाको परम प्रसन्नता हुई। उस समय उन्होंने धन-धान्यसे युक्त होकर परम उदारतापूर्वक अनेक प्रकारके विशिष्ट दान दिये और गीत-वाद्योंके साथ महोत्सव मनाया॥ ५३—५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'वरुणकी कृपासे शैव्यासे पुत्रोत्पत्तिका वर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

प्रतिज्ञा पूर्ण न करनेसे वरुणका क्रुद्ध होना और राजा हरिश्चन्द्रको जलोदरग्रस्त होनेका शाप देना

व्यासजी बोले—[राजा जनमेजय!] राजा हरिश्चन्द्रके घरमें पुत्रका जन्मोत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय सुन्दर ब्राह्मणका वेष धारण करके वरुणदेव वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

'आपका कल्याण हो'—ऐसा कहकर उन्होंने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! मैं वरुणदेव हूँ, मेरी बात सुनिये। हे नृप! आपको पुत्र हो गया है, इसलिये अब इसके द्वारा मेरा यज्ञ कीजिये। हे राजन्! मेरे वरदानसे अब आपकी सन्तानहीनताका दोष समाप्त हो चुका है, अतः आपने जो बात पहले कही है, उसे सत्य कीजिये॥ २-३॥

वरुणदेवकी बात सुनकर राजा चिन्तित हो उठे कि कमलके समान मुखवाले इस नवजात पुत्रका वध कैसे करूँ अर्थात् इसे बलिपशु बनाकर यज्ञ कैसे करूँ? किंतु स्वयं लोकपाल तथा पराक्रमी वरुणदेव विप्रवेषमें आये हुए हैं। अपने कल्याणकी इच्छा रखनेवाले व्यक्तिको देवताओंका अनादर कभी नहीं करना चाहिये। साथ ही, पुत्रस्नेहको दूर करना भी तो प्राणियोंके लिये सर्वदा अत्यन्त दुष्कर कार्य है। अतः अब मैं कौन-सा उपाय करूँ, जिससे मुझे सन्तानजनित सुख प्राप्त हो॥ ४—६॥

तब धैर्य धारण करके राजा हरिश्चन्द्रने वरुणदेवको प्रणामकर उनकी पूजा की और वे विनम्रतापूर्वक मधुर तथा युक्तियुक्त वचन कहने लगे॥ ७॥

राजा बोले—हे देवदेव! मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। हे करुणानिधान! मैं वेदोक्त विधि-विधानसे प्रचुर दक्षिणावाला यज्ञ करूँगा, किंतु अभी यज्ञ न करनेका कारण यह है कि पुत्र उत्पन्न होनेके दस दिन बाद पिता शुद्ध होकर कर्मानुष्ठानके योग्य होता है और एक महीनेमें माता शुद्ध होती है। अतः जबतक पति-पत्नी दोनों शुद्ध नहीं हो जाते, तबतक यज्ञ कैसे होगा? वरुणदेव! आप तो सर्वज्ञ हैं और सनातन धर्मको भलीभाँति जानते हैं। हे वारीश! आप मुझपर दया कीजिये, हे परमेश्वर! मुझे क्षमा कीजिये॥ ८—१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके यह कहनेपर वरुणदेवने उनसे कहा—हे पृथ्वीपते! आपका कल्याण हो; अब मैं जा रहा हूँ और आप अपने कार्य सम्पन्न करें। नृपश्रेष्ठ! अब मैं एक मासके अन्तमें आऊँगा, तब आप अपने पुत्रका जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करनेके पश्चात् ही भलीभाँति मेरा यज्ञ कीजियेगा॥ ११-१२॥

जलाधिपति वरुणदेव मधुर वाणीमें राजा हरिश्चन्द्रसे ऐसा कहकर जब चले गये तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। वरुणदेवके चले जानेपर राजाने वेदज्ञ ब्राह्मणोंको घट-जैसे बड़े-बड़े थनवाली तथा स्वर्णाभूषणोंसे अलंकृत करोड़ों गायों और तिलके पर्वतोंका दान किया॥ १३-१४॥

अपने पुत्रका मुख देखकर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए और उन्होंने विधिपूर्वक उसका नाम 'रोहित' रखा॥ १५॥

तत्पश्चात् एक मास बीतनेपर वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारणकर 'शीघ्र यज्ञ करो'—ऐसा बार-बार कहते हुए पुनः राजाके घर आये॥ १६॥

वरुणदेवको देखकर राजा हरिश्चन्द्र शोकसागरमें डूब गये। उन्हें प्रणाम तथा उनका अतिथिसत्कार करके राजाने दोनों हाथ जोड़कर कहा—हे देव! मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि आप मेरे यहाँ पधारे हुए हैं। हे प्रभो! आपने आज मेरे भवनको पवित्र कर दिया है। हे वारीश! मैं विधिपूर्वक आपका अभिलषित यज्ञ अवश्य करूँगा। वेदवेत्ताओंने कहा है कि दन्तविहीन पशु यज्ञके लिये श्रेष्ठ नहीं होता, अतः इस पुत्रके दाँत निकल आनेके बाद मैं आपका महायज्ञ करूँगा॥ १७—१९॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! राजा हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर वरुणदेव 'वैसा ही हो'—यह कहकर वहाँसे लौट गये। इधर, राजा हरिश्चन्द्र आनन्दित होकर गृहस्थाश्रममें रहने लगे॥ २०॥

उसके बाद बालकको दाँत निकल आनेकी बात जानकर वरुणदेव ब्राह्मणका रूप धारणकर 'अब मेरा कार्य कर दो'—ऐसा बोलते हुए राजाके महलमें पुनः पहुँचे॥ २१॥

ब्राह्मणके वेषमें जलाधिनाथ वरुणको आया देखकर राजाने उन्हें प्रणाम किया और आसन, अर्घ्य, पाद्य आदिके द्वारा आदरपूर्वक उनकी पूजा की। तदनन्तर राजाने उनकी स्तुति करके विनम्रतापूर्वक सिर झुकाकर कहा—'मैं प्रचुर दान-दक्षिणाके साथ विधिपूर्वक आपका यज्ञ करूँगा; किंतु अभी तो इस बालकका चूडाकर्म-संस्कार भी नहीं हुआ है। मैंने वृद्धजनोंके मुखसे सुना है कि गर्भकालीन केशवाला बालक यज्ञके लिये पशु बनानेके योग्य नहीं माना गया है। हे जलेश्वर! आप सनातन विधि तो जानते ही हैं, अतः चूडाकरणतककी अवधिके लिये मुझे क्षमा कीजिये। मैं इस बालकके मुण्डन-संस्कारके पश्चात् आपका यज्ञ अवश्य करूँगा॥ २२—२५॥

तब राजाका यह वचन सुनकर वरुणदेवने उनसे कहा—हे राजन्! आप बार-बार यही कहते हुए मुझे धोखा दे रहे हैं॥ २६॥

हे राजन्! इस समय आपके पास यज्ञकी सम्पूर्ण सामग्री तो विद्यमान है, किंतु पुत्रस्नेहमें बँधे होनेके कारण आप मुझे इस बार भी धोखा दे रहे हैं॥ २७॥

अब इसका मुण्डन-संस्कार हो जानेके बाद भी यदि आप यज्ञ नहीं करेंगे, तो मैं कोपाविष्ट होकर आपको भीषण शाप दे दूँगा। हे राजेन्द्र! हे मानद! आज तो मैं आपकी बात मानकर चला जा रहा हूँ, किंतु हे इक्ष्वाकुवंशज! आप अपनी बात असत्य मत कीजियेगा॥ २८-२९॥

ऐसा कहकर वरुणदेव राजाके भवनसे तुरंत चले गये। तब राजा हरिश्चन्द्र भी अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने राजमहलमें आनन्द करने लगे॥ ३०॥

इसके बाद जब चूडाकरणके समय महान् उत्सव मनाया जा रहा था, उसी समय वरुणदेव शीघ्रतापूर्वक राजाके महलमें पुनः आ पहुँचे। महारानी शैव्या पुत्रको अपनी गोदमें लेकर राजाके पासमें बैठी थीं और ज्यों ही मुण्डनका कार्य आरम्भ हुआ, उसी समय साक्षात् अग्निके समान तेजवाले विप्ररूपधारी श्रीमान् वरुणदेव 'यज्ञकर्म करो'—ऐसा स्पष्ट वचन बोलते हुए राजाके समीप पहुँच गये॥ ३१—३३॥

उन्हें देखकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत व्याकुल हो गये। राजाने डरते हुए उन्हें नमस्कार किया और वे दोनों हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये॥ ३४॥

तत्पश्चात् वरुणदेवकी विधिपूर्वक पूजा करके विनयशील राजा हरिश्चन्द्रने उनसे कहा—हे स्वामिन्! मैं आज ही विधिपूर्वक आपका यज्ञकार्य करूँगा, किंतु हे विभो! इस सम्बन्धमें मुझे आपसे कुछ कहना है, आप एकाग्रचित्त होकर उसे सुनें। हे स्वामिन्! मैं आपके समक्ष उसे अब कह रहा हूँ, यदि आप उचित समझें तो स्वीकार कर लें॥ ३५-३६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—ये तीनों वर्ण संस्कार-सम्पन्न हो जानेके बाद ही द्विजाति कहलाते हैं, अन्यथा ये शूद्र रहते हैं—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है; इसलिये मेरा यह पुत्र अभी शूद्रके समान है। कोई बालक उपनयन-संस्कारसे सम्पन्न हो जानेके पश्चात् ही यज्ञ-क्रियाके योग्य होता है—ऐसा निर्णय वेदोंमें उल्लिखित है। क्षत्रियोंका उपनयन संस्कार ग्यारहवें वर्ष, ब्राह्मणोंका आठवें वर्ष और वैश्योंका बारहवें वर्षमें हो जाना बताया गया है॥ ३७—३९॥

हे देवेश! यदि आप मुझ दीन सेवकपर दया करें तो मैं इसका उपनयनसंस्कार करनेके पश्चात् इसे यज्ञ-पशु बनाकर आपका श्रेष्ठ यज्ञ करूँ॥ ४०॥

सभी शास्त्रोंके विद्वान् तथा धर्मके ज्ञाता हे विभो! आप लोकपाल हैं, यदि आप मेरी बात सत्य मानते हों, तो अपने भवनको लौट जाइये॥ ४१॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर दयालु वरुणदेव 'ठीक है'—ऐसा कहकर वहाँसे तुरंत चले गये और राजा प्रसन्न मुखमण्डलवाले हो गये॥ ४२॥

वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र परम आनन्दित हुए। इस प्रकार पुत्र-सुख प्राप्त करके राजाको अपार हर्ष प्राप्त हुआ॥ ४३॥

तदनन्तर राजा हरिश्चन्द्र अपने राज-कार्यमें तत्पर हो गये। इस प्रकार समय बीतनेके साथ उनका पुत्र दस वर्षका हो गया॥ ४४॥

तब राजाने श्रेष्ठ ब्राह्मण तथा सचिवोंकी सम्मतिके अनुसार अपने विभवके अनुरूप राजकुमारके उपनयन-संस्कारकी सामग्री एकत्र की॥ ४५॥

पुत्रका ग्यारहवाँ वर्ष लगते ही राजाने व्रतबन्धके विधानके अनुसार विधिवत् कार्य आरम्भ किया, किंतु उनके मनमें चिन्ताके कारण बड़ी उद्विग्नता थी। जब राजकुमारका यज्ञोपवीत हो गया तथा इससे सम्बन्धित अन्य कार्य हो रहे थे, उसी समय वरुणदेव ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ आ पहुँचे॥ ४६-४७॥

उन्हें देखते ही राजा हरिश्चन्द्र तुरंत प्रणामकर उनके सामने खड़े हो गये और दोनों हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक सुरश्रेष्ठ वरुणदेवसे बोले—हे देव! अब यज्ञोपवीत हो जानेके बाद मेरा पुत्र यज्ञपशुके योग्य हो गया है और अब आपकी कृपासे मेरा निःसन्तान रहनेसे होनेवाली लोकनिन्दासे उत्पन्न शोक भी दूर हो चुका है॥ ४८-४९॥

अब मैं चाहता हूँ कि प्रचुर दक्षिणावाला आपका श्रेष्ठ यज्ञ उपयुक्त अवसरपर कर डालूँ। हे धर्मज्ञ! आज मैं आपसे सत्य बात कह रहा हूँ, उसे सुन लीजिये। इस बालकके समावर्तन-संस्कारके पश्चात् मैं आपका अभिलषित यज्ञ करूँगा, मेरे ऊपर दया करके आप तबतकके लिये मुझे क्षमा करें॥ ५०-५१॥

वरुण बोले—हे राजन्! हे महामते! अत्यधिक पुत्र-प्रेममें बँधे होनेके कारण आप बार-बार कोई-न-कोई युक्तिसंगत बुद्धिका प्रयोग करके मुझे धोखा देते चले आ रहे हैं। हे महाराज! आपकी बात मानकर आज तो मैं बिना कुछ कहे चला जा रहा हूँ, किंतु समावर्तन-कर्मके समय पुनः आऊँगा॥ ५२-५३॥

हे राजा जनमेजय! राजा हरिश्चन्द्रसे यह कहकर तथा उनसे विदा लेकर वरुणदेव चले गये और राजा हर्षित होकर आगेका काम करने लगे॥ ५४॥

परम प्रतिभासम्पन्न राजकुमार (रोहित) बार-बार वरुणदेवको आते देखकर और यज्ञ-सम्बन्धी प्रतिज्ञा जानकर चिन्तित हो उठे॥ ५५॥

उन्होंने राजाके शोकका कारण इधर-उधर लोगोंसे पूछा। हे आयुष्मान् जनमेजय! वरुणदेवके यज्ञमें होनेवाले अपने वधकी बात जानकर राजकुमारने भाग जानेका निश्चय किया। तदनन्तर मन्त्रिकुमारोंसे परामर्श करनेके बाद दृढ़ निश्चय करके उस नगरसे निकलकर वे वनकी ओर चल पड़े॥ ५६-५७॥

पुत्रके चले जानेपर राजा बहुत दुःखी हुए और उन्होंने राजकुमारको खोजनेके उद्देश्यसे अपने दूतोंको भेजा॥ ५८॥

इस प्रकार कुछ समय बीतनेके पश्चात् वे वरुणदेव शोक-संतप्त राजासे 'मेरा यज्ञ करो'—ऐसा बोलते हुए उनके घर पहुँचे॥ ५९॥

राजाने उन्हें प्रणाम करके कहा—हे देवदेव! अब मैं क्या करूँ? भयसे व्याकुल होकर मेरा पुत्र न जाने कहाँ चला गया है?॥ ६०॥

हे वरुणदेव! मैंने अपने दूतोंसे पर्वतकी कन्दराओं तथा मुनियोंके आश्रमोंमें उसे सर्वत्र खोजवाया, किंतु वह कहीं नहीं मिला। हे महाराज! पुत्रके चले जानेपर अब आप ही बताइये कि मैं क्या करूँ? हे सर्वज्ञ! इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, इसमें हर प्रकारसे भाग्यका ही दोष है॥ ६१-६२॥

व्यासजी बोले—हे जनमेजय! राजाकी यह बात सुनकर वरुणदेव अत्यन्त कुपित हुए। राजाके द्वारा बार-बार धोखा दिये जानेके कारण उन्होंने क्रोधपूर्वक शाप दे दिया—'हे राजन्! आपने तरह-तरहकी बातोंसे मुझे सदा धोखा दिया है, इसलिये अत्यन्त भयंकर जलोदर रोग आपको पीड़ित करे'॥ ६३-६४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! तब वरुणदेवके कुपित होकर इस प्रकारका शाप देनेसे राजा हरिश्चन्द्र कष्टदायक जलोदर रोगसे ग्रस्त हो गये॥ ६५॥

इस प्रकार राजाको शाप देकर पाश धारण करनेवाले वरुणदेव अपने लोकको चले गये और राजा हरिश्चन्द्र उस महाव्याधिसे ग्रस्त होकर महान् कष्टमें पड़ गये॥ ६६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रको जलोदर-व्याधिप्राप्तिवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

राजा हरिश्चन्द्रका शुनःशेपको स्तम्भमें बाँधकर यज्ञ प्रारम्भ करना

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] वरुणदेवके चले जानेपर राजा हरिश्चन्द्र [जलोदर] रोगसे अत्यन्त पीड़ित हुए; एक-पर-एक महान् कष्ट पाकर वे अति व्याकुल हो उठे॥ १॥

हे राजन्! वनमें स्थित राजकुमार रोहितने अपने पिताके [जलोदर] रोगसे पीड़ित होनेकी बात सुनकर स्नेहमें बँधे होनेके कारण [अयोध्या] लौट जानेका विचार किया॥ २॥

एक वर्ष बीतनेपर जब रोहितने अपने पिताका आदरपूर्वक दर्शन करनेके लिये अयोध्या जानेकी इच्छा की तब यह जानकर इन्द्र उसके पास पहुँचे। शीघ्र ही ब्राह्मणका रूप धारण करके इन्द्रने अपने पिताके दर्शनार्थ जानेको उद्यत राजकुमारको युक्तिपूर्वक रोका॥ ३-४॥

इन्द्र बोले—हे राजपुत्र! आप अत्यन्त दुष्कर राजनीतिके विषयमें नहीं जानते, इसीलिये मूर्खताको प्राप्त आपने अयोध्या जानेका व्यर्थ ही विचार किया है॥ ५॥

हे महाभाग! [आपके वहाँ जानेपर] आपके पिता वेदोंके पारगामी ब्राह्मणोंके द्वारा कराये गये यज्ञमें प्रज्वलित अग्निमें आपकी आहुति दे देंगे॥ ६॥

हे तात! अपना प्राण सभी जीवोंको अवश्य ही अत्यन्त प्रिय होता है। उसीकी रक्षाके लिये पुत्र, स्त्री और धन आदि प्रिय लगते हैं॥ ७॥

अपने शरीरकी रक्षाके निमित्त आप-जैसे प्रिय पुत्रका अग्निमें हवन करवाकर वे रोगसे मुक्त हो जायँगे। अतएव हे राजपुत्र! इस समय आपको पिताके घर नहीं जाना चाहिये। पिताके मर जानेपर ही राज्य करनेके लिये आप वहाँ जायँ॥ ८-९॥

[हे राजन्!] इस प्रकार इन्द्रके मना कर देनेपर राजकुमार रोहित उस वनमें एक वर्षतक रुके रह गये॥ १०॥

इसके बाद राजकुमारने जब सुना कि मेरे पिता अब बहुत दुःखी हैं, तब उसने मर जानेका निश्चय करके उनके पास जानेका दृढ़ विचार कर लिया॥ ११॥

तब इन्द्रने पुनः ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आकर राजकुमारको अपनी तर्कसंगत बातोंसे बार-बार समझाकर उसे अयोध्या जानेसे रोक दिया॥ १२॥

इधर, कष्टसे अत्यधिक पीड़ित राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुरोहित वसिष्ठजीसे इस रोगके नाशका निश्चित उपाय पूछा॥ १३॥

इसपर ब्रह्मापुत्र वसिष्ठजीने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! अब आप धनके द्वारा खरीदे गये पुत्रसे यज्ञ कीजिये; इससे आप शापसे मुक्त हो जायँगे॥ १४॥

हे नृपश्रेष्ठ! वेदके पारगामी ब्राह्मणोंने दस प्रकारके पुत्र बतलाये हैं। अतः आप अपने द्रव्यसे क्रीत एक बालकको ले आकर उसे अपना पुत्र बना लीजिये। इससे वरुणदेव भी प्रसन्न होकर आपके लिये सुखकारी हो जायँगे। आपके राज्यका कोई-न-कोई द्विज धनके लोभसे अपना पुत्र बेच भी देगा॥ १५-१६॥

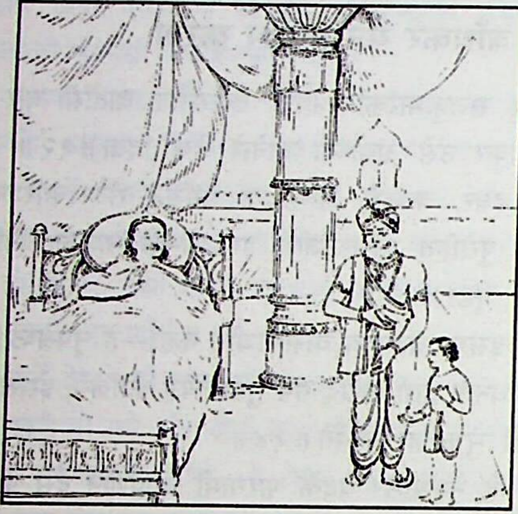
महात्मा वसिष्ठजीकी बातसे परम प्रसन्नताको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रने वैसा बालक ढूँढ़नेके उद्देश्यसे अपने प्रधान अमात्यको भेज दिया॥ १७॥

राजा हरिश्चन्द्रके राज्यमें अजीगर्त नामक कोई ब्राह्मण रहता था। अति निर्धन उस ब्राह्मणके तीन पुत्र थे। पुत्र खरीदनेके लिये गये हुए प्रधान सचिवने उस दुर्बल ब्राह्मणसे कहा—मैं आपको एक सौ गायें दूँगा; आप अपना पुत्र यज्ञके लिये मुझे दे दीजिये। 'शुनःपुच्छ', 'शुनःशेप' तथा 'शुनोलांगूल' नामक जो आपके तीन पुत्र हैं, उनमेंसे कोई एक मुझे दे दीजिये और उसके बदले मैं आपको एक सौ गायें दे दूँगा॥ १८—२०॥

यह सुनकर भूखसे अत्यधिक व्याकुल अजीगर्तने उनमेंसे किसी एक पुत्रको बेच डालनेका मनमें निश्चय कर लिया॥ २१॥

ज्येष्ठ पुत्र पिण्डदान आदि कर्मोंका अधिकारी होता है—ऐसा सोचकर अजीगर्तने उसे नहीं दिया। कनिष्ठ पुत्रको ममताके कारण माताने यह कहकर नहीं दिया कि यह मेरा है। अतः अजीगर्तने एक सौ गायें लेकर अपने मँझले पुत्र

शुनःशेपको बेच दिया। तब मन्त्री उसे राजाके पास ले गये



और राजाने उसे यज्ञमें बलिपशु बनाया॥ २२-२३॥

यज्ञीय स्तम्भमें वधके निमित्त बाँधे गये उस बालकको रोते हुए, दुःखित, दीन, भयके मारे थर-थर काँपते हुए तथा अत्यधिक व्याकुल देखकर उस समय ऋषिगण भी चिल्ला उठे॥ २४॥

तभी राजा हरिश्चन्द्रने नरमेध-यज्ञमें वध करनेके लिये उस बालकको पशुरूपसे शामित्र (वधकर्ता)-को सौंप दिया, किंतु उसने आलम्भनके लिये उसपर शस्त्र नहीं चलाया॥ २५॥

उस समय उसने यह भी कहा—'मैं दुःखित तथा करुण स्वरसे बहुत विलाप करते हुए इस ब्राह्मणपुत्रको धनके लोभमें आकर नहीं मारूँगा'॥ २६॥

ऐसा कहकर वह उस घृणित कर्मसे विरत हो गया। तब राजा हरिश्चन्द्रने सभासदोंसे पूछा—'हे विप्रगण! अब क्या किया जाय?'॥ २७॥

उसी समय शुनःशेपके बड़े विचित्र ढंगसे करुण-क्रन्दन करनेपर सभामें चीखती-चिल्लाती जनताके बीच हाहाकार मच गया॥ २८॥

तभी अजीगर्त उठकर उन नृपश्रेष्ठसे बोला—हे राजन्! आप निश्चिन्त रहें, मैं स्वयं आपका यह कार्य करूँगा। उस (वधकर्ता)-को दिये जानेवाले धनसे दूना धन मुझे दीजिये, तो मैं इस बलिपशुका वध अवश्य कर दूँगा। धन-लोलुप होनेके कारण मैं आज आपका यज्ञकार्य निश्चित-रूपसे पूर्ण कर दूँगा; जो दुःखी है अथवा धनका लोभी है, उसके गुणोंमें भी दोष आ जाते हैं॥ २९-३०१/२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! अजीगर्तकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और उससे बोले कि मैं अभी एक सौ श्रेष्ठ गायें आपको दूँगा॥ ३११/२॥

उनकी यह बात सुनकर अजीगर्त अपने पुत्र शुनःशेपका वध करने हेतु तैयार हो गया। लोभके कारण उद्विग्न चित्तवाले अजीगर्तने शामिता बननेका पूर्ण निश्चय कर लिया॥ ३२१/२॥

उसे हथियार उठाकर अपने पुत्रको मारनेहेतु उद्यत देखकर वहाँ उपस्थित सभासद्गण तथा सारी जनता दुःखसे विकल होकर चीखने-चिल्लाने लगी तथा हाय-हाय करते हुए कहने लगी कि ब्राह्मणके रूपमें यह पिशाच, महापापी तथा क्रूर कर्म करनेवाला है; यह अपने कुलको कलंकित करता हुआ स्वयं अपने ही पुत्रका वध करनेके लिये उद्यत है। हे चाण्डाल! तुम्हें धिक्कार है, तुमने यह पापकर्म करनेकी इच्छा क्यों की? पुत्रका वध करनेके बाद धन प्राप्त करके तुम कौन-सा सुख पा जाओगे? वेदोंमें कहा गया है कि पुत्ररूपमें अपनी आत्मा ही शरीरसे जन्म लेती है, इसलिये हे पापबुद्धि! तुम अपनी ही आत्माका वध किसलिये करना चाहते हो?॥ ३३—३६१/२॥

यज्ञस्थलमें इस प्रकारका कोलाहल होनेपर विश्वामित्रजी दयार्द्र हो गये और वे राजा हरिश्चन्द्रके पास जाकर उनसे कहने लगे॥ ३७१/२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अत्यधिक दुःखित होकर करुण क्रन्दन करते हुए इस शुनःशेपको आप पाशमुक्त कर दीजिये। ऐसा करनेसे एक तो यज्ञ पूरा होगा और आपका रोग भी दूर हो जायगा॥ ३८१/२॥

दयाके समान कोई पुण्य नहीं है और हिंसाके समान कोई पाप नहीं है। यज्ञोंमें हिंसा करनेका जो विधिवाद बना, उसका उद्देश्य जिह्वालोलुपोंके जिह्वास्वादकी पूर्तिके माध्यमसे उनमें यज्ञ करनेकी प्रवृत्ति बढ़ाना है, किंतु यथासम्भव

हिंसासे विरत रहना ही शास्त्रका आशय है* ॥ ३९½ ॥

हे महाराज! सब प्रकारसे अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्तिको अपने शरीरकी रक्षाके लिये दूसरेके शरीरको विनष्ट नहीं करना चाहिये ॥ ४०½ ॥

जो सभी प्राणियोंके प्रति दयाभाव रखता है, जो कुछ भी प्राप्त हो जाय; उसीसे सन्तोष करता और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखता है, उसके ऊपर जगत्पति भगवान् श्रीविष्णु शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं ॥ ४१½ ॥

हे नृपश्रेष्ठ! सभी प्राणियोंमें आत्मभावका चिन्तन करना चाहिये। जिस प्रकार अपनेको देह प्रिय होती है, उसी प्रकार सभी जीवोंको अपना शरीर प्रिय होता है। आप इस शुन:शेप द्विजका वध करके शरीरको रोगमुक्त करके सुख प्राप्त करना चाहते हैं, तो यह बालक सुखके आश्रयस्वरूप अपने देहको क्यों नहीं बचाना चाहेगा ॥ ४२-४३½ ॥

हे नृप! इसके साथ आपका पूर्वजन्मका कोई वैर नहीं है, जो कि आप इस निरपराध द्विजपुत्रका वध करनेके इच्छुक हैं। जो व्यक्ति सदा अपनी कामनाकी पूर्तिके लिये बिना वैरभावके ही किसी प्राणीका वध करता है, दूसरी योनिमें जन्म लेकर वही जीव अपने संहर्ताका वध करता है ॥ ४४-४५½ ॥

इस बालकका पिता अत्यन्त दुष्टात्मा, दुर्बुद्धि तथा पापाचारी है, जिसने धनके लोभमें अपने ही पुत्रको आपके हाथों बेच डाला ॥ ४६½ ॥

लोगोंको यह इच्छा रखनी चाहिये कि मेरे बहुत-से पुत्र हों, जिससे उनमेंसे कोई एक भी पुत्र गयातीर्थ जाय, अश्वमेधयज्ञ करे अथवा नील वृषभ छोड़े ॥ ४७½ ॥

[हे राजन्!] राज्यमें जो कोई भी व्यक्ति पापकर्म करता है तो उसके पापका छठाँ अंश राजाको भोगना पड़ता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अत: राजाको चाहिये कि पापकर्म करनेके लिये उद्यत उस व्यक्तिको मना करे, तो फिर आपने पुत्रको बेचनेके लिये तत्पर उस अजीगर्तको क्यों नहीं रोका? ॥ ४८-४९½ ॥

हे राजन्! आप सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं और महाराज त्रिशंकुके कल्याणकारी पुत्र हैं। आप आर्य होकर भी अनार्यों-जैसा कर्म करना चाहते हैं? ॥ ५०½ ॥

हे राजन्! मेरी बात मानकर मुनिपुत्र शुन:शेपको बन्धनमुक्त कर देनेसे आपका देह अवश्य ही रोगमुक्त हो जायगा ॥ ५१½ ॥

महर्षि वसिष्ठके शापके कारण आपके पिता चाण्डाल हो गये थे, तब मैंने उसी देहसे उन्हें स्वर्गलोक पहुँचा दिया था। हे राजन्! उसी उपकारको समझकर आप मेरी बात मान लीजिये और अत्यधिक विलाप करते हुए इस दीन तथा भयाकुल बालकको मुक्त कर दीजिये ॥ ५२-५३½ ॥

हे राजन्! आपके इस राजसूययज्ञमें मैं आपसे मात्र इसकी प्राण-रक्षाकी याचना कर रहा हूँ। क्या आप प्रार्थनाभंगसे होनेवाले दोषके विषयमें नहीं जानते? हे नृपश्रेष्ठ! इस राजसूययज्ञमें प्रार्थीको उसकी कामनाके अनुकूल वस्तु दी जानी चाहिये। यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपको पाप ही लगेगा; इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५४-५५½ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] विश्वामित्रकी यह बात सुनकर राजाओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रसे कहा—गाधिपुत्र! मुने! मैं जलोदर रोगसे बहुत पीड़ित हूँ, इसलिये इस बालकको नहीं छोड़ सकता। हे कौशिक! इसके अतिरिक्त आप दूसरी वस्तु माँग लीजिये और मेरे इस कार्यमें किसी तरहकी बाधा मत उत्पन्न कीजिये ॥ ५६—५८ ॥

राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर तथा दु:खित ब्राह्मण-पुत्र शुन:शेपको देखकर मुनि विश्वामित्र अत्यधिक कुपित हो उठे ॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'यज्ञपशुभूत ब्राह्मणके पुत्रका वध करनेके लिये विश्वामित्रका निषेधवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १६ ॥

---

* लोके व्यवायामिषमद्यसेवा नित्यास्तु जन्तोर्न हि तत्र चोदना। व्यवस्थितिस्तेषु विवाहयज्ञसुराग्रहैरासु निवृत्तिरिष्टा ॥
(वेद विधिके रूपमें ऐसे ही कर्मोंके करनेकी आज्ञा देता है कि जिनमें मनुष्यकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं होती।) संसारमें देखा जाता है कि मैथुन, मांस और मद्यकी ओर प्राणीकी स्वाभाविक प्रवृत्ति हो जाती है। तब उसे उसमें प्रवृत्त करनेके लिये विधान तो हो ही नहीं सकता। ऐसी स्थितिमें विवाह, यज्ञ और सौत्रामणियज्ञके द्वारा ही जो उनके सेवनकी व्यवस्था दी गयी है, उसका अर्थ है लोगोंकी उच्छृंखल प्रवृत्तिका नियन्त्रण, उनका मर्यादामें स्थापन। वास्तवमें उनकी ओरसे लोगोंको हटाना ही श्रुतिको अभीष्ट है। (श्रीमद्भा० ११।५।११)

सत्रहवाँ अध्याय

विश्वामित्रका शुनःशेपको वरुणमन्त्र देना और उसके जपसे वरुणका प्रकट होकर उसे बन्धनमुक्त तथा राजाको रोगमुक्त करना, राजा हरिश्चन्द्रकी प्रशंसासे विश्वामित्रका वसिष्ठपर क्रोधित होना

व्यासजी बोले—राजन्! अत्यन्त दुःखित तथा करुण-क्रन्दन करते हुए बालक शुनःशेपको देखकर महर्षि विश्वामित्रको बड़ी दया आयी और वे उसके पास जाकर यह बोले—'हे पुत्र! मैं तुम्हें वरुणदेवका मन्त्र बतला रहा हूँ। तुम मनमें उनका स्मरण करते हुए इस मन्त्रका जप करो। मेरी आज्ञासे इसका जप करनेसे तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा'॥ १-२॥

दुःखसे अत्यन्त व्यग्र शुनःशेप मुनि विश्वामित्रकी बात सुनकर उनके द्वारा बताये गये स्पष्ट अक्षरोंवाले उस मन्त्रका मन-ही-मन जप करने लगा॥ ३॥

हे राजन्! शुनःशेपके जप करते ही कृपानिधान वरुणदेव उस बालकपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही प्रकट हो गये॥ ४॥

इस प्रकार वहाँ प्रकट हुए वरुणदेवको देखकर सभी लोग अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये। उनके दर्शनसे आनन्दित होकर वे सब उनकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

जलोदर रोगसे पीड़ित राजा हरिश्चन्द्र अतीव विस्मित होकर उनके चरणोंमें प्रणाम करने लगे और दोनों हाथ जोड़कर वे अपने सम्मुख स्थित वरुणदेवकी स्तुति करने लगे॥ ६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवदेव! हे कृपासागर! आप परमेश्वरने यहाँ आकर मुझ पापात्मा, अत्यन्त मन्दबुद्धि, अपराधी तथा भाग्यहीनको आज पवित्र कर दिया है॥ ७॥

मैं पुत्रके अभावमें दुःखित था और आपकी कृपासे पुत्र होनेपर आपकी अवहेलना की। अतः आप प्रभु मेरे द्वारा किये गये अपराधको क्षमा कर दें; क्योंकि भ्रष्ट बुद्धिवालेका दोष ही क्या?॥ ८॥

हे देवदेव! स्वार्थपरायण व्यक्तिको अपने दोषका ज्ञान नहीं रहता। इसीलिये पुत्र पानेका स्वार्थी मैं अपना दोष नहीं देख सका और हे विभो! नरकमें पड़नेके भयसे आपको धोखा देता रहा। पुत्रहीन व्यक्तिकी गति नहीं होती और उसे स्वर्ग नहीं मिलता—इस शास्त्रवचनसे मैं डर गया था, इसीलिये मैंने आपकी अवहेलना की॥ ९-१०॥

हे विभो! आप ज्ञानसम्पन्न हैं, अतः मुझ अज्ञानीके अपराधपर ध्यान न दें। इस समय मैं बहुत दुःखित तथा भयंकर रोगसे ग्रस्त हूँ और अपने पुत्रसे वंचित हो गया हूँ॥ ११॥

हे महाराज! हे प्रभो! मुझे ज्ञात नहीं कि मेरा पुत्र कहाँ चला गया है। हे कृपानिधे! ऐसा प्रतीत होता है कि मारे जानेके डरसे वह मुझे धोखा देकर वनमें चला गया है। तब मैंने धन देकर इस ब्राह्मण-बालकको खरीदा और फिर आपको सन्तुष्ट करनेके लिये इस क्रीतपुत्रसे यह यज्ञ आरम्भ कर दिया। अब आपका दर्शन प्राप्त हो जानेसे मेरा महान् दुःख दूर हो गया और आपके प्रसन्न हो जानेपर [भयंकर] जलोदर रोगसे होनेवाला सारा कष्ट भी समाप्त हो जायगा॥ १२—१४॥

व्यासजी बोले—रोगग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर देवदेवेश्वर दयालु वरुण नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रसे कहने लगे—॥ १५॥

वरुण बोले—हे राजन्! अत्यन्त दुःखी होकर मेरी स्तुति करते हुए इस शुनःशेपको आप मुक्त कर दें। अब आपका यह यज्ञ भलीभाँति पूरा हो जायगा और आप रोगसे भी मुक्त हो जायँगे॥ १६॥

यह कहकर वरुणदेवने वहाँ यज्ञमण्डपमें स्थित राजा हरिश्चन्द्रको सभी सभासदोंके समक्ष ही रोगरहित कर दिया॥ १७॥

महात्मा वरुणदेवके द्वारा उस ब्राह्मणपुत्रके बन्धनमुक्त

करा देनेपर वहाँ यज्ञमण्डपमें जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी॥ १८॥

अत्यन्त भीषण रोगसे तत्काल मुक्त हो जानेपर राजा हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और शुनःशेप भी यज्ञस्तम्भसे मुक्त होकर अत्यन्त स्वस्थचित्त हो गया॥ १९॥

तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने अत्यन्त विनम्रतापूर्वक इस यज्ञको सम्पन्न किया। इसके बाद शुनःशेपने हाथ जोड़कर सभासदोंसे कहा—हे सभासद्गण! आपलोग धर्मशास्त्रके पूर्ण ज्ञाता तथा यथार्थवादी हैं; अतः आपलोग वेदशास्त्रानुसार धर्मका निर्णय कीजिये॥ २०-२१॥

हे सर्वज्ञ [ऋषिगण]! अब मैं किसका पुत्र हुआ और आगे मेरा पिता कौन होगा? आपलोगोंके वचनानुसार ही मैं उसीकी शरणमें जाऊँगा। शुनःशेपके द्वारा यह वचन कहे जानेपर सभी सभासद् आपसमें परामर्श करने लगे॥ २२½॥

सभासद् बोले—यह तो अजीगर्तका पुत्र है, तब यह अन्य किसका पुत्र हो सकता है? यह उसीके अंगसे उत्पन्न हुआ है तथा उसीने स्नेहपूर्वक इसका लालन-पालन किया है तो फिर यह अन्य किस व्यक्तिका पुत्र हो सकता है, हमलोगोंका यही निर्णय है॥ २३-२४॥

यह निर्णय सुनकर महर्षि वामदेवने उन सभासदोंसे कहा कि उस पिताने धनके लोभसे अपने पुत्रको बेच दिया है, इसलिये अब यह बालक धन देकर क्रय करनेवाले राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र हुआ; इसमें संशय नहीं है। अथवा यह वरुणदेवका पुत्र हुआ; क्योंकि इन्होंने ही इसे बन्धनसे मुक्त कराया है॥ २५-२६॥

अन्न प्रदान करनेवाला, भयसे बचानेवाला, विद्याका दान करनेवाला, धन प्रदान करनेवाला और जन्म देनेवाला—ये पाँच पिता कहे गये हैं॥ २७॥

उस समय कुछ सभासदोंने उसे पिता अजीगर्तका पुत्र, कुछ सभासदोंने राजा हरिश्चन्द्रका पुत्र और अन्यने उसे वरुणदेवका पुत्र बतलाया। इस प्रकार परस्पर बातचीतमें वे किसी निर्णयपर नहीं पहुँचे॥ २८॥

इस तरहकी सन्देहकी स्थिति उत्पन्न हो जानेपर सर्वज्ञ तथा सर्वपूजित महर्षि वसिष्ठने वहाँ परस्पर विवाद करते हुए सभासदोंसे यह बात कही—हे महाभाग! अब आपलोग मेरा वेदानुकूल निर्णय सुनिये—जिस समय इसके पिता अजीगर्तने स्नेहका त्याग करके इस बालकको बेच दिया था, उसी समय धन लेते ही अपने पुत्रसे उसका सम्बन्ध समाप्त हो गया और यह राजा हरिश्चन्द्रका क्रीतपुत्र हो गया। बादमें जब राजाने यज्ञके स्तम्भमें इस बालकको बाँध दिया, तब यह उनका भी पुत्र नहीं रहा। जब इसने वरुणदेवकी स्तुति की, तब उन्होंने प्रसन्न होकर इसे बन्धनमुक्त करा दिया, अतः हे महाभाग सभासद्गण! यह वरुणदेवका भी पुत्र नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि जब जो व्यक्ति महामन्त्रोंके द्वारा जिस देवताकी स्तुति करता है, तभी वह प्रसन्न होकर उस व्यक्तिकी कामनाके अनुसार उसे धन, प्राण, पशु, राज्य तथा मोक्ष प्रदान करता है। वास्तवमें यह बालक मुनि विश्वामित्रका पुत्र हुआ, जिन्होंने विषम प्राण-संकटके समय परम शक्तिशाली वरुणमन्त्र देकर इसकी रक्षा की है॥ २९—३४½॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! महर्षि वसिष्ठकी बात सुनकर सभासदोंने 'बहुत ठीक' ऐसा कहकर उनका समर्थन कर दिया। तब मुनि विश्वामित्र प्रेमसे पूरित हो उठे। 'हे पुत्र! अब तुम मेरे आश्रममें चलो'—ऐसा कहकर उन्होंने उसका दाहिना हाथ पकड़ लिया। तब शुनःशेप भी तुरंत उनके साथ शीघ्रतापूर्वक चल दिया और वरुणदेव भी प्रसन्नचित्त होकर अपने लोकको चले गये। सभी ऋत्विक् और सभासद् भी अपने-अपने भवनोंके लिये प्रस्थित हो गये॥ ३५—३७½॥

राजा हरिश्चन्द्र भी जलोदर रोगसे मुक्त हो जानेसे परम आनन्दित हो गये। वे अत्यन्त प्रसन्न मनसे प्रजापालनमें तत्पर हो गये॥ ३८½॥

इधर, वरुणदेवसम्बन्धी सारा वृत्तान्त सुनकर राजकुमार रोहितको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे दुर्गम वनों तथा

पर्वतोंको पार करते हुए अपने राजमहलके पास आ पहुँचे ॥ ३९१/२ ॥

तब दूतोंने राजाके पास जाकर उनसे पुत्रके आ जानेकी बात बतायी। यह सुनते ही कोसलराज हरिश्चन्द्र बहुत प्रसन्न हुए और वे शीघ्र उसके समीप पहुँच गये ॥ ४०१/२ ॥

पिताको आया हुआ देखकर रोहितका प्रेम उमड़ पड़ा और वे बड़े सम्मानपूर्वक भूमिपर दण्डकी भाँति गिर पड़े। शोकके कारण रोहितका मुखमण्डल अश्रुसे भीग गया ॥ ४११/२ ॥

राजा हरिश्चन्द्रने भी उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया और आनन्दपूर्वक पुत्रका मस्तक सूँघकर उससे कुशल-क्षेम पूछा। राजकुमार रोहितको गोदमें बिठाकर हर्षसे परिपूर्ण पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने प्रेमातिरेकके कारण नेत्रोंसे गिरते हुए उष्ण अश्रुओंसे उनका अभिषेक कर दिया। वे अपने परम प्रिय पुत्र रोहितके साथ राज्यका शासन करने लगे। बादमें उन्होंने राजकुमारसे यज्ञकी सारी बातें विस्तारपूर्वक बतलायीं ॥ ४२—४४१/२ ॥

कुछ दिनोंके अनन्तर नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्रने सभी यज्ञोंमें उत्तम राजसूययज्ञ प्रारम्भ किया। राजाने गुरु वसिष्ठकी पूजा करके उन्हें उस यज्ञका 'होता' बनाया ॥ ४५१/२ ॥

उस सर्वश्रेष्ठ यज्ञके समाप्त होनेपर वसिष्ठजीका बहुत अधिक सम्मान किया गया। तदनन्तर मुनि वसिष्ठ श्रद्धापूर्वक इन्द्रकी रमणीक नगरी अमरावतीपुरीमें गये ॥ ४६१/२ ॥

वहींपर विश्वामित्र भी वसिष्ठजीको मिल गये। मिलनेके बाद वे दोनों महर्षि देवसभामें एक साथ बैठे। तब ऐसी विशेष पूजा पाये हुए महर्षि वसिष्ठको देखकर विश्वामित्रके मनमें महान् आश्चर्य हुआ और वे हे मुनिश्रेष्ठ! ऐसा सम्बोधन करके शचीपति इन्द्रकी सभामें ही उनसे पूछने लगे ॥ ४७-४८१/२ ॥

विश्वामित्र बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! आपने इतना बड़ा सम्मान कहाँ पाया? हे महाभाग! आपकी ऐसी पूजा किसने की; आप मुझे यह बात सच-सच बतलाइये ॥ ४९१/२ ॥

वसिष्ठजी बोले—परम प्रतापी राजा हरिश्चन्द्र मेरे यजमान हैं। उन्होंने प्रचुर दक्षिणावाला राजसूययज्ञ किया है। उनके-जैसा सत्यवादी, दृढव्रती, दानी, धर्मपरायण तथा प्रजाको प्रसन्न रखनेवाला दूसरा राजा नहीं है। हे विश्वामित्र! उन्हींके यज्ञमें मुझे यह पूजा प्राप्त हुई है। (हे द्विज! आप मुझसे बार-बार क्या पूछ रहे हैं! मैं आपसे सत्य तथा यथार्थ कह रहा हूँ।) हरिश्चन्द्रके समान सत्यवादी, दानी, पराक्रमी तथा परम धार्मिक राजा न तो हुआ है और न होगा ॥ ५०—५३ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उनकी यह बात सुनकर विश्वामित्रजी बहुत कुपित हो उठे और क्रोधसे आँखें लाल करके उनसे कहने लगे— ॥ ५४ ॥

विश्वामित्र बोले—आप ऐसे मिथ्याभाषी तथा कपटी राजाकी प्रशंसा कर रहे हैं, जिसने पुत्रप्राप्तिका वर पाकर प्रतिज्ञा करके भी वरुणदेवको बार-बार धोखा दिया ॥ ५५ ॥

हे महामते! इस जन्ममें मेरे द्वारा किये गये तप तथा वेदाध्ययनके फलस्वरूप संचित पुण्य तथा अपने महान् तपकी शर्त लगा लीजिये। यदि मैं आपके द्वारा अति प्रशंसित किये गये राजा हरिश्चन्द्रको शीघ्र ही मिथ्याभाषी, दान न देनेवाला तथा महादुष्ट न प्रमाणित कर दूँ तो सम्पूर्ण जन्मका मेरा संचित पुण्य नष्ट हो जाय; अन्यथा आपके द्वारा उपार्जित सारा पुण्य नष्ट हो जाय—इसी बातकी हम दोनों शर्त लगा लें ॥ ५६—५८ ॥

तब यह शर्त लगाकर अत्यधिक कुपित हुए वे दोनों मुनि परस्पर विवाद करते हुए स्वर्गलोकसे अपने-अपने आश्रमको लौट गये ॥ ५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'वसिष्ठ-विश्वामित्रपणवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १७ ॥

अठारहवाँ अध्याय

विश्वामित्रका मायाशूकरके द्वारा हरिश्चन्द्रके उद्यानको नष्ट कराना

व्यासजी बोले—राजन्! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र आखेट करनेके लिये वनमें गये हुए थे। उन्होंने वहाँ मनोहर नेत्रोंवाली रोती हुई एक सुन्दर युवतीको देखा॥ १॥

करुणामय महाराज हरिश्चन्द्रने उस कामिनीसे पूछा—कमलपत्रके समान विशाल नेत्रोंवाली हे वरानने! तुम क्यों रो रही हो, तुम्हें किसने कष्ट दिया है, तुम्हें कौन-सा अपार दुःख आ पड़ा है, इस निर्जन वनमें रहनेवाली तुम कौन हो और तुम्हारे पिता तथा पति कौन हैं? यह सब मुझे शीघ्र बताओ॥ २-३॥

हे कान्ते! मेरे राज्यमें तो राक्षस भी परायी स्त्रीको कष्ट नहीं पहुँचाते। हे सुन्दरि! जो व्यक्ति तुम्हें पीड़ित करता होगा, उसे मैं अभी मार डालूँगा। हे वरारोहे! तुम मुझे अपना दुःख बताओ और निश्चिन्त हो जाओ। हे कृशोदरि! हे सुमध्यमे! मेरे राज्यमें दुराचारी व्यक्ति नहीं रह सकता॥ ४-५॥

उनकी यह बात सुनकर वह स्त्री अपने मुखमण्डलके आँसू पोंछकर उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे कहने लगी॥ ६॥

नारी बोली—हे राजन्! मेरे लिये वनमें रहकर जो घोर तपस्या कर रहे हैं, वे महामुनि विश्वामित्र मुझे बहुत कष्ट दे रहे हैं; उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे राजन्! आपके राज्यमें मैं इसी कारणसे दुःखी हूँ। उन मुनिके द्वारा अत्यधिक सतायी जानेवाली मुझ स्त्रीको आप 'कमना' नामवाली जान लीजिये॥ ७-८॥

राजा बोले—हे विशाल नयनोंवाली! तुम प्रसन्नचित्त रहो, अब तुम्हें कष्ट नहीं होगा। तपस्यामें तत्पर रहनेवाले उन मुनिको मैं मना कर दूँगा॥ ९॥

उस स्त्रीको यह आश्वासन देकर पृथ्वीपति राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र ही मुनिके पास गये और नम्रतापूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम करके उनसे बोले—हे स्वामिन्! आप ऐसी कठिन तपस्यासे अपने शरीरको अत्यधिक पीड़ित क्यों कर रहे हैं? हे महामते! किस प्रयोजनसे आप यह करनेके लिये उद्यत हैं? सच-सच बताइये॥ १०-११॥

हे गाधितनय! मैं आपकी अभिलाषा अवश्य पूर्ण करूँगा। अब इसी समय उठ जाइये और आगे तपस्या करनेका विचार त्याग दीजिये। हे सर्वज्ञ! मेरे राज्यमें रहकर कभी किसीको भी अत्यन्त भीषण, लोकके लिये पीड़ाकारक तथा उग्र तप नहीं करना चाहिये॥ १२-१३॥

इस प्रकार विश्वामित्रजीको तपस्यासे रोककर राजा हरिश्चन्द्र अपने भवन चले गये और उनके इस कृत्यसे मुनि विश्वामित्र भी मन-ही-मन कुपित होकर वहाँसे चल दिये॥ १४॥

घर जाकर विश्वामित्रजी राजा हरिश्चन्द्रके अनुचित कृत्य, वसिष्ठकी कही हुई बात तथा तपस्यासे विरत कर दिये जानेके विषयमें सोचने लगे। वे कोपाविष्ट मनसे बदला लेनेके लिये तत्पर हो गये। इस प्रकार मनमें बहुत प्रकारसे सोचकर उन्होंने एक भयानक शरीरवाले दानवको सूअरके रूपमें बनाकर उसे राजाके यहाँ भेजा॥ १५-१६ $^{1}/_{2}$॥

महाकालके समान प्रतीत होनेवाला तथा विशाल शरीरवाला वह सूअर अत्यन्त भयावह शब्द करता हुआ राजा हरिश्चन्द्रके उपवनमें पहुँच गया। रक्षकोंको भयभीत करते हुए, मालतीकी तथा कदम्बोंकी लताको एवं जूहीसमूहोंको बार-बार रौंदते हुए और अपने दाँतसे जमीनको खोदते हुए उस सूअरने बड़े-बड़े वृक्षोंको जड़से उखाड़ डाला; उसने चम्पक, केतकी, मल्लिका, कनेर तथा उशीरके सुन्दर तथा कोमल पौधोंको बींध डाला तथा मुचुकुन्द, अशोक, मौलसिरी एवं तिलक आदि वृक्षोंको उखाड़कर उस सूअरने उपवनको विनष्ट

कर दिया॥ १७—२१ ॥

हाथोंमें शस्त्र लिये हुए उस उपवनकी रखवाली करनेवाले सभी रक्षक वहाँसे भाग चले और अत्यन्त भयभीत मालियोंने हाय-हायकी ध्वनि करते हुए चिल्लाना आरम्भ कर दिया॥ २२ ॥

साक्षात् कालके समान तेजवाला वह सूअर जब बाणोंसे मारे जानेपर भी त्रस्त नहीं हुआ और रक्षकोंको पीड़ित करता रहा, तब वे अत्यन्त भयाक्रान्त होकर राजा हरिश्चन्द्रकी शरणमें गये। भयसे व्याकुल तथा थर-थर काँपते हुए वे रक्षकगण 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'—ऐसा उनसे कहने लगे॥ २३-२४ ॥

तब भयसे घबड़ाये हुए उन रक्षकोंको समक्ष उपस्थित देखकर राजाने उनसे पूछा—आपलोगोंको क्या भय है और किसलिये आप सब यहाँ आये हुए हैं? मुझे यह बताइये। हे रक्षको! मैं देवताओं तथा राक्षसों—किसीसे भी नहीं डरता। तुम्हें यह भय किससे उत्पन्न हुआ है, मेरे सामने उसे बताओ, मैं उस अभागे शत्रुको एक ही बाणसे अभी मार डालता हूँ। जो पापबुद्धि तथा दुष्ट इस लोकमें मेरे शत्रुके रूपमें उत्पन्न हुआ हो, चाहे वह देवता हो या दानव, वह चाहे कहीं भी रहता हो, कैसे भी रूपवाला हो तथा कितना भी बलवान् हो, उसे मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मार डालूँगा॥ २५—२८ ॥

मालाकार बोले—हे राजन्! वह न देवता है, न दैत्य है, न यक्ष है और न तो किन्नर ही है। विशाल शरीरवाला एक सूअर उपवनमें आया हुआ है। उसने अपने दाँतसे अत्यन्त कोमल पुष्पमय वृक्षोंको उखाड़ डाला है। अत्यन्त तीव्र गतिवाले उस सूअरने सारे उपवनको तहस-नहस कर दिया है। हे महाराज! बाणों, पत्थरों और लाठियोंसे हमलोगोंके प्रहार करनेपर भी वह भयभीत नहीं हुआ और हमें मारनेके लिये दौड़ पड़ा॥ २९—३१ ॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र कुपित हो उठे और उसी क्षण घोड़ेपर सवार होकर उपवनकी ओर शीघ्रतापूर्वक चल पड़े॥ ३२ ॥

हाथी, घोड़े, रथ और पैदल चलनेवाले सैनिकोंसे युक्त एक विशाल सेनाके साथ वे उस श्रेष्ठ उपवनमें पहुँच गये॥ ३३ ॥

वहाँ उन्होंने एक विशाल शरीरवाले भयानक सूअरको घुरघुराते हुए देखा। उसके द्वारा उजाड़े गये उपवनको देखकर राजा कुपित हो उठे। फिर वे धनुषपर बाण चढ़ाकर तथा धनुषको खींचकर उस दुष्ट सूअरको मारनेके लिये वेगपूर्वक आगे बढ़े॥ ३४-३५ ॥

हाथमें धनुष लिये हुए कोपाविष्ट राजा हरिश्चन्द्रको देखकर वह सूअर अत्यन्त भयानक शब्द करता हुआ तुरंत उनके सामने आ गया॥ ३६ ॥

उस विकृत मुखवाले सूअरको सामने आता हुआ देखकर राजा हरिश्चन्द्रने उसे मार डालनेकी इच्छासे उसपर बाण छोड़ा॥ ३७ ॥

तब उस बाणसे अपनेको बचाकर वह सूअर राजाको बड़े वेगसे लाँघकर बलपूर्वक शीघ्रताके साथ वहाँसे निकल भागा॥ ३८ ॥

उसे भागते हुए देखकर राजा हरिश्चन्द्र क्रोधित होकर धनुष खींचकर सावधानीपूर्वक उसपर तीक्ष्ण बाण छोड़ने लगे॥ ३९ ॥

वह सूअर किसी क्षण दिखायी पड़ता था, दूसरे क्षण आँखोंसे ओझल हो जाता था और क्षणभरमें ही अनेक प्रकारके शब्द करता हुआ राजाके पास पहुँच जाता था॥ ४० ॥

तब राजा हरिश्चन्द्र वायुके समान तीव्रगामी अश्वपर सवार होकर और धनुष खींचकर अत्यन्त क्रोधके साथ उस सूअरका पीछा करने लगे। तत्पश्चात् उनकी सेना इधर-उधर उनके साथ दौड़ती हुई दूसरे वनमें चली गयी और राजा उस भागते हुए सूअरका अकेले ही पीछा करते रहे॥ ४१-४२ ॥

इस तरह राजा मध्याह्नकालमें एक निर्जन वनमें जा पहुँचे। वे अत्यधिक भूख तथा प्याससे व्याकुल हो गये

तथा उनका वाहन बहुत थक गया॥ ४३॥

सूअर आँखोंसे ओझल हो चुका था, अतः वे चिन्तासे व्यग्र हो गये। उस घने जंगलमें मार्गज्ञान न होनेके कारण वे रास्तेसे भटक भी गये; उनकी दशा बड़ी दयनीय हो गयी थी। वे सोचने लगे कि अब मैं क्या करूँ और कहाँ जाऊँ? इस वनमें मेरा कोई सहायक भी नहीं है। अब अपना मार्ग भूल जानेके कारण मैं किधर जाऊँ?॥ ४४-४५॥

इस प्रकार उस निर्जन वनमें सोचते हुए चिन्तातुर राजा हरिश्चन्द्रकी दृष्टि एक स्वच्छ जलवाली नदीपर पड़ गयी॥ ४६॥

उसे देखकर राजा बहुत हर्षित हुए। घोड़ेसे उतरकर उन्होंने उसे स्वादिष्ट जल पिलाकर स्वयं भी पीया। जल पी लेनेपर राजाको बड़ी शान्ति मिली। अब वे अपने नगर जानेकी इच्छा करने लगे, किंतु दिशाज्ञान न रहनेसे उनकी बुद्धि भ्रमित हो गयी॥ ४७-४८॥

इतनेमें विश्वामित्रजी एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके वहाँ आ गये। उस श्रेष्ठ ब्राह्मणको देखकर राजा हरिश्चन्द्रने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया॥ ४९॥

प्रणाम करते हुए उन नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्रसे विश्वामित्र कहने लगे—हे महाराज! आपका कल्याण हो। आप यहाँ किसलिये आये हुए हैं? हे राजन्! इस निर्जन वनमें अकेले आनेका आपका क्या उद्देश्य है? हे नृपश्रेष्ठ! शान्तचित्त होकर अपने आगमनका सारा कारण बताइये॥ ५०-५१॥

राजा बोले—विशाल शरीरवाला एक बलशाली सूअर मेरे पुष्पोद्यानमें पहुँचकर वहाँके कोमल पुष्पमय वृक्षोंको रौंदने लगा। हे मुनिश्रेष्ठ! उसी दुष्टको रोकनेके लिये हाथमें धनुष लेकर मैं सेनासहित अपने नगरसे निकल पड़ा॥ ५२-५३॥

अब वह पापी तथा मायावी सूअर वेगपूर्वक मेरी आँखोंसे ओझल होकर न जाने कहाँ चला गया! मैं भी उसके पीछे-पीछे यहाँ आ गया तथा मेरी सेना कहीं और निकल गयी॥ ५४॥

सेनाका साथ छूट जानेपर भूख तथा प्याससे व्याकुल होकर मैं यहाँ आ पहुँचा। हे मुने! मुझे अपने नगरके मार्गका ज्ञान नहीं रहा और मेरी सेना किधर गयी—यह भी मैं नहीं जानता। हे विभो! आप मुझे मार्ग दिखा दीजिये, जिससे मैं अपने नगर चला जाऊँ; मेरे सौभाग्यसे आप इस निर्जन वनमें पधारे हुए हैं॥ ५५-५६॥

मैं अयोध्याका राजा हूँ और हरिश्चन्द्र नामसे विख्यात हूँ। मैं राजसूययज्ञ कर चुका हूँ और याचना करनेवालोंको उनकी हर अभिलषित वस्तु सर्वदा प्रदान करता हूँ। हे ब्रह्मन्! हे द्विजश्रेष्ठ! यदि आपको भी यज्ञके निमित्त धनकी आवश्यकता हो तो अयोध्या आयें, मैं आपको प्रचुर धन प्रदान करूँगा॥ ५७-५८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रद्वारा वृद्ध ब्राह्मणके लिये धनदानकी प्रतिज्ञाका वर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

विश्वामित्रकी कपटपूर्ण बातोंमें आकर राजा हरिश्चन्द्रका राज्यदान करना

व्यासजी बोले—हे नृप [जनमेजय]! हरिश्चन्द्रकी यह बात सुनकर मुनि विश्वामित्र हँस करके उनसे कहने लगे—॥ १॥

हे राजन्! यह तीर्थ अत्यन्त पुण्यमय, पवित्र तथा पापनाशक है। हे महाभाग! इसमें स्नान करो और पितरोंका तर्पण करो॥ २॥

हे भूपते! यह समय भी अति उत्तम है; इसलिये इस पुण्यमय तथा परम पावन तीर्थमें स्नान करके आप इस समय अपनी सामर्थ्यके अनुसार दान दीजिये॥ ३॥

'जो परम पवित्र तीर्थमें पहुँचकर बिना स्नान किये

ही लौट जाता है, वह आत्मघाती होता है'—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है॥ ४॥

अतएव हे राजन्! आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें अपनी शक्तिके अनुसार पुण्यकर्म कीजिये। इससे [प्रसन्न होकर] मैं आपको मार्ग दिखा दूँगा और तब आप अपने नगरको चले जाइयेगा। हे अनघ! हे काकुत्स्थ! आपके दानसे प्रसन्न होकर आपको मार्ग दिखानेके लिये इसी समय मैं आपके साथ चलूँगा॥ ५-६॥

मुनिकी यह कपटभरी वाणी सुनकर राजा हरिश्चन्द्र घोड़ेको एक वृक्षमें बाँधकर तथा अपने वस्त्र उतारकर विधिवत् स्नान करनेके लिये नदीके तटपर आ गये। होनहारके प्राबल्यके कारण उस समय राजा हरिश्चन्द्र मुनिके वाक्यसे मोहित होकर उनके वशीभूत हो गये थे॥ ७-८॥

विधिपूर्वक स्नान करनेके पश्चात् पितरों तथा देवताओंका तर्पण करके राजाने विश्वामित्रसे यह कहा—हे स्वामिन्! अब मैं आपको दान देता हूँ। हे महाभाग! इस समय आप जो चाहते हैं, उसे मैं आपको दूँगा। गाय, भूमि, सोना, हाथी, घोड़ा, रथ, वाहन आदि कुछ भी मेरे लिये अदेय नहीं है—ऐसी प्रतिज्ञा मैं पूर्वकालमें सर्वोत्तम राजसूययज्ञमें मुनियोंके समक्ष कर चुका हूँ। अतः हे मुने! आपकी जो आकांक्षा हो उसे बताइये; मैं आपकी वह अभिलषित वस्तु आपको दूँगा; क्योंकि आप इस सर्वोत्तम तीर्थमें पधारे हुए हैं॥ ९—१२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! संसारमें व्याप्त आपकी विपुल कीर्तिके विषयमें मैं बहुत पहले सुन चुका हूँ। महर्षि वसिष्ठने भी कहा था कि पृथ्वीतलपर उनके समान कोई दानी नहीं है। राजाओंमें श्रेष्ठ वे राजा हरिश्चन्द्र सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए हैं। जैसे दानी तथा परम उदार त्रिशंकुपुत्र महाराज हरिश्चन्द्र हैं, वैसा राजा पृथ्वीपर पहले न हुआ है और न तो आगे होगा। हे महाभाग! हे पार्थिव! आज मेरे पुत्रका विवाह होनेवाला है, अतः मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि इसके लिये आप मुझे धन प्रदान करें॥ १३—१५१/२॥

राजा बोले—हे विप्रेन्द्र! आप विवाह कीजिये, मैं आपकी अभिलषित वस्तु दूँगा। आप अधिकसे अधिक जितना धन चाहते हैं, मैं उसे अवश्य दूँगा॥ १६१/२॥

व्यासजी बोले—हरिश्चन्द्रके ऐसा कहनेपर उन्हें ठगनेके लिये तत्पर मुनि विश्वामित्रने गान्धर्वी माया रचकर राजाके समक्ष एक सुकुमार पुत्र और दस वर्षकी कन्या उपस्थित कर दी और कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज इन्हीं दोनोंका विवाह सम्पन्न करना है। किसी गृहस्थकी सन्तानका विवाह करा देनेका पुण्य राजसूययज्ञसे भी बढ़कर होता है। अतः आज ही इस विप्रपुत्रका विवाह सम्पन्न करा देनेसे आपको महान् पुण्य होगा॥ १७—१९१/२॥

विश्वामित्रकी बात सुनकर उनकी मायासे मोहित हुए राजा हरिश्चन्द्र 'वैसा ही करूँगा'—यह प्रतिज्ञा करके आगे कुछ भी नहीं बोले। इसके बाद मुनिके द्वारा मार्ग दिखा दिये जानेपर वे अपने नगरको चले गये और राजाको ठगकर विश्वामित्र भी अपने आश्रमके लिये प्रस्थान कर गये॥ २०-२११/२॥

विवाह-कार्य पूर्ण होनेके पूर्व विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—हे राजन्! अब आप हवनवेदीके मध्य मुझे अभिलषित दान दीजिये॥ २२१/२॥

राजा बोले—हे द्विज! आपकी क्या अभिलाषा है, उसे बताइए; मैं आपको अभिलषित वस्तु अवश्य दूँगा। इस संसारमें मेरे लिये कुछ भी अदेय नहीं है। अब मैं केवल यश प्राप्त करना चाहता हूँ; क्योंकि वैभव प्राप्त करके भी जिसने परलोकमें सुख देनेवाले पवित्र यशका उपार्जन नहीं किया, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २३-२४१/२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! इस परम पुनीत हवनवेदीके मध्य आप हाथी, घोड़े, रथ, रत्न और अनुचरोंसे युक्त सम्पूर्ण राज्य वरको दे दीजिये॥ २५१/२॥

व्यासजी बोले—मुनिकी बात सुनते ही उनकी मायासे मोहित होनेके कारण बिना कुछ सोचे-विचारे राजाने अकस्मात् कह दिया—'सारा राज्य आपको दे दिया।' तत्पश्चात् परम निष्ठुर विश्वामित्रने उनसे कहा—'मैंने पा लिया और हे राजेन्द्र! हे महामते! अब दानकी सांगता-सिद्धिके लिये उसके योग्य दक्षिणा भी दे दीजिये; क्योंकि मनुने कहा है कि दक्षिणारहित दान व्यर्थ होता है। अतएव दानका पूर्ण फल प्राप्त करनेके लिये आप यथोचित दक्षिणा भी दीजिये'॥ २६—२८१/२॥

मुनिके यह कहनेपर राजा हरिश्चन्द्र उस समय बड़े

आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने मुनिसे कहा—हे स्वामिन्! आप यह तो बताइये कि इस समय कितना धन आपको और देना है। हे साधो! दक्षिणाके रूपमें निष्क्रय-द्रव्यका परिमाण बता दीजिये। हे तपोधन! आप निश्चिन्त रहिये; दानकी पूर्णताके लिये मैं वह दक्षिणा अवश्य दूँगा॥ २९-३०½॥

यह सुनकर विश्वामित्रने राजा हरिश्चन्द्रसे कहा कि आप दक्षिणाके रूपमें ढाई भार सोना अभी दीजिये। तत्पश्चात् 'आपको दूँगा'—यह प्रतिज्ञा विश्वामित्रसे करके राजा बड़े विस्मयमें पड़ गये॥ ३१-३२॥

उसी समय उनके सभी सैनिक भी उन्हें खोजते हुए वहाँ आ गये। राजाको देखकर वे बहुत हर्षित हुए और उन्हें चिन्तित देखकर सान्त्वना देने लगे॥ ३३॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] उनकी बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शुभाशुभ कुछ भी उत्तर न देकर अपने किये हुए कार्यपर विचार करते हुए अन्तःपुरमें चले गये॥ ३४॥

यह मैंने कैसा दान देना स्वीकार कर लिया, जो कि मैंने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया। इस ब्राह्मणने तो ठगोंकी भाँति वनमें मुझे बड़ा धोखा दिया। सामग्रियोंसहित सम्पूर्ण राज्य उस ब्राह्मणको देनेके लिये मैंने प्रतिज्ञा कर ली थी और फिर साथमें ढाई भार स्वर्णकी भी प्रतिज्ञा कर ली है। अब मैं क्या करूँ? मेरी तो बुद्धि ही भ्रष्ट हो गयी है। मुनिके कपटको मैं नहीं जान पाया और उस तपस्वी ब्राह्मणने मुझे अकस्मात् ही ठग लिया। विधिका विधान मैं बिलकुल नहीं समझ पा रहा हूँ। हा दैव! पता नहीं भविष्यमें क्या होनेवाला है—इसी चिन्तामें पड़े हुए अत्यन्त क्षुब्धचित्त राजा हरिश्चन्द्र अपने महलमें पहुँचे॥ ३५—३८॥

अपने पति राजा हरिश्चन्द्रको चिन्ताग्रस्त देखकर रानीने इसका कारण पूछा—हे प्रभो! इस समय आप उदास क्यों दिखायी दे रहे हैं, आपको कौन-सी चिन्ता है? मुझे बताइये॥ ३९॥

अब तो आपका पुत्र भी वनसे लौट आया है और आपने बहुत पहले ही राजसूययज्ञ भी सम्पन्न कर लिया है, तो फिर आप किसलिये शोक कर रहे हैं? हे राजेन्द्र! अपनी चिन्ताका कारण बताइये॥ ४०॥

इस समय बलशाली अथवा बलहीन आपका कोई शत्रु भी कहीं नहीं है। वरुणदेव भी आपसे परम सन्तुष्ट हैं। आपने संसारमें अपने सारे मनोरथ सफल कर लिये हैं। हे बुद्धिमान् नृपश्रेष्ठ! चिन्तासे शरीर क्षीण हो जाता है, चिन्ताके समान तो मृत्यु भी नहीं है; इसलिये आप चिन्ता छोड़िये और स्वस्थ रहिये॥ ४१-४२॥

[हे जनमेजय!] अपनी पत्नीकी बात सुनकर राजाने प्रेमपूर्वक उन्हें चिन्ताका शुभाशुभ थोड़ा-बहुत कारण बतला दिया॥ ४३॥

उस समय चिन्तासे आकुल राजा हरिश्चन्द्रने भोजनतक नहीं किया। सुन्दर शय्यापर लेटे रहनेपर भी राजाको निद्रा नहीं आयी॥ ४४॥

चिन्ताग्रस्त राजा हरिश्चन्द्र प्रातःकाल उठकर जब सन्ध्या-वन्दन आदि क्रियाएँ कर रहे थे, उसी समय मुनि



विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे॥ ४५॥

राजाका सर्वस्व हरण कर लेनेवाले मुनिके आनेकी सूचना द्वारपालने राजाको दी। तब मुनि विश्वामित्र उनके पास गये और बार-बार प्रणाम करते हुए राजासे कहने लगे—॥ ४६॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अपना राज्य छोड़िये और अपने वचनसे संकल्पित इस राज्यको मुझे दे दीजिये। हे राजेन्द्र! अब प्रतिज्ञा की हुई सुवर्णकी दक्षिणा भी दीजिये और सत्यवादी बनिये॥ ४७॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे स्वामिन्! मेरा यह राज्य अब आपका है; क्योंकि मैंने इसे आपको दे दिया है। हे कौशिक! इसे छोड़कर अब मैं अन्यत्र चला जाऊँगा, आप चिन्ता न करें॥ ४८॥

हे ब्रह्मन्! मेरा सर्वस्व तो विधिपूर्वक आपने ग्रहण कर लिया है, अतः हे विभो! इस समय मैं आपको स्वर्ण-दक्षिणा देनेमें असमर्थ हूँ। हे द्विज! जब मेरे पास धन हो जायगा, तब मैं आपको दक्षिणा दे दूँगा और यदि दैवयोगसे धन उपलब्ध हो गया, तो उसी समय मैं आपकी दक्षिणा चुका दूँगा॥ ४९-५०॥

विश्वामित्रसे यह कहकर राजा हरिश्चन्द्रने अपने पुत्र रोहित तथा पत्नी माधवीसे कहा—हाथी, घोड़े, रथ, स्वर्ण तथा रत्न आदिसहित अपना सारा विस्तृत राज्य मैं विवाहवेदीपर इन ब्राह्मणदेवको दान कर चुका हूँ; केवल हमलोगोंके इन तीन शरीरोंको छोड़कर और सब कुछ इन्हें समर्पित कर दिया है। अतः अब मैं अयोध्या छोड़कर किसी वनकी गुफामें चला जाऊँगा। अब ये मुनि इस सर्वसमृद्धिशाली राज्यको भलीभाँति ग्रहण करें॥ ५१—५३॥

[हे जनमेजय!] अपने पुत्र तथा पत्नीसे यह कहकर परम धार्मिक राजा हरिश्चन्द्र द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रको सम्मान देते हुए अपने भवनसे निकल पड़े॥ ५४॥

राजाको जाते देखकर उनकी पत्नी माधवी तथा पुत्र रोहित चिन्तित हो गये तथा उनके मुखपर उदासी छा गयी। वे दोनों भी उनके पीछे-पीछे चल दिये॥ ५५॥

उन सभीको इस स्थितिमें देखकर नगरमें बड़ा हाहाकार मच गया। अयोध्यामें रहनेवाले सभी प्राणी चीख-चीखकर रोने लगे—हा राजन्! आपने यह कैसा कर्म कर डाला! आपके ऊपर यह संकट कहाँसे आ पड़ा। हे महाराज! यह निश्चय है कि आप विवेकहीन विधाताद्वारा ठग लिये गये हैं॥ ५६-५७॥

महात्मा पुत्र रोहित तथा भार्या माधवीके सहित उन राजा हरिश्चन्द्रको इस दशामें देखकर सभी वर्णके लोग बहुत दुःखी हुए॥ ५८॥

'यह महान् धूर्त है'—ऐसा कहते हुए नगरवासी ब्राह्मण आदि लोग दुःखसे व्याकुल होकर उस दुराचारी ब्राह्मण (विश्वामित्र)-की निन्दा करने लगे॥ ५९॥

महाराज हरिश्चन्द्र अभी नगरसे निकलकर जा ही रहे थे कि इतनेमें विश्वामित्र पुनः उनके सम्मुख आकर उनसे यह निष्ठुर वचन कहने लगे—हे राजन्! मेरी सुवर्ण दक्षिणा देकर आप जाइये अथवा यह कह दीजिये कि मैं नहीं दूँगा तो मैं वह सुवर्ण छोड़ दूँगा। हे राजन्! यदि आपके हृदयमें लोभ हो तो आप अपना सारा राज्य वापस ले लीजिये और यदि आप यह मानते हैं कि 'मैं वस्तुतः दान दे चुका हूँ' तो जिस सुवर्णकी आप प्रतिज्ञा कर चुके हैं, उसे मुझको दे दीजिये॥ ६०—६२॥

विश्वामित्रके यह कहनेपर अत्यन्त उदास मनवाले राजा हरिश्चन्द्र उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर कहने लगे॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'कौशिकके लिये सर्वस्व-समर्पण तथा दक्षिणादानका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

हरिश्चन्द्रका दक्षिणा देनेहेतु स्वयं, रानी और पुत्रको बेचनेके लिये काशी जाना

हरिश्चन्द्र बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे मुनिवर! आप विषाद छोड़िये, मेरी प्रतिज्ञा है कि आपको बिना स्वर्ण दिये मैं भोजन नहीं करूँगा॥ १॥

मैं सूर्यवंशमें उत्पन्न एक क्षत्रिय राजा हूँ। मनुष्योंकी सारी अभिलाषा पूर्ण करनेवाला मैं राजसूययज्ञ सम्पन्न कर चुका हूँ॥ २॥

हे स्वामिन्! इच्छानुसार दान दे करके मैं 'नहीं' ऐसा शब्द किस प्रकार उच्चारित कर सकता हूँ। हे द्विजश्रेष्ठ! मैं आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। आप निश्चिन्त रहें, मैं आपका मनोवांछित स्वर्ण आपको अवश्य दूँगा, किंतु जबतक मुझे धन उपलब्ध नहीं हो जाता, तबतक कुछ समयके लिये आप प्रतीक्षा करें॥ ३-४॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! अब आपको धनप्राप्ति कहाँसे होगी? आपका राज्य, कोष, सेना तथा अर्थोपार्जनका

समस्त साधन—यह सब [आपके अधिकारसे] चला गया। अतः हे राजन्! धनके लिये आपको आशा करना व्यर्थ है। हे नृप! इस स्थितिमें मैं क्या करूँ? मैं धनके लोभसे आप-जैसे निर्धन व्यक्तिको पीड़ित भी कैसे करूँ? इसलिये हे राजन्! आप कह दीजिये—'अब मैं नहीं दे सकूँगा।' तब मैं धनप्राप्तिकी आशा त्यागकर यहाँसे इच्छानुसार चला जाऊँगा। हे राजेन्द्र! 'अब मेरे पास स्वर्ण नहीं है, तो आपको क्या दूँ'—ऐसा बोल दीजिये और पत्नी तथा पुत्रके साथ अपने इच्छानुसार चले जाइये॥ ५—८॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्राह्मणकी यह बात सुनकर उस समय जा रहे राजा हरिश्चन्द्रने मुनिको उत्तर दिया—हे ब्रह्मन्! आप धैर्य रखिये, मैं आपको धन अवश्य दूँगा। हे द्विज! अभी भी मेरा, मेरी पत्नी तथा मेरे पुत्रका शरीर स्वस्थ है; मैं उस शरीरको बेचकर आपका ऋण अवश्य चुका दूँगा। हे विप्रवर! हे प्रभो! आप वाराणसी पुरीमें किसी ग्राहकका अन्वेषण कीजिये, मैं अपनी पत्नी तथा पुत्रसहित उसका दास बन जाऊँगा। हे मुने! हे भूधर! उसके हाथों हमें बेचकर आप हमारे मूल्यसे ढाई भार सोना ले लीजिये और सन्तुष्ट हो जाइये॥ ९—१२॥

ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या तथा पुत्रके साथ उस काशीपुरीमें गये, जहाँ साक्षात् भगवान् शिव अपनी प्रिया उमाके साथ विराजमान रहते हैं॥ १३॥

मनको आह्लादित करनेवाली उस दिव्य पुरीको देखकर उन्होंने कहा कि इस परम तेजोमयी काशीपुरीका दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया॥ १४॥

तत्पश्चात् गंगातटपर आकर स्नान करके उन्होंने देवता आदिका तर्पण किया। इसके बाद देवताओंकी पूजासे निवृत्त होकर वे चारों ओर घूमकर देखने लगे॥ १५॥

राजा हरिश्चन्द्र उस दिव्य वाराणसीपुरीमें प्रविष्ट होकर सोचने लगे कि यह पुरी मानवोंके भोगकी वस्तु नहीं है; क्योंकि यह भगवान् शिवकी सम्पदा है। दुःखसे अधीर होकर घबराये हुए राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्याके साथ पैदल ही चलते रहे। पुरीमें प्रवेश हो जानेपर राजा आश्वस्त हो गये॥ १६-१७॥

उसी समय उन्होंने दक्षिणाकी अभिलाषा रखनेवाले ब्राह्मणवेशधारी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रको देखा। उन महामुनिको सामने उपस्थित देखकर महाराज हरिश्चन्द्र विनयावनत हो गये और दोनों हाथ जोड़कर उनसे कहने लगे—हे मुने! मेरे प्राण, पुत्र तथा प्रिय पत्नी—सब उपस्थित हैं। इनमेंसे जिससे भी आपकी कार्यसिद्धि हो सके, उसे आप शीघ्रतापूर्वक अभी ले लीजिये। साथ ही हे द्विजश्रेष्ठ! हमसे आपका अन्य जो भी कार्य बन सकता हो, उसे भी आप बतानेकी कृपा करें॥ १८—२०॥

विश्वामित्र बोले—[हे राजन्!] आपका कल्याण हो। वह महीना पूर्ण हो गया, इसलिये यदि आपको अपने वचनका स्मरण हो तो पूर्वमें की गयी प्रतिज्ञाकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २१॥

राजा बोले—ज्ञान और तपके बलसे सम्पन्न हे ब्रह्मन्! आज अवश्य ही महीना पूर्ण हो गया, किंतु अभी दिनका आधा भाग अवशिष्ट है। अतः आप तबतक प्रतीक्षा करें, इसके बाद नहीं॥ २२॥

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, मैं पुनः आऊँगा। किंतु यदि आपने आज दक्षिणा नहीं दी, तो मैं आपको शाप दे दूँगा॥ २३॥

ऐसा कहकर जब विप्ररूप विश्वामित्र चले गये, तब राजा हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि इन विप्रदेवके लिये जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा मैं कर चुका हूँ, उसे अब इन्हें कैसे दूँ?॥ २४॥

इस समय कहाँसे मेरे धनसम्पन्न मित्र मिल जायँगे अथवा इतनी सम्पत्ति ही कहाँसे मिल जायगी। साथ ही किसीसे धन लेना मेरे लिये दोषकारक है, अतः धनकी याचना भी कैसे की जा सकती है? धर्मशास्त्रोंमें राजाओंके लिये तीन प्रकारकी ही सुनिश्चित वृत्तियाँ (दान देना, विद्याध्ययन करना तथा यज्ञ करना) बतायी गयी हैं। यदि दक्षिणा दिये बिना ही प्राणत्याग कर देता हूँ तो ब्राह्मणका धन अपहरण करनेके कारण मुझ अधमसे भी अधम पापीको दूसरे जन्ममें कीड़ा होना पड़ेगा अथवा मैं प्रेतयोनिमें चला जाऊँगा। अतः अपनेको बेच डालना ही मेरे लिये श्रेयस्कर है॥ २५—२७॥

सूतजी बोले—उस समय व्याकुल होकर नीचेकी ओर मुख करके ऐसा सोचते हुए दयनीय दशाको प्राप्त राजा हरिश्चन्द्रसे उनकी पत्नी अश्रुके कारण रुँधे कंठसे गद्गद वाणीमें कहने लगीं— ॥ २८ ॥

हे महाराज! आप चिन्ता छोड़िये और अपने धर्मका पालन कीजिये; क्योंकि सत्यसे बहिष्कृत मनुष्य प्रेतके समान त्याज्य है ॥ २९ ॥

हे पुरुषव्याघ्र! अपने सत्य वचनका अनुपालनरूप जो धर्म है, उससे बढ़कर दूसरा कोई अन्य धर्म मनुष्यके लिये नहीं कहा गया है ॥ ३० ॥

जिस व्यक्तिका वचन मिथ्या हो जाय, उसके अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सभी कृत्य निष्फल हो जाते हैं ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार धर्मशास्त्रोंमें पुण्यात्माओंके उद्धारके लिये सत्यपालनको विशेष कारण बताया गया है, उसी प्रकार दुराचारियोंके पतनके लिये मिथ्याको परम हेतु कहा गया है ॥ ३२ ॥

सैकड़ों अश्वमेध तथा राजसूययज्ञ आदरपूर्वक करके भी मात्र एक बार मिथ्या बोल देनेके कारण एक राजाको स्वर्गसे च्युत हो जाना पड़ा था ॥ ३३ ॥

राजा बोले—हे गजगामिनि! वंशकी वृद्धि करनेवाला यह बालक पुत्र तो विद्यमान है ही, अतः तुम जो भी बात कहना चाहती हो, उसे कहो; मैं उसे माननेके लिये तैयार हूँ ॥ ३४ ॥

पत्नी बोली—हे राजन्! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये। स्त्रियाँ पुत्रप्रसव कर देनेपर सफल हो जाती हैं, अतः आप मुझे बेचकर उस धनसे विप्रकी दक्षिणा चुका दें ॥ ३५ ॥

व्यासजी बोले—[हे राजा जनमेजय!] पत्नीकी यह बात सुनकर राजा मूर्च्छित हो गये, पुनः चेतनामें आनेके बाद वे बहुत दुःखी होकर इस प्रकार विलाप करने लगे—हे भद्रे! यह मेरे लिये महान् दुःखप्रद है, जो तुम मुझसे ऐसा बोल रही हो। क्या तुम्हारे मुसकानयुक्त वचन मुझ पापीको विस्मृत हो गये हैं? हे शुचिस्मिते! ऐसा बोलना तुम्हारे लिये भला कैसे ठीक है? हे भामिनि! इस प्रकारकी अप्रिय बात तुम क्यों बोल रही हो? ॥ ३६—३८ ॥

स्त्रीविक्रयकी बातसे अधीरताको प्राप्त नृपतिश्रेष्ठ महाराज हरिश्चन्द्र यह कहकर पृथ्वीपर गिर पड़े और मूर्च्छासे अत्यधिक व्याकुल हो गये ॥ ३९ ॥

राजाको मूर्च्छाके कारण भूमिपर पड़ा हुआ देखकर राजपुत्री अत्यन्त दुःखित हो गयीं और वे उनसे परम करुणामय वचन कहने लगीं—हे महाराज! किसके अनिष्टचिन्तनसे यह संकट आ पड़ा है, जिसके परिणामस्वरूप शरणदाता होते हुए भी आप दरिद्रकी भाँति पृथ्वीपर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ोंकी सम्पत्ति ब्राह्मणोंको दान कर दी, वे ही पृथ्वीनाथ मेरे पति आज पृथ्वीपर सो रहे हैं। हाय, महान् कष्ट है। हे दैव! इन महाराजने आपका क्या कर दिया, जिसके कारण आपने इन्द्र तथा उपेन्द्रकी तुलना करनेवाले इन नरेशको इस पापमयी दशामें पहुँचा दिया है ॥ ४०—४३ ॥

ऐसा कहकर अपने स्वामीके असहनीय महान् दुःखके भारसे अत्यधिक सन्तप्त वे सुन्दर कटिप्रदेशवाली



रानी भी मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं ॥ ४४ ॥

उस समय क्षुधासे पीड़ित बालक रोहित यह देखकर अत्यन्त दुःखित होकर यह वचन कहने लगा—हे तात! हे तात! मुझे अन्न दीजिये, हे माता! मुझे भोजन दीजिये। इस समय मुझे अत्यधिक भूख लगी है और मेरी जिह्वाका अग्रभाग तेजीसे सूखा जा रहा है ॥ ४५-४६ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २० ॥

इक्कीसवाँ अध्याय

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रसे दक्षिणा माँगना और रानीका अपनेको विक्रयहेतु प्रस्तुत करना

सूतजी बोले—इतनेमें यमराजके समान क्रोधयुक्त महान् तपस्वी विश्वामित्र मनमें संकल्पित अपना दक्षिणा-सम्बन्धी धन माँगनेके लिये वहाँ आ पहुँचे॥ १॥

उन्हें देखते ही हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। विश्वामित्रने जलके छींटे देकर राजासे यह वचन कहा—हे राजेन्द्र! उठिये, उठिये और अपनी अभीष्ट दक्षिणा दीजिये। ऋण धारण करनेवालोंका दु:ख दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही रहता है॥ २-३॥

तत्पश्चात् बर्फतुल्य शीतल जलके छींटेसे आप्यायित होकर राजा चेतनामें आ गये, किंतु विश्वामित्रको देखते ही वे पुन: मूर्च्छित हो गये। इससे मुनि कुपित हो उठे और राजा हरिश्चन्द्रको आश्वासन देते हुए द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र कहने लगे—॥ ४-५॥

विश्वामित्र बोले—यदि आपको धैर्य अभीष्ट है तो मेरी वह दक्षिणा दे दीजिये। सत्यसे ही सूर्य तपता है और सत्यपर ही पृथ्वी टिकी हुई है। परमधर्मको भी सत्यमें स्थित कहा गया है और स्वर्गकी प्रतिष्ठा भी सत्यसे ही है। यदि एक हजार अश्वमेधयज्ञ और सत्य तुलापर रखे जायँ तो सत्य उन हजार अश्वमेधयज्ञोंसे बढ़ जायगा। मेरे यह सब कहनेसे क्या प्रयोजन? हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणा नहीं दे देते तो सूर्यास्त होते ही मैं आपको निश्चितरूपसे शाप दे दूँगा॥ ६—९॥

ऐसा कहकर वे विप्र विश्वामित्र चले गये। इधर राजा हरिश्चन्द्र भयसे व्याकुल हो उठे और उन नृशंस मुनिके द्वारा पीड़ित वे निर्धन राजा दु:खित होकर पृथ्वीपर बैठ गये॥ १०॥

सूतजी बोले—इसी बीच एक वेदपारंगत विद्वान् ब्राह्मण अनेक ब्राह्मणोंके साथ अपने घरसे बाहर निकले। तत्पश्चात् वहाँ आकर रुके हुए उन तपस्वी ब्राह्मणको देखकर रानीने राजासे धर्म और अर्थसे युक्त वचन कहा—ब्राह्मण तीनों वर्णोंका पिता कहा जाता है। पुत्रके द्वारा पितासे धन लिया जा सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। अत: मेरी तो यह सम्मति है कि इस ब्राह्मणसे धनके लिये प्रार्थना की जाय॥ ११—१३$^{1}/_{2}$॥

राजा बोले—हे सुमध्यमे! मैं क्षत्रिय हूँ, इसलिये किसीसे दान लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता। याचना करना ब्राह्मणोंका कार्य है, क्षत्रियोंका नहीं। ब्राह्मण चारों वर्णोंका गुरु है और सर्वदा पूजनीय है। इसलिये गुरुसे याचना नहीं करनी चाहिये और क्षत्रियोंको विशेषरूपसे इसका पालन करना चाहिये॥ १४-१५$^{1}/_{2}$॥

यज्ञ करना, अध्ययन करना, दान देना, शरणमें आये हुए लोगोंको अभय देना और प्रजाओंका पालन करना—ये ही कर्म क्षत्रियोंके लिये विहित हैं। 'मुझे कुछ दीजिये'—ऐसा दीन वचन क्षत्रियको नहीं बोलना चाहिये। हे देवि! 'देता हूँ'—ऐसा वचन मेरे हृदयमें सदा विद्यमान रहता है। अत: मैं कहीं से भी धन अर्जित करके उस ब्राह्मणको दूँगा॥ १६—१८॥

पत्नीने कहा—कालके प्रभावसे सम और विषम परिस्थितियाँ आया ही करती हैं। काल ही मनुष्यको सम्मान तथा अपमान प्रदान करता है। यह काल ही मनुष्यको दाता तथा याचक बना देता है॥ १९॥

एक विद्वान्, शक्तिशाली तथा कुपित ब्राह्मणने राजाको सौख्य तथा राज्यसे च्युत कर दिया, कालकी यह विचित्र गति तो देखिये॥ २०॥

राजा बोले—तीक्ष्ण धारवाली तलवारसे जीभके दो टुकड़े हो जाना ठीक है, किंतु सम्मानका त्याग करके 'दीजिये-दीजिये'—ऐसा कहना ठीक नहीं है॥ २१॥

हे महाभागे! मैं क्षत्रिय हूँ, अत: किसीसे कुछ भी माँग नहीं सकता, अपितु अपने बाहुबलसे अर्जित धनका नित्य दान करता हूँ॥ २२॥

पत्नीने कहा—हे महाराज! यदि आपका मन



याचना करनेमें समर्थ नहीं है तो इन्द्रसहित सभी देवताओंने न्यायपूर्वक मुझे आपको सौंपा है और आपने स्वामी बनकर मुझ आज्ञाकारिणी पत्नीकी सदा रक्षा की है। अतएव हे महाद्युते! आप मेरा मूल्य लेकर गुरु विश्वामित्रकी दक्षिणा चुका दीजिये॥ २३-२४॥

पत्नीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र 'महान् कष्ट है, महान् कष्ट है'—ऐसा कहकर अत्यन्त दुःखित हो विलाप करने लगे॥ २५॥

तब उनकी धर्मपत्नीने पुनः कहा—'आप मेरी यह बात मान लीजिये। अन्यथा विप्रके शापरूपी अग्निसे दग्ध हो जानेपर आपको नीचयोनिमें पहुँचना पड़ेगा। न तो द्यूतक्रीडाके लिये, न मदिरापानके लिये, न राज्यके निमित्त और न तो भोग-विलासके लिये ही आप ऐसा करेंगे। अतः मेरे मूल्यसे गुरुकी दक्षिणा चुका दीजिये और अपने सत्यरूपी व्रतको सफल बनाइये॥ २६-२७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

राजा हरिश्चन्द्रका रानी और राजकुमारका विक्रय करना और विश्वामित्रको ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ देना तथा विश्वामित्रका और अधिक धनके लिये आग्रह करना

व्यासजी बोले—हे राजन्! अपनी धर्मपत्नीके द्वारा बार-बार प्रेरित किये जानेपर राजा हरिश्चन्द्रने कहा—हे भद्रे! मैं अत्यन्त निष्ठुर होकर तुम्हारे विक्रयकी बात स्वीकार करता हूँ। यदि तुम्हारी वाणी ऐसा निष्ठुर वचन बोलनेके लिये तत्पर है तो जिस कामको महान्-से-महान् क्रूर भी नहीं कर सकते, उसे मैं करूँगा॥ १-२॥

ऐसा कहकर नृपश्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रतापूर्वक नगरमें गये और वहाँ नाटक आदि दिखाये जानेवाले स्थानपर अपनी भार्याको प्रस्तुत करके आँसुओंसे रुँधे हुए कण्ठसे उन्होंने कहा—हे नगरवासियो! आपलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनिये। आपलोगोंमेंसे किसीको भी यदि मेरी इस प्राणप्रिया भार्यासे दासीका काम लेनेकी आवश्यकता हो तो वह शीघ्र बोले। मैं जितना धन चाहता हूँ, उतनेमें कोई भी इसे खरीद ले। इसपर वहाँ उपस्थित बहुतसे विद्वान् पुरुषोंने पूछा—'अपनी पत्नीका विक्रय करनेके लिये यहाँ आये हुए तुम कौन हो?'॥ ३—५½॥

राजा बोले—आपलोग मुझसे यह क्यों पूछते हैं—'तुम कौन हो?' मैं मनुष्य नहीं; बल्कि महान् क्रूर हूँ, अथवा यह समझिये कि एक भयानक राक्षस हूँ, तभी तो ऐसा पाप कर रहा हूँ॥ ६½॥

व्यासजी बोले—उस शब्दको सुनकर विश्वामित्र एक वृद्ध ब्राह्मणका रूप धारण करके राजा हरिश्चन्द्रके सामने अचानक आ गये और बोले—मैं धन देकर इस दासीको खरीदनेके लिये तत्पर हूँ, अतः इसे मुझे दे दीजिये॥ ७-८॥

मेरे पास बहुत धन है। मेरी पत्नी बहुत ही सुकुमार है, इसलिये वह गृहकार्य नहीं कर पाती, अतः इसे आप मुझे दे दीजिये। मैं इस दासीको स्वीकार तो कर लूँगा, किंतु मुझे इसके बदले आपको धन कितना देना होगा?॥ ९½॥

ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर राजा हरिश्चन्द्रका

हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया और वे कुछ भी नहीं बोले॥ १०१/२ ॥

विप्रने कहा—आपकी भार्याके कर्म, आयु, रूप और स्वभावके अनुसार यह धन दे रहा हूँ, इसे स्वीकार कीजिये और स्त्री मुझे सौंप दें। धर्मशास्त्रोंमें स्त्री तथा पुरुषका जो मूल्य निर्दिष्ट है, वह इस प्रकार है—यदि स्त्री बत्तीसों लक्षणोंसे सम्पन्न, दक्ष, शीलवती और गुणोंसे युक्त हो तो उसका मूल्य एक करोड़ स्वर्णमुद्रा है और उसी प्रकारके पुरुषका मूल्य दस करोड़ स्वर्णमुद्रा होता है॥ ११—१३ ॥

उस ब्राह्मणकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र महान् दुःखसे व्याकुल हो उठे और उनसे कुछ भी नहीं कह सके॥ १४ ॥

तत्पश्चात् उस ब्राह्मणने राजाके सामने वल्कलके



ऊपर धन रखकर रानीके बालोंको पकड़कर उन्हें खींचना आरम्भ कर दिया॥ १५ ॥

रानीने कहा—हे आर्य! जबतक मैं अपने पुत्रको भलीभाँति देख न लूँ तबतकके लिये आप मुझे छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये; क्योंकि हे विप्र! फिरसे इस पुत्रका दर्शन तो दुर्लभ ही हो जायगा॥ १६ ॥

[तत्पश्चात् रानीने कहा—] हे पुत्र! अब दासी बनी हुई अपनी इस माँकी ओर देखो। हे राजपुत्र! तुम मेरा स्पर्श मत करो; क्योंकि अब मैं तुम्हारे स्पर्शके योग्य नहीं रह गयी हूँ॥ १७ ॥

तदनन्तर [ब्राह्मणके द्वारा] खींची जाती हुई माताको सहसा देखकर उस बालकके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और वह 'माँ-माँ' कहता हुआ उनकी ओर दौड़ा॥ १८ ॥

कौवेके पंखके समान केशवाला वह राजकुमार जब हाथसे माताका वस्त्र पकड़कर गिरते हुए साथ चलने लगा, तब वह ब्राह्मण उस आये हुए बालकको क्रोधपूर्वक मारने लगा, फिर भी उस बालकने 'माँ-माँ' कहते हुए अपनी माताको नहीं छोड़ा॥ १९१/२ ॥

रानी बोलीं—हे नाथ! मुझपर कृपा कीजिये और इस बालकको भी खरीद लीजिये; क्योंकि आपके द्वारा खरीदी गयी भी मैं इसके बिना आपका कार्य सिद्ध करनेमें समर्थ नहीं रहूँगी। हे प्रभो! मुझ मन्दभागिनीपर इस प्रकारकी कृपा आप अवश्य कीजिये॥ २०-२१ ॥

ब्राह्मणने कहा—यह धन लीजिये और अपना पुत्र मुझे दे दीजिये। धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री-पुरुषका मूल्य निर्धारित कर दिया है—जैसे सौ, हजार, लाख और करोड़। उसी प्रकार अन्य विद्वानोंने शुभ लक्षणोंसे युक्त, कुशल तथा सुन्दर स्वभाववाली स्त्रीका मूल्य एक करोड़ तथा वैसे ही गुणोंवाले पुरुषका मूल्य दस करोड़ बताया है॥ २२-२३१/२ ॥

सूतजी बोले—तब ब्राह्मणने उसी प्रकार बालकका मूल्य भी सामने रखे हुए वस्त्रपर फेंक दिया और फिर बालकको पकड़कर उसे माताके साथ ही बन्धनमें बाँध दिया। इसके बाद वह ब्राह्मण उन्हें साथ लेकर हर्षपूर्वक



शीघ्र ही अपने घरकी ओर चल दिया॥ २४-२५ ॥

उस समय अत्यन्त दयनीय अवस्थाको प्राप्त रानी राजा हरिश्चन्द्रकी प्रदक्षिणा करके दोनों घुटनोंके सहारे झुककर उन्हें प्रणामकर स्थित हो गयी और नेत्रोंमें आँसू भरकर यह वचन बोली—यदि मैंने दान दिया हो, हवन किया हो तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया हो तो उस पुण्यके प्रभावसे राजा हरिश्चन्द्र पुनः मुझे पतिरूपमें प्राप्त हो जायँ॥ २६-२७॥

अपने प्राणसे भी बढ़कर प्रिय रानीको चरणोंपर पड़ी हुई देखकर 'हाय, हाय'—ऐसा कहते हुए व्याकुल इन्द्रियोंवाले राजा हरिश्चन्द्र विलाप करने लगे। सत्य, शील और गुणोंसे सम्पन्न मेरी यह भार्या मुझसे अलग कैसे हो गयी? वृक्षकी छाया भी उस वृक्षको कभी नहीं छोड़ती॥ २८-२९॥

इस प्रकार परस्पर घनिष्ठता प्रकट करनेवाला यह वचन भार्यासे कहकर राजाने उस पुत्रसे ऐसा कहा—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाओगे, फिर मैं किस दिशामें जाऊँगा और मेरा दुःख कौन दूर करेगा?॥ ३०१/२॥

हे द्विज! राज्यका परित्याग करने और वनवास करनेमें मुझे वह दुःख नहीं होगा, जो पुत्रके वियोगसे हो रहा है—ऐसा उस राजाने कहा। [तत्पश्चात् रानीको लक्ष्य करके राजा कहने लगे—] इस लोकमें पत्नियाँ सदा अपने उत्तम पतिके सहयोगहेतु होती हैं, फिर भी हे कल्याणि! मैंने तुम्हारा परित्याग कर दिया है और तुम्हें दुःखी बना दिया है॥ ३१-३२१/२॥

इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न तथा राज्यके सम्पूर्ण सुख-सुविधाओंसे सम्पन्न मुझ-जैसे पतिको पाकर भी तुम दासी बन गयी हो। हे देवि! विस्तृत पौराणिक आख्यानोंके द्वारा इस महान् शोकरूपी सागरमें डूब रहे मुझ दीनका उद्धार अब कौन करेगा?॥ ३३-३४१/२॥

सूतजी बोले—तदनन्तर राजर्षि हरिश्चन्द्रके सामने ही कोड़ेसे निष्ठुरतापूर्वक पीटते हुए वह विप्रश्रेष्ठ उन्हें ले जानेका प्रयत्न करने लगा॥ ३५१/२॥

अपनी भार्या तथा पुत्रको ब्राह्मणके द्वारा ले जाते हुए देखकर वे राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त दुःखसे व्याकुल होकर बार-बार उष्ण श्वास लेकर विलाप करने लगे—अबतक जिसे वायु, सूर्य, चन्द्रमा तथा पृथ्वीके लोग देख नहीं सके थे, वही मेरी यह भार्या आज दासी बन गयी! हाथोंकी कोमल अँगुलियोंवाला यह बालक, जो सूर्य-वंशमें उत्पन्न है, आज बिक गया। मुझ दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हा बालक! हा वत्स! मुझ अधमकी दुर्नीतिके कारण ही तुम सब इस दैवाधीन दशाको प्राप्त हुए हो, फिर भी मेरी मृत्यु नहीं हुई, अतः मुझे धिक्कार है॥ ३६—३९१/२॥

व्यासजी बोले—उन दोनोंको लेकर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, घर आदिको पार करते हुए वे ब्राह्मण इस तरह विलाप कर रहे राजाके सामनेसे शीघ्रतापूर्वक अन्तर्धान हो गये। इसी समय महान् तपस्वी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र अपने शिष्यके साथ वहाँ आ पहुँचे; उस समय वे कौशिकेन्द्र अत्यन्त निष्ठुर तथा क्रूर दृष्टिगत हो रहे थे॥ ४०-४११/२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! हे महाबाहो! यदि आपने सत्यको सदा स्वीकार किया है तो राजसूययज्ञकी जिस दक्षिणाका वचन आपने पहले दे रखा है, उसे अब दे दीजिये॥ ४२१/२॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे राजर्षे! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे अनघ! राजसूययज्ञके अवसरपर पहले मैंने जिस दक्षिणाकी प्रतिज्ञा की थी, यह अपनी दक्षिणा आप ग्रहण कीजिये॥ ४३१/२॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! दक्षिणाके निमित्त जो यह धन आप दे रहे हैं, उसे आपने कहाँसे प्राप्त किया है? आपने जिस तरहसे यह धन अर्जित किया है, उसे मुझे साफ-साफ बताइये॥ ४४१/२॥

राजा बोले—हे महाभाग! हे अनघ! अब यह सब बतानेसे क्या प्रयोजन; क्योंकि उत्तम व्रतका पालन करनेवाले हे विप्र! इसे सुननेसे आपका शोक ही बढ़ेगा॥ ४५१/२॥

ऋषि बोले—हे राजन्! मैं दूषित धन कदापि ग्रहण नहीं करता, मुझे पवित्र धन दीजिये और जिस उपायसे द्रव्य प्राप्त हुआ हो, उसे यथार्थरूपसे बता दीजिये॥ ४६१/२॥

राजा बोले—हे विप्र! मैंने अपनी उस साध्वी भार्याको एक करोड़ स्वर्णमुद्रामें और अपने रोहित नामक

पुत्रको दस करोड़ स्वर्णमुद्रामें बेच दिया है। हे विप्र! इस प्रकार मेरे पास एकत्र इन ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राओंको आप स्वीकार करें॥ ४७-४८॥

सूतजी बोले—स्त्री और पुत्रको बेचनेपर प्राप्त हुए धनको अल्प समझकर विश्वामित्रने क्रोधित होकर शोकग्रस्त राजा हरिश्चन्द्रसे कहा—॥ ४९॥

ऋषि बोले—राजसूययज्ञकी इतनी ही दक्षिणा नहीं होती, अत: शीघ्र ही और धनका उपार्जन कीजिये, जिससे वह दक्षिणा पूर्ण हो सके। क्षत्रियधर्मका पालन करनेसे विमुख हे राजन्! यदि आप मेरी दक्षिणाको इतने द्रव्यके ही तुल्य मानते हैं तो फिर मेरे परम तेजको शीघ्र ही देख लीजिये। अत्यन्त पवित्र अन्त:करणवाले मुझ ब्राह्मणकी कठोर तपस्या तथा मेरे विशुद्ध अध्ययनके प्रभावको आप अभी देख लें॥ ५०—५२॥

राजा बोले—हे भगवन्! मैं इसके अतिरिक्त और भी दक्षिणा दूँगा, किंतु कुछ समयतक प्रतीक्षा कीजिये। अभी-अभी मैंने अपनी पत्नी तथा अबोध पुत्रको बेचा है॥ ५३॥

विश्वामित्र बोले—हे नराधिप! दिनका चौथा प्रहर उपस्थित है; यही प्रतीक्षाका अन्तिम समय है। इसके बाद फिर आप मुझसे कुछ न कहियेगा॥ ५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रका पत्नीपुत्रविक्रयवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

विश्वामित्रका राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालके हाथ बेचकर ऋणमुक्त करना

व्यासजी बोले—राजा हरिश्चन्द्रसे इस प्रकारका दयाहीन एवं निष्ठुर वचन कहकर और वह सम्पूर्ण धन लेकर कुपित विश्वामित्र वहाँसे चले गये॥ १॥

विश्वामित्रके चले जानेपर राजा शोकसन्तप्त हो उठे। वे बार-बार दीर्घ साँसें लेते हुए तथा नीचेकी ओर मुख करके उच्च स्वरसे बोलने लगे—धनसे बिक जानेके लिये उद्यत प्रेतरूप मुझसे जिसका दु:ख दूर हो सके, वह अभी शीघ्रता करके सूर्यके चौथे प्रहरमें रहते-रहते मुझसे बात कर ले॥ २-३॥

इतनेमें शीघ्र ही वहाँ चाण्डालका रूप धारण करके धर्मदेव आ पहुँचे। उस चाण्डालके शरीरसे दुर्गन्ध आ रही थी। उसका वक्ष भयानक था, उसकी विशाल दाढ़ी थी, उसके दाँत बड़े थे और वह बड़ा निर्दयी लग रहा था। उस नराधम तथा भयावने चाण्डालके शरीरका वर्ण काला था, उसका उदर लम्बा था, वह बहुत मोटा था, उसने अपने हाथमें एक जर्जर लाठी ले रखी थी और वह शवोंकी मालाओंसे अलंकृत था॥ ४-५॥

चाण्डाल बोला—मैं तुम्हें दासके रूपमें रखना चाहता हूँ; क्योंकि मुझे सेवककी अत्यन्त आवश्यकता है। शीघ्र बताओ कि इसके लिये तुम्हें कितना मूल्य देना होगा?॥ ६॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] अत्यन्त क्रूर दृष्टिवाले उस निष्ठुर तथा अविनीत चाण्डालको इस प्रकार बोलते हुए देखकर महाराज हरिश्चन्द्रने यह पूछा—'तुम कौन हो?'॥ ७॥

चाण्डाल बोला—हे राजेन्द्र! मैं 'प्रवीर' इस नामसे यहाँपर. विख्यात एक चाण्डाल हूँ। मृत व्यक्तिका वस्त्र ग्रहण करना यहाँ तुम्हारा कार्य होगा और तुम्हें सदा मेरी आज्ञाका पालन करना पड़ेगा॥ ८॥

चाण्डालके ऐसा कहनेपर राजाने यह वचन कहा, 'मेरा तो ऐसा विचार है कि ब्राह्मण या क्षत्रिय—कोई भी मुझे ग्रहण कर ले; क्योंकि उत्तम पुरुषके साथ उत्तमका, मध्यमके साथ मध्यमका और अधमके साथ अधमका धर्म स्थित रहता है'—ऐसा विद्वानोंने कहा है॥ ९-१०॥

चाण्डाल बोला—हे नृपश्रेष्ठ! हे राजन्! आपने इस समय मेरे समक्ष जो धर्मका स्वरूप व्यक्त किया है,

वह बिना सोचे-समझे ही आपने कहा है। जो मनुष्य सम्यक् सोच-समझकर बोलता है, वह अभीष्ट फल प्राप्त करता है, किंतु हे अनघ! आपने बिना विचार किये ही जो सामान्य बात है, उसे कह दिया। यदि आप सत्यको प्रमाण मानते हैं तो आप मेरे द्वारा खरीदे जा चुके हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ११-१२१/२॥

हरिश्चन्द्र बोले—असत्य भाषण करनेके कारण अधम मनुष्य शीघ्र ही भयानक नरकमें जाता है। अतः मेरे लिये चाण्डाल बन जाना उचित है, किंतु असत्यका आश्रय लेना श्रेष्ठ नहीं है॥ १३१/२॥

व्यासजी बोले—वे ऐसा बोल ही रहे थे कि क्रोध और अमर्षसे फैली हुई आँखोंवाले तपोनिधि विश्वामित्र वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने राजासे यह कहा—यह चाण्डाल आपके मनके अनुसार धन देनेके लिये यहाँ उपस्थित है, तब आप [इससे अपना मूल्य लेकर] यज्ञकी सम्पूर्ण दक्षिणा मुझे क्यों नहीं दे देते?॥ १४-१५॥

राजा बोले—हे भगवन्! हे कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशमें उत्पन्न समझता हूँ, अतः मैं धनके लोभसे चाण्डालके दासत्वको कैसे प्राप्त होऊँ?॥ १६१/२॥

विश्वामित्र बोले—यदि आप स्वयंको चाण्डालके हाथ बेचकर उससे प्राप्त धन मुझे नहीं दे देते तो मैं आपको निःसन्देह शाप दे दूँगा। चाण्डाल अथवा ब्राह्मण—किसीसे भी द्रव्य लेकर मेरी दक्षिणा दे दीजिये। फिर इस समय चाण्डालके अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति आपको धन देनेवाला है नहीं। और हे राजन्! यह भी निश्चित है कि मैं धन लिये बिना नहीं जाऊँगा। हे नृप! यदि आप अभी मेरा धन नहीं देंगे तो दिनके चौथे प्रहरकी आधी घड़ी शेष रह जानेपर मैं शापरूपी अग्निसे आपको भस्म कर दूँगा॥ १७—२०॥

व्यासजी बोले—तब राजा हरिश्चन्द्रने जीवित रहते हुए भी मृतकके समान होकर 'आप प्रसन्न हों'—ऐसा कहते हुए विकलतापूर्वक ऋषि विश्वामित्रके पाँव पकड़ लिये॥ २१॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे! मैं आपका दास हूँ, अत्यन्त दुःखी हूँ, दीन हूँ और विशेषरूपसे आपका भक्त हूँ। चाण्डालके सम्पर्कमें रहना बड़ा ही कष्टप्रद है, अतः मुझपर अनुग्रह कीजिये। अवशिष्ट धन चुकानेके लिये मैं आपके अधीन आपका सेवक बनूँगा। हे मुनिश्रेष्ठ! आपके मनकी इच्छाओंके अनुसार कार्य करता हुआ मैं आपका सदा दास बना रहूँगा॥ २२-२३॥

विश्वामित्र बोले—हे महाराज! ऐसा ही हो, आप मेरे ही दास हो जाइये, किंतु हे नराधिप! आपको सदा मेरे वचनोंका पालन करना पड़ेगा॥ २४॥

व्यासजी बोले—विश्वामित्रके इस प्रकार कहनेपर राजा अत्यन्त हर्षित हो उठे और उन्होंने इसे अपना पुनर्जन्म समझा। वे विश्वामित्रसे कहने लगे—हे द्विजश्रेष्ठ! मैं सदा आपकी आज्ञाका पालन करूँगा; इसमें कोई संशय नहीं है। हे अनघ! आदेश दीजिये, आपका कौन-सा कार्य सम्पन्न करूँ॥ २५-२६॥

विश्वामित्र बोले—हे चाण्डाल! इधर आओ, तुम मेरे इस दासका क्या मूल्य दोगे? मूल्य लेकर मैं तुम्हें इसे इसी समय दे दूँगा। तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि मुझे दाससे कोई प्रयोजन नहीं है, मुझे तो केवल धनकी आवश्यकता है॥ २७१/२॥

व्यासजी बोले—उनके इस प्रकार कहनेपर चाण्डालके मनमें प्रसन्नता आ गयी। विश्वामित्रके पास तत्काल आकर वह उनसे कहने लगा॥ २८१/२॥

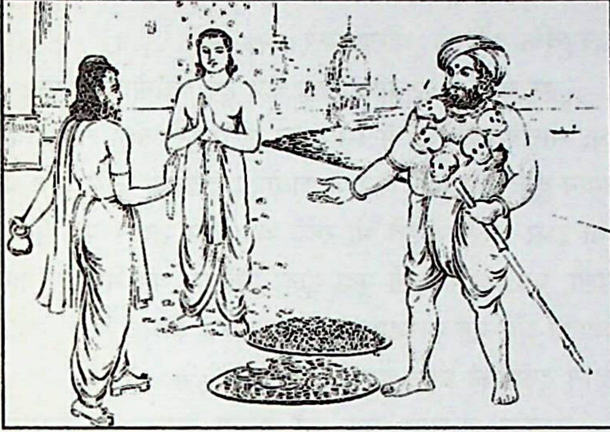
चाण्डाल बोला—हे द्विजवर! प्रयागके दस योजन विस्तारवाले मण्डलकी भूमिको रत्नमय कराकर मैं आपको दे दूँगा। इसके विक्रयसे आपने मेरा यह महान् कष्ट दूर कर दिया॥ २९-३०॥

व्यासजी बोले—तत्पश्चात् स्वर्ण, मणि और मोतियोंसे युक्त हजारों प्रकारके दिये गये रत्नोंको द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रने प्राप्त किया॥ ३१॥

इससे राजा हरिश्चन्द्रके मुखपरसे उदासी दूर हो गयी और उन्होंने धैर्यपूर्वक यह मान लिया कि विश्वामित्र ही मेरे स्वामी हैं, मुझे तो केवल वही करना है जो ये करायेंगे॥ ३२१/२॥

उसी समय सहसा अन्तरिक्षमें यह आकाशवाणी हुई कि हे महाभाग! आपने मेरी वह दक्षिणा दे दी और अब

आप ऋणसे मुक्त हो गये हैं ॥ ३३१/२ ॥



इसके बाद राजा हरिश्चन्द्रके मस्तकपर आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी और इन्द्रसहित महान् ओजवाले सभी देवता उन महाराज हरिश्चन्द्रके प्रति 'साधु-साधु' कहने लगे। तब अत्यन्त हर्षित होकर राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्रसे कहने लगे— ॥ ३४-३५ ॥

राजा बोले—हे महामते! आप ही मेरे माता-पिता तथा आप ही मेरे बन्धु हैं; क्योंकि आपने मुझे मुक्त कर दिया और क्षणभरमें ऋणरहित भी बना दिया। हे महाबाहो! आपका वचन मेरे लिये कल्याणप्रद है। कहिये, अब मैं कौन-सा कार्य करूँ? राजाके इस प्रकार कहनेपर मुनि उनसे कहने लगे ॥ ३६-३७ ॥

विश्वामित्र बोले—हे राजन्! आजसे इस चाण्डालका वचन मानना आपका कर्तव्य होगा। आपका कल्याण हो—उनसे ऐसा कहकर और वह धन लेकर विश्वामित्र वहाँसे चले गये ॥ ३८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

चाण्डालका राजा हरिश्चन्द्रको श्मशानघाटमें नियुक्त करना

शौनक बोले—हे श्रेष्ठ सूतजी! चाण्डालके घर जाकर राजा हरिश्चन्द्रने क्या किया? आप मेरे प्रश्नका उत्तर शीघ्र ही दीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले—विश्वामित्रको वह दक्षिणाद्रव्य देकर चाण्डाल प्रसन्नचित्त हो गया। तत्पश्चात् विप्र विश्वामित्रके चले जानेपर वह चाण्डाल नरेशको बाँधकर 'तुम पुनः झूठ बोलोगे'—ऐसा कहकर उन्हें दण्डसे मारने लगा। दण्डके प्रहारसे घबड़ाये हुए तथा अत्यन्त व्याकुल इन्द्रियोंवाले और अपने इष्ट-मित्रोंके वियोगसे दुःखित उन हरिश्चन्द्रको अपने गृहमें लाकर तथा जंजीरमें बाँधकर वह चाण्डाल स्वयं निश्चिन्त होकर सो गया ॥ २—४ ॥

जंजीरमें जकड़े हुए वे राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालके घरमें रहते हुए अन्न और जलका परित्याग करके निरन्तर मनमें यह सोचते रहते थे—'उदास मुखवाली मेरी दुर्बल स्त्री दीन मुखवाले बालकको सम्मुख देखकर असीम कष्टसे भर जाती होगी और मुझे याद करके सोचती होगी कि धन अर्जित करके प्रतिज्ञा की गयी दक्षिणा ब्राह्मणको देकर वे राजा हम दोनोंको बन्धनसे मुक्त कर देंगे। रोते हुए पुत्रको देखकर वह मुझे पुकारती होगी; पुनः 'हे तात! हे तात!'—ऐसा कहते हुए तथा रोते हुए बालकसे कहती होगी कि मैं तुम्हारे पिताके पास तुम्हें ले चल रही हूँ, किंतु वह मृगनयनी यह नहीं जानती कि मैं चाण्डालकी दासताको प्राप्त हो गया हूँ ॥ ५—८१/२ ॥

राज्य नष्ट हो गया, इष्ट-मित्र अलग हो गये, स्त्री एवं पुत्र बिक गये, मुझे चाण्डालता स्वीकार करनी पड़ी। अहो! यह विधिकी कैसी दुःख-परम्परा है। इस प्रकार चाण्डालके घर रहते हुए तथा निरन्तर स्त्री और पुत्रका स्मरण करते हुए दैवके विधानसे परम दुःखी उन नरेशने चार दिन व्यतीत किये। पाँचवें दिन चाण्डालने उन्हें बन्धनसे मुक्त किया। तत्पश्चात् चाण्डालने उन्हें [श्मशानपर] मृत व्यक्तियोंके वस्त्र लेनेकी आज्ञा दी। उस क्रोधी चाण्डालने अत्यन्त कठोर वचनोंका प्रयोग करके बार-बार डाँटते हुए हरिश्चन्द्रसे कहा—काशीके दक्षिणभागमें महान् श्मशान है। तुम न्यायपूर्वक उसकी रखवाली करो, तुम्हें कभी भी वहाँसे हटना नहीं

चाहिये। इस जर्जर दण्डको लेकर तुम अभी वहाँ चले जाओ, विलम्ब मत करो। तुम भलीभाँति घोषित कर दो कि यह दण्ड वीरबाहुका है॥ ९—१४॥

सूतजी बोले—[हे शौनक!] कुछ समयके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र उस चाण्डालके वशवर्ती होकर श्मशानमें मृतकोंके वस्त्र (कफन) ग्रहण करनेवाले हो गये॥ १५॥

मृतकोंका वस्त्र लेनेवाले उस चाण्डालने राजाको आज्ञा प्रदान की, तब उससे आदेश पाकर वे श्मशानमें चले गये॥ १६॥

वह भयानक श्मशान काशीपुरीके दक्षिण भागमें था। वहाँ शवकी मालाएँ बिखरी रहती थीं, वह दुर्गन्धयुक्त था तथा अत्यधिक धुएँसे भरा हुआ था। सर्वत्र भयंकर चीत्कार हो रहा था। सैकड़ों सियारिनोंसे व्याप्त था। गीधों और सियारोंसे सारा स्थान भरा था। वह श्मशान कुत्तोंसे सदा घिरा रहता था, चारों ओर हड्डियाँ बिखरी पड़ी थीं, महान् दुर्गन्धसे भरा हुआ था, अधजले शवोंके मुख निकले हुए दाँतोंसे हँसते-जैसे दीख रहे थे। चिताके मध्य-स्थित शवकी ऐसी दशा थी॥ १७—१९१/२॥

मरे हुए लोगोंके अनेक सुहृद्जनोंके रुदनकी ध्वनि तथा महान् कोलाहलसे वह स्थान व्याप्त था। 'हा मेरे पुत्र, मित्र, बन्धु, भ्राता, वत्स, प्रिया! इस समय मुझे छोड़ रहे हैं। हा पूज्य भागिनेय, मातुल, पितामह, मातामह, पिता, पौत्र! आप कहाँ चले गये हैं; हे बान्धव! लौट आइये'—इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंके भीषण शब्दोंसे वह श्मशान व्याप्त था। जलते हुए मांस, वसा और मेदसे साँय-साँयकी ध्वनि निकलती थी। अग्निमेंसे चट-चटानेका जहाँ भयंकर शब्द होता रहता था, इस प्रकारका वह श्मशान अत्यन्त भीषण तथा प्रलयकालीन स्वरूपवाला था॥ २०—२३१/२॥

वहाँ पहुँचकर राजा हरिश्चन्द्र दुःखपूर्वक इस प्रकार सोचने लगे—हाय, मेरे भृत्य तथा मन्त्रीगण! तुम कहाँ हो? कुल-परम्परासे प्राप्त मेरा राज्य कहाँ गया? हे प्रिये! हे अबोध पुत्र! मुझ अभागेको छोड़कर ब्राह्मणके कोपसे तुमलोग दूर कहाँ चले गये? धर्मके बिना मनुष्यका कभी कल्याण नहीं हो सकता। अतएव मनुष्यको चाहिये कि यत्नपूर्वक धर्मको धारण करे॥ २४—२६१/२॥

इन बातों तथा चाण्डालके कहे हुए वचनोंको वे पुनः-पुनः सोचते रहते थे। मैलसे लिप्त शरीरवाले तथा लकड़ीके समान दुर्बल देहवाले वे राजा शवोंको देखनेके लिये जाते थे तथा इधर-उधर दौड़ते भी रहते थे। इस शवसे यह मूल्य मिला, पुनः दूसरेसे सौ मुद्रा मूल्य मिलेगा, यह मेरा है, यह राजाका और यह चाण्डालका—इस प्रकार सोचते हुए वे राजा महान् दुर्गतिको प्राप्त हुए॥ २७—२९१/२॥

उनके शरीरपर एक ही पुराना वस्त्र था, जिसमें बहुत-सी गाँठें लगी थीं। एकमात्र कन्था (गुदड़ी) ही उनके पास थी। उनके मुख, हाथ, उदर और पैर चिताकी



राख एवं धूलसे धूसरित थे। हाथकी अँगुलियाँ तरह-तरहके मेद, वसा और मज्जासे सनी रहती थीं और वे दुर्गन्धयुक्त श्वास लेते रहते थे। शवोंके पिण्डदानार्थ जो भात बनता था, उससे वे अपनी भूख मिटाते थे। शवोंकी माला पहनकर अपने मस्तकको मण्डित किये रहते थे। 'हाय-हाय' ऐसा बार-बार कहते हुए न वे दिनमें सो पाते थे और न रातमें ही। इस प्रकार महाराज हरिश्चन्द्रने बारह महीने सौ वर्षके समान व्यतीत किये॥ ३०—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रचिन्तावर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

सर्पदंशसे रोहितकी मृत्यु, रानीका करुण विलाप, पहरेदारोंका रानीको राक्षसी समझकर चाण्डालको सौंपना और चाण्डालका हरिश्चन्द्रको उसके वधकी आज्ञा देना

सूतजी बोले—[हे शौनक!] एक समयकी बात है, वह रोहित नामक राजकुमार लड़कोंके साथ बाहर खेलनेके लिये वाराणसीके समीप चला गया॥ १॥

तत्पश्चात् वहाँपर वह खेलनेके बाद कुश उखाड़ने लगा। उसने अपनी शक्तिके अनुसार अल्प जड़वाले तथा अग्रभागसे युक्त बहुतसे कोमल कुश उखाड़े। इससे मेरे आर्य (स्वामी) प्रसन्न होंगे—ऐसा बोलते हुए वह बड़ी सावधानीसे दोनों हाथोंसे कुश उखाड़ता था। साथ ही वह उत्तम लक्षणोंवाली समिधाओं तथा ईंधनहेतु श्रेष्ठ लकड़ियों और यज्ञहेतु कुशों तथा अग्निमें हवन करनेके लिये पलाश-काष्ठोंको आदरपूर्वक एकत्र करके सम्पूर्ण बोझ मस्तकपर रखकर दु:खित होता हुआ पैदल चलने लगा और वह बालक प्याससे व्याकुल हो गया। वह शिशु एक जलाशयके पास पहुँचकर बोझको जमीनपर रखकर जल-स्थानपर गया और इच्छानुसार जल पीकर मुहूर्तभर विश्राम करके वल्मीकके ढेरपर रखे उस बोझको उठाने लगा॥ २—६॥

उसी समय विश्वामित्रकी प्रेरणासे एक प्रचण्ड रूपवाला डरावना महाविषधर काला सर्प उस वल्मीकसे निकला॥ ७॥

उस सर्पने बालक रोहितको डँस लिया और वह उसी समय भूमिपर गिर पड़ा। रोहितको मृत देखकर भयसे व्याकुल सभी बालक शीघ्रतापूर्वक ब्राह्मणके घर गये और रोहितकी माताके सामने खड़े होकर कहने लगे—हे विप्रदासि! आपका पुत्र हमलोगोंके साथ खेलनेके लिये बाहर गया हुआ था। वहाँ उसे साँपने काट लिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गयी॥ ८-९१/२॥

वज्रपात-सदृश वह बात सुनकर रानी मूर्च्छित हो गयीं और जड़से कटे हुए केलेके वृक्षकी भाँति वे भूमिपर गिर पड़ीं॥ १०१/२॥

इससे ब्राह्मण कुपित हो गया और उनपर जलसे छींटे मारने लगा। थोड़ी देरमें उन्हें चेतना आ गयी, तब ब्राह्मण उनसे कहने लगा॥ १११/२॥

ब्राह्मण बोला—हे दुष्टे! सायंकालके समय रोना निन्दनीय तथा दरिद्रता प्रदान करनेवाला होता है—ऐसा जानती हुई भी तुम इस समय रो रही हो। क्या तुम्हारे हृदयमें लज्जा नहीं है?॥ १२१/२॥

ब्राह्मणके ऐसा कहनेपर वे कुछ भी नहीं बोलीं। पुत्र-शोकसे सन्तप्त तथा दीन होकर वे करुण क्रन्दन करने लगीं। उनका मुख आँसुओंसे भीग गया था, उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी, वे धूल-धूसरित हो गयी थीं तथा उनके सिरके केश अस्त-व्यस्त हो गये थे॥ १३-१४॥

तब क्रोधमें आकर ब्राह्मणने उस रानीसे कहा—दुष्टे! तुम्हें धिक्कार है; क्योंकि अपना मूल्य लेकर भी तुम मेरे कार्यकी उपेक्षा कर रही हो। यदि तुम काम करनेमें असमर्थ थी, तो मुझसे वह धन तुमने क्यों लिया?॥ १५१/२॥

इस प्रकार उस ब्राह्मणके द्वारा निष्ठुर वचनोंसे बार-बार फटकारनेपर रानीने रोते हुए गद्गद वाणीमें [अपने रुदनका] कारण बताते हुए कहा—हे स्वामिन्! [क्रीडाहेतु] बाहर गये हुए मेरे पुत्रको सर्पने डँस लिया और वह मर गया। मैं उस बालकको देखने जाऊँगी। अत: आप मुझे आज्ञा दीजिये। हे सुव्रत! अब मेरे लिये उस पुत्रका दर्शन दुर्लभ हो गया है॥ १६—१८॥

इस प्रकार करुणापूर्ण वचन कहकर रानी फिर रोने लगी, इसपर वह ब्राह्मण कुपित होकर उन राजमहिषीसे फिर कहने लगा॥ १९॥

ब्राह्मण बोला—कुटिल व्यवहारवाली हे शठे! क्या तुम्हें इस पापका ज्ञान नहीं है कि जो मनुष्य अपने स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, वह महारौरव नरकमें पड़ता है, एक कल्पतक नरकमें रहकर वह मुर्गेकी योनिमें जन्म लेता है॥ २०-२१॥

अथवा इस धार्मिक चर्चासे मेरा क्या प्रयोजन है;

क्योंकि पापी, मूर्ख, क्रूर, नीच, मिथ्याभाषी एवं शठके प्रति वह वचन उसी प्रकार निष्फल होता है, जैसे ऊसरमें बोया गया बीज। अतः यदि तुम्हें परलोकका कुछ भी भय हो तो आओ, अपना कार्य करो॥ २२-२३॥

उसके ऐसा कहनेपर [भयके कारण] थर-थर काँपती हुई रानी ब्राह्मणसे यह वचन बोलीं—हे नाथ! मुझपर दया कीजिये, अनुग्रह कीजिये। प्रसन्नमुखवाले होइये। मुझे मुहूर्तभरके लिये वहाँ जाने दीजिये, जिससे मैं अपने पुत्रको देख सकूँ॥ २४१/२॥

ऐसा कहकर पुत्रशोकसे सन्तप्त वे रानी ब्राह्मणके चरणोंपर सिर रखकर करुण विलाप करने लगीं। इसपर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाला वह ब्राह्मण कुपित होकर रानीसे कहने लगा॥ २५-२६॥

विप्र बोला—तुम्हारे पुत्रसे मेरा क्या प्रयोजन, तुम मेरे घरका कार्य सम्पन्न करो। क्या तुम कोड़ेके प्रहारका फल देनेवाले मेरे क्रोधको नहीं जानती हो?॥ २७॥

इस प्रकार ब्राह्मणके कहनेपर रानी धैर्य धारण करके उसके घरका काम करनेमें संलग्न हो गयीं। इस तरह पैर दबाने आदि कार्य करते रहनेमें उनकी आधी रात बीत गयी॥ २८॥

इसके बाद ब्राह्मणने उनसे कहा—अब तुम अपने पुत्रके पास जाओ और उसका दाह-संस्कार आदि सम्पन्न करके शीघ्र पुनः वापस आ जाना, जिससे मेरा प्रातःकालीन गृहकार्य बाधित न हो॥ २९१/२॥

तब रानी अकेली ही रातमें विलाप करती हुई गयीं और अपने पुत्रको मृत देखकर अत्यन्त शोकाकुल हो उठीं। उस समय वे झुण्डसे बिछड़ी हुई हिरनी अथवा बिना बछड़ेकी गायकी भाँति प्रतीत हो रही थीं॥ ३०-३१॥

थोड़ी ही देरमें वाराणसीसे बाहर निकलनेपर काष्ठ, कुश और तृणके ऊपर अपने पुत्रको रंककी भाँति भूमिपर सोया हुआ देखकर वे दुःखसे अत्यन्त अधीर हो गयीं और अत्यन्त निष्ठुर शब्द करके विलाप करने लगीं—मेरे सामने आओ और बताओ कि तुम इस समय मुझसे क्यों रूठ गये हो? पहले तुम बार-बार 'अम्बा'—ऐसा कहकर मेरे सामने नित्य आया करते थे। इसके बाद लड़खड़ाते हुए पैरोंसे कुछ दूर जाकर वे मूर्च्छित होकर उसके ऊपर गिर पड़ीं॥ ३२—३४॥

तत्पश्चात् सचेत होनेपर बालकको दोनों हाथोंमें भरकर और उसके मुखसे अपना मुख लगाकर वे करुण स्वरमें रुदन करने लगीं और दोनों हाथोंसे अपना सिर तथा वक्षःस्थल पीटने लगीं—[वे ऐसा कहकर रो रही थीं] हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार! हा राजन्! आप कहाँ चले गये? मृत होकर भूमिपर पड़े हुए अपने प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय पुत्रको देख तो लीजिये॥ ३५—३७॥

तत्पश्चात् 'कहीं बालक जीवित तो नहीं है'—इस शंकासे वे उसका मुख बार-बार निहारने लगीं, किंतु मुखकी चेष्टासे उसे निष्प्राण जानकर पुनः मूर्च्छित होकर वे गिर पड़ीं। इसके बाद हाथमें बालकका मुख लेकर उन्होंने इस प्रकार कहा—हे पुत्र! तुम इस भयंकर निद्राका त्याग करो और शीघ्र जागो! आधी रातसे भी अधिक समय हो रहा है, सैकड़ों सियारिनें बोल रही हैं; भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी आदिके समूह ध्वनि कर रहे हैं। सूर्यास्त होते ही तुम्हारे सभी मित्र चले गये; केवल तुम्हीं यहाँ कैसे रह गये?॥ ३८—४०१/२॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर दुर्बल शरीरवाली रानी पुनः इस प्रकार करुण रुदन करने लगीं—'हा शिशो! हा बालक! हा वत्स! हा रोहित नामवाले कुमार! हे पुत्र! तुम मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं दे रहे हो?'॥ ४१-४२॥

हे वत्स! क्या तुम यह नहीं जानते कि मैं तुम्हारी माता हूँ; मेरी ओर देखो। हे पुत्र! मुझे अपना देश छोड़ना पड़ा, राज्यविहीन होना पड़ा और पतिके द्वारा बेच दिये जानेपर दासी बनना पड़ा, फिर भी हे पुत्र! केवल तुम्हें देखकर जी रही हूँ। तुम्हारे जन्मके समय ब्राह्मणोंने भविष्यके सम्बन्धमें बताया था कि यह बालक दीर्घ आयुवाला, पृथ्वीका शासक, पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न, पराक्रम तथा दानके प्रति अनुराग रखनेवाला, बलवान्, ब्राह्मण-गुरु-देवताका उपासक, माता-पिताको प्रसन्न रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय होगा, किंतु हे पुत्र! यह सब इस समय असत्य सिद्ध हो गया॥ ४३—४६॥

हे पुत्र! तुम्हारी हथेलीमें चक्र, मत्स्य, छत्र, श्रीवत्स,

स्वस्तिक, ध्वजा, कलश तथा चामर आदिके चिह्न और हे सुत! अन्य जो भी शुभ लक्षण तुम्हारे हाथमें विद्यमान हैं, वे सब इस समय निष्फल हो गये हैं॥ ४७-४८॥

हा राजन्! हा पृथ्वीनाथ! आपका राज्य, आपके मन्त्री, आपका सिंहासन, आपका छत्र, आपका खड्ग, आपका वह धन-वैभव, वह अयोध्या, राजमहल, हाथी, घोड़े, रथ और प्रजा—ये सब कहाँ चले गये? हे पुत्र! इन सबके साथ ही तुम भी मुझे छोड़कर कहाँ चले गये?॥ ४९-५०॥

हा कान्त! हा राजन्! आइये, अपने इस प्रिय पुत्रको देख लीजिये, जो [खेलते-खेलते] आपके वक्षपर चढ़कर कुमकुमसे लिप्त उस विशाल वक्षको अपने शरीरमें लगे धूल तथा कीचड़से मलिन कर देता था, आपकी गोदमें बैठकर जो बालसुलभ स्वभावके कारण आपके ललाटपर लगे हुए कस्तूरीमिश्रित चन्दनके तिलकको मिटा देता था। हे भूपते! जिसके मिट्टी लगे मुखको मैं स्नेहपूर्वक चूम लेती थी, उसी मुखको आज मैं देख रही हूँ कि कीड़ोंने उसे विकृत कर दिया है और उसपर मक्खियाँ बैठ रही हैं। हे राजन्! अकिंचनकी भाँति पृथ्वीपर पड़े इस मृत पुत्रको देख लीजिये॥ ५१—५४॥

हा दैव! मैंने पूर्वजन्ममें कौन-सा कार्य कर दिया था कि उस कर्म-फलका अन्त मैं देख नहीं पा रही हूँ!॥ ५५॥

'हा पुत्र! हा शिशो! हा वत्स! हा सुन्दर कुमार!' उस रानीका ऐसा विलाप सुनकर नगरपालक जाग गये और वे अत्यन्त आश्चर्यचकित होकर शीघ्र ही उनके पास पहुँचे॥ ५६$^{1}/_{2}$॥

जनोंने कहा—तुम कौन हो, यह बालक किसका है, तुम्हारे पति कहाँ हैं और रातमें निर्भय होकर तुम अकेली यहाँ किस कारणसे रो रही हो?॥ ५७$^{1}/_{2}$॥

उनके ऐसा कहनेपर उस कृशकाय रानीने कुछ भी बात नहीं कही। उनके पुनः पूछनेपर भी वे चुप रहीं और स्तब्ध-जैसी हो गयीं। वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं और उनकी आँखोंसे शोकके आँसू निरन्तर निकलते रहे॥ ५८-५९॥

तब उनके मनमें रानीके प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया, उनके शरीरके रोंगटे खड़े हो गये और वे भयभीत हो उठे; तब हाथोंमें आयुध लिये हुए वे परस्पर कहने लगे—॥ ६०॥

निश्चय ही यह स्त्री नहीं है; क्योंकि यह कुछ भी बोल नहीं रही है। यह बालकोंको मार डालनेवाली कोई राक्षसी है, अतः यत्नपूर्वक इसका वध कर देना चाहिये। यदि यह कोई उत्तम स्त्री होती तो इस अर्धरात्रिमें घरसे बाहर क्यों रहती? यह निश्चितरूपसे किसीके शिशुको खानेके लिये यहाँ ले आयी है॥ ६१-६२॥

ऐसा कहकर उनमेंसे कुछने शीघ्र ही दृढ़तापूर्वक रानीके केश पकड़ लिये, कुछ अन्य व्यक्तियोंने उनकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और कुछने गर्दन पकड़ ली। 'यह खेचरी [कहीं] भाग जायगी'—ऐसा कहकर हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए बहुतसे पहरेदार रानीको घसीटते हुए चाण्डालके घर ले गये और उसे चाण्डालको सौंप दिया [और कहा]—हे चाण्डाल! इस बालघातिनीको हमलोगोंने बाहर देखा। तुम बाहर किसी स्थानपर शीघ्र ही ले जाकर इसे मार डालो, मार डालो॥ ६३—६५॥



रानीको देखकर चाण्डालने कहा—मैं इसे जानता हूँ; यह लोकमें प्रसिद्ध है। इसके पहले किसीने भी इसे देखा नहीं था। इसने अनेक बार लोगोंके बच्चोंका भक्षण कर लिया है। आपलोगोंने इसे पकड़कर महान् पुण्य अर्जित किया है। इससे आपलोगोंका यश जगत्‌में सर्वदा बना रहेगा। अब आपलोग यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये॥ ६६-६७॥

जो मनुष्य ब्राह्मण, स्त्री, बालक तथा गायका वध

करता है; स्वर्णकी चोरी करता है; आग लगाता है; मार्गमें अवरोध उत्पन्न करता है; मदिरा-पान करता है; गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करता है और श्रेष्ठजनोंके साथ विरोध-भाव रखता है, उसका वध कर देनेसे पुण्य प्राप्त होता है। ऐसे कार्यमें तत्पर ब्राह्मणका अथवा स्त्रीका भी वध कर डालनेमें दोष नहीं लगता। अतः इसका वध मेरी दृष्टिमें उचित है—ऐसा कहकर चाण्डालने दृढ़ बन्धनोंसे बाँधकर और केश पकड़कर उन्हें रस्सियोंसे पीटा। इसके बाद उसने हरिश्चन्द्रको बुलाकर उनसे कठोर वाणीमें कहा—'हे दास! इस पापात्मा स्त्रीका तत्काल वध कर दो; इसमें सोच-विचार मत करो'॥ ६८—७१॥

वज्रपातके समान उस वचनको सुनकर स्त्री-वधकी आशंकासे राजा हरिश्चन्द्र थर-थर काँपते हुए उस चाण्डालसे बोले—मैं ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतः मुझे कोई दूसरा कार्य करनेकी आज्ञा दीजिये। इसके अतिरिक्त आप जो भी कठिन-से-कठिन कार्य करनेको कहेंगे, उसे मैं सम्पन्न कर दूँगा॥ ७२-७३॥

उनके द्वारा कही गयी यह बात सुनकर चाण्डालने यह वचन कहा—तुम बिलकुल मत डरो। तलवार उठाओ और इसका वध कर दो; क्योंकि ऐसी स्त्रीका वध अत्यन्त पुण्यदायक माना गया है। बालकोंको भय पहुँचानेवाली यह स्त्री कभी भी रक्षाके योग्य नहीं है॥ ७४१/२॥

चाण्डालकी वह बात सुनकर राजाने यह वचन कहा—जिस किसी भी उपायसे स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये, उनका वध कभी नहीं करना चाहिये; क्योंकि धर्मपरायण मुनियोंने स्त्रीवधको पाप बताया है। जो पुरुष जानकर अथवा अनजानमें भी स्त्रीकी हत्या करता है, वह महारौरव नरकमें गिरकर यातना भोगता है॥ ७५—७७॥

चाण्डाल बोला—'यह सब मत बोलो, विद्युत्के समान चमकनेवाली यह तीक्ष्ण तलवार उठा लो; क्योंकि यदि एकका वध कर देनेसे बहुत प्राणियोंको सुख हो तो उसकी की गयी हिंसा निश्चय ही पुण्यप्रद होती है। यह दुष्टा संसारमें बहुत-से बच्चोंको खा चुकी है, अतः शीघ्र ही इसका वध कर दो, जिससे लोक शान्तिमय हो जाय॥ ७८-७९१/२॥

राजा बोले—हे चाण्डालराज! मैंने आजीवन स्त्रीवध न करनेका कठोर व्रत ले रखा है, अतः मैं स्त्रीवधके लिये प्रयत्न नहीं कर सकता; अपितु आपका अन्य कोई कार्य सम्पन्न करूँगा॥ ८०१/२॥

चाण्डाल बोला—अरे दुष्ट! स्वामीके इस कार्यको छोड़कर तुम्हारे लिये दूसरा कौन-सा कार्य है? वेतन लेकर मेरे कार्यकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो? जो सेवक स्वामीसे वेतन लेकर उसके कार्यकी उपेक्षा करता है, उसका दस हजार कल्पोंतक नरकसे उद्धार नहीं होता॥ ८१-८२१/२॥

राजा बोले—हे चाण्डालनाथ! आप मुझे कोई अन्य अत्यन्त कठिन कार्य करनेका आदेश दीजिये। आप अपने किसी शत्रुको बतायें, मैं उसे निःसन्देह शीघ्र ही मार डालूँगा और उस शत्रुका वध करके उसकी भूमि आपको सौंप दूँगा। हे देव! देवताओं, नागों, सिद्धों और गन्धर्वोंसहित इन्द्रको भी तीक्ष्ण बाणोंसे मारकर उन्हें जीत लूँगा॥ ८३—८५॥

तब राजा हरिश्चन्द्रका यह वचन सुनकर उस चाण्डालने क्रुद्ध होकर थर-थर काँप रहे उन राजासे कहा॥ ८६॥

चाण्डाल बोला—(सेवकोंके लिये जो बात कही गयी है, वह बात तुम्हारे व्यवहारमें लक्षित नहीं होती)। चाण्डालकी दासता करके तुम देवताओं-जैसी बात करते हो। अरे दास! अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन? तुम मेरी बात ध्यानसे सुनो। निर्लज्ज! यदि तुम्हारे हृदयमें थोड़ा भी पापका भय था, तो चाण्डालके घरमें दासता करना तुमने स्वीकार ही क्यों किया? अतः इस तलवारको उठाओ और इसके कमलवत् सिरको काट दो—ऐसा कहकर चाण्डालने राजाको तलवार पकड़ा दी॥ ८७—८९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'चाण्डालकी आज्ञासे हरिश्चन्द्रका खड्गग्रहणवर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

रानीका चाण्डालवेशधारी राजा हरिश्चन्द्रसे अनुमति लेकर पुत्रके शवको लाना और करुण विलाप करना, राजाका पत्नी और पुत्रको पहचानकर मूर्च्छित होना और विलाप करना

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्र नीचेकी ओर मुख करके रानीसे कहने लगे—हे बाले! मुझ पापीके सामने यहाँ आकर बैठ जाओ। यदि मेरा हाथ मारनेमें समर्थ हो सका तो मैं तुम्हारा सिर काट लूँगा॥ १$^{1}/_{2}$॥

ऐसा कहकर हाथमें तलवार लेकर रानीको मारनेके लिये राजा हरिश्चन्द्र उनकी ओर गये। उस समय राजा न तो अपनी पत्नीको पहचान रहे थे और न तो रानी राजाको ही पहचान रही थीं। तब अत्यन्त दुःखसे पीड़ित रानी अपनी मृत्युकी इच्छा रखती हुई कहने लगीं॥ २-३॥

स्त्रीने कहा—हे चाण्डाल! यदि तुम थोड़ा भी उचित समझते हो तो मेरी बात सुनो। इस नगरसे बाहर थोड़ी ही दूरीपर मेरा पुत्र मृत पड़ा है। मैं जबतक उस बालकको आपके पास लाकर उसका दाह न कर दूँ, तबतकके लिये मेरी प्रतीक्षा कीजिये, इसके बाद मुझे तलवारसे मार डालियेगा॥ ४-५॥

'बहुत अच्छा'—ऐसा कहकर उसने रानीको बालकके पास भेज दिया। वे अत्यन्त शोकसे सन्तप्त होकर करुण विलाप करती हुई वहाँसे चली गयीं॥ ६॥

उन राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या 'हा पुत्र! हा वत्स! हा शिशो!' ऐसा बार-बार कहती हुई सर्पसे डँसे हुए उस बालकको लेकर तुरंत श्मशानभूमिमें आकर उसे जमीनपर लिटाकर स्वयं बैठ गयी। उस समय उनका शरीर दुर्बल हो गया था, उनका वर्ण विकृत था, उनका शरीर मलिन था और सिरके बाल धूलसे धूमिल हो गये थे॥ ७-८॥

[रानी यह कहकर विलाप कर रही थी] हे राजन्! अपने मित्रोंके साथ खेलते समय क्रूर सर्पके द्वारा डँस लिये जानेसे मरे हुए पुत्रको आज आप पृथ्वीतलपर पड़ा हुआ देख लीजिये। तब उनके रुदनकी वह ध्वनि सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शवके समीप आये और उन्होंने उसके ऊपरका वस्त्र हटाया। दीर्घ समयसे प्रवास-सम्बन्धी दुःख भोगनेके कारण दूसरे स्वरूपमें परिणत उन विलाप करती हुई अपनी अबला भार्याको उस समय राजा नहीं पहचान सके। पहले सुन्दर केशोंवाले उन नृपश्रेष्ठको अब जटाधारीके रूपमें तथा शुष्क वृक्षकी छाल-सदृश देखकर वे रानी भी उन्हें नहीं पहचान पायीं॥ ९—११॥

सर्पके विषसे ग्रस्त होकर धरतीपर पड़े हुए बालकको देखकर वे महाराज हरिश्चन्द्र उसके राजोचित लक्षणोंपर विचार करने लगे—इसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश है; इसकी नासिका अत्यन्त सुन्दर, उन्नत तथा व्रणरहित है और इसके दर्पणके समान चमकीले तथा ऊँचे दोनों कपोल अनुपम शोभा दे रहे हैं। इसके केश कृष्णवर्ण, घुँघराले अग्रभागवाले, स्निग्ध, लम्बे तथा लहरोंके समान हैं। इसके दोनों नेत्र कमलके समान हैं। इसके दोनों ओठ बिम्बाफलके सदृश हैं। यह बालक चौड़े वक्षःस्थल, विशाल नेत्र, लम्बी भुजाओं और ऊँचे स्कन्धोंवाला है। इसके बड़े-बड़े पैर हैं, इसकी छोटी-छोटी अँगुलियाँ हैं और यह गम्भीर स्वभाववाला कोई राजलक्षणयुक्त बालक जान पड़ता है। यह कमलनाल-सदृश चरणोंवाला, गहरी नाभिवाला और ऊँचे कन्धोंवाला है। अहो, महान् कष्टकी बात है कि किसी राजाके कुलमें उत्पन्न हुए इस बालकको दुरात्मा यमराजने अपने कालपाशमें बाँध लिया॥ १२—१६$^{1}/_{2}$॥

सूतजी बोले—माताकी गोदमें पड़े हुए उस बालकको देखकर ऐसा विचार करनेके उपरान्त राजा हरिश्चन्द्रको पूर्वकालकी स्मृति हो आयी और वे 'हाय, हाय'—ऐसा कहकर अश्रुपात करने लगे। वे कहने लगे कि 'कहीं मेरे ही पुत्रकी यह दशा तो नहीं हो गयी है और क्रूर यमराजने उसे अपने अधीन कर लिया है', इस प्रकार विचार करके वे राजा हरिश्चन्द्र कुछ समयके लिये ठहर गये। तत्पश्चात् अत्यन्त शोकसे सन्तप्त रानी ऐसा कहने लगीं॥ १७—१९$^{1}/_{2}$॥

रानी बोलीं—हा वत्स! किस पाप या अनिष्ट चिन्तनके परिणामस्वरूप यह महान् दारुण दुःख मेरे सामने

आ पड़ा है? इसका कारण भी समझमें नहीं आ रहा है। हे नाथ! हे राजन्! मुझ अत्यन्त दुःखिनीको छोड़कर इस समय आप किस स्थानपर विद्यमान हैं? आप किस कारणसे निश्चिन्त हैं? राजर्षि हरिश्चन्द्रको राज्यसे हाथ धोना पड़ा, उनके सुहृद्वर्ग अलग हो गये और उन्हें भार्या तथा पुत्रतकको बेच देना पड़ा। हा विधाता! तुमने यह क्या कर दिया?॥ २०—२२½॥

तब रानीकी यह बात सुनकर राजा हरिश्चन्द्र अपने स्थानसे उठकर उनके समीप आ गये। तत्पश्चात् अपनी साध्वी पत्नी तथा मृत पुत्रको पहचानकर वे कहने लगे—'महान् कष्ट है कि यह स्त्री मेरी ही पत्नी है और यह बालक भी मेरा ही पुत्र है'॥ २३-२४॥

यह सब जानकर असीम दुःखसे सन्तप्त राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और वे रानी भी उन्हें पहचानकर उसी स्थितिको प्राप्त हो गयीं। वे दुःखके मारे मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ीं और उनकी समस्त इन्द्रियाँ चेष्टारहित हो गयीं। पुनः कुछ समय बाद चेतना आनेपर शोकके भारसे पीडित राजा और रानी दोनों अत्यन्त दुःखित होकर एक साथ विलाप करने लगे॥ २५-२६½॥

राजा बोले—हा वत्स! कुंचित अलकावलीसे घिरा हुआ तुम्हारा मुख बड़ा ही सुकुमार है। तुम्हारे दीन मुखको देखकर मेरा हृदय विदीर्ण क्यों नहीं हो जाता? पहले तुम 'तात, तात'—ऐसा मधुर वाणीमें बोलते हुए मेरे पास स्वयं आ जाते थे, किंतु अब मैं तुम्हें बाहोंमें भरकर 'वत्स, वत्स'—ऐसा प्रेमपूर्वक कब पुकारूँगा? अब भूमिकी पीतवर्णवाली धूलसे सने हुए किसके घुटने मेरी चादर, गोद और शरीरके अंगोंको मलिन करेंगे? हे हृदयनन्दन! मेरा मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका; (क्योंकि जिसने सामान्य वस्तुकी भाँति तुम्हें बेच दिया था, उसी पितासे तुम पितावाले बने थे।) बहुतसे बन्धु-बान्धवों तथा अपार धन-सहित मेरा सम्पूर्ण राज्य चला गया। (आज दुर्भाग्यके कारण मुझ निर्दयीको अपना ही पुत्र दिखायी पड़ गया।) विषधर सर्पके द्वारा डँसे गये पुत्रके कमलसदृश मुखको देखता हुआ मैं इस समय स्वयं भीषण विषसे ग्रस्त हो गया हूँ॥ २७—३१½॥

इस प्रकार विलाप करके आँसूसे भरे हुए कण्ठवाले राजा हरिश्चन्द्रने उस बालकको उठा लिया और वे उसे वक्षःस्थलसे लगाकर मूर्च्छासे अचेत होकर गिर पड़े॥ ३२½॥

तदनन्तर पृथ्वीपर गिरे हुए उन राजाको देखकर



रानी शैव्याने मनमें ऐसा सोचा कि पुरुषोंमें श्रेष्ठ ये महानुभाव तो अपने स्वरसे ही पहचानमें आ जाते हैं। इसमें अब कोई सन्देह नहीं कि ये विद्वानोंके मनको प्रसन्न करनेवाले चन्द्रमारूपी हरिश्चन्द्र ही हैं। इन परम यशस्वी महात्मा पुरुषकी सुन्दर तथा ऊँची नासिका तिलके पुष्पके समान शुभ है और इनके दाँत पुष्पोंकी अधखिली कलियोंकी भाँति प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रकार यदि ये वे ही राजा हरिश्चन्द्र हैं, तो इस श्मशानपर वे कैसे आ गये?॥ ३३—३५½॥

अब पुत्र-शोकका त्याग करके वे रानी भूमिपर गिरे हुए अपने पतिको देखने लगीं। उस समय पति और पुत्र दोनोंके दुःखसे पीडित असहाय उन रानीके मनमें विस्मय और हर्ष—दोनों उत्पन्न हो उठे। राजाको देखती हुई वे सहसा मूर्च्छित होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ीं और धीरे-धीरे चेतनामें आनेपर गद्गद वाणीमें कहने लगीं—'अरे दयाहीन, मर्यादारहित तथा निन्दनीय दैव! तुम्हें धिक्कार है, जो कि तुमने देवतुल्य इन नरेशको चाण्डाल बना दिया। इनका राज्य नष्ट हो गया, इनके बन्धु-बान्धव इनसे अलग हो गये और इन्हें अपनी पत्नी तथा पुत्रतक

बेचने पड़े, ऐसी स्थितिमें पहुँचानेके बाद भी तुमने इन्हें चाण्डाल बना दिया॥ ३६—३९१/२॥

[हे राजन्!] आज मैं आपके छत्र, सिंहासन, चामर अथवा व्यजन—कुछ भी नहीं देख रही हूँ; विधाताकी यह कैसी विडम्बना है!॥ ४०१/२॥

पहले जिनके यात्रा करते समय राजालोग भी सेवाकार्यमें लग जाते थे और अपने उत्तरीय वस्त्रोंसे धूलयुक्त भूमिमार्गको स्वच्छ करते थे, वे ही ये महाराज इस समय दुःखसे व्यथित होकर अपवित्र श्मशानमें भटक रहे हैं; जहाँ सर्वत्र खोपड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं, फूटे हुए घड़े तथा फटे वस्त्र पड़े हैं, जो मृतकोंके शरीरसे उतारे गये सूत्र तथा उनमें लगे हुए केशसे अत्यन्त भयंकर लगता है, जहाँकी भूमि शुष्क चर्बियोंकी विशाल स्थिर राशिसे पटी पड़ी है, जो भस्म, अंगारों, अधजली हड्डियों और मज्जाओंके समूहसे अति भीषण दिखायी पड़ता है, जहाँ गीध और सियार सदा बोलते रहते हैं, जहाँ क्षुद्र जातिके हृष्ट-पुष्ट पक्षी मँडराते रहते हैं, जहाँकी सभी दिशाएँ चितासे निकले धुएँरूपी मेघसे अन्धकारयुक्त रहती हैं और जहाँपर शवोंके मांसको खाकर प्रसन्नतासे युक्त निशाचर दृष्टिगोचर हो रहे हैं॥ ४१—४५१/२॥

ऐसा कहकर दुःख तथा शोकसे सन्तप्त रानी शैव्या राजाके कण्ठसे लिपटकर कातर वाणीमें विलाप करने लगीं—हे राजन्! यह स्वप्न है अथवा सत्य, जिसे आप मान रहे हैं। हे महाभाग! यह आप स्पष्ट बतायें; क्योंकि मेरा मन व्याकुल हो रहा है। हे धर्मज्ञ! यदि ऐसा ही है तो धर्ममें, सत्यपालनमें, ब्राह्मण और देवता आदिके पूजनमें सहायता करनेकी शक्ति विद्यमान नहीं है। जब आप-जैसे धर्मपरायण पुरुषको अपने राज्यसे च्युत होना पड़ा तो फिर धर्म, सत्य, सरलता और अनृशंसता (अहिंसा)-का कोई महत्त्व ही नहीं रहा॥ ४६—४९१/२॥

सूतजी बोले—उनका यह वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड़कर रुँधे कण्ठसे उन कृश शरीरवाली शैव्यासे वह सब कुछ बताया, जिस प्रकार उन्हें चाण्डालत्व प्राप्त हुआ था। इसके बाद वह वृत्तान्त सुनकर रानी अत्यन्त दुःखित होकर बहुत देरतक रोती रहीं; फिर उष्ण श्वास छोड़कर उन्होंने भीरुतापूर्वक अपने पुत्रके मरणसम्बन्धी वृत्तान्तका यथावत् वर्णन राजासे कर दिया। वह वृत्तान्त सुनते ही राजा पृथ्वीपर गिर पड़े और फिर उठकर मृतपुत्रको बाहोंमें लेकर बार-बार जिह्वासे उसके मुखका स्पर्श करने लगे॥ ५०—५२१/२॥

तत्पश्चात् शैव्याने हरिश्चन्द्रसे गद्गद वाणीमें कहा—अब आप मेरा सिर काटकर अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन कीजिये, जिससे आपको स्वामिद्रोहका दोष न लगे और आप सत्यसे च्युत न हों। हे राजेन्द्र! आपकी वाणी असत्य नहीं होनी चाहिये और दूसरोंके प्रति द्रोह भी महान् पाप है॥ ५३-५४१/२॥

यह सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वे अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ५५१/२॥

राजा बोले—हे प्रिये! तुमने ऐसा अतिनिष्ठुर वचन कैसे कह दिया? जो बात कही नहीं जा सकती, उसे कार्यरूपमें कैसे परिणत किया जाय?॥ ५६१/२॥

पत्नीने कहा—हे प्रभो! मैंने भगवती गौरीकी उपासना की है और उसी प्रकार मैंने देवताओं तथा ब्राह्मणोंकी भी भलीभाँति पूजा की है। उनके आशीर्वादसे आप अगले जन्ममें भी मेरे पति होंगे॥ ५७१/२॥

रानीकी यह बात सुनकर राजा भूमिपर गिर पड़े और दुःखित होकर अपने मरे हुए पुत्रका मुख चूमने लगे॥ ५८१/२॥

राजा बोले—हे प्रिये! अब दीर्घ समयतक इस प्रकारका कष्ट भोगना मुझे अभीष्ट नहीं है। अब मैं अपने शरीरको स्वयं बचाये रखनेमें समर्थ नहीं हूँ। हे तन्वंगि! मेरी मन्दभाग्यताको तो देखो कि यदि मैं इस चाण्डालसे बिना आज्ञा लिये ही आगमें जल जाऊँ तो अगले जन्ममें मुझे फिर चाण्डालकी दासता करनी पड़ेगी और मैं घोर नरकमें पड़कर भयंकर यातना भोगूँगा। इतना ही नहीं, महारौरव नरकमें भी गिरकर अनेक प्रकारके संताप सहने पड़ेंगे, फिर भी दुःखरूपी सागरमें डूबे हुए मुझ अभागेका अब प्राण त्याग देना ही श्रेयस्कर है॥ ५९—६२॥

वंशकी वृद्धि करनेवाला मेरा जो यह एकमात्र पुत्र था, वह भी आज बलवान् दैवके प्रकोपसे मर गया। इस

प्रकारकी दुर्गतिको प्राप्त हुआ मैं पराधीन होनेके कारण प्राणोंका त्याग कैसे करूँ? फिर भी इस असीम दुःखसे ऊबकर अब मैं अपना शरीर त्याग ही दूँगा॥ ६३-६४॥

तीनों लोकोंमें, असिपत्रवनमें और वैतरणीनदीमें वैसा क्लेश नहीं है; जैसा पुत्रशोकमें है। अतः हे तन्वंगि! मैं पुत्र-देहके साथ प्रज्वलित अग्निमें स्वयं भी कूद पड़ूँगा, इसके लिये तुम मुझे क्षमा करना॥ ६५-६६॥

हे कमललोचने! पुनः कुछ भी मत कहना। हे तन्वंगि! सन्तप्त मनवाली तुम मेरी बात सुन लो। हे पवित्र मुसकानवाली प्रिये! अब तुम मेरी आज्ञाके अनुसार ब्राह्मणके घर जाओ। यदि मैंने दान किया है, हवन किया है और सेवा आदिसे गुरुजनोंको सन्तुष्ट किया है तो उसके फलस्वरूप परलोकमें तुम्हारे साथ और अपने इस पुत्रके साथ मेरा मिलन अवश्य होगा। इस लोकमें अभिलषित मिलन अब कहाँसे होगा?॥ ६७-६९॥

हे शुचिस्मिते! अब यहाँसे प्रस्थान करते हुए मेरेद्वारा एकान्तमें हँसीके रूपमें जो कुछ भी अनुचित वचन तुम्हें कहा गया हो, उन सबको तुम क्षमा कर देना। हे शुभे! 'मैं राजाकी पत्नी हूँ'—ऐसा सोचकर अभिमानपूर्वक तुम्हें मेरे उस ब्राह्मणकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि स्वामीको देवतुल्य समझकर पूर्ण प्रयत्नके साथ उन्हें सन्तुष्ट रखना चाहिये॥ ७०-७१॥

रानी बोली—हे राजर्षे! हे देव! अत्यधिक दुःखके भारको सहन करनेमें असमर्थ मैं भी इस आगमें कूद पड़ूँगी और आपके साथ ही चलूँगी। हे मानद! आपके साथ जानेमें मेरा परम कल्याण है, इसमें सन्देह नहीं है। आपके साथ रहकर मैं स्वर्ग और नरक—सबकुछ भोगूँगी। यह सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते! ऐसा ही हो॥ ७२-७३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्रोपाख्यानमें राजाका हुताशनप्रवेशोद्योगवर्णन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६॥

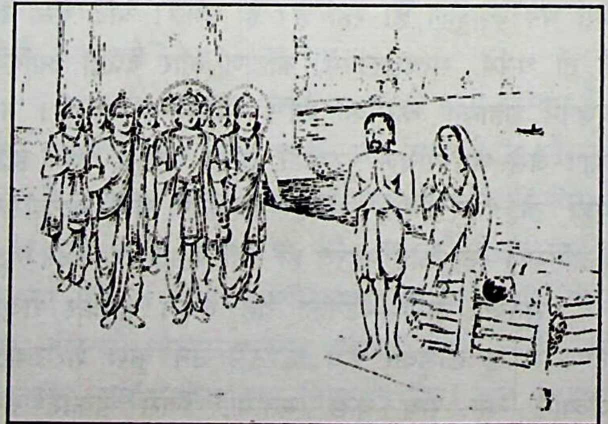
सत्ताईसवाँ अध्याय

चिता बनाकर राजाका रोहितको उसपर लिटाना और राजा-रानीका भगवतीका ध्यानकर स्वयं भी पुत्रकी चितामें जल जानेको उद्यत होना, ब्रह्माजीसहित समस्त देवताओंका राजाके पास आना, इन्द्रका अमृत-वर्षा करके रोहितको जीवित करना और राजा-रानीसे स्वर्ग चलनेके लिये आग्रह करना, राजाका सम्पूर्ण अयोध्यावासियोंके साथ स्वर्ग जानेका निश्चय

सूतजी बोले—तत्पश्चात् राजा हरिश्चन्द्रने चिता तैयार करके उसपर अपने पुत्रको लिटा दिया और भार्यासहित दोनों हाथ जोड़कर वे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) परमेश्वरी, जगत्‌की अधिष्ठात्री, पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली, पुच्छब्रह्मस्वरूपिणी, रक्तवर्णका वस्त्र धारण करनेवाली, करुणारसकी सागरस्वरूपा, अनेक प्रकारके आयुध धारण करनेवाली और जगत्‌की रक्षा करनेमें निरन्तर तत्पर जगदम्बाका ध्यान करने लगे॥ १—३॥

इस प्रकार ध्यानमग्न उन राजा हरिश्चन्द्रके समक्ष इन्द्रसहित सभी देवता धर्मको आगे करके तुरन्त उपस्थित हुए॥ ४॥

वहाँ आकर उन सबने कहा—हे राजन्! हे महाप्रभो!



सुनिये, [ब्रह्माने कहा—] मैं साक्षात् पितामह ब्रह्मा हूँ और ये स्वयं भगवान् धर्मदेव हैं; इसी प्रकार साध्यगण, विश्वेदेव, मरुद्गण, चारणोंसहित लोकपाल, नाग, सिद्ध,

गन्धर्वोंके साथ रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार, महर्षि विश्वामित्र तथा अन्य ये बहुतसे देवता भी यहाँ उपस्थित हैं। जो धर्मपूर्वक तीनों लोकोंके साथ मित्रता करनेकी इच्छा रखते हैं, वे विश्वामित्र सम्यक् प्रकारसे आपका अभीष्ट सिद्ध करनेकी अभिलाषा प्रकट कर रहे हैं॥ ५—७१/२॥

धर्म बोले—हे राजन्! आप ऐसा साहस मत कीजिये। आपमें जो सहनशीलता, इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखनेकी शक्ति तथा सत्त्व आदि गुण विद्यमान हैं; उनसे परम सन्तुष्ट होकर मैं साक्षात् धर्म आपके पास आया हूँ॥ ८॥

इन्द्र बोले—हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र आपके समक्ष उपस्थित हूँ। हे राजन्! आज स्त्री-पुत्रसहित आपने सनातन लोकोंपर विजय प्राप्त कर ली है। अत: अब आप अपनी भार्या तथा पुत्रको साथमें लेकर अपने श्रेष्ठ कर्मोंके द्वारा प्राप्त करनेयोग्य तथा अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ स्वर्गके लिये प्रस्थान कीजिये॥ ९-१०॥

सूतजी बोले—तत्पश्चात् इन्द्रने आकाशसे चिताके मध्यभागमें सोये हुए शिशु रोहितपर अपमृत्युका नाश करनेवाली अमृतमयी वृष्टि आरम्भ कर दी। उस समय पुष्पोंकी विपुल वर्षा तथा दुन्दुभियोंकी तेज ध्वनि होने लगी॥ ११-१२॥



महान् आत्मावाले उन राजा हरिश्चन्द्रके सुकुमार अंगोंवाले मृत पुत्र रोहित स्वस्थ, प्रसन्न तथा आनन्दचित्त हो गये। तब राजाने अपने पुत्रको हृदयसे लगा लिया। तत्पश्चात् पत्नीसहित वे राजा हरिश्चन्द्र दिव्य मालाओं तथा वस्त्रोंसे सहसा अलंकृत हो गये। उनके मनमें शान्ति छा गयी, उनके हृदय हर्षसे भर गये और वे परम आनन्दसे समन्वित हो गये। उस समय इन्द्रने राजासे कहा—हे महाभाग! अब आप स्त्री-पुत्रसहित स्वर्गलोकके लिये प्रस्थान कीजिये। आपने परम सद्‌गति प्राप्त की है, यह आपके अपने ही कर्मोंका फल है॥ १३—१६॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! अपने स्वामी चाण्डालसे बिना आज्ञा प्राप्त किये और बिना उनका प्रत्युपकार किये, मैं स्वर्गलोक नहीं जाऊँगा॥ १७॥

धर्म बोले—आपके भावी क्लेशके सम्बन्धमें विचार करके मैं ही अपनी मायाके प्रभावसे चाण्डाल बन गया था। आपको जो चाण्डालका घर दिखायी पड़ा था, वह भी मेरी माया ही थी॥ १८॥

इन्द्र बोले—हे हरिश्चन्द्र! पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य जिस श्रेष्ठ स्थानकी प्राप्तिहेतु कामना करते हैं, पुण्यात्मा पुरुषोंके उस पवित्र स्थानके लिये अब आप प्रस्थान कीजिये॥ १९॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे देवराज! आपको नमस्कार है। अब मेरी एक बात सुन लीजिये। अयोध्या नगरमें रहनेवाले सभी मानव मेरे शोकसे सन्तप्त मनवाले हैं, उन्हें यहाँ छोड़कर मैं स्वर्ग कैसे जाऊँगा? ब्रह्महत्या, सुरापान, गोवध और स्त्रीहत्या-जैसे महापातकोंके ही समान अपने भक्तोंका त्याग भी महान् पाप बताया गया है। श्रद्धालु भक्त त्याज्य नहीं होता है, उसे त्यागनेवालेको सुख भला कैसे मिल सकता है? अतएव हे इन्द्र! उन्हें छोड़कर मैं स्वर्ग नहीं जाऊँगा, अब आप स्वर्ग प्रस्थान करें। हे सुरेन्द्र! यदि मेरे साथ वे भी स्वर्ग चलें तो मैं स्वर्ग चल सकता हूँ। उनके साथ यदि नरकमें जाना हो तो मैं वहाँ भी चला जाऊँगा॥ २०—२३१/२॥

इन्द्र बोले—हे राजन्! उन अयोध्याके नागरिकोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके पुण्य और पाप हैं। हे भूप! समस्त जन-समूहके लिये स्वर्ग उपभोगका साधन हो जाय—ऐसी इच्छा आप क्यों प्रकट कर रहे हैं?॥ २४१/२॥

हरिश्चन्द्र बोले—हे इन्द्र! प्रजाके प्रभावसे ही राजा

राज्यका भोग करता है, यह सुनिश्चित है और उन्हींकी सहायतासे ही राजा बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा देवताओंकी उपासना करता है और पूर्तकर्म (कुएँ-तालाब आदिका निर्माण) करता है। मैंने भी उन्हींके बलपर यह सब कृत्य किया है। उनके द्वारा की गयी सहायताके कारण मैं स्वर्गके लोभसे उनका त्याग नहीं करूँगा। अत: हे देवेश! मैंने जो कुछ भी उत्तम कार्य किया हो; दान, यज्ञ और जप आदि किया हो, उसका फल हमें उन सभीके साथ प्राप्त हो; और मेरे उत्तम कर्मके फलस्वरूप बहुत समयतक भोग करनेका जो फल मिल रहा हो, वह भले ही एक दिनके लिये हो, उन नागरिकोंके साथ भोगनेके लिये मुझे आपकी कृपासे मिल जाय॥ २५—२८$^{१}/_{२}$ ॥

सूतजी बोले—त्रिलोकीके स्वामी इन्द्रने 'ऐसा ही होगा'—इस प्रकार कहा। इससे धर्म और गाधिपुत्र विश्वामित्रके मनमें प्रसन्नता छा गयी। तदनन्तर वे सभी लोग चारों वर्णोंके लोगोंसे भरी हुई अयोध्या नगरीमें पहुँचे। वहाँपर सुरपति इन्द्रने राजा हरिश्चन्द्रके सन्निकट आकर कहा—हे नागरिको! अब आप सभी लोग परम दुर्लभ स्वर्गलोक चलिये। धर्मके फलस्वरूप ही आप सभीको यह स्वर्ग सुलभ हुआ है॥ २९—३१$^{१}/_{२}$ ॥

तत्पश्चात् धर्मपरायण राजा हरिश्चन्द्रने उन सभी नगरवासियोंसे कहा कि आप सभी लोग मेरे साथ स्वर्गलोक प्रस्थान कीजिये॥ ३२$^{१}/_{२}$ ॥

सूतजी बोले—देवराज इन्द्र तथा राजा हरिश्चन्द्रका वचन सुनकर सभी नागरिक प्रफुल्लित हो उठे। जो नागरिक सांसारिकतासे विरक्त हो चुके थे, वे गृहस्थीका भार अपने पुत्रोंको सौंपकर प्रसन्न मनसे स्वर्ग जानेके लिये तैयार हो गये। वे सभी लोग उत्तम विमानोंपर चढ़ गये। उनके शरीरसे सूर्यके समान तेज निकलने लगा। उस समय वे परम आनन्दित हो गये। उदार चित्तवाले राजा हरिश्चन्द्र भी हृष्ट-पुष्ट नागरिकोंसे युक्त अयोध्या नामक रमणीक पुरीमें अपने रोहित नामसे प्रसिद्ध पुत्रका राज्याभिषेक करके अपने पुत्र तथा सुहृदोंका सम्मान-पूजन करके और पुण्यसे प्राप्त होनेवाली तथा देवता आदिके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ महान् कीर्तिको प्राप्त करके छोटी-छोटी घण्टियोंसे सुशोभित तथा इच्छाके अनुसार चलनेवाले विमानपर बैठ गये॥ ३३—३८ ॥

यह सब देखकर दैत्योंके आचार्य एवं सभी शास्त्रोंके अर्थों तथा तत्त्वोंको जाननेवाले महाभाग शुक्राचार्यने यह श्लोकरूपी मन्त्र उच्चारित किया—॥ ३९ ॥

शुक्राचार्य बोले—अहो, सहिष्णुताकी ऐसी महिमा और दानका इतना महान् फल कि राजा हरिश्चन्द्रने इन्द्रका लोक प्राप्त कर लिया॥ ४० ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार राजा हरिश्चन्द्रके सम्पूर्ण चरित्रका वर्णन मैंने आपलोगोंसे कर दिया। जो दु:खी प्राणी इस आख्यानका श्रवण करता है, वह सदा सुखी रहता है। इसका श्रवण करनेसे स्वर्गकी इच्छा रखनेवाला स्वर्ग प्राप्त कर लेता है, पुत्रकी अभिलाषा रखनेवाला पुत्र प्राप्त कर लेता है, पत्नीकी कामना करनेवाला पत्नी प्राप्त कर लेता है और राज्यकी वांछा रखनेवाला राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ४१-४२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हरिश्चन्द्राख्यानश्रवणफलवर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

दुर्गम दैत्यकी तपस्या; वर-प्राप्ति तथा अत्याचार, देवताओंका भगवतीकी प्रार्थना करना, भगवतीका शताक्षी और शाकम्भरीरूपमें प्राकट्य, दुर्गमका वध और देवगणोंद्वारा भगवतीकी स्तुति

जनमेजय बोले—हे मुने! भगवती शताक्षीके चरणोंके उपासक एवं धर्मपरायण राजर्षि हरिश्चन्द्रकी यह बड़ी अद्भुत कथा आपने कही। हे मुने! वे कल्याणमयी देवी भगवती किस प्रकारसे शताक्षी (सौ नेत्रोंवाली) हुईं? उसका कारण बताइये। मेरे जन्मको सार्थक कीजिये। कौन ऐसा विमल बुद्धिवाला मनुष्य होगा, जो भगवतीके गुणोंका श्रवण करके पूर्णरूपसे तृप्त हो जाय! इसे सुननेसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल मनुष्यको प्राप्त होता है॥ १—३ ॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! मैं शताक्षीकी मंगलकारिणी उत्पत्तिका वर्णन करता हूँ, आप सुनिये। आपसदृश

देवीभक्तके प्रति कोई भी बात मेरे लिये अवाच्य नहीं है॥ ४॥

प्राचीन कालकी बात है—दुर्गम नामक एक अत्यन्त भयंकर महादैत्य था। हिरण्याक्षके वंशमें उत्पन्न वह महान् दुष्ट दुर्गम रुरुका पुत्र था॥ ५॥

'देवताओंका बल वेद है। उस वेदके नष्ट हो जानेपर देवताओंका भी नाश हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। अतः पहले वही (वेदनाश) किया जाना चाहिये'—ऐसा सोचकर वह तप करनेके लिये हिमालयपर्वतपर चला गया। वहाँपर मनमें ब्रह्माजीका ध्यान करके उसने केवल वायु पीकर रहते हुए एक हजार वर्षतक कठोर तपस्या की। उसके तेजसे देव-दानवसहित समस्त प्राणी सन्तप्त हो उठे॥ ६—८॥

तब [उसके तपसे] प्रसन्न होकर विकसित कमलके समान सुन्दर मुखवाले चतुर्मुख भगवान् ब्रह्मा हंसपर आरूढ़ होकर उसे वर देनेके लिये वहाँ गये॥ ९॥

नेत्र मूँदकर समाधिकी स्थितिमें बैठे हुए उस दैत्यसे चार मुखवाले ब्रह्माजीने स्पष्ट वाणीमें कहा—'तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो भी इच्छा हो, उसे वरके रूपमें माँग लो। वरदाताओंका स्वामी मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न होकर इस समय उपस्थित हुआ हूँ'॥ १०१/२॥

ब्रह्माजीके मुखसे यह वाणी सुनकर वह दैत्य समाधिसे उठ खड़ा हुआ और उसने पूजा करके वर माँगते हुए कहा—हे सुरेश्वर! मुझे सभी वेद देनेकी कृपा कीजिये। साथ ही हे महेश्वर! तीनों लोकोंमें ब्राह्मणों और देवताओंके पास जो मन्त्र हों, वे सब मेरे पास आ जायँ और मुझे वह बल दीजिये, जिससे मेरे द्वारा देवताओंकी पराजय हो जाय॥ ११—१३॥

उसकी यह बात सुनकर चारों वेदोंके परम अधिष्ठाता ब्रह्माजी 'ऐसा ही हो'—यह वचन कहते हुए सत्यलोक चले गये॥ १४॥

उसी समयसे ब्राह्मणोंको समस्त वेद विस्मृत हो गये। स्नान, संध्या, नित्य होम, श्राद्ध, यज्ञ और जप आदिका लोप हो गया, जिससे भूमण्डलमें बड़ा हाहाकार मच गया। ब्राह्मण आपसमें कहने लगे—'यह क्या हो गया, यह क्या हो गया; अब इसके बाद वेदके अभावकी स्थितिमें हमलोगोंको क्या करना चाहिये?'॥ १५-१६१/२॥

इस प्रकार जगत्‌में अत्यन्त भयंकर तथा घोर अनर्थ उत्पन्न होनेपर हविभाग न मिलनेके कारण सभी देवता जरारहित होते हुए भी जराग्रस्त हो गये। तब उसने देवताओंकी नगरी अमरावतीको घेर लिया॥ १७-१८॥

देवतागण वज्रके समान शरीरवाले उस दैत्यके साथ युद्ध करनेमें असमर्थ हो गये। अतः भागकर वे देवता पर्वतकी कन्दराओं और सुमेरुपर्वतकी गुफाओंमें स्थान बनाकर परम शक्तिस्वरूपा पराम्बिकाका ध्यान करते हुए रहने लगे॥ १९-२०॥

हे राजन्! अग्निमें हवन आदि न होनेके कारण वर्षाका भी अभाव हो गया। वर्षाके अभावमें भूतल शुष्क तथा जलविहीन हो गया। कुएँ, बावलियाँ, तालाब और नदियाँ—ये सभी सूख गये। हे राजन्! यह अनावृष्टि सौ वर्षोंतक बनी रही, जिससे बहुत-सी प्रजाएँ और गाय-भैंस आदि पशु मर गये। इस प्रकार घर-घरमें मनुष्योंके शवके ढेर लग गये॥ २१—२३॥

इस प्रकार अनर्थके उपस्थित होनेपर शान्त चित्तवाले वे ब्राह्मण कल्याणस्वरूपिणी जगदम्बाकी आराधना करनेके विचारसे हिमालयपर्वतपर जाकर समाधि, ध्यान और पूजाके द्वारा भगवतीको निरन्तर प्रसन्न करने लगे। वे निराहार रहते हुए एकमात्र उन्हीं भगवतीमें चित्त लगाकर उनके शरणापन्न हो गये [और उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—]॥ २४-२५॥

हे महेश्वरि! हम असहाय जनोंपर दया कीजिये। हे अम्बिके! समस्त अपराधोंसे युक्त हमलोगोंपर कृपा न करना आपके लिये शोभनीय नहीं है। सभीके भीतर निवास करनेवाली हे देवेश्वरि! आप अपना कोप दूर कीजिये। आप प्राणीको जैसी प्रेरणा देती हैं, वैसा ही वह करता है। इस मानवकी अन्य गति है ही नहीं। हे महेश्वरि! आप बार-बार क्या देख रही हैं? आप जैसा चाहें, वैसा करनेमें पूर्ण समर्थ हैं। हे महेशानि! इस उत्पन्न हुए घोर संकटसे हमारा उद्धार कीजिये। हे अम्बिके! जीवनी शक्तिके अभावमें हमारी स्थिति कैसे रह सकती है? हे महेश्वरि!

आप प्रसन्न हो जाइये। हे जगदम्बिके! आप प्रसन्न हो जाइये। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डकी अधीश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है। कूटस्थरूपिणी देवीको नमस्कार है, चिद्रूपा देवीको बार-बार नमस्कार है, वेदान्तोंके द्वारा ज्ञात होनेवालीको नमस्कार है और अखिल भुवनकी स्वामिनीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण आगमशास्त्र 'नेति-नेति' इन वचनोंसे जिनका ज्ञान कराते हैं, हम सब प्रकारसे उन सर्वकारण-स्वरूपिणी भगवतीके शरणागत हैं॥ २६—३२॥

इस प्रकार ब्राह्मणोंके प्रार्थना करनेपर समस्त भुवनपर शासन करनेवाली भगवती भुवनेशी महेश्वरी पार्वतीने उन्हें अनन्त नेत्रोंसे युक्त अपना रूप दिखाया। उनका विग्रह काले कज्जलके सदृश था, नीलकमलके समान विशाल नेत्रोंसे सम्पन्न था और अत्यन्त कठोर, समान आकार-प्रकारवाले, उन्नत, गोल, स्थूल एवं सुडौल स्तनोंसे सुशोभित था। वे अपने हाथोंमें मुट्ठीभर बाण, विशाल धनुष, कमल, पुष्प-पल्लव, जड़ तथा फलोंसे सम्पन्न, अनन्त रससे युक्त तथा भूख-प्यास और बुढ़ापेको दूर करनेवाले शाक आदि धारण किये हुए थीं॥ ३३—३५½॥

सम्पूर्ण सुन्दरताके सारस्वरूप, कमनीयता-सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान और करुणारसके सागरस्वरूप उस विग्रहका दर्शन कराकर अनन्त नेत्रोंके साथ प्रकट वे जगद्धात्री भगवती समस्त लोकोंमें अपनी आँखोंसे सहस्रों जलधाराएँ गिराने लगीं। इस तरह उनके नेत्रोंसे निकले हुए जलसे नौ राततक महान् वृष्टि होती रही॥ ३६—३८॥

समस्त प्राणियोंको दुःखी देखकर भगवती अपने नेत्रोंसे आँसू गिराती रहीं, उससे वे सभी प्राणी और सभी औषधियाँ भी तृप्त हो गयीं। हे राजन्! उस वृष्टिके द्वारा सभी नदियाँ और समुद्र जलसे परिपूर्ण हो गये। पहले जो देवता छिपकर रह रहे थे, वे अब बाहर निकल आये। इसके बाद सभी देवता और ब्राह्मण एक साथ मिलकर देवीकी स्तुति करने लगे—॥ ३९-४०½॥

हे वेदान्तवेद्ये! आपको नमस्कार है। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। अपनी मायासे सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाली, भक्तोंके लिये देह धारण करनेवाली तथा कल्पवृक्षके समान उनके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! आपको बार-बार नमस्कार है। सदा सन्तुष्ट रहनेवाली और सभी उपमाओंसे रहित हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे देवि! हमारी शान्तिके लिये आपने सहस्र नेत्रोंसे सम्पन्न अनुपम रूप धारण किया है, अतः आप 'शताक्षी' नामसे विख्यात हों। हे जननि! भूखसे अत्यन्त पीडित होनेके कारण आपकी स्तुति करनेके लिये हमलोगोंमें सामर्थ्य नहीं है। हे महेशानि! हे अम्बिके! अब आप कृपा कीजिये और हमें वेदोंको प्राप्त कराइये॥ ४१—४४½॥

व्यासजी बोले—उनका यह वचन सुनकर कल्याण-कारिणी भगवतीने उन्हें खानेके लिये अपने हाथमें स्थित



शाक तथा स्वादिष्ट फल-मूल प्रदान किये। साथ ही नानाविध अन्न तथा पशुओंके खानेयोग्य पदार्थ और अनन्त काम्य रसोंसे सम्पन्न भोज्य पदार्थ उन्हें नवीन अन्नोत्पत्तितकके लिये प्रदान किये। हे नृप! उसी दिनसे शाकम्भरी—यह उनका एक और भी नाम पड़ गया॥ ४५—४७॥

इसके बाद जगत्‌में कोलाहल मच जाने तथा दूतके सब कुछ बता देनेपर वह दुर्गम नामक दैत्य युद्ध करनेके लिये अस्त्र-शस्त्र लेकर सेनाके साथ चल पड़ा। एक हजार अक्षौहिणी सेनासे युक्त उस दैत्यने शीघ्रतापूर्वक बाण छोड़ते हुए पहले देवीके आगे स्थित देवसेनाको अवरुद्ध कर दिया और उसी प्रकार उसने सभी ब्राह्मणोंको भी चारों ओरसे रोक दिया। इससे देवताओंकी मण्डलीमें चीख-पुकारकी ध्वनि होने लगी। सभी ब्राह्मण तथा देवता 'रक्षा करो, रक्षा करो'—इस प्रकारके शब्द बोलने लगे॥ ४८—५०½॥

तत्पश्चात् भगवती शिवाने देवताओंकी रक्षाके लिये उनके चारों ओर तेजयुक्त चक्र (मण्डल) बना दिया और स्वयं उससे बाहर आकर खड़ी हो गयीं॥ ५१½॥

तदनन्तर भगवती और दैत्य दुर्गम—इन दोनोंके मध्य युद्ध होने लगा। बाणोंकी वर्षासे अद्भुत सूर्यमण्डल आच्छादित हो गया। बाणोंके परस्पर घर्षणसे तीव्र प्रभावाली अग्नि निकलने लगती थीं। धनुषकी कठोर प्रत्यंचाके टंकारसे अपने प्रान्तभागतक दिशाएँ बहरी-सी हो जाती थीं॥ ५२-५३½॥

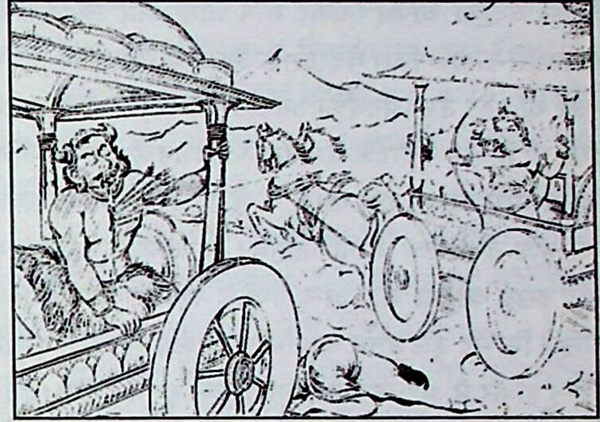
तत्पश्चात् देवीके शरीरसे अनेक उग्र शक्तियाँ प्रकट हुईं। उनमें कालिका, तारिणी, बाला, त्रिपुरा, भैरवी, रमा, बगला, मातंगी, त्रिपुरसुन्दरी, कामाक्षी, तुलजादेवी, जम्भिनी, मोहिनी, छिन्नमस्ता, गुह्यकाली तथा दस हजार हाथोंवाली देवी [ये सोलह], पुनः बत्तीस, इसके बाद चौंसठ और फिर अनन्त देवियाँ हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र धारण किये हुए प्रकट हुईं॥ ५४—५७॥

वह युद्धस्थल मृदंग, शंख, वीणा आदि वाद्योंसे गूँज उठा। उन शक्तियोंके द्वारा दैत्योंकी एक सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर दिये जानेपर देवशत्रु वह दैत्यसेनाध्यक्ष दुर्गम तुरन्त सामने आ खड़ा हुआ और शक्तियोंके साथ अद्भुत युद्ध करने लगा॥ ५८-५९॥

जहाँ वह घोर युद्ध हो रहा था, वहाँ रक्तकी धारा बहने लगी। दस दिनोंमें उस दैत्यकी वे सभी अक्षौहिणी सेनाएँ नष्ट हो गयीं॥ ६०॥

तदनन्तर अत्यन्त भयंकर ग्यारहवाँ दिन आनेपर वह दैत्य लाल रंगकी माला एवं वस्त्र धारण किये तथा शरीरमें लाल चन्दन लगाये महान् उत्सव मनाकर युद्धके लिये रथपर आरूढ़ हुआ। बड़े उत्साहके साथ सभी शक्तियोंको जीतकर वह दैत्य महादेवीके रथके सामने अपना रथ ले गया॥ ६१-६२½॥

अब देवी और दुर्गम दैत्य—इन दोनोंमें भीषण युद्ध होने लगा। हृदयको त्रास पहुँचानेवाला वह युद्ध दो प्रहरतक होता रहा। इसके बाद भगवतीने पाँच भीषण बाण छोड़े, जिनमें चार बाणोंसे उसके चार घोड़ों और एक बाणसे सारथिको मार डाला। पुनः जगदम्बाने दो बाणोंसे उसके दोनों नेत्रोंको वेध दिया, दो बाणोंसे उसकी दोनों भुजाएँ एवं एक बाणसे उसकी ध्वजा काट डाली और पाँच बाणोंसे उसके वक्षःस्थलका भेदन कर दिया॥ ६३—६५½॥



तदनन्तर वह दैत्य रुधिरका वमन करता हुआ भगवती परमेश्वरीके सामने मृत्युको प्राप्त हो गया और उसके शरीरसे तेज निकलकर देवीके विग्रहमें प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार उस महापराक्रमी दैत्यका संहार हो जानेपर तीनों लोकोंमें शान्ति व्याप्त हो गयी॥ ६६-६७॥

इसके बाद ब्रह्मा आदि सभी देवता भगवान् विष्णु और शिवको आगे करके भक्तिपूर्वक गद्गद वाणीमें जगदम्बाकी स्तुति करने लगे॥ ६८॥

देवता बोले—भ्रान्ति तथा अविद्याजन्य मोहसे युक्त इस जगत्की एकमात्र कारण हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे शिवे! हे शाकम्भरि! हे शतलोचने! आपको नमस्कार है। समस्त उपनिषदोंका उद्घोष करनेवाली तथा दुर्गम नामक दैत्यका संहार करनेवाली हे मायेश्वरि! पंचकोशके भीतर सदा विराजमान रहनेवाली हे शिवे! आपको नमस्कार है। मुनीश्वर विशुद्ध मनसे जिनका ध्यान करते हैं, उन प्रणवके अर्थरूप विग्रहवाली भगवती भुवनेश्वरीका हम आश्रय ग्रहण करते हैं। अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका प्रादुर्भाव करनेवाली, ब्रह्मा-विष्णु आदिको उत्पन्न करनेवाली तथा दिव्य विग्रहवाली भगवतीके समक्ष हमलोग सम्पूर्ण भावसे नतमस्तक हैं। दयामयी परमेश्वरी माता शताक्षीके अतिरिक्त ऐसा कौन सर्वेश्वर है, जो दीन-दुःखी प्राणियोंको देखकर रुदन कर सकता है?॥ ६९—७३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] ब्रह्मा, विष्णु आदि

श्रेष्ठ देवताओंके इस प्रकार स्तवन तथा विविध द्रव्योंसे पूजन करनेपर भगवती उसी क्षण सन्तुष्ट हो गयीं॥ ७४॥

कोयलके समान मधुर स्वरवाली उन भगवतीने दुर्गम दैत्यसे वेदोंको वापस लाकर सौंप दिया और विशेषरूपसे ब्राह्मणोंसे कहा—जिस वेदराशिके अभावमें यह अनर्थ उत्पन्न हुआ था और उस अनर्थको आपलोगोंने अभी-अभी प्रत्यक्ष देखा भी है, वह वेदराशि मेरा उत्कृष्ट विग्रह है; आपलोगोंको विशेषरूपसे इसकी रक्षा करनी चाहिये। आपलोगोंको सर्वदा मेरी पूजा तथा सेवा करनी चाहिये। आपलोगोंके कल्याणके लिये इससे बढ़कर कोई अन्य उपदेश नहीं है। आपलोगोंको चाहिये कि मेरे इस उत्तम माहात्म्यका सर्वदा पाठ करें, उससे प्रसन्न होकर मैं आपलोगोंके समस्त कष्ट दूर कर दूँगी। दुर्गम असुरका संहार करनेके कारण दुर्गा तथा शताक्षी—मेरे इन नामोंका जो प्राणी उच्चारण करता है, वह मायाका भेदन करके मेरे लोकको प्राप्त होता है। अब अधिक कहनेकी क्या आवश्यकता। हे देवगण! मैं वस्तुतः साररूपमें यही कहती हूँ कि सभी देवताओं तथा दैत्योंको सर्वदा मेरी उपासना करनी चाहिये॥ ७५—८०॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] सच्चिदानन्दस्वरूपिणी जगदम्बा ऐसा कहकर देवताओंको आनन्दित करती हुई उनके देखते-देखते अन्तर्धान हो गयीं। यह सब मैंने आपको बता दिया। सबका कल्याण करनेवाले इस अति महान् रहस्यको प्रयत्नपूर्वक गोपनीय रखना चाहिये, जो मनुष्य भक्तिपरायण होकर इस अध्यायका नित्य श्रवण करता है, वह सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है और देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८१—८३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'शताक्षीचरित्रवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २८॥

उनतीसवाँ अध्याय

व्यासजीका राजा जनमेजयसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उनसे उन्हींकी आराधना करनेको कहना, भगवान् शंकर और विष्णुके अभिमानको देखकर गौरी तथा लक्ष्मीका अन्तर्धान होना और शिव तथा विष्णुका शक्तिहीन होना

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार मैंने यत्किंचित् सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी राजाओंके उत्तम चरित्रका वर्णन किया। हे राजन्! पराशक्ति भगवतीकी कृपासे उन राजाओंने महती प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। आप यह निश्चितरूपसे जान लीजिये कि उन पराशक्तिकी कृपासे सब कुछ सिद्ध हो जाता है। जो-जो विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त, कान्तियुक्त तथा शक्तियुक्त पदार्थ हैं; उन सबको आप उन्हीं परम शक्तिमयी भगवतीके अंशसे ही उत्पन्न समझिये॥ १—३॥

हे नृप! ये तथा अन्य बहुतसे पराशक्तिके उपासक राजागण संसाररूपी वृक्षकी जड़ काटनेके लिये कुठारके समान हो चुके हैं। अतएव जिस प्रकार धान्य चाहनेवाला व्यक्ति पुआल छोड़ देता है, उसी प्रकार अन्य व्यवसायोंका पूर्णरूपसे त्याग कर देना चाहिये और सम्पूर्ण प्रयत्नके साथ भुवनेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये॥ ४—५॥

हे नृप! वेदरूपी क्षीरसागरका मन्थन करके मैंने भगवती पराशक्तिके चरण-कमलरूपी रत्नको प्राप्त किया है, उससे मैं कृतार्थ हो गया हूँ॥ ६॥

पंचब्रह्मके आसनपर कोई अन्य देवता स्थित नहीं है अर्थात् इन पंचदेवोंके अतिरिक्त उनका अतिक्रमण करके उनके अधिष्ठाताके रूपमें अपना प्रभाव स्थापित करनेमें कोई अन्य देवता समर्थ नहीं है, अतः ब्रह्मके रूपमें मान्यताप्राप्त उन पंचब्रह्मको भगवतीने अपना आसन बना लिया अर्थात् उन पंचदेवोंकी अधिष्ठात्री शक्तिके रूपमें वे अधिष्ठित हुईं। इन पाँचोंसे परेकी वस्तुको वेदमें 'अव्यक्त' कहा गया है। जिस अव्यक्तमें यह सम्पूर्ण जगत् ओत-प्रोत है, वह श्रीभुवनेश्वरी ही हैं। हे राजेन्द्र! उन भगवतीके स्वरूपको जाने बिना मनुष्य मुक्त नहीं हो सकता॥ ७-८$^{1}/_{2}$॥

जब मनुष्य आकाशको चर्मसे आच्छादित कर लेंगे

तब शिवाको न जानकर भी दु:खका अन्त होगा अर्थात् जैसे चर्मसे आकाशका ढकना सम्भव नहीं है, वैसे ही शिवातत्त्वके ज्ञानके बिना दु:खका अन्त होना सम्भव नहीं है। अत: श्वेताश्वतरशाखाध्यायी मनीषियोंने श्रुतिमें ऐसा कहा है कि उन महापुरुषोंने अपने गुणोंसे व्यक्त न होनेवाली दिव्यशक्तिसम्पन्न भगवती जगदम्बाका दर्शन ध्यानयोगद्वारा प्राप्त किया था॥ ९—११॥

अत: जन्म सफल करनेके निमित्त सभी आसक्तियोंका परित्याग करके तथा अपने मनको हृदयमें रोककर लज्जा, भय अथवा प्रेममय भक्तिके साथ किसी भी तरहसे सम्यक् प्रयत्न करके उन भगवतीमें पूर्ण निष्ठा तथा तत्परता रखनी चाहिये—ऐसा वेदान्तका स्पष्ट उद्घोष है। जो मनुष्य जिस किसी भी बहाने सोते, बैठते अथवा चलते समय भगवतीका निरन्तर कीर्तन करता है, वह [सांसारिक] बन्धनसे निश्चितरूपसे छूट जाता है॥ १२-१३$^{१}/_{२}$॥

अत: हे राजन्! आप विराट् रूपवाली, सूक्ष्म रूपवाली तथा अन्तर्यामिस्वरूपिणी महेश्वरीकी उपासना कीजिये। इस प्रकार आप पहले सोपान-क्रमसे उपासना करके पुन: अन्त:करण शुद्ध हो जानेपर सांसारिक प्रपंच तथा उल्लासरहित सच्चिदानन्द, लक्ष्यार्थरूपिणी तथा ब्रह्मरूपिणी उन पराशक्ति भगवतीकी आराधना कीजिये। उन भगवतीमें चित्तको जो लीन कर देना है, वही उनका आराधन कहा गया है॥ १४—१६$^{१}/_{२}$॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने सूर्य और चन्द्र-वंशमें उत्पन्न, पराशक्तिके उपासक, धर्मपरायण तथा मनस्वी राजाओंके कीर्ति, धर्म, बुद्धि, उत्तम गति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले पावन चरित्रका वर्णन कर दिया, अब आप दूसरा कौन-सा प्रसंग सुनना चाहते हैं?॥ १७-१८$^{१}/_{२}$॥

जनमेजय बोले—हे मुने! पूर्वमें मणिद्वीपनिवासिनी पराम्बा भगवतीने गौरी, लक्ष्मी और सरस्वतीको उत्पन्न कर उन्हें क्रमश: शिव, विष्णु तथा पद्मयोनि ब्रह्माको सौंप दिया था। साथ ही यह भी सुना गया है कि गौरी हिमालय तथा दक्षप्रजापतिकी कन्या हैं और महालक्ष्मी क्षीरसमुद्रकी कन्या हैं—ऐसा कहा गया है। मूलप्रकृति भगवतीसे उत्पन्न ये देवियाँ दूसरोंकी कन्याएँ कैसे हुईं? महामुने! यह असम्भव-सी बात प्रतीत होती है, इसमें मुझे सन्देह है। अत: सन्देहोंका छेदन करनेमें पूर्ण तत्पर आप मेरे उस संशयको अपने ज्ञानरूपी खड्गसे काट दीजिये॥ १९—२२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, मैं आपको परम अद्भुत रहस्य बतलाता हूँ। आप-सदृश देवीभक्तके लिये भगवतीका कोई भी रहस्य छिपानेयोग्य नहीं है॥ २३॥

जब पराम्बिकाने तीनों देवियाँ उन तीनों देवताओंको सौंप दीं, उसी समयसे उन देवताओंने सृष्टिके कार्य आरम्भ कर दिये॥ २४॥

हे राजन्! एक समयकी बात है कि हालाहल नामवाले अनेक महापराक्रमी दैत्य उत्पन्न हुए और उन्होंने क्षणभरमें तीनों लोकोंको जीत लिया॥ २५॥

ब्रह्माजीके वरदानसे अभिमानमें चूर उन दैत्योंने अपनी सेनाओंके साथ कैलास और वैकुण्ठको घेर लिया॥ २६॥

तब भगवान् शंकर और विष्णु उनके साथ युद्धके लिये तत्पर हो गये और साठ हजार वर्षोंतक उनके बीच अत्यन्त भीषण युद्ध होता रहा। देवता और दानव—दोनों सेनाओंमें महान् हाहाकार मच गया। तब अन्तमें उन दोनोंने बड़े प्रयत्नके साथ उन दैत्योंको मार डाला॥ २७-२८॥

हे राजन्! तत्पश्चात् वे शंकर तथा विष्णु अपने-अपने लोकको जाकर अपनी शक्तियों (गौरी तथा लक्ष्मी)-के समक्ष, जिनके बल-प्रभावसे वे उन दैत्योंको मार सके थे, अपने बलका अभिमान करने लगे॥ २९॥

उन दोनोंका यह अभिमान देखकर महालक्ष्मी तथा गौरी छद्मपूर्ण हास करने लगीं। तब उन दोनों देवियोंकी हँसी देखकर आदिमायाके प्रभावसे विमोहित वे दोनों देवता अत्यन्त कुपित हो उठे और अवहेलनापूर्वक अनुचित उत्तर देने लगे॥ ३०-३१॥

तदनन्तर वे दोनों देवियाँ उसी क्षण उन दोनों (शंकर तथा विष्णु)-से पृथक् होकर अन्तर्धान हो गयीं, इससे हाहाकार मच गया॥ ३२॥

उन दोनों शक्तियोंके अपमानके कारण उस समय विष्णु तथा शंकर निस्तेज, शक्तिहीन, विक्षिप्त तथा चेतनारहित हो गये॥ ३३॥

इसपर ब्रह्माजी चिन्तासे अधीर हो गये और सोचने लगे कि यह क्या हो गया? देवताओंमें प्रधान वे विष्णु

तथा शिव अपना-अपना कार्य करनेमें असमर्थ क्यों हो गये? यह संकट अचानक किस कारणसे उपस्थित हो गया? क्या इस निरपराध जगत्का प्रलय हो जायगा? मैं इसका कारण नहीं जान पा रहा हूँ, तो फिर इस स्थितिमें इसका प्रतीकार कैसे किया जाय॥ ३४-३५१/२॥

इसी महान् चिन्तामें निमग्न ब्रह्माजीने नेत्र बन्द करके ध्यान लगाया और तब उन्होंने जाना कि पराशक्तिके प्रकोपसे ही यह सब घटित हुआ है। हे नृपश्रेष्ठ! यह जानते ही ब्रह्माजी सावधान हो गये। इसके अनन्तर विष्णु तथा शंकरका जो कार्य था, उसे तपोनिधि ब्रह्माजी अपनी शक्तिके प्रभावसे कुछ समयतक स्वयं करते रहे॥ ३६—३८॥

तदनन्तर धर्मात्मा ब्रह्माजीने उन विष्णु तथा शंकरके कल्याणार्थ अपने मनु आदि तथा सनक आदि पुत्रोंका शीघ्र आह्वान किया। तपोनिधि ब्रह्माजीने अपने समक्ष सिर झुकाये हुए उन कुमारोंसे कहा—मैं संसारके भारसे युक्त हूँ। अतः कार्यमें अत्यधिक आसक्त रहनेके कारण मैं इस समय पराशक्ति जगदम्बाको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करनेमें समर्थ नहीं हूँ। उन पराशक्तिके प्रकोपके कारण विष्णु तथा शिव विक्षिप्त हो गये हैं, अतः आपलोग परम भक्तिसे युक्त होकर अद्भुत तप करके उन पराशक्ति जगदम्बाको प्रसन्न कीजिये॥ ३९—४२॥

हे मेरे पुत्रो! जिस भी प्रकारसे शिव तथा विष्णु पूर्वकी भाँति हो जायँ और अपनी शक्तियोंसे सम्पन्न हो सकें, आपलोग वैसा प्रयत्न कीजिये; इससे आपलोगोंका यश ही बढ़ेगा। जिस कुलमें उन दोनों शक्तियोंका जन्म होगा, वह कुल सम्पूर्ण जगत्को पवित्र कर देगा और स्वयं कृतार्थ हो जायगा॥ ४३-४४॥

व्यासजी बोले—पितामह ब्रह्माकी बात सुनकर विशुद्ध अन्तःकरणवाले उनके दक्ष आदि सभी पुत्र भगवती जगदम्बाकी आराधना करनेकी इच्छासे वनमें चले गये॥ ४५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'भगवतीकी समाराधनाके इच्छुक देवताओंद्वारा तप करनेका वर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा तथा उनके नाम एवं उनका माहात्म्य

व्यासजी बोले—हे राजन्! तत्पश्चात् वे वन-प्रदेशमें हिमालयकी तलहटीमें स्थित रहकर समाहितचित्त हो मायाबीज (भुवनेश्वरीमन्त्र)-के जपमें तत्पर रहते हुए घोर तप करने लगे॥ १॥

हे राजन्! एक लाख वर्षपर्यन्त उन पराशक्तिका ध्यान करते रहनेके उपरान्त देवी उनके ऊपर प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उस समय उन्होंने अपने चारों हाथोंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्रा धारण कर रखी थे, वे तीन नेत्रोंसे युक्त थीं, वे करुणारससे परिपूर्ण थीं और उनका विग्रह सत्, चित् तथा आनन्दसे सम्पन्न था॥ २-३॥

उन सर्वजननीको देखकर विशुद्ध चित्तवाले वे मुनिगण उनकी स्तुति करने लगे—विश्वरूप तथा वैश्वानररूपवाली आपको नमस्कार है। जिसमें समग्र लिंगदेह ओत-प्रोत होकर व्यवस्थित है, उस सूत्ररूप विग्रहवाली तथा तेजसम्पन्न रूपवाली आपको बार-बार नमस्कार है। प्राज्ञस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, अव्यक्तस्वरूपवाली आपको नमस्कार है, प्रत्यक्स्वरूप आपको नमस्कार है और परब्रह्मका स्वरूप धारण करनेवाली आपको नमस्कार है। समस्त रूपोंवाली आपको नमस्कार है तथा सभी प्राणियोंमें आत्ममूर्तिके रूपमें लक्षित होनेवाली आपको नमस्कार है॥ ४—६१/२॥

इस प्रकार भक्तियुक्त गद्गद वाणीसे उन जगद्धात्रीकी स्तुति करके निर्मल मनवाले दक्ष आदि मुनियोंने भगवतीके चरण-कमलमें प्रणाम किया। तब कोयलके समान मधुर वचन बोलनेवाली उन देवीने प्रसन्न होकर कहा—हे महान् भाग्यशाली मुनियो! आपलोग वर माँगिये, मैं सदा वर

प्रदान करनेवाली मानी जाती हूँ॥ ७-८$^{१}/_{२}$॥

हे नृपश्रेष्ठ! उनकी वाणी सुनकर मुनियोंने यह वरदान माँगा कि शंकर तथा विष्णुका शरीर स्वस्थ हो जाय और उन्हें पुनः वही पूर्व शक्तियाँ प्राप्त हो जायँ॥ ९$^{१}/_{२}$॥

इसके बाद दक्षने कहा—हे देवि! हे अम्ब! मेरे कुलमें आपका जन्म हो, जिससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। हे परमेश्वरि! आप अपने मुखसे अपने जप, ध्यान, पूजा तथा विविध स्थानोंके विषयमें बतानेकी कृपा कीजिये॥ १०-११$^{१}/_{२}$॥

देवी बोलीं—मेरी शक्तियोंका अपमान करनेसे ही उन दोनों (विष्णु तथा शिव)-की यह दशा हुई है। उन्हें मेरे प्रति ऐसा अपराध कभी नहीं करना चाहिये। अब मेरी लेशमात्र कृपासे ही उन दोनोंके शरीरमें स्वस्थता आ जायगी। साथ ही गौरी और लक्ष्मी नामक वे दोनों शक्तियाँ आपके घरमें तथा क्षीरसागरमें जन्म लेंगी और मेरेद्वारा प्रेरित किये जानेपर वे शक्तियाँ उन दोनोंको प्राप्त हो जायँगी॥ १२—१४॥

मुझे सदा प्रसन्न करनेवाला 'मायाबीज' ही मेरा प्रधान मन्त्र है। मेरे विराट् रूपका अथवा आपके समक्ष उपस्थित इस रूपका अथवा सच्चिदानन्द रूपका ध्यान करना चाहिये। सम्पूर्ण जगत् ही मेरा निवास-स्थान है। आपलोगोंको सर्वदा मेरा पूजन तथा ध्यान करना चाहिये॥ १५-१६॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली भगवती जगदम्बा अन्तर्धान हो गयीं। तब दक्ष आदि सभी मुनिगण ब्रह्माजीके पास लौट आये और उन्होंने ब्रह्माजीसे आदरपूर्वक सारा वृत्तान्त कह दिया॥ १७$^{१}/_{२}$॥

हे राजन्! तब पराम्बाकी कृपासे वे दोनों विष्णु तथा शिव स्वस्थ हो गये, उनमें अपने-अपने कार्य-सम्पादनकी क्षमता आ गयी और वे अभिमानरहित भी हो गये॥ १८$^{१}/_{२}$॥

हे महाराज! कुछ समय व्यतीत होनेपर दक्षके भवनमें शक्तिसम्पन्न एक महान् तेज प्रकट हुआ। उस समय तीनों लोकोंमें उत्सव मनाया गया। सभी देवतागण प्रसन्न होकर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे और वे स्वर्गमें हाथोंसे आघात करके दुन्दुभियाँ बजाने लगे। हे नृप! निर्मल मनवाले साधुपुरुषोंके मन प्रसन्न हो गये, नदियाँ मार्गोंमें जलधारा बहाने लगीं और भगवान् सूर्य मनोहर प्रभासे युक्त हो गये। इस प्रकार मंगलमयी भगवतीके प्रकट होनेपर सभी स्थानोंपर मंगल ही मंगल हो गया॥ १९—२२॥

दक्षने सत्यस्वरूप होने तथा ब्रह्मस्वरूपिणी होनेके कारण उस देवीका नाम 'सती' रखा और उन्हें पुनः शिवको समर्पित कर दिया; क्योंकि वे पूर्वमें भी उन्हीं शिवकी शक्ति थीं। हे राजन्! वे ही सती पुनः दक्षके यज्ञमें दैवयोगसे अग्निमें जलकर भस्म हो गयीं॥ २३$^{१}/_{२}$॥

जनमेजय बोले—हे मुने! आपने यह तो बड़ा ही अनर्थकारी प्रसंग सुनाया। इस प्रकारकी महान् विभूति वे सती, जिनके नामके स्मरणमात्रसे मनुष्योंको संसाररूप अग्निका भय नहीं रहता, अग्निमें जलकर भस्म क्यों हो गयीं? दक्षके किस प्रतिकूल कर्मके कारण वे सती भस्म हो गयीं?॥ २४-२५$^{१}/_{२}$॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सतीके भस्म होनेका कारणसम्बन्धी प्राचीन वृत्तान्त सुनिये। किसी समय ऋषि दुर्वासा [जम्बूनदके तटपर स्थित] भगवती जाम्बूनदेश्वरीके समीप गये। उन्होंने वहाँ देवीका दर्शन किया और वहींपर वे मायाबीज मन्त्रका जप करने लगे॥ २६-२७॥

उससे प्रसन्न होकर देवेश्वरीने दिव्य पुष्पोंके परागसे परिपूर्ण होनेके कारण उसपर मँडराते हुए भ्रमरोंसे सुशोभित अपने गलेमें पड़ी हुई माला मुनिको दे दी और उन्होंने सिर झुकाकर प्रसादरूपमें प्राप्त उस मालाको स्वीकार कर लिया॥ २८$^{१}/_{२}$॥

तदनन्तर वहाँसे तत्काल निकलकर वे तपस्वी मुनि दुर्वासा जगदम्बाके दर्शनार्थ आकाशमार्गसे वहाँ आ गये, जहाँ साक्षात् सतीके पिता दक्ष विराजमान थे। मुनिने सतीके चरणोंमें नमन किया॥ २९-३०॥

दक्षने उन मुनिसे पूछा—हे नाथ! यह अलौकिक माला किसकी है? पृथ्वीपर मनुष्योंके लिये परम दुर्लभ यह माला आपने कैसे प्राप्त कर ली?॥ ३१॥

उनका यह वचन सुनकर प्रेमसे विह्वलहृदय तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाले मुनि दुर्वासाने कहा—यह भगवतीका अनुपम प्रसाद है॥ ३२॥

तब सतीके पिता दक्षने उन मुनिसे उस मालाके लिये याचना की। 'तीनों लोकोंमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो देवीभक्तको न दी जा सके'—ऐसा विचार करके मुनिने वह माला दक्षको दे दी। दक्षने सिर झुकाकर उस मालाको ग्रहण कर लिया और उसे अपने घरमें, जहाँपर पति-पत्नीकी अत्यन्त सुन्दर शय्या थी, वहीं पर रख दिया। उस मालाकी सुगन्धिसे मत्त होकर राजा दक्ष रातमें पशुकर्म (स्त्री-समागम)-में प्रवृत्त हुए। हे राजन्! उसी पाप-कर्मके प्रभावसे वे कल्याणकारी शंकर तथा देवी सतीके प्रति द्वेषबुद्धिवाले हो गये॥ ३३—३६॥

हे राजन्! उसी अपराधके परिणामस्वरूप सतीने सतीधर्म प्रदर्शित करनेके लिये उन दक्षसे उत्पन्न अपने शरीर को योगाग्निसे भस्म कर दिया। फिर वही ज्योति हिमालयके घर प्रादुर्भूत हुई॥ ३७॥

जनमेजय बोले—[हे मुने!] जिन शिवके लिये सती प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थीं, उन भगवान् शिवने सतीका शरीर भस्म हो जानेके उपरान्त उनके वियोगसे व्याकुल होकर क्या किया?॥ ३८१/२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! उसके बाद जो कुछ हुआ, उसे कह सकनेमें मैं असमर्थ हूँ। शिवकी कोपाग्निसे तीनों लोकोंमें प्रलयकी स्थिति उत्पन्न हो गयी। उस समय वीरभद्र प्रकट हुए और जब वे वीरभद्र, भद्रकाली आदि गणोंको साथ लेकर तीनों लोकोंको नष्ट करनेके लिये तत्पर हुए, तब ब्रह्मा आदि देवता भगवान् शंकरकी शरणमें गये॥ ३९—४१॥

सर्वस्व-नाश हो जानेपर भी करुणानिधि परमेश्वर शिवने उन देवताओंको अभय प्रदान कर दिया और बकरेका सिर जोड़कर उन दक्षप्रजापतिको जीवित कर दिया। तदनन्तर वे महात्मा शिव उदास होकर यज्ञस्थलपर गये और अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगे॥ ४२-४३॥

उन्होंने वहाँ चिन्मय शरीरवाली सतीको अग्निमें दग्ध होते हुए देखा। तब 'हा सती'—ऐसा बार-बार बोलते हुए शिवने उस शरीरको अपने कन्धेपर रख लिया और भ्रमितचित्त होकर वे देश-देशमें भ्रमण करने लगे॥ ४४१/२॥

इससे ब्रह्मा आदि देवता अत्यन्त चिन्तित हो उठे। विष्णुने शीघ्रतापूर्वक धनुष उठाकर बाणोंसे सतीके अंगोंको काट डाला। वे अंग जिन-जिन स्थानोंपर गिरे, उन-उन स्थानोंपर भगवान् शंकर अनेक विग्रह धारण करके प्रकट हो गये॥ ४५-४६१/२॥

तत्पश्चात् शिवने देवताओंसे कहा कि जो लोग इन स्थानोंपर महान् श्रद्धाके साथ भगवती शिवाकी आराधना करेंगे, उनके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रहेगा; क्योंकि उन स्थानोंपर साक्षात् भगवती पराम्बा अपने अंगोंमें सदा निहित हैं। जो मनुष्य इन स्थानोंपर पुरश्चरण करेंगे; उनके मन्त्र, विशेषरूपसे मायाबीज मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जायँगे॥ ४७—४९॥

हे नृपश्रेष्ठ! ऐसा कहकर सतीके विरहसे अधीर भगवान् शिव उन स्थानोंमें जप, ध्यान और समाधिमें संलग्न होकर समय व्यतीत करने लगे॥ ५०॥

जनमेजय बोले—हे अनघ! वे कौनसे स्थान हैं, जो सिद्धपीठ हुए; वे संख्यामें कितने हैं, उनके क्या नाम हैं? मुझे बताइये। हे कृपाकर! हे महामुने! उन स्थानोंपर विराजमान देवियोंके नाम भी शीघ्र बतला दीजिये, जिससे मैं कृतार्थ हो जाऊँ॥ ५१-५२॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीपीठोंका वर्णन कर रहा हूँ, जिनके श्रवणमात्रसे मनुष्य पापरहित हो जाता है। सिद्धिकी अभिलाषा रखनेवाले तथा ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले पुरुषोंके द्वारा जिन-जिन स्थानोंपर इन देवीकी उपासना तथा इनका ध्यान किया जाना चाहिये, उन स्थानोंको मैं तत्त्वपूर्वक बता रहा हूँ॥ ५३-५४॥

वाराणसीमें गौरीके मुखमें निवास करनेवाली देवी विशालाक्षी प्रतिष्ठित हैं और नैमिषारण्यक्षेत्रमें वे लिंगधारिणी नामसे कही गयी हैं॥ ५५॥

उन्हें प्रयागमें 'ललिता' तथा गन्धमादनपर्वतपर 'कामुकी' नामसे कहा गया है। वे दक्षिण मानसरोवरमें 'कुमुदा' तथा उत्तर मानसरोवरमें सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली भगवती 'विश्वकामा' कही गयी हैं। उन्हें गोमन्तपर देवी 'गोमती', मन्दराचलपर 'कामचारिणी', चैत्ररथमें 'मदोत्कटा', हस्तिनापुरमें 'जयन्ती', कान्यकुब्जमें 'गौरी' तथा मलयाचलपर 'रम्भा' कहा गया है॥ ५६—५८॥

वे भगवती एकाम्रपीठपर 'कीर्तिमती' नामवाली

कही गयी हैं। लोग उन्हें विश्वपीठपर 'विश्वेश्वरी' और पुष्करमें 'पुरुहूता' नामवाली कहते हैं॥ ५९॥

वे देवी केदारपीठमें 'सन्मार्गदायिनी', हिमवत्पृष्ठपर 'मन्दा', गोकर्णमें 'भद्रकर्णिका', स्थानेश्वरमें 'भवानी', बिल्वकमें 'बिल्वपत्रिका', श्रीशैलमें 'माधवी' तथा भद्रेश्वरमें 'भद्रा' कही गयी हैं॥ ६०-६१॥

उन्हें वराहपर्वतपर 'जया', कमलालयमें 'कमला', रुद्रकोटिमें 'रुद्राणी', कालंजरमें 'काली', शालग्राममें 'महादेवी', शिवलिंगमें 'जलप्रिया', महालिङ्गमें 'कपिला' और माकोटमें 'मुकुटेश्वरी' कहा गया है॥ ६२-६३॥

वे भगवती मायापुरीमें 'कुमारी', सन्तानपीठमें 'ललिताम्बिका', गयामें 'मंगला' और पुरुषोत्तमक्षेत्रमें 'विमला' कही गयी हैं। वे सहस्राक्षमें 'उत्पलाक्षी', हिरण्याक्षमें 'महोत्पला', विपाशामें 'अमोघाक्षी', पुण्ड्रवर्धनमें 'पाडला', सुपार्श्वमें 'नारायणी', त्रिकूटमें 'रुद्रसुन्दरी', विपुलक्षेत्रमें 'विपुला', मलयाचलपर देवी 'कल्याणी', सह्याद्रिपर्वतपर 'एकवीरा', हरिश्चन्द्रमें 'चन्द्रिका', रामतीर्थमें 'रमणा', यमुनामें 'मृगावती', कोटतीर्थमें 'कोटवी', माधववनमें 'सुगन्धा', गोदावरीमें 'त्रिसन्ध्या', गंगाद्वारमें 'रतिप्रिया', शिवकुण्डमें 'शुभानन्दा', देविकातटपर 'नन्दिनी', द्वारकामें 'रुक्मिणी', वृन्दावनमें 'राधा', मथुरामें 'देवकी', पातालमें 'परमेश्वरी', चित्रकूटमें 'सीता', विन्ध्याचलपर 'विन्ध्यवासिनी', करवीरक्षेत्रमें 'महालक्ष्मी', विनायकक्षेत्रमें देवी 'उमा', वैद्यनाथधाममें 'आरोग्या', महाकालमें 'महेश्वरी', उष्णतीर्थोंमें 'अभया', विन्ध्यपर्वतपर 'नितम्बा', माण्डव्यक्षेत्रमें 'माण्डवी' तथा माहेश्वरीपुरमें 'स्वाहा' नामसे प्रतिष्ठित हैं॥ ६४—७२॥

वे देवी छगलण्डमें 'प्रचण्डा', अमरकण्टकमें 'चण्डिका', सोमेश्वरमें 'वरारोहा', प्रभासक्षेत्रमें 'पुष्करावती', सरस्वतीतीर्थमें 'देवमाता', समुद्रतटपर 'पारावारा', महालयमें 'महाभागा' और पयोष्णीमें 'पिंगलेश्वरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं॥ ७३-७४॥

वे कृतशौचक्षेत्रमें 'सिंहिका', कार्तिकक्षेत्रमें 'अतिशांकरी', उत्पलावर्तकमें 'लोला', सोनभद्रनदके संगमपर 'सुभद्रा', सिद्धवनमें माता 'लक्ष्मी', भरताश्रमतीर्थमें 'अनंगा', जालन्धर-पर्वतपर 'विश्वमुखी', किष्किन्धापर्वतपर 'तारा', देवदारुवनमें 'पुष्टि', काश्मीरमण्डलमें 'मेधा', हिमाद्रिपर देवी 'भीमा', विश्वेश्वरक्षेत्रमें 'तुष्टि', कपालमोचनतीर्थमें 'शुद्धि', कामावरोहणतीर्थमें 'माता', शंखोद्धारतीर्थमें 'धारा' और पिण्डारकतीर्थमें 'धृति' नामसे विख्यात हैं।॥ ७५—७८॥

चन्द्रभागानदीके तटपर 'कला', अच्छोदक्षेत्रमें 'शिवधारिणी', वेणानदीके किनारे 'अमृता', बदरीवनमें 'उर्वशी', उत्तरकुरुप्रदेशमें 'औषधि', कुशद्वीपमें 'कुशोदका', हेमकूटपर्वतपर 'मन्मथा', कुमुदवनमें 'सत्यवादिनी', अश्वत्थतीर्थमें 'वन्दनीया', वैश्रवणालयक्षेत्रमें 'निधि', वेदवदनतीर्थमें 'गायत्री', भगवान् शिवके सांनिध्यमें 'पार्वती', देवलोकमें 'इन्द्राणी', ब्रह्माके मुखोंमें 'सरस्वती', सूर्यके बिम्बमें 'प्रभा' तथा मातृकाओंमें 'वैष्णवी' नामसे कही गयी हैं। सतियोंमें 'अरुन्धती', अप्सराओंमें 'तिलोत्तमा' और सभी शरीरधारियोंके चित्तमें 'ब्रह्मकला' नामसे वे शक्ति प्रसिद्ध हैं॥ ७९—८३॥

हे जनमेजय! ये एक सौ आठ सिद्धपीठ हैं और उन स्थानोंपर उतनी ही परमेश्वरी देवियाँ कही गयी हैं। भगवती सतीके अंगोंसे सम्बन्धित पीठोंको मैंने बतला दिया; साथ ही इस पृथ्वीतलपर और भी अन्य जो प्रमुख स्थान हैं, प्रसंगवश उनका भी वर्णन कर दिया॥ ८४-८५॥

जो मनुष्य इन एक सौ आठ उत्तम नामोंका स्मरण अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवतीके परम धाममें पहुँच जाता है॥ ८६॥

विधानके अनुसार इन सभी तीर्थोंकी यात्रा करनी चाहिये और वहाँ श्राद्ध आदि सम्पन्न करके पितरोंको सन्तृप्त करना चाहिये। तदनन्तर विधिपूर्वक भगवतीकी विशिष्ट पूजा करनी चाहिये और फिर जगद्धात्री जगदम्बासे [अपने अपराधके लिये] बार-बार क्षमा-याचना करनी चाहिये। हे जनमेजय! ऐसा करके अपने आपको कृतकृत्य समझना चाहिये। हे राजन्! तदनन्तर भक्ष्य और भोज्य आदि पदार्थ सभी ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारिकाओं तथा बटुओं आदिको खिलाने चाहिये॥ ८७-८९१/२

हे प्रभो! उस क्षेत्रमें रहनेवाले जो चाण्डाल आदि हैं, वे भी देवीरूप कहे गये हैं। अतः उन सबकी भी पूजा करनी चाहिये। उन सिद्धपीठक्षेत्रोंमें सभी प्रकारके दानग्रहण आदिका निषेध करना चाहिये। श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि

वह उन क्षेत्रोंमें यथाशक्ति मन्त्रका पुरश्चरण करे और मायाबीज मन्त्रसे उन-उन क्षेत्रोंकी अधिष्ठात्री देवेश्वरीकी निरन्तर उपासना करे। हे राजन्! इस प्रकार साधकको पुरश्चरणकर्ममें तत्पर रहना चाहिये। देवीकी भक्तिमें परायण पुरुषको चाहिये कि वह अनुष्ठान करते समय द्रव्यके व्ययमें कृपणता न करे॥ ९०—९३॥

जो मनुष्य इस प्रकार श्रीदेवीके सिद्धपीठोंकी प्रसन्न मनसे यात्रा करता है, उसके पितर हजार कल्पोंतक महत्तर ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं और अन्तमें वह भी परम ज्ञान प्राप्त करके संसार-सागरसे मुक्त हो जाता है तथा देवीलोकमें निवास करता है॥ ९४-९५॥

इन एक सौ आठ नामोंके जपसे अनेक लोग सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। जहाँपर यह अष्टोत्तरशतनाम स्वयं लिखा हुआ अथवा पुस्तकमें अंकित रूपमें स्थित रहता है, उस स्थानपर ग्रहों तथा महामारी आदिके उपद्रवका भय नहीं रहता और पर्वपर जैसे समुद्र बढ़ता है, वैसे ही वहाँ सौभाग्यकी नित्य वृद्धि होती है॥ ९६-९७॥

इन एक सौ आठ नामोंका जप करनेवालेके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता; ऐसा वह देवीभक्तिपरायण निश्चय ही कृतकृत्य हो जाता है। देवता भी उसे नमस्कार करते हैं; क्योंकि उसे देवीका ही रूप कहा गया है। देवतागण सब तरहसे उसकी पूजा करते हैं, तो फिर श्रेष्ठ मनुष्योंकी बात ही क्या!॥ ९८-९९॥

जो व्यक्ति अपने पितरोंके श्राद्धके समय इस उत्तम अष्टोत्तरशतनामका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम गति प्राप्त करते हैं॥ १००॥

हे राजेन्द्र! ये सिद्धपीठ प्रत्यक्षज्ञानस्वरूप तथा मुक्तिक्षेत्र हैं, अतः बुद्धिमान् मनुष्यको इनका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १०१॥

हे राजन्! आपने भगवती महेश्वरीके अत्यन्त निगूढ रहस्यके विषयमें जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने बता दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीपीठवर्णन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

तारकासुरसे पीड़ित देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति तथा भगवतीका हिमालयकी पुत्रीके रूपमें प्रकट होनेका आश्वासन देना

जनमेजय बोले—[हे मुने!] हिमालयके शिखरपर आविर्भूत जिस परम ज्योतिके विषयमें आप पहले बता चुके हैं, उसे मुझे विस्तारसे बताइये॥ १॥

ऐसा कौन बुद्धिमान् मनुष्य होगा, जो भगवतीके कथामृतका पान करता हुआ उससे विरत हो जाय; क्योंकि अमृत पीनेवालोंकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथामृतका पान करनेवालेकी मृत्यु नहीं हो सकती॥ २॥

व्यासजी बोले—आप धन्य हैं, कृतकृत्य हैं, भाग्यवान् हैं और महात्माओंद्वारा शिक्षित किये गये हैं; इसीसे भगवतीके प्रति आपकी निश्छल भक्ति है॥ ३॥

हे राजन्! एक प्राचीन कथा सुनिये। अग्निमें सतीदेहके दग्ध हो जानेपर भगवान् शिव व्याकुल होकर इधर-उधर भ्रमण करने लगे और अन्तमें किसी स्थानपर ठहर गये। इसके बाद उन आत्मनिष्ठ शिवने प्रपंचज्ञानसे शून्य होकर मनको समाधिस्थ करके भगवतीके स्वरूपका ध्यान करते हुए कुछ समय वहींपर व्यतीत किया॥ ४-५॥

स्थावर-जंगममय तीनों लोक सौभाग्यसे रहित हो गये। समुद्रों, द्वीपों और पर्वतोंसहित सम्पूर्ण जगत् शक्तिहीन हो गया। सभी प्राणियोंके हृदयमें प्रवहमान आनन्द सूख गया और सभी लोग चिन्तासे पीड़ित मनवाले तथा खिन्नमनस्क हो गये। सभी दुःखरूपी समुद्रमें डूब गये और रोगग्रस्त हो गये। हे राजन्! सतीके अभावसे उस समय ग्रहों, देवताओं, अधिभूत तथा अधिदैवत—इन सबका व्यवहार विपरीत हो गया और समस्त प्राणी अपनी

मर्यादासे विचलित हो गये ॥ ६—८१/२ ॥

उसी समय तारक नामक एक महान् असुर उत्पन्न हुआ। वह दैत्य ब्रह्माजीसे वरदान पाकर तीनों लोकोंका शासक हो गया। भगवान् शंकरका जो औरस पुत्र होगा, वही तुम्हारा संहारक होगा—देवाधिदेव ब्रह्माद्वारा इस प्रकारकी कल्पित मृत्युका वर पाकर वह महासुर तारक शंकरजीके औरस पुत्रके अभावके कारण [निर्भीक होकर] गर्जन तथा निनाद करने लगा ॥ ९—११ ॥

इससे सभी देवता अपना-अपना स्थान छोड़कर भाग गये। शिवका कोई औरस पुत्र न होनेके कारण देवताओंको महान् चिन्ता हुई। वे सोचने लगे कि शंकरजीकी भार्या तो है नहीं, तो पुत्रोत्पत्ति कैसे होगी? ऐसी स्थितिमें हम भाग्यहीनोंका कार्य किस प्रकार सिद्ध होगा? ॥ १२-१३ ॥

इस प्रकारकी चिन्तासे व्याकुल सभी देवता वैकुण्ठलोक गये और उन्होंने एकान्तमें भगवान् विष्णुसे सब कुछ बताया। इसपर उन्होंने उपाय बताते हुए कहा—



आप सब चिन्तासे व्यग्र क्यों हो रहे हैं? वे भगवती शिवा कामनाएँ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षके समान हैं। मणिद्वीपमें विराजमान रहनेवाली भगवती भुवनेश्वरी सदा जागती रहती हैं ॥ १४-१५ ॥

हमलोगोंके दोषके कारण ही हमारे प्रति उनकी उपेक्षा है, कोई अन्य कारण नहीं है। हमें सीख प्रदान करनेके लिये ही जगदम्बाने हमें यह शिक्षा प्रदान की है ॥ १६ ॥

जिस प्रकार प्यार करने अथवा डाँटने-फटकारने—किसी भी स्थितिमें माता बालकके प्रति निर्दयताका व्यवहार नहीं करती, वैसे ही गुण-दोषपर नियन्त्रण करनेवाली जगदम्बाके विषयमें भी जानना चाहिये ॥ १७ ॥

पुत्रसे तो पग-पगपर अपराध होता है, माताको छोड़कर जगत्‌में दूसरा कौन उसे सह सकता है। अतः आपलोग निष्कपट चित्तवृत्तिके साथ उन भगवती पराम्बाकी शरणमें अविलम्ब जाइये। वे आपलोगोंका कार्य अवश्य सिद्ध करेंगी ॥ १८-१९ ॥

सभी देवताओंको यह उपदेश देकर देवेश्वर महाविष्णु अपनी भार्या लक्ष्मी तथा देवताओंके साथ शीघ्र चल पड़े और महाद्रि गिरिराज हिमालयपर आ गये। वहाँ सभी देवता पुरश्चरण कर्ममें संलग्न हो गये। हे राजन्! अम्बायज्ञकी विधि जाननेवाले देवतागण अम्बायज्ञ करने लगे। सभी देवता शीघ्रतापूर्वक तृतीया आदि व्रत सम्पादित करनेमें लग गये ॥ २०—२२ ॥

कुछ लोग समाधि लगाकर बैठ गये, कुछ लोग भगवतीके नामजपमें लीन हो गये, कुछ लोग सूक्तपाठ करने लगे और कुछ लोग नामोंका पारायण करनेमें निष्णात हो गये। इसी प्रकार कुछ देवता मन्त्रपारायणमें तत्पर हो गये, कुछ कृच्छ्रव्रत करने लगे, कुछ अन्तर्याग करनेमें संलग्न हो गये और कुछ देवता न्यास आदिमें तत्पर हो गये। कुछ देवता सावधान होकर हृल्लेखाबीज-मन्त्रसे पराशक्ति जगदम्बाकी पूजा करने लगे। हे जनमेजय! इस प्रकार बहुत वर्षोंतक भगवतीकी आराधना करते हुए समय व्यतीत हुआ ॥ २३—२५ ॥

तदनन्तर चैत्रमासकी शुक्लपक्षकी नवमी तिथिमें शुक्रवारको श्रुतियोंद्वारा प्रतिपादित एक महान् ज्योति अकस्मात् सबके समक्ष प्रकट हुई। चारों वेद मूर्तिमान् होकर चारों दिशाओंमें उसकी स्तुति कर रहे थे, वह ज्योति करोड़ों सूर्योंकी प्रभाके समान आलोकित थी, उसमें करोड़ों चन्द्रमाओंकी शीतलता विद्यमान थी, वह करोड़ों बिजलियोंके समान अरुण आभासे युक्त थी, वह परम ज्योति न ऊँची, न तिरछी, न मध्यमें अपितु सभी ओर व्याप्त थी। आदि और अन्तसे हीन वह तेज हाथ आदि अंगोंसे युक्त नहीं था। वह तेज न स्त्रीरूप, न पुरुषरूप अथवा न उभयरूपमें ही था ॥ २६—२९ ॥

हे राजन्! उस ज्योतिकी दीप्तिसे उन देवताओंकी आँखें बन्द हो गयीं। इसके बाद धैर्य धारणकर जब देवताओंने देखा तब वह दिव्य तथा मनोहर आभा उन्हें नव-यौवनसे सम्पन्न अति सुन्दर अंगोंवाली तथा कुमारी अवस्थावाली स्त्रीके रूपमें दृष्टिगोचर हुई॥ ३०-३१॥



उनके उन्नत तथा विशाल दोनों वक्षःस्थल पूर्ण विकसित कमलको भी तिरस्कृत कर रहे थे। वे बजती हुई किंकिणी तथा मधुर ध्वनि करती हुई नूपुर एवं करधनी धारण किये हुए थीं। वे सुवर्णके बाजूबन्द, मुकुट तथा कण्ठहारसे सुशोभित थीं। वे बहुमूल्य मणियोंसे जड़ा हुआ हार गलेमें धारण किये हुए थीं। केतकीके नूतन पत्तोंके समान उनके कपोलोंपर काले भ्रमरसदृश केश लटक रहे थे। उनका नितम्बस्थल अत्यन्त मनोहर था। वे सुन्दर रोमावलियोंसे अत्यन्त शोभा पा रही थीं। उनका मुख कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ोंसे युक्त ताम्बूलसे परिपूर्ण था। उनके कमलसदृश मुखपर सुवर्णमय कुण्डलकी मधुर ध्वनि हो रही थी। उनका ललाट अष्टमीके चन्द्रमण्डलकी आभाके समान सुशोभित हो रहा था और उसपर उनकी फैली हुई विशाल भौंहें महान् शोभा पा रही थीं। उनके नेत्र लाल कमलके समान थे, नासिका उन्नत थी तथा ओष्ठ मधुर थे॥ ३२—३६॥

वे भगवती कुन्दकी पूर्ण विकसित कलियोंके समान सुन्दर दाँतोंसे सुशोभित थीं। वे मोतियोंकी माला धारण किये हुए थीं। वे रत्नजटित मुकुट पहने हुई थीं। वे चन्द्ररेखारूपी शिरोभूषणसे सुशोभित हो रही थीं; उनके केशकी वेणीमें मल्लिका और मालती पुष्पोंकी माला विद्यमान थी। केसरकी बिन्दीसे उनका ललाट सुशोभित था। वे तीन नेत्रोंसे शोभा पा रही थीं। तीन नेत्रोंवाली वे अपनी चारों भुजाओंमें पाश, अंकुश, वर और अभय मुद्राएँ धारण किये हुए थीं। वे लाल रंगका वस्त्र पहने हुए थीं। उनके शरीरकी प्रभा दाडिमके पुष्पके समान थी। वे श्रृंगारके सभी वेषोंसे अलंकृत थीं और समस्त देवताओंसे नमस्कृत हो रही थीं। इस प्रकार देवताओंने सभी प्राणियोंकी आशाओंको पूर्ण करनेवाली, सभीकी जननी, सबको मोहित करनेवाली, प्रसन्नतायुक्त सुन्दर मुखमण्डलवाली, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखकमलवाली और विशुद्ध करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा माता जगदम्बाको अपने सामने देखा॥ ३७—४१॥

उन करुणामूर्ति भगवतीको देखकर देवताओंने आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। आनन्दाश्रुसे रुँधे हुए कण्ठवाले सभी देवता कुछ भी नहीं बोल सके॥ ४२॥

किसी प्रकार धैर्य धारणकर प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले वे देवगण शीश झुकाकर भक्तिपूर्वक जगदम्बिकाकी स्तुति करने लगे॥ ४३॥

देवताओंने कहा—देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको निरन्तर नमस्कार है, प्रकृति एवं भद्राको नमस्कार है; हमलोग नियमपूर्वक उन्हें प्रणाम करते हैं॥ ४४॥

उन अग्निसदृश वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमयी, कर्मफलोंकी प्राप्तिहेतु सेवन की जानेवाली भगवती दुर्गाकी शरण हम ग्रहण करते हैं। पार करनेयोग्य संसार-सागरसे तरनेके लिये उन भगवतीको नमस्कार है॥ ४५॥

विश्वरूप देवताओंने जिस वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसीको अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वे कामधेनुतुल्य, आनन्ददायिनी और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप पधारें॥ ४६॥

हम सब देवतागण कालरात्रिस्वरूपिणी, वेदोंद्वारा स्तुत, विष्णुकी शक्तिस्वरूपा, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति, दक्षपुत्री सती तथा पावन भगवती शिवाको नमस्कार करते हैं॥ ४७॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्ति-

स्वरूपिणीका ध्यान करते हैं। वे भगवती हमें इस ज्ञान-ध्यानमें प्रवृत्त करें॥ ४८॥

विराट्रूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, सूक्ष्म-रूप धारण करनेवालीको नमस्कार है, अव्यक्तरूप धारण करनेवालीको नमस्कार है और श्रीब्रह्ममूर्तिस्वरूपिणी देवीको नमस्कार है॥ ४९॥

जिन भगवतीको न जाननेके कारण यह जगत् मनुष्यको रस्सीमें सर्प, माला आदिकी भाँति प्रतीत होता है और जिसे जान लेनेपर यह भ्रान्ति नष्ट हो जाती है, उन जगदीश्वरीको हम नमस्कार करते हैं॥ ५०॥

'तत्' पदकी लक्ष्यार्थ, एकमात्र चिन्मय स्वरूपवाली, अखण्डानन्दस्वरूपिणी तथा वेदोंके तात्पर्यकी भूमिकास्वरूपिणी उन भगवतीको हम नमन करते हैं॥ ५१॥

पंचकोशसे अतिरिक्त, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी, **'त्वम्'** पदकी लक्ष्यार्थ तथा प्रत्यगात्मस्वरूपिणी उन जगदम्बाको हम नमस्कार करते हैं॥ ५२॥

प्रणवरूपवाली भगवतीको नमस्कार है। ह्रींकारविग्रहवाली भगवतीको नमस्कार है। अनेक मन्त्रोंके स्वरूपवाली आप करुणामयी देवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर मणिद्वीपमें निवास करनेवाली तथा मत्त कोयलके समान ध्वनि करनेवाली भगवती मधुर वाणीमें कहने लगीं॥ ५४॥

देवी बोलीं—आप सभी देवतागण अपना वह कार्य बताइये, जिसके लिये आप सब यहाँ एकत्रित हुए हैं। सर्वदा वर प्रदान करनेवाली मैं भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेहेतु कल्पवृक्ष हूँ॥ ५५॥

मेरे रहते भक्तिपरायण आप सब देवताओंको कौन-सी चिन्ता है? मैं इस दुःखमय संसार-सागरसे अपने भक्तोंका उद्धार कर देती हूँ। हे श्रेष्ठ देवतागण! आपलोग मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य समझिये॥ ५६$^1/_2$॥

हे राजन्! भगवतीकी यह स्नेहमयी वाणी सुनकर देवताओंके मनमें अत्यन्त प्रसन्नता हुई और वे निर्भय होकर उनसे अपना दुःख कहने लगे॥ ५७$^1/_2$॥

देवता बोले—हे परमेश्वरि! इस त्रिलोकीमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो सब कुछ जाननेवाली तथा सबकी साक्षिस्वरूपा आप भगवतीके लिये अज्ञात हो॥ ५८$^1/_2$॥

हे शिवे! असुरराज तारक हमलोगोंको दिन-रात पीड़ित कर रहा है। ब्रह्माजीने शिवजीके औरसपुत्रके द्वारा उसका वध सुनिश्चित किया है। हे महेश्वरि! आप तो जानती ही हैं कि शिवकी कोई भार्या नहीं है। हम अल्पबुद्धि प्राणी सब कुछ जाननेवाली आपसे क्या कहें, [आप देह धारणकर अवतरित हों] इसी प्रयोजनसे हमलोगोंने आपसे निवेदन किया है। हे अम्बिके! दूसरी बात भी ध्यानमें रखें। आपके चरणकमलमें हमलोगोंकी अविचल भक्ति सर्वदा बनी रहे। देहकी रक्षाके निमित्त यह हमारा दूसरा मुख्य निवेदन है॥ ५९—६२॥

उनकी यह बात सुनकर भगवती परमेश्वरीने कहा—**'गौरी'** नामक मेरी जो शक्ति है, वह हिमालयके घर आविर्भूत होगी। आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये कि वह शिवको प्रदान कर दी जाय, वही गौरी आपलोगोंका कार्य सिद्ध करेगी। मेरे चरणकमलमें आपलोगोंकी भक्ति सदा आदरपूर्वक बनी रहे। हिमालय भी अत्यन्त भक्तिके साथ मनोयोगसे मेरी उपासना कर रहे हैं; अतः उनके घर जन्म



लेना मैंने प्रियकर माना है॥ ६३—६५॥

व्यासजी बोले—[वहाँ देवताओंके साथ विद्यमान] हिमालयने भी देवीकी वह अति कृपापूर्ण वाणी सुनकर आँसुओंसे रुँधे कंठ तथा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे महाराज्ञी भगवतीसे यह वचन कहा—आप जिसपर कृपा करना चाहती हैं, उसे अति महान् बना देती हैं अन्यथा कहाँ जड़ तथा स्थाणु मैं और कहाँ सच्चित्स्वरूपिणी आप॥ ६६-६७॥

हे अनघे! सैकड़ों जन्मोंमें अश्वमेध आदि यज्ञों तथा

समाधिसे प्राप्त होनेवाले पुण्योंसे भी आपका पिता बन पाना असम्भव है। अब जगत्में मेरी कीर्ति फैल जायगी। लोग कहेंगे—अहो! इस हिमालयकी पुत्रीके रूपमें स्वयं जगज्जननी उत्पन्न हुई हैं, ये बड़े धन्य तथा भाग्यशाली हैं॥ ६८-६९॥

जिनके उदरमें करोड़ों ब्रह्माण्ड स्थित हैं, वे ही जगदम्बा जिसकी कन्या होकर जन्म लें, उसके समान इस पृथ्वीपर कौन हो सकता है?॥ ७०॥

जिनके वंशमें मेरे-जैसा [भाग्यशाली] उत्पन्न हुआ है, मेरे ऐसे उन पूर्वजोंके निवासके लिये कैसा श्रेष्ठ स्थान निर्मित हुआ होगा—यह मैं नहीं जानता॥ ७१॥

जिस प्रकार आपने स्नेहपूर्ण कृपा करके मुझे गौरीका पिता होनेका अवसर प्रदान किया, उसी प्रकार अब आप सम्पूर्ण वेदान्तके सिद्धान्तभूत अपने स्वरूपको मुझे बताइये॥ ७२॥

हे परमेश्वरि! वेदसम्मत ज्ञान, भक्ति तथा योगका मुझे उपदेश करें, जिससे मैं आपके स्वरूपको प्राप्त हो जाऊँ॥ ७३॥

व्यासजी बोले—उनकी यह बात सुनकर प्रसन्नतासे प्रफुल्लित मुखकमलवाली उन भगवतीने श्रुतियोंमें निहित रहस्यका वर्णन करना आरम्भ किया॥ ७४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'हिमालयके घरमें पार्वतीके जन्मके विषयमें देवताओंके प्रति देवीके कथनका वर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

देवीगीताके प्रसंगमें भगवतीका हिमालयसे माया तथा अपने स्वरूपका वर्णन

देवी बोलीं—सभी देवता मेरे द्वारा कहे जानेवाले वचनको सुनें, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य मेरे स्वरूपको प्राप्त हो जाता है॥ १॥

हे पर्वतराज! पूर्वमें केवल मैं ही थी और कुछ भी नहीं था। उस समय मेरा रूप चित्, संवित् (ज्ञानस्वरूप) और परब्रह्म नामवाला था। उसके सम्बन्धमें कोई तर्क नहीं किया जा सकता, इदमित्थं रूपसे उसका निर्देश नहीं किया जा सकता, उसकी कोई उपमा नहीं है तथा वह विकाररहित है॥ २$^{1}/_{2}$॥

भगवतीकी कोई स्वतःसिद्ध शक्ति है, जो माया नामसे प्रसिद्ध है। वह शक्ति न सत् है, न असत् है और दोनोंमें विरोध होनेके कारण वह सत्-असत्—उभयरूप भी नहीं है। सत्-असत् इन दोनोंसे विलक्षण वह माया कोई अन्य ही वस्तु है॥ ३-४॥

जैसे अग्निमें उसकी उष्णता सदा रहती है, सूर्यमें प्रकाशकी किरण रहती है और चन्द्रमामें उसकी चन्द्रिका विद्यमान रहती है, उसी प्रकार यह माया निश्चितरूपसे सदा मेरी सहचरी है॥ ५॥

जैसे सुषुप्ति-अवस्थामें व्यवहार समाप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रलयकालमें समस्त जीव, काल तथा जीवोंके कर्म उन्हीं भगवतीमें अभेदरूपसे विलीन हो जाते हैं॥ ६॥

मैं अपनी उसी शक्तिके समायोगसे बीजरूपको प्राप्त हुई अर्थात् मुझमें सृष्टिके कर्तृत्वका उदय हुआ। उस मायाके अपने आधाररूपी आवरणके कारण मुझमें उसका कुछ दोष आ गया अर्थात् चैतन्यादिका तिरोधान हो गया॥ ७॥

चैतन्यके सम्बन्धसे मुझे संसारका निमित्तकारण कहा जाता है और मेरा परिणामरूप यह सृष्टिप्रपंच मुझसे ही उत्पन्न होता है तथा मुझमें ही विलीन होता है, अतः मुझे समवायिकारण कहा जाता है॥ ८॥

कुछ लोग उस शक्तिको तप, कुछ लोग तम तथा दूसरे लोग उसे जड—ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार कुछ लोग उसे ज्ञान, माया, प्रधान, प्रकृति, शक्ति तथा अजा कहते हैं और शैवशास्त्रके मनीषी उसे विमर्श भी कहते हैं। वेदतत्त्वार्थको जाननेवाले अन्य पुरुष उसे अविद्या कहते हैं। इस प्रकार वेद आदिमें उस शक्तिके नानाविध नाम प्रतिपादित हैं॥ ९-१०$^{1}/_{2}$॥

केवल दिखायी देनेके कारण वह जड है और ज्ञानप्राप्तिसे नष्ट होनेके कारण वह असत् है। चैतन्य दिखायी नहीं पड़ता और जो दिखायी पड़ता है, वह जड ही है। चैतन्य स्वयं

प्रकाशस्वरूप है, वह दूसरेसे प्रकाशित नहीं होता। वह अपने द्वारा भी प्रकाशित नहीं है; क्योंकि इससे अनवस्थाका दोष आ जायगा। कर्मत्व और कर्तृत्व—ये दोनों विरुद्ध धर्म एक अधिकरणमें नहीं रह सकते, अतः यह नहीं कहा जा सकता कि वह चैतन्य अपने द्वारा प्रकाशित होता है। प्रत्युत हे पर्वत! दीपककी भाँति प्रकाशमान उसे सूर्य आदि दूसरोंका प्रकाशक समझिये। अतएव मेरे ज्ञानरूप शरीरका नित्यत्व स्पष्टतः सिद्ध है॥ ११—१४॥

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि अवस्थाओंमें संवित् (ज्ञानस्वरूप स्वयं)-का अभाव प्रतीत न होकर प्रत्युत तीनों अवस्थाओंका अभाव अनुभवमें आता है, इस प्रकार कभी भी संवित्का अभाव अनुभवमें नहीं आता है। अतः संवित्के अभावका अनुभव न होनेके कारण उसका नित्यत्व स्वतः सिद्ध है। यदि किसीको संवित्के अभावका अनुभव होता है तो जिस साक्षीके द्वारा उस संविद्रूपके अभावका अनुभव होता है, वही संवित्का स्वरूप होगा। अतः उत्तम शास्त्रोंके ज्ञाता विद्वानोंने उसे नित्य कहा है। वह परम प्रेमास्पद है, अतः उसमें आनन्दरूपता भी है॥ १५—१७॥

पूर्वमें मेरा अभाव था, ऐसा नहीं; मैं तब भी थी और प्रेमरूपमें सबकी आत्मामें स्थित थी। अन्य सभी वस्तुओंके मिथ्या होनेके कारण मेरा उन वस्तुओंसे सम्बन्ध न रहना स्वयं स्पष्ट है; अतः यह मेरे रूपकी अपरिच्छिन्नता (व्यापकता) भी कही गयी है। वह ज्ञान आत्माका धर्म नहीं है, अन्यथा धर्मत्व होनेसे उसमें जडता आ सकती है। ज्ञानके किसी भी अंशमें जडता और अनित्यताको न कभी देखा गया और न देखा जा सकता है। ज्ञानरूप चित् आत्मरूप चित्का धर्म नहीं है; क्योंकि आत्मरूप चित् और ज्ञानरूप चित् एक ही हैं और धर्मिधर्मीभाव एकत्र सम्भव नहीं है। अतः आत्मा सर्वदा ज्ञानरूप तथा सुखरूप है; वह सत्य, पूर्ण और असंग है तथा द्वैत-जालसे रहित है॥ १८—२१॥

वही आत्मा काम अर्थात् इच्छा तथा कर्म अर्थात् अदृष्ट आदिके साथ युक्त होकर अपनी मायासे पूर्वमें किये गये अनुभवोंके संस्कार, कालके द्वारा किये गये कर्मके परिपाक और तत्त्वोंके अविवेकसे सृष्टि करनेकी इच्छावाला हो जाता है। हे पर्वतराज हिमालय! मैंने आपसे अबुद्धिपूर्वक (शयनके अनन्तर परमात्माकी जो जागरणरूप अवस्था है वह बुद्धिपूर्वक नहीं है) हुए इस सृष्टिक्रमका वर्णन किया है॥ २२-२३॥

यह मैंने आपसे अपने जिस रूपके विषयमें कहा है; वह अलौकिक, अव्याकृत (प्रारम्भिक), अव्यक्त (सृष्टिका आदिकारण) तथा मायाशबल (मायासे आवृत) भी है॥ २४॥

समस्त शास्त्रोंमें इसे सभी कारणोंका कारण; महत्, अहंकार आदि तत्त्वोंका आदिकारण तथा सत्-चित्-आनन्दमय विग्रहवाला बताया गया है॥ २५॥

उस रूपको सम्पूर्ण कर्मोंका साक्षी, इच्छा-ज्ञान तथा क्रियाशक्तिका अधिष्ठान, ह्रींकार मन्त्रका वाच्य (अर्थ) और आदितत्त्व कहा गया है॥ २६॥

उसीसे शब्दतन्मात्रावाला आकाश, स्पर्शतन्मात्रावाला वायु और पुनः रूपतन्मात्रावाला तेज उत्पन्न हुआ। इसके बाद रसात्मक जल तथा पुनः गन्धात्मक पृथ्वीकी [क्रमशः] उत्पत्ति हुई। आकाश शब्द नामक एक गुणसे; वायु शब्द तथा स्पर्श—इन दो गुणोंसे और तेज शब्द, स्पर्श, रूप—इन तीन गुणोंसे युक्त हुए—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। इसी प्रकार शब्द, स्पर्श, रूप तथा रस—ये चार गुण जलके कहे गये हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध—इन पाँच गुणोंसे युक्त पृथ्वी है॥ २७—२९१/२॥

उन्हीं पृथ्वी आदि सूक्ष्म भूतोंसे महान् व्यापक सूत्र उत्पन्न हुआ, जिसे लिंग शब्दसे कहा जाता है; वह सर्वात्मक कहा गया है। यही परमात्माका सूक्ष्म शरीर है। जिसमें यह जगत् बीजरूपमें स्थित है और जिससे लिंगदेहकी उत्पत्ति हुई है, वह अव्यक्त कहा जाता है और वह परब्रह्मका कारणशरीर है; उसके विषयमें पहले ही कहा जा चुका है॥ ३०-३११/२॥

तदनन्तर उसी अव्यक्तशरीर (लिंगशरीर)-से पंचीकरणप्रक्रियाके द्वारा पाँच स्थूल भूत उत्पन्न होते हैं। अब उस पंचीकरणप्रक्रियाका वर्णन किया जा रहा है। पूर्वमें कहे गये पाँच भूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश)-में प्रत्येक भूतके दो बराबर-बराबर भाग करके प्रत्येक भूतके प्रथम आधे भागको पुनः चार भागोंमें विभक्त कर दे। इस प्रकार प्रथम भागके विभक्त चतुर्थांशको अन्य चार भूतोंके अवशिष्ट अर्धांशमें संयोजित कर दे। इस प्रकार प्रत्येक भूतके अर्धांशमें तदतिरिक्त चार भूतोंके अंशका योग होनेसे पाँचों स्थूल भूतोंका निर्माण हो जाता

है। इस प्रकार पंचीकृतभूतरूपी कारणके द्वारा जो कार्य (सृष्टिप्रपंच) उत्पन्न हुआ, वही विराट् शरीर है और वही परमात्माका स्थूल देह है। हे राजेन्द्र! पंचभूतोंमें स्थित सत्त्वांशोंके परस्पर मिलनेसे श्रोत्र आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा एक अन्तःकरणकी उत्पत्ति हुई, जो वृत्तिभेदसे चार प्रकार (मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार)-का हो जाता है॥ ३२—३६॥

जब उसमें संकल्प-विकल्पवृत्तिका उदय होता है, तब उस अन्तःकरणको मन कहा जाता है। जब वह अन्तःकरण संशयरहित निश्चयात्मक वृत्तिसे युक्त होता है, तब उसकी बुद्धि संज्ञा होती है। अनुसन्धान (चिन्तन)-वृत्तिके आनेपर वही अन्तःकरण चित्त कहा जाता है और अहंकृतिवृत्तिसे संयुक्त होनेपर वह अन्तःकरण अहंकारसंज्ञक हो जाता है॥ ३७-३८॥

तदनन्तर उन पाँच भूतोंके राजस अंशोंसे क्रमशः पाँच कर्मेन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं। प्रत्येक राजस अंशोंके मिलनेसे पाँच प्रकारके प्राण उत्पन्न हुए। प्राण हृदयमें, अपान गुदामें, समान नाभिमें, उदान कंठमें तथा व्यान सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हुआ। इस प्रकार पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, प्राण आदि पाँच वायु और बुद्धिसहित मन—इन्हीं सत्रह अवयवोंवाला मेरा सूक्ष्म शरीर है, जिसे लिंग शब्दसे भी कहा जाता है॥ ३९—४११/२॥

हे राजन्! जो प्रकृति कही गयी है, वह भी दो भेदोंवाली बतायी गयी है। शुद्धसत्त्वप्रधान प्रकृति माया है तथा मलिनसत्त्वप्रधान प्रकृति अविद्या है। जो प्रकृति अपने आश्रित रहनेवालेकी रक्षा करती है अर्थात् आवरण या व्यामोह नहीं करती, उसे माया कहा जाता है। उस शुद्ध-सत्त्वप्रधान मायामें बिम्बरूप परमात्माका जो प्रतिबिम्ब होता है, वही ईश्वर कहा गया है। वह ईश्वर अपने आश्रय अर्थात् व्यापक ब्रह्मको जाननेवाला, परात्पर, सर्वज्ञ, सब कुछ करनेवाला तथा समस्त प्राणियोंके ऊपर कृपा करनेवाला है॥ ४२—४४१/२॥

हे पर्वतराज हिमालय! [मलिनसत्त्वप्रधान] अविद्यामें जो परमात्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव कहा जाता है और वही जीव अविद्याके द्वारा आनन्दांशका आवरण कर देनेके कारण सभी दुःखोंका आश्रय हो जाता है। माया—अविद्याके कारण ईश्वर और जीव—इन दोनोंके तीन देह तथा देहत्रयके अभिमानके कारण तीन नाम कहे जाते हैं। कारणदेहाभिमानी जीवको प्राज्ञ, सूक्ष्मदेहाभिमानीको तैजस तथा स्थूलदेहाभिमानीको विश्व—इन तीन प्रकारवाला कहा गया है। इसी प्रकार ईश्वर भी ईश, सूत्र तथा विराट् नामोंसे कहा गया है। जीवको व्यष्टिरूप तथा परमेश्वरको समष्टिरूप कहा गया है। वे सर्वेश्वर मेरी मायाशक्तिसे प्रेरित होकर जीवोंपर कृपा करनेकी कामनासे विविध भोगोंसे युक्त विश्वोंकी सृष्टि करते हैं। हे राजन्! मेरी शक्तिके अधीन होकर वे ईश्वर रज्जुमें सर्पकी भाँति मुझ ब्रह्मरूपिणीमें नित्य कल्पित हैं॥ ४५—५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें देवीके व्यष्टि और समष्टिरूपका वर्णन' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

भगवतीका अपनी सर्वव्यापकता बताते हुए विराट्रूप प्रकट करना, भयभीत देवताओंकी स्तुतिसे प्रसन्न भगवतीका पुनः सौम्यरूप धारण करना

देवी बोलीं—[हे हिमालय!] यह सम्पूर्ण चराचर जगत् मेरी मायाशक्तिसे ही उत्पन्न हुआ है। परमार्थदृष्टिसे विचार करनेपर वह माया भी मुझसे पृथक् नहीं है। व्यवहारदृष्टिसे वह विद्या ही 'माया' इस नामसे प्रसिद्ध है। तत्त्वदृष्टिसे भेदसम्बन्ध नहीं है, दोनों एक ही तत्त्व हैं॥ १-२॥

हे गिरे! मैं सम्पूर्ण जगत्का सृजनकर माया और कर्म आदिके साथ प्राणोंको आगे करके उस जगत्के भीतर प्रवेश करती हूँ, अन्यथा संसारके सभी क्रिया-कलाप कैसे हो पाते? इसी कारणसे मैं ऐसा करती हूँ। मायाके भेदानुसार मेरे विभिन्न कार्य होते हैं। जिस प्रकार आकाश एक होते हुए भी घटाकाश आदि अनेक नामोंसे व्यवहृत है, उसी प्रकार मैं एक होती हुई भी उपाधिभेदसे भिन्न हूँ॥ ३-४१/२॥

जिस प्रकार उत्तम और निकृष्ट—सभी वस्तुओंको सदा प्रकाशित करता हुआ सूर्य कभी भी दूषित नहीं होता, उसी प्रकार मैं कभी उपाधियोंके दोषोंसे लिप्त नहीं होती हूँ॥ ५१/२॥

कुछ अज्ञानी मुझमें बुद्धि इत्यादिके कर्तृत्वका आरोपकर मुझे आत्मा तथा कर्मकी संज्ञा देते हैं, किंतु विज्ञजन ऐसा नहीं करते। जिस प्रकार घटरूप उपाधिके द्वारा महाकाशका घटाकाशसे भेद कल्पित होता है, उसी प्रकार [ईश्वर तथा जीवमें वास्तविक भेद न होनेपर भी] अज्ञानरूप उपाधिके द्वारा ही जीवका ईश्वरसे भेद मायाके द्वारा कल्पित है॥ ६—८१/२॥

जैसे मायाके प्रभावसे ही जीव अनेक प्रतीत होते हैं; जो वास्तवमें अनेक नहीं हैं, वैसे ही मायाके प्रभावसे ईश्वरकी भी विविधताका भान होता है न कि अपने स्वभाववश॥ ९१/२॥

विभिन्न जीवोंके देह तथा इन्द्रियके समूहमें जैसे भेदकी प्रतीति अविद्याके कारण है (वास्तविक नहीं है), उसी प्रकार जीवोंमें भेद अविद्याके कारण है, इसमें दूसरेको हेतु नहीं बताया गया है। हे धराधर! गुणों (सत्त्व, रज तथा तम)-में उन गुणोंके कार्यरूप वासनाके भेदसे जो भिन्नताकी प्रतीति करनेवाली है, वही माया एक पदार्थसे दूसरे पदार्थमें भेदका हेतु है, कोई अन्य कभी नहीं॥ १०-१११/२॥

हे धरणीधर! यह समग्र जगत् मुझमें ओतप्रोत है। मैं ईश्वर हूँ, मैं सूत्रात्मा हूँ तथा मैं ही विराट् आत्मा हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र हूँ। गौरी, ब्राह्मी और वैष्णवी भी मैं ही हूँ॥ १२-१३॥

मैं ही सूर्य हूँ, मैं ही चन्द्रमा हूँ और तारे भी मैं ही हूँ। पशु-पक्षी आदि भी मेरे ही स्वरूप हैं। चाण्डाल, तस्कर, व्याध, क्रूर कर्म करनेवाला, सत्कर्म करनेवाला तथा महान् पुरुष—ये सब मैं ही हूँ। स्त्री, पुरुष तथा नपुंसकके रूपमें मैं ही हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है॥ १४-१५॥

जो कुछ भी वस्तु जहाँ कहीं भी देखने या सुननेमें आती है—वह चाहे भीतर अथवा बाहर कहीं भी विद्यमान हो, उन सबको व्याप्तकर उनमें सर्वदा मैं ही स्थित रहती हूँ॥ १६॥

चराचर कोई भी वस्तु मुझसे रहित नहीं है। यदि मुझसे शून्य कोई वस्तु मान ली जाय तो वह वन्ध्यापुत्रके समान असम्भव ही है॥ १७॥

जिस प्रकार एक रस्सी भ्रमवश सर्प अथवा मालाके रूपमें प्रतीत होती है, उसी प्रकार मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि रूपसे प्रतीत होती हूँ; इसमें कोई संशय नहीं है। अधिष्ठानकी सत्ताके अतिरिक्त कल्पित वस्तुकी सत्ता नहीं होती। [उसकी प्रतीति अधिष्ठानकी सत्ताके कारण होती है।] अतः मेरी सत्तासे ही वह जगत् सत्तावान् है, इसके अतिरिक्त दूसरी बात नहीं हो सकती॥ १८-१९॥

हिमालयने कहा—हे देवेश्वरि! हे देवि! यदि मुझपर आपकी कृपा हो तो आपने अपने इस समष्ट्यात्मक विराट् रूपका जैसा वर्णन किया है, आपके उसी रूपको मैं देखना चाहता हूँ॥ २०॥

व्यासजी बोले—उन हिमालयकी यह बात सुनकर विष्णुसहित सभी देवता प्रसन्नचित्त हो गये और उनकी बातका अनुमोदन करते हुए आनन्दित हो गये॥ २१॥

तदनन्तर देवताओंकी इच्छा जानकर भक्तोंकी कामना पूर्ण करनेवाली तथा भक्तोंके लिये कामधेनुतुल्य भगवती शिवाने अपना रूप दिखा दिया। वे देवता महादेवीके उस परात्पर विराट्रूपका दर्शन करने लगे; जिसका मस्तक आकाश है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ कान हैं और वेद वाणी है। वायुको उस रूपका प्राण कहा गया है। विश्व ही उसका हृदय कहा गया है और पृथ्वी उस रूपकी जंघा कही गयी है॥ २२—२४॥

पाताल उस रूपकी नाभि, ज्योतिश्चक्र वक्षःस्थल और महर्लोक ग्रीवा है। जनलोकको उसका मुख कहा गया है। सत्यलोकसे नीचे रहनेवाला तपोलोक उसका ललाट है। इन्द्र आदि उन महेश्वरीके बाहु हैं और शब्द श्रोत्र हैं॥ २५-२६॥

नासत्य और दस्र (दोनों अश्विनीकुमार) उनकी नासिका हैं। विद्वान् लोगोंने गन्धको उनकी घ्राणेन्द्रिय कहा है। अग्निको मुख कहा गया है। दिन और रात उनके पक्ष्म (बरौनी) हैं। ब्रह्मस्थान भौंहोंका विस्तार है। जलको भगवतीका तालु कहा गया है। रस जिह्वा कही गयी है और यमको उनकी दाढ़ें बताया गया है॥ २७-२८॥

स्नेहकी कलाएँ उस रूपके दाँत हैं, मायाको उसका हास कहा गया है। सृष्टि उन महेश्वरीका कटाक्षपात और लज्जा उनका ऊपरी ओष्ठ है। लोभ उनका नीचेका ओष्ठ और अधर्ममार्ग उनका पृष्ठभाग है। जो पृथ्वीलोकमें स्रष्टा कहे जाते हैं, वे प्रजापति ब्रह्मा उस विराट्रूपकी जननेन्द्रिय हैं॥ २९-३०॥

समुद्र उन देवी महेश्वरीकी कुक्षि और पर्वत उनकी

अस्थियाँ हैं। नदियाँ उनकी नाडियाँ कही गयी हैं और वृक्ष उनके केश बताये गये हैं। कुमार, यौवन और बुढ़ापा— ये अवस्थाएँ उनकी उत्तम गति हैं। मेघ उनके सिरके केश हैं। [प्रातः और सायं] दोनों सन्ध्याएँ उन ऐश्वर्यमयी देवीके दो वस्त्र हैं॥ ३१-३२॥

हे राजन्! चन्द्रमाको श्रीजगदम्बाका मन कहा गया है। विष्णुको उनकी विज्ञानशक्ति और रुद्रको उनका अन्तःकरण बताया गया है। अश्व आदि जातियाँ उन ऐश्वर्यशालिनी भगवतीके कटिप्रदेशमें स्थित हैं और अतलसे लेकर पातालतकके सभी महान् लोक उनके कटिप्रदेशके नीचेके भाग हैं॥ ३३-३४॥

श्रेष्ठ देवताओंने हजारों प्रकारकी ज्वालाओंसे युक्त, जीभसे बार-बार ओठ चाटते हुए, दाँत कट-कटाकर चीखनेकी ध्वनि करते हुए, आँखोंसे अग्नि उगलते हुए, अनेक प्रकारके आयुध धारण किये हुए, पराक्रमी, ब्राह्मण-क्षत्रिय ओदनरूप, हजार मस्तक, हजार नेत्र और हजार चरणोंसे सम्पन्न, करोड़ों सूर्योंके समान तेजयुक्त तथा करोड़ों बिजलियोंके समान प्रभासे प्रदीप्त, भयंकर, महाभीषण तथा हृदय और नेत्रोंके लिये सन्त्रासकारक ऐसे विराट्रूपका दर्शन किया। जब उन देवताओंने इसे देखा तब वे हाहाकार करने लगे, उनके हृदय काँप उठे, उन्हें घोर मूर्च्छा आ गयी और उनकी यह स्मृति भी समाप्त हो गयी कि यही भगवती जगदम्बा हैं॥ ३५—३९॥

उन महाविभुकी चारों दिशाओंमें जो वेद विराजमान थे, उन्होंने मूर्च्छित देवताओंको अत्यन्त घोर मूर्च्छासे चेतना प्रदान की। इसके बाद धैर्य धारणकर वे देवताश्रेष्ठ श्रुति प्राप्त करके प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रों तथा रुँधे हुए कंठसे गद्गद वाणीमें उनकी स्तुति करने लगे॥ ४०-४१॥

देवता बोले—हे अम्ब! हमारे अपराधोंको क्षमा कीजिये और अपने दीन सन्तानोंकी रक्षा कीजिये। हे देवेश्वरि! आप अपना क्रोध शान्त कर लीजिये; क्योंकि हमलोग यह रूप देखकर भयभीत हो गये हैं। हम मन्दबुद्धि देवता यहाँ आपकी कौन-सी स्तुति कर सकते हैं? आपका अपना जितना तथा जैसा पराक्रम है, उसे आप स्वयं भी नहीं जानतीं, तो फिर वह बादमें प्रादुर्भूत होनेवाले हम देवताओंके ज्ञानका विषय कैसे हो सकता है?॥ ४२—४४॥

हे भुवनेश्वरि! आपको नमस्कार है। हे प्रणवात्मिके! आपको नमस्कार है। समस्त वेदान्तोंसे प्रमाणित तथा ह्रींकाररूप धारण करनेवाली हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ ४५॥

जिनसे अग्नि उत्पन्न हुआ है, जिनसे सूर्य तथा चन्द्र आविर्भूत हुए हैं और जिनसे समस्त औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४६॥

जिनसे सभी देवता, साध्यगण, पक्षी, पशु तथा मनुष्य उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४७॥

जिनसे प्राण, अपान, व्रीहि (धान), यव, तप, श्रद्धा, सत्य, ब्रह्मचर्य और विधिका आविर्भाव हुआ है; उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ४८॥

जिनसे सातों प्राण, सात अग्नियाँ, सात समिधाएँ, सात होम तथा सात लोक उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ४९॥

जिनसे समुद्र, पर्वत तथा सभी सिन्धु निकलते हैं और जिनसे सभी औषधियाँ तथा रस उद्भूत होते हैं, उन सर्वात्माको बार-बार नमस्कार है॥ ५०॥

जिनसे यज्ञ, दीक्षा, यूप, दक्षिणाएँ, ऋचाएँ, यजुर्वेद तथा सामवेदके मन्त्र उत्पन्न हुए हैं; उन सर्वात्माको नमस्कार है॥ ५१॥

हे माता! आपको आगे, पीछे, दोनों पार्श्वभाग, ऊपर, नीचे तथा चारों दिशाओंसे बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥

हे देवेश्वरि! अब इस अलौकिक रूपको छिपा लीजिये और हमें उसी परम सुन्दर रूपका दर्शन कराइये॥ ५३॥

व्यासजी बोले—देवताओंको भयभीत देखकर कृपासिन्धु जगदम्बाने उस घोर रूपको छिपाकर और पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रासे युक्त, समस्त कोमल अंगोंवाले, करुणासे परिपूर्ण नेत्रोंवाले एवं मन्द-मन्द मुसकानयुक्त मुखकमलवाले मनोहर रूपका दर्शन करा दिया॥ ५४-५५॥

तब भगवतीका वह सुन्दर रूप देखकर वे देवता भयरहित हो गये और शान्तचित्त होकर हर्षयुक्त गद्गद वाणीसे देवीको प्रणाम करने लगे॥ ५६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीद्वारा विराट्रूप दिखाना और देवताओंद्वारा की गयी उनकी स्तुतिका वर्णन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

भगवतीका हिमालय तथा देवताओंसे परमपदकी प्राप्तिका उपाय बताना

देवी बोलीं—कहाँ तुम सब मन्दभाग्य देवता और कहाँ मेरा यह अद्भुत रूप, तथापि भक्तवत्सलताके कारण मैंने आपलोगोंको ऐसे रूपका दर्शन कराया है। केवल मेरी कृपाको छोड़कर वेदाध्ययन, योग, दान, तपस्या और यज्ञ आदि किन्हीं भी साधनसे मेरे उस रूपका दर्शन नहीं किया जा सकता॥ १-२॥

हे राजेन्द्र! अब ब्रह्मविद्याविषयक पूर्व प्रसंग सुनिये। परमात्मा ही उपाधिभेदसे जीवसंज्ञा प्राप्त करता है और उसमें कर्तृत्व आदि आ जाता है। वह धर्म-अधर्महेतुभूत विविध प्रकारके कर्म करने लगता है। फिर कर्मोंके अनुसार अनेक योनियोंमें जन्म प्राप्त करके वह सुख-दुःखका भोग करता है॥ ३-४॥

पुनः अपने उन संस्कारोंके प्रभावसे वह सदा नानाविध कर्मोंमें प्रवृत्त रहता है, अनेक प्रकारके शरीर धारण करता है और सुखों तथा दुःखोंका भोग करता है। घटीयन्त्रकी भाँति इस जीवको कभी भी विश्राम नहीं मिलता। अज्ञान ही उसका कारण है; उसी अज्ञानसे कामना और पुनः क्रियाओंका प्रादुर्भाव होता है॥ ५-६॥

अतः अज्ञानके नाशके लिये मनुष्यको निश्चित-रूपसे प्रयत्न करना चाहिये। अज्ञानका नष्ट हो जाना ही जीवनकी सफलता है। अज्ञानके नष्ट हो जानेपर पुरुषार्थकी समाप्ति तथा जीवन्मुक्त दशाकी उपलब्धि हो जाती है। विद्या ही अज्ञानका नाश करनेमें पूर्ण समर्थ है॥ ७-८॥

हे गिरे! अज्ञानसे ही कर्म होता है, इसलिये कर्मका अज्ञानसे विरोध नहीं है। अज्ञानके नाश हो जानेसे कर्म और उपासना आदिका अभाव हो जायगा, प्रत्युत आशारूपी अज्ञानके नाश हो जानेपर कर्मका अभाव हो जायगा। अनर्थकारी कर्म बार-बार होते रहते हैं। उसीसे राग, उसीसे द्वेष और फिर उसीसे महान् अनर्थकी उत्पत्ति होती है। अतः मनुष्यको पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानका अर्जन करना चाहिये। **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'** इस श्रुतिवचनके अनुसार कर्म भी आवश्यक है। साथ ही ज्ञानसे ही कैवल्यपदकी प्राप्ति सम्भव है, अतः मोक्षके लिये कर्म और ज्ञान—दोनोंका समुच्चय आवश्यक है, साथ ही हितकारक कर्म ज्ञानकी सहायता करता है—ऐसा कुछ लोग कहते हैं, किंतु उन दोनों (ज्ञान तथा कर्म)-के परस्पर विरोधी होनेसे वैसा सम्भव नहीं है॥ ९—१२½॥

ज्ञानसे हृदय-ग्रन्थिका भेदन होता है और हृदय-ग्रन्थिमें कर्म उत्पन्न होता है। फिर उन दोनों (ज्ञान और कर्म)-में परस्पर विरोधभाव होनेसे वे एक स्थानपर उसी तरह नहीं रह सकते, जैसे अन्धकार और प्रकाशका एक साथ रहना सम्भव नहीं है॥ १३-१४॥

हे महामते! इसलिये समस्त वैदिक कर्म जो चित्तकी शुद्धिके लिये होते हैं, उन्हें प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये। शम, दम, तितिक्षा, वैराग्य और सत्त्वका प्रादुर्भाव—इनकी प्राप्तितक ही कर्म आवश्यक हैं, इसके बाद नहीं॥ १५-१६॥

तदनन्तर ज्ञानी मनुष्यको चाहिये कि वह संन्यासी होकर श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ गुरुका आश्रय ग्रहण करे और पुनः सावधान होकर निष्कपट भक्तिके साथ प्रतिदिन वेदान्तका श्रवण करे। साथ ही **'तत्त्वमसि'** आदि वाक्यके अर्थका वह नित्य चिन्तन करे; क्योंकि तत्त्वमसि आदि वाक्य जीव और ब्रह्मकी एकताके बोधक हैं। ऐक्यका बोध हो जानेपर मनुष्य निर्भय होकर मेरा रूप बन जाता है॥ १७—१९॥

हे पर्वत! वाक्यार्थमें पदार्थज्ञान कारण होता है, अतः पहले पदार्थका ज्ञान होता है, उसके बाद वाक्यार्थकी प्रतीति होती है। हे पर्वत! **'तत्'** पदके वाच्यार्थके रूपमें मैं ही कही गयी हूँ। **'त्वम्'** पदका वाच्यार्थ जीव ही है, इसमें कोई संशय नहीं है। विद्वान् पुरुष **'असि'** पदसे **'तत्'** और **'त्वम्'**—इन दोनों पदोंकी एकता बतलाते हैं॥ २०-२१॥

इन दोनों पदोंके वाच्यार्थ परस्पर विरोधी होनेसे इन पदार्थोंकी एकता सम्भव नहीं है, अतः श्रुतिप्रतिपादित इन **तत्** और **त्वम्**—दोनों पदोंके वाच्यार्थमें विशेषणरूपसे सन्निविष्ट सर्वज्ञत्व और अल्पज्ञत्व धर्मका भागत्यागलक्षणाके द्वारा त्याग करके केवल चैतन्यांशको ग्रहण करनेसे उनकी एकता सम्भव होती है। उनके ऐक्यका इस प्रकार बोध हो जानेपर स्वगत भेद समाप्त होकर अद्वैत बुद्धिका उदय

हो जाता है॥ २२-२३॥

'वह यही देवदत्त है'—इस वाक्यार्थमें देवदत्त और तत् पदके अभेद-बोधके लिये जैसे लक्षणा आवश्यक है, वैसी ही लक्षणा यहाँ समझनी चाहिये। स्थूलादि देहमें जीवका जो स्वरूपाध्यास है, उसकी निवृत्ति हो जानेपर वह जीव ब्रह्म ही हो जाता है॥ २४॥

पंचीकरणसे युक्त पाँच महाभूतोंसे रचित यह स्थूल शरीर सभी कर्मोंके भोगोंका आश्रय है। यह देह वृद्धत्व एवं रोगसे संयुक्त होनेवाला है। हे पर्वतराज! मायामय होनेके कारण ही यह मिथ्याभूत देह सत्य प्रतीत होता है। यह स्थूल शरीर भी मेरी आत्माकी ही उपाधि है॥ २५-२६॥

यह जो पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण, मन तथा बुद्धिसे युक्त है तथा अपंचीकृत भूतोंसे उत्पन्न है, उसे विद्वानोंने सूक्ष्म शरीर कहा है। सुख-दु:खका बोध करनेवाला यह सूक्ष्म शरीर आत्माकी दूसरी उपाधि है॥ २७-२८॥

हे पर्वतराज! अनादि, अनिर्वचनीय और अज्ञानमूलक जो यह कारण शरीर है, वही आत्माके तीसरे शरीरके रूपमें प्रतीत होता है। तीनों उपाधियों (स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीर)-का विलय हो जानेपर केवल परमात्मा ही शेष रह जाता है। इन तीनों देहोंके भीतर पंचकोश सदा स्थित रहते हैं। पंचकोशका परित्याग कर देनेपर ब्रह्ममें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है, जो 'नेति-नेति' आदि श्रुतिवाक्योंके द्वारा सम्बोधित किया जाता है और जिसे मेरा ही रूप कहा जाता है॥ २९—३१॥

यह आत्मा न कभी उत्पन्न होता है और न कभी मरता है। यह होकर फिर कभी हुआ भी नहीं। यह आत्मा अजन्मा, नित्य, शाश्वत तथा पुरातन है। शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता है॥ ३२॥

यदि कोई मारनेवाला आत्माको मारनेमें समर्थ मानता है और यदि कोई मारा जानेवाला व्यक्ति अपनेको मरा हुआ मानता है तो वे दोनों ही आत्मस्वरूपको नहीं जानते; क्योंकि यह आत्मा न तो मारता है और न तो मारा जाता है॥ ३३॥

यह आत्मा अणुसे भी सूक्ष्म है और महान्‌से भी महान् है। यह आत्मा (परमात्मा) इस जीवात्माके हृदयरूप गुफा (बुद्धि)-में निहित रहनेवाला है। संकल्प-विकल्परहित और चिन्तामुक्त साधक ही परमात्माकी उस महिमाको परब्रह्म परमेश्वरकी कृपासे देख पाता है॥ ३४॥

जीवात्माको रथका स्वामी और शरीरको रथ समझिये। बुद्धिको सारथि और मनको ही लगाम समझिये॥ ३५॥

विद्वान्‌लोग इन्द्रियोंको घोड़े, विषयोंको उन घोड़ोंके विचरनेका मार्ग बतलाते हैं और शरीर, इन्द्रिय तथा मन—इनके साथ रहनेवाले जीवात्माको भोक्ता कहते हैं॥ ३६॥

जो मनुष्य सदा अज्ञानी, असंयतचित्त और अपवित्र रहता है; वह उस परम पदको नहीं प्राप्त कर पाता और बार-बार संसारमें जन्म लेता रहता है। किंतु जो सदा ज्ञानशील, संयतचित्त और पवित्र रहता है; वह तो उस परम पदको प्राप्त कर लेता है, जहाँसे लौटकर पुन: जन्म धारण नहीं करना पड़ता॥ ३७-३८॥

जो मनुष्य विवेकयुक्त बुद्धिरूप सारथिसे सम्पन्न और मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसारमार्गसे पार जो मेरा परम पद है; उसे प्राप्त कर लेता है॥ ३९॥

इस प्रकार [वेदान्त-] श्रवण तथा मननके द्वारा अपने यथार्थ स्वरूपका निश्चय करके बार-बार गम्भीर चिन्तन-मननके द्वारा मुझ परमात्मस्वरूपिणी भगवतीकी भावना करनी चाहिये॥ ४०॥

मन्त्र और अर्थके स्वरूपके सम्यक् ध्यानके लिये सर्वप्रथम योगाभ्यासमें प्रतिष्ठित होकर देवीप्रणव नामक मन्त्रके तीनों अक्षरोंकी अपने भीतर भावना करनी चाहिये॥ ४१॥

'हकार' स्थूलदेह, 'रकार' सूक्ष्मदेह और ईकार कारणदेह है। 'ह्रीं' यह चतुर्थरूप स्वयं मैं हूँ। इस प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि समष्टि शरीरमें भी क्रमश: तीनों बीजोंको समझकर समष्टि और व्यष्टि—इन दोनों रूपोंकी एकताका चिन्तन करे॥ ४२-४३॥

समाधिकालके पूर्व ही आदरपूर्वक इस प्रकारकी भावना करके पुन: उसके बाद दोनों नेत्र बन्दकर मुझ भगवती जगदीश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ४४॥

उस समय साधकको चाहिये कि वह किसी गुफा अथवा शब्दरहित एकान्त स्थानमें आसीन होकर विषयभोगोंकी कामनासे रहित, दोषमुक्त तथा ईर्ष्याशून्य रहते हुए और नासिकाके भीतर विचरणशील प्राण तथा अपान वायुको समान स्थितिमें करके निष्कपट भक्तिसे सम्पन्न होकर विश्वात्मारूप हकारको रकारमें समाविष्ट करे अर्थात् हकारवाच्य स्थूलदेहको रकारवाच्य सूक्ष्मदेहमें लीन करे, तैजस देवस्वरूप रकारको ईकारमें समाविष्ट करे अर्थात् रकारवाच्य तैजस—

सूक्ष्मदेहको ईकारवाच्य कारणदेहमें लीन करे और प्राज्ञस्वरूप ईकारको ह्रींकारमें समाविष्ट करे अर्थात् ईकारवाच्य कारणदेहको ह्रींकारवाच्य ब्रह्ममें लीन करे॥ ४५—४७॥

तब वाच्य-वाचकसे रहित, समस्त द्वैतभावसे परे अखण्ड सच्चिदानन्दकी भावना अपने शिखास्थान (सहस्रार)-में करे। हे राजन्! इस प्रकारके ध्यानसे श्रेष्ठ पुरुष मेरा साक्षात्कार करके मेरे ही रूपवाला हो जाता है; क्योंकि दोनोंमें सदा एकता सिद्ध है। इस योगरीतिसे मुझ परमात्मरूप परात्पर भगवतीका दर्शन करके साधक तत्क्षण कर्मसहित अपने अज्ञानका नाश करनेवाला हो जाता है॥ ४८—५०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें ज्ञानके मोक्षहेतुत्वका वर्णन' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

भगवतीद्वारा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा कुण्डलीजागरणकी विधि बताना

हिमालय बोले—हे महेश्वरि! अब आप ज्ञान प्रदान करनेवाले योगका सांगोपांग वर्णन कीजिये, जिसकी साधनासे मैं तत्त्वदर्शनकी प्राप्तिके योग्य हो जाऊँ॥ १॥

देवी बोलीं—यह योग न आकाशमण्डलमें है, न पृथ्वीतलपर है और न तो रसातलमें ही है। योगविद्याके विद्वानोंने जीव और आत्माके ऐक्यको ही योग कहा है॥ २॥

हे अनघ! उस योगमें विघ्न उत्पन्न करनेवाले काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य नामक—ये छः प्रकारके दोष बताये गये हैं॥ ३॥

अतः योगके अंगोंके द्वारा उन विघ्नोंका उच्छेद करके योगियोंको योगकी प्राप्ति करनी चाहिये। योगियोंके लिये योगसिद्धिहेतु यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि—ये आठ अंग बताये गये हैं॥ ४-५॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धृति, परिमित आहार और शौच—ये दस प्रकारके यम कहे गये हैं॥ ६॥

हे पर्वतराज! तप, संतोष, आस्तिकता, दान, देवपूजन, शास्त्रसिद्धान्तोंका श्रवण, लज्जा, सद्बुद्धि, जप और हवन—ये दस नियम मेरे द्वारा कहे गये हैं॥ ७॥

पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, वज्रासन और वीरासन—क्रमशः ये पाँच आसन बतलाये गये हैं। दोनों पैरोंके दोनों शुभ तलवोंको सम्यक् रूपसे जंघोंपर रखकर पीठकी ओरसे हाथोंको ले जाकर दाहिने हाथसे दाहिने पैरके अँगूठेको और बायें हाथसे बायें पैरके अँगूठेको पकड़े; योगियोंके हृदयमें प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला यह पद्मासन कहा गया है॥ ८—१०॥

जाँघ और घुटनेके बीचमें पैरके दोनों सुन्दर तलवोंको अच्छी तरह करके योगीको शरीर सीधाकर बैठना चाहिये। इसे स्वस्तिकासन कहा जाता है॥ ११॥

सीवनीके दोनों ओर दोनों एड़ियोंको अण्डकोषके नीचे अच्छी तरह रखकर दोनों पैरोंको हाथोंसे पकड़कर बैठना चाहिये। योगियोंके द्वारा सम्यक् पूजित यह आसन भद्रासन कहा गया है॥ १२१/२॥

दोनों पैरोंको क्रमशः दोनों जाँघोंपर रखकर दोनों घुटनोंके निचले भागमें सीधी अँगुलीवाले दोनों हाथ स्थापित करके बैठनेको अत्युत्तम वज्रासन कहा गया है॥ १३१/२॥

एक पैरको नीचे करके उसके ऊपर दूसरे पैरका जंघा रखकर योगीको शरीर सीधा करके बैठना चाहिये; यह वीरासन कहा गया है॥ १४१/२॥

योगी सोलह बार प्रणवका उच्चारण करनेमें लगनेवाले समयतक इडा अर्थात् बायीं नासिकासे बाहरकी वायुको खींचे (पूरक), पुनः इस पूरित वायुको चौंसठ बार प्रणवके उच्चारणसमयतक सुषुम्नाके मध्य रोके रहे (कुम्भक) और इसके बाद योगविद्को चाहिये कि बत्तीस बार प्रणवके उच्चारणमें जितना समय लगे—उतने समयमें धीरे-धीरे पिंगला नाडी अर्थात् दायीं नासिकाके द्वारा उस वायुको बाहर करे (रेचक)। योगशास्त्रके विद्वान् इस

प्रक्रियाको 'प्राणायाम' कहते हैं॥ १५—१७॥

इस प्रकार पुनः-पुनः बाहरकी वायुको लेकर क्रमसे पूरक, कुंभक तथा रेचक करके प्राणायामका अभ्यास मात्रा (प्रणवके उच्चारणके समय)-की वृद्धिके अनुसार करना चाहिये। इस प्रकार प्राणायाम पहले बारह बार, तदनन्तर सोलह बार इसके बाद क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि करनी चाहिये॥ १८॥

जो प्राणायाम [अपने इष्टके] जप-ध्यान आदिसे युक्त होता है, उसे विद्वज्जनोंने सगर्भ प्राणायाम और उस जप-ध्यानसे रहित प्राणायामको विगर्भ प्राणायाम कहा है॥ १९॥

इस प्रकार क्रमसे अभ्यास करते हुए मनुष्यके शरीरमें पसीना आ जाय तो उसे अधम, कम्पन उत्पन्न होनेपर मध्यम और जमीन छोड़कर ऊपर उठनेपर उत्तम प्राणायाम कहा गया है। जबतक उत्तम प्राणायामतक पहुँचा जाय, तबतक अभ्यास करते रहना चाहिये॥ २०१/२॥

अपने-अपने विषयोंमें स्वच्छन्दरूपसे विचरण करती हुई इन्द्रियोंको उन विषयोंसे बलपूर्वक हटानेको प्रत्याहार कहा जाता है॥ २११/२॥

अँगूठा, एड़ी, घुटना, जाँघ, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, ग्रीवा, कण्ठ, भ्रूमध्य और मस्तक—इन बारह स्थानोंमें प्राणवायुको विधिपूर्वक धारण किये रखनेको धारणा कहा जाता है॥ २२-२३१/२॥

चेतन आत्मामें मनको स्थित करके एकाग्रचित्त होकर अपने भीतर अभीष्ट देवताका सतत चिन्तन करनेको ध्यान कहा जाता है॥ २४१/२॥

मुनियोंने जीवात्मा और परमात्मामें नित्य 'समत्व' भावना रखनेको समाधि कहा है। यह मैंने आपको अष्टांगयोगका लक्षण बतला दिया। अब मैं आपसे उत्कृष्ट मन्त्रयोगका वर्णन कर रही हूँ॥ २५-२६॥

हे नग! इस पंचभूतात्मक शरीरको 'विश्व' कहा जाता है। चन्द्र, सूर्य और अग्निके तेजसे युक्त होनेपर (इडा-पिंगला-सुषुम्नामें योगसाधनसे) जीव-ब्रह्मकी एकता होती है॥ २७॥

इस शरीरमें साढ़े तीन करोड़ नाड़ियाँ बतायी गयी हैं। उनमें दस नाड़ियाँ मुख्य कही गयी हैं। उनमें भी तीन नाड़ियोंको प्रधान कहा गया है। चन्द्र, सूर्य तथा अग्निस्वरूपिणी—ये नाड़ियाँ मेरुदण्डमें व्यवस्थित रहती हैं। चन्द्ररूपिणी श्वेत 'इडा' नाड़ी उसके बायीं ओर स्थित है। शक्तिरूपा वह इडा नाड़ी साक्षात् अमृतस्वरूपिणी है। दायीं ओर जो 'पिंगला' नामक नाड़ी है, वह पुरुषरूपिणी तथा सूर्यमूर्ति है। उनके बीचमें जो सर्वतेजोमयी तथा अग्निरूपिणी नाड़ी स्थित है, वह 'सुषुम्ना' है॥ २८—३०॥

उसके भीतर 'विचित्रा' नामक नाड़ी स्थित है और उसके भीतर इच्छा-ज्ञान-क्रियाशक्तिसे सम्पन्न करोड़ों सूर्योंके तेजके समान स्वयम्भूलिंग है। उसके ऊपर बिन्दुनाद (ँ)-सहित हरात्मा (हकार, रेफ तथा ईकार)-स्वरूप मायाबीज (ह्रीं) विराजमान है। उसके ऊपर रक्त विग्रहवाली शिखाके आकारकी कुण्डलिनी है। हे पर्वतराज हिमालय! वह देव्यात्मिका कही गयी है और मुझसे अभिन्न है॥ ३१—३३॥

कुण्डलिनीके बाह्यभागमें स्वर्णवर्णके चतुर्दल कमल [मूलाधार]-का चिन्तन करना चाहिये, जिसपर व, श, ष, स—ये चार बीजाक्षर स्थित हैं। उसके ऊपर छः दलवाला उत्तम स्वाधिष्ठान पद्म स्थित है, जो अग्निके समान तेजोमय, हीरेकी चमकवाला और ब, भ, म, य, र, ल—इन छः बीजाक्षरोंसे युक्त है। आधार षट्कोणपर स्थित होनेके कारण मूलाधार तथा स्व शब्दसे परम लिंगको इंगित करनेके कारण स्वाधिष्ठान संज्ञा है॥ ३४—३६॥

इसके ऊपर नाभिदेशमें मेघ तथा विद्युत्के समान कान्तिवाला अत्यन्त तेजसम्पन्न और महान् प्रभासे युक्त मणिपूरक चक्र है। मणिके सदृश प्रभावाला होनेके कारण यह 'मणिपद्म' भी कहा जाता है। यह दस दलोंसे युक्त है और ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ—इन अक्षरोंसे समन्वित है। भगवान् विष्णुके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण यह कमल उनके दर्शनका महान् साधन है॥ ३७-३८१/२॥

उसके ऊपर उगते हुए सूर्यके समान प्रभासे सम्पन्न अनाहत पद्म है। यह कमल क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, ठ—इन अक्षरोंसे युक्त बारह पत्रोंसे प्रतिष्ठित है। उसके मध्यमें दस हजार सूर्योंके समान प्रभावाला बाणलिंग स्थित है। बिना किसी आघातके इसमें शब्द होता

रहता है। अत: मुनियोंके द्वारा उस शब्दब्रह्ममय पद्मको 'अनाहत' कहा गया है। परमपुरुषद्वारा अधिष्ठित वह चक्र आनन्दसदन है॥ ३९—४१$^{1}/_{2}$ ॥

उसके ऊपर सोलह दलोंसे युक्त 'विशुद्ध' नामक कमल है। महती प्रभासे युक्त तथा धूम्रवर्णवाला यह कमल अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ लृ, लॄ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अ:—इन सोलह स्वरोंसे सम्पन्न है। इसमें हंसस्वरूप परमात्माके दर्शनसे जीव विशुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त हो जाता है, इसीलिये इसे विशुद्ध पद्म (विशुद्ध चक्र) कहा गया है। इस महान् अद्भुत कमलको 'आकाशचक्र' भी कहा गया है॥ ४२-४३$^{1}/_{2}$ ॥

उसके ऊपर परमात्माके द्वारा अधिष्ठित श्रेष्ठ 'आज्ञाचक्र' है। उसमें परमात्माकी आज्ञाका संक्रमण होता है, इसीसे उसे 'आज्ञाचक्र'—ऐसा कहा गया है। वह कमल दो दलोंवाला, ह तथा क्ष—इन दो अक्षरोंसे युक्त और अत्यन्त मनोहर है॥ ४४-४५ ॥

उसके ऊपर 'कैलास' नामक चक्र और उसके भी ऊपर 'रोधिनी' नामक चक्र स्थित है। हे सुव्रत! इस प्रकार मैंने आपको आधारचक्रोंके विषयमें बता दिया। इसके और भी ऊपर सहस्र दलोंसे सम्पन्न बिन्दुस्थानरूप 'सहस्रारचक्र' बताया गया है। यह मैंने आपसे सम्पूर्ण श्रेष्ठ योगमार्गका वर्णन कर दिया॥ ४६-४७ ॥

सर्वप्रथम पूरक प्राणायामके द्वारा मूलाधारमें मन लगाना चाहिये। तत्पश्चात् गुदा और मेढ्रके बीचमें वायुके द्वारा कुण्डलिनी शक्तिको समेटकर उसे जाग्रत् करना चाहिये। पुन: लिंग-भेदनके क्रमसे स्वयम्भूलिंगसे आरम्भ करके उस कुण्डलिनी शक्तिको बिन्दुचक्र [सहस्रार]-तक ले जाना चाहिये। इसके बाद उस परा शक्तिका सहस्रारमें स्थित परमेश्वर शम्भुके साथ ऐक्यभावसे ध्यान करना चाहिये॥ ४८-४९ ॥

वहाँ द्रवीभूत लाक्षारसके समान उत्पन्न अमृतका योगसिद्धि प्रदान करनेवाली माया नामक उस शक्तिको पान कराकर षट्चक्रमें स्थित देवताओंको उस अमृतधारासे सन्तृप्त करे। इसके बाद बुद्धिमान् साधक उसी मार्गसे कुण्डलिनी शक्तिको मूलाधारतक वापस लौटा लाये॥ ५०-५१ ॥

इस प्रकार प्रतिदिन अभ्यास करनेपर साधकके पूर्वोक्त सभी दूषित मन्त्र भी निश्चितरूपसे सिद्ध हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है। इसके द्वारा साधक जरा-मरण आदि दु:खों तथा भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो गुण मुझ जगज्जननी भगवतीमें जिस प्रकार विद्यमान हैं, वे सभी गुण उसी प्रकार उस श्रेष्ठ साधकमें उत्पन्न हो जाते हैं; इसमें कोई संदेह नहीं है॥ ५२-५३$^{1}/_{2}$ ॥

हे तात! इस प्रकार मैंने आपसे इस श्रेष्ठ प्राणायामका वर्णन किया है। अब आप सावधान होकर मुझसे धारणा नामक योगका श्रवण कीजिये। दिशा, काल आदिसे अपरिच्छिन्न मुझ भगवतीमें चित्त स्थिर करके जीव और ब्रह्मका ऐक्य हो जानेसे शीघ्र ही साधक तन्मय हो जाता है और यदि चित्तके मलयुक्त रहनेके कारण शीघ्रतापूर्वक सिद्धि प्राप्त न हो तो योगीको चाहिये कि मेरे विग्रहके अंगोंमें [अपना मन स्थित करके] निरन्तर योगका अभ्यास करता रहे। हे पर्वत! साधकको मेरे करचरणादि मधुर अंगोंमें चित्तको एक-एक करके केन्द्रित करना चाहिये और इस प्रकार विशुद्धचित्त होकर उसे मेरे समस्त रूपमें मनको स्थिर करना चाहिये। हे पर्वत! जबतक ज्ञानरूपिणी मुझ भगवतीमें मनका लय न हो जाय, तबतक मन्त्रजापकको जप-होमके द्वारा अपने इष्ट मन्त्रका अभ्यास करते रहना चाहिये॥ ५४—५९ ॥

मन्त्राभ्यास-योगके द्वारा ज्ञेय तत्त्वका ज्ञान प्राप्त हो जाता है। योगके बिना मन्त्र सिद्ध नहीं होता और मन्त्रके बिना योग सिद्ध नहीं होता। अत: योग और मन्त्र—इन दोनोंका अभ्यास-योग ही ब्रह्मसिद्धिका साधन है। अन्धकारसे आच्छादित घरमें स्थित घड़ा दीपकके प्रकाशमें दिखायी देने लगता है, इसी प्रकार मायासे आवृत आत्मा मन्त्रके द्वारा दृष्टिगोचर होने लगता है। इस प्रकार मैंने अंगोंसहित सम्पूर्ण योगविधि इस समय आपको बतला दी। गुरुके उपदेशसे ही यह योग जाना जा सकता है, इसके विपरीत करोड़ों शास्त्रोंके द्वारा भी यह प्राप्त नहीं किया जा सकता॥ ६०—६२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें मन्त्रसिद्धिसाधनवर्णन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

भगवतीके द्वारा हिमालयको ज्ञानोपदेश—ब्रह्मस्वरूपका वर्णन

देवी बोलीं—हे राजन्! इस प्रकार आसनपर सम्यक् विराजमान होकर योगसे युक्त चित्तवाले साधकको निष्कपट भक्तिके साथ मुझ ब्रह्मस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करना चाहिये॥ १॥

जो प्रकाशस्वरूप, सबके अत्यन्त समीप स्थित, हृदयरूपी गुफामें स्थित होनेके कारण 'गुहाचर' नामसे प्रसिद्ध परम तत्त्व है; उसीमें जितने भी चेष्टायुक्त, श्वास लेनेवाले तथा नेत्र खोलने-मूँदनेवाले प्राणी हैं—वे सब उस ब्रह्ममें ही कल्पित हैं॥ २॥

जो सत्कारणरूप माया तथा असत्कार्यरूप जगत्—इन दोनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ, प्राणियोंके ज्ञानसे परे अर्थात् उनके ज्ञानका अविषय, सर्वोत्कृष्ट तथा सबको प्रकाशित करनेवाला, अणुसे भी अणु (सूक्ष्म) है और जिसमें सभी लोक तथा उसमें रहनेवाले प्राणी स्थित हैं—उस ब्रह्मको आपलोग जानिये॥ ३॥

जो अक्षरब्रह्म है—वही सबका प्राण है, वही वाणी है, वही सबका मन है, वही परम सत्य तथा अमृतस्वरूप है। अतः हे सौम्य [पर्वतराज]! उस भेदन करनेयोग्य ब्रह्मस्वरूप लक्ष्यका भेदन करो॥ ४॥

हे सौम्य! उपनिषदरूपी महान् धनुषास्त्र लेकर उसपर उपासनाद्वारा तीक्ष्ण किये गये बाणको स्थापित करो और इसके बाद विषयोंसे विरक्त और भगवद्भावभावित चित्तके द्वारा उस बाणको खींचकर उस अक्षररूप ब्रह्मको लक्ष्य करके वेधन करो॥ ५॥

प्रणव धनुष, जीवात्मा बाण और ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। प्रमादरहित होकर उसका भेदन करना चाहिये और बाणकी भाँति उसमें तन्मय हो जाना चाहिये॥ ६॥

जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष और सम्पूर्ण प्राणोंके सहित मन ओतप्रोत है, उसी एकमात्र परब्रह्मको जानो और अन्य बातोंका परित्याग कर दो; [भवसागरसे पार होनेके लिये] यही अमृतका सेतु है॥ ७॥

रथके चक्केमें लगे अरोंकी भाँति जिस हृदयमें शरीरकी नाडियाँ एकत्र स्थित हैं—उसी हृदयमें विविध रूपोंमें प्रकट होनेवाला परब्रह्म निरन्तर संचरण करता है॥ ८॥

संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये 'ओम्'—इस प्रणवमन्त्रके जपसे परमात्माका ध्यान करो। आपका कल्याण हो। वह परमात्मा अन्धकारसे सर्वथा परे ब्रह्मलोकस्वरूप दिव्य आकाश (हृदय)-में प्रतिष्ठित है॥ ९॥

वह परब्रह्म मनोमय है और सबके प्राण तथा शरीरका नियमन करता है। वह समस्त प्राणियोंके हृदयमें निहित रहकर अन्नमय स्थूल शरीरमें प्रतिष्ठित है। जो आनन्दस्वरूप तथा अमृतमय परमात्मा सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है, उसे विज्ञान (अपरोक्षानुभूति)-के द्वारा बुद्धिमान् पुरुष भलीभाँति दृष्टिगत कर लेते हैं॥ १०॥

उस कार्य-कारणरूप परमात्माको देख लेनेपर इस जीवके हृदयकी ग्रन्थिका भेदन हो जाता है अर्थात् अनात्मपदार्थोंमें स्वरूपाध्यास समाप्त हो जाता है, सभी सन्देह दूर हो जाते हैं और सभी कर्म क्षीण हो जाते हैं॥ ११॥

वह निष्कल (व्यापक) ब्रह्म स्वर्णमय परकोश (आनन्दमयकोश)-में विराजमान है। वह शुभ्र तथा परम प्रकाशित वस्तुओंका भी प्रकाशक है। उसे आत्मज्ञानी पुरुष ही जान पाते हैं॥ १२॥

वहाँ न तो सूर्य प्रकाश फैला सकता है, न चन्द्रमा और ताराओंका समुदाय ही, न ये बिजलियाँ ही वहाँ प्रकाशित हो सकती हैं; फिर यह लौकिक अग्नि कैसे प्रकाशित हो सकती है। उसीके प्रकाशित होनेपर सब प्रकाशित होते हैं। यह सम्पूर्ण जगत् उसीके प्रकाशसे आलोकित होता है॥ १३॥

यह अमृतस्वरूप ब्रह्म ही आगे है, यह ब्रह्म ही पीछे है और यह ब्रह्म ही दाहिनी तथा बायीं ओर स्थित है। यह ब्रह्म ही ऊपर तथा नीचे फैला हुआ है। यह समग्र जगत् सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म ही है॥ १४॥

जिसका इस प्रकारका अनुभव है, वह श्रेष्ठ मनुष्य कृतार्थ है। ब्रह्मको प्राप्त पुरुष नित्य प्रसन्नचित्त रहता है; वह न शोक करता है और न किसी प्रकारकी आकांक्षा रखता है॥ १५॥

हे राजन्! भय दूसरेसे हुआ करता है; द्वैतभाव न रहनेपर [संसारसे] भय नहीं होता। उस ज्ञानीसे मेरा कभी वियोग नहीं होता और मुझसे उस ज्ञानीका वियोग कभी नहीं होता॥ १६॥

हे पर्वत! आप यह निश्चित जान लीजिये कि मैं ही वह हूँ और वही मेरा स्वरूप है। जिस किसी भी स्थानमें ज्ञानी रहे, उसको वहीं मेरा दर्शन होता रहता है॥ १७॥

मैं कभी भी न तीर्थमें, न कैलासपर और न तो वैकुण्ठमें ही निवास करती हूँ। मैं केवल अपने ज्ञानी भक्तके हृदयकमलमें निवास करती हूँ। मेरे ज्ञानपरायण भक्तकी एक बारकी पूजा मेरी करोड़ों पूजाओंका फल प्रदान करती है॥ १८$^1/_2$॥

जिसका चित्त चित्स्वरूप ब्रह्ममें लीन हो गया, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी जननी कृतकृत्य हो गयी और पृथ्वी उसे धारण करके पुण्यवती हो गयी॥ १९$^1/_2$॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! आपने जो ब्रह्मज्ञानके सम्बन्धमें पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब इसके आगे बतानेयोग्य कुछ शेष नहीं है। भक्तिसम्पन्न तथा शीलवान् ज्येष्ठ पुत्र तथा इसी प्रकारके गुणवाले शिष्यको इसे बताना चाहिये, किसी दूसरेसे इसे कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये। जिसकी परमदेव परमेश्वरमें परम भक्ति है तथा जिस प्रकार परमेश्वरमें है; उसी प्रकार गुरुमें भी है, उस महात्मा पुरुषके हृदयमें ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं॥ २०—२२$^1/_2$॥

जिसके द्वारा इस ब्रह्मविद्याका उपदेश दिया जाता है, वह साक्षात् परमेश्वर ही है। उपदिष्ट विद्याका प्रत्युपकार करनेमें मनुष्य सर्वथा असमर्थ है, इसलिये वह गुरुका सदा ऋणी रहता है। ब्रह्मजन्म प्रदान करनेवाला (ब्रह्म-तत्त्वका साक्षात्कार करानेवाला) गुरु माता-पितासे भी श्रेष्ठ कहा गया है; क्योंकि माता-पितासे प्राप्त जीवन तो नष्ट हो जाता है, किंतु गुरुद्वारा प्राप्त ब्रह्मजन्म कभी नष्ट नहीं होता॥ २३-२४$^1/_2$॥

हे पर्वत! **'तस्मै न द्रुह्येत्'** अर्थात् उन गुरुसे द्रोह नहीं करना चाहिये। इत्यादि वचन वेदने भी कहे हैं। अतः शास्त्रसिद्धान्त है कि ब्रह्मज्ञानदाता गुरु सबसे श्रेष्ठ होता है। हे नग! शिवके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर सकते हैं, किंतु गुरुके रुष्ट होनेपर शंकर भी रक्षा नहीं कर सकते, अतः पूर्ण प्रयत्नसे गुरुको सन्तुष्ट रखना चाहिये। तन-मन-वचनसे सर्वदा गुरुपरायण रहना चाहिये, अन्यथा कृतघ्न होना पड़ता है और कृतघ्न हो जानेपर उद्धार नहीं होता॥ २५—२७$^1/_2$॥

पूर्व समयकी बात है—अथर्वणमुनिके द्वारा इन्द्रसे ब्रह्मविद्याकी याचना किये जानेपर इन्द्रने अथर्वणमुनिको ब्रह्मविद्या इस शर्तपर बतायी कि किसी अन्यको बतानेपर आपका सिर काट लूँगा। अश्विनीकुमारोंके याचना करनेपर मुनिने उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश कर दिया और इन्द्रने मुनिका सिर काट लिया। तदनन्तर सुरश्रेष्ठ दोनों वैद्योंने उनके सिरको कटा देखकर घोड़ेका सिर मुनिपर पुनः जोड़ दिया। हे भूधर! हे पर्वतराज! इस प्रकार महान् संकटसे सम्पादित होनेवाली ब्रह्मविद्याको जिसने प्राप्त कर लिया, वह धन्य तथा कृतकृत्य है॥ २८—३०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें ब्रह्मविद्योपदेशवर्णन' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

भगवतीद्वारा अपनी श्रेष्ठ भक्तिका वर्णन

हिमालय बोले—हे अम्ब! आप मुझे अपनी वह भक्ति बतानेकी कृपा कीजिये, जिस भक्तिके द्वारा अपरिपक्व वैराग्यवाले मध्यम अधिकारीको भी सुगमतापूर्वक ज्ञान हो जाय॥ १॥

देवी बोलीं—हे पर्वतराज! हे सत्तम! मोक्षप्राप्तिके साधनभूत कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—ये मेरे तीन मार्ग प्रसिद्ध हैं। इन तीनोंमें भी यह भक्तियोग सर्वथा सुलभ होने, [बाह्य साधनोंसे निरपेक्ष केवल] मनसे सम्पादित होने और शरीर तथा चित्त आदिको पीड़ा न पहुँचानेके कारण सरलतापूर्वक किया जा सकता है॥ २-३॥

मनुष्योंके गुणभेदके अनुसार वह भक्ति भी तीन प्रकारकी कही गयी है। जो मनुष्य डाह तथा क्रोधसे युक्त होकर दम्भपूर्वक दूसरोंको संतप्त करनेके उद्देश्यसे भक्ति करता है, उसकी वह भक्ति तामसी होती है॥ ४१/२॥

हे पर्वतराज! सर्वदा हृदयमें कामनाएँ रखनेवाला, यश चाहनेवाला तथा भोगका लोलुप जो मनुष्य परपीडासे रहित होकर मात्र अपने ही कल्याणके लिये उन-उन फलोंकी प्राप्तिके लिये अत्यन्त भक्तिपूर्वक मेरी उपासना करता है, साथ ही वह मन्दमति भेदबुद्धिके कारण मुझ भगवतीको अपनेसे भिन्न समझता है, उसकी वह भक्ति राजसी कही गयी है॥ ५—७॥

हे नग! जो मनुष्य अपना पाप धो डालनेके लिये अपना कर्म परमेश्वरको अर्पित कर देता है और 'वेदकी आज्ञाके अनुसार मुझे प्रतिदिन वही वेदनिर्दिष्ट कर्म अवश्य करना चाहिये'—ऐसा मनमें निश्चित करके [सेव्य-सेवक]-की भेदबुद्धिका आश्रय लेकर मेरी प्रसन्नताके लिये कर्म करता है; उस मनुष्यकी वह भक्ति सात्त्विकी होती है॥ ८-९॥

[सेव्य-सेवककी] भेदबुद्धिका सहारा लेकर की गयी यह सात्त्विकी भक्ति पराभक्तिकी प्राप्ति करानेवाली सिद्ध होती है। पूर्वमें कही गयी तामसी और राजसी—दोनों भक्तियाँ पराभक्तिकी प्राप्तिका साधन नहीं मानी गयी हैं॥ १०॥

अब मैं पराभक्तिका वर्णन कर रही हूँ, आप उसे सुनिये—नित्य मेरे गुणोंका श्रवण और मेरे नामका संकीर्तन करना, कल्याण एवं गुणस्वरूप रत्नोंकी भण्डार मुझ भगवतीमें तैलधाराकी भाँति अपना चित्त सर्वदा लगाये रखना, किसी प्रकारकी हेतुभावना कभी नहीं होने देना, सामीप्य; सार्ष्टि; सायुज्य और सालोक्य मुक्तियोंकी कामना न होना—इन गुणोंसे युक्त जो भक्त मेरी सेवासे बढ़कर किसी भी वस्तुको कभी श्रेष्ठ नहीं समझता और सेव्य-सेवककी उत्कृष्ट भावनाके कारण मोक्षकी भी आकांक्षा नहीं रखता, परम भक्तिके साथ सावधान होकर जो मेरा ही ध्यान करता रहता है, मुझमें तथा अपनेमें भेदबुद्धि छोड़कर अभेदबुद्धि रखते हुए मुझे नित्य जानता है, सभी जीवोंमें मेरे ही रूपका चिन्तन करता है, जैसी प्रीति अपने प्रति होती है; वैसी ही दूसरोंमें भी रखता है, चैतन्यपरब्रह्मकी समानरूपसे सर्वत्र व्याप्ति समझकर किसीमें भी भेद नहीं करता, हे राजन्! सर्वत्र विद्यमान् सभी प्राणियोंमें मुझ सर्वरूपिणीको विराजमान जानकर मेरा नमन तथा पूजन करता है, चाण्डालतकमें मेरी ही भावना करता है और भेदका परित्याग करके किसीसे भी द्रोहभाव नहीं रखता, हे प्रभो! जो मेरे स्थानोंके दर्शन, मेरे भक्तोंके दर्शन, मेरे शास्त्रोंके श्रवण तथा मेरे तन्त्र-मन्त्रों आदिमें श्रद्धा रखता है, हे पर्वतराज! जो मेरे प्रति प्रेमसे आकुल चित्तवाला, मेरा निरन्तर चिन्तन करते हुए पुलकित शरीरवाला, प्रेमके आँसुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाला तथा कंठ गद्गद होनेसे अवरुद्ध वाणीवाला होकर जगत्को उत्पन्न करनेवाली तथा सभी कारणोंकी कारण मुझ परमेश्वरीका अनन्य भावसे पूजन करता है, जो मेरे नित्य तथा नैमित्तिक सभी दिव्य व्रतोंको धनकी कृपणतासे रहित होकर भक्तिपूर्वक नित्य करता है, हे भूधर! जो स्वभावसे ही मेरा उत्सव देखनेकी अभिलाषा रखता है तथा मेरा उत्सव आयोजित करता है तथा जो अहंकार आदिसे रहित तथा देहभावनासे विहीन

होकर ऊँचे स्वरसे मेरे नामोंका ही कीर्तन करते हुए नृत्य करता है और प्रारब्धके द्वारा जैसा जो किया जाता है, वह वैसा ही होता है, इसलिये अपने शरीरकी रक्षा आदि करनेकी भी कोई चिन्ता नहीं करता है, ऐसे पुरुषोंकी जो भक्ति कही गयी, वह पराभक्तिके नामसे विख्यात है, जिसमें देवीको छोड़कर अन्य किसीकी भी भावना नहीं की जाती॥ ११—२६॥

हे भूधर! इस प्रकारकी पराभक्ति जिसके हृदयमें उत्पन्न हो जाती है, उसका उसी क्षण मेरे चिन्मयरूपमें विलय हो जाता है॥ २७॥

भक्तिकी जो पराकाष्ठा है, उसीको ज्ञान कहा गया है और वही वैराग्यकी सीमा भी है; क्योंकि ज्ञान प्राप्त हो जानेपर भक्ति और वैराग्य—ये दोनों ही स्वयं सिद्ध हो जाते हैं॥ २८॥

हे नग! मेरी भक्ति करनेपर भी जिसे प्रारब्धवश मेरा ज्ञान नहीं हो पाता है, वह मेरे धाम 'मणिद्वीप'में जाता है। वहाँ जाकर समस्त प्रकारके भोगोंमें अनासक्त होता हुआ वह अपना समय व्यतीत करता है। हे नग! अन्तमें उसे मेरे चिन्मयरूपका सम्यक् ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञानके प्रभावसे वह सदाके लिये मुक्त हो जाता है; क्योंकि ज्ञानसे ही मुक्ति होती है; इसमें सन्देह नहीं है। इस लोकमें जिस व्यक्तिको हृदयमें स्थित प्रत्यगात्माका स्वरूपावबोध हो जाता है, मेरे ज्ञानपरायण उस भक्तके प्राण उत्क्रमण नहीं करते अर्थात् इस शरीरमें ही प्राणोंका लय हो जाता है। जो मनुष्य ब्रह्मको जान लेता है, वह स्वयं ब्रह्मका ही रूप होकर उसी ब्रह्मको ही प्राप्त हो जाता है॥ २९—३२॥

जैसे कंठमें स्थित सोनेका हार भ्रमवश खो गयेके समान प्रतीत होने लगता है, किंतु भ्रमका नाश होते ही वह प्राप्त हो जाता है, जबकि वह मिला हुआ पहलेसे ही था। हे पर्वतश्रेष्ठ! मेरा स्वरूप ज्ञात और अज्ञातसे विलक्षण है। जैसे दर्पणपर परछाहीं पड़ती है, वैसे ही इस शरीरमें आत्माकी परछाहींका अनुभव होता है। जैसे जलमें प्रतिबिम्ब पड़ता है, वैसे ही पितृलोकमें अनुभव होता है। छाया और प्रकाश जैसे स्पष्टतः भिन्न दीखते हैं, वैसे ही मेरे लोकमें द्वैतभावसे रहित ज्ञानकी प्राप्ति होती है॥ ३३—३५॥

यदि मनुष्य वैराग्ययुक्त होकर पूर्ण ज्ञानके बिना मृत्युको प्राप्त हो जाय तो एक कल्पतक निरन्तर ब्रह्मलोकमें निवास करता है। उसके बाद पवित्र श्रीमान् पुरुषोंके घरमें उसका जन्म होता है। वहाँपर वह साधना करता है और फिर उसमें ज्ञानका उदय होता है॥ ३६-३७॥

हे राजन्! एक जन्ममें मनुष्यको ज्ञान नहीं होता, अपितु अनेक जन्मोंमें ज्ञानका आविर्भाव होता है। अतः पूर्ण प्रयत्नके साथ ज्ञानप्राप्तिके लिये उपायका आश्रय लेना चाहिये, अन्यथा महान् अनर्थ होता है; क्योंकि यह मनुष्य-जन्म अत्यन्त दुर्लभ है, उसमें भी ब्राह्मणवर्णमें और उसमें भी वेदज्ञानकी प्राप्ति होना महान् दुर्लभ है। साथ ही शम, दम आदि छः सम्पदाएँ, योगसिद्धि तथा उत्तम गुरुकी प्राप्ति—यह सब इस लोकमें दुर्लभ है। अनेक जन्मोंके पुण्योंसे इन्द्रियोंमें सदा कार्य करते रहनेकी क्षमता, शरीरका संस्कारसम्पन्न रहना तथा मोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न होती है। जो मनुष्य इस प्रकारके सफल साधनसे युक्त रहनेपर भी ज्ञानके लिये प्रयत्न नहीं करता, उसका जन्म निरर्थक है॥ ३८—४२॥

अतएव हे राजन्! मनुष्यको यथाशक्ति ज्ञानप्राप्तिके लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। उससे मनुष्य एक-एक पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है। दूधमें छिपे हुए घृतकी भाँति प्रत्येक प्राणीमें विज्ञान रहता है। उसे मनरूपी मथानीसे निरन्तर मथते रहना चाहिये और इस प्रकार उस विज्ञानको प्राप्त करके कृतार्थ हो जाना चाहिये—ऐसा वेदान्तका डिंडिमघोष है। [हे पर्वतराज हिमालय!] मैंने आपको सब कुछ संक्षेपमें बता दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४३—४५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें भक्तिमहिमावर्णन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

भगवतीके द्वारा देवीतीर्थों, व्रतों तथा उत्सवोंका वर्णन

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! इस पृथ्वीतलपर कौन-कौनसे पवित्र, मुख्य, दर्शनीय तथा आप भगवतीके लिये अत्यन्त प्रिय स्थान हैं? हे माता! आपको सन्तुष्ट करनेवाले जो-जो व्रत तथा उत्सव हों, उन सबको भी मुझे बताइये, जिससे मुझ-जैसा प्राणी कृतकृत्य हो जाय॥ १-२॥

देवी बोलीं—दृष्टिगोचर होनेवाले सभी स्थान मेरे अपने हैं, सभी काल व्रतयोग्य हैं तथा सभी समयोंमें मेरे उत्सव मनाये जा सकते हैं; क्योंकि मैं सर्वरूपिणी हूँ। फिर भी हे पर्वतराज! भक्तवात्सल्यके कारण मैं कतिपय स्थानोंको बता रही हूँ, आप सावधान होकर मेरा वचन सुनिये॥ ३-४॥

कोलापुर एक अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान है, जहाँ लक्ष्मी सदा निवास करती हैं। मातृपुर दूसरा परम स्थान है, जहाँ भगवती रेणुका विराजमान हैं॥ ५॥

तीसरा स्थान तुलजापुर है। इसी प्रकार सप्तशृंग भी एक स्थान है। हिंगुला, ज्वालामुखी, शाकम्भरी, भ्रामरी, रक्तदन्तिका और दुर्गा—इन देवियोंके उत्तम स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं॥ ६-७॥

भगवती विन्ध्यवासिनीका स्थान [विन्ध्यपर्वत] सर्वोत्कृष्ट है। देवी अन्नपूर्णाका परम स्थान श्रेष्ठ कांचीपुर है। भगवती भीमा, विमला, श्रीचन्द्रला और कौशिकीके महास्थान इन्हींके नामोंसे प्रसिद्ध हैं॥ ८-९॥

भगवती नीलाम्बाका परम स्थान नीलपर्वतके शिखरपर है और देवी जाम्बूनदेश्वरीका पवित्र स्थान श्रीनगरमें है। भगवती गुह्यकालीका महान् स्थान है, जो नेपालमें प्रतिष्ठित है और देवी मीनाक्षीका श्रेष्ठ स्थान है, जो चिदम्बरमें स्थित बताया गया है॥ १०-११॥

भगवती सुन्दरीका महान् स्थान वेदारण्यमें अधिष्ठित है और भगवती पराशक्तिका महास्थान एकाम्बरमें स्थित है। भगवती महालसा और इसी प्रकार देवी योगेश्वरीके महान् स्थान इन्हींके नामोंसे विख्यात हैं। भगवती नीलसरस्वतीका स्थान चीन देशमें स्थित कहा गया है॥ १२-१३॥

भगवती बगलाका सर्वोत्तम स्थान वैद्यनाथधाममें स्थित माना गया है। मुझ श्रीमत्-श्रीभुवनेश्वरीका स्थान मणिद्वीप बताया गया है। श्रीमत्त्रिपुरभैरवीका महान् स्थान कामाख्यायोनिमण्डल है, यह भूमण्डलपर क्षेत्ररत्नस्वरूप है तथा महामायाद्वारा अधिवासित क्षेत्र है॥ १४-१५॥

धरातलपर इससे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कहीं नहीं है, यहाँ भगवती प्रत्येक माहमें साक्षात् रजस्वला हुआ करती हैं। उस समय वहाँके सभी देवता पर्वतस्वरूप हो जाते हैं और अन्य महान् देवता भी वहाँ पर्वतोंपर निवास करते हैं। विद्वान् पुरुषोंने वहाँकी सम्पूर्ण भूमिको देवीरूप कहा है। इस कामाख्यायोनिमण्डलसे बढ़कर श्रेष्ठ स्थान कोई नहीं है॥ १६—१८॥

ऐश्वर्यमय पुष्करक्षेत्र भगवती गायत्रीका उत्तम स्थान कहा गया है। अमरेशमें चण्डिका तथा प्रभासमें भगवती पुष्करेक्षिणी विराजमान हैं। महास्थान नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी विराजमान हैं। पुष्कराक्षमें देवी पुरुहूता और आषाढीमें भगवती रति प्रतिष्ठित हैं॥ १९-२०॥

चण्डमुण्डी नामक महान् स्थानमें परमेश्वरी दण्डिनी और भारभूतिमें देवी भूति तथा नाकुलमें देवी नकुलेश्वरी विराजमान हैं। हरिश्चन्द्र नामक स्थानमें भगवती चन्द्रिका और श्रीगिरिपर शांकरी प्रतिष्ठित कही गयी हैं। जप्येश्वर स्थानमें त्रिशूला और आम्रातकेश्वरमें देवी सूक्ष्मा हैं॥ २१-२२॥

महाकालक्षेत्रमें शांकरी, मध्यम नामक स्थानमें शर्वाणी और केदार नामक महान् क्षेत्रमें वे भगवती मार्गदायिनी अधिष्ठित हैं। भैरव नामक स्थानमें भगवती भैरवी और गयामें भगवती मंगला प्रतिष्ठित कही गयी हैं। कुरुक्षेत्रमें देवी स्थाणुप्रिया और नाकुलमें भगवती स्वायम्भुवीका स्थान है॥ २३-२४॥

कनखलमें भगवती उग्रा, विमलेश्वरमें विश्वेशा, अट्टहासमें महानन्दा और महेन्द्रपर्वतपर देवी महान्तका विराजमान हैं। भीमपर्वतपर भगवती भीमेश्वरी, वस्त्रापथ

नामक स्थानमें भवानी शांकरी और अर्धकोटिपर्वतपर भगवती रुद्राणी प्रतिष्ठित कही गयी हैं॥ २५-२६॥

अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-में भगवती विशालाक्षी, महालय क्षेत्रमें महाभागा, गोकर्णमें भद्रकर्णी और भद्रकर्णकमें देवी भद्रा विराजमान हैं। सुवर्णाक्ष नामक स्थानमें भगवती उत्पलाक्षी, स्थाणुसंज्ञक स्थानमें देवी स्थाण्वीशा, कमलालयमें कमला, छगलण्डकमें प्रचण्डा, कुरण्डलमें त्रिसन्ध्या, माकोटमें मुकुटेश्वरी, मण्डलेशमें शाण्डकी और कालंजर-पर्वतपर काली प्रतिष्ठित हैं। शंकुकर्णपर्वतपर भगवती ध्वनि विराजमान बतायी गयी हैं। स्थूलकेश्वरपर भगवती स्थूला हैं। परमेश्वरी हृल्लेखा ज्ञानियोंके हृदयकमलमें विराजमान रहती हैं॥ २७—३०॥

बताये गये ये स्थान देवीके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। हे पर्वतराज! पहले उन क्षेत्रोंका माहात्म्य सुनकर तत्पश्चात् शास्त्रोक्त विधिसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये अथवा हे नगश्रेष्ठ! ये सभी क्षेत्र काशीमें भी स्थित हैं, इसलिये देवीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले मनुष्यको निरन्तर वहाँ रहना चाहिये। वहाँ रहकर उन स्थानोंका दर्शन, भगवतीके मन्त्रोंका निरन्तर जप और उनके चरणकमलका नित्य ध्यान करनेवाला मनुष्य भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है॥ ३१—३३½॥

हे नग! जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर भगवतीके इन नामोंका पाठ करता है, उसके समस्त पाप उसी क्षण शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं। जो व्यक्ति श्राद्धके समय ब्राह्मणोंके समक्ष इन पवित्र नामोंका पाठ करता है, उसके सभी पितर मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३४-३५½॥

हे सुव्रत! अब मैं देवीके व्रतोंके विषयमें आपको बताऊँगा। सभी स्त्रियों और पुरुषोंको ये व्रत प्रयत्नपूर्वक करने चाहिये॥ ३६½॥

व्रतोंमें जो तृतीयाके व्रत हैं; वे अनन्ततृतीया, रसकल्याणिनी और आर्द्रानन्दकर नामसे प्रसिद्ध हैं। शुक्रवार, कृष्णचतुर्दशी तथा भौमवारको देवीका व्रत किया जाता है। प्रदोष भी देवीव्रत है; उस दिन देवाधिदेव भगवान् शिव सायंकालके समय देवी पार्वतीको कुशासनपर विराजमान करके उनके समक्ष देवताओंके साथ नृत्य करते हैं। उस दिन उपवास करके सायंकालके प्रदोषमें भगवती शिवाकी पूजा करनी चाहिये। देवीको विशेषरूपसे सन्तुष्ट करनेवाला यह प्रदोष प्रत्येक पक्षमें करना चाहिये॥ ३७—४०½॥

हे पर्वत! सोमवारका व्रत मुझे अत्यधिक सन्तुष्ट करनेवाला है। इस व्रतमें भी [उपवास करके] भगवतीकी पूजाकर रातमें भोजन करना चाहिये। इसी प्रकार चैत्र और आश्विन महीनोंके दोनों नवरात्रव्रत मेरे लिये अत्यन्त प्रियकर हैं॥ ४१-४२॥

हे विभो! इसी प्रकार और भी नित्य तथा नैमित्तिक व्रत हैं। जो मनुष्य राग-द्वेषसे रहित होकर मेरी प्रसन्नताके लिये इन व्रतोंको करता है, वह मेरा सायुज्यपद प्राप्त कर लेता है। वह मेरा भक्त है और मुझे अतिप्रिय है। हे विभो! व्रतोंके अवसरपर झूला सजाकर उत्सव मनाने चाहिये। मेरा शयनोत्सव, जागरणोत्सव, रथोत्सव और दमनोत्सव आयोजित करना चाहिये॥ ४३—४५॥

श्रावण महीनेमें होनेवाला पवित्रोत्सव भी मेरे लिये प्रीतिकारक है। मेरे भक्तको चाहिये कि वह इसी तरहसे अन्य महोत्सवोंको भी सदा मनाये। उन अवसरोंपर मेरे भक्तों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं और बटुकोंको मेरा ही स्वरूप समझकर उनमें मन स्थित करके उन्हें प्रेमपूर्वक भोजन कराना चाहिये, साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर पुष्प आदिसे इनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४६-४७½॥

जो मनुष्य सावधान होकर भक्तिपूर्वक प्रत्येक वर्ष ऐसा करता है, वह धन्य तथा कृतकृत्य है और वह शीघ्र ही मेरा प्रियपात्र बन जाता है। मुझे प्रसन्नता प्रदान करनेवाला यह सब प्रसंग मैंने संक्षेपमें आपसे कह दिया। उपदेश न माननेवाले तथा मुझमें भक्ति न रखनेवाले मनुष्यके समक्ष इसे कभी भी प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ४८-४९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें श्रीदेवीके महोत्सव, व्रत और स्थानका वर्णन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

देवी-पूजनके विविध प्रकारोंका वर्णन

हिमालय बोले—हे देवेश्वरि! हे महेश्वरि! हे करुणासागरे! हे अम्बिके! अब आप यथार्थरूपसे अपने पूजनकी विधिको भलीभाँति बतलाइये॥ १॥

श्रीदेवी बोलीं—हे राजन्! हे पर्वतश्रेष्ठ! मैं यथार्थ-रूपमें जगदम्बाको प्रसन्न करनेवाली पूजाविधि बता रही हूँ, महती श्रद्धाके साथ आप इसे सुनिये॥ २॥

मेरी पूजा दो प्रकारकी है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य पूजा भी वैदिकी और तान्त्रिकी—दो प्रकारकी कही गयी है॥ ३॥

हे भूधर! वैदिकी पूजा भी मूर्तिभेदसे दो प्रकारकी होती है। वेददीक्षासे सम्पन्न वैदिकोंद्वारा वैदिकी पूजा की जानी चाहिये और तन्त्रोक्त दीक्षासे युक्त पुरुषोंके द्वारा तान्त्रिकी पूजा की जानी चाहिये। इस प्रकार पूजाके रहस्यको न समझकर जो अज्ञानी मनुष्य इसके विपरीत करता है, उसका सर्वथा अधःपतन हो जाता है॥ ४-५१/२॥

उसमें जो पहली वैदिकी पूजा कही गयी है, उसे मैं बता रही हूँ, हे भूधर! तुम अनन्त मस्तक, नेत्र तथा चरणवाले मेरे जिस महान् रूपका साक्षात् दर्शन कर चुके हो और जो समस्त शक्तियोंसे सम्पन्न, प्रेरणा प्रदान करनेवाला तथा परात्पर है; उसी रूपका नित्य पूजन, नमन, ध्यान तथा स्मरण करना चाहिये। हे नग! मेरी प्रथम पूजाका यही स्वरूप बताया गया है। आप शान्त होकर समाहित मनसे और दम्भ तथा अहंकारसे रहित होकर उसके परायण होइये, उसीका यजन कीजिये, उसीकी शरणमें जाइये और चित्तसे सदा उसीका दर्शन-जप-ध्यान कीजिये॥ ६—१०॥

अनन्य एवं प्रेमपूर्ण भक्तिसे मेरे उपासक बनकर यज्ञोंके द्वारा मेरी पूजा कीजिये और तपस्या तथा दानके द्वारा मुझे पूर्णरूपसे सन्तुष्ट कीजिये। ऐसा करनेपर मेरी कृपासे आप भवबन्धनसे छूट जायँगे॥ १११/२॥

जो मेरे ऊपर निर्भर रहते हैं और अपना चित्त मुझमें लगाये रखते हैं, वे मेरे उत्तम भक्त माने गये हैं। यह मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं शीघ्र ही इस भवसागरसे उनका उद्धार कर देती हूँ॥ १२१/२॥

हे राजन्! मैं सर्वथा कर्मयुक्त ध्यानसे अथवा भक्तिपूर्ण ज्ञानसे ही प्राप्त हो सकती हूँ। केवल कर्मोंसे ही मेरी प्राप्ति सम्भव नहीं है॥ १३१/२॥

धर्मसे भक्ति उत्पन्न होती है और भक्तिसे परब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है। श्रुति और स्मृतिके द्वारा जो कुछ भी प्रतिपादित है, वही धर्म कहा गया है। अन्य शास्त्रोंके द्वारा जो निरूपित किया गया है, उसे धर्माभास कहा जाता है॥ १४-१५॥

मुझ सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिसम्पन्न भगवतीसे वेद उत्पन्न हुआ है और इस प्रकार मुझमें अज्ञानका अभाव रहनेके कारण श्रुति भी अप्रामाणिक नहीं है। श्रुतिके अर्थको लेकर ही स्मृतियाँ निकली हुई हैं। अतः श्रुतियों और मनु आदि स्मृतियोंकी प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है॥ १६-१७॥

स्मृति आदिमें कहीं-कहीं कटाक्षपूर्वक वामाचार-सम्बन्धी वेदविरुद्ध कही गयी बातको भी लोग धर्मके रूपमें स्वीकार करते हैं, किंतु वैदिक विद्वानोंके द्वारा वह अंश कभी भी ग्राह्य नहीं है॥ १८॥

अन्य शास्त्रकर्ताओंके वाक्य अज्ञानमूलक भी हो सकते हैं। अतः अज्ञानदोषसे दूषित होनेके कारण उनकी उक्तिकी कोई प्रामाणिकता नहीं है। इसलिये मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालेको धर्मकी प्राप्तिके लिये सदा वेदका आश्रय ग्रहण करना चाहिये॥ १९१/२॥

जिस प्रकार लोकमें राजाकी आज्ञाकी अवहेलना कभी नहीं की जाती, वैसे ही मनुष्य मुझ सर्वेश्वरी भगवतीकी आज्ञास्वरूपिणी उस श्रुतिका त्याग कैसे कर सकते हैं? मेरी आज्ञाके पालनके लिये ही तो ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि जातियाँ मेरे द्वारा सृजित की गयी हैं। अब मेरी श्रुतिकी वाणीका रहस्य समझ लीजिये॥ २०-२११/२॥

हे भूधर! जब-जब धर्मकी हानि होती है और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न अवतार धारण करती हूँ। हे राजन्! इसीलिये देवताओं और

दैत्योंका विभाग हुआ है॥ २२-२३॥

जो लोग उन धर्मोंका सदा आचरण नहीं करते, उन्हें शिक्षा देनेके लिये मैंने अनेक नरकोंकी व्यवस्था कर रखी है, जिनके सुननेमात्रसे भय उत्पन्न हो जाता है॥ २४॥

जो लोग वेदप्रतिपादित धर्मका परित्याग करके अन्य धर्मका आश्रय लेते हैं, राजाको चाहिये कि वह ऐसे अधर्मियोंको अपने राज्यसे निष्कासित कर दे। ब्राह्मण उन अधार्मिकोंसे सम्भाषण न करें और द्विजगण उन्हें अपनी पंक्तिमें न बैठायें॥ २५१/२॥

इस लोकमें श्रुति-स्मृतिविरुद्ध नानाविध अन्य जो भी शास्त्र हैं, वे हर प्रकारसे तामस हैं। वाम, कापालक, कौलक और भैरवागम—ऐसे ही शास्त्र हैं, जो मोहमें डाल देनेके लिये शिवजीके द्वारा प्रतिपादित किये गये हैं—इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी कारण नहीं है॥ २६-२७१/२॥

वेदमार्गसे च्युत होनेके कारण जो उच्च कोटिके ब्राह्मण दक्षप्रजापतिके शापसे, महर्षि भृगुके शापसे और महर्षि दधीचिके शापसे दग्ध कर दिये गये थे; उनके उद्धारके लिये भगवान् शंकरने सोपान क्रमसे शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त तथा गाणपत्य आगमोंकी रचना की। उनमें कहीं-कहीं वेदविरुद्ध अंश भी कहा गया है। वैदिकोंको उस अंशके ग्रहण कर लेनेमें कोई दोष नहीं होता है॥ २८—३१॥

वेदसे सर्वथा भिन्न अर्थको स्वीकार करनेके लिये द्विज अधिकारी नहीं है। वेदाधिकारसे रहित व्यक्ति ही उसे ग्रहण करनेका अधिकारी है। अतः वैदिक पुरुषको पूरे प्रयत्नके साथ वेदका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये; क्योंकि वेद-प्रतिपादित धर्मसे युक्त ज्ञान ही परब्रह्मको प्रकाशित कर सकता है॥ ३२-३३॥

सम्पूर्ण इच्छाओंको त्यागकर मेरी ही शरणको प्राप्त, सभी प्राणियोंपर दया करनेवाले, मान-अहंकारसे रहित, मनसे मेरा ही चिन्तन करनेवाले, मुझमें ही अपना प्राण समर्पित करनेवाले तथा मेरे स्थानोंका वर्णन करनेमें संलग्न रहनेवाले जो संन्यासी, वानप्रस्थ, गृहस्थ और ब्रह्मचारी मेरे ऐश्वरसंज्ञक योगकी सदा भक्तिपूर्वक उपासना करते हैं—मुझमें निरन्तर अनुरक्त रहनेवाले उन साधकोंके अज्ञानजनित अन्धकारको मैं ज्ञानरूपी सूर्यके प्रकाशसे नष्ट कर देती हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३४—३६१/२॥

हे पर्वतराज! इस प्रकार मैंने पहली वैदिक पूजाके स्वरूपका संक्षेपमें वर्णन कर दिया। अब दूसरी पूजाके विषयमें बता रही हूँ॥ ३७१/२॥

मूर्ति, वेदी, सूर्य-चन्द्रमण्डल, जल, बाणलिंग, यन्त्र, महापट अथवा हृदयकमलमें सगुण रूपवाली परात्पर भगवतीका इस प्रकार ध्यान करे कि वे करुणासे परिपूर्ण हैं, तरुण अवस्थामें विद्यमान हैं, अरुणके समान अरुण आभासे युक्त हैं और सौन्दर्यके सारतत्त्वकी सीमा हैं। इनके सम्पूर्ण अंग परम मनोहर हैं, वे शृंगाररससे परिपूर्ण हैं तथा सदा भक्तोंके दुःखसे दुःखी रहा करती हैं। इन जगदम्बाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त रहता है; वे मस्तकपर बालचन्द्रमा तथा मयूरपंख धारण की हुई हैं; उन्होंने पाश, अंकुश, वर तथां अभयमुद्रा धारण कर रखा है; वे आनन्दमयरूपसे सम्पन्न हैं—इस प्रकार ध्यान करके अपने वित्त-सामर्थ्यके अनुसार विभिन्न उपचारोंसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ३८—४२॥

जबतक अन्तःपूजामें अधिकार नहीं हो जाता, तबतक यह बाह्यपूजा करनी चाहिये। पुनः अन्तःपूजामें अधिकार हो जानेपर उस बाह्यपूजाको छोड़ देना चाहिये। जो आभ्यन्तरपूजा है, उसे ज्ञानरूप मुझ ब्रह्ममें चित्तका लय होना कहा गया है। उपाधिरहित ज्ञान ही मेरा परम रूप है, अतः मेरे ज्ञानमयरूपमें अपना आश्रयहीन चित्त लगा देना चाहिये॥ ४३-४४१/२॥

इस ज्ञानमयरूपके अतिरिक्त यह मायामय जगत् पूर्णतः मिथ्या है। अतः भव-बन्धनके नाशके लिये एकनिष्ठ तथा योगयुक्त चित्तसे मुझ सर्वसाक्षिणी तथा आत्मस्वरूपिणी भगवतीका चिन्तन करना चाहिये॥ ४५-४६॥

हे पर्वतश्रेष्ठ! इसके बाद मैं बाह्यपूजाका विस्तारपूर्वक वर्णन कर रही हूँ, आप सावधान मनसे सुनिये॥ ४७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें श्रीदेवीकी पूजाविधिका वर्णन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

देवीकी पूजा-विधि तथा फलश्रुति

देवी बोलीं—प्रातःकाल उठकर सिरमें प्रतिष्ठित ब्रह्मरन्ध्र (सहस्रार-चक्र)-में कर्पूरके समान आभावाले उज्ज्वल कमलका ध्यान करना चाहिये। उसपर अत्यन्त प्रसन्न, वस्त्र-आभूषणसे सुसज्जित तथा शक्तिसे सम्पन्न अपने ही स्वरूपवाले श्रीगुरु विराजमान हैं—ऐसी भावना करनी चाहिये। उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विद्वान् साधकको भगवती कुण्डलिनी शक्तिका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—प्रथम प्रयाणमें अर्थात् ब्रह्मरन्ध्रमें संचरण करनेपर प्रकाश-पुंजरूपवाली, प्रतिप्रयाणमें अर्थात् मूलाधारमें संचरण करनेपर अमृतमयस्वरूपवाली तथा अन्तःपदमें अर्थात् सुषुम्णा नाड़ीमें विराजनेपर आनन्दमयी स्त्रीरूपिणी देवी कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १—३॥

इस प्रकार कुण्डलिनी शक्तिका ध्यान करके उसकी शिखाके मध्यमें सच्चिदानन्दरूपिणी मुझ भगवतीका ध्यान करना चाहिये। इसके बाद शौच आदि सभी नित्य क्रियाएँ सम्पन्न करनी चाहिये॥ ४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये अग्निहोत्र करे। पुनः होमके अन्तमें अपने आसनपर बैठकर पूजनका संकल्प करना चाहिये। पहले भूतशुद्धि करके मातृकान्यास करे; हृल्लेखामातृकान्यास नित्य ही करना चाहिये। मूलाधारमें हकार, हृदयमें रकार, भ्रूमध्यमें ईकार तथा मस्तकमें ह्रींकारका न्यास करना चाहिये। तत्-तत् मन्त्रोंके कथनानुसार अन्य सभी न्यासोंको सम्पन्न करना चाहिये। फिर अपने शरीरमें धर्म आदि सभी सत्कर्मोंसे परिपूर्ण एक दिव्य पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ५—८॥

तदनन्तर विज्ञ पुरुषको प्राणायामके प्रभावसे खिले हुए अपने हृदयकमलरूप स्थानमें पंचप्रेतासनके ऊपर महादेवीका ध्यान करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव—ये पाँचों महाप्रेत मेरे पादमूलमें अवस्थित हैं। ये महाप्रेत पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—इन पाँच भूतों एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय तथा अतीत—इन पाँच अवस्थाओंके स्वरूप हैं। चिन्मय तथा अव्यक्त-रूपवाली मैं इन सबसे सर्वथा परे हूँ। शक्तितन्त्रोंमें ब्रह्मा आदिका आसनरूपमें परिणत होना सर्वदा प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्यान करके मानसिक भोगसामग्रियोंसे मेरी पूजा करे और मेरा जप भी करे॥ ९—१२॥

श्रीदेवीको जप अर्पण करके अर्घ्य-स्थापन करना चाहिये। सर्वप्रथम पूजन-पात्रोंको सामने रखकर साधक अस्त्रमन्त्र (ॐ फट्)-का उच्चारण करके जलसे पूजाद्रव्योंको शुद्ध करे। पुनः इसी मन्त्रसे दिग्बन्ध करके गुरुको प्रणाम करनेके अनन्तर उनकी आज्ञा लेकर साधक अपने हृदयमें भावित मेरी दिव्य मनोहर मूर्तिको बाह्य पीठपर आवाहित करे। इसके बाद प्राणप्रतिष्ठामन्त्रद्वारा पीठपर उस मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा करे॥ १३—१५¹/२॥

इस प्रकार आसन, आवाहन, अर्घ्य, पाद्य, आचमन, स्नान, दो वस्त्र, हर प्रकारके आभूषण, गन्ध, पुष्प आदि भगवतीको यथोचितरूपसे भक्तिपूर्वक अर्पण करके यन्त्रमें लिखित आवरणदेवताओंकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये। प्रतिदिन पूजा करनेमें असमर्थ लोगोंके लिये देवीकी पूजाहेतु शुक्रवारका दिन निर्धारित है॥ १६—१८॥

मूलदेवीके प्रभास्वरूप आवरणदेवताओंका ध्यान करना चाहिये। उन देवीके प्रभामण्डलमें त्रिलोक व्याप्त है—ऐसा चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद सुगन्धित गन्ध आदि द्रव्यों, सुन्दर वाससे युक्त पुष्पों, विभिन्न प्रकारके नैवेद्यों, तर्पणों, ताम्बूलों तथा दक्षिणा आदिसे आवरणदेवताओं-सहित मुझ मूलदेवीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् हे राजन्! आपके द्वारा रचित सहस्रनामके द्वारा मुझे प्रसन्न करना चाहिये; साथ ही देवीकवच, **'अहं रुद्रेभिः'** इत्यादि सूक्त, हृल्लेखोपनिषद्-सम्बन्धी देव्यथर्वशीर्ष मन्त्रों और महाविद्याके प्रधान मन्त्रोंसे मुझे बार-बार प्रसन्न करना चाहिये॥ १९—२२¹/२॥

तत्पश्चात् पुलकित समस्त अंगोंसे युक्त, अश्रुसे अवरुद्ध नेत्र तथा कण्ठवाला और प्रेमसे आर्द्र हृदयवाला वह साधक मुझ जगद्धात्रीके प्रति क्षमापराधके लिये प्रार्थना करे; साथ ही नृत्य और गीत आदिकी ध्वनिसे मुझे बार-बार प्रसन्न करे।

चूँकि मैं सभी वेदों तथा पुराणोंकी मुख्य प्रतिपाद्य विषय हूँ, अतः उनके पाठ-पारायणोंसे मुझे प्रसन्न करना चाहिये। देहसहित अपना सब कुछ मुझे नित्य अर्पित कर देना चाहिये। तदनन्तर नित्य होम करे। ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, वटुकों तथा अन्य दीनलोगोंको देवीका रूप समझकर उन्हें भोजन कराना चाहिये। पुनः नमस्कार करके अपने हृदयमें जिस क्रमसे आवाहन आदि किया हो, ठीक उसके विपरीत क्रमसे विसर्जन करना चाहिये॥ २३—२७॥

हे सुव्रत! मेरी सम्पूर्ण पूजा हृल्लेखा (ह्रीं) मन्त्रसे सम्पन्न करनी चाहिये; क्योंकि यह हृल्लेखा सभी मन्त्रोंकी परम नायिका कही गयी है। हृल्लेखारूपी दर्पणमें मैं निरन्तर प्रतिबिम्बित होती रहती हूँ; अतः हृल्लेखा मन्त्रोंके द्वारा मुझे अर्पित किया गया पदार्थ सभी मन्त्रोंके द्वारा अर्पित किया गया समझा जाता है। भूषण आदि सामग्रियोंसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके अपनेको कृतकृत्य समझना चाहिये॥ २८-२९ $^1/_2$॥

जो मनुष्य इस प्रकार मुझ श्रीमद्भुवनसुन्दरी भगवतीकी पूजा करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु किसी भी समयमें कहीं भी दुर्लभ नहीं रह सकती। देहावसान होनेपर वह निश्चित ही मेरे मणिद्वीपमें पहुँच जाता है। उसे देवीका ही स्वरूप समझना चाहिये; देवता उसे नित्य प्रणाम करते हैं॥ ३०-३१ $^1/_2$॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे महादेवीके पूजनके विषयमें बता दिया। आप इसपर भलीभाँति विचार करके अपने अधिकारके अनुरूप मेरा पूजन कीजिये; उससे आप कृतार्थ हो जायँगे॥ ३२-३३॥

जो सत् शिष्य नहीं है, उसे कभी भी मेरे इस गीताशास्त्रको नहीं बताना चाहिये। साथ ही जो भक्त न हो, धूर्त हो तथा दुरात्मा हो, उसे भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। अनधिकारीके समक्ष इसे प्रकाशित करना अपनी माताके वक्षःस्थलको प्रकट करनेके समान है, अतः इसे सदा प्रयत्नपूर्वक अवश्य गोपनीय रखना चाहिये॥ ३४-३५॥

भक्तिसम्पन्न शिष्यको तथा सुशील, सुन्दर और देवीभक्तिपरायण ज्येष्ठ पुत्रको ही इसका उपदेश करना चाहिये॥ ३६॥

श्राद्धके अवसरपर जो मनुष्य ब्राह्मणोंके समीप इसका पाठ करता है, उसके सभी पितर तृप्त होकर परम पदको प्राप्त हो जाते हैं॥ ३७॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर वे भगवती वहींपर अन्तर्धान हो गयीं और देवीके दर्शनसे सभी देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ३८॥

तदनन्तर वे देवी हैमवती हिमालयके यहाँ उत्पन्न हुईं, जो 'गौरी' नामसे प्रसिद्ध हुईं। बादमें वे शंकरजीको प्रदान की गयीं। तत्पश्चात् कार्तिकेय उत्पन्न हुए और उन्होंने तारकासुरका संहार किया॥ ३९ $^1/_2$॥

हे नराधिप! पूर्व समयमें समुद्रमन्थनसे अनेक रत्न निकले। उस समय लक्ष्मीको प्रकट करनेके लिये देवताओंने आदरपूर्वक भगवतीकी स्तुति की। तब उन देवताओंपर अनुग्रह करनेके लिये वे भगवती ही पुनः रमा (लक्ष्मी)-के रूपमें समुद्रसे प्रकट हुईं। देवताओंने उन लक्ष्मीको भगवान् विष्णुको सौंप दिया, इससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई॥ ४०-४१ $^1/_2$॥

हे राजन्! मैंने आपसे भगवतीके इस उत्तम माहात्म्यका वर्णन कर दिया। गौरी तथा लक्ष्मीकी उत्पत्तिसे सम्बन्धित यह प्रसंग सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। मेरे द्वारा कहे गये इस रहस्यको किसी दूसरेको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि रहस्यमयी यह गीता सदा प्रयत्नपूर्वक गोपनीय है। हे अनघ! आपने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने आपको संक्षेपमें बता दिया। यह दिव्य प्रसंग [स्वयं] पवित्र है तथा दूसरोंको भी पवित्र करनेवाला है। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२—४४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत सातवें स्कन्धका 'देवीगीतामें बाह्यपूजाविधिवर्णन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४०॥

॥ सप्तम स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

अष्टम स्कन्ध

पहला अध्याय

प्रजाकी सृष्टिके लिये ब्रह्माजीकी प्रेरणासे मनुका देवीकी आराधना करना तथा देवीका उन्हें वरदान देना

जनमेजय बोले—[हे मुने!] आपने सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशमें उत्पन्न राजाओंका जो उत्तम कथाओंसे अन्वित तथा अमृतमय चरित्र वर्णित किया, उसे मैंने सुना॥ १॥

सम्पूर्ण मन्वन्तरोंमें जिस-जिस स्थानपर तथा जिस-जिस कर्मसे एवं जिस-जिस रूपसे उन देवी जगदम्बाकी पूजा की जाती है, अब उसे मैं सुनना चाहता हूँ। (सभी फल प्रदान करनेवाली वे पूज्या देवीश्वरी जिस बीज-मन्त्रसे, जहाँ-जहाँ तथा जिस रूपमें पूजी जाती हैं, उसे सुनाइये।) साथ ही भगवतीके विराट् स्वरूपका वर्णन यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विप्रर्षे! जिस ध्यानसे उन भगवतीके सूक्ष्म स्वरूपमें बुद्धि स्थिर हो जाय, वह सब मुझे बतलाइये जिससे मैं कल्याणको प्राप्त हो जाऊँ॥ ४॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! सुनिये, अब मैं देवीकी उत्तम आराधनाके विषयमें कह रहा हूँ, जिसे करने अथवा सुननेसे भी मनुष्य इस लोकमें कल्याण प्राप्त कर लेता है॥ ५॥

इसी प्रकार पूर्वकालमें नारदजीके द्वारा योगचर्याके प्रवर्तक भगवान् नारायणसे पूछे जानेपर उन्होंने नारदजीसे जो कहा था, वही मैं बता रहा हूँ॥ ६॥

एक बार श्रीमान् नारद इस पृथ्वीपर विचरण करते हुए नारायणके आश्रमपर पहुँचे और वहाँ निश्चिन्त होकर बैठ गये। हे अनघ! तत्पश्चात् उन योगात्मा नारायणको प्रणाम करके ब्रह्माजीके पुत्र नारदने उनसे यही प्रश्न पूछा था, जो आपने मुझसे पूछा है॥ ७-८॥

नारदजी बोले—हे देवदेव! हे महादेव! हे पुराणपुरुषोत्तम! हे जगदाधार! हे सर्वज्ञ! हे श्लाघनीय! हे विपुल सद्गुणोंसे सम्पन्न! इस जगत्का जो आदितत्त्व है, उसे आप यथेच्छरूपसे मुझे बताइये। यह जगत् किससे उत्पन्न होता है, किससे इसकी रक्षा होती है, किसके द्वारा इसका संहार होता है, किस समय सभी कर्मोंका फल उदित होता है तथा किस ज्ञानके हो जानेपर इस मोहमयी मायाका नाश हो जाता है?॥ ९—११॥

हे देव! किस पूजासे, किस जपसे और किस ध्यानसे अन्धकारमें सूर्योदयकी भाँति अपने हृदयकमलमें प्रकाश उत्पन्न होता है?॥ १२॥

हे देव! इन सभी प्रश्नोंका उत्तर पूर्णरूपसे बताइये, जिससे इस संसारके प्राणी अज्ञानान्धकारमय जगत्को शीघ्रतासे पार कर लें॥ १३॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] देवर्षि नारदके इस प्रकार पूछनेपर महायोगी, मुनिश्रेष्ठ तथा सनातन पुरुष भगवान् नारायणने साधुवाद देकर यह वचन कहा॥ १४॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब आप जगत्का उत्तम तत्त्व सुनिये, जिसे जान लेनेपर मनुष्य सांसारिक भ्रममें नहीं पड़ता॥ १५॥

इस जगत्का एकमात्र तत्त्व भगवती जगदम्बा ही हैं—ऐसा मैं बता चुका हूँ और ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों तथा अन्य मनीषियोंने भी ऐसा ही कहा है॥ १६॥

तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम)-से युक्त होनेके कारण वे भगवती ही सम्पूर्ण जगत्की रचना करती हैं, वे ही पालन करती हैं और वे ही संहार करती हैं—ऐसा कहा गया है॥ १७॥

अब मैं भगवतीके सिद्ध-ऋषिपूजित स्वरूपका वर्णन करूँगा; जो स्मरण करनेवालोंके सभी पापोंका नाश करनेवाला, उनके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला तथा उन्हें

मोक्ष प्रदान करनेवाला है॥ १८॥

ब्रह्माके पुत्र तथा शतरूपाके पति स्वायम्भुव मनु आदि मनु हैं। उन प्रतापी तथा श्रीमान् मनुको समस्त मन्वन्तरोंका अधिपति कहा जाता है॥ १९॥

पूर्वकालमें एक बार वे स्वायम्भुव मनु अपने पुण्यात्मा पिता प्रजापति ब्रह्माके पास भक्तिपूर्वक सेवामें संलग्न थे। तब ब्रह्माजीने उन पुत्र मनुसे कहा—हे पुत्र! हे पुत्र! तुम्हें भगवतीकी उत्तम आराधना करनी चाहिये। हे तात! उन्हींके अनुग्रहसे प्रजासृष्टिका तुम्हारा कार्य सिद्ध हो सकेगा॥ २०-२१॥

प्रजाओंकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके ऐसा कहनेपर महान् ऐश्वर्यशाली स्वायम्भुव मनु अपनी तपस्यासे जगत्की योनिरूपा भगवतीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हो गये। उन्होंने एकाग्रचित्त होकर मायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी, सभी कारणोंकी भी कारण, देवेश्वरी आद्या भगवतीका स्तवन आरम्भ किया॥ २२-२३॥

मनु बोले—जगत्के कारणोंकी भी कारण, नारायणके हृदयमें विराजमान तथा हाथोंमें शंख-चक्र-गदा धारण करनेवाली हे देवेश्वरि! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २४॥

वेदमूर्तिस्वरूपिणी, जगज्जननी, कारणस्थान-स्वरूपा, तीनों वेदोंके प्रमाण जाननेवाली, समस्त देवोंद्वारा नमस्कृत, कल्याणमयी, परमेश्वरी, परमभाग्यशालिनी, अनन्त मायासे सम्पन्न, महान् अभ्युदयवाली, महादेवकी प्रिय आवासरूपिणी, महादेवका प्रिय करनेवाली, गोपेन्द्रकी प्रिया, ज्येष्ठा, महान् आनन्दस्वरूपिणी, महोत्सवा, महामारीके भयका नांश करनेवाली तथा देवता आदिके द्वारा पूजित हे भगवति! आपको नमस्कार है॥ २५—२७॥

सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली, सबका कल्याण करनेवाली, सभी पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागत-जनोंकी रक्षा करनेवाली तथा तीन नेत्रोंवाली हे गौरि! हे नारायणि! आपको नमस्कार है॥ २८॥

यह जगत् जिनसे उत्पन्न हुआ है तथा जिनसे पूर्णतया ओतप्रोत है; उन भगवतीके चैतन्यमय, अद्वितीय आदि-अन्तसे रहित तथा तेजोंके निधानभूत रूपको नमस्कार है॥ २९॥

जिनकी कृपादृष्टिसे ब्रह्मा सम्पूर्ण सृष्टि करते हैं, विष्णु सदा पालन करते हैं और जिनके अनुग्रहसे विश्वेश्वर शिव संहार करते हैं, उन जगदम्बाको नमस्कार है॥ ३०॥

मधु-कैटभके द्वारा उत्पन्न किये गये भयसे व्याकुल ब्रह्माने जिनकी स्तुति करके भयंकर दैत्यरूपी भव-सागरसे मुक्ति प्राप्त की थी, (उन भगवतीको नमस्कार है।)॥ ३१॥

आप ह्री, कीर्ति, स्मृति, कान्ति, कमला, गिरिजा, सती, दाक्षायणी, वेदगर्भा, सिद्धिदात्री तथा अभया नामसे सर्वदा प्रसिद्ध हैं। हे देवि! मैं आपकी स्तुति करता हूँ, आपको नमस्कार करता हूँ, आपकी पूजा करता हूँ, आपका जप करता हूँ, आपका ध्यान करता हूँ, आपकी भावना करता हूँ, आपका दर्शन करता हूँ तथा आपका चरित्र सुनता हूँ; आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये॥ ३२-३३॥

आपके ही अनुग्रहसे ब्रह्माजी वेदके निधि, श्रीहरि लक्ष्मीके स्वामी, इन्द्र त्रिलोकीके अधिपति, वरुण जलचर जन्तुओंके श्रेष्ठ नायक, कुबेर धनके स्वामी, यमराज प्रेतोंके अधिपति, नैर्ऋत राक्षसोंके नाथ और चन्द्रमा रसमय बन गये हैं॥ ३४-३५॥

हे त्रिलोकवन्द्ये! हे लोकेश्वरि! हे महामांगल्यस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे जगन्मातः! आपको बार-बार प्रणाम है*॥ ३६॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करनेपर परारूपा नारायणी भगवती दुर्गा प्रसन्न होकर

---

* नमो नमस्ते देवेशि जगत्कारणकारणे। शङ्खचक्रगदाहस्ते नारायणहृदाश्रिते॥
वेदमूर्ते जगन्मातः कारणस्थानरूपिणि। वेदत्रयप्रमाणज्ञे सर्वदेवनुते शिवे॥
माहेश्वरि महाभागे महामाये महोदये। महादेवप्रियावासे महादेवप्रियंकरि॥
गोपेन्द्रस्य प्रिये ज्येष्ठे महानन्दे महोत्सवे। महामारीभयहरे नमो देवादिपूजिते॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके। शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥
यतश्चेदं यया विश्वमोतं प्रोतं च सर्वदा। चैतन्यमेकमाद्यन्तरहितं तेजसां निधिम्॥
ब्रह्मा यदीक्षणात्सर्वं करोति च हरिः सदा। पालयत्यपि विश्वेशः संहर्ता यदनुग्रहात्॥
मधुकैटभसम्भूतभयार्तः पद्मसम्भवः। यस्याः स्तवेन मुमुचे घोरदैत्यभवाम्बुधेः॥
त्वं ह्रीः कीर्तिः स्मृतिः कान्तिः कमला गिरिजा सती। दाक्षायणी वेदगर्भा सिद्धिदात्री सदाभया॥
स्तोष्ये त्वां च नमस्यामि पूजयामि जपामि च। ध्यायामि भावये वीक्षे श्रोष्ये देवि प्रसीद मे॥
ब्रह्मा वेदनिधिः कृष्णो लक्ष्म्यावासः पुरन्दरः। त्रिलोकाधिपतिः पाशी यादसाम्पतिरुत्तमः॥
कुबेरो निधिनाथोऽभूद्यमो जातः परेतराट्। नैर्ऋतो रक्षसां नाथः सोमो जातो ह्यपोमयः॥
त्रिलोकवन्द्ये लोकेशि महामाङ्गल्यरूपिणि। नमस्तेऽस्तु पुनर्भूयो जगन्मातर्नमो नमः॥ (श्रीमद्देवीभा० ८।१।२४—३६)

ब्रह्माके पुत्र मनुसे यह वचन कहने लगीं॥ ३७॥

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मैं आपके द्वारा भक्तिपूर्वक की गयी इस स्तुति तथा आराधनासे प्रसन्न हूँ। अतः हे ब्रह्मपुत्र! आप जो वर चाहते हैं, उसे माँग लें॥ ३८॥

मनु बोले—[भक्तोंपर] महान् अनुकम्पा करनेवाली हे देवि! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मेरी यही याचना है कि आपकी आज्ञासे प्रजाकी सृष्टि निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न हो॥ ३९॥

देवी बोलीं—हे राजेन्द्र! मेरे अनुग्रहसे प्रजासृष्टि अवश्य सम्पन्न होगी और निर्विघ्नतापूर्वक निरन्तर उसकी वृद्धि भी होती रहेगी॥ ४०॥

जो कोई भी मनुष्य मेरी भक्तिसे युक्त होकर आपके द्वारा की गयी इस स्तुतिका पाठ करेगा; उसकी विद्या, सन्तान-सुख तथा कीर्ति बढ़ेगी तथा कान्तिका उदय होगा और धन-धान्य निरन्तर बढ़ते रहेंगे। हे राजन्! उन मनुष्योंकी शक्ति कभी निष्फल नहीं होगी, सर्वत्र उनकी विजय होगी, उनके शत्रुओंका नाश होगा और वे सदा सुखी रहेंगे॥ ४१-४२॥

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माजीके पुत्र स्वायम्भुव मनुको इस प्रकारके वर देकर उन बुद्धिमान् मनुके देखते-देखते भगवती अन्तर्धान हो गयीं॥ ४३॥

तत्पश्चात् वर प्राप्त करके महान् प्रतापी ब्रह्मापुत्र राजा स्वायम्भुव मनुने ब्रह्मासे कहा—हे तात! आप मुझे कोई ऐसा एकान्त स्थान दीजिये, जहाँ रहकर प्रचुर प्रजाओंकी सृष्टि और यज्ञोंके द्वारा देवेश्वरकी उपासना कर सकूँ। अतः अविलम्ब आदेश दीजिये॥ ४४-४५॥

अपने पुत्रकी यह बात सुनकर प्रजापतियोंके भी स्वामी ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा देरतक सोचने लगे कि यह कार्य कैसे सम्पन्न हो। प्रजाकी सृष्टि करते हुए मेरा अनन्तकालका बहुत समय बीत गया। सम्पूर्ण प्राणियोंको आश्रय प्रदान करनेवाली यह पृथ्वी जलके द्वारा आप्लावित हो गयी और जलमय होकर डूब गयी। अतः अब वे भगवान् आदिपुरुष मेरे सहायक बनकर मेरा यह सुचिन्तित कार्य सम्पन्न करेंगे, जिनके आदेशपर मैं आश्रित हूँ॥ ४६—४८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशप्रसंगमें देवीका मनुको वरदानवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

ब्रह्माजीकी नासिकासे वराहके रूपमें भगवान् श्रीहरिका प्रकट होना और पृथ्वीका उद्धार करना, ब्रह्माजीका उनकी स्तुति करना

श्रीनारायण बोले—हे परन्तप! मनु एवं मरीचि आदि श्रेष्ठ मुनियोंके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुए उन पद्मयोनि ब्रह्माजीके मनमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न हो रहे थे। हे अनघ! इस प्रकार ध्यान करते हुए उन ब्रह्माजीकी नासिकाके अग्रभागसे अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला एक वराह-शिशु सहसा प्रकट हो गया॥ १-२॥

हे नारद! उन ब्रह्माजीके देखते-देखते वह वराह-शिशु आकाशमें स्थित होकर क्षणभरमें बढ़कर एक विशालकाय हाथीके आकारका हो गया। वह एक महान् आश्चर्यजनक घटना थी॥ ३॥

हे नारद! उस समय मरीचि आदि प्रधान विप्रवरों तथा सनक आदि ऋषियोंके साथ बैठे ब्रह्माजी वह वराहरूप देखकर मन-ही-मन विचार करने लगे कि सूकरके व्याजसे यह कौन-सा दिव्य प्राणी मेरी नासिकासे निकलकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया। यह तो महान् आश्चर्य है। अभी-अभी अँगूठेके पोरके बराबर दिखायी पड़नेवाला यह क्षणभरमें ही पर्वतराजके सदृश हो गया है। कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वयं यज्ञरूप भगवान् विष्णु ही मेरे मनको खिन्न करते हुए इस रूपमें प्रकट हुए हों॥ ४—६॥

परमात्मा ब्रह्माजी ऐसा सोच ही रहे थे कि उसी समय पर्वतके समान आकृतिवाले वाराहरूपधारी उन भगवान्ने गर्जना की॥ ७॥

उन्होंने अपने गर्जनमात्रसे समस्त दिशाओंको निनादित करते हुए ब्रह्माजी तथा वहाँ उपस्थित उत्तम ब्राह्मणोंके समुदायको हर्षित कर दिया॥ ८॥

अपने खेदको नष्ट करनेवाली घुरघुराहटकी ध्वनि सुनकर जनलोक, तपलोक तथा सत्यलोकमें निवास करनेवाले उन श्रेष्ठ देवताओं और विप्रवरोंने छन्दोबद्ध उत्तम स्तोत्रों तथा

ऋक्, साम और अथर्ववेदसे सम्भूत पवित्र सूक्तोंसे आदिपुरुषकी स्तुति प्रारम्भ कर दी॥ ९-१०॥

उनकी स्तुति सुनकर ऐश्वर्यसम्पन्न वाराहरूप भगवान् श्रीहरि अपनी कृपादृष्टिमात्रसे उन्हें अनुगृहीत करके जलमें प्रविष्ट हो गये॥ ११॥

जलमें प्रविष्ट होते हुए उन भगवान्‌की सटाके आघातसे अत्यन्त पीड़ित समुद्रने उनसे कहा—शरणागतोंके दुःख दूर करनेवाले हे देव! मेरी रक्षा कीजिये॥ १२॥

समुद्रके द्वारा कथित यह वचन सुनकर सर्वसमर्थ भगवान् श्रीहरि जलचर जीवोंको इधर-उधर हटाते हुए अथाह जलमें चले गये॥ १३॥

इधर-उधर भ्रमण करते हुए, पृथ्वीको खोजते हुए उन सर्वेश्वरने धीरे-धीरे सूँघ-सूँघकर अन्तमें सबको धारण करनेवाली उस पृथ्वीको पा लिया॥ १४॥

उस समय अगाध जलके भीतर प्रविष्ट तथा सभी प्राणियोंको आश्रय देनेवाली उस पृथ्वीको देवदेवेश्वर श्रीहरिने अपने दाढ़ोंपर उठा लिया॥ १५॥

उस पृथ्वीको अपने दाढ़पर रखे हुए यज्ञेश्वर तथा यज्ञपुरुष भगवान् श्रीहरि ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो कोई दिग्गज कमलिनीको [अपने दाँतपर] उठाये हो॥ १६॥

अपने दाढ़पर पृथ्वीको उठाये हुए उन देवेश्वरको देखकर स्वराट् मनुसहित देवाधिदेव ब्रह्मा उनकी स्तुति करने लगे॥ १७॥



ब्रह्माजी बोले—भक्तोंके कष्ट दूर करनेवाले, देवताओंके आवास स्वर्गको तिरस्कृत करनेवाले तथा समस्त मनोभिलषित फल प्रदान करनेवाले हे कमलनयन! आपकी जय हो॥ १८॥

हे देव! आपके दाढ़पर स्थित यह पृथ्वी उसी भाँति सुशोभित हो रही है, जैसे सुन्दर पत्रोंसे युक्त कमलिनी किसी मतवाले हाथीकी सूँड़पर विराजमान हो॥ १९॥

पृथ्वीके साथ आपका यह शरीर कमलको उखाड़कर उसे अपनी सूँड़के अग्रभागपर धारण किये गजराजके शरीरकी भाँति शोभायमान हो रहा है॥ २०॥

सृष्टि तथा संहार करनेवाले और दानवोंके विनाशके लिये अनेकविध रूप धारण करनेवाले हे देवेश्वर! हे प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है॥ २१॥

सभी देवताओंके आधारभूत! आपको आगेसे नमस्कार है, आपको पीछेसे बार-बार नमस्कार है। हे बृहद्धाम! आपको नमस्कार है॥ २२॥

मैं आपके द्वारा शक्तिशाली बनाकर प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त किया गया हूँ। आपकी आज्ञाके वशमें होकर ही मैं सृष्टि करता हूँ और उसे बिगाड़ता हूँ॥ २३॥

हे हरे! आपकी सहायतासे ही पूर्व कालमें देवेश्वर तथा देवता बल तथा कालके अनुसार अमृतके विभाजनमें सफल हुए थे॥ २४॥

आपके ही निर्देशसे इन्द्र त्रिलोकीका साम्राज्य प्राप्त कर सके हैं, देवसमुदायसे भलीभाँति पूजित होकर विपुल वैभवका उपभोग करते हैं और अग्निदेव दाहकताका गुण पाकर जठराग्नि आदिके भेदसे देवताओं, असुरों और मनुष्योंकी तृप्ति करते हैं॥ २५-२६॥

आपके ही नियोगसे धर्मराज पितरोंके अधिपति, समस्त कर्मोंके साक्षी, कर्मोंका फल देनेवाले तथा अधीश्वर बने हुए हैं॥ २७॥

विघ्नोंको दूर करनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी और राक्षसोंके ईश्वर यक्षरूप नैर्ऋत भी आपसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ २८॥

आपकी ही आज्ञाका आश्रय लेकर लोकपाल वरुणने जलचर जीवोंके स्वामी, जलाधिपति और लोकपालका पद प्राप्त किया है॥ २९॥

गन्ध प्रवाहित करनेवाले तथा सभी प्राणियोंमें प्राण-संचार करनेवाले वायु आपकी ही आज्ञासे लोकपाल और जगद्गुरु हो सके हैं॥ ३०॥

किन्नरों और यक्षोंके जीवनके आधारस्वरूप कुबेर आपकी आज्ञाके वशवर्ती रहकर ही समस्त लोकपालोंमें सम्मान प्राप्त करते हैं॥ ३१॥

सभी देवताओंका अन्त करनेवाले, सभी देवोंके अधिपालक तथा तीनों लोकोंके ईश्वरके भी वन्दनीय भगवान् ईशान आपकी ही आज्ञासे सभी रुद्रोंमें प्रधान हो गये हैं॥ ३२॥

आप जगदीश्वर परमात्माको हम नमस्कार करते हैं, जिनके अंशमात्रसे हजारों देवता उत्पन्न हुए हैं॥ ३३॥

नारदजी बोले—इस प्रकार विश्वकी सृष्टि करनेवाले ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत होनेपर आदिपुरुष भगवान् श्रीहरि अपनी लीला प्रदर्शित करते हुए उनपर अनुग्रह करनेके लिये तत्पर हो गये॥ ३४॥

भगवान् श्रीहरिने उस समय वहाँ आये हुए महान् असुर तथा भयंकर दैत्य हिरण्याक्षको, जिसने उनका मार्ग रोक रखा था, अपनी गदासे मार डाला॥ ३५॥

तत्पश्चात् उसके रक्तपंकसे लिप्त अंगोंवाले आदिपुरुष भगवान् श्रीहरिने पृथ्वीको अपने दाढ़से उठाकर लीलापूर्वक उसे जलके ऊपर स्थापित कर दिया। इसके बाद वे लोकनाथेश्वर भगवान् अपने धामको चले गये। जो मनुष्य पृथ्वीके उद्धारसे सम्बन्धित इस परम विचित्र तथा उत्तम भगवच्चरितको सुनेगा और पढ़ेगा, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर वैष्णवपद प्राप्त करेगा॥ ३६—३८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'धरण्युद्धारवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

महाराज मनुकी वंश-परम्पराका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार पृथ्वीको यथास्थान प्रतिष्ठित करके भगवान् जब वैकुण्ठ चले गये तब ब्रह्माजीने अपने पुत्रसे कहा—॥ १॥

तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ तथा विशाल भुजाओंवाले हे पुत्र स्वायम्भुव! अब तुम उस स्थलमय स्थानपर रहकर समुचित रूपसे प्रजाओंकी सृष्टि करो। हे विभो! देश एवं कालके विभागके अनुसार यज्ञके साधनस्वरूप उत्तम तथा मध्यम सामग्रियोंसे यज्ञके स्वामी परम पुरुषका यजन करो; शास्त्रोंमें वर्णित धर्मका आचरण करो और वर्णाश्रम-व्यवस्थाका पालन करो। इस क्रमसे प्रवृत्त रहनेपर प्रजा-वृद्धि होती रहेगी। विद्या-विनयसे सम्पन्न, सदाचारियोंमें श्रेष्ठ और अपने गुण, कीर्ति तथा कान्तिके अनुरूप पुत्र उत्पन्न करके कन्याओंको गुणी तथा यशस्वी पुरुषोंको अर्पण करके और एकाग्रचित्त होकर अपने मनको पूर्णरूपसे प्रधान पुरुष परमेश्वरमें स्थित करके भक्तिपूर्वक साधना तथा भगवान्‌की सेवाद्वारा आप योगियोंके लिये सदा वन्दनीय अभीष्ट गतिको प्राप्त कर लोगे॥ २—७॥

[हे नारद!] इस प्रकार अपने पुत्र स्वायम्भुव मनुको उपदेश देकर तथा उन्हें प्रजा-सृष्टिके कार्यमें नियुक्त करके पद्मयोनि ब्रह्माजी अपने धामको चले गये॥ ८॥

'हे पुत्र! प्रजाओंका सृजन करो' पिताकी इस आज्ञाको पृथ्वीपति स्वायम्भुव मनुने हृदयमें धारण कर लिया और वे प्रजा-सृष्टि करने लगे॥ ९॥

मनुसे प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक दो महान् ओजस्वी पुत्र और तीन कन्याएँ उत्पन्न हुईं, उनके नाम मुझसे सुनिये; पहली कन्या आकूति, दूसरी देवहूति तथा लोकपावनी तीसरी कन्या प्रसूति नामसे विख्यात हुई॥ १०-११॥

उन्होंने आकूतिका रुचिके साथ, मध्यम कन्या देवहूतिका कर्दमके साथ और प्रसूतिका विवाह दक्षप्रजापतिके साथ कर दिया, जिनकी ये प्रजाएँ लोकमें फैली हुई हैं॥ १२॥

रुचिके द्वारा आकूतिसे यज्ञरूप भगवान् आदिपुरुष प्रकट हुए। कर्दमऋषिके द्वारा देवहूतिसे कपिल उत्पन्न हुए। परम ऐश्वर्यशाली उन कपिलमुनिने सभी लोकोंमें सांख्यशास्त्रके आचार्यके रूपमें प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी प्रकार दक्षके द्वारा प्रसूतिसे सन्तानके रूपमें बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं; जिनकी सन्तानोंके रूपमें देवता, पशु और मानव आदि उत्पन्न होकर लोकमें प्रसिद्ध हुए; वे

सभी इस सृष्टिके प्रवर्तक हैं॥ १३—१५॥

सर्वसमर्थ भगवान् यज्ञपुरुषने याम नामक देवताओंके साथ मिलकर स्वायम्भुव मन्वन्तरमें राक्षसोंसे मनुकी रक्षा की थी॥ १६॥

महान् योगी भंगवान् कपिलने अपने आश्रममें रहकर माता देवहूतिको सभी अविद्याओंका नाश करनेवाले परमज्ञानका उपदेश किया था॥ १७॥

उन्होंने ध्यानयोग तथा अध्यात्मज्ञानके सिद्धान्तका विशेषरूपसे प्रतिपादन किया। समस्त अज्ञानको नष्ट करनेवाला उनका शास्त्र कापिल शास्त्रके रूपमें प्रसिद्ध हुआ॥ १८॥

वे महायोगी कपिल अपनी माताको उपदेश देकर ऋषि पुलहके आश्रमपर चले गये। सांख्यशास्त्रके आचार्य महान् यशस्वी भगवान् कपिल आज भी विद्यमान हैं॥ १९॥

मैं सभी प्रकारके वर प्रदान करनेवाले उन योगाचार्य कपिलको प्रणाम करता हूँ, जिनके नामके स्मरणमात्रसे सांख्ययोग सिद्ध हो जाता है॥ २०॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने स्वायम्भुव मनुकी कन्याओंके वंशका उत्तम वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ २१॥

इसके बाद मैं मनु-पुत्रोंके पवित्र वंशका वर्णन करूँगा, जिसके श्रवणमात्रसे मनुष्य परम पद प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

उन मनुपुत्रोंने व्यवहारकी सिद्धिके लिये और सभी प्राणियोंकी सुख-प्राप्तिके लिये द्वीप, वर्ष और समुद्र आदिकी व्यवस्था की है॥ २३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशके विस्तारमें स्वायम्भुवमनुवंशकीर्तन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

महाराज प्रियव्रतका आख्यान तथा समुद्र और द्वीपोंकी उत्पत्तिका प्रसंग

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] स्वायम्भुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत थे, वे नित्य पिताकी सेवामें संलग्न रहते थे तथा सत्य-धर्मका पालन करते थे॥ १॥

विश्वकर्मा नामक प्रजापतिकी सुन्दर रूपवाली कन्या बर्हिष्मतीके साथ प्रियव्रतने विवाह किया था, जो स्वभाव तथा कर्ममें उन्हींके सदृश थी॥ २॥

प्रियव्रतने उस बर्हिष्मतीसे पवित्र आत्मावाले दस गुणी पुत्रों और ऊर्जस्वती नामक एक कन्याको उत्पन्न किया, जो सबसे छोटी थी॥ ३॥

आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, रुक्मशुक्र, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र और कवि—इन नामोंसे ये दसों पुत्र अग्निसंज्ञक कहे गये हैं॥ ४-५॥

इन दस पुत्रोंमें कवि, सवन और महावीर—ये तीन पुत्र विरागी हो गये। आत्मविद्यामें निष्णात तथा ब्रह्मचर्यव्रतके पालक वे सभी पुत्र परमहंस नामक आश्रममें आनन्दपूर्वक स्पृहारहित भावसे रहने लगे॥ ६-७॥

प्रियव्रतकी दूसरी पत्नीसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए; जो उत्तम, तामस और रैवत—इन नामोंसे विख्यात हुए। ये महान् प्रतापी पुत्र एक-एक मन्वन्तरके अधिपति बने॥ ८$^1/_2$॥

अपराजेय बल तथा इन्द्रियोंवाले महाराज प्रियव्रतने इस पृथ्वीपर ग्यारह अर्बुद वर्षोंतक राज्य किया॥ ९$^1/_2$॥

एक बारकी बात है—जब सूर्य पृथ्वीके प्रथम भागमें प्रकाशित हो रहे थे, तब दूसरे भागमें अन्धकार हो गया। इस प्रकारका संकट देखकर राजाके मनमें तत्काल यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे शासन करते हुए पृथ्वीपर अन्धकार कैसे उत्पन्न हुआ? मैं अपने योगबलसे पृथ्वीपरसे इसका निवारण कर दूँगा॥ १०—१२॥

ऐसा निश्चय करके स्वायम्भुव मनुके पुत्र उन प्रियव्रतने सूर्य-सदृश तेजवाले रथपर आसीन होकर जगत्को प्रकाशित करते हुए पृथ्वीकी सात प्रदक्षिणाएँ कीं॥ १३॥

उन राजा प्रियव्रतके परिक्रमण करते समय पृथ्वीपर जहाँ-जहाँ रथके पहिये पड़े थे, वे स्थान लोक-हितके लिये सात समुद्र बन गये॥ १४॥

पृथ्वीकी परिक्रमाके बीचके स्थल विभागानुसार सात द्वीपके रूपमें हो गये और रथके पहियोंके धँसनेसे बने हुए सात समुद्र उनकी परिखा (खाई)-के रूपमें हो गये ॥ १५॥

तभीसे पृथ्वीपर सात द्वीप हो गये; जो जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीपके नामसे प्रसिद्ध हुए। उत्तरोत्तर क्रमसे उनका परिमाण दुगुना है॥ १६-१७॥

उन द्वीपोंके बाहर चारों ओर विभाग-क्रमसे समुद्र आप्लावित हैं। वे क्षारोद, इक्षुरसोद, सुरोद, घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद और शुद्धोद नामसे जाने गये। तभीसे भूमण्डलपर ये सातों समुद्र विख्यात हो गये॥ १८-१९॥

क्षारोद समुद्रसे घिरा हुआ जो पहला द्वीप है, वह जम्बूद्वीप नामसे विख्यात है। राजा प्रियव्रतने अपने आग्नीध्र नामक पुत्रको उस द्वीपका स्वामी बनाया था॥ २०॥

प्रियव्रत-पुत्र इध्मजिह्व इक्षुरससे आप्लावित इस दूसरे प्लक्षद्वीपके शासक हुए॥ २१॥

महाराज प्रियव्रतने सुरोदधिसे आप्लावित शाल्मली द्वीपका राजा अपने पुत्र यज्ञबाहुको बनाया॥ २२॥

प्रियव्रतके पुत्र हिरण्यरेता घृतोद नामक समुद्रसे घिरे हुए अति रमणीक कुशद्वीपके राजा हुए॥ २३॥

महान् बलशाली प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ क्षीरसागरके द्वारा चारों ओरसे घिरे क्रौंचद्वीप नामक पाँचवें द्वीपके स्वामी हुए॥ २४॥

प्रियव्रतके उत्तम पुत्र मेधातिथि दधिमण्डोद नामक समुद्रसे आवृत तथा अन्य द्वीपोंसे अपेक्षाकृत सुन्दर शाकद्वीपके राजा बने॥ २५॥

अपने पिता प्रियव्रतकी अनुमति पाकर पुत्र वीतिहोत्र शुद्धोद नामक समुद्रसे घिरे पुष्करद्वीपके राजा हुए॥ २६॥

महाराज प्रियव्रतने अपनी ऊर्जस्वती नामक कन्या शुक्राचार्यको अर्पित कर दी थी। शुक्राचार्यकी सर्वविश्रुत कन्या देवयानी उन्हीं ऊर्जस्वतीके गर्भसे उत्पन्न हुई थी॥ २७॥

इस प्रकार अपने पुत्रोंमें सातों द्वीपोंका विभाजन करके महाराज प्रियव्रतने विवेकसम्पन्न होकर योगमार्गका आश्रय ग्रहण किया॥ २८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशके विषयमें प्रियव्रतके वंशका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

भूमण्डलपर स्थित विभिन्न द्वीपों और वर्षोंका संक्षिप्त परिचय

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब आप द्वीप तथा वर्षके भेदसे देवताओंके द्वारा किये गये सम्पूर्ण भूमण्डलके विस्तारके विषयमें सुनिये। इस प्रसंगमें कहीं भी विस्तार न करके मैं संक्षेपमें ही वर्णन करूँगा। सर्वप्रथम एक लाख योजन परिमाणवाले जम्बूद्वीपका निर्माण हुआ। यह अति विशाल द्वीप आकृतिमें जैसी कमलकी कर्णिका होती है, वैसा ही गोल है। इस द्वीपमें कुल नौ हजार योजनतक विस्तारवाले नौ वर्ष कहे गये हैं, जो चारों ओरसे घिरे हुए अतिविशाल रूपवाले आठ पर्वतोंसे अच्छी तरहसे विभाजित हैं॥ १—४॥

धनुषके आकारकी भाँति दो वर्षोंको दक्षिण-उत्तरतक फैला हुआ जानना चाहिये। वहीं चार और विशाल वर्ष हैं। इलावृत नामका वर्ष चौकोर है। यह इलावृत मध्यवर्ष भी कहा जाता है; जिसकी नाभि (मध्यभाग)-में एक लाख योजन ऊँचाईवाला सुवर्णमय सुमेरु नामक पर्वतराज विद्यमान है। यह पर्वत ही गोलाकार पृथ्वीरूप कमलकी कर्णिकाके रूपमें स्थित है। इस पर्वतका शिखरभाग बत्तीस हजार योजनके विस्तारमें है, इसका मूलभाग (तलहटी)

सोलह हजार योजनतक पृथ्वीपर फैला है और इतने ही योजनतक पृथ्वीके भीतर प्रविष्ट है॥ ५—७१/२॥

इलावृतके उत्तरमें उसकी सीमाके रूपमें नील, श्वेत और श्रृंगवान्—ये तीन पर्वत कहे गये हैं॥ ८१/२॥

वे पर्वत रम्यक नामक वर्ष, दूसरे हिरण्मयवर्ष तथा तीसरे कुरुवर्षकी सीमा व्यक्त करते हैं॥ ९१/२॥

वे वर्ष आगेकी ओर फैले हुए हैं। दोनों ओरकी सीमा क्षार समुद्र है। वे दो हजार योजन विस्तारवाले हैं। वे क्रमशः एकसे एक पूर्वकी ओर दशांशमें बढ़ते गये हैं और उत्तरमें एक-एक दशांशका अन्तर चौड़ाईमें कम होता गया है। ये वर्ष अनेक नदियों तथा सरोवरोंसे युक्त हैं॥ १०-१११/२॥

इलावृतके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामक अत्यन्त सुन्दर तीन पर्वत पूर्वकी ओर फैले हुए हैं। वे दस हजार योजन ऊँचाईवाले कहे जाते हैं। हरिवर्ष, किम्पुरुष और भारतवर्ष—इन तीनोंका विभागानुसार यथार्थ वर्णन किया गया है। ये तीनों पर्वत (निषध, हेमकूट और हिमालय) उक्त तीनों वर्षोंकी सीमा हैं॥ १२—१४॥

इलावृतके पश्चिममें माल्यवान् नामक पर्वत और पूर्वकी ओर श्रीयुक्त गन्धमादनपर्वत स्थित हैं। ये दोनों पर्वत नीलपर्वतसे लेकर निषधपर्वततक लम्बाईमें फैले हैं और चौड़ाईमें इनका विस्तार दो हजार योजन है। वे दोनों पर्वत केतुमाल और भद्राश्व—इन दोनों वर्षोंकी सीमा निश्चित करते हैं॥ १५-१६॥

मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद—ये चारों पर्वत सुमेरुगिरिके पादके रूपमें कहे गये हैं। दस-दस हजार योजन ऊँचाईवाले ये पर्वत सभी ओरसे सुमेरुको सहारा दिये हुए चारों दिशाओंमें विराजमान हैं॥ १७-१८१/२॥

इन पर्वतोंपर आम, जामुन, कदम्ब तथा बरगदके वृक्ष स्थित हैं, जो इन पर्वतराजोंकी ध्वजाओंके रूपमें विराजमान हैं। इनमेंसे सभी वृक्ष ग्यारह सौ योजन ऊँचाईवाले हैं, इतना ही इनकी शाखाओंका विस्तार है और ये सौ योजन मोटाईवाले हैं॥ १९-२०१/२॥

इन पर्वतोंपर दूध, मधु, ईखके रस और सुस्वादु जलसे परिपूर्ण चार सरोवर हैं; जिनमें स्नान, आचमन आदि करनेवाले देवता योग-सम्बन्धी महाशक्तियाँ प्राप्त कर लेते हैं॥ २११/२॥

वहाँ स्त्रियोंको सुख प्रदान करनेवाले नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राज और सर्वभद्र नामक चार देवोद्यान हैं। गन्धर्व आदि उपदेवताओंके द्वारा गायी जानेवाली महिमासे युक्त महाभाग देवतागण सुन्दर अंगनाओंके साथ वहाँ निवास करते हैं और स्वतन्त्र होकर सुखपूर्वक यथेच्छ विहार करते हैं॥ २२—२४॥

मन्दराचलके शिखरपर विराजमान ग्यारह सौ योजन ऊँचे दिव्य आम्र-वृक्षके फल अमृतमय पर्वत-शिखरके समान विशाल, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा कोमल होते हैं। उस वृक्षके ऊँचे शिरोभागसे गिरकर विदीर्ण हुए उन फलोंके सुस्वादु एवं लाल वर्णवाले रससे 'अरुणोदा' नामक नदी बन गयी। रम्य जलवाली यह नदी बड़े-बड़े देवताओं तथा दैत्योंद्वारा पूजी जाती है॥ २५—२७॥

हे महाराज! उसी पर्वतपर पापनाशिनी भगवती 'अरुणा' प्रतिष्ठित हैं। लोग अनेकविध उपहारों तथा बलिसे समस्त मनोरथ पूर्ण करनेवाली, पापोंका शमन करनेवाली तथा अभय प्रदान करनेवाली उन भगवतीका पूजन करते हैं। उनकी कृपादृष्टिमात्रसे वे कल्याण तथा आरोग्य प्राप्त कर लेते हैं॥ २८-२९॥

ये आद्या, माया, अतुला, अनन्ता, पुष्टि, ईश्वरमालिनी, दुष्टनाशकरी और कान्तिदायिनी—इन नामोंसे भूमण्डलपर विख्यात हैं। इन्हींके पूजा-प्रभावसे जाम्बूनद नामक सुवर्ण उत्पन्न हुआ है॥ ३०-३१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनलोकवर्णनमें द्वीपवर्षविभेदवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

भूमण्डलके विभिन्न पर्वतोंसे निकलनेवाली विभिन्न नदियोंका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैंने अरुणोदा नामक जिस नदीका वर्णन किया है, वह मन्दरपर्वतसे निकलकर इलावृतके पूर्व भागमें प्रवाहित होती है॥ १॥

भगवतीकी अनुचरी स्त्रियों तथा यक्षों और गन्धर्वोंकी पत्नियोंके अरुणोदाके जलमें स्नान करनेसे उनके शरीरकी दिव्य गन्धसे उसका जल सुवासित हो जाता है। उस सुगन्धको लेकर बहता हुआ पवन चारों ओरकी दशयोजन-पर्यन्त भूमिको सुगन्धित कर देता है॥ २१/२॥

इसी प्रकार पर्वतकी अधिक ऊँचाईसे गिरनेके कारण हाथीके शरीरके समान विशाल आकारवाले गुठलीरहित जम्बू-फलोंके फटनेसे निकले हुए रसके द्वारा जम्बू नामक नदी बन गयी। वह मेरुमन्दरसे पृथ्वीतलपर गिरती हुई इलावृतवर्षसे दक्षिणकी ओर प्रवाहित होने लगी॥ ३-४१/२॥

जम्बू-फलके स्वादसे सन्तुष्ट होनेवाली भगवती 'जम्ब्वादिनी' नामसे विख्यात हैं। वहाँके देवता, नाग, ऋषि, राक्षस तथा अन्य लोगोंके लिये सभी प्राणियोंपर दया करनेवाली ये भगवती मान्य तथा पूजाके योग्य हैं। ये स्मरण करनेवाले पापियोंको पवित्र कर देनेवाली तथा उनके रोगोंको नष्ट कर देनेवाली हैं। देवताओंकी भी वन्दनीया इन भगवतीका कीर्तन करनेसे विघ्नोंका नाश हो जाता है। कोकिलाक्षी, कामकला, करुणा, कामपूजिता, कठोरविग्रहा, धन्या, नाकिमान्या, गभस्तिनी—इन नामोंका उच्चारण करके मनुष्योंको सदा देवीका जप करना चाहिये॥ ५—८१/२॥

जम्बूनदीके तटोंपर विद्यमान जो मिट्टी है, वह जम्बू-रससे सिक्त होकर और पुनः सूर्य तथा वायुके सम्पर्कसे सुवर्ण बन जाती है। उसीसे विद्याधरों और देवताओंकी स्त्रियोंके अनेक उत्तम आभूषण बने हैं, वह जाम्बूनद सुवर्ण देवनिर्मित कहा गया है। सदा अपनी स्त्रियोंकी कामना पूर्ण करनेवाले देवतागण उसी सुवर्णसे मुकुट, करधनी और केयूर आदिका निर्माण करते हैं॥ ९—१११/२॥

कदम्बका एक विशाल वृक्ष सुपार्श्वपर्वतपर विराजमान बताया गया है। उसके कोटरोंसे जो पाँच धाराएँ निकली हुई बतायी गयी हैं, वे सुपार्श्वगिरिके शिखरपर गिरकर पृथ्वीतलपर आयीं। वे पाँचों मधुधाराएँ इलावृतवर्षके पश्चिमभागमें प्रवाहित होती हैं। इनका सेवन करनेवाले देवताओंके मुखकी सुगन्धि लेकर प्रवाहित होता हुआ पवन चारों ओर सौ योजनतककी भूमिको सुवासित कर देता है॥ १२—१४१/२॥

भक्तोंका काम सिद्ध करनेवाली महादेवी धारेश्वरी वहाँ वास करती हैं। देवपूज्या, महोत्साहा, कालरूपा, महानना, कर्मफलदा, कान्तारग्रहणेश्वरी, करालदेहा, कालांगी और कामकोटिप्रवर्तिनी—इन नामोंसे सर्वसुरेश्वरी भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ १५—१७॥

इसी प्रकार कुमुदपर्वतके ऊपर शतबल नामसे प्रसिद्ध जो वट-वृक्ष है, उसकी शाखाओंसे नीचे गिरते हुए रससे बहुतसे नद हो गये हैं; कुमुदगिरिके शिखरसे नीचेकी ओर गिरनेवाले वे सभी नद दूध, दही, मधु, घी, गुड़, अन्न, वस्त्र, शय्या, आसन तथा आभूषण आदिके द्वारा सबके मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले हैं। वे इलावृतवर्षके उत्तरभागकी सम्पूर्ण भूमिको आप्लावित किये रहते हैं॥ १८-१९१/२॥

इन्हींके तटपर देवताओं और दानवोंद्वारा नित्य उपासित भगवती मीनाक्षी प्रतिष्ठित हैं। नीलाम्बरा, रौद्रमुखी, नीलालकयुता, अतिमान्या, अतिपूज्या, मत्तमातंगगामिनी, मदनोन्मादिनी, मानप्रिया, मानप्रियान्तरा, मारवेगधरा, मारपूजिता, मारमादिनी, मयूरवरशोभाढ्या तथा शिखिवाहनगर्भभू—इन नामोंसे युक्त पदोंके द्वारा स्वर्गवासी देवताओंको अभीष्ट फल तथा वर प्रदान करनेवाली देवीकी वन्दना करनी चाहिये। सदा परब्रह्मसे सांनिध्य रखनेवाली वे भगवती मीनाक्षी जप तथा ध्यान करनेवाले प्राणियोंको सम्मान प्रदान करती हैं॥ २०—२४॥

उन नदोंका जल पीनेसे चैतन्य प्राप्त करनेवाले प्राणियोंके शरीरपर झुर्रियों तथा केशोंकी सफेदीके लक्षण

कभी नहीं दिखायी पड़ते। थकान, पसीने आदिमें दुर्गन्धि, जरा, रोग, भय, मृत्यु, भ्रम, शीत एवं उष्ण वायु-विकार, मुखपर उदासी एवं अन्य आपत्तियाँ कभी नहीं उत्पन्न होती हैं और जीवनपर्यन्त प्राणीको सुख मिलता है और वह सुख पूर्णरूपसे निरन्तर बढ़ता ही रहता है॥ २५—२७॥

हे नारद! अब मैं उस सुमेरु नामक सुवर्णमय पर्वतके अवान्तर पर्वतोंका वर्णन करूँगा। इस पर्वतसे पृथक् बीस पर्वत हैं, जो कर्णिकाके समान हैं। उनके मूलभागमें सुमेरुपर्वत है और उसको चारों ओरसे घेरकर वे सभी पर्वत पुष्पके केसरके रूपमें विराजमान हैं। उनके नाम ये हैं—श्रृण्वत, कुरंग, कुरग, कुसुम्भ, विकंकत, त्रिकूट, शिशिर, पतंग, रुचक, निषध, शितीवास, कपिल, शंख, वैदूर्य, अरुधि, हंस, ऋषभ, नाग, कालंजर और नारद—ये बीस पर्वत हैं॥ २८—३२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोश-वर्णनमें अरुणोदादि नदियोंके निसर्गस्थानका वर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

सुमेरुपर्वतका वर्णन तथा गंगावतरणका आख्यान

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुमेरुगिरिके पूर्वमें अठारह हजार योजन लम्बाई तथा दो हजार योजन चौड़ाई तथा ऊँचाईवाले दो पर्वत हैं। वे दोनों श्रेष्ठ पर्वत जठर और देवकूट हैं। सुमेरुके पश्चिममें भी दो पर्वत हैं; उनमें पहला पवमान और दूसरा पारियात्र नामसे विख्यात है। वे दोनों पर्वत जठर तथा देवकूटके ही समान ऊँचाई तथा विस्तारवाले कहे गये हैं। सुमेरुके दक्षिणमें कैलास और करवीर नामसे विख्यात दो पर्वत हैं; ये दोनों विशाल पर्वतराज पहलेके ही समान लम्बाई तथा चौड़ाईवाले हैं। इसी प्रकार सुमेरुके उत्तरमें त्रिश्रृंग और मकर नामक दो पर्वत स्थित हैं। सूर्यकी भाँति सदा प्रकाश करता हुआ यह सुवर्णमय सुमेरुपर्वत इन्हीं आठों पर्वतश्रेष्ठोंसे चारों तरफसे घिरा हुआ है॥ १—५॥

इस सुमेरुपर्वतके शिखरपर ठीक मध्यमें पद्मयोनि ब्रह्माजीकी पुरी है। यह दस हजार योजनके विस्तारमें विराजमान है॥ ६॥

तत्त्वज्ञानी विद्वान् महात्मागण समचौकोर इस स्वर्णमयी पुरीके विषयमें कहते हैं कि उस पुरीके चारों ओर आठ लोकपालोंकी श्रेष्ठ पुरियाँ प्रसिद्ध हैं। सुवर्णमयी वे पुरियाँ दिशा तथा रूपके अनुसार स्थापित हैं। ढाई हजार योजनके विस्तारमें इनकी रचना की गयी है॥ ७-८१/२॥

इस प्रकार सुमेरुपर्वतपर ब्रह्मा तथा इन्द्र, अग्नि, आदि लोकपालोंकी क्रमशः मनोवती, अमरावती, तेजोवती, संयमनी, कृष्णांगना, श्रद्धावती, गन्धवती, महोदया और यशोवती—ये नौ पुरियाँ प्रतिष्ठित हैं॥ ९-१०१/२॥

हे नारद! यज्ञमूर्ति सर्वव्यापी भगवान् विष्णुके बायें पैरके अँगूठेके नखसे आघातके कारण ब्रह्माण्डके ऊपरी भागमें हुए छिद्रके मध्यसे गंगा प्रकट हुईं और हे विभो! वे स्वर्गके शिखरपर आकर रुक गयीं। सम्पूर्ण प्राणियोंके पापोंका नाश करनेवाले जलसे परिपूर्ण ये गंगा संसारमें साक्षात् विष्णुपदीके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ११—१३१/२॥

हजार युगका अत्यन्त दीर्घ समय बीतनेपर सम्पूर्ण देवनदियोंकी स्वामिनी वे भगवती गंगा स्वर्गके शिखरपर जहाँ आयी थीं, वह स्थान तीनों लोकमें 'विष्णुपद' नामसे विख्यात है। यह वही स्थान है, जहाँ उत्तानपादके पुत्र परम पवित्र ध्रुव रहते हैं। भगवान्‌के दोनों चरणकमलोंके पवित्र पराग धारण किये हुए वे परम पुण्यात्मा राजर्षि ध्रुव अचल पदवीका आश्रय लेकर आज भी वहींपर विराजमान हैं॥ १४—१६१/२॥

गंगाके प्रवाहको जाननेवाले तथा सभी प्राणियोंके हितकी कामना करनेवाले उदारहृदय सप्तर्षि भी वहीं रहते हैं और उनकी प्रदक्षिणा किया करते हैं॥ १७१/२॥

आत्यन्तिकी सिद्धि (मोक्ष)-स्वरूपिणी ये गंगा तपस्या करनेवाले पुरुषोंको सिद्धि देनेवाली हैं—ऐसा समझकर सिरपर जटाजूट धारण करनेवाले वे सिद्धगण उनमें निरन्तर स्नान करते रहते हैं॥ १८१/२॥

तत्पश्चात् वे गंगा विष्णुपदसे चलकर हजारों-करोड़ों विमानोंसे व्याप्त देवमार्गपर अवतरित होती हुईं चन्द्रमण्डलको आप्लावित करके ब्रह्मलोकमें पहुँचीं। हे नारद! वहाँ ब्रह्मलोकमें वे देवी गंगा चार भागोंमें विभक्त होकर चार नामोंसे चारों दिशाओंमें प्रवाहित हुईं और अन्तमें वे नद तथा नदियोंके स्वामी समुद्रमें मिल गयीं॥ १९—२१ १/२ ॥

सीता, चतुः (चक्षु), अलकनन्दा और भद्रा—इन चार नामोंसे वे प्रसिद्ध हैं। उनमेंसे सभी पापोंका शमन करनेवाली सीता नामसे विख्यात गंगा ब्रह्मलोकसे उतरकर केसर नामक पर्वतोंके शिखरसे गिरती हुईं गन्धमादनपर्वतके शिखरपर गिरीं और वहाँसे भद्राश्ववर्षके बीचसे होती हुई पूर्व दिशामें चली गयीं। इसके बाद देवताओंसे पूजित वे देवनदी गंगा क्षारोदधिमें जाकर मिल गयीं॥ २२—२४ १/२ ॥

तदनन्तर चक्षु नामवाली दूसरी गंगा माल्यवान्पर्वतके शिखरसे निकलीं और अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई केतुमालवर्षमें आ गयीं। पुनः देववन्द्या वे देवनदी गंगा पश्चिम दिशामें आ गयीं और अन्तमें सागरमें समाविष्ट हो गयीं॥ २५-२६ १/२ ॥

हे नारद! तीसरी वह पुण्यमयी धारा अलकनन्दा नामसे विख्यात है। वह ब्रह्मलोकके दक्षिणसे होकर बहुत-से वनों और पर्वत-शिखरोंको पार करके पर्वतश्रेष्ठ हेमकूटपर पहुँची। यहाँसे भी निकलकर वह अत्यन्त वेगके साथ बहती हुई भारतवर्षमें आ गयी। इसके बाद नदियोंमें श्रेष्ठ अलकनन्दा नामक वह तीसरी नदी दक्षिण समुद्रमें मिल गयी, जिसमें स्नानके लिये प्रस्थान करनेवाले मनुष्योंको पग-पगपर राजसूय तथा अश्वमेध आदिका फल भी दुर्लभ नहीं है॥ २७—३० १/२ ॥

तदनन्तर भद्रा नामक चौथी धारा शृंगवान्पर्वतसे निकली। तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली यह गंगा उत्तर कुरुप्रदेशोंको भलीभाँति तृप्त करती हुई अन्तमें समुद्रमें मिल गयी॥ ३१-३२ ॥

हे नारद! अन्य बहुतसे नद और नदियाँ प्रत्येक वर्षमें हैं। प्रायः ये सभी मेरु और मन्दारपर्वतसे ही निकले हुए हैं॥ ३३ ॥

उन नौ वर्षोंमें भारतवर्ष कर्मक्षेत्र कहा गया है। अन्य आठ वर्ष पृथ्वीपर रहते हुए भी स्वर्ग-भोग प्रदान करनेवाले हैं। हे नारद! ये वर्ष स्वर्गमें रहनेवाले पुरुषोंके शेष पुण्योंको भोगनेके स्थान हैं। देवताओंके समान स्वरूप तथा वज्रतुल्य अंगोंवाले उन पुरुषोंकी आयु दस हजार वर्ष होती है। दस हजार हाथियोंके बलसे सम्पन्न वे पुरुष स्त्रियोंसे समन्वित, यथेच्छ कामक्रीडासे सन्तुष्ट तथा सुखी रहते हैं। वहाँकी स्त्रियाँ अपनी आयु समाप्त होनेके एक वर्ष पूर्वतक गर्भ धारण करती हैं। वहाँपर सदा त्रेतायुगके समान समय विद्यमान रहता है॥ ३४—३७ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें पर्वतनदीवर्षादिवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

इलावृतवर्षमें भगवान् शंकरद्वारा भगवान् श्रीहरिके संकर्षणरूपकी आराधना तथा भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवाद्वारा हयग्रीवरूपकी उपासना

श्रीनारायण बोले—उन नौ वर्षोंमें रहनेवाले सभी देवेश पूर्वोक्त स्तोत्रों तथा जप, ध्यान और समाधिके द्वारा महादेवीकी उपासना करते हैं॥ १॥

सभी ऋतुओंमें खिलनेवाले पुष्पोंके समूहोंसे सुशोभित अनेक वन उनमें विद्यमान हैं, जहाँ फलों तथा पल्लवोंकी शोभा निरन्तर बनी रहती है॥ २॥

उन वर्षोंमें विद्यमान सभी वनोद्यानों, पर्वतशिखरों तथा सभी गिरिकन्दराओंमें और खिले हुए कमलोंसे शोभायमान तथा हंस-सारस आदि भिन्न-भिन्न जातिके पक्षियोंकी ध्वनिसे निनादित निर्मल जलवाले सरोवरोंमें वहाँके देवतागण जल-क्रीड़ा आदि विचित्र विनोदोंके द्वारा क्रीडा करते हैं और ललित भौहोंवाली सुन्दरियोंके विलासभवनोंमें उन युवतियोंके साथ यथेच्छ विहार करते हैं॥ ३—५ १/२ ॥

उन नौ वर्षोंमें (सभी लोकोंपर अनुग्रहरससे परिपूर्ण

दृष्टि रखनेवाले नारायण नामसे प्रसिद्ध) भगवान् आदिपुरुष भगवतीकी आराधना करते हुए विराजमान रहते हैं और वहाँ सभी लोग उनकी पूजा करते हैं। वे भगवान् लोकोंसे पूजा स्वीकार करनेके निमित्त अपनी विभिन्न मूर्तियोंके रूपमें समाहित होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ६-७॥

इलावृतवर्षमें भगवान् श्रीहरि ब्रह्माजीके नेत्रसे उत्पन्न भवरूपमें अपनी भार्या भवानीके साथ नित्य निवास करते हैं॥ ८॥

उस क्षेत्रमें कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता है। वहाँ जानेपर भवानीके शापसे पुरुष तत्काल नारी हो जाता है॥ ९॥

वहाँ भवानीकी सेवामें संलग्न असंख्य स्त्रियों तथा अपने करोड़ों गणोंसे घिरे हुए देवेश्वर भगवान् शिव



संकर्षणदेवकी आराधना करते हैं। वे अजन्मा भगवान् शिव सभी प्राणियोंके कल्याणार्थ तामस प्रकृतिवाली अपनी ही उस संकर्षण नामक चौथी मूर्तिका एकाग्र मनसे ध्यानयोगके द्वारा चिन्तन करते रहते हैं॥ १०-११½॥

श्रीभगवान् बोले—सभी गुणोंके अभिव्यक्तिरूप, अनन्त, अव्यक्त और ॐकारस्वरूप परम पुरुष भगवान्को नमस्कार है॥ १२॥

हे भजनीय प्रभो! भक्तोंके आश्रयस्वरूप चरण-कमलवाले, समग्र ऐश्वर्योंके परम आश्रय, भक्तोंके सामने अपना भूतभावनस्वरूप प्रकट करनेवाले और उनका सांसारिक बन्धन दूर करनेवाले, किंतु अभक्तोंको सदा भव-बन्धनमें बाँधे रहनेवाले आप परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ॥ १३॥

हे प्रभो! मैं क्रोधको नहीं जीत सका हूँ तथा मेरी दृष्टि पापसे लिप्त हो जाती है, किंतु आप तो संसारका नियमन करनेके लिये साक्षीरूपसे उसके व्यापारोंको देखते रहते हैं। फिर भी मेरी तरह आपकी दृष्टि उन मायिक गुणों तथा कर्म-वृत्तियोंसे प्रभावित नहीं होती। ऐसी स्थितिमें अपने मनको वशमें करनेकी इच्छावाला कौन पुरुष ऐसे आपका आदर नहीं करेगा॥ १४॥

मधुपान करके लाल आँखोंवाले मदमत्तकी भाँति जो प्रभु मायाके कारण विकृत नेत्रोंवाले दिखायी पड़ते हैं, जिन प्रभुके चरणोंका स्पर्श करके नागपत्नियोंका मन मोहित हो जाता है और लज्जावश वे अन्य प्रकारसे उपासना नहीं कर पातीं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।]॥ १५॥

वेदके मन्त्र जिन्हें इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण बताते हैं; परंतु वे तीनोंसे रहित हैं और जिन्हें ऋषिगण अनन्त कहते हैं, जिनके सहस्र मस्तकोंपर स्थित यह भूमण्डल सरसोंके दानेके समान प्रतीत होता है और जिन्हें यह भी नहीं ज्ञात होता कि वह कहाँ स्थित है [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।]॥ १६॥

जिनसे उत्पन्न हुआ मैं अहंकाररूप अपने त्रिगुणमय तेजसे देवता, इन्द्रिय और भूतोंकी रचना करता हूँ—वे विज्ञानके आश्रय भगवान् ब्रह्माजी भी आपके ही महत्तत्त्वसंज्ञक प्रथम गुणमय स्वरूप हैं॥ १७॥

महत्तत्त्व, अहंकार, इन्द्रियाभिमानी देवता, इन्द्रियाँ और पंचमहाभूत आदि हम सभी महात्मालोग डोरीमें बँधे हुए पक्षीकी भाँति जिनकी क्रियाशक्तिके वशीभूत होकर और जिनकी कृपाके द्वारा इस जगत्की रचना करते हैं [उन प्रभुको मेरा नमस्कार है।]॥ १८॥

सत्त्वादि गुणोंकी सृष्टिसे मोहित यह जीव जिनके द्वारा रचित तथा कर्मबन्धनमें बाँधनेवाली मायाको तो कदाचित् जान लेता है, किंतु उससे छूटनेका उपाय उसे सरलतापूर्वक नहीं ज्ञात हो पाता—उन जगत्की उत्पत्ति

तथा लयरूप आप परमात्माको मेरा नमस्कार है॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार देवीके गणोंसे घिरे हुए वे भगवान् रुद्र इलावृतवर्षमें सर्वसमर्थ परमेश्वर संकर्षणकी उपासना करते हैं॥ २०॥

उसी प्रकार भद्राश्ववर्षमें भद्रश्रवा नामक वे धर्मपुत्र और उनके कुलके प्रधान पुरुष तथा सेवक भी भगवान् वासुदेवकी हयग्रीव नामसे प्रसिद्ध हयमूर्तिको एकनिष्ठ परम समाधिके द्वारा अपने हृदयमें धारण किये रहते हैं और इस प्रकार उस हयमूर्तिरूप भगवान् वासुदेवकी स्तुति



करते हुए उनके समीप रहते हैं॥ २१—२३॥

भद्रश्रवा बोले—चित्तको शुद्ध करनेवाले ओंकारस्वरूप भगवान् धर्मको नमस्कार है। अहो, ईश्वरकी लीला बड़ी विचित्र है कि यह जीव सम्पूर्ण लोकोंका संहार करनेवाले कालको देखता हुआ भी नहीं देखता और तुच्छ विषयोंका सेवन करनेके लिये कुत्सित चिन्तन करता हुआ अपने ही पुत्र तथा पिताको जलाकर भी स्वयं जीवित रहनेकी इच्छा करता है॥ २४॥

हे अज! विद्वान् पुरुष इस विश्वको नाशवान् बताते हैं और अध्यात्मको जाननेवाले सूक्ष्मदर्शी महात्मा भी जगत्‌को इसी रूपमें देखते हैं, फिर भी वे आपकी मायासे मोहित हो जाते हैं। अतः मैं विस्मयकारक कृत्यवाले उस अजन्मा प्रभुको नमस्कार करता हूँ॥ २५॥

मायाके आवरणसे रहित आपने अकर्ता होते हुए भी विश्वकी उत्पत्ति, पालन तथा संहारका कार्य अंगीकृत किया है। यह उचित ही है, सर्वात्मरूप तथा कार्यकारणभावसे सर्वथा अतीत आपके लिये यह कोई आश्चर्य नहीं है॥ २६॥

जब प्रलयकालमें तमोगुणसे युक्त दैत्यगण वेदोंको चुरा ले गये थे तब ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर मनुष्य और अश्वके संयुक्त विग्रहवाले जिन्होंने रसातलसे उन्हें ला दिया था, ऐसा अमोघ हित करनेवाले उन आप प्रभुको नमस्कार है॥ २७॥

इस प्रकार भद्रश्रवा नामवाले वे महात्मागण हयग्रीवरूप देवेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करते हैं और उनके गुणोंका संकीर्तन करते हैं॥ २८॥

जो मनुष्य इनके इस चरित्रको पढ़ता है और दूसरोंको सुनाता है, वह पापरूपी केंचुलसे मुक्त होकर देवीलोकको प्राप्त होता है॥ २९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोश-वर्णनमें इलावृतभद्राश्ववर्षवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

हरिवर्षमें प्रह्लादके द्वारा नृसिंहरूपकी आराधना, केतुमालवर्षमें श्रीलक्ष्मीजीके द्वारा कामदेवरूपकी तथा रम्यकवर्षमें मनुजीके द्वारा मत्स्यरूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] पापोंका नाश करनेवाले, योगसे युक्त आत्मावाले तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले भगवान् नृसिंह हरिवर्षमें प्रतिष्ठित हैं॥ १॥

भगवान्‌के गुण-तत्त्वोंको जाननेवाले परम भागवत असुर प्रह्लाद उनके दयामयरूपका दर्शन करते हुए भक्तिभावसे युक्त होकर उनकी स्तुति करते हैं॥ २॥

प्रह्लाद बोले—तेजोंके भी तेज ॐकारस्वरूप भगवान् नरसिंहको बार-बार नमस्कार है। हे वज्रदंष्ट्र! आप मेरे सामने प्रकट होइये, प्रकट होइये; मेरे कर्मविषयोंको जला डालिये, जला डालिये और मेरे अज्ञानरूप अन्धकारको

नष्ट कीजिये, ॐ स्वाहा; मुझे अभय दीजिये तथा मेरे अन्तःकरणमें प्रतिष्ठित होइये। ॐ क्ष्रौं।



हे प्रभो! अखिल जगत्का कल्याण हो, दुष्टलोग शुद्ध भावनासे युक्त हों, सभी प्राणी अपने मनमें एक दूसरेके कल्याणका चिन्तन करें, हम सबका मन शुभ मार्गमें प्रवृत्त हो और हमारी मति निष्कामभावसे युक्त होकर भगवान् श्रीहरिमें प्रविष्ट हो॥ ३॥

[हे भगवन्!] घर, स्त्री, पुत्र, धन और बन्धु-बान्धवोंमें हमारी आसक्ति न हो और यदि हो तो भगवान्के प्रियजनोंमें हो। जो संयमी पुरुष केवल प्राण-रक्षाके योग्य आहारसे सन्तुष्ट रहता है, वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, किंतु इन्द्रियप्रिय व्यक्ति वैसा नहीं कर पाता॥ ४॥

जिन भगवद्भक्तोंके संगसे भगवान्के तीर्थतुल्य चरित्र सुननेको मिलते हैं, जो उनकी असाधारण शक्ति-वैभवके सूचक हैं तथा जिनका बार-बार सेवन करनेवालोंके कानोंके मार्गसे भगवान् हृदयमें प्रवेश करके उनके सभी प्रकारके मानसिक तथा दैहिक कष्टोंको हर लेते हैं—उन भगवद्भक्तोंका संग कौन नहीं करना चाहेगा?॥ ५॥

भगवान्में जिस पुरुषकी निष्काम भक्ति होती है, उसके हृदयमें देवता, धर्म, ज्ञान आदि सभी गुणोंसहित निवास करते हैं, किंतु अनेक मनोरथोंसे युक्त होकर बाहरी विषय-सुखकी ओर दौड़नेवाले भगवद्भक्तिरहित मनुष्यमें महान् गुण कहाँसे हो सकते हैं?॥ ६॥

जैसे मछलियोंको जल अत्यन्त प्रिय है, उसी प्रकार साक्षात् भगवान् श्रीहरि ही सभी देहधारियोंकी आत्मा हैं। उनका त्याग करके यदि कोई महत्त्वाभिमानी घरमें आसक्त रहता है तो उस दशामें दम्पतियोंका महत्त्व केवल उनकी आयुको लेकर माना जाता है, गुणोंकी दृष्टिसे कदापि नहीं॥ ७॥

अतएव तृष्णा, राग, विषाद, क्रोध, मान, कामना, भय, दीनता, मानसिक सन्तापके मूल और जन्म-मरणरूप संसारचक्रका वहन करनेवाले गृहका परित्याग करके भगवान् नृसिंहके चरणका आश्रय लेनेवालेको भय कहाँ!॥ ८॥

[हे नारद!] इस प्रकार वे दैत्यपति प्रह्लाद पापरूपी हाथियोंके लिये सिंहस्वरूप तथा हृदयकमलमें निवास करनेवाले भगवान् नृसिंहकी भक्तिपूर्वक निरन्तर स्तुति करते रहते हैं॥ ९॥

केतुमालवर्षमें भगवान् श्रीहरि कामदेवका रूप धारण करके प्रतिष्ठित हैं। उस वर्षके अधीश्वरोंके लिये वे सर्वदा पूजनीय हैं॥ १०॥

इस वर्षकी अधीश्वरी तथा महान् लोगोंको सम्मान देनेवाली समुद्रतनया लक्ष्मीजी इस स्तोत्रसमूहसे निरन्तर



उनकी उपासना करती हैं॥ ११॥

रमा बोलीं—इन्द्रियोंके स्वामी, सम्पूर्ण श्रेष्ठ वस्तुओंसे लक्षित आत्मावाले, ज्ञान-क्रिया-संकल्पशक्ति आदि चित्तके धर्मों तथा उनके विषयोंके अधिपति, सोलह कलाओंसे सम्पन्न, वेदोक्त कर्मोंसे प्राप्त होनेवाले, अन्नमय, अमृतमय, सर्वमय, महनीय, ओजवान्, बलशाली तथा कान्तियुक्त भगवान् कामदेवको ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ—इन बीजमन्त्रोंके साथ सब ओरसे नमस्कार है।

[हे प्रभो!] स्त्रियाँ अनेक प्रकारके व्रतोंद्वारा आप हृषीकेश्वरकी आराधना करके लोकमें अन्य पतिकी इच्छा किया करती हैं; किंतु वे पति उनके प्रिय पुत्र, धन और आयुकी रक्षा नहीं कर पाते हैं; क्योंकि वे स्वयं ही परतन्त्र होते हैं॥ १२॥

[हे परमात्मन्!] पति तो वह होता है, जो स्वयं किसीसे भयभीत न रहकर भयग्रस्त जनकी भलीभाँति रक्षा करता है। वैसे पति एकमात्र आप ही हैं; यदि एक-से अधिक पति माने जायँ तो उन्हें परस्पर भयकी सम्भावना रहती है। अत: आप अपनी प्राप्तिसे बढ़कर और कोई लाभ नहीं मानते॥ १३॥

हे भगवन्! जो स्त्री आपके चरणकमलोंके पूजनकी कामना करती है और अन्य वस्तुकी अभिलाषा नहीं करती, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं; किंतु जो किसी एक कामनाको लेकर आपकी उपासना करती है, उसे आप केवल वही वस्तु देते हैं और जब भोगके पश्चात् वह वस्तु नष्ट हो जाती है तो उसके लिये उसे दु:खित होना पड़ता है॥ १४॥

हे अजित! इन्द्रियसुख पानेका विचार रखनेवाले ब्रह्मा, रुद्र, देव तथा दानव आदि मेरी प्राप्तिके लिये कठिन तप करते हैं; किंतु आपके चरणकमलोंकी उपासना करनेवालेके अतिरिक्त अन्य कोई भी मुझे प्राप्त नहीं कर सकते; क्योंकि मेरा हृदय सदा आपमें ही लगा रहता है॥ १५॥

हे अच्युत! आप अपने जिस वन्दनीय करकमलको भक्तोंके मस्तकपर रखते हैं, उसे मेरे भी सिरपर रखिये। हे वरेण्य! आप मुझे केवल श्रीवत्सरूपसे अपने वक्ष:स्थलपर ही धारण करते हैं। मायासे की हुई आप परमेश्वरकी लीलाको जाननेमें भला कौन समर्थ है?॥ १६॥

[हे नारद!] इस प्रकार [केतुमालवर्षमें] लक्ष्मीजी तथा इस वर्षके अन्य प्रजापति आदि प्रमुख अधीश्वर भी कामनासिद्धिके लिये कामदेवरूपधारी लोकबन्धुस्वरूपी श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ १७॥

रम्यक नामक वर्षमें मनुजी भगवान् श्रीहरिकी देवदानवपूजित सर्वश्रेष्ठ मत्स्यमूर्तिकी निरन्तर इस प्रकार स्तुति करते रहते हैं॥ १८॥

मनुजी बोले—सबसे प्रधान, सत्त्वमय, प्राणसूत्रात्मा, ओजस्वी तथा बलयुक्त ॐकारस्वरूप भगवान् महामत्स्यको बार-बार नमस्कार है।



आप सभी प्राणियोंके भीतर और बाहर संचरण करते हैं। आपके रूपको ब्रह्मा आदि सभी लोकपाल भी नहीं देख सकते। वेद ही आपका महान् शब्द है। वे ईश्वर आप ही हैं। ब्राह्मण आदि विधिनिषेधात्मकरूप डोरीसे इस जगत्को अपने अधीन करके उसे उसी प्रकार नचाते हैं, जैसे कोई नट कठपुतलीको नचाता है॥ १९॥

आपके प्रति ईर्ष्याभावसे भरे हुए लोकपाल आपको छोड़कर अलग-अलग तथा मिलकर भी मनुष्य, पशु, नाग आदि जंगम तथा स्थावर प्राणियोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करते हुए भी रक्षा नहीं कर सके॥ २०॥

हे अजन्मा प्रभो! जब ऊँची लहरोंसे युक्त प्रलयकालीन समुद्र विद्यमान था, तब आप औषधियों और लताओंकी निधिस्वरूप पृथ्वी तथा मुझको लेकर उस समुद्रमें उत्साहपूर्वक क्रीडा कर रहे थे; जगत्के समस्त प्राणसमुदायके नियन्ता आप भगवान् मत्स्यको नमस्कार है॥ २१॥

इस प्रकार राजाओंमें श्रेष्ठ मनुजी सभी संशयोंको समूल समाप्त कर देनेवाले मत्स्यरूपमें अवतीर्ण देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति करते हैं॥ २२॥

भगवान्के ध्यानयोगके द्वारा अपने सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर चुके तथा महाभागवतोंमें श्रेष्ठ मनुजी भक्तिपूर्वक भगवान्की उपासना करते हुए यहाँ प्रतिष्ठित रहते हैं॥ २३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें हरिवर्ष-केतुमाल-रम्यकवर्षवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

हिरण्मयवर्षमें अर्यमाके द्वारा कच्छपरूपकी आराधना, उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीद्वारा वाराहरूपकी एवं किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा श्रीरामचन्द्ररूपकी स्तुति-उपासना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] हिरण्मय नामक वर्षमें भगवान् श्रीहरि कूर्मरूप धारण करके विराजमान हैं। यहाँ अर्यमाके द्वारा उन योगेश्वरभगवान्‌की पूजा तथा स्तुति की जाती है॥ १॥

अर्यमा बोले—सम्पूर्ण सत्त्व आदि गुण-विशेषणोंसे युक्त, जलमें रहनेके कारण अलक्षित स्थानवाले, कालसे सर्वथा अतीत, आधारस्वरूप तथा ॐकाररूप भगवान् कूर्मको बार-बार नमस्कार है।

[हे प्रभो!] अनेक रूपोंमें दिखायी देनेवाला यह जगत् यद्यपि मिथ्या ही निश्चय होता है, इसलिये इसकी वस्तुतः कोई संख्या नहीं है; तथापि यह मायासे प्रकाशित होनेवाला आपका ही रूप है, ऐसे उन अनिर्वचनीय आपको नमस्कार है॥ २॥



एकमात्र आप ही जरायुज, स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, चर, अचर, देवता, ऋषि, पितर, भूत, इन्द्रिय, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप, ग्रह और नक्षत्र—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ३॥

विद्वानोंने असंख्य नाम, रूप और आकृतियोंवाले आपमें जिन चौबीस तत्त्वोंकी संख्या निश्चित की है, वह जिस-जिस तत्त्वदृष्टिका उदय होनेपर निवृत्त हो जाती है, वह भी वस्तुतः आपका ही स्वरूप है; ऐसे सांख्य-सिद्धान्तस्वरूप आपको मेरा नमस्कार है॥ ४॥

इस प्रकार अर्यमा हिरण्मयवर्षके अन्य अधीश्वरोंके साथ सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाले कूर्मरूप देवेश्वर भगवान् श्रीहरिकी स्तुति, उनका गुणानुवाद तथा भजन करते हैं॥ ५॥

उत्तरकुरुवर्षमें पृथ्वीदेवी आदिवराहरूप यज्ञपुरुष



भगवान् श्रीहरिकी निरन्तर उपासना करती हैं॥ ६॥

प्रेमरससे परिपूर्ण हृदयकमलवाली वे पृथ्वीदेवी दैत्योंका नाश करनेवाले यज्ञवराह श्रीहरिकी विधिपूर्वक पूजा करके भक्तिभावसे उनकी स्तुति करती हैं॥ ७॥

पृथ्वी बोलीं—मन्त्रोंके द्वारा ज्ञेय तत्त्वोंवाले, यज्ञ तथा क्रतुस्वरूप, बड़े-बड़े यज्ञरूप अवयवोंवाले, सात्त्विक कर्मोंवाले तथा त्रियुगमूर्तिरूप आप ओंकारस्वरूप भगवान् महावराहको बार-बार नमस्कार है॥ ८॥

काष्ठोंमें छिपी हुई अग्निको प्रकट करनेके लिये मन्थन करनेवाले ऋत्विज्-गणोंकी भाँति परम प्रवीण विद्वान् पुरुष कर्मासक्ति एवं कर्मफलकी कामनासे छिपे हुए जिनके रूपको देखनेकी इच्छासे अपने विवेकयुक्त मनरूपी मथानीद्वारा शरीर एवं इन्द्रियोंको मथ डालते हैं;

इस प्रकार मन्थनके पश्चात् अपने रूपको प्रकट करनेवाले आपको नमस्कार है॥ ९॥

हे प्रभो! विचार तथा यम-नियमादि योगांगोंके साधनोंके प्रभावसे निश्चयात्मिका बुद्धिवाले महापुरुष द्रव्य (विषय), क्रियाहेतु (इन्द्रिय-व्यापार), अयन (शरीर), ईश और कर्ता (अहंकार) आदि मायाके कार्योंको देखकर जिनके वास्तविक स्वरूपका निश्चय करते हैं; ऐसे मायिक आकृतियोंसे रहित आपको नमस्कार है॥ १०॥

जिसकी इच्छामात्रसे निःस्पृह होती हुई भी प्रकृति गुणोंके द्वारा जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कार्यमें इस प्रकार प्रवृत्त हो जाती है, जैसे चुम्बकका सम्पर्क पाकर लोहा गतिशील हो जाता है; उन आप सम्पूर्ण गुणों एवं कर्मोंके साक्षी श्रीहरिको नमस्कार है॥ ११॥

जिन्होंने एक हाथीको पछाड़नेवाले दूसरे हाथीकी भाँति युद्धके अवसरपर खेल-खेलमें प्रतिद्वन्द्वी दैत्य हिरण्याक्षका लीलापूर्वक हनन करके मुझे अपने दाढ़ोंके अग्रभागपर उठाकर रसातलसे बाहर निकाल लिया, उन जगत्‌के आदिकारणस्वरूप सर्वशक्तिमान् भगवान् वराहको नमस्कार है॥ १२॥

किम्पुरुषवर्षमें श्रीहनुमान्‌जी सम्पूर्ण जगत्‌के शासक आदिपुरुष दशरथपुत्र भगवान् श्रीसीतारामकी इस प्रकार स्तुति



करते हैं॥ १३॥

हनुमान् बोले—उत्तम कीर्तिवाले ओंकारस्वरूप भगवान् श्रीरामको नमस्कार है। श्रेष्ठ पुरुषोंके लक्षण, शील और व्रतसे सम्पन्न श्रीरामको नमस्कार है; संयत चित्तवाले तथा लोकाराधनमें तत्पर श्रीरामको नमस्कार है; साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीस्वरूप श्रीरामको नमस्कार है; ब्राह्मणोंके परम भक्त एवं महान् भाग्यशाली महापुरुष श्रीरामको नमस्कार है।

जो विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने तेजसे गुणोंकी जाग्रत् आदि अवस्थाओंका निवारण करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, निर्मल बुद्धिके द्वारा ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित तथा अहंकारशून्य हैं; उन आप भगवान्‌की मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ १४॥

हे प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, अपितु इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है; अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् आप जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था॥ १५॥

आप धीर पुरुषोंके आत्मा[1] और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं[2]॥ १६॥

न उत्तम कुलमें जन्म, न सुन्दरता, न वाक्चातुर्य, न तो बुद्धि और न तो श्रेष्ठ योनि ही आपकी प्रसन्नताके कारण हो सकते हैं; यही बात दिखानेके लिये हे लक्ष्मणाग्रज! आपने इन सभी गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है॥ १७॥

देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य जो कोई भी हो, उस उपकारीके थोड़े उपकारको भी बहुत अधिक माननेवाले, नररूपधारी श्रेष्ठ श्रीरामस्वरूप आप श्रीहरिका सब प्रकारसे भजन करना चाहिये, जो दिव्य धामको

१. यहाँ शंका होती है कि भगवान् तो सभीके आत्मा हैं, फिर यहाँ उन्हें आत्मवान् (धीर) पुरुषोंके ही आत्मा क्यों बताया गया? इसका कारण यही है कि सबके आत्मा होते हुए भी उन्हें केवल आत्मज्ञानी पुरुष ही अपने आत्मारूपसे अनुभव करते हैं—अन्य पुरुष नहीं। श्रुतिमें जहाँ-कहीं आत्मसाक्षात्कारकी बात आयी है, वहीं आत्मवेत्ताके लिये 'धीर' शब्दका प्रयोग किया है। जैसे **'कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत'** इति **'नः शुश्रुम धीराणाम्'** इत्यादि। इसीलिये यहाँ भी भगवान्‌को आत्मवान् या धीर पुरुषका आत्मा बताया है।

२. एक बार भगवान् श्रीराम एकान्तमें एक देवदूतसे बात कर रहे थे। उस समय लक्ष्मणजी पहरेपर थे और भगवान्‌की आज्ञा थी

प्रस्थान करते समय सभी उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ लेते गये थे॥ १८॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार किम्पुरुषवर्षमें वानरश्रेष्ठ हनुमान् सत्यप्रतिज्ञ, दृढ़व्रती तथा कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले भगवान् श्रीरामकी भक्तिपूर्वक स्तुति करते हैं, उनके गुण गाते हैं तथा भलीभाँति उनकी पूजा करते हैं। जो पुरुष भगवान् श्रीरामचन्द्रके इस अद्भुत कथाप्रसंगका श्रवण करता है; वह पापोंसे मुक्त होकर विशुद्ध आत्मावाला हो जाता है और श्रीरामके परम धामको प्राप्त होता है॥ १९-२०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें हिरण्मयकिम्पुरुषवर्षवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

जम्बूद्वीपस्थित भारतवर्षमें श्रीनारदजीके द्वारा नारायणरूपकी स्तुति-उपासना तथा भारतवर्षकी महिमाका कथन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] भारत नामक इस वर्षमें आदिपुरुष मैं सदा विराजमान रहता हूँ और यहाँ आप निरन्तर मेरी स्तुति करते रहते हैं॥ १॥



नारद बोले—शान्त स्वभाववाले, अहंकारसे रहित, निर्धनोंके परम धन, ऋषियोंमें श्रेष्ठ, परमहंसोंके परम गुरु, आत्मारामोंके अधिपति तथा ओंकारस्वरूप भगवान् नरनारायणको बार-बार नमस्कार है।

जो विश्वकी उत्पत्ति आदिमें उनके कर्ता होकर भी कर्तृत्वके अभिमानसे नहीं बँधते, जो देहमें रहते हुए भी भूख-प्यास आदि दैहिक गुण-धर्मोंके वशीभूत नहीं होते तथा द्रष्टा होते हुए भी जिनकी दृष्टि दृश्यके गुण-दोषोंसे दूषित नहीं होती; उन असंग तथा विशुद्ध साक्षिस्वरूप भगवान् नारायणको नमस्कार है॥ २॥

हे योगेश्वर! हिरण्यगर्भ ब्रह्माजीने योगसाधनकी सबसे बड़ी कुशलता यही बतलायी है कि मनुष्य अन्तकालमें देहाभिमानको छोड़कर भक्तिपूर्वक आप गुणातीतमें अपना मन लगाये॥ ३॥

लौकिक तथा पारलौकिक भोगोंकी लालसा रखनेवाला मूढ मनुष्य जैसे पुत्र, स्त्री और धनकी चिन्ता करता हुआ मृत्युसे डरता है, उसी प्रकार यदि विद्वान् भी इस कुत्सित शरीरके छूट जानेके भयसे युक्त रहे तो ज्ञानप्राप्तिके लिये किया हुआ उसका सारा प्रयत्न केवल परिश्रममात्र है॥ ४॥

अत: हे अधोक्षज! हे प्रभो! आप हमें अपना स्वाभाविक प्रेमरूप भक्तियोग प्रदान कीजिये, जिससे इस निन्दनीय शरीरमें आपकी मायाके कारण बद्धमूल हुई दुर्भेद्य अहंता तथा ममताको हम तुरंत काट डालें॥ ५॥

इस प्रकार अखिल ज्ञातव्य रहस्योंको देखनेवाले मुनिश्रेष्ठ नारद निर्विकार भगवान् नारायणकी स्तुति करते रहते हैं॥ ६॥

[नारायण बोले—] हे देवर्षे! इस भारतवर्षमें

कि यदि इस समय कोई भीतर आयेगा तो वह मेरे हाथसे मारा जायगा। इतनेमें ही दुर्वासामुनि चले आये और उन्होंने लक्ष्मणजीको अपने आनेकी सूचना देनेके लिये भीतर जानेको विवश किया। इससे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भगवान् बड़े असमंजसमें पड़ गये। तब वसिष्ठजीने कहा कि लक्ष्मणजीके प्राण न लेकर उन्हें त्याग देना चाहिये; क्योंकि अपने प्रियजनका त्याग मृत्युदण्डके समान ही है। इसीसे भगवान्ने उन्हें त्याग दिया।

अनेक नदियाँ तथा पर्वत हैं; अब मैं उनका वर्णन करूँगा; आप एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ ७॥

मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कुटक, कोल्ल, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, व्यंकटाद्रि, महेन्द्र, वारिधार, विन्ध्य, मुक्तिमान्, ऋक्ष, पारियात्र, द्रोण, चित्रकूट, गोवर्धन, रैवतक, ककुभ, नील, गौरमुख, इन्द्रकील तथा कामगिरि पर्वत हैं। इनके अतिरिक्त भी प्रचुर पुण्य प्रदान करनेवाले अन्य असंख्य पर्वत हैं॥ ८—११॥

इन पर्वतोंसे निकली हुई सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं; जिनका जल पीने, जिनमें डुबकी लगाकर स्नान करने, दर्शन करने तथा जिनके नामका उच्चारण करनेसे मनुष्योंके तीनों प्रकारके पाप नष्ट हो जाते हैं। ताम्रपर्णी, चन्द्रवशा, कृतमाला, वटोदका, वैहायसी, कावेरी, वेणा, पयस्विनी, तुंगभद्रा, कृष्णवेणा, शर्करावर्तका, गोदावरी, भीमरथी, निर्विन्ध्या, पयोष्णिका, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, सरस्वती, चर्मण्वती, सिन्धु, अन्ध तथा शोण नामवाले दो महान् नद, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, वेदस्मृति, महानदी, कौशिकी, यमुना, मन्दाकिनी, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधवती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रु, चन्द्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी और विश्वा—ये प्रसिद्ध नदियाँ हैं॥ १२—१८॥

इस भारतवर्षमें जन्म लेनेवाले पुरुष अपने-अपने शुक्ल (सात्त्विक), लोहित (राजस) तथा कृष्ण (तामस) कर्मोंके कारण क्रमशः देव, मनुष्य तथा नारकीय भोगोंको प्राप्त करते हैं। भारतवर्षमें निवास करनेवाले सभी लोगोंको अनेक प्रकारके भोग सुलभ होते हैं। अपने वर्णधर्मके नियमोंका पालन करनेसे मोक्षतक निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है॥ १९-२०॥

इस मोक्षरूपी महान् कार्यकी सिद्धिका साधन होनेके कारण ही स्वर्गके निवासी वेदज्ञ मुनिगण भारतवर्षकी महिमाका इस प्रकार वर्णन करते हैं—॥ २१॥

अहो! जिन जीवोंने भारतवर्षमें भगवान्की सेवाके योग्य जन्म प्राप्त किया है, उन्होंने ऐसा क्या पुण्य किया है? अथवा इनपर स्वयं श्रीहरि ही प्रसन्न हो गये हैं। इस सौभाग्यके लिये तो हमलोग भी लालायित रहते हैं॥ २२॥

हमने कठोर यज्ञ, तप, व्रत, दान आदिके द्वारा जो यह तुच्छ स्वर्ग प्राप्त किया है, इससे क्या लाभ? यहाँ तो इन्द्रियोंके भोगोंकी अधिकताके कारण स्मरणशक्ति क्षीण हो जानेसे भगवान्के चरणकमलोंकी स्मृति होती ही नहीं॥ २३॥

इस स्वर्गके निवासियोंकी आयु एक कल्पकी होनेपर भी उन्हें पुनः जन्म लेना पड़ता है। उसकी अपेक्षा भारतभूमिमें अल्प आयुवाला होकर जन्म लेना श्रेष्ठ है; क्योंकि यहाँ धीर पुरुष एक क्षणमें ही अपने इस मर्त्य शरीरसे किये हुए सम्पूर्ण कर्म भगवान्को अर्पण करके उनका अभयपद प्राप्त कर लेते हैं॥ २४॥

जहाँ भगवत्कथाकी अमृतमयी सरिता प्रवाहित नहीं होती, जहाँ उसके उद्गमस्थानस्वरूप भगवद्भक्त साधुजन निवास नहीं करते और जहाँ समारोहपूर्वक भगवान् यज्ञेश्वरकी पूजा-अर्चा नहीं होती, वह चाहे ब्रह्मलोक ही क्यों न हो, उसका सेवन नहीं करना चाहिये॥ २५॥

भारतवर्षमें उत्तम ज्ञान, कर्म तथा द्रव्य आदिसे सम्पन्न मानवयोनि प्राप्त करके भी जो प्राणी पुनर्भव (आवागमन)-रूप बन्धनसे छूटनेका प्रयत्न नहीं करते, वे [व्याधकी फाँसीसे मुक्त होकर फल आदिके लोभसे उसी वृक्षपर विहार करनेवाले] जंगली पक्षियोंकी भाँति पुनः बन्धनमें पड़ते हैं॥ २६॥

भारतवासियोंका कैसा सौभाग्य है कि जब वे यज्ञमें भिन्न-भिन्न देवताओंके उद्देश्यसे अलग-अलग भाग रखकर विधि, मन्त्र और द्रव्य आदिके योगसे भक्तिपूर्वक हवि प्रदान करते हैं, तब भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारे जानेपर सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले वे एक पूर्णब्रह्म श्रीहरि स्वयं ही प्रसन्न होकर उस हविभागको ग्रहण करते हैं॥ २७॥

यह ठीक है कि भगवान् सकाम पुरुषोंके माँगनेपर उन्हें अभीष्ट पदार्थ देते हैं, किंतु यह भगवान्का वास्तविक दान नहीं है; क्योंकि उन वस्तुओंको पा लेनेपर भी मनुष्यके मनमें पुनः कामनाएँ होती ही रहती हैं। इसके विपरीत जो उनका निष्कामभावसे भजन करते हैं, उन्हें तो वे साक्षात् अपने चरणकमल ही दे देते हैं—जो अन्य समस्त इच्छाओंको समाप्त कर देनेवाले हैं॥ २८॥

(अतः अबतक स्वर्गसुख भोग लेनेके बाद हमारे पूर्वकृत यज्ञ और पूर्त कर्मोंसे यदि कुछ भी पुण्य अवशिष्ट हो, तो उसके प्रभावसे हमें इस भारतवर्षमें

भगवान्‌की स्मृतिसे युक्त मनुष्यजन्म मिले; क्योंकि श्रीहरि अपना भजन करनेवाले प्राणियोंका परम कल्याण करते हैं।)

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार स्वर्गको प्राप्त देवता, सिद्ध और महर्षिगण भारतवर्षकी उत्तम महिमाका गान करते हैं॥ २९॥

जम्बूद्वीपमें अन्य आठ उपद्वीप भी बताये गये हैं। खोये हुए घोड़ेके मार्गोंका अन्वेषण करनेवाले सगरके पुत्रोंने इन उपद्वीपोंकी कल्पना की थी। स्वर्णप्रस्थ, चन्द्रशुक्र, आवर्तन, रमाणक, मन्दरहरिण, पांचजन्य, सिंहल और लंका—ये आठ उपद्वीप प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मैंने विस्तारके साथ जम्बूद्वीपका परिमाण बता दिया। अब इसके बाद प्लक्ष आदि छः द्वीपोंका वर्णन करूँगा॥ ३०—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें भारतवर्षका वर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

प्लक्ष, शाल्मलि और कुशद्वीपका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यह जम्बूद्वीप जैसा और जितने परिमाणवाला बताया गया है, वह उतने ही परिमाणवाले क्षारसमुद्रसे चारों ओरसे उसी प्रकार घिरा है, जैसे मेरुपर्वत जम्बूद्वीपसे घिरा हुआ है। क्षारसमुद्र भी अपनेसे दूने परिमाणवाले प्लक्षद्वीपसे उसी प्रकार घिरा हुआ है, जिस प्रकार कोई परिखा (खाईं) बाहरके उपवनसे घिरी रहती है। जम्बूद्वीपमें जितना बड़ा जामुनका वृक्ष है, उतने ही विस्तारवाला प्लक्ष (पाकड़)-का वृक्ष उस प्लक्षद्वीपमें है, इसीसे वह प्लक्षद्वीप नामसे प्रसिद्ध हुआ॥ १—३॥

सुवर्णमय अग्निदेव वहींपर निश्चितरूपसे प्रतिष्ठित हैं। सात जिह्वाओंवाले ये अग्निदेव प्रियव्रतके पुत्र कहे गये हैं। 'इध्मजिह्व' नामवाले ये अग्निदेव उस द्वीपके अधिपति थे, जिन्होंने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्तकर अपने पुत्रोंको सौंप दिया। तदनन्तर वे ऐश्वर्यशाली इध्मजिह्व आत्मज्ञानियोंके द्वारा मान्य योगसाधनमें तत्पर हो गये। उसी आत्मयोगके साधनसे उन्होंने भगवान्‌का सांनिध्य प्राप्त किया॥ ४—६॥

शिव, यवस, भद्र, शान्त, क्षेम, अमृत और अभय—प्लक्षद्वीपके ये सात वर्ष उन पुत्रोंके नामोंसे विख्यात हैं। उन वर्षोंमें सात नदियाँ तथा सात पर्वत कहे गये हैं। अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री, सुप्रभातिका, ऋतम्भरा और सत्यम्भरा—इन नामोंसे नदियाँ तथा मणिकूट, वज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुपर्ण, हिरण्यष्ठीव और मेघमाल—इन नामोंसे प्लक्षद्वीपके पर्वत प्रसिद्ध हैं॥ ७—१०॥

प्लक्षद्वीपकी नदियोंके जलके केवल दर्शन, स्पर्श आदिसे वहाँकी प्रजाका सम्पूर्ण पाप समाप्त हो जाता है और उनका अज्ञानान्धकार मिट जाता है॥ ११॥

उस प्लक्षद्वीपमें हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामवाले चार वर्णके लोग निवास करते हैं॥ १२॥

उनकी आयु एक हजार वर्षकी होती है और वे देखनेमें विलक्षण प्रतीत होते हैं। वे तीनों वेदोंमें बताये गये विधानसे स्वर्गके द्वारस्वरूप भगवान् सूर्यकी इस प्रकार उपासना करते हैं—जो सत्य, ऋत, वेद तथा सत्कर्मके अधिष्ठाता हैं; अमृत और मृत्यु जिनके विग्रह हैं, हम उन शाश्वत विष्णुरूप भगवान् सूर्यकी शरण लेते हैं॥ १३-१४॥

हे नारद! प्लक्ष आदि सभी पाँचों द्वीपोंमें वहाँके सभी प्राणियोंमें आयु, इन्द्रिय, मनोबल, इन्द्रियबल, शारीरिकबल, बुद्धि और पराक्रम—ये सब स्वाभाविक रूपसे सिद्ध रहते हैं॥ १५$^{१}/_{२}$॥

सभी सरिताओंका पति इक्षुरसका समुद्र प्लक्षद्वीपसे भी बड़ा है। वह सम्पूर्ण प्लक्षद्वीपको सभी ओरसे घेरकर स्थित है॥ १६$^{१}/_{२}$॥

इस प्लक्षद्वीपके बाद इससे भी दूने विस्तारवाला शाल्मल नामक द्वीप है, जो अपने ही विस्तारवाले सुरोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। वहाँपर एक शाल्मली (सेमर)-का वृक्ष है, जो [प्लक्षद्वीपमें स्थित] 'पाकर' के वृक्षके विस्तारवाला कहा गया है॥ १७-१८॥

वह शाल्मलीद्वीप पक्षियोंके स्वामी महात्मा गरुडका निवासस्थान है। महाराज प्रियव्रतके ही पुत्र यज्ञबाहु उस द्वीपके शासक हुए। उन्होंने अपने सात पुत्रोंमें पृथ्वीको [विभक्त करके] प्रदान कर दिया है। अब उन वर्षोंके जो नाम बताये गये हैं; उन्हें सुनिये—सुरोचन, सौमनस्य, रमण, देववर्षक, पारिभद्र, आप्यायन और विज्ञात॥ १९—२१॥

उन वर्षोंमें सात पर्वत और सात ही नदियाँ कही गयी हैं। सरस, शतशृंग, वामदेव, कन्दक, कुमुद, पुष्पवर्ष और सहस्रश्रुति—ये सात पर्वत हैं और अब नदियोंके नाम बताये जाते हैं; अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नन्दा और राका—ये नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २२—२४॥

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषुन्धर नामक चार वर्णोंके सभी पुरुष साक्षात् वेदस्वरूप ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् चन्द्रमाकी इस प्रकार उपासना करते हैं—अपनी किरणोंसे पितरोंके लिये कृष्ण तथा देवताओंके लिये शुक्लमार्गका विभाजन करनेवाले और सम्पूर्ण प्रजाओंके राजा भगवान् सोम प्रसन्न हों॥ २५-२६१/२॥

इसी प्रकार सुरोदकी अपेक्षा दूने विस्तारवाला कुशद्वीप बताया गया है। यह भी अपने ही समान विस्तारवाले घृतोद नामक समुद्रसे घिरा हुआ है। इसमें कुशोंका एक महान् पुंज प्रकाशित होता रहता है, इसीसे इस द्वीपको कुशद्वीप कहा गया है। प्रज्वलित होता हुआ यह अपनी कोमल शिखाओंकी कान्तिसे सभी दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ वहाँ प्रतिष्ठित है॥ २७-२८१/२॥

उस कुशद्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र महाराज हिरण्यरेताने उस द्वीपको अपने सात पुत्रोंमें सात भागोंमें विभाजित कर दिया। वसु, वसुदान, दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त और नामदेव—ये उनके नाम थे॥ २९-३०१/२॥

उनके वर्षोंमें उनकी सीमा निर्धारित करनेवाले सात ही श्रेष्ठ पर्वत कहे गये हैं और सात ही नदियाँ भी हैं। उनके नाम सुनिये—चक्र, चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा और द्रविड—ये सात पर्वत हैं और रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविन्दा, श्रुतविन्दा, देवगर्भा, घृतच्युता तथा मन्दमालिका—ये नदियाँ हैं, जिनके जलमें कुशद्वीपके निवासी स्नान करते हैं। वे सब कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक—इन नामोंसे चार वर्णोंवाले कहे हैं। श्रेष्ठ देवताओंके सदृश तेजस्वी तथा सर्वज्ञ वहाँके सभी लोग अपने यज्ञ आदि कुशलकर्मोंद्वारा अग्निस्वरूप उन भगवान् श्रीहरिकी उपासना करते हैं॥ ३१—३६॥

उस द्वीपमें निवास करनेवाले सभी पुरुष अग्निदेवकी इस प्रकार स्तुति करते हैं—'हे जातवेद! आप परब्रह्मको साक्षात् हवि पहुँचानेवाले हैं। अतः भगवान्‌के अंगभूत देवताओंके यजनद्वारा आप उन परम पुरुषका ही यजन करें'॥ ३७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें प्लक्षद्वीपकुशद्वीपवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

क्रौंच, शाक और पुष्करद्वीपका वर्णन

नारदजी बोले—हे सर्वार्थदर्शन! अब आप शेष द्वीपोंके परिमाण बतलाइये, जिन्हें जाननेमात्रसे मनुष्य परम आनन्दमय हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कुशद्वीपके चारों ओर घृतके समुद्रका महान् आवरण है। उसके बाहर उससे दूने परिमाणवाला क्रौंचद्वीप है, जो अपने ही समान विस्तारवाले क्षीरसमुद्रसे घिरा हुआ सुशोभित होता है। उसमें क्रौंच नामक पर्वत विद्यमान है, उसीके कारण इसका नाम क्रौंचद्वीप पड़ गया॥ २-३॥

पूर्वकालमें स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिके प्रहारसे

इसका कटिप्रदेश कट गया था, किंतु क्षीरसमुद्रसे सिंचित और वरुणदेवसे रक्षित होकर यह पुनः स्थिर हो गया॥ ४॥

इस द्वीपके शासक प्रियव्रतपुत्र घृतपृष्ठ थे। सम्पूर्ण लोकके वन्दनीय उन श्रीमान्ने अपने द्वीपको सात वर्षोंमें विभक्त करके अपने सात पुत्रोंको दे दिया। इस प्रकार पुत्रोंके ही नामवाले वर्षोंके अधिपतिके रूपमें पुत्रोंको नियुक्त करके उन्होंने स्वयं भगवान् श्रीहरिका आश्रय ग्रहण कर लिया॥ ५-६१/२॥

आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधामक, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण और वनस्पति—ये उनके सात पुत्र हैं। [उनके वर्षोंमें] सात पर्वत तथा सात नदियाँ इस सम्पूर्ण भूमण्डलपर प्रसिद्ध हैं। शुक्ल, वर्धमान, भाजन, उपबर्हण, नन्द, नन्दन और सर्वतोभद्र—ये पर्वत कहे गये हैं॥ ७—९॥

अभया, अमृतौघा, आर्यका, तीर्थवती, वृत्तिरूपवती, शुक्ला और पवित्रवतिका—ये सात नदियाँ हैं। इन नदियोंका पवित्र जल वहाँके चार वर्णोंके समुदायद्वारा पीया जाता है। पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक—ये चार वर्णोंके पुरुष वहाँ निवास करते हैं। वहाँके पुरुष जलसे भरी हुई अंजलिके द्वारा विविध क्रियाएँ करते हुए भक्तिपूर्वक जलके स्वामी जलरूप भगवान् वरुणदेवकी उपासना इस प्रकार करते हैं—'हे जलदेवता! आपको परमात्मासे सामर्थ्य प्राप्त है। आप भूः, भुवः और स्वः—इन तीनों लोकोंको पवित्र करते हैं; क्योंकि आप स्वरूपसे पापोंका नाश करनेवाले हैं। हम अपने शरीरसे आपका स्पर्श करते हैं, आप हमारे अंगोंको पवित्र करें'—इस मन्त्रके जपके पश्चात् वे विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करते हैं॥ १०—१४॥

इसी प्रकार क्षीरसमुद्रसे आगे उसके चारों ओर बत्तीस लाख योजन विस्तारवाला शाकद्वीप फैला हुआ है। यह द्वीप भी अपने ही समान परिमाणवाले दधिमण्डोदक समुद्रसे घिरा हुआ है। यह शाकद्वीप एक विशिष्ट द्वीप है, जिसमें 'शाक' नामक एक विशाल वृक्ष स्थित है। हे नारद! वही वृक्ष इस क्षेत्रके नामका कारण है। प्रियव्रतपुत्र मेधातिथि उस द्वीपके अधिपति कहे जाते हैं। वे इस द्वीपको सात वर्षोंमें विभाजित करके उनमें उन्हींके समान नामवाले अपने सात पुत्रोंको नियुक्तकर स्वयं योगगतिकी प्राप्तिके उद्देश्यसे निकल पड़े। पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप और विश्वधृक्—ये उनके सात पुत्र थे॥ १५—१९॥

इसकी मर्यादा (सीमा) निश्चित करनेवाले सात प्रसिद्ध पर्वत हैं तथा सात ही नदियाँ हैं। ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल और महाशन—ये सात पर्वत वहाँ विद्यमान कहे गये हैं। इसी तरह वहाँकी सात नदियोंके भी नाम हैं—अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रश्रुति और निजधृति—ये सात परम पवित्र नदियाँ बतायी गयी हैं॥ २०—२२१/२॥

उस वर्षके सभी पुरुष सत्यव्रत, क्रतुव्रत, दानव्रत और अनुव्रत—इन चार वर्णोंवाले कहे गये हैं। वे प्राणायामके द्वारा अपने रजोगुण तथा तमोगुणको नष्ट करके प्राणवायुरूप परमेश्वर भगवान् श्रीहरिकी इस प्रकार उपासना करते हैं। 'जो प्राणादिवृत्तिरूप अपनी ध्वजाओंके सहित प्राणियोंके भीतर प्रवेश करके उनका पालन करते हैं तथा यह सम्पूर्ण जगत् जिनके अधीन है, वे साक्षात् अन्तर्यामी भगवान् वायु हमारी रक्षा करें'॥ २३—२५१/२॥

इसी प्रकार उस दधिमण्डोद समुद्रसे आगे बहुत विस्तारवाला पुष्कर नामक अन्य द्वीप है, यह शाकद्वीपसे दो गुने विस्तारका है। यह अपने समान विस्तारवाले स्वादिष्ट जलके समुद्रसे चारों ओरसे घिरा हुआ है॥ २६-२७॥

अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान विशाल पंखुड़ियोंवाला तथा लाखों स्वर्णमय पत्रोंवाला एक पुष्कर (कमल) इस द्वीपमें विराजमान है। समस्त लोकोंकी रचना करनेकी कामनासे लोकगुरु श्रीहरिने भगवान् ब्रह्माके आसनके रूपमें उस कमलकी रचना की॥ २८-२९॥

उस द्वीपमें उसके पूर्वी तथा पश्चिमी वर्षोंकी सीमा निश्चित करनेवाला मानसोत्तर नामक एक ही पर्वत है। यह दस हजार योजन ऊँचा तथा इतना ही विस्तृत है। इसकी चारों दिशाओंमें इन्द्र आदि लोकपालोंके चार पुर हैं और इनके ऊपरसे होकर सूर्य निकलते हैं और वे सुमेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए संवत्सरात्मक चक्रके रूपमें देवताओंके दिन (उत्तरायण) तथा रात (दक्षिणायन)-के क्रमसे घूमते

हुए परिक्रमण करते रहते हैं॥ ३०—३२॥

उस द्वीपके अधिपति प्रियव्रतपुत्र वीतिहोत्र उसे दो वर्षोंमें बाँटकर वर्षोंके ही नामवाले अपने दो पुत्रों रमण तथा धातकीको उन वर्षोंका स्वामी नियुक्त करके स्वयं अपने बड़े भाइयोंकी भाँति भगवान् श्रीहरिकी भक्तिमें संलग्न हो गये॥ ३३-३४१/२॥

उन वर्षोंमें निवास करनेवाले शीलसम्पन्न पुरुष ब्रह्मसालोक्यादिकी प्राप्ति करानेवाले कर्मयोगके द्वारा ब्रह्मस्वरूप परमेश्वरकी इस प्रकार उपासना करते हैं—'कर्मफलस्वरूप, ब्रह्मके साक्षात् विग्रह, एकान्तस्वभाव, अद्वैत तथा शान्तस्वरूप जिन परमेश्वरकी लोग अर्चना करते हैं, उन भगवान् श्रीहरिको नमस्कार है'॥ ३५-३६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें क्रौंचशाकपुष्करद्वीपवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

लोकालोकपर्वतका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उसके आगे लोकालोक नामक पर्वत है, जो प्रकाशित तथा अप्रकाशित—दो प्रकारके लोकोंका विभाग करनेके लिये उनके मध्यमें स्थित है॥ १॥

हे देवर्षे! मानसोत्तरपर्वतसे लेकर सुमेरुपर्वततक जितना अन्तर है, उतनी भूमि सुवर्णमयी तथा दर्पणके समान स्वच्छ है। वह भूमि सर्वसाधारण प्राणियोंसे रहित है। इसमें गिरी हुई कोई वस्तु फिर नहीं मिलती। अतः हे नारद! वह भूमि [देवताओंके अतिरिक्त] सभी प्राणिसमुदायसे रहित है। इस पर्वतको लोकालोक जो कहा गया है, वह इसीलिये; क्योंकि यह सूर्यसे प्रकाशित तथा अप्रकाशित दो भागोंके मध्य स्थित है॥ २—४१/२॥

भगवान्‌ने त्रिलोकीकी सीमा निर्धारित करनेके लिये उस पर्वतका निर्माण किया है। हे नारद! सूर्य आदिसे लेकर ध्रुवपर्यन्त सभी ग्रहोंकी किरणें उसके अधीन होनेके कारण उसके एक ओरसे तीनों लोकोंको प्रकाशित करती हैं और दूसरी ओरके लोक प्रकाशित नहीं हो पाते॥ ५-६१/२॥

यह अति विशाल पर्वतराज जितना ऊँचा है, उतना ही विस्तृत है। लोकोंका विस्तार इतना ही है। गणितशास्त्रके विद्वानोंने स्थिति, मान और लक्षणके अनुसार सम्पूर्ण भूगोलका परिमाण पचास करोड़ योजन निश्चित किया है। हे मुने! उस भूगोलका चौथाई भाग (साढ़े बारह करोड़ योजन) केवल यह लोकालोकपर्वत ही है। उसके ऊपर चारों दिशाओंमें स्वयम्भू ब्रह्माजीने जिन चार दिग्गजोंको नियुक्त किया है, उनके नाम हैं—ऋषभ, पुष्पचूड, वामन और अपराजित। इन दिग्गजोंको समस्त लोकोंकी स्थितिका कारण कहा गया है॥ ७—१०१/२॥

भगवान् श्रीहरि उन दिग्गजों तथा अपनी विभूतिस्वरूप इन्द्र आदि लोकपालोंकी विविध शक्तियोंके विकास और उनमें विशुद्ध गुण तथा ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेके उद्देश्यसे आठों सिद्धियोंसहित विष्वक्सेन आदि पार्षदोंसे घिरे हुए सदा उस लोकालोकपर्वतपर विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण लोकके कल्याणके लिये चारों भुजाओंमें अपने शंख, चक्र, गदा तथा पद्म—इन आयुधोंसे सुशोभित होते हुए भगवान् श्रीहरि वहाँ सर्वत्र विराजमान हैं। अपने मायारचित इस जगत्‌की रक्षाके लिये स्वयं साधनस्वरूप वे सनातन भगवान् अपने लीलामयरूपसे ऐसे वेषको धारण किये वहाँ कल्पपर्यन्त प्रतिष्ठित रहते हैं॥ ११—१४॥

लोकालोकपर्वतके अन्तर्वर्ती भागका जो विस्तार कहा गया है, इसीसे उसके दूसरी ओरके अलोक प्रदेशके परिमाणकी व्याख्या समझ लेनी चाहिये। विद्वान् लोग कहते हैं कि उसके आगे योगेश्वरोंकी ही विशुद्ध गति सम्भव है। पृथ्वी तथा स्वर्गके बीचमें जो ब्रह्माण्डका केन्द्र है, वही सूर्यकी स्थिति है। सूर्य तथा ब्रह्माण्डगोलकके बीच सभी ओर पचीस करोड़ योजनकी दूरी है। इस मृत ब्रह्माण्डमें सूर्यके विराजमान रहनेके कारण इनका नाम 'मार्तण्ड' पड़ा और हिरण्यमय ब्रह्माण्डसे उत्पन्न होनेके कारण इन्हें 'हिरण्यगर्भ' कहा जाता है॥ १५—१७१/२॥

दिशा, आकाश, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक और पाताल—इन सभीका भलीभाँति विभाजन सूर्यके ही द्वारा किया जाता है। देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं, वृक्ष तथा अन्य सभी प्रकारके जीवसमूहोंकी आत्मा सूर्य ही हैं। ये नेत्रेन्द्रियके स्वामी हैं। हे नारद! भूमण्डलका इतना ही विस्तार कहा गया है। इस विषयके जानकार लोग इसीके द्वारा स्वर्गलोकका भी विस्तार बतलाते हैं, जैसे कि चना-मटर आदिके दो दलोंमेंसे एकका स्वरूप जान लेनेपर दूसरेका अनुमान कर लिया जाता है॥ १८—२१॥

उन द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्यमें अन्तरिक्ष स्थित है। अन्तरिक्ष उन दोनोंका सन्धिस्थान है। इसके मध्यमें स्थित रहकर तपनेवाले ग्रहोंमें श्रेष्ठ भगवान् सूर्य चमकते हुए अपनी ऊष्मासे तीनों लोकोंको प्रतप्त करते हैं॥ २२१/२॥

उत्तरायण होनेपर सूर्य मन्दगतिसे चलने लगते हैं। उत्तरायण उनका आरोहणस्थान है, जहाँ पहुँचनेपर दिनमें वृद्धि होने लगती है। दक्षिणायनकी स्थिति प्राप्त करके वे तीव्र गति धारण कर लेते हैं। दक्षिणायन उनका अवरोहस्थान है, जिसपर सूर्यके चलनेपर दिन छोटा होने लगता है॥ २३-२४१/२॥

विषुवत् नामक स्थानपर पहुँचनेपर सूर्यकी गतिमें समानता आ जाती है। इस समस्थानपर सूर्यके आनेपर दिनके परिमाणमें समानता आ जाती है। जब वेदस्वरूप भगवान् सूर्य मेष और तुला राशिपर संचरण करते हैं, तब दिन और रात समान होने लगते हैं। जब सूर्य वृष आदि पाँच राशियोंपर होते हैं, तब दिन बढ़ने लगते हैं और रातें छोटी होने लगती हैं। इसी प्रकार जब सूर्य वृश्चिक आदि पाँच राशियोंपर गति करते हैं, तब दिन और रातमें इसके विपरीत परिवर्तन होते हैं॥ २५—२९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'सूर्यगतिवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

सूर्यकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं सूर्यकी उत्तम गतिका वर्णन करूँगा। शीघ्र, मन्द गतियोंके द्वारा सूर्यका गमन होता है॥ १॥

हे सुरश्रेष्ठ! सभी ग्रहोंके तीन ही स्थान हैं। वे स्थान हैं—जारद्गव, ऐरावत तथा वैश्वानर; जिनमें जारद्गव मध्यमें, ऐरावत उत्तरमें तथा वैश्वानर दक्षिणमें यथार्थतः निर्दिष्ट किये गये हैं॥ २१/२॥

अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाको नागवीथी कहा जाता है। रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्राको गजवीथी कहा जाता है। इसी प्रकार पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषाको ऐरावती वीथी कहा गया है। ये तीनों वीथियाँ उत्तरमार्ग कही गयी हैं॥ ३-४१/२॥

मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीको आर्षभी वीथी माना गया है। हस्त, चित्रा तथा स्वातीको गोवीथी कहा गया है और इसी प्रकार ज्येष्ठा, विशाखा तथा अनुराधाको जारद्गवीवीथी कहा गया है। इन तीनों वीथियोंको मध्यममार्ग कहा जाता है॥ ५-६१/२॥

मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ अजवीथी नामसे पुकारी जाती है। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषाको मार्गीवीथी कहा जाता है और इसी तरह पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती वैश्वानरीवीथीके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिणमार्ग कही जाती हैं॥ ७-८१/२॥

जब सूर्यका रथ उत्तरायण मार्गपर रहता है, उस समय उसके दोनों पहियेके अक्षोंसे आबद्ध पवनरूपी पाशसे बँधकर ध्रुवद्वारा उसका कर्षण 'आरोहण' कहा गया है। उस समय मण्डलके भीतर रथ चलनेसे गतिकी मन्दता हो जाती है। हे सुरश्रेष्ठ! इस मन्द गतिमें दिनकी वृद्धि और रातका ह्रास होने लगता है। यही सौम्यायनका क्रम है। इसी प्रकार जब वह रथ दक्षिणायन मार्गपर पाशद्वारा खींचा जाता है, तब वह अवरोहण गति होती है।

उस समय मण्डलके बाहरसे गति होनेके कारण सूर्यकी गतिमें तीव्रता हो जाती है। उस समय दिनका छोटा तथा रातका बड़ा होना बताया गया है॥ ९—१२१/२॥

विषुव मार्गपर सूर्यका रथ पाशद्वारा किसी ओर न खींचे जानेके कारण साम्य स्थिति बनी रहती है। इसमें मण्डलके मध्यसे गति होनेसे दिन तथा रातके मानमें समानता होती है॥ १३१/२॥

जब ध्रुवकी प्रेरणासे दोनों वायुपाश खींचे जाते हैं, उस समय भीतरके मण्डलोंमें ही सूर्य चक्कर लगाते हैं। पुनः ध्रुवके द्वारा दोनों पाशोंके मुक्त किये जाते ही सूर्य बाहरके मण्डलोंमें चक्कर लगाने लगते हैं॥ १४-१५१/२॥

उस मेरुपर्वतपर पूर्वभागमें इन्द्रकी पुरी 'देवधानिका' और दक्षिणभागमें यमराजकी 'संयमनी' नामक विशाल पुरी विद्यमान है। पश्चिममें वरुणदेवकी 'निम्लोचनी' नामक महान् पुरी है और उस मेरुके उत्तर-भागमें चन्द्रमाकी 'विभावरी' नामक पुरी बतायी गयी है॥ १६-१७१/२॥

ब्रह्मवादियोंके द्वारा कहा गया है कि सूर्यका उदय इन्द्रकी पुरीमें होता है और वे मध्याह्नकालमें संयमनीपुरीमें पहुँचते हैं। सूर्यके निम्लोचनीपुरीमें पहुँचनेपर सायंकाल और विभावरीपुरीमें पहुँचनेपर आधी रात होती है। वे भगवान् सूर्य सभी देवताओंके पूज्य हैं॥ १८-१९॥

हे मुने! सुमेरुपर्वतके चारों ओर सूर्यके जिस परिभ्रमणसे जीवधारियोंकी सभी क्रियाएँ सम्पन्न होती हैं, उसका वर्णन मैंने कर दिया॥ २०॥

सुमेरुपर रहनेवालोंको सूर्य सदा मध्यमें विराजमान प्रतीत होते हैं। सूर्यका रथ सुमेरुके बायें चलते हुए वायुकी प्रेरणासे दायें हो जाता है। अतः उदय तथा अस्त-समयोंमें सर्वदा वह सामने ही पड़ता है। हे देवर्षे! सभी दिशाओं तथा विदिशाओंमें रहनेवाले जो लोग सूर्यको जहाँ देखते हैं, उनके लिये वह सूर्योदय तथा जहाँ सूर्य छिप जाते हैं, वहाँके लोगोंके लिये वह सूर्यास्त माना गया है। सर्वदा विद्यमान रहनेवाले सूर्यका न तो उदय होता है और न अस्त ही होता है, उनका दर्शन तथा अदर्शन ही उदय और अस्त नामसे कहा गया है॥ २१—२४॥

जिस समय सूर्य इन्द्र आदिकी पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय उनके प्रकाशसे तीनों लोक प्रकाशित होने लगते हैं। दो विकर्ण, उनके तीन कोण तथा दो पुरियाँ—सबमें सूर्यकी किरणसे प्रकाश फैल जाता है। सम्पूर्ण द्वीप और वर्ष सुमेरुके उत्तरमें स्थित हैं। जो लोग सूर्यको जहाँ उदय होते देखते हैं, उनके लिये वही पूर्व दिशा कही जाती है॥ २५-२६॥

उसके वाम भागमें मेरुपर्वत है—ऐसा सुनिश्चित है। काल तथा मार्गके प्रदर्शक हजार किरणोंवाले सूर्य जब इन्द्रपुरीसे संयमनीपुरीको जाते हैं, तब वे पन्द्रह घड़ीमें सवा दो करोड़ बारह लाख पचहत्तर हजार योजनकी दूरी तय करते हैं॥ २७-२८१/२॥

इसी प्रकार सहस्र नेत्रोंवाले कालचक्रात्मा सूर्य कालज्ञान करानेके लिये वरुणलोक, चन्द्रलोक तथा इन्द्रलोकका भ्रमण करते हैं॥ २९१/२॥

चन्द्रमा आदि अन्य आकाशचारी जो भी ग्रह हैं, वे नक्षत्रोंके साथ उदय तथा अस्त होते रहते हैं॥ ३०१/२॥

इस प्रकार भगवान् सूर्यका वेदमय रथ एक मुहूर्तमें चौंतीस लाख आठ सौ योजन चलता है। प्रवह नामक वायुके प्रभावसे वह तेजस्वी कालचक्र चारों दिशाओंमें स्थित चारों पुरियोंपरसे घूमता रहता है॥ ३१-३२१/२॥

सूर्यके रथके एक चक्केमें बारह अरे, तीन धुरियाँ तथा छः नेमियाँ हैं; विद्वान् लोग उस चक्केको एक संवत्सरकी संज्ञा प्रदान करते हैं। इस रथकी धुरीका एक सिरा सुमेरुपर्वतके शिखरपर और दूसरा मानसोत्तरपर्वतके शिखरपर स्थित है। इस धुरीमें लगा हुआ जो पहिया है, वह तेल निकालनेवाले यन्त्र (कोल्हू)-के पहियेकी भाँति घूमता रहता है और सूर्य भी उस मानसोत्तरपर्वतके ऊपर भ्रमण करते रहते हैं॥ ३३—३५१/२॥

उस धुरीमें जिसका मूल भाग लगा हुआ है, ऐसी ही एक दूसरी धुरी है, जिसकी लम्बाई पहली धुरीकी चौथाई है। ध्रुवसे लगी हुई वह धुरी तैलयन्त्रकी धुरीके सदृश कही गयी है॥ ३६१/२॥

रथके ऊपरी भागमें जगत्के स्वामी सूर्यके बैठनेका

स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा तथा उसका चतुर्थांश अर्थात् नौ लाख योजन चौड़ा बताया गया है। उतना ही परिमाणवाला सूर्यके रथका जूआ भी है। रथके सारथि (अरुण)-के द्वारा उस जूएमें जुते हुए गायत्री आदि छन्दोंके नामवाले सात घोड़े जगत्के प्राणियोंके कल्याणके लिये भगवान् सूर्यका वहन करते रहते हैं॥ ३७—३९½॥

सूर्यके आगे उन्हींकी ओर मुख करके उनके सारथि अरुण बैठते हैं। सारथिके कामपर नियुक्त ये अरुण गरुडके ज्येष्ठ भ्राता हैं॥ ४०½॥

उसी प्रकार बालखिल्य आदि साठ हजार ऋषिगण जो परिमाणमें अँगूठेके पोरके बराबर कहे गये हैं, सूर्यके सम्मुख स्थित होकर मनोहर वैदिक मन्त्रोंद्वारा उनका स्तवन करते हैं। वैसे ही अन्य जो सभी ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, यक्ष, राक्षस और देवता हैं—उनमेंसे एक-एक करके ये सातों दो-दो मिलकर प्रत्येक महीने परमेश्वर सूर्यकी उपासना करते हैं॥ ४१—४३॥

इस प्रकार वे विश्वव्यापी देवदेवेश्वर भगवान् सूर्य प्रतिक्षण दो हजार दो योजनकी दूरी चलते हुए नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन मार्गवाले भूमण्डलकी निरन्तर परिक्रमा करते रहते हैं॥ ४४-४५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'भुवनकोशवर्णनमें सूर्यगतिवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

चन्द्रमा तथा ग्रहोंकी गतिका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप चन्द्रमा आदिकी अद्भुत गतिका वर्णन सुनिये। उसकी गतिके द्वारा ही मनुष्योंको शुभ तथा अशुभका परिज्ञान होता है॥ १॥

जिस प्रकार कुम्हारके घूमते हुए चाकपर स्थित कीड़ों आदिकी एक दूसरी गति भी होती है, उसी प्रकार राशियोंसे उपलक्षित कालचक्रके अनुसार सुमेरु और ध्रुवको दाहिने करके घूमनेवाले सूर्य आदि प्रमुख ग्रहोंकी एक अन्य गति भी दृष्टिगोचर होती है॥ २-३½॥

सूर्यकी यह गति नक्षत्रोंपर निर्भर करती है। एक नक्षत्रके बाद दूसरा नक्षत्र आनेपर सूर्यगतिमें परिवर्तन हो जाता है। ये दोनों गतियाँ एक-दूसरेके अविरुद्ध हैं। यह निश्चित नियम सर्वत्रके लिये है॥ ४½॥

वेद तथा विद्वान् पुरुष जिन्हें जाननेकी इच्छा रखते हैं, वे लोकप्रकाशक तथा सम्पूर्ण जगत्के आधार आदिपुरुष सूर्य प्राणियोंके कल्याणार्थ और कर्मोंकी शुद्धिके निमित्त भ्रमण करते हुए अपने वेदमय विग्रहको बारह भागोंमें विभक्त करके स्वयं वसन्त आदि छः ऋतुओंमें ऋतुसम्बन्धी सभी गुणोंकी यथोचित व्यवस्था करते हैं॥ ५—७½॥

वर्णाश्रमधर्मका आचरण करनेवाले जो पुरुष त्रयीविद्या (वेद)-के आदेशोंका पालन करके, शास्त्र-निर्दिष्ट छोटे-बड़े कर्म सम्पादित करके तथा उच्च कोटिकी योग-साधना करके श्रद्धापूर्वक भगवान् सूर्यकी उपासना करते हैं, वे शीघ्र ही कल्याण प्राप्त कर लेते हैं; यह निश्चित सिद्धान्त है॥ ८-९½॥

सभी प्राणियोंकी आत्मास्वरूप ये सूर्य कालचक्रपर स्थित होकर द्युलोक तथा पृथ्वीलोकके मध्य गति करते हुए बारह राशियोंके रूपमें संवत्सरके अवयवस्वरूप [बारह] महीनोंको भोगते हैं। उनमें प्रत्येक मास चन्द्रमानसे कृष्ण तथा शुक्ल—इन दो पक्षोंका, पितृमानसे एक दिन तथा एक रातका और सौरमानसे सवा दो नक्षत्रोंका कहा गया है। सूर्य जितने समयमें वर्षका छठा भाग भोगते हैं, विद्वान् लोग उसे संवत्सरका अवयवस्वरूप ऋतु कहते हैं॥ १०—१२½॥

भगवान् सूर्य जितने समयमें आकाशमार्गकी दूरी तय करते हैं, उसके आधे समयको पूज्य प्राचीन मुनिगण 'अयन' कहते हैं और जितने समयमें सूर्य सम्पूर्ण नभमण्डलको पार करते हैं, उस समयको वत्सर कहते

हैं॥ १३-१४१/२॥

वत्सर पाँच प्रकारका कहा गया है—संवत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनुवत्सर और इद्वत्सर॥ १५१/२॥

कालतत्त्वके ज्ञाताओंने सूर्यके मन्द, शीघ्र तथा समान गतियोंसे चलनेके कारण उनकी इस प्रकार तीन गतियाँ बतायी हैं। [हे नारद!] अब चन्द्रमा आदिकी गतिके विषयमें सुनिये। इसी प्रकार चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे एक लाख योजन ऊपर है। औषधियोंके स्वामी वे चन्द्रमा सूर्यके एक वर्षके मार्गको दो पक्षोंमें, एक महीनेमें तय किये गये मार्गको सवा दो दिनोंमें और एक पक्षमें तय किये गये मार्गको एक दिनमें भोग लेते हैं। इस प्रकार तीव्र गतिसे चलनेवाले चन्द्रमा नक्षत्रचक्रमें गति करते रहते हैं॥ १६—१९॥

ये चन्द्र क्रमशः अपनी पूर्ण होनेवाली कलाओंसे देवताओंको प्रसन्न करते हैं और क्षीण होती हुई कलाओंसे पितरोंका चित्तानुरंजन करते हैं॥ २०॥

अपने पूर्व और उत्तर पक्षोंके द्वारा दिन तथा रातका विभाजन करनेवाले वे चन्द्रमा ही समस्त जीव-जगत्के प्राण तथा जीवन हैं। परम ऐश्वर्यसम्पन्न वे चन्द्रमा तीस मुहूर्तमें एक-एक नक्षत्रका भोग करते हैं। सोलह कलाओंसे युक्त, मनोमय, अन्नमय, अमृतमय तथा श्रेष्ठ अनादि पुरुष वे भगवान् चन्द्रमा देवताओं, पितरों, मनुष्यों, रेंगकर चलनेवाले जन्तुओं तथा वृक्ष आदिके प्राणोंका पोषण करनेके कारण सर्वमय कहे जाते हैं॥ २१—२३१/२॥

चन्द्रमाके स्थानसे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्रमण्डल है। अभिजित्को लेकर इस मण्डलमें कुल नक्षत्र संख्यामें अट्ठाईस गिने गये हैं। भगवान्के द्वारा कालचक्रमें बँधा हुआ यह नक्षत्रमण्डल मेरुको दाहिने करके सदा भ्रमण करता रहता है॥ २४-२५॥

उससे भी दो लाख योजन ऊपर रहनेवाले शुक्र कभी सूर्यके आगे तथा कभी पीछे और कभी सूर्यके साथ-साथ तीव्र, मन्द और समान गतियोंसे चलते हुए परिभ्रमण करते रहते हैं॥ २६१/२॥

ये प्राणियोंके लिये प्रायः अनुकूल ही रहते हैं। इन्हें शुभकारी ग्रह कहा गया है। हे मुने! ये भार्गव शुक्र वर्षाके विघ्नोंको सदा दूर करनेवाले हैं॥ २७१/२॥

शुक्रसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर बुध बताये गये हैं। ये भी शुक्रके ही समान तीव्र, मन्द तथा सम गतियोंसे सदा भ्रमण करते रहते हैं॥ २८१/२॥

ये चन्द्रपुत्र बुध जब सूर्यकी गतिका उल्लंघन करके चलते हैं, उस समय ये आँधी, विद्युत्पात और वृष्टि आदिके भयकी सूचना देते हैं॥ २९१/२॥

उनसे भी ऊपर दो लाख योजनकी दूरीपर मंगल हैं। हे देवर्षे! यदि वे वक्रगतिसे न चलें तो एक-एक राशिको तीन-तीन पक्षोंमें भोगते हुए बारहों राशियोंको पार करते हैं। ये प्रायः अशुभ करनेवाले तथा अमंगलके सूचक हैं॥ ३०-३११/२॥

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर बृहस्पति हैं। यदि वे वक्री न होकर भ्रमण करें तो एक-एक राशिको एक-एक वर्षमें भोगते हैं। वे प्रायः ब्रह्मवादियोंके अनुकूल रहते हैं॥ ३२-३३॥

उनसे भी दो लाख योजन ऊपर भयंकर शनि हैं। सूर्यके पुत्र कहे जानेवाले ये महाग्रह शनि एक-एक राशिको तीस-तीस महीनोंमें भोगते हुए सभी राशियोंका परिभ्रमण करते रहते हैं। श्रेष्ठ कालज्ञ पुरुषोंने शनिको सबके लिये अशुभ बताया है॥ ३४-३५॥

उनसे भी ऊपर ग्यारह लाख योजनकी दूरीपर सप्तर्षियोंका मण्डल बताया गया है। हे मुने! वे सातों ऋषि प्राणियोंके कल्याणकी कामना करते हुए जो वह विष्णुपद है, उस ध्रुव-लोकको प्रदक्षिणा करते हैं॥ ३६-३७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'सोमादिगतिवर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

शिशुमारचक्र तथा ध्रुवमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण बोले—इस सप्तर्षिमण्डलसे तेरह लाख योजन दूरीपर वह परम वैष्णवपद स्थित है॥ १॥

परम भागवत तथा लोकपूजित उत्तानपादपुत्र श्रीमान् ध्रुव यहींपर विराजमान हैं। इन्द्र, अग्नि, कश्यप, धर्म तथा सप्तर्षिगण—ये सब देखते हुए आदरपूर्वक जिनकी प्रदक्षिणा करते रहते हैं, वे ध्रुव कल्पपर्यन्त जीवित रहनेवाले प्राणियोंके जीवनाधार हैं और निरन्तर भगवान्‌के चरणोंकी उपासना करते रहते हैं॥ २-३१/२॥

सर्वदा जाग्रत् रहनेवाले व्यक्तगति भगवान् कालने भ्रमण करनेवाले ग्रह, नक्षत्र, राशि आदि समस्त ज्योतिर्गणोंके अचल स्तम्भके रूपमें ध्रुवको व्यवस्थित कर रखा है। वे देवपूज्य ध्रुव अपने तेजसे सबको आलोकित करते हुए सदा प्रकाशित होते रहते हैं॥ ४-५१/२॥

जिस प्रकार अनाजको पृथक् करनेवाले पशु छोटी-बड़ी रस्सियोंमें बँधकर निकट, दूर और मध्यमें रहकर खलिहानमें गड़े खम्भेके चारों ओर मण्डल बनाकर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार सभी नक्षत्रगण और ग्रह आदि भीतर-बाहरके क्रमसे कालचक्रमें नियुक्त होकर ध्रुवका ही आश्रय लेकर वायुकी प्रेरणासे कल्पपर्यन्त परिभ्रमण करते रहते हैं, जिस प्रकार बाज आदि पक्षी अपने कर्मोंकी सहायतासे वायुके अधीन रहकर आकाशमें घूमते रहते हैं, उसी प्रकार वे सभी ज्योतिर्गण भी पुरुष और प्रकृतिके संयोगसे अनुगृहीत होकर परिभ्रमण करते रहते हैं और भूमिपर नहीं गिरते॥ ६—१०॥

हे मुने! कुछ लोग भगवान् श्रीहरिकी योगमायाके आधारपर स्थित इस ज्योतिष्चक्रका वर्णन शिशुमारके रूपमें करते हैं, जो नीचेकी ओर सिर किये हुए कुण्डली मारकर स्थित है। उसकी पूँछके अग्रभागपर उत्तानपादपुत्र ध्रुव विराजमान कहे गये हैं। उसकी पूँछके मध्यभागमें देवताओंद्वारा पूजित पवित्रात्मा प्रजापति, अग्नि, इन्द्र और धर्म विराजमान हैं। पूँछकी जड़में धाता और विधाता तथा उसके कटिभागमें सप्तर्षिगण स्थित हैं। यह शिशुमार अपने शरीरको दाहिनी ओरसे कुण्डलाकार बनाकर स्थित है॥ ११—१४॥

उत्तरायणके चौदह नक्षत्र इसके दाहिने भागमें हैं और दक्षिणायनके चौदह नक्षत्र इसके बायें भागमें हैं। हे ब्रह्मपुत्र नारद! लोकमें भी शिशुमार जब कुण्डलाकार होकर बैठता है तो उसके दोनों पार्श्वभागोंके अवयवोंकी संख्या समान होती है, उसी प्रकार यहाँ नक्षत्रसंख्यामें भी समानता है॥ १५-१६॥

इसके पृष्ठभागमें अजवीथी (मूल, पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंका समूह) और उदरमें आकाशगंगा है। दायें तथा बायें कटिप्रदेशमें पुनर्वसु और पुष्य नक्षत्र स्थित हैं॥ १७॥

पीछेके दाहिने और बायें चरणोंमें आर्द्रा तथा आश्लेषा नक्षत्र हैं। दाहिनी तथा बायीं नासिकाओंमें अभिजित् और उत्तराषाढ़ नक्षत्र विद्यमान हैं॥ १८॥

हे देवर्षे! इसी प्रकार कल्पनाविदोंने दाहिने तथा बायें नेत्रोंमें क्रमशः श्रवण तथा पूर्वाषाढ़ और दाहिने तथा बायें कानोंमें क्रमशः धनिष्ठा और मूल नक्षत्रोंकी स्थिति बतायी है। हे मुने! दक्षिणायनके मघा आदि आठ नक्षत्र वाम पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। उसी प्रकार विपरीत क्रमसे उत्तरायणके मृगशिरा आदि जो आठ नक्षत्र हैं, वे इसके दाहिने पार्श्वकी पसलियोंमें स्थित हैं। शतभिषा और ज्येष्ठा नक्षत्र दाहिने तथा बायें कन्धोंपर विराजमान हैं॥ १९—२२॥

इसकी ऊपरकी ठोड़ीमें अगस्ति, नीचेकी ठोड़ीमें यमराज, मुखमें मंगल और जननेन्द्रियमें शनि स्थित कहे गये हैं। इसके ककुद्‌पर बृहस्पति, वक्षपर ग्रहपति सूर्य, हृदयमें नारायण और मनमें चन्द्रमा स्थित रहते हैं॥ २३-२४॥

दोनों स्तनोंमें दोनों अश्विनीकुमारों तथा नाभिमें शुक्रका स्थान कहा गया है। प्राण और अपानमें बुध, गलेमें राहु और केतु एवं सभी अंगों तथा रोमकूपोंमें तारागण कहे गये हैं। हे नारद! भगवान् विष्णुका यह सर्वदेवमय विग्रह है। परम बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि वह प्रतिदिन सायंकालके समय मौन धारण करके अपने हृदयमें भगवान्‌को स्थित देखते हुए उनके उस दिव्य स्वरूपका ध्यान करे और इस मन्त्रसे जप करते हुए स्तुति करे—सम्पूर्ण ज्योतिर्गणोंके आश्रय, कालचक्ररूपसे विराजमान

तथा देवताओंके अधिपति परम पुरुषको मेरा नमस्कार है; मैं आपका ध्यान करता हूँ॥ २५—२८॥

ग्रहों, नक्षत्रों तथा ताराओंके रूपमें भासित होता हुआ भगवान्‌का आधिदैविकस्वरूप तीनों कालोंमें इस मन्त्रका जप करनेवाले पुरुषोंके पापोंका नाश कर देता है। तीनों कालोंमें भगवान्‌के इस रूपका वन्दन तथा ध्यान करनेवाले व्यक्तिका उस समयका किया हुआ पाप तत्काल नष्ट हो जाता है॥ २९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'ध्रुवमण्डलसंस्थानवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

राहुमण्डलका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यसे दस हजार योजन नीचे राहुमण्डल कहा गया है। यह सिंहिकापुत्र राहु योग्य न होनेपर भी नक्षत्रकी भाँति विचरण करता रहता है। चन्द्रमा तथा सूर्यको पीड़ित करनेवाले इस सिंहिकापुत्र राहुने भगवान्‌की कृपासे ही अमर होने तथा आकाशमें विचरण करनेका सामर्थ्य प्राप्त किया है॥ १-२॥

तेरह हजार योजन विस्तारवाला यह असुर दस हजार योजन विस्तारके बिम्बमण्डलवाले तपते सूर्यका तथा बारह हजार योजन विस्तृत मण्डलवाले चन्द्रमाका आच्छादक कहा गया है। पूर्वकालमें अमृतपानके समयके वैरको याद करके वह राहु अमावास्या और पूर्णिमाके पर्वपर उनका आच्छादक होता है। दूरसे ही वह राहु सूर्य तथा चन्द्रमाको आच्छादित करनेके लिये तत्पर होता है। यह बात जानकर भगवान् विष्णुने विशाल ज्वालाओंसे युक्त अपना अत्यन्त भयानक सुदर्शन नामक चक्र उन दोनों (सूर्य तथा चन्द्रमा)-के पास भेज दिया था। उसके दुःसह तेजसे सूर्य और चन्द्रमाका मण्डल चारों ओरसे घिरा रहता है। इससे खिन्न तथा चकित मनवाला वह राहु बिम्बके पास जाकर और वहाँ क्षणभर रुककर फिर सहसा लौट आता है। हे देवर्षे! जगत्‌में इसीको उपराग (ग्रहण) कहा जाता है—ऐसा आप समझिये॥ ३—७१/२॥

हे श्रेष्ठ! उस राहुमण्डलसे भी नीचे सिद्धों, चारणों और विद्याधरोंके परम पवित्र लोक कहे गये हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंद्वारा सेवित ये लोक दस हजार योजन विस्तारवाले बताये गये हैं॥ ८-९॥

हे देवर्षे! इन लोकोंके भी नीचे यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, प्रेतों एवं भूतोंके उत्तम विहारस्थल हैं। इसके नीचे जहाँतक वायु चलती है और जहाँतक मेघ दिखायी पड़ते हैं, ज्ञानी तथा विद्वान् लोगोंके द्वारा वह अन्तरिक्ष कहा गया है॥ १०-११॥

हे द्विजश्रेष्ठ! उसके नीचे सौ योजनकी दूरीपर, जहाँतक गरुड, बाज, सारस और हंस आदि पृथ्वीपर होनेवाले पार्थिव पक्षी उड़ सकते हैं, पृथ्वी बतायी गयी है। पृथ्वीके परिमाण तथा स्थितिका वर्णन पहले ही किया जा चुका है॥ १२-१३॥

हे देवर्षे! इस पृथ्वीके नीचे सात विवर बताये गये हैं। इनमें प्रत्येक विवरकी लम्बाई तथा चौड़ाई दस-दस हजार योजन है और ये एक-दूसरेसे दस-दस हजार योजनकी दूरीपर स्थित कहे गये हैं; ये सभी ऋतुओंमें सुखदायक होते हैं॥ १४१/२॥

इनमें पहलेको अतल, दूसरेको वितल, तीसरेको सुतल, चौथेको तलातल, पाँचवेंको महातल, छठेको रसातल और सातवेंको पाताल कहा गया है। हे विप्र! इस प्रकार ये सात विवर बताये गये हैं॥ १५-१६१/२॥

ये विवर एक प्रकारसे स्वर्ग ही हैं। अनेक उद्यानों तथा विहारस्थलियोंवाले तथा काम, भोग, ऐश्वर्य, सुख तथा समृद्धिसे युक्त यहाँके भुवनोंमें स्वर्गसे भी बढ़कर सुख तथा आस्वाद उपलब्ध है॥ १७-१८॥

वहाँ निवास करनेवाले महाबली दैत्य, नाग तथा दानव अपने स्त्री, पुत्रों तथा बन्धुओंके साथ सदा आनन्दित तथा प्रफुल्लित रहते हैं। वे अपने-अपने घरोंके स्वामी होते हैं। मित्र तथा अनुचर आदि सदा उनके पास विद्यमान रहते

हैं। ईश्वर भी जिनकी इच्छाको विफल नहीं कर सकते, ऐसे वे अत्यन्त मायावी सदा हृष्ट-पुष्ट रहते हुए सभी ऋतुओंमें सुखी रहते हैं॥ १९-२०$^{१}/_{२}$॥

मायाके स्वामी मय नामक दानवने उनमें अनेक पुरियोंका निर्माण कराया, जो श्रेष्ठ मणियोंसे जटित हजारों अद्भुत भवनों, अट्टालिकाओं, गोपुरों, सभाभवनों, प्रांगणों तथा वृक्षसमूहों आदिसे सुशोभित हैं; वे पुरियाँ देवताओंके लिये भी अति दुर्लभ हैं। जिनकी कृत्रिम भूमि (फर्श)-पर नागों तथा असुरोंके जोड़े और कबूतर-मैना आदि पक्षी विहार करते हैं—ऐसे विवराधीश्वरोंके मनोहर भवनोंसे अलंकृत वे पुरियाँ अतीव सुशोभित हो रही हैं। उनमें मनको मुग्ध करनेवाले, बड़े-बड़े सुन्दर फलों तथा फूलोंसे लदे हुए वृक्षोंवाले और कामिनियोंके विलासयोग्य स्थानोंसे अत्यधिक शोभा पानेवाले विशाल उद्यान विद्यमान हैं। उन उद्यानोंमें स्वच्छ जलसे परिपूर्ण रहनेवाले विशाल जलाशय हैं, जो विविध पक्षियोंके समूहोंके कलरवसे तथा पाठीन नामक मछलियोंसे सुशोभित रहते हैं। जलचर जन्तुओंके क्रीड़ा करनेपर जलके क्षुब्ध होनेसे उसमें उगे हुए कुमुद, उत्पल, कह्लार, नीलकमल तथा रक्तकमल हिलने लगते हैं। उन उद्यानोंमें स्थान बनाकर रहनेवाले पक्षी अपने विहारों तथा इन्द्रियोंको उत्साहित करनेवाली अपनी विविध ध्वनियोंसे उन्हें सदा निनादित किये रहते हैं॥ २१—२८॥

वे पुरियाँ देवताओंके श्रेष्ठ ऐश्वर्यसे भी बढ़कर हैं। जहाँ कालके अंगभूत दिन-रातका कोई भय नहीं रहता और जहाँ बड़े-बड़े सर्पोंके मस्तकपर स्थित मणियोंकी रश्मियोंसे प्रस्फुटित कान्तिके द्वारा अन्धकार सदा मिटा रहता है॥ २९-३०॥

इनमें निवास करनेवाले लोगोंको दिव्य ओषधियों, रसायनों, रस, अन्नपान एवं स्नान आदिकी कोई आवश्यकता नहीं रहती; उन्हें किसी प्रकारके भी मानसिक या शारीरिक रोग नहीं होते; झुर्रियाँ पड़ने, बाल पकने, बुढ़ापा आ जाने, शरीरके विरूपित होने, पसीनेसे दुर्गन्ध निकलने, उत्साहहीन हो जाने और आयुके अनुसार शारीरिक अवस्थाओंमें परिवर्तन आने आदि विकार उन्हें कभी बाधित नहीं करते। हे ब्रह्मपुत्र नारद! उन कल्याणमय लोगोंको भगवान् श्रीहरिके तेजस्वी सुदर्शन चक्रके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी भय नहीं रहता; जिस चक्रके वहाँ प्रवेश करते ही भयके कारण प्रायः दैत्योंकी स्त्रियोंका गर्भपात-गर्भस्राव* हो जाता है॥ ३१—३४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'राहुमण्डलाद्यवस्थानवर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

अतल, वितल तथा सुतललोकका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! अतल नामसे विख्यात पहले परम सुन्दर विवरमें मय दानवका पुत्र 'बल' नामक अति अभिमानी दैत्य रहता है॥ १॥

जिसने सभी प्रकारकी कामनाओंकी सिद्धि करानेवाली छियानबे प्रकारकी मायाएँ रची हैं, जिनमेंसे कुछ मायाओंको मायावी लोग शीघ्र ही धारण कर लेते हैं तथा जिस बलवान् दैत्य बलके जम्हाई लेते ही तीनों लोकोंके लोगोंको मोहित कर देनेवाली बहुत-सी स्त्रियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। वे पुंश्चली, स्वैरिणी और कामिनी—इन नामोंसे प्रसिद्ध हैं, जो अपने प्रिय पुरुषको बिलरूप भवनमें एकान्तमें ले जाकर उन्हें प्रयत्नपूर्वक हाटक नामक रस पिलाकर शक्तिसम्पन्न बना देती हैं। तत्पश्चात् वे स्त्रियाँ अपने हाव-भाव, कटाक्ष, प्रेमपूर्ण व्यवहार, मुसकान, आलिंगन, मधुर वार्तालाप, प्रणयभाव आदिसे उन्हें आकर्षित करके उनके साथ रमण करती हैं॥ २—५$^{१}/_{२}$॥

उस हाटक-रसका पान कर लेनेपर मनुष्य स्वयंको

* 'आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः' अर्थात् चौथे मासतक जो गर्भ गिरता है, उसे 'गर्भस्राव' कहते हैं तथा पाँचवें और छठे मासमें गिरनेसे वह 'गर्भपात' कहलाता है।

बहुत बड़ा मानने लगता है और अपनेको दस हजार हाथियोंके समान महान् बलवान् मानता हुआ मैं ईश्वर हूँ, मैं सिद्ध हूँ—मदान्धकी भाँति ऐसा बढ़-चढ़कर बोलने लगता है॥ ६-७॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने अतललोककी स्थितिका वर्णन कर दिया। अब आप वितल नामक द्वितीय विवरके विषयमें सुनिये॥ ८॥

भूतलके नीचे वितल नामक विवरमें हाटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध ये भगवान् शिव अपने पार्षदगणोंसे निरन्तर घिरे रहते हैं। देवताओंसे सुपूजित ये भगवान् शिव ब्रह्माकी रची गयी सृष्टिके विस्तारके लिये भवानीके साथ रमण करते हुए यहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९-१०॥

वहाँ भगवान् शंकर और पार्वतीके तेजसे हाटकी नामक श्रेष्ठ नदी प्रादुर्भूत है। वायुसे प्रज्वलित अग्निदेव महान् ओजपूर्वक उसका जल पीते रहते हैं। उस समय उनके द्वारा निष्ठ्यूत (त्यक्त थूक) दैत्योंके लिये अत्यन्त प्रिय हाटक नामक सुवर्ण बन जाता हैं। दैत्योंकी स्त्रियाँ आभूषण-योग्य उस सुवर्णको सदा धारण किये रहती हैं॥ ११-१२॥

हे मुने! उस वितलके नीचे सुतल नामक विवर कहा गया है, जो सभी बिलोंमें श्रेष्ठ है। यहाँ विरोचनके पवित्र कीर्तिवाले बलि नामक पुत्र रहते हैं। देवराज इन्द्रका परम प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे वामनरूप त्रिविक्रम भगवान् विष्णु बलिको इस सुतलमें लाये और उन्होंने तीनों लोकोंकी लक्ष्मी सन्निविष्ट करके दानवराज बलिको यहाँ स्थापित किया। इन्द्र आदि देवताओंके पास भी जो लक्ष्मी नहीं है, वह उस बलिके पीछे-पीछे चलती है॥ १३—१५॥

बलि उन्हीं देवदेवेश्वर श्रीहरिकी भक्तिपूर्वक आराधना करते हैं। वे सुतलके अधिपतिके रूपमें आज भी वहाँ निर्भय होकर रहते हैं॥ १६॥

बलिके लिये यह सुतललोककी प्राप्ति अखिल जगत्के स्वामी तथा दानपात्रभूत भगवान् विष्णुको दिये गये भूमिदानका ही फल है—ऐसा महात्मालोग कहते हैं, किंतु हे नारद! यह समीचीन नहीं है। हे विप्र! चारों पुरुषार्थोंको देनेवाले वासुदेव भगवान् श्रीहरिको दिये गये दानका इसे फल समझना किसी भी तरहसे उचित नहीं है; क्योंकि कोई विवश होकर भी उन देवाधिदेवके नामका उच्चारण करके अपने कर्मबन्धनरूपी पाशको शीघ्र ही काट देता है। योगीलोग उस क्लेशरूपी बन्धनको काटनेके लिये अखिल जगत्के स्वामीमें भक्ति रखते हुए सांख्ययोग आदिका साधन करते हैं। हे नारद! इन भगवान्ने हम देवताओंपर कोई अनुग्रह नहीं किया है, जो कि उन्होंने भोगोंका परम मायामय ऐश्वर्य इन्द्रको देनेके लिये यह प्रयत्न किया था; क्योंकि यह ऐश्वर्य तो सभी कष्टोंका मूल कारण है और परमात्माकी स्मृतिको मिटानेवाला है॥ १७—२१½॥

जिस समय समस्त उपायोंका सहज ज्ञान रखनेवाले साक्षात् विष्णुने कोई अन्य उपाय न देखकर याचनाके छलसे उस बलिका सर्वस्व छीन लिया और उसके पास केवल शरीरमात्र ही शेष रहने दिया, तब वरुणके पाशोंमें बाँधकर पर्वतकी गुफामें छोड़ दिये जानेपर उसने कहा था—जिसके मन्त्री बृहस्पति हों, वे इन्द्र इतने महान् मूर्ख हैं! जो कि उन्होंने परम प्रसन्न श्रीहरिसे सांसारिक सम्पत्तिकी याचना की। त्रिलोकीका यह ऐश्वर्य भला कितना नगण्य है। जो भगवान्के आशीर्वादोंका वैभव छोड़कर लोकसम्पत्तिकी कामना करता है, वह मूर्ख है॥ २२—२५½॥

सम्पूर्ण लोकका उपकार करनेवाले तथा भगवत्प्रिय मेरे पितामह श्रीमान् प्रह्लादने उन प्रभुसे दास्यभावकी याचना की थी। उनके पराक्रमी पिता हिरण्यकशिपुकी मृत्युके पश्चात् भगवान् विष्णुके द्वारा दी जानेवाली अतुलनीय पितृसम्पदाको ग्रहण करनेकी थोड़ी भी इच्छा उन भगवत्प्रिय प्रह्लादने नहीं की थी॥ २६—२८½॥

अतुलनीय अनुभाववाले तथा सम्पूर्ण लोकोंके उपकारकी बुद्धिवाले उन प्रह्लादका प्रभाव मुझ-जैसा दोषोंका आगार पुरुष भला कैसे जान सकता है। इस प्रकारके विचारोंवाले परमपूज्य दानवराज बलि थे, जिनके द्वारपालके रूपमें स्वयं श्रीहरि सुतलमें विराजमान रहते हैं। एक समयकी बात है, जगत्को रुलानेवाला रावण दिग्विजयके उद्देश्यसे सुतललोकमें प्रवेश कर रहा था, इतनेमें भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीहरिके पैरके अँगूठेकी ठोकरसे वह दस

हजार योजन दूर जा गिरा था॥ २९—३१॥

इस प्रकारके प्रभाववाले तथा सभी सुखोंका भोग करनेवाले बलि देवाधिदेव श्रीहरिकी कृपासे सुतललोकमें राजाके रूपमें प्रतिष्ठित होकर विराजमान हैं॥ ३२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'अतल-वितल-सुतललोकवर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

तलातल, महातल, रसातल और पाताल तथा भगवान् अनन्तका वर्णन

श्रीनारायण बोले—उस सुतलके नीचेके विवरको 'तलातल' कहा गया है। वहाँ त्रिपुराधिपति मय नामक महान् दानव रहता है॥ १॥

त्रिलोकीकी रक्षाके लिये भगवान् शंकरने उसकी तीनों पुरियाँ भस्म करके उसके यहाँ रहनेकी व्यवस्था कर दी। उसे देवाधिदेव शिवकी कृपासे यहाँ सुखदायक राज्य प्राप्त हो गया है॥ २॥

अपने समस्त कार्योंके अभ्युदयके लिये बड़े-बड़े भयानक राक्षसगण अनेक प्रकारकी माया रचनेमें परम प्रवीण उस मायावियोंके भी गुरु मयकी पूजा करते हैं॥ ३॥

उस तलातलके नीचे अति प्रसिद्ध 'महातल' नामक विस्तृत विवर है। उसमें कद्रूसे उत्पन्न हुए अनेक सिरोंवाले क्रोधी सर्पोंका एक बहुत बड़ा समूह रहता है। हे विप्र! उनमें प्रधान सर्पोंके नाम आपको बताता हूँ—कुहक, तक्षक, सुषेण और कालिय। ये विशाल फनवाले, महान् शक्तिसे सम्पन्न तथा अत्यन्त भयानक होते हैं। इनकी जाति ही बड़ी क्रूर होती है। वे सभी केवल पक्षिराज गरुडसे ही आतंकित रहते हैं। अनेक प्रकारकी क्रीडा करनेमें परम दक्ष ये सर्प अपनी स्त्रियों, सन्तानों, सुहृदों तथा परिवारजनोंके साथ प्रमत्त होकर वहाँ विहार करते रहते हैं॥ ४—७॥

उसके भी नीचे 'रसातल' नामवाले विवरमें 'पणि' नामके दैत्य और दानव रहते हैं, जो निवातकवच, हिरण्यपुरवासी और कालेय कहे गये हैं। देवताओंसे इनकी शत्रुता रहती है॥ ८-९॥

वे जन्मसे ही महान् पराक्रमी तथा साहसी होते हैं, किंतु अखिल जगत्के स्वामी भगवान् श्रीहरिके तेजसे कुण्ठित पराक्रमवाले होकर वे सर्पोंकी भाँति छिपकर सदा उस विवरमें पड़े रहते हैं। इन्द्रकी दूती सरमाके मन्त्र-वर्णरूप* वाक्योंके प्रभावसे असुर कष्ट पा चुके हैं—इसी बातका स्मरण करके वे हमेशा भयभीत रहते हैं॥ १०-११$^{1}/_{2}$॥

इससे भी नीचे स्थित 'पाताललोक' में मुख्यरूपसे वासुकि, शंख, कुलिक, श्वेत, धनंजय, महाशंख, धृतराष्ट्र, शंखचूड, कम्बल, अश्वतर और देवोपदत्तक आदि महान् क्रोधी, बड़े-बड़े फनोंवाले तथा महान् विषधर सर्प निवास करते हैं; वे सब नागलोकके अधिपालक हैं॥ १२—१४॥

उनमें कोई सर्प पाँच फनोंवाले, कोई सात फनोंवाले और कोई दस फनोंवाले हैं। कुछ सर्पोंके सौ सिर तथा कुछके हजार सिर हैं। हे देवर्षे! जगमगाती हुई मणियाँ धारण करनेवाले वे क्रोधयुक्त सर्प अपनी मणियोंके तेजसे पाताल-विवरके घोर अन्धकार-समूहको नष्ट कर देते हैं॥ १५-१६$^{1}/_{2}$॥

इस पाताललोकके नीचे तीस हजार योजनकी दूरीपर भगवान् श्रीहरिकी एक तामसी कला विराजमान है। सम्पूर्ण देवताओंसे सम्यक् पूजित इस कलाका नाम अनन्त है॥ १७-१८॥

अहंरूप अभिमानका लक्षण होनेके कारण यह द्रष्टा तथा दृश्यका कर्षण करके एक कर देती है, इसीलिये पांचरात्र आगमके अनुयायी इसे संकर्षण कहते हैं॥ १९॥

हजार सिरोंवाले इन अनन्तमूर्ति भगवान् शेषके एक

* एक कथा आती है कि जब पणि नामक दैत्योंने पृथ्वीको रसातलमें छिपा लिया, तब इन्द्रने उसे ढूँढ़नेके लिये सरमा नामकी एक दूतीको भेजा था। सरमासे दैत्योंने सन्धि करनी चाही, परंतु सरमाने सन्धि न करके इन्द्रकी स्तुति करते हुए कहा था—**'हता इन्द्रेण पणयः शयध्वम्'** (हे पणिगण! तुम इन्द्रके हाथसे मरकर पृथ्वीपर सो जाओ) इसी शापके कारण उन्हें सदा इन्द्रका डर लगा रहता है।

सिरपर रखा हुआ यह गोलाकार समग्र भूमण्डल सरसोंके दानेकी भाँति दिखायी पड़ता है॥ २०१/२॥

समय आनेपर जब ये भगवान् अनन्त चराचर जगत्के संहारकी इच्छा करते हैं, तब इनकी भौंहोंके विवरसे ग्यारह रुद्रोंसे सुशोभित विग्रहवाले सांकर्षण नामक रुद्र प्रकट हो जाते हैं॥ २१-२२॥

ये रुद्र तीन नेत्रोंसे शोभा पाते हैं, ये स्वयं तीन नोकोंवाला त्रिशूल लेकर खड़े हो जाते हैं। असीम शक्तिसे सम्पन्न ये रुद्र अखिल प्राणिजगत्का संहार करनेवाले हैं॥ २३॥

उन भगवान् शेषनागके दोनों चरणकमलोंके नख स्वच्छ तथा लाल मणियोंके समान देदीप्यमान हैं। जब बड़े-बड़े नागराज एकान्तभक्तिसे युक्त होकर प्रधान भक्तोंके साथ भगवान् शेषके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम करते हैं, तब उन्हें माणिक्यजटित कुंडलकी प्रभासे प्रकाशित अपने मुख, सुन्दर कपोल तथा गण्डस्थल उनके मणिसदृश नखोंमें दृष्टिगोचर होने लगते हैं॥ २४—२६॥

वहाँ नागराजोंकी सुन्दर तथा कान्तियुक्त अंगोंवाली कुमारियाँ भी रहती हैं। लम्बी, विशाल, स्वच्छ, सुन्दर तथा मनोहर भुजाओंसे सुशोभित वे कुमारियाँ इधर-उधर घूमा करती हैं। वे अपने अंगोंमें चन्दन, अगुरु और कस्तूरीका लेपन किये रहती हैं॥ २७-२८॥

उन भगवान् संकर्षणके स्पर्शजन्य कामावेशसे समन्वित तथा मधुर मुस्कानसे युक्त होकर उन अनुराग-मदसे उन्मत्त विघूर्णित रक्त नेत्रोंवाले तथा करुणापूर्ण दृष्टिवाले भगवान्को वे नागकन्याएँ आशीर्वादकी आशासे लज्जापूर्वक निहारती रहती हैं॥ २९-३०॥

अनन्त पराक्रमवाले, अत्यन्त उदार हृदयवाले, अनन्त गुणोंके सागर, महान् तेजस्वी, क्रोध-रोष आदिके वेगोंको रोकनेवाले, असीम शक्तिके आगारस्वरूप वे आदिदेव भगवान् अनन्त सभी देवताओंसे प्रपूजित होकर सिद्धों, देवताओं, असुरों, नागों, विद्याधरों, गन्धर्वों और मुनिगणोंके द्वारा निरन्तर ध्यान किये जाते हुए लोकोंके कल्याणार्थ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ३१—३३॥

निरन्तर प्रेमके मदसे मुग्ध एवं विह्वल नेत्रोंवाले वे भगवान् अपनी अमृतमयी वाणीसे सभी देवताओं तथा अपने पार्षदगणोंको भी सन्तुष्ट किये रहते हैं। वे कभी भी न मुरझानेवाले निर्मल और नवीन तुलसी-दलोंसे सुशोभित वैजयन्तीकी माला धारण किये रहते हैं। वह माला मतवाले भौंरोंके समूहोंकी मधुर गुंजारसे सदा सुशोभित रहती है। वे देवदेव भगवान् शेष नीले रंगका वस्त्र धारण करते हैं और उनके कानमें केवल एक कुंडल सुशोभित रहता है। वे अविनाशी भगवान् अपनी विशाल भुजा हलकी मूठपर रखे रहते हैं। सुवर्णमयी पृथ्वीको अपने सिरपर धारण किये हुए भगवान् शेष पीठपर हौदा रखे किसी मतवाले हाथीकी भाँति सुशोभित होते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ भगवद्भक्तोंने उदार लीलाओंवाले भगवान् शेषका वर्णन किया है॥ ३४—३७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'तलातलादि-लोकोंके वर्णनमें अनन्तका वर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

देवर्षि नारदद्वारा भगवान् अनन्तकी महिमाका गान तथा नरकोंकी नामावली

श्रीनारायण बोले—ब्रह्माके पुत्र महाभाग नारद ब्रह्मदेवकी सभामें उन भगवान् शेषकी महिमाका गान करते हुए उनकी उपासना करते हैं॥ १॥

जिनका दर्शन पाकर इस जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके हेतुभूत सत्त्वादि प्राकृतिक गुणोंमें अपने कार्य करनेकी क्षमता आ जाती है, जिनका रूप अनन्त तथा अनादि है, जो अकेले होते हुए ही इस नानात्मक प्रपंचको धारण किये हुए हैं—उन भगवान् संकर्षणके तत्त्वको कोई कैसे जान सकता है?॥ २॥

जिनमें यह सत्-असत्रूप सारा प्रपंच भास रहा है तथा स्वजनोंका चित्त आकर्षित करनेके लिये की हुई जिनकी वीरतापूर्ण लीलाको परम पराक्रमी मृगराज सिंहने आदर्श मानकर अपनाया है, उन उदारवीर्य भगवान् संकर्षणने हमपर बड़ी कृपा करके यह विशुद्ध सत्त्वमय

स्वरूप धारण किया है॥ ३॥

यदि कोई दु:खी अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसी-हँसीमें उनके सुने हुए नामका एक बार भी उच्चारण कर लेता है तो वह दूसरे मनुष्योंके भी सभी पापोंको शीघ्र ही नष्ट कर देता है—ऐसे भगवान् शेषको छोड़कर मोक्षकी इच्छा रखनेवाला मनुष्य अन्य किसका आश्रय ग्रहण करे?॥ ४॥

पर्वत, नदी और समुद्र आदिसे पूर्ण यह सम्पूर्ण भूमण्डल उन हजार सिरोंवाले भगवान् शेषके एक मस्तकपर धूलके एक कणके समान स्थित है। वे अनन्त हैं, इसलिये उनके पराक्रमका कोई परिमाण नहीं है। किसीके हजार जीभें हों, तो भी उन सर्वव्यापक भगवान्के पराक्रमकी गणना वह कैसे कर सकता है?॥ ५॥

वास्तवमें उनका वीर्य, अतिशय गुण और प्रभाव असीम है। ऐसे प्रभावशाली भगवान् अनन्त रसातलके मूलमें अपनी ही महिमामें स्थित होकर स्वतन्त्र हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी स्थितिके लिये पृथ्वीको अपनी लीलासे धारण किये हुए हैं॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! निरन्तर भोगोंकी कामना करनेवाले पुरुषोंकी अपने कर्मोंके अनुसार प्राप्त होनेवाली भगवान्की रची हुई ये ही गतियाँ कही गयी हैं। जैसा मुझे उपदेश प्राप्त हुआ, वैसा कह दिया। हे राजेन्द्र! मनुष्यों, पशुओं और पक्षियोंके प्रवृत्तिधर्मके परिणामस्वरूप प्राप्त होनेवाली परस्पर विलक्षण ऊँच-नीच गतियाँ इतनी ही हैं। जो आपने पूछा था, उसे मैंने बता दिया और आगे भी सुनिये॥ ७—९॥

नारदजी बोले—सभी प्राणियोंके कर्म समान होनेपर भी भगवान्ने उन लोगोंमें यह विभिन्नता क्यों की है? इसे आप यथार्थरूपमें बताइये॥ १०॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कर्ताकी श्रद्धाके सात्त्विक, राजस और तामस—इन तीन भिन्न-भिन्न गुणोंके कारण गतियाँ भी अलग-अलग होती हैं और इसीलिये उनका फल भी भिन्न-भिन्न होता है॥ ११॥

सात्त्विक श्रद्धाके द्वारा कर्ताको सदा सुखकी प्राप्ति होती है, राजसी श्रद्धासे कर्ताको दु:ख मिलता है और तामसी श्रद्धाके प्रभावसे कर्तामें दु:ख और मूढ़ता दोनोंका उदय होता है। इस प्रकार श्रद्धाओंके तारतम्यसे फलोंमें भी विचित्रता बतायी गयी है॥ १२-१३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अनादि मायाके बनाये हुए कर्मोंके परिणामस्वरूप हजारों प्रकारकी गतियाँ प्रवृत्त होती हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! अब मैं उन गतियोंके भेदोंका विस्तारसे वर्णन करूँगा॥ १४१/२॥

हे नारद! त्रिलोकीके भीतर दक्षिण दिशामें अग्निष्वात्ता नामक पितृगण तथा अन्य पितर निवास करते हैं। यह स्थान पृथ्वीसे नीचे तथा अतल लोकसे ऊपर है। सत्यस्वरूप ये पितृगण सदा परम समाधिसे युक्त होकर अपने वंशजोंके परम कल्याणकी आशा करते हुए यहाँ रहते हैं॥ १५—१७॥

वहाँ पितृराज भगवान् यम अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं। सम्यक् विचार दृष्टिवाले तथा दण्डधारी वे यमराज भगवान्की कही गयी आज्ञाका पालन करते हुए अपने दूतोंद्वारा वहाँ लाये गये मृत प्राणियोंके लिये उनके कर्मों तथा दोषोंके अनुसार वैसे ही फलका विधान करते हैं॥ १८-१९॥

वे परम ज्ञानी यमराज धर्मतत्त्वको जाननेवाले, यथास्थान नियुक्त किये गये तथा आज्ञाकारी अपने सभी गणोंको सदा प्रेरित करते रहते हैं॥ २०॥

संख्यामें कुल इक्कीस नरक बताये गये हैं। कुछ लोग नरकोंकी संख्या अट्ठाईस बताते हैं। मैं क्रमशः उनका वर्णन कर रहा हूँ॥ २१॥

हे देवर्षे! तामिस्र, अन्धतामिस्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, सन्दंश, तप्तमूर्ति, वज्रकण्टक-शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अय:पान, क्षारकर्दम, रक्षोगणसंभोज, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटारोध, पर्यावर्तनक और सूचीमुख—ये अट्ठाईस नरक बताये गये हैं। हे ब्रह्मपुत्र! इन नामोंवाले ये नरक यातना भोगनेके परम स्थान हैं; जहाँ प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जाते हैं॥ २२—२८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'नरकके स्वरूपका वर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

विभिन्न नरकोंका वर्णन

नारदजी बोले—हे सनातन मुने! विविध प्रकारकी यातनाओंकी प्राप्ति करानेवाले कर्मोंके भेद कितने प्रकारके होते हैं; मैं इनके विषयमें भलीभाँति सुनना चाहता हूँ॥ १॥

श्रीनारायण बोले—जो पुरुष दूसरेके धन, स्त्री और सन्तानका हरण करता है, वह दुष्टात्मा यमराजके दूतोंद्वारा पकड़कर ले जाया जाता है॥ २॥

अत्यन्त भयानक रूपवाले यमदूत उसे कालपाशमें बाँधकर ले जाते हैं और यातना भोगनेके भयावह स्थानस्वरूप **तामिस्र** नामक नरकमें गिरा देते हैं॥ ३॥

हाथमें रस्सी लिये हुए यमदूत उस प्राणीको पीटते हैं, तरह-तरहके दण्ड देते हैं और उसे डराते हैं। इस प्रकार वह जीव महान् क्लेश पाता है। हे नारद! वह नारकी विवश होकर एकाएक मूर्च्छित हो जाता है॥ ४१/२॥

इसी प्रकार जो व्यक्ति किसीके पतिको धोखा देकर उसकी स्त्रीके साथ भोग करता है, वह यमदूतोंके द्वारा **अन्धतामिस्र** नामक नरकमें गिराया जाता है; जहाँ गिराये जाते हुए जीवको असह्य वेदना होती है। वह दृष्टिहीन हो जाता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह शीघ्र ही जड़से कटे हुए वृक्षकी भाँति नरकमें गिर पड़ता है। इसीलिये प्राचीन पुरुषोंने इसे अन्धतामिस्र नामकी संज्ञा दी है॥ ५—७१/२॥

यह शरीर ही मैं हूँ और ये [धन, स्त्री, पुत्रादि] मेरे हैं—ऐसा सोचकर जो अन्य प्राणियोंसे द्रोह करता हुआ केवल अपने परिवारके भरण-पोषणमें प्रतिदिन लगा रहता है, वह स्वार्थलोलुप प्राणी शरीर छोड़कर अपने अशुभ कर्मोंके प्रभावसे जीवोंको अत्यधिक भय देनेवाले इस रौरव नामक नरकमें गिरता है; और इस व्यक्तिके द्वारा जिन जन्तुओंकी पहले इस जगत्‌में हिंसा हुई रहती है, वे प्राणी भयंकर रुरु नामक जन्तु बनकर उसे यहाँ कष्ट देते हैं। इसीलिये पुराणवेत्ता मनीषी इसे **रौरव** नरक कहते हैं। पुरातन पुरुषोंने इस रुरु नामक जन्तुको सर्पसे भी अधिक क्रूर बतलाया है॥ ८—१११/२॥

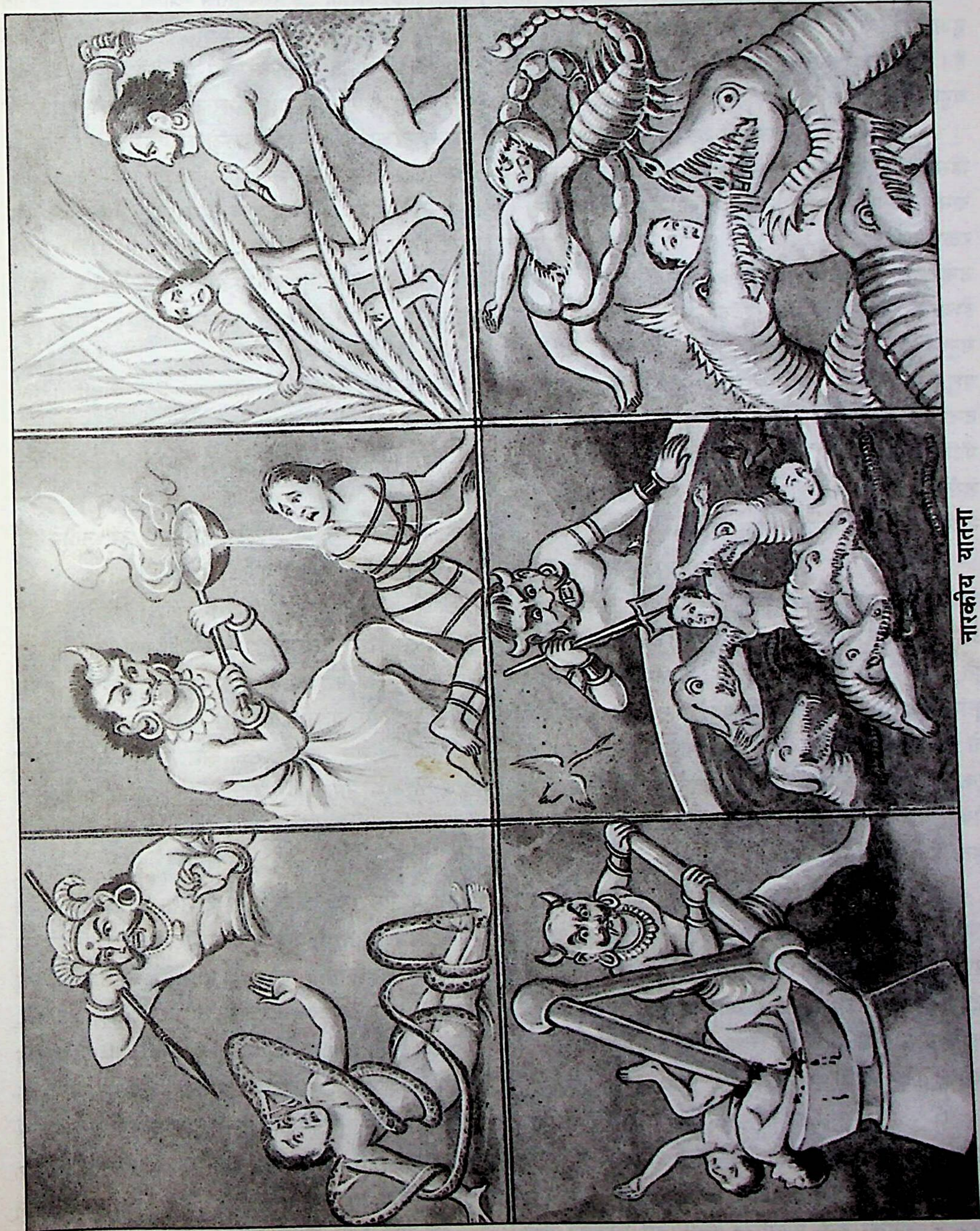
इसी प्रकार **महारौरव** नामक नरक भी है, जहाँ यातना पानेके लिये प्राणी दूसरा सूक्ष्म शरीर धारण करके जाता है। वहाँ कच्चा मांस खानेवाले रुरु नामक जन्तु उस जीवके मांसपर चोट पहुँचाते रहते हैं॥ १२-१३॥

हे नारद! जो अत्यन्त क्रोधी, निर्दयी तथा मूर्ख पुरुष पशु-पक्षियोंको मारकर उनका मांस पकाता है, यमराजके दूत उसे **कुम्भीपाक** नरकमें खौलते हुए तेलमें डालकर उस पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक पकाते हैं॥ १४-१५॥

जो पिता, विप्र तथा ब्राह्मणसे द्रोह करता है, वह नारकी मनुष्य अग्नि तथा सूर्यसे सदा तप्त रहनेवाले **कालसूत्र** नामक नरकमें डाला जाता है। वहाँपर भूख और प्याससे पीड़ित हो जाता है और भीतर तथा बाहरसे जलते हुए शरीरवाला वह प्राणी व्याकुल होकर कभी बैठता है, कभी सोता है, कभी नानाविध चेष्टाएँ करता है, कभी उठकर खड़ा हो जाता है और कभी दौड़ने लगता है॥ १६-१७॥

हे देवर्षे! विपत्तिका समय न रहनेपर भी जो अपने वेदविहित मार्गसे हटकर पाखण्डका आश्रय लेता है, उस पापी पुरुषको यमदूत **असिपत्रवन** नामक नरकमें डाल देते हैं। जब वे उसके ऊपर कोड़ेसे प्रहार करते हैं, तब वहाँ डाला गया वह नारकी जीव उतावला होकर अत्यन्त वेगसे इधर-उधर भागने लगता है, जिससे दोनों ओर तीखी धारोंवाले असिपत्रोंसे उसका शरीर छिद जाता है। छिदे हुए सभी अंगोंवाला वह जीव 'हाय मैं मारा गया'—ऐसा कहते हुए मूर्च्छित हो जाता है। इस प्रकार वह अल्पबुद्धि प्राणी वहाँ असीम कष्ट भोगते हुए पद-पदपर गिरता है और अपने किये हुए कर्मके अनुसार उस पाखण्डका फल भोगता है॥ १८—२११/२॥

जो राजा अथवा राजपुरुष अधर्मका सहारा लेकर प्रजाको दण्डित करता है और ब्राह्मणको शारीरिक दण्ड देता है, वह नारकी तथा महापापी मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **सूकरमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। वहाँपर बलवान् यमदूतोंके द्वारा ईखकी भाँति पेरा जाता हुआ वह जीव



नारकीय यातना

सभी अंगोंके पिस जानेसे वेदनाके कारण आर्तस्वर करता हुआ मूर्च्छित हो जाता है और महान् क्लेश प्राप्त करता है। इस प्रकार अनेक प्रकारसे पीड़ित होता हुआ जीव बहुत पीड़ा पाता है॥ २२—२४१/२॥

जो पुरुष इस लोकमें खटमल आदि जीवोंकी हिंसा करता है, वह उनसे द्रोह करनेके कारण **अन्धकूप** नामक नरकमें गिरता है; क्योंकि स्वयं परमात्माने ही रक्तपानादि उनकी वृत्ति बना दी है और उसके कारण उन्हें दूसरोंको कष्ट पहुँचानेका ज्ञान भी नहीं है, किंतु ईश्वरके द्वारा विधि-निषेधपूर्वक बनायी गयी वृत्तियोंवाले मनुष्योंको दूसरोंके कष्टका ज्ञान है। इसीलिये वह प्राणी पशु, पक्षी, मृग, सर्प, मच्छर, जूँ, खटमल, मक्खी, दन्दशूक आदि क्रूर जन्तुओंके द्वारा अन्धकूप नरकमें पीडित किया जाता है। वह प्राणी भयानक रोगसे ग्रस्त शरीरमें रहनेवाले जीवकी भाँति व्यथित होकर इस नरकमें चक्कर काटता रहता है॥ २५—२८॥

जो कुछ भी धन आदि प्राप्त हो उसे शास्त्रविहित पंचयज्ञोंमें विभक्त किये बिना ही जो भोजन करता है, उसे काकतुल्य समझना चाहिये। यमराजके अत्यन्त निर्मम दूत उस पापी पुरुषको उसके दुष्कर्मोंके फलस्वरूप **कृमिभोजन** नामक अधम नरकमें गिराते हैं। इस प्रकार जो अतिथियोंको दिये बिना ही भोजन करता है। वह एक लाख योजन विस्तारवाले भयंकर कृमिकुण्डमें कीड़ा होकर नरकके कीड़ोंद्वारा खाया जाता हुआ वहीं पड़ा रहता है॥ २९—३११/२॥

हे देवर्षे! विपत्तिकाल न होनेपर भी जो प्राणी ब्राह्मण अथवा अन्य किसी भी वर्णके लोगोंसे चोरीसे या बलात् स्वर्ण या रत्न छीन लेता है, उसे मरनेपर यमराजके दूत **संदंश** नामक नरकमें गिराते हैं और अग्निके समान सन्तप्त लोहपिण्डोंसे उसे दागते हैं तथा संड़सीसे उसकी खाल नोचते हैं॥ ३२-३३१/२॥

जो पुरुष अगम्या स्त्रीके साथ अथवा जो स्त्री अगम्य पुरुषके साथ समागम करती है, उन्हें यमदूत **तप्तसूर्मि (मूर्ति)** नामक नरकमें गिराकर कोड़ेसे पीटते हैं। पुनः वे यमदूत लोहेकी बनी प्रज्वलित स्त्रीमूर्तिसे पुरुषको तथा लौहनिर्मित जलती हुई पुरुषमूर्तिसे स्त्रीको आलिंगित कराते हैं॥ ३४-३५१/२॥

जो घोर पापी मनुष्य जिस किसीके साथ व्यभिचार करता है, उसके मरनेपर यमराजके दूत उसे **शाल्मली** नामक नरकमें वज्रके समान कठोर काँटोंवाले उस लोहमय शाल्मली (सेमर)-के वृक्षपर चढ़ाते हैं॥ ३६-३७॥

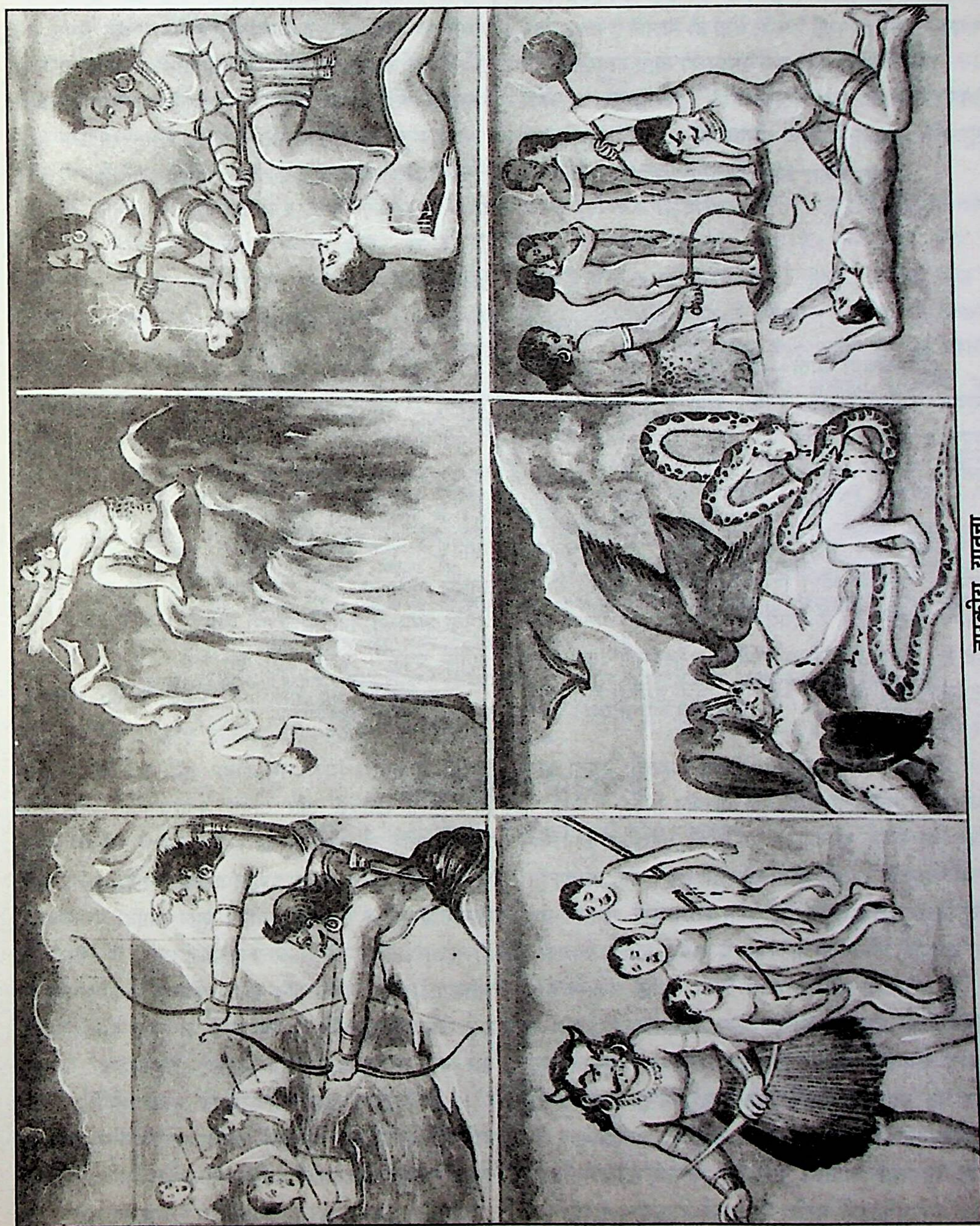
जो राजा या राजपुरुष पाखण्डी बनकर धर्मकी मर्यादाको तोड़ते हैं, वे इस मर्यादाभंगरूपी पापके कारण मरनेपर **वैतरणी** नामक नरकमें गिरते हैं। हे नारद! नरकरूपी दुर्गकी खाईंके समान प्रतीत होनेवाली उस वैतरणी नदीमें रहनेवाले जीव-जन्तु उन्हें चारों ओरसे काटते हैं और वे व्याकुल होकर इधर-उधर भागते रहते हैं। हे नारद! उनका शरीर नहीं छूटता तथा उनके प्राण भी नहीं निकलते और वे अपने पापकर्मके कारण सदा सन्तप्त रहते हैं। मल, मूत्र, पीब, रक्त, केश, अस्थि, नख, चर्बी, मांस और मज्जा आदिसे भरी पड़ी उस नदीमें गिरे हुए वे छटपटाते रहते हैं॥ ३८—४११/२॥

जो लोग सदाचारके नियमोंसे विमुख तथा शौचाचारसे रहित होकर शूद्राओंके पति बन जाते हैं और निर्लज्जतापूर्वक पशुवत् आचरण करते हैं, उन्हें अत्यन्त कष्टप्रद गतियाँ प्राप्त होती हैं। यमराजके दुराग्रही दूत उन्हें विष्ठा, मूत्र, कफ, रक्त और मलसे युक्त **पूयोद** नामक नरकमें गिराते हैं; जहाँ ये पापी इन्हीं वस्तुओंको खाते हैं॥ ४२—४४॥

जो द्विजातिगण कुत्ते और गधे आदिको पालते हैं, आखेट करनेमें सदा रुचि रखते हैं तथा शास्त्रके विपरीत मृगोंका वध करते हैं; उन दुर्नीतिपूर्ण आचरणवाले अधम प्राणियोंको मरणोपरान्त यमदूत [**प्राणरोध** नामक नरकमें गिराकर] लक्ष्य बनाकर बाणोंसे बेधते हैं॥ ४५-४६॥

जो दम्भी और मनुष्योंमें अधम लोग अभिमानपूर्वक यज्ञोंका आयोजन करके उसमें पशुओंकी हिंसा करते हैं, उन्हें इस लोकसे जानेपर यमदूत **विशसन** नामक नरकमें गिराकर कोड़ोंके असहनीय प्रहारसे उनको अत्यधिक पीडा पहुँचाते हैं॥ ४७१/२॥

जो मूर्ख द्विज कामसे मोहित होकर सवर्णा भार्याको



नारकीय यातना

वीर्यपान कराता है, यमके दूत उसे वीर्यके कुण्डमें [लालाभक्ष नामक नरकमें] गिराते हैं और वीर्य ही पिलाते हैं॥ ४८-४९॥

जो चोर, राजा अथवा राजपुरुष आग लगाते हैं, विष देते हैं, दूसरोंकी सम्पत्ति नष्ट करते हैं, गाँवों तथा धनिकोंको लूटते हैं, उनके मरनेपर यमराजके दूत उन्हें **सारमेयादन** नामक नरकमें ले जाते हैं। वहाँ सात सौ बीस अत्यन्त विचित्र सारमेय (कुत्ते) बताये गये हैं। वे बड़े वेगसे उन्हें नोच-नोचकर खाते हैं। हे मुने! वह सारमेयादन नामक नरक बड़ा ही भयानक है। हे मुने! अब इसके पश्चात् मैं अवीचि आदि प्रमुख नरकोंका वर्णन करूँगा॥ ५०—५२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'नरकप्रदपातकवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

नरक प्रदान करनेवाले विभिन्न पापोंका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! जो दान और धनके आदान-प्रदानमें साक्षी बनकर सदा झूठ बोलते हैं, वे पापबुद्धि मनुष्य मरनेपर सौ योजन ऊँचे पर्वत-शिखरसे **अवीचि** नामक परम भयंकर नरकमें गिरते हैं॥ १-२॥

इस अवीचि नामक आधारशून्य नरकमें प्राणियोंको नीचा सिर किये हुए गिरना पड़ता है, जहाँ स्थलभाग लहरयुक्त जलकी भाँति दिखायी पड़ता है। इसीलिये इसे अवीचि कहते हैं। हे देवर्षे! वहाँ पत्थर-ही-पत्थर बिछे रहते हैं। उनपर गिरनेसे प्राणियोंका शरीर तिल-तिल करके कट जाता है। वे मरते भी नहीं और उसीमें उन्हें बार-बार गिराया जाता है॥ ३-४॥

हे ब्रह्मपुत्र! जो ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी अथवा व्रतमें स्थित अन्य कोई भी प्रमादवश मद्यपान करता है तथा जो क्षत्रिय या वैश्य सोमपान* करता है, उसका **अयःपान** नामक नरकमें पतन होता है। हे मुने! हे ब्रह्मापुत्र! यमराजके दूत वहाँपर उन्हें आगसे अत्यन्त सन्तप्त तथा पिघला हुआ लोहा पिलाते हैं॥ ५-६$^{1}/_{2}$॥

हे मुने! जो नराधम स्वयं निम्न श्रेणीमें उत्पन्न हुआ है, किंतु अभिमानवश विद्या, जन्म, तप, आचार, वर्ण या आश्रममें अपनेसे श्रेष्ठ पुरुषोंका यथोचित सम्मान नहीं करता; वह महान् अधम मनुष्य यमदूतोंके द्वारा **क्षारकर्दम** नामक नरकमें सिर नीचा किये हुए ले जाया जाता है; वहाँपर वह घोर कष्टप्रद यातनाएँ भोगता है॥ ७—९॥

हे महामुने! जो मनुष्य मोहग्रस्त होकर नरमेधके द्वारा अन्य [यक्ष, राक्षस आदि]-का पूजन करते हैं अथवा जो स्त्रियाँ भी नरपशुका मांस खाती हैं; वे **रक्षोगणसम्भोज** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके द्वारा इस लोकमें मारे गये वे पशु यमपुरीमें पहलेसे ही कसाईके रूपमें विद्यमान रहते हैं। हे मुने! जिस प्रकार इस लोकमें पशुओंका मांस खानेवाले पुरुष आनन्दित होते हैं, उसी प्रकार वे पशु भी निर्मम कसाईका रूप धारणकर तेज धारवाले अस्त्रसे उनके शरीरको काटकर उससे निकले रक्तको पीते हैं और अनेक प्रकारसे नाचते तथा गाते हैं॥ १०—१२॥

हे ब्रह्मपुत्र! जो लोग ग्राममें अथवा जंगलमें रहनेवाले निरपराध प्राणियोंको—जो जीनेकी इच्छा रखते हैं—उन्हें विविध उपायोंसे विश्वासमें लेकर तथा फुसलाकर अपने पास बुला लेते हैं और अपने मनोरंजनके लिये उनके शरीरमें काँटे चुभाकर अथवा रस्सी आदिमें बाँधकर पीड़ा पहुँचाते हैं, वे मरनेपर **शूलपात (शूलप्रोत)** नामक नरकमें गिरते हैं। उनके शरीरमें शूल आदि चुभाये जाते हैं, वे भूख तथा प्याससे अत्यन्त पीड़ित होते हैं और तीखी चोंचवाले कंक, बक आदि पक्षी उन्हें जहाँ-तहाँ नोचते हैं। उस समय कष्ट भोग रहे वे प्राणी अपने पूर्वकृत पापोंका बार-बार स्मरण करते हैं॥ १३—१५$^{1}/_{2}$॥

हे विप्र! उग्र स्वभाववाले जो मनुष्य सर्पोंकी भाँति प्राणियोंको उद्विग्न करते हैं, वे मरणोपरान्त **दन्दशूक** नामक नरकमें पड़ते हैं, जहाँपर पाँच तथा सात मुखोंवाले क्रूरस्वभाव सर्प मरनेके बाद इस नरकमें पहुँचे हुए

* क्षत्रियों एवं वैश्योंके लिये शास्त्रमें सोमपानका निषेध है।

प्राणियोंको चूहेकी भाँति निगल जाते हैं॥ १६—१८॥

जो अन्धकूपोंमें, प्रकाशरहित घर आदिमें अथवा अन्धकारयुक्त गुफाओंमें प्राणियोंको बन्द कर देते हैं, उन पापकर्मपरायण लोगोंको यमराजके दूत मरनेके उपरान्त [**अवटारोध** नामक नरकमें गिराते हैं और] उनका हाथ पकड़कर विषैली अग्निके धुएँसे भरे हुए उसी प्रकारके अँधेरे स्थानोंमें प्रवेश कराकर उन्हें बन्द कर देते हैं॥ १९-२०॥

जो द्विज स्वयं गृहका स्वामी होकर अपने यहाँ समयपर आये हुए अतिथियोंको पापपूर्ण नेत्रसे इस प्रकार देखता है, मानो उसे भस्म ही कर डालेगा, मरनेपर उस पापदृष्टिवाले पुरुषको यमराजके सेवक **पर्यावर्तन** नामक नरकमें गिराते हैं। वहाँपर वज्रतुल्य चोंचोंवाले कंक, काक, वट, गीध आदि महान् क्रूर पक्षी बलपूर्वक उसकी आँखें निकाल लेते हैं॥ २१-२२१/२॥

जो अधम मनुष्य अपनेको वैभवसम्पन्न मानकर अभिमानसे अत्यन्त गर्वित होकर दूसरोंको वक्रदृष्टिसे देखता है, जो सबके प्रति शंकाभाव रखता है, जो अपने चित्तमें सदा धन कमाने किंतु व्यय न करनेकी ही भावना रखता है तथा ग्रहकी भाँति सदा धनकी रक्षा करता है, वह सूखते हुए हृदय तथा मुखवाला प्राणी कभी शान्तिको प्राप्त नहीं होता है। मरनेपर यमराजके सेवकोंद्वारा वह अपने पापकर्मके कारण **सूचीमुख** नामक नरकमें गिराया जाता है। यमराजके दूत उस अर्थपिशाचके सम्पूर्ण अंगोंको उसी प्रकार सिल देते हैं, जैसे दर्जी सूई-धागेसे वस्त्र सिलते हैं॥ २३—२६१/२॥

हे विप्र! पापकर्म करनेवाले मनुष्योंको यातना देनेके लिये ये अनेक प्रकारके नरक हैं। इसी तरह और भी सैकड़ों तथा हजारों नरक हैं। हे देवर्षे! उनमेंसे कुछ ही बताये गये हैं, मैंने बहुत-से नरकोंका वर्णन ही नहीं किया। हे मुने! पापी मनुष्य अनेक यातनाओंसे भरे इन नरकोंमें जाते हैं और धर्मपरायणलोग सुखप्रद लोकोंमें जाते हैं॥ २७—२९॥

हे महामुने! मैंने जिस प्रकार आपसे भगवतीके पूजनके स्वरूप और देवीकी आराधनाके लक्षणोंका वर्णन विस्तारसे किया है, वही अपना धर्म है; जिसके अनुष्ठानमात्रसे मनुष्य नरकमें नहीं जाता। सम्यक् प्रकारसे पूजित होनेपर वे भगवती संसाररूपी समुद्रसे प्राणियोंका उद्धार कर देती हैं॥ ३०-३१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'अवशिष्टनरकवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

देवीकी उपासनाके विविध प्रसंगोंका वर्णन

नारदजी बोले—हे तात! देवीके आराधनरूपी धर्मका स्वरूप क्या है? किस प्रकारसे उपासना करनेपर वे देवी परम पद प्रदान करती हैं? उनकी आराधनाकी विधि क्या है? कैसे, कब और किस स्तोत्रसे आराधना करनेपर वे भगवती दुर्गा कष्टप्रद नरकरूपी दुर्गसे उद्धार करके त्राणदायिनी होती हैं?॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे विद्वद्वर! हे देवर्षे! जिस प्रकार धर्मपूर्वक आराधना करनेसे देवी स्वयं प्रसन्न हो जाती हैं, उसे अब आप एकाग्रचित्त होकर मुझसे सुनिये। हे नारद! जैसा स्वधर्मका स्वरूप बताया गया है, उसे भी आप मुझसे सुनिये॥ ३१/२॥

हे मुने! इस अनादि संसारमें सम्यक्रूपसे पूजित होनेपर वे देवी घोर संकटोंमें स्वयं रक्षा करती हैं। वे भगवती जिस प्रकार लोकमें पूजी जाती हैं, वह विधि सुनिये॥ ४-५॥

[शुक्लपक्षकी] प्रतिपदा तिथिमें घृतसे देवीकी पूजा करनी चाहिये और ब्राह्मणको घृतका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला सदा निरोग रहता है॥ ६॥

द्वितीया तिथिको शर्करासे जगदम्बाका पूजन करना चाहिये और विप्रको शर्कराका ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य दीर्घजीवी होता है॥ ७॥

तृतीया तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें उन्हें दुग्ध

अर्पण करना चाहिये और श्रेष्ठ ब्राह्मणको दुग्धका दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके दुःखोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

चतुर्थीके दिन पूआ अर्पण करके देवीका पूजन करना चाहिये और ब्राह्मणको पूआ ही दान करना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य विघ्न-बाधाओंसे आक्रान्त नहीं होता॥ ९॥

पंचमी तिथिको भगवतीका पूजन करके उन्हें केला अर्पण करे और ब्राह्मणको केलेका ही दान करे; ऐसा करनेसे मनुष्य बुद्धिमान् होता है॥ १०॥

षष्ठी तिथिको भगवतीके पूजनकर्ममें मधुको प्रधान बताया गया है। ब्राह्मणको मधु ही देना चाहिये; ऐसा करनेसे मनुष्य दिव्य कान्तिवाला हो जाता है॥ ११॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सप्तमी तिथिको भगवतीको गुड़का नैवेद्य अर्पण करके ब्राह्मणको गुड़का दान करनेसे मनुष्य सभी प्रकारके शोकोंसे मुक्त हो जाता है॥ १२॥

अष्टमीको भगवतीको नारियलका नैवेद्य अर्पित करना चाहिये और ब्राह्मणको भी नारियलका दान करना चाहिये; ऐसा करनेवाला मनुष्य सभी सन्तापोंसे रहित हो जाता है॥ १३॥

नवमीके दिन भगवतीको लावा अर्पण करनेके बाद ब्राह्मणको भी लावाका दान करनेसे मनुष्य इस लोकमें तथा परलोकमें परम सुखी रहता है॥ १४॥

हे मुने! दशमी तिथिको भगवतीको काले तिल अर्पित करने और ब्राह्मणको उसी तिलका दान करनेसे मनुष्यको यमलोकका भय नहीं रह जाता॥ १५॥

जो मनुष्य एकादशी तिथिको भगवतीको दधि अर्पित करता है और ब्राह्मणको भी दधि प्रदान करता है, वह देवीका परम प्रिय हो जाता है॥ १६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो द्वादशीके दिन भगवतीको चिउड़ेका भोग लगाकर आचार्यको भी चिउड़ेका दान करता है, वह भगवतीका प्रियपात्र बन जाता है॥ १७॥

जो त्रयोदशीको भगवतीको चना अर्पित करता है और ब्राह्मणको चनेका दान करता है, वह प्रजाओं तथा सन्तानोंसे सदा सम्पन्न रहता है॥ १८॥

हे देवर्षे! जो मनुष्य चतुर्दशीके दिन भगवतीको सत्तू अर्पण करता है और ब्राह्मणको भी सत्तू प्रदान करता है, वह भगवान् शंकरका प्रिय हो जाता है॥ १९॥

जो पूर्णिमा तिथिको भगवती अपर्णाको खीरका भोग लगाता है और श्रेष्ठ ब्राह्मणको खीर प्रदान करता है, वह अपने सभी पितरोंका उद्धार कर देता है॥ २०॥

हे महामुने! देवीकी प्रसन्नताके लिये उसी तिथिको हवन भी बताया गया है। जिस तिथिमें नैवेद्यके लिये जो वस्तु बतायी गयी है, उसी वस्तुसे उन-उन तिथियोंमें हवन करनेसे सभी विपत्तियोंका नाश हो जाता है॥ २१॥

रविवारको खीरका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये। सोमवारको दूध और मंगलवारको केलेका भोग लगाना बताया गया है॥ २२॥

हे द्विज! बुधको ताजा मक्खन भोगके लिये कहा गया है। गुरुवारको रक्त शर्करा, शुक्रवारको श्वेत शर्करा और शनिवारको गायका घृत नैवेद्यके रूपमें बताया गया है॥ २३१/२॥

हे मुने! अब सत्ताईस नक्षत्रोंमें दिये जानेवाले नैवेद्यके विषयमें सुनिये। घी, तिल, चीनी, दही, दूध, मलाई, लस्सी, लड्डू, फेणिका, घृतमण्ड (शक्करपारा), कंसार (गेहूँके आटे तथा गुड़से निर्मित पदार्थ विशेष), वटपत्र (पापड़), घेवर, वटक (बड़ा), कोकरस (खजूरका रस), घृतमिश्रित चनेका चूर्ण, मधु, सूरन, गुड़, चिउड़ा, दाख, खजूर, चारक, पूआ, मक्खन, मूँगका लड्डू और विजौरा नींबू—हे नारद! ये सत्ताईस नक्षत्रोंके नैवेद्य बताये गये हैं॥ २४—२७१/२॥

अब विष्कम्भ आदि योगोंमें नैवेद्य अर्पणके विषयमें कहूँगा। इन पदार्थोंको अर्पित करनेसे जगदम्बिका प्रसन्न होती हैं। गुड़, मधु, घी, दूध, दही, मट्ठा, पूआ, मक्खन, ककड़ी, कोंहड़ा, लड्डू, कटहल, केला, जामुन, आम, तिल, संतरा, अनार, बेरका फल, आमला, खीर, चिउड़ा, चना, नारियल, जम्भफल (जम्भीरा), कसेरू और सूरन—हे विप्र! ये शुभ नैवेद्य क्रमशः विष्कम्भ आदि योगोंमें [भगवतीको] अर्पण करनेके लिये विद्वानोंके द्वारा निश्चित किये गये हैं॥ २८—३२१/२॥

हे मुने! इसके बाद अब मैं भिन्न-भिन्न करणोंके

नैवेद्यके बारेमें बताऊँगा। कंसार, मण्डक, फेनी, मोदक, वटपत्र, लड्डू, घृतपूर, तिल, दही, घी और मधु—ये करणोंके नैवेद्य बताये गये हैं, जिन्हें आदरपूर्वक भगवतीको अर्पण करना चाहिये॥ ३३-३४१/२॥

हे नारदमुने! अब मैं देवीको प्रसन्न करनेवाले दूसरे श्रेष्ठ विधानका वर्णन करूँगा, उस सम्पूर्ण विधानको आदरपूर्वक सुनिये। चैत्रमासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको महुएके वृक्षमें भगवतीकी भावना करके उनका पूजन करे और नैवेद्यमें पाँच प्रकारके भोज्य-पदार्थ अर्पित करे। इसी प्रकार बारहों महीनोंके शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पूजन-विधानके साथ क्रमशः नैवेद्य अर्पित करे। हे नारद! वैशाख-मासमें गुड़मिश्रित पदार्थ निवेदित करना चाहिये। ज्येष्ठ-महीनेमें भगवतीकी प्रसन्नताके लिये मधु अर्पित करना चाहिये। आषाढ़-महीनेमें नवनीत और महुएके रससे बना हुआ पदार्थ अर्पित करना चाहिये॥ ३५—३९॥

श्रावण-मासमें दही, भाद्रपद-मासमें शर्करा, आश्विन-मासमें खीर तथा कार्तिक-मासमें दूधका नैवेद्य उत्तम कहा गया है। मार्गशीर्ष-महीनेमें फेनी एवं पौष-माहमें दधिकूर्चिका (लस्सी)-का नैवेद्य उत्तम कहा गया है। माघके महीनेमें गायके घीका नैवेद्य अर्पण करना चाहिये; फाल्गुनके महीनेमें नारियलका नैवेद्य बताया गया है। इस प्रकार बारह महीनोंमें बारह नैवेद्योंसे क्रमशः भगवतीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४०—४२॥

मंगला, वैष्णवी, माया, कालरात्रि, दुरत्यया, महामाया, मतंगी, काली, कमलवासिनी, शिवा, सहस्रचरणा और सर्वमंगलरूपिणी—इन नामोंका उच्चारण करते हुए महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् सभी कामनाओंकी सिद्धि तथा व्रतकी पूर्णताके लिये महुएके वृक्षमें स्थित देवेशी महेश्वरीकी इस प्रकार स्तुति* करनी चाहिये॥ ४३—४५॥

कमलके समान नेत्रोंवाली आप जगद्धात्रीको नमस्कार है। आप महामंगलमूर्तिस्वरूपा महेश्वरी महादेवीको नमस्कार है। [हे देवि!] परमा, पापहन्त्री, परमार्गप्रदायिनी, परमेश्वरी, प्रजोत्पत्ति, परब्रह्मस्वरूपिणी, मददात्री, मदोन्मत्ता, मानगम्या, महोन्नता, मनस्विनी, मुनिध्येया, मार्तण्डसहचारिणी—ये आपके नाम हैं। हे लोकेश्वरि! हे प्राज्ञे! आपकी जय हो। हे प्रलयकालीन मेघके समान प्रतीत होनेवाली! देवता और दानव महामोहके विनाशके लिये आपकी उपासना करते हैं॥ ४६—४९॥

आप यमलोक मिटानेवाली, यमराजपूज्या, यमकी अग्रजा और यमनिग्रहस्वरूपिणी हैं। हे परमाराध्ये! आपको बार-बार नमस्कार है। आप समस्वभावा, सर्वेशी,

---

* नमः पुष्करनेत्रायै जगद्धात्र्यै नमोऽस्तु ते। माहेश्वर्यै महादेव्यै महामङ्गलमूर्तये॥
परमा पापहन्त्री च परमार्गप्रदायिनी। परमेश्वरी प्रजोत्पत्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी॥
मददात्री मदोन्मत्ता मानगम्या महोन्नता। मनस्विनी मुनिध्येया मार्तण्डसहचारिणी॥
जय लोकेश्वरि प्राज्ञे प्रलयाम्बुदसन्निभे। महामोहविनाशार्थं पूजितासि सुरासुरैः॥
यमलोकाभावकर्त्री यमपूज्या यमाग्रजा। यमनिग्रहरूपा च यजनीये नमो नमः॥
समस्वभावा सर्वेशी सर्वसङ्गविवर्जिता। सङ्गनाशकरी काम्यरूपा कारुण्यविग्रहा॥
कङ्कालक्रूरा कामाक्षी मीनाक्षी मर्मभेदिनी। माधुर्यरूपशीला च मधुरस्वरपूजिता॥
महामन्त्रवती मन्त्रगम्या मन्त्रप्रियङ्करी। मनुष्यमानसगमा मन्मथारिप्रियङ्करी॥
अश्वत्थवटनिम्बाम्रकपित्थबदरीगते। पनसार्ककरीरादिक्षीरवृक्षस्वरूपिणी॥
दुग्धवल्लीनिवासार्हे दयनीये दयाधिके। दाक्षिण्यकरुणारूपे जय सर्वज्ञवल्लभे॥
एवं स्तवेन देवेशीं पूजनान्ते स्तुवीत ताम्। व्रतस्य सकलं पुण्यं लभते सर्वदा, नरः॥
नित्यं यः पठते स्तोत्रं देवीप्रीतिकरं नरः। आधिव्याधिभयं नास्ति रिपुभीतिर्न तस्य हि॥
अर्थार्थी चार्थमाप्नोति धर्मार्थी धर्ममाप्नुयात्। कामानवाप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात्॥
ब्राह्मणो वेदसम्पन्नो विजयी क्षत्रियो भवेत्। वैश्यश्च धनधान्याढ्यो भवेच्छूद्रः सुखाधिकः॥
स्तोत्रमेतच्छ्राद्धकाले यः पठेत्प्रयतो नरः। पितॄणामक्षया तृप्तिर्जायते कल्पवर्तिनी॥ (श्रीमद्देवीभा० ८। २४। ४६—६०)

सर्वसंगविवर्जिता, संगनाशकरी, काम्यरूपा, कारुण्यविग्रहा, कंकालक्रूरा, कामाक्षी, मीनाक्षी, मर्मभेदिनी, माधुर्यरूपशीला, मधुरस्वरपूजिता, महामन्त्रवती, मन्त्रगम्या, मन्त्रप्रियंकरी, मनुष्यमानसगमा और मन्मथारिप्रियंकरी—इन नामोंसे विख्यात हैं॥ ५०—५३॥

पीपल, वट, नीम, आम, कैथ एवं बेरमें निवास करनेवाली आप कटहल, मदार, करील, जामुन आदि क्षीरवृक्षस्वरूपिणी हैं। दुग्धवल्लीमें निवास करनेवाली, दयनीय, महान् दयालु, कृपालुता एवं करुणाकी साक्षात् मूर्तिस्वरूपा एवं सर्वज्ञजनोंकी प्रियस्वरूपिणि! आपकी जय हो॥ ५४-५५॥

इस प्रकार पूजनके पश्चात् इस स्तोत्रसे उन देवेश्वरीकी स्तुति करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य व्रतका सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ५६॥

जो मनुष्य भगवतीको प्रसन्न करनेवाले इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, उसे किसी प्रकारके शारीरिक या मानसिक रोगका भय नहीं होता और उसे शत्रुओंका भी कोई भय नहीं रहता। इस स्तोत्रके प्रभावसे अर्थ चाहनेवाला अर्थ प्राप्त कर लेता है, धर्मके अभिलाषीको धर्मकी प्राप्ति हो जाती है, कामीको काम सुलभ हो जाते हैं और मोक्षकी इच्छा रखनेवालेको मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रके पाठसे ब्राह्मण वेदसम्पन्न, क्षत्रिय विजयी, वैश्य धनधान्यसे परिपूर्ण और शूद्र परम सुखी हो जाता है। जो मनुष्य श्राद्धके समय मनको एकाग्र करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके पितरोंकी एक कल्पतक स्थायी रहनेवाली अक्षय तृप्ति हो जाती है॥ ५७—६०॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने देवताओंके द्वारा देवीकी की गयी आराधना तथा पूजाके विषयमें आपको भलीभाँति बता दिया। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक भगवतीकी उपासना करता है, वह देवीलोकका अधिकारी हो जाता है॥ ६१॥

हे विप्र! भगवतीके पूजनसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं और अन्तमें उसकी बुद्धि सभी पापोंसे रहित होकर निर्मल हो जाती है॥ ६२॥

हे ब्रह्मपुत्र! भगवतीके अनुग्रहसे मनुष्य जहाँ-तहाँ पूजित होता है और मानको ही धन माननेवाले पुरुषोंमें सम्माननीय हो जाता है। उसे स्वप्नमें भी नरकोंका भय नहीं रहता। महामाया भगवतीकी कृपासे देवीका भक्त पुत्र तथा पौत्रोंसे सदा सम्पन्न रहता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ६३-६४$^{१}/_{२}$॥

[हे नारद!] यह जो मैंने आपसे महादेवीके पूजनका वर्णन किया है, वह नरकसे उद्धार करनेवाला तथा सम्पूर्ण रूपसे मंगलकारी है। हे मुने! चैत्र आदि महीनोंमें क्रमसे महुएके वृक्षमें भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। हे अनघ! जो मनुष्य मधूक नामक वृक्षमें सम्यक्‌रूपसे पूजन करता है; उसे रोग, बाधा आदिका कोई भय उत्पन्न नहीं होता॥ ६५—६७॥

अब मैं देवी मूलप्रकृतिके श्रेष्ठ पंचकसे सम्बन्धित अन्य प्रसंगका वर्णन कर रहा हूँ। यह प्रसंग अपने नाम, रूप और प्रादुर्भावसे सम्पूर्ण जगत्‌को आनन्दित कर देनेवाला है। हे मुने! यह प्रकृतिपंचक कुतूहल उत्पन्न करनेवाला तथा मुक्तिप्रदायक है; आख्यान तथा माहात्म्यसहित इसका श्रवण कीजिये॥ ६८-६९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत आठवें स्कन्धका 'देवीपूजन-विधिनिरूपण' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

॥ अष्टम स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

नवम स्कन्ध

पहला अध्याय

प्रकृतितत्त्वविमर्श; प्रकृतिके अंश, कला एवं कलांशसे उत्पन्न देवियोंका वर्णन

श्रीनारायण बोले—सृष्टिविधानमें मूलप्रकृति पाँच प्रकारकी कही गयी है—गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री॥ १॥

नारदजी बोले—हे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ! आप कृपापूर्वक बतायें कि किस निमित्त उनका आविर्भाव होता है, उनका स्वरूप क्या है, उनका लक्षण क्या है तथा वे किस प्रकार पाँच रूपोंमें प्रकट हुईं। हे साधो! इन सभी स्वरूपोंका चरित्र, पूजाविधान, अभीष्ट गुण तथा किसका अवतार कहाँ हुआ—यह सब विस्तारपूर्वक मुझे बतायें॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे वत्स! देवी प्रकृतिके सम्पूर्ण लक्षण कौन बता सकता है? फिर भी धर्मराजके मुखसे मैंने जो सुना है, उसे यत्किंचित् रूपसे बताता हूँ॥ ४॥

'प्र' अक्षर प्रकृष्टका वाचक है और 'कृति' से सृष्टिका बोध होता है। जो देवी सृष्टिप्रक्रियामें प्रकृष्ट हैं, वे ही प्रकृति कही गयी हैं। 'प्र' शब्द प्रकृष्ट सत्त्वगुण, 'कृ' रजोगुण और 'ति' शब्द तमोगुणका प्रतीक कहा गया है। जो त्रिगुणात्मिका हैं, वे ही सर्वशक्तिसे सम्पन्न होकर प्रधानरूपसे सृष्टिकार्यमें संलग्न रहती हैं, अतः उन्हें 'प्रकृति' या 'प्रधान' कहा जाता है॥ ५—७॥

प्रथमका बोधक 'प्र' और सृष्टिवाचक 'कृति' शब्दके संयोगसे सृष्टिके प्रारम्भमें जो देवी विद्यमान रहती हैं, उन्हें प्रकृति कहा गया है॥ ८॥

सृष्टिके लिये योगमायाका आश्रय लेकर परमात्मा दो रूपोंमें विभक्त हो गये, जिनका दक्षिणार्ध भाग पुरुष और वामार्ध भाग प्रकृति कहा जाता है॥ ९॥

वे ब्रह्मस्वरूपा हैं, नित्या हैं और सनातनी हैं। जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति अभिन्नरूपसे स्थित है, वैसे ही परमात्मा और प्रकृतिरूपा शक्ति भी अभिन्न हैं॥ १०॥

हे ब्रह्मन्! हे नारद! इसीलिये योगीजन परमात्मामें स्त्री और पुरुषभावसे भेद नहीं मानते और सब कुछ ब्रह्ममय है—ऐसा निरन्तर चिन्तन करते हैं॥ ११॥

स्वतन्त्रभाववाले श्रीकृष्णकी इच्छासे वे मूलप्रकृति भगवती सृष्टि करनेकी कामनासे सहसा प्रकट हो गयीं। उनकी आज्ञासे भिन्न-भिन्न कर्मोंकी अधिष्ठात्री होकर एवं भक्तोंके अनुरोधसे उनपर अनुग्रह करनेहेतु विग्रह धारण करनेवाली वे पाँच रूपोंमें अवतरित हुईं॥ १२-१३॥

जो गणेशमाता दुर्गा शिवप्रिया तथा शिवरूपा हैं, वे ही विष्णुमाया नारायणी हैं तथा पूर्णब्रह्म स्वरूपा हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनि तथा मनुगण सभी उनकी पूजा-स्तुति करते हैं। वे सबकी अधिष्ठात्रीदेवी हैं, सनातनी हैं तथा शिवस्वरूपा हैं॥ १४-१५॥

वे धर्म, सत्य, पुण्य तथा कीर्तिस्वरूपा हैं; वे यश,

कल्याण, सुख, प्रसन्नता और मोक्ष भी देती हैं तथा शोक, दुःख और संकटोंका नाश करनेवाली हैं॥ १६॥

वे अपनी शरणमें आये हुए दीन और आर्तजनोंकी निरन्तर रक्षा करती हैं। वे ज्योतिस्वरूपा हैं, उनका विग्रह परम तेजस्वी है और वे भगवान् श्रीकृष्णके तेजकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ १७॥

वे सर्वशक्तिस्वरूपा हैं और महेश्वरकी शाश्वत शक्ति हैं। वे ही साधकोंको सिद्धि देनेवाली, सिद्धिरूपा, सिद्धेश्वरी, सिद्धि तथा ईश्वरी हैं। बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति, भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, धृति तथा माया—ये इनके नाम हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णके पास सर्वशक्तिस्वरूपा होकर स्थित रहती हैं॥ १८—२०॥

श्रुतियोंमें इनके प्रसिद्ध गुणोंका थोड़ेमें वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमोंमें भी वर्णन उपलब्ध है। उन अनन्ताके अनन्त गुण हैं। अब दूसरे स्वरूपके विषयमें सुनिये॥ २१॥

जो शुद्ध सत्त्वरूपा महालक्ष्मी हैं, वे भी परमात्माकी ही शक्ति हैं, वे सर्वसम्पत्स्वरूपिणी तथा सम्पत्तियोंकी अधिष्ठातृदेवता हैं॥ २२॥

वे शोभामयी, अति संयमी, शान्त, सुशील, सर्वमंगलरूपा हैं और लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद, अहंकारादिसे रहित हैं॥ २३॥

भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली, अपने स्वामीके लिये सबसे अधिक पतिव्रता, प्रभुके लिये प्राणतुल्य, उनकी प्रेमपात्र तथा प्रियवादिनी, सभी धन-धान्यकी अधिष्ठात्री तथा आजीविकास्वरूपिणी वे देवी सती महालक्ष्मी वैकुण्ठमें अपने स्वामी भगवान् विष्णुकी सेवामें तत्पर रहती हैं॥ २४-२५॥

वे स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंमें राजलक्ष्मी, गृहस्थ मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी और सभी प्राणियों तथा पदार्थोंमें शोभारूपसे विराजमान रहती हैं। वे मनोहर हैं। वे पुण्यवान् लोगोंमें कीर्तिरूपसे, राजपुरुषोंमें प्रभारूपसे, व्यापारियोंमें वाणिज्यरूपसे तथा पापियोंमें कलहरूपसे विराजती हैं। वे दयारूपा कही गयी हैं, वेदोंमें उनका निरूपण हुआ है, वे सर्वमान्य, सर्वपूज्य तथा सबके लिये वन्दनीय हैं। अब आप अन्य स्वरूपके विषयमें मुझसे सुनिये॥ २६—२८$^1/_2$॥

जो परमात्माकी वाणी, बुद्धि, विद्या तथा ज्ञानकी अधिष्ठात्री हैं; सभी विद्याओंकी विग्रहरूपा हैं, वे देवी सरस्वती हैं। वे मनुष्योंको बुद्धि, कवित्व शक्ति, मेधा, प्रतिभा और स्मृति प्रदान करती हैं। वे भिन्न-भिन्न सिद्धान्तोंके भेद-निरूपणका सामर्थ्य रखनेवाली, व्याख्या और बोधरूपिणी तथा सारे सन्देहोंका नाश करनेवाली कही गयी हैं। वे विचारकारिणी, ग्रन्थकारिणी, शक्तिरूपिणी तथा स्वर-संगीत-सन्धान तथा तालकी कारणरूपा हैं। वे ही विषय, ज्ञान तथा वाणीस्वरूपा हैं; सभी प्राणियोंकी संजीवनी शक्ति हैं; वे व्याख्या और वाद-विवाद करनेवाली हैं; शान्तिस्वरूपा हैं तथा वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली हैं। वे शुद्ध सत्त्वगुणमयी, सुशील तथा श्रीहरिकी प्रिया हैं। उनकी कान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और श्वेत कमलके समान है। रत्नमाला लेकर परमात्मा श्रीकृष्णका जप करती हुई वे साक्षात् तपःस्वरूपा हैं तथा तपस्वियोंको उनकी तपस्याका फल प्रदान करनेवाली हैं। वे सिद्धिविद्यास्वरूपा और सदा सब प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली हैं। जिनकी कृपाके बिना विप्रसमूह सदा मूक और मृततुल्य रहता है, उन श्रुतिप्रतिपादित तथा आगममें वर्णित तृतीया शक्ति जगदम्बिका भगवती सरस्वतीका यत्किंचित् वर्णन मैंने किया। अब अन्य शक्तिके विषयमें आप मुझसे सुनिये॥ २९—३७॥

वे विचक्षण सावित्री चारों वर्णों, वेदांगों, छन्दों, सन्ध्यावन्दनके मन्त्रों एवं समस्त तन्त्रोंकी जननी हैं। वे द्विजातियोंकी जातिरूपा हैं; जपरूपिणी, तपस्विनी, ब्राह्मणोंकी तेजरूपा और सर्वसंस्काररूपिणी हैं॥ ३८-३९॥

वे ब्रह्मप्रिया सावित्री और गायत्री परम पवित्र रूपसे विराजमान रहती हैं, तीर्थ भी अपनी शुद्धिके लिये जिनके स्पर्शकी इच्छा करते हैं॥ ४०॥

वे शुद्ध स्फटिककी कान्तिवाली, शुद्धसत्त्वगुणमयी, सनातनी, पराशक्ति तथा परमानन्दरूपा हैं। हे नारद! वे

परब्रह्मस्वरूपा, मुक्तिप्रदायिनी, ब्रह्मतेजोमयी, शक्तिस्वरूपा तथा शक्तिकी अधिष्ठातृदेवता भी हैं, जिनके चरणरजसे समस्त संसार पवित्र हो जाता है। इस प्रकार चौथी शक्तिका वर्णन कर दिया। अब पाँचवीं शक्तिके विषयमें आपसे कहता हूँ॥ ४१—४३॥

जो पंच प्राणोंकी अधिष्ठात्री, पंच प्राणस्वरूपा, सभी शक्तियोंमें परम सुन्दरी, परमात्माके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम, सर्वगुणसम्पन्न, सौभाग्यमानिनी, गौरवमयी, श्रीकृष्णकी वामांगार्धस्वरूपा और गुण-तेजमें परमात्माके समान ही हैं; वे परावरा, सारभूता, परमा, आदिरूपा, सनातनी, परमानन्दमयी, धन्य, मान्य और पूज्य हैं॥ ४४—४६॥

वे परमात्मा श्रीकृष्णके रासक्रीडाकी अधिष्ठातृदेवी हैं, रासमण्डलमें उनका आविर्भाव हुआ है, वे रासमण्डलसे सुशोभित हैं; वे देवी रासेश्वरी, सुरसिका, रासरूपी आवासमें निवास करनेवाली, गोलोकमें निवास करनेवाली, गोपीवेष धारण करनेवाली, परम आह्लादस्वरूपा, सन्तोष तथा हर्षरूपा, आत्मस्वरूपा, निर्गुण, निराकार और सर्वथा निर्लिप्त हैं॥ ४७—४९॥

वे इच्छारहित, अहंकाररहित और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। बुद्धिमान् लोगोंने वेदविहित मार्गसे ध्यान करके उन्हें जाना है॥ ५०॥

वे ईश्वरों, देवेन्द्रों और मुनिश्रेष्ठोंके दृष्टिपथमें भी नहीं आतीं। वे अग्निके समान शुद्ध वस्त्रोंको धारण करनेवाली, विविध अलंकारोंसे विभूषित, कोटिचन्द्रप्रभासे युक्त और पुष्ट तथा समस्त ऐश्वर्योंसे समन्वित विग्रहवाली हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णकी अद्वितीय दास्यभक्ति तथा सम्पदा प्रदान करनेवाली हैं॥ ५१-५२॥

वाराहकल्पमें उन्होंने [व्रजमण्डलमें] वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें जन्म लिया, जिनके चरणकमलोंके स्पर्शसे पृथ्वी पवित्र हुई। ब्रह्मादि देवोंके द्वारा भी जो अदृष्ट थीं, वे भारतवर्षमें सर्वसाधारणको दृष्टिगत हुईं। हे मुने! स्त्रीरत्नोंमें सारस्वरूप वे भगवान् श्रीकृष्णके वक्ष:स्थलमें उसी प्रकार सुशोभित हैं, जैसे आकाशमण्डलमें नवीन मेघोंके बीच विद्युत्-लता सुशोभित होती है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने आत्मशुद्धिहेतु जिनके चरणकमलके नखके दर्शनके लिये साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की, किंतु स्वप्नमें भी नखज्योतिका दर्शन नहीं हुआ; साक्षात् दर्शनकी तो बात ही क्या? उन्हीं ब्रह्माने पृथ्वीतलके वृन्दावनमें तपस्याके द्वारा उनका दर्शन किया। मैंने पाँचवीं देवीका वर्णन कर दिया; वे ही राधा कही गयी हैं॥ ५३—५७॥

प्रत्येक भुवनमें सभी देवियाँ और नारियाँ इन्हीं प्रकृतिदेवीकी अंश, कला, कलांश अथवा अंशांशसे उत्पन्न हैं॥ ५८॥

भगवतीके पूर्णावताररूपमें जो-जो प्रधान अंशस्वरूपा पाँच विद्यादेवियाँ कही गयी हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ; सुनिये॥ ५९॥

लोकपावनी गंगा प्रधान अंशस्वरूपा हैं, वे भगवान् विष्णुके श्रीविग्रहसे प्रकट हुई हैं तथा सनातनरूपसे ब्रह्मद्रव होकर विराजती हैं॥ ६०॥

गंगा पापियोंके पापरूप ईंधनके दाहके लिये धधकती अग्निके समान हैं; किंतु [भक्तोंके लिये] सुखस्पर्शिणी तथा स्नान-आचमनादिसे मुक्तिपदप्रदायिनी हैं॥ ६१॥

गंगा गोलोकादि दिव्य लोकोंमें जानेके लिये सुखद सीढ़ीके समान, तीर्थोंको पावन करनेवाली तथा नदियोंमें श्रेष्ठतम हैं। भगवान् शंकरके जटाजूटमें मुक्तामालकी भाँति सुशोभित होनेवाली वे गंगा भारतवर्षमें तपस्वीजनोंकी तपस्याको शीघ्र सफल करती रहती हैं। उनका जल चन्द्रमा, दुग्ध और श्वेत कमलके समान धवल है और वे शुद्ध सत्त्वरूपिणी हैं। वे निर्मल, निरहंकार, साध्वी और नारायणप्रिया हैं॥ ६२—६४॥

विष्णुवल्लभा तुलसी भी भगवतीकी प्रधानांशस्वरूपा हैं। वे सती सदा भगवान् विष्णुके चरणपर विराजती हैं और उनकी आभूषणरूपा हैं। हे मुने! उनसे तप, संकल्प और पूजादिके सभी सत्कर्मोंका सम्पादन होता है, वे सभी पुष्पोंकी सारभूता हैं तथा सदैव पवित्र एवं पुण्यप्रदा हैं॥ ६५-६६॥

वे अपने दर्शन एवं स्पर्शसे शीघ्र ही मोक्षपद देनेवाली हैं। कलिके पापरूप शुष्क ईंधनको जलानेके

लिये वे अग्निस्वरूपा हैं। जिनके चरणकमलके संस्पर्शसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है और तीर्थ भी जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे स्वयंको पवित्र करनेके लिये कामना करते हैं॥ ६७-६८॥

जिनके बिना सम्पूर्ण जगत्‌में सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। जो मुमुक्षुजनोंको मोक्ष देनेवाली हैं, कामिनी हैं और सब प्रकारके भोग प्रदान करनेवाली हैं। कल्पवृक्षस्वरूपा जो परदेवता भारतीयोंको प्रसन्न करनेके लिये भारतवर्षमें वृक्षरूपमें प्रादुर्भूत हुईं॥ ६९—७०॥

कश्यपकी पुत्री मनसादेवी भी शक्तिके प्रधान अंशसे प्रकट हुई हैं। वे भगवान् शंकरकी प्रिय शिष्या हैं तथा अत्यन्त ज्ञानविशारद हैं। नागराज अनन्तकी बहन, नागोंसे पूजित नागमाता, नागोंपर शासन करनेवाली, सुन्दरी तथा नागवाहिनी हैं। वे बड़े-बड़े नागगणोंसे समन्वित, नागरूपी आभूषणसे भूषित, नागराजोंसे वन्दित, सिद्धा, योगिनी तथा नागोंपर शयन करनेवाली हैं॥ ७१—७३॥

वे भगवान् विष्णुकी परम भक्त हैं, वे विष्णुपूजामें लगी रहती हैं और विष्णुरूपा हैं। वे तपरूपिणी हैं, तपस्वियोंको उनके तपका फल प्रदान करती हैं और तपस्विनी हैं। दिव्य तीन लाख वर्षोंतक भगवान् श्रीहरिकी तपस्यामें निरत रहकर वे भारतवर्षके तपस्वियों तथा तपस्विनियोंमें पूज्य हुईं॥ ७४-७५॥

सभी मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी मनसा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। ब्रह्मध्यानमें सदा निरत वे परमा ब्रह्मस्वरूपा ही हैं। वे पतिव्रता, श्रीकृष्णके अंशसे प्रकट महामुनि जरत्कारुकी पत्नी और तपस्वियोंमें श्रेष्ठ आस्तीक मुनिकी माता हैं॥ ७६-७७॥

हे नारद! भगवतीकी प्रधान अंशस्वरूपा जो मातृकाओंमें पूज्यतम देवसेना हैं, वे ही षष्ठी नामसे कही गयी हैं॥ ७८॥

वे पुत्र-पौत्र आदि प्रदान करनेवाली, तीनों लोकोंकी जननी तथा पतिव्रता हैं। वे मूलप्रकृतिकी षष्ठांशस्वरूपा हैं, इसलिये षष्ठी कही गयी हैं॥ ७९॥

शिशुओंके जन्मस्थानपर ये योगिनी परम वृद्धारूपमें विराजमान रहती हैं। समस्त जगत्‌में बारह महीने सदा इनकी पूजा होती रहती है। सूतिकागृहमें बालकके जन्मके छठे दिन तथा इक्कीसवें दिन उनकी पूजा कल्याणकारिणी होती है॥ ८०-८१॥

ये षष्ठीमाता मुनियोंसे वन्दित, नित्य कामना पूर्ण करनेवाली, दयारूपा एवं सदा रक्षा करनेवाली पराशक्ति हैं। जल, थल, आकाश और गृहमें भी बालकोंके कल्याणमें सदा निरत रहती हैं॥ ८२१/२॥

मंगलचण्डिका भी देवी मूलप्रकृतिकी प्रधान अंशस्वरूपा हैं। वे प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं और सदा सभी प्रकारके मंगल प्रदान करनेवाली हैं। उत्पत्तिके समय वे मंगलरूपा तथा संहारके समय कोपरूपिणी हैं। इसीलिये विद्वानोंने इन्हें मंगलचण्डी कहा है। प्रत्येक मंगलवारको सर्वत्र इनकी पूजा होती है। ये पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वर्य, यश और मंगल प्रदान करती हैं। प्रसन्न होकर ये सभी नारियोंकी सभी कामनाएँ पूर्ण करनेवाली हैं। वे महेश्वरी रुष्ट होनेपर क्षणमात्रमें समस्त सृष्टिका संहार करनेमें सक्षम हैं॥ ८३—८६१/२॥

पराशक्तिके प्रधान अंशरूपसे कमललोचना भगवती कालीका प्राकट्य हुआ है। वे शुभ-निशुम्भके साथ युद्धकालमें जगदम्बा दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई हैं एवं दुर्गाके अर्धांशसे उत्पन्न होकर उन्हींके समान गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। वे करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, पुष्ट तथा उज्ज्वल विग्रहवाली हैं। वे बलशालिनी पराशक्ति सभी शक्तियोंमें प्रधान रूपसे विराजमान हैं। परम योगरूपिणी वे देवी सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्रदान करती हैं। वे प्रभु श्रीकृष्णकी अनुगामिनी हैं और अपने तेज, पराक्रम तथा गुणोंमें श्रीकृष्णके समान ही हैं॥ ८७—९०॥

श्रीकृष्णके चिन्तनमें संलग्न रहनेके कारण वे सनातनी कृष्णवर्णा हो गयीं। अपने निःश्वासमात्रसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें वे समर्थ हैं। फिर भी लोकशिक्षणके लिये लीलापूर्वक उन्होंने दैत्योंसे युद्ध किया। पूजासे प्रसन्न होकर वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें समर्थ हैं; ब्रह्मा आदि देवता, मुनि, मनुगण तथा सभी

मनुष्य उनकी उपासना करते हैं॥ ९१-९२१/२ ॥

भगवती प्रकृतिके प्रधान अंशरूपसे वे वसुन्धरादेवी प्रकट हुई हैं। वे सभी प्राणी-पदार्थोंकी आधाररूपा हैं तथा सभी प्रकारके शस्योंके स्वरूपवाली कही गयी हैं। वे रत्नोंकी निधि हैं। रत्नगर्भा तथा समस्त समुद्रोंकी आश्रयरूपा हैं। वे राजा-प्रजा सभीसे सदा पूजित तथा वन्दित हैं, वे सभीकी आश्रय तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाली हैं, जिनके बिना चराचर सम्पूर्ण जगत् निराधार हो जाता है॥ ९३—९५१/२ ॥

हे मुनीश्वर! अब आप देवी प्रकृतिकी जो-जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनिये। जिस-जिस देवताकी जो भार्या हैं, उन सबका मैं वर्णन करता हूँ। सभी लोकोंमें पूज्या स्वाहादेवी अग्निदेवकी भार्या हैं, जिनके बिना देवगण यज्ञभाग प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं हो पाते। यज्ञदेवकी पत्नी दीक्षा तथा दक्षिणा हैं, जो सर्वत्र पूजित हैं तथा जिनके बिना लोकोंमें किये गये सभी कर्म निष्फल रहते हैं। पितृदेवोंकी पत्नी स्वधादेवी हैं। ये मुनियों, मनुओं तथा मनुष्योंसे पूजित हैं; जिनके बिना किया गया कोई भी पितृकर्म निष्फल रहता है। वायुदेवकी पत्नी स्वस्तिदेवी हैं, प्रत्येक लोकमें उनकी पूजा होती है। उनके बिना किया गया आदान-प्रदान निष्फल रहता है॥ ९६—१००१/२ ॥

भगवान् गणपतिकी पत्नी पुष्टिदेवी हैं, जो समस्त संसारमें पूजित हैं और जिनके बिना नर-नारी क्षीण शरीरवाले रहते हैं। भगवान् अनन्तकी पत्नी तुष्टि हैं, वे सभीसे वन्दित तथा पूजित हैं, जिनके बिना संसारमें सभी लोग सन्तुष्ट नहीं रहते। ईशानदेवकी पत्नी सम्पत्तिदेवी हैं, जिनकी सभी देव-मानव पूजा करते हैं तथा जिनके बिना संसारमें सभी लोग दरिद्र रहते हैं॥ १०१—१०३१/२ ॥

धृतिदेवी भगवान् कपिलकी पत्नी हैं, वे सभीके द्वारा सर्वत्र पूजित हैं, संसारमें जिनके बिना सभी लोग धैर्यहीन रहते हैं। सतीदेवी सत्यदेवकी पत्नी हैं जिन्हें सभी चाहते हैं; वे मुक्तलोगोंके द्वारा पूजित हैं और जगत्प्रिय हैं। इनके बिना लोग बन्धुत्वविहीन हो जाते हैं। दयादेवी मोहकी पत्नी हैं, वे साध्वी सबसे पूजित और जगत्प्रिय हैं। जिनके बिना सभी लोग सर्वत्र निष्फल हो जाते हैं। प्रतिष्ठादेवी पुण्यदेवकी पत्नी हैं। वे पुण्यदायिनी तथा सर्वत्र पूजित हैं, जिनके अभावमें सभी प्राणी जीवित रहते भी मृतकतुल्य हो जाते हैं। कीर्तिदेवी सुकर्मदेवकी पत्नी कही गयी हैं, जिनकी पूजा सौभाग्यशाली लोग करते हैं और जिनके बिना सम्पूर्ण संसार यशहीन होकर मृतकतुल्य हो जाता है॥ १०४—१०८१/२ ॥

उद्योगदेवकी पत्नी क्रियादेवी हैं, जो सभीके द्वारा पूजित तथा मान्य हैं, हे नारद! इनके बिना सम्पूर्ण जगत् विधिहीन हो जाता है। अधर्मकी पत्नी मिथ्यादेवी हैं, जिन्हें सभी धूर्तजन पूजते हैं तथा जिनके बिना विधिनिर्मित धूर्त-समुदायरूप जगत् नष्ट हो जाता है। सत्ययुगमें ये मिथ्यादेवी तिरोहित रहती हैं, त्रेतायुगमें सूक्ष्मरूपमें रहती हैं, द्वापरमें आधे शरीरवाली होकर रहती हैं; किंतु कलियुगमें महाप्रगल्भ होकर ये बलपूर्वक सर्वत्र व्याप्त रहती हैं और अपने भाई कपटके साथ घर-घर घूमती-फिरती हैं॥ १०९—११२१/२ ॥

हे नारद! सुशीलकी शान्ति और लज्जा नामक दो सर्वपूजित भार्याएँ हैं, जिनके बिना यह समस्त जगत् उन्मत्तकी भाँति हो जाता है। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—बुद्धि, मेधा और धृति; जिनके बिना सारा संसार मूर्ख तथा मत्त बना रहता है। धर्मकी पत्नी मूर्ति अत्यन्त मनोहर कान्तिवाली हैं, जिनके बिना परमात्मा तथा विश्वसमूह भी निराधार रहते हैं। ये सर्वत्र शोभारूपा, लक्ष्मीरूपिणी, मूर्तिमयी, साध्वी, श्रीरूपा, मूर्तिरूपा, सभीकी मान्य, धन्य और अतिपूज्य हैं॥ ११३—११६१/२ ॥

रुद्रकी पत्नी कालाग्नि हैं। वे ही सिद्धयोगिनी तथा निद्रारूपा हैं, जिनके संयोगसे रात्रिमें सभी लोग निद्रासे व्याप्त हो जाते हैं। कालकी तीन पत्नियाँ हैं—सन्ध्या, रात्रि और दिवा। जिनके बिना विधाता भी कालकी गणना नहीं कर सकते। लोभकी दो पत्नियाँ क्षुधा और पिपासा हैं, ये धन्य, मान्य और पूजित हैं। जिनसे व्याप्त यह सम्पूर्ण जगत् नित्य ही चिन्ताग्रस्त रहता है। तेजकी दो पत्नियाँ प्रभा और दाहिका हैं, जिनके बिना जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्मा सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते॥ ११७—१२०१/२ ॥

कालकी दो पुत्रियाँ मृत्यु और जरा हैं, जो ज्वरकी प्रिय पत्नियाँ हैं। जिनके द्वारा सृष्टि-विधानके अन्तर्गत ब्रह्माका बनाया यह संसार नष्ट होता रहता है। निद्राकी एक पुत्री तन्द्रा और दूसरी प्रीति—ये दोनों सुखकी पत्नियाँ हैं। जिनसे हे नारद! ब्रह्माके द्वारा निर्मित यह सारा जगत् व्याप्त है। वैराग्यकी दो पत्नियाँ श्रद्धा और भक्ति सभीकी पूज्या हैं, जिनसे हे मुने! यह जगत् निरन्तर जीवन्मुक्तके समान हो जाता है॥ १२१—१२३१/२॥

देवताओंकी माता अदिति हैं और गायोंकी उत्पत्ति सुरभिसे हुई है। दैत्योंकी माता दिति, कद्रू, विनता और दनु—सृष्टिनिर्माणमें इनका उपयोग हुआ है। ये सभी प्रकृतिदेवीकी कलाएँ कही गयी हैं॥ १२४-१२५॥

प्रकृतिदेवीकी अन्य बहुत-सी कलाएँ हैं, उनमेंसे कुछके विषयमें मुझसे सुनिये। चन्द्रमाकी पत्नी रोहिणी, सूर्यकी पत्नी संज्ञा, मनुकी पत्नी शतरूपा, इन्द्रकी पत्नी शची, बृहस्पतिकी पत्नी तारा, वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती, गौतमऋषिकी पत्नी अहल्या और अत्रिकी भार्या अनसूया, कर्दमकी पत्नी देवहूति तथा दक्षकी भार्या प्रसूति हैं॥ १२६—१२८॥

पितरोंकी मानसी कन्या मेनका हैं, जो अम्बिकाकी माता हैं। लोपामुद्रा, कुन्ती, कुबेरपत्नी, वरुणपत्नी, बलिकी पत्नी विन्ध्यावली, कान्ता, दमयन्ती, यशोदा, देवकी, गान्धारी, द्रौपदी, हरिश्चन्द्रकी सत्यवादिनी तथा प्रिय भार्या शैव्या, वृषभानुप्रिया राधाकी माता तथा कुलका उद्वहन करनेवाली पतिव्रता वृषभानुभार्या, मन्दोदरी, कौसल्या, सुभद्रा, कौरव्री, रेवती, सत्यभामा, कालिन्दी, लक्ष्मणा, जाम्बवती, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, रुक्मिणी, साक्षात् लक्ष्मी कही जानेवाली सीता, काली, व्यासमाता महासती योजनगन्धा, बाणपुत्री उषा, उसकी सखी चित्रलेखा, प्रभावती, भानुमती, साध्वी मायावती, परशुरामकी माता रेणुका, बलरामकी माता रोहिणी और श्रीकृष्णकी बहन दुर्गारूपी एकनन्दा—ये सब प्रकृतिदेवीकी कलारूपा अनेक शक्तियाँ भारतवर्षमें विख्यात हैं॥ १२९—१३६॥

जो-जो ग्रामदेवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। देवीके कलांशका अंश लेकर ही प्रत्येक लोकमें स्त्रियाँ उत्पन्न हुई हैं। इसलिये किसी नारीके अपमानसे प्रकृतिका ही अपमान माना जाता है। जिसने वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे पति-पुत्रवती साध्वी ब्राह्मणीका पूजन किया; उसने मानो प्रकृतिदेवीका ही पूजन किया है। इसी प्रकार जिसने आठ वर्षकी विप्रकन्याका वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे पूजन सम्पन्न कर लिया, उसने स्वयं प्रकृतिदेवीकी पूजा कर ली। उत्तम, मध्यम अथवा अधम—सभी स्त्रियाँ प्रकृतिसे ही उत्पन्न होती हैं॥ १३७—१४०॥

प्रकृतिदेवीके सत्त्वांशसे उत्पन्न स्त्रियोंको उत्तम जानना चाहिये। वे सुशील एवं पतिव्रता होती हैं। उनके राजस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ मध्यम कही गयी हैं, वे प्रायः भोगप्रिय होती हैं। वे सुख-भोगादिके वशीभूत होती हैं तथा अपने ही कार्यमें सदा तत्पर रहती हैं। अधम स्त्रियाँ प्रकृतिके तामस अंशसे उत्पन्न हैं, उनका कुल अज्ञात रहता है। वे कलहप्रिय, कटुभाषिणी, धूर्त, स्वच्छन्द विचरण करनेवाली तथा कुलका नाश करनेवाली होती हैं। जो पृथ्वीपर कुलटा, स्वर्गमें अप्सराएँ तथा अन्य पुंश्चली नारियाँ हैं; वे प्रकृतिके तामसांशसे प्रकट कही गयी हैं। इस प्रकार मैंने प्रकृतिदेवीके सभी रूपोंका वर्णन कर दिया॥ १४१—१४४॥

भगवती प्रकृतिके वे सभी रूप पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पूजित हैं, सर्वप्रथम राजा सुरथने दुर्गतिका नाश करनेवाली दुर्गादेवीका पूजन किया था। तत्पश्चात् रावणका वध करनेकी इच्छासे श्रीरामचन्द्रने उनका पूजन किया था। तभीसे जगज्जननी दुर्गा तीनों लोकोंमें पूजित हैं॥ १४५-१४६॥

जो प्रारम्भमें दक्षकन्या सतीके रूपमें प्रकट हुईं और दैत्य-दानवोंका संहार करनेके उपरान्त यज्ञमें पतिनिन्दाके कारण देहत्याग करके हिमवान्‌की भार्यासे उत्पन्न हुईं और उन्होंने पुनः पशुपति भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया। हे नारद! बादमें स्वयं श्रीकृष्णरूप गणेश तथा विष्णुकी कलाओंसे युक्त स्कन्द—ये उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए॥ १४७—१४८१/२॥

राजा मंगलने सर्वप्रथम लक्ष्मीजीकी पूजा की थी। उसके बाद तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मनुष्योंने उनकी

पूजा की। राजा अश्वपतिने सावित्रीदेवीकी सर्वप्रथम पूजा की, तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें देवता तथा श्रेष्ठ मुनियोंसे वे पूजित हुईं। ब्रह्माने सर्वप्रथम भगवती सरस्वतीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् वे तीनों लोकोंमें देवताओं तथा श्रेष्ठ मुनियोंद्वारा पूजित हुईं। कार्तिकपूर्णिमाको गोलोकके रासमण्डलमें सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णने गोप-गोपियों, बालक-बालिकाओं, सुरभि तथा गायोंके साथ राधारानीका पूजन किया था। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें परमात्माकी आज्ञासे ब्रह्मादि देवों तथा मुनियोंद्वारा पुष्प, धूपादिसे भक्तिपूर्वक परम प्रसन्नताके साथ वे निरन्तर पूजित तथा वन्दित होने लगीं॥ १४९—१५४१/२॥

भगवान् शंकरके उपदेशसे पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें राजा सुयज्ञके द्वारा सर्वप्रथम इन भगवतीका पूजन किया गया। तदनन्तर परमात्माकी आज्ञासे तीनों लोकोंमें पुष्प, धूप आदिसे मुनियोंके द्वारा ये निरन्तर भक्तिपूर्वक पूजित होने लगीं॥ १५५-१५६१/२॥

भारतवर्षमें प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ प्रकट हुईं, वे सभी पूजित हैं। हे मुने! प्रत्येक ग्राम और नगरमें वे ग्रामदेवियाँ पूजित हैं। इस प्रकार मैंने आगमोंके अनुसार प्रकृतिदेवीका सम्पूर्ण शुभ चरित्र तथा स्वरूप आपको बता दिया; अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १५७—१५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'प्रकृतिचरित्रवर्णन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवताओं एवं देवियोंका वर्णन

नारदजी बोले—हे प्रभो! देवियोंका सम्पूर्ण चरित्र मैंने संक्षेपमें सुन लिया, अब सम्यक् प्रकारसे बोध प्राप्त करनेके लिये विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सृष्टिप्रक्रियामें सृष्टिकी आद्यादेवीका प्राकट्य कैसे हुआ? हे वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ! वे प्रकृति पुनः पाँच रूपोंमें कैसे आविर्भूत हुईं; यह बतायें। इस संसारमें उन त्रिगुणात्मिका प्रकृतिके कलांशोंसे जो देवियाँ उत्पन्न हुईं, उनका चरित्र मैं अब विस्तारसे सुनना चाहता हूँ॥ २-३॥

हे विज्ञ! उनके जन्मकी कथा, उनके पूजा-ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य और मंगलमय शौर्यका वर्णन कीजिये॥ ४॥

श्रीनारायण बोले—जैसे आत्मा नित्य है, आकाश नित्य है, काल नित्य है, दिशाएँ नित्य हैं, ब्रह्माण्डगोलक नित्य है, गोलोक नित्य है तथा उससे थोड़ा नीचे स्थित वैकुण्ठ नित्य है; उसी प्रकार ब्रह्मकी सनातनी लीलाशक्ति प्रकृति भी नित्य है॥ ५-६॥

जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति, चन्द्रमा तथा कमलमें शोभा, सूर्यमें दीप्ति सदा विद्यमान रहती और उससे अलग नहीं होती है; उसी प्रकार परमात्मामें प्रकृति विद्यमान रहती है॥ ७॥

जैसे बिना स्वर्णके स्वर्णकार कुण्डलादि आभूषणोंका निर्माण करनेमें असमर्थ होता है और बिना मिट्टीके कुम्हार घड़ेका निर्माण करनेमें सक्षम नहीं होता, उसी प्रकार प्रकृतिके सहयोगके बिना परमात्मा सृष्टिकी रचनामें समर्थ नहीं होता। वे प्रकृति ही सभी शक्तियोंकी अधिष्ठात्री हैं तथा उनसे ही परमात्मा सदा शक्तिमान् रहता है॥ ८-९॥

'श' ऐश्वर्यका तथा 'क्ति' पराक्रमका वाचक है। जो इनके स्वरूपवाली है तथा इन दोनोंको प्रदान करनेवाली है; उस देवीको शक्ति कहा गया है॥ १०॥

ज्ञान, समृद्धि, सम्पत्ति, यश और बलको 'भग' कहते हैं। उन गुणोंसे सदा सम्पन्न रहनेके कारण ही शक्तिको भगवती कहते हैं तथा वे सदा भगरूपा हैं। उनसे सम्बद्ध होनेके कारण ही परमात्मा भी भगवान् कहे जाते हैं। वे परमेश्वर अपनी इच्छाशक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण साकार और निराकार दोनों रूपोंसे अवस्थित रहते हैं॥ ११-१२॥

उस तेजस्वरूप निराकारका योगीजन सदा ध्यान करते हैं तथा उसे परमानन्द, परब्रह्म तथा ईश्वर कहते हैं॥ १३॥

अदृश्य, सबको देखनेवाले, सर्वज्ञ, सबके कारणस्वरूप, सब कुछ देनेवाले, सर्वरूप उस परब्रह्मको वैष्णवजन नहीं स्वीकार करते॥ १४॥

वे कहते हैं कि तेजस्वी सत्ताके बिना किसका तेज प्रकाशित हो सकता है? अतः तेजोमण्डलके मध्य अवश्य ही तेजस्वी परब्रह्म विराजते हैं॥ १५॥

वे स्वेच्छामय, सर्वरूप और सभी कारणोंके भी कारण हैं। वे अत्यन्त सुन्दर तथा मनोहर रूप धारण करनेवाले हैं, वे किशोर अवस्थावाले, शान्तस्वभाव, सभी मनोहर अंगोंवाले तथा परात्पर हैं। वे नवीन मेघकी कान्तिके एकमात्र धामस्वरूप श्याम विग्रहवाले हैं, उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नमें खिले कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले हैं और उनकी मनोरम दन्तपंक्ति मुक्ताकी शोभाको भी तुच्छ कर देनेवाली है॥ १६—१८॥

उन्होंने मयूरपिच्छका मुकुट धारण किया है, उनके गलेमें मालतीकी माला सुशोभित हो रही है। उनकी सुन्दर नासिका है, उनका मुखमण्डल मुसकानयुक्त तथा सुन्दर है और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। वे प्रज्वलित अग्निके सदृश विशुद्ध तथा देदीप्यमान पीताम्बरसे सुशोभित हो रहे हैं। उनकी दो भुजाएँ हैं, उन्होंने मुरलीको हाथमें धारण किया है, वे रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत हैं। वे सर्वाधार, सर्वेश, सर्वशक्तिसे युक्त, विभु, सभी प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सब प्रकारसे स्वतन्त्र तथा सर्वमंगलरूप हैं॥ १९—२१॥

वे परिपूर्णतम सिद्धावस्थाको प्राप्त, सिद्धोंके स्वामी तथा सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयको दूर करते हैं, ऐसे उन सनातन परमेश्वरका वैष्णवजन सदा ध्यान करते रहते हैं॥ २२$^{१}/_{२}$॥

ब्रह्माजीकी आयु जिनके एक निमेषकी तुलनामें है, उन परमात्मा परब्रह्मको 'कृष्ण' नामसे पुकारा जाता है। 'कृष्' उनकी भक्ति तथा 'न' उनके दास्यके वाचक शब्द हैं। इस प्रकार जो भक्ति और दास्य प्रदान करते हैं, उन्हें कृष्ण कहा गया है। अथवा 'कृष्' सर्वार्थका तथा 'न'-कार बीजका वाचक है, अतः श्रीकृष्ण ही आदिमें सर्वप्रपंचके स्रष्टा तथा सृष्टिके एकमात्र बीजस्वरूप हैं। उनमें जब सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न हुई, तब उनके अंशभूत कालके द्वारा प्रेरित होकर स्वेच्छामय वे प्रभु अपनी इच्छासे दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम भागांश स्त्रीरूप तथा दक्षिणांश पुरुषरूप कहा गया है॥ २३—२७॥

उन [वामभागोत्पन्न] कामकी आधारस्वरूपाको उन सनातन महाकामेश्वरने देखा। उनका रूप अतीव मनोहर था। वे सुन्दर कमलकी शोभा धारण किये हुए थीं। उन परादेवीका नितम्बयुगल चन्द्रबिम्बको तिरस्कृत कर रहा था और अपने जघनप्रदेशसे सुन्दर कदलीस्तम्भको निन्दित करते हुए वे मनोहर प्रतीत हो रही थीं। शोभामय श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगलसे वे मनोरम प्रतीत हो रही थीं। वे मस्तकपर पुष्पोंकी सुन्दर माला धारण किये थीं, वे सुन्दर वलियोंसे युक्त थीं, उनका कटिप्रदेश क्षीण था, वे अति मनोहर थीं, वे अत्यन्त सुन्दर, शान्त मुसकान और कटाक्षसे सुशोभित थीं। उन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा था और वे रत्नोंके आभूषणोंसे सुशोभित थीं॥ २८—३१॥

वे अपने चक्षुरूपी चकोरोंसे करोड़ों चन्द्रमाओंको तिरस्कृत करनेवाले श्रीकृष्णके मुखमण्डलका प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर पान कर रही थीं। वे देवी ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिन्दीके साथ-साथ नीचे चन्दनकी बिन्दी तथा ललाटके मध्यमें सिन्दूरकी बिन्दी धारण किये थीं। अपने प्रियतममें अनुरक्त चित्तवाली वे देवी मालतीकी मालासे भूषित घुँघराले केशसे शोभा पा रही थीं तथा श्रेष्ठ रत्नोंकी माला धारण किये हुए थीं। कोटि चन्द्रकी प्रभाको लज्जित करनेवाली शोभा धारण किये वे अपनी चालसे राजहंस और गजके गर्वको तिरस्कृत कर रही थीं॥ ३२—३५॥

उन्हें देखकर रासेश्वर तथा परम रसिक श्रीकृष्णने उनके साथ रासमण्डलमें उल्लासपूर्वक रासलीला की। ब्रह्माके दिव्य दिवसकी अवधितक नाना प्रकारकी शृंगारचेष्टाओंसे युक्त उन्होंने मूर्तिमान् शृंगाररसके समान सुखपूर्वक क्रीड़ा की। तत्पश्चात् थके हुए उन जगत्पिताने नित्यानन्दमय शुभ मुहूर्तमें देवीके क्षेत्रमें तेजका आधान किया। हे सुव्रत! क्रीडाके अन्तमें हरिके तेजसे परिश्रान्त उन देवीके शरीरसे स्वेद निकलने लगा और महान् परिश्रमसे खिन्न उनका श्वास भी वेगसे चलने लगा। तब वह सम्पूर्ण स्वेद विश्वगोलक बन गया और वह निःश्वास वायु जगत्में सब प्राणियोंके जीवनका आधार बन गया॥ ३६—४१॥

उस मूर्तिमान् वायुके वामांगसे उसकी प्राणप्रिय पत्नी

प्रकट हुईं, पुन: उनके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए जो जीवोंके प्राणके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान—ये पाँच वायु और उनके पाँच अधोगामी प्राणरूप पुत्र भी उत्पन्न हुए॥ ४२-४३॥

स्वेदके रूपमें निकले जलके अधिष्ठाता महान् वरुणदेव हुए। उनके वामांगसे उनकी पत्नी वरुणानी प्रकट हुईं। श्रीकृष्णकी उन चिन्मयी शक्तिने उनके गर्भको धारण किया। वे सौ मन्वन्तरोंतक ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान बनी रहीं। वे श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी हैं, कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। वे कृष्णकी सहचरी हैं और सदा उनके वक्ष:स्थलपर विराजमान रहती हैं। सौ मन्वन्तर बीतनेपर उन सुन्दरीने स्वर्णकी कान्तिवाले, विश्वके आधार तथा निधानस्वरूप श्रेष्ठ बालकको जन्म दिया॥ ४४—४७॥

उस बालकको देखकर उन देवीका हृदय अत्यन्त दु:खित हो गया और उन्होंने उस बालकको कोपपूर्वक उस ब्रह्माण्डगोलकमें छोड़ दिया। बालकके उस त्यागको देखकर देवेश्वर श्रीकृष्ण हाहाकार करने लगे और उन्होंने उसी क्षण उन देवीको समयानुसार शाप दे दिया—हे कोपशीले! हे निष्ठुरे! तुमने पुत्रको त्याग दिया है, इस कारण आजसे तुम निश्चित ही सन्तानहीन रहोगी। तुम्हारे अंशसे जो-जो देवपत्नियाँ प्रकट होंगी, वे भी तुम्हारी तरह सन्तानरहित तथा नित्ययौवना रहेंगी॥ ४८—५१॥



इसके बाद देवीके जिह्वाग्रसे सहसा ही एक सुन्दर गौरवर्ण कन्या प्रकट हुई। उन्होंने श्वेत वस्त्र धारण कर रखा था तथा वे हाथमें वीणा-पुस्तक लिये हुए थीं। सभी शास्त्रोंकी अधिष्ठात्री वे देवी रत्नोंके आभूषणसे सुशोभित थीं। कालान्तरमें वे भी द्विधारूपसे विभक्त हो गयीं। उनके वाम अर्धांगसे कमला तथा दक्षिण अर्धांगसे राधिका प्रकट हुईं॥ ५२—५४॥

इसी बीच श्रीकृष्ण भी द्विधारूपसे प्रकट हो गये। उनके दक्षिणार्धसे द्विभुज रूप प्रकट हुआ तथा वामार्धसे चतुर्भुज रूप प्रकट हुआ। तब श्रीकृष्णने उन सरस्वती-देवीसे कहा कि तुम इस (चतुर्भुज) विष्णुकी कामिनी बनो। ये मानिनी राधा इस द्विभुजके साथ यहीं रहेंगी। तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार प्रसन्न होकर उन्होंने लक्ष्मीको नारायणको समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् वे जगत्पति उन दोनोंके साथ वैकुण्ठको चले गये॥ ५५—५७॥

राधाके अंशसे प्रकट वे दोनों लक्ष्मी तथा सरस्वती नि:सन्तान ही रहीं। भगवान् नारायणके अंगसे चतुर्भुज पार्षद प्रकट हुए। वे तेज, वय, रूप और गुणोंमें नारायणके समान ही थे। उसी प्रकार लक्ष्मीके अंगसे उनके ही समान करोड़ों दासियाँ प्रकट हो गयीं॥ ५८-५९॥

हे मुने! गोलोकनाथ श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे असंख्य



गोपगण प्रकट हुए; जो वय, तेज, रूप, गुण, बल तथा पराक्रममें उन्हींके समान थे। वे सभी परमेश्वर श्रीकृष्णके प्राणोंके समान प्रिय पार्षद बन गये॥ ६०-६१॥

श्रीराधाके अंगोंके रोमकूपोंसे अनेक गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। वे सब राधाके ही समान थीं तथा उनकी

प्रियवादिनी दासियोंके रूपमें रहती थीं। वे सभी रत्नाभरणोंसे



भूषित और सदा स्थिरयौवना थीं, किंतु परमात्माके शापके कारण वे सभी सदा सन्तानहीन रहीं। हे विप्र! इसी बीच श्रीकृष्णकी उपासना करनेवाली सनातनी विष्णुमाया दुर्गा सहसा प्रकट हुईं। वे देवी सर्वशक्तिमती, नारायणी तथा ईशाना हैं और परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं॥ ६२—६५॥

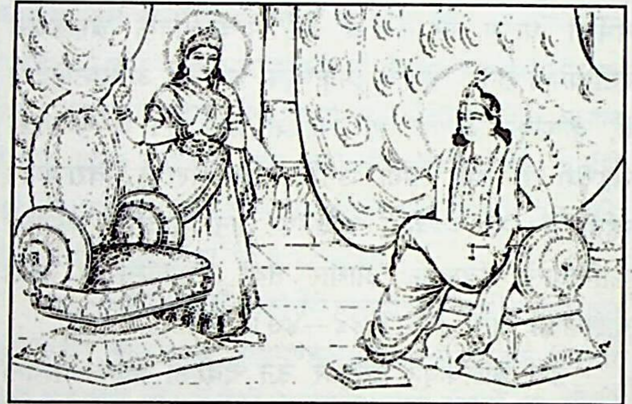
सभी शक्तियोंकी बीजरूपा वे मूलप्रकृति ही ईश्वरी, परिपूर्णतमा तथा तेजपूर्ण त्रिगुणात्मिका हैं। वे तपाये हुए स्वर्णकी कान्तिवाली, कोटि सूर्योंकी आभा धारण करनेवाली, किंचित् हास्यसे युक्त प्रसन्नवदनवाली तथा सहस्र भुजाओंसे शोभायमान हैं। वे त्रिलोचना भगवती नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र-समूहोंको धारण करती हैं, अग्निसदृश विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए हैं और रत्नाभरणसे भूषित हैं॥ ६६—६८॥

उन्हींकी अंशांशकलासे सभी नारियाँ प्रकट हुई हैं। उनकी मायासे विश्वके सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं। वे गृहस्थ सकामजनोंको सब प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली, वैष्णवजनोंको वैष्णवी कृष्णभक्ति देनेवाली, मोक्षार्थी-जनोंको मोक्ष देनेवाली तथा सुख चाहनेवालोंको सुख प्रदान करनेवाली हैं॥ ६९-७०१/२॥

वे देवी स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी, गृहोंमें गृहलक्ष्मी, तपस्वियोंमें तप तथा राजाओंमें राज्यलक्ष्मीके रूपमें स्थित हैं। वे अग्निमें दाहिका शक्ति, सूर्यमें प्रभारूप, चन्द्रमा तथा कमलोंमें शोभारूपसे और परमात्मा श्रीकृष्णमें सर्वशक्तिरूपसे विद्यमान हैं॥ ७१—७३॥

हे नारद! जिनसे परमात्मा शक्तिसम्पन्न होता है तथा जगत् भी शक्ति प्राप्त करता है और जिनके बिना सारा चराचर विश्व जीते हुए भी मृतकतुल्य हो जाता है, जो सनातनी संसाररूपी बीजरूपसे वर्तमान हैं, वे ही समस्त सृष्टिकी स्थिति, वृद्धि और फलरूपसे स्थित हैं॥ ७४-७५॥

वे ही भूख-प्यास, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति तथा कान्तिरूपसे सर्वत्र विराजती हैं। सर्वेश्वर प्रभुकी स्तुति करके वे उनके समक्ष



स्थित हो गयीं। राधिकाके ईश्वर श्रीकृष्णने उन्हें रत्नसिंहासन प्रदान किया॥ ७६-७७॥

हे महामुने! इसी समय वहाँ सपत्नीक ब्रह्माजी पद्मनाभ भगवान्‌के नाभिकमलसे प्रकट हुए। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा परम तपस्वी वे ब्रह्मा कमण्डलु धारण किये हुए थे। देदीप्यमान वे ब्रह्मा चारों मुखोंसे श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे॥ ७८-७९॥

सैकड़ों चन्द्रमाके समान कान्तिवाली, अग्निके समान चमकीले वस्त्रोंको धारण किये और रत्नाभरणोंसे भूषित प्रकट हुईं वे सुन्दरी सबके कारणभूत परमात्माकी स्तुति करके अपने स्वामी श्रीकृष्णके साथ रमणीय रत्नसिंहासनपर उनके समक्ष प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं॥ ८०-८१॥

उसी समय वे श्रीकृष्ण दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनका वाम अर्धांग महादेवके रूपमें परिणत हो गया और दक्षिण अर्धांग गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण ही बना रह गया। वे महादेव शुद्ध स्फटिकके समान प्रभायुक्त थे, शतकोटि सूर्यकी प्रभासे सम्पन्न थे, त्रिशूल तथा पट्टिश धारण किये हुए थे तथा बाघम्बर पहने हुए थे। वे परमेश्वर तप्त स्वर्णके समान कान्तिवाले थे, वे जटाजूट धारण किये हुए

थे, उनका शरीर भस्मसे विभूषित था, वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण कर रखा था। वे दिगम्बर नीलकण्ठ सर्पोंके आभूषणसे अलंकृत थे। उन्होंने दाहिने हाथमें सुसंस्कृत रत्नमाला धारण कर रखी थी॥ ८२—८५॥

वे पाँचों मुखोंसे सनातन ब्रह्मज्योतिका जप कर रहे थे। उन सत्यस्वरूप, परमात्मा, ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सभी मंगलोंके भी मंगल, जन्म-मृत्यु, जरा-व्याधि-शोक और भयको दूर करनेवाले, कालके काल, श्रेष्ठ श्रीकृष्णकी स्तुति करके मृत्युंजय नामसे विख्यात हुए वे शिव विष्णुके समक्ष रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठ गये॥ ८६—८८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'पंचप्रकृतितद्भर्तृगणोत्पत्तिवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी राधासे प्रकट विराट्रूप बालकका वर्णन

श्रीनारायण बोले—वह बालक जो पहले जलमें छोड़ दिया गया था, ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त जलमें ही पड़ा रहा। उसके बाद वह समय आनेपर अचानक ही दो रूपोंमें विभक्त हो गया॥ १॥

उनमेंसे एक बालक शतकोटि सूर्योंकी आभासे युक्त था; माताके स्तनपानसे रहित वह भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रो रहा था॥ २॥

माता-पितासे परित्यक्त होकर आश्रयहीन उस बालकने जलमें रहते हुए अनन्त ब्रह्माण्डनायक होते हुए भी अनाथकी भाँति ऊपरकी ओर दृष्टि डाली॥ ३॥

जैसे परमाणु सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म होता है, वैसे ही वह स्थूलसे भी स्थूल था। स्थूलसे भी स्थूलतम होनेसे वे देव महाविराट् नामसे प्रसिद्ध हुए। परमात्मा श्रीकृष्णके तेजसे सोलहवें अंशके रूपमें तथा प्रकृतिस्वरूपा राधासे उत्पन्न होनेके कारण यह सभी लोकोंका आधार तथा महाविष्णु कहा गया॥ ४-५॥

उसके प्रत्येक रोमकूपमें अखिल ब्रह्माण्ड स्थित थे, उनकी संख्या श्रीकृष्ण भी बता पानेमें समर्थ नहीं हैं। जैसे पृथिवी आदि लोकोंमें व्याप्त रजकणोंकी संख्या कोई निर्धारित नहीं कर सकता, उसी प्रकार उसके रोमकूपस्थित ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकी संख्या भी निश्चित नहीं है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विद्यमान हैं॥ ६-७½॥

पातालसे ब्रह्मलोकपर्यन्त ब्रह्माण्ड कहा गया है। उसके ऊपर वैकुण्ठलोक है; वह ब्रह्माण्डसे बाहर है। उसके ऊपर पचास करोड़ योजन विस्तारवाला गोलोक है। जैसे श्रीकृष्ण नित्य और सत्यस्वरूप हैं, वैसे ही यह गोलोक भी है॥ ८-९½॥

यह पृथ्वी सात द्वीपोंवाली तथा सात महासागरोंसे समन्वित है। इसमें उनचास उपद्वीप हैं और असंख्य वन तथा पर्वत हैं। इसके ऊपर सात स्वर्गलोक हैं, जिनमें ब्रह्मलोक भी सम्मिलित है। इसके नीचे सात पाताल-लोक भी हैं; यह सब मिलाकर ब्रह्माण्ड कहा जाता है॥ १०-११½॥

पृथ्वीसे ऊपर भूर्लोक, उसके बाद भुवर्लोक, उसके ऊपर स्वर्लोक, तत्पश्चात् जनलोक, फिर तपोलोक और उसके आगे सत्यलोक है। उसके भी ऊपर तप्त स्वर्णकी आभावाला ब्रह्मलोक है। ब्रह्माण्डके बाहर-भीतर स्थित रहनेवाले ये सब कृत्रिम हैं। हे नारद! उस ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर उन सबका विनाश हो जाता है; क्योंकि जलके बुलबुलेकी तरह यह सब लोक-समूह अनित्य है॥ १२—१५॥

गोलोक और वैकुण्ठ सनातन, अकृत्रिम और नित्य बताये गये हैं। महाविष्णुके प्रत्येक रोमकूपमें ब्रह्माण्ड स्थित रहते हैं। इनकी संख्या श्रीकृष्ण भी नहीं जानते, फिर दूसरेकी क्या बात? प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अलग-

अलग ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि विराजमान रहते हैं। हे पुत्र! देवताओंकी संख्या वहाँ तीस करोड़ है। दिगीश्वर, दिक्पाल, ग्रह, नक्षत्र आदि भी ब्रह्माण्डमें विद्यमान रहते हैं। पृथ्वीपर चार वर्णके लोग और उसके नीचे पाताललोकमें नाग रहते हैं; इस प्रकार ब्रह्माण्डमें चराचर प्राणी विद्यमान हैं॥ १६—१८१/२॥

तदनन्तर उस विराट्स्वरूप बालकने बार-बार ऊपरकी ओर देखा; किंतु उस गोलाकार पिण्डमें शून्यके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं था। तब वह चिन्तित हो उठा और भूखसे व्याकुल होकर बार-बार रोने लगा॥ १९-२०॥

चेतनामें आकर जब उसने परमात्मा श्रीकृष्णका ध्यान किया तब उसे सनातन ब्रह्मज्योतिके दर्शन हुए। नवीन मेघके समान श्याम वर्ण, दो भुजाओंवाले, पीताम्बर धारण किये, मुसकानयुक्त, हाथमें मुरली धारण किये, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल पिता परमेश्वरको देखकर वह बालक प्रसन्न होकर हँस पड़ा॥ २१-२२१/२॥



तब वरके अधिदेव प्रभुने उसे यह समयोचित वर प्रदान किया—हे वत्स! तुम मेरे समान ही ज्ञानसम्पन्न, भूख-प्याससे रहित तथा प्रलयपर्यन्त असंख्य ब्रह्माण्डके आश्रय रहो। तुम निष्काम, निर्भय तथा सभीको वर प्रदान करनेवाले हो जाओ; जरा, मृत्यु, रोग, शोक, पीडा आदिसे रहित हो जाओ॥ २३—२५॥

ऐसा कहकर उसके कानमें उन्होंने वेदोंके प्रधान अंगस्वरूप श्रेष्ठ षडक्षर महामन्त्रका तीन बार उच्चारण किया। आदिमें प्रणव तथा इसके बाद दो अक्षरोंवाले कृष्ण शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें स्वाहासे संयुक्त यह परम अभीष्ट मन्त्र (**ॐ कृष्णाय स्वाहा**) सभी विघ्नोंका नाश करनेवाला है॥ २६-२७॥

मन्त्र देकर प्रभुने उसके आहारकी भी व्यवस्था की। हे ब्रह्मपुत्र! उसे सुनिये, मैं आपको बताता हूँ। प्रत्येक लोकमें वैष्णवभक्त जो नैवेद्य अर्पित करता है, उसका सोलहवाँ भाग तो भगवान् विष्णुका होता है तथा पन्द्रह भाग इस विराट् पुरुषके होते हैं॥ २८-२९॥

उन परिपूर्णतम तथा निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णको तो नैवेद्यसे कोई प्रयोजन नहीं है। भक्त उन प्रभुको जो कुछ भी नैवेद्य अर्पित करता है, उसे वे लक्ष्मीनाथ विराट् पुरुष ग्रहण करते हैं॥ ३०-३१॥

उस बालकको श्रेष्ठ मन्त्र प्रदान करके प्रभुने उससे पुनः पूछा कि तुम्हें दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, उसे मुझे बताओ; मैं देता हूँ। श्रीकृष्णकी बात सुनकर बालकरूप उन विराट् प्रभुने कृष्णसे समयोचित बात कही॥ ३२-३३॥

बालक बोला—मेरा वर है आपके चरणकमलमें मेरी अविचल भक्ति आयुपर्यन्त निरन्तर बनी रहे। मेरी आयु चाहे क्षणभरकी ही हो या अत्यन्त दीर्घ। इस लोकमें आपकी भक्तिसे युक्त प्राणी जीवन्मुक्त ही है और जो आपकी भक्तिसे रहित है, वह मूर्ख जीते हुए भी मरेके समान है॥ ३४-३५॥

उस जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य तथा तीर्थसेवनसे क्या लाभ है; जो आपकी भक्तिसे रहित है। कृष्णभक्तिसे रहित मूर्खका जीवन ही व्यर्थ है जो कि वह उस परमात्माको ही नहीं भजता, जिसके कारण वह जीवित है॥ ३६-३७॥

जबतक आत्मा शरीरमें है, तभीतक प्राणी शक्तिसम्पन्न रहता है। उस आत्माके निकल जानेके बाद वे सारी शक्तियाँ स्वतन्त्र होकर चली जाती हैं॥ ३८॥

हे महाभाग! वे आप सबकी आत्मारूप हैं तथा प्रकृतिसे परे हैं। आप स्वेच्छामय, सबके आदि, सनातन तथा ब्रह्मज्योतिस्वरूप हैं॥ ३९॥

हे नारदजी! यह कहकर वह बालक चुप हो गया।

तब श्रीकृष्णने मधुर और कानोंको प्रिय लगनेवाली वाणीमें उसे प्रत्युत्तर दिया॥ ४०॥

श्रीकृष्ण बोले—तुम बहुत कालतक स्थिर भावसे रहो, जैसे मैं हूँ वैसे ही तुम भी हो जाओ। असंख्य ब्रह्माके नष्ट होनेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें तुम अपने अंशसे क्षुद्रविराट्रूपमें स्थित रहोगे। तुम्हारे नाभिकमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्मा विश्वका सृजन करनेवाले होंगे। सृष्टिके संहारकार्यके लिये ब्रह्माके ललाटमें शिवांशसे वे ग्यारह रुद्र प्रकट होंगे। उनमेंसे एक कालाग्नि नामक रुद्र विश्वका संहार करनेवाले होंगे। तत्पश्चात् विश्वका पालन करनेवाले भोक्ता विष्णु भी रुद्रांशसे प्रकट होंगे। मेरे वरके प्रभावसे तुम सदा ही मेरी भक्तिसे युक्त रहोगे। तुम मुझ परम सुन्दर [जगत्पिता] तथा मेरे वक्षःस्थलमें निवास करनेवाली मनोहर जगन्माताको ध्यानके द्वारा निश्चितरूपसे निरन्तर देख सकोगे। हे वत्स! अब तुम यहाँ रहो, मैं अपने लोकको जा रहा हूँ—ऐसा कहकर वे प्रभु श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। अपने लोकमें जाकर उन्होंने सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीको सृष्टि करनेके लिये तथा [संहारकर्ता] शंकरजीको संहार करनेके लिये आदेश दिया॥ ४१—४७॥

श्रीभगवान् बोले—हे वत्स! सृष्टिकी रचना करनेके लिये जाओ। हे विधे! सुनो, महाविराट्के एक रोमकूपमें स्थित क्षुद्रविराट्के नाभिकमलसे प्रकट होओ। हे वत्स! (हे महादेव!) जाओ, अपने अंशसे ब्रह्माके ललाटसे प्रकट होओ। हे महाभाग! स्वयं भी दीर्घ कालतक तपस्या करो॥ ४८-४९॥

हे ब्रह्मपुत्र नारद! ऐसा कहकर जगत्पति श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब उन्हें नमस्कार करके ब्रह्मा तथा कल्याणकारी शिवजी चल पड़े॥ ५०॥

महाविराट्के रोमकूपमें स्थित ब्रह्माण्डगोलकके जलमें वे विराट्पुरुष अपने अंशसे ही अब क्षुद्रविराट् पुरुषके रूपमें प्रकट हुए। श्याम वर्ण, युवा, पीताम्बर धारण किये वे विश्वव्यापी जनार्दन जलकी शय्यापर शयन करते हुए मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे युक्त था॥ ५१-५२॥

उनके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए। उत्पन्न होकर वे ब्रह्मा उस कमलदण्डमें एक लाख युगोंतक चक्कर लगाते रहे। फिर भी वे पद्मयोनि ब्रह्मा पद्मनाभकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलदण्ड तथा कमलनालके अन्ततक नहीं जा सके, [हे नारद!]तब आपके पिता (ब्रह्मा) चिन्तातुर हो गये॥ ५३-५४॥

तब अपने पूर्वस्थानपर आकर उन्होंने श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान किया। तत्पश्चात् ध्यानद्वारा दिव्य चक्षुसे उन्होंने ब्रह्माण्डगोलकमें आप्लुत जलशय्यापर शयन करते हुए उन क्षुद्रविराट् पुरुषको देखा, साथ ही जिनके रोमकूपमें ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुषको तथा उनके भी परम प्रभु श्रीकृष्णको और गोप-गोपियोंसे समन्वित गोलोकको भी देखा। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी स्तुति करके उन्होंने उनसे वर प्राप्त किया और सृष्टिका कार्य प्रारम्भ कर दिया॥ ५५—५७॥

सर्वप्रथम ब्रह्माजीके सनक आदि मानस पुत्र उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् शिवकी सुप्रसिद्ध ग्यारह रुद्रकलाएँ प्रादुर्भूत हुईं। तदनन्तर क्षुद्रविराट्के वामभागसे लोकोंकी रक्षा करनेवाले चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्रकट हुए, वे श्वेतद्वीपमें निवास करने लगे॥ ५८-५९॥

क्षुद्रविराट्के नाभिकमलमें प्रकट हुए ब्रह्माजीने सारी सृष्टि रची। उन्होंने स्वर्ग, मृत्युलोक, पाताल, चराचरसहित तीनों लोकोंकी रचना की। इस प्रकार महाविराट्के सभी रोमकूपोंमें एक-एक ब्रह्माण्डकी सृष्टि हुई। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें क्षुद्रविराट्, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि भी हैं। हे ब्रह्मन्! मैंने श्रीकृष्णका शुभ चरित्र कह दिया, जो सुख और मोक्ष देनेवाला है। हे ब्रह्मन्! आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६०—६२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'ब्रह्माविष्णुमहेश्वरादि देवताओंकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच

नारदजी बोले—हे भगवन्! मैंने आपकी कृपासे यह अमृततुल्य सारी कथा तो सुन ली, अब आप प्रकृतिदेवियोंके पूजनका विस्तृत वर्णन कीजिये॥ १॥

किसने किस देवीकी पूजा की और उसने मृत्युलोकमें किस प्रकार पूजाका विस्तार किया? हे प्रभो! किस मन्त्रसे किस देवीकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किस देवीकी स्तुति की गयी? उन देवियोंके स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव तथा पवित्र चरित्रके विषयमें मुझे बताइये। साथ ही किन-किन देवियोंने किन-किन भक्तोंको वर प्रदान किये, कृपा करके मुझे वह भी बताइये॥ २-३॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मूलप्रकृति सृष्टिकार्यके प्रयोजनार्थ गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा सावित्री—इन पाँच रूपोंवाली कही गयी हैं॥ ४॥

इन देवियोंकी पूजा अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका प्रभाव परम अद्भुत है और इनका चरित्र अमृततुल्य तथा सभी मंगलोंका कारण है॥ ५॥

हे ब्रह्मन्! प्रकृतिकी अंशसंज्ञक तथा कलासंज्ञक जो देवियाँ हैं, उनका सम्पूर्ण पवित्र चरित्र मैं आपको बता रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ ६॥

काली, वसुन्धरा, गंगा, षष्ठी, मंगलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा तथा दक्षिणा—इन देवियोंके महान् पुण्यदायक तथा सुननेमें प्रिय चरित्रका एवं प्राणियोंके कर्मविपाकका मैं संक्षिप्त तथा सुन्दर वर्णन करूँगा॥ ७-८॥

दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है, उसीका विस्तार बादमें कहूँगा। पहले संक्षेपके क्रमसे सुन लीजिये॥ ९॥

हे मुनिश्रेष्ठ! सर्वप्रथम श्रीकृष्णने सरस्वतीकी पूजा प्रारम्भ की, जिनकी कृपासे मूर्ख भी विद्वान् हो जाता है॥ १०॥

जब देवी सरस्वती कृष्णवल्लभा राधाके मुखसे प्रकट हुईं, तब उन कामरूपा कामिनीने श्रीकृष्णको कामभावसे प्राप्त करनेकी लालसा की॥ ११॥

उनका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने सबकी माता उन सरस्वतीसे सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुखकर बात कही॥ १२॥

श्रीकृष्ण बोले—हे साध्वि! तुम मेरे ही अंशस्वरूप चतुर्भुज नारायणका सेवन करो। वे सदा तरुणावस्थामें विराजमान, सुन्दर रूपवाले, सभी गुणोंसे सम्पन्न तथा मेरे ही समान हैं। वे कामिनियोंकी कामनाओंको जाननेवाले तथा उनकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर हैं और लीलामय अलंकारोंसे अलंकृत हैं तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न हैं॥ १३-१४॥

हे कान्ते! मुझे पति बनाकर यदि तुम यहाँ रहना चाहती हो, तो तुमसे भी अधिक बलवती राधा यहाँ हैं, अतः तुम्हारा कल्याण नहीं होगा॥ १५॥

जो मनुष्य जिससे बलवान् होता है, वह उससे तो दूसरे प्राणीकी रक्षा करनेमें समर्थ है; किंतु यदि स्वयं सामर्थ्यरहित है तो दूसरोंकी रक्षा कैसे कर सकता है?॥ १६॥

सबका ईश्वर तथा सबपर शासन करनेवाला मैं राधाको रोक पानेमें असमर्थ हूँ; क्योंकि वे भी तेज, रूप तथा गुणमें मेरे ही समान हैं। किन्हीं भी पुरुषोंके लिये कोई पुत्र क्या प्राणसे अधिक प्रिय हो सकता है अर्थात् नहीं। वे राधा तो मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं तो फिर उन प्राणरूपा राधाको छोड़नेमें मैं कैसे समर्थ हो सकता हूँ। हे भद्रे! तुम वैकुण्ठलोक जाओ; तुम्हारा कल्याण होगा। उन्हीं ऐश्वर्यसम्पन्न विष्णुको पति बनाकर दीर्घ कालतक सुखपूर्वक आनन्द प्राप्त करो॥ १७—१९॥

लोभ, मोह, काम, क्रोध, मान और हिंसासे रहित एवं तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान [उनकी पत्नी]

लक्ष्मी भी वहाँ हैं। उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक व्यतीत होगा और विष्णु भी तुम दोनोंका समान-रूपसे सम्मान करेंगे॥ २०-२१॥

हे सुन्दरि! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पंचमी तिथिको विद्यारम्भके अवसरपर मनुष्य, मनुगण, देवता, मुनीन्द्र, मुमुक्षुजन, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें भक्तिपूर्वक षोडशोपचार-पूजा अर्पण करके बड़े गौरवके साथ तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा सम्पन्न करेंगे॥ २२—२४॥

जितेन्द्रिय तथा संयमशील व्यक्ति कण्वशाखामें कही गयी विधिके अनुसार ध्यान तथा स्तुतिपूर्वक घट अथवा पुस्तकमें आवाहित करके तुम्हारा पूजन करेंगे। तुम्हारे कवचको लिखकर उसे सोनेकी गुटिका (डिब्बी)-में रखकर पुन: उसे गन्ध-चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गले अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे। पूजाके पावन अवसरपर विद्वज्जन तुम्हारे इस कवचका पाठ करेंगे॥ २५-२६१/२॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने सभी लोगोंके द्वारा पूजित उन भगवती सरस्वतीका पूजन किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, सनकादि मुनीश्वर, देवता, मुनिगण, राजा और मनुष्य आदि—ये सब भी सरस्वतीकी उपासना करने लगे। तभीसे ये सरस्वती सम्पूर्ण प्राणियोंके द्वारा सदा पूजित होने लगीं॥ २७—२९॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप उन भगवतीके पूजाविधान, कवच, ध्यान, पूजाके उपयुक्त नैवेद्य, पुष्प, चन्दन आदिके विषयमें मुझे बतायें। यह सब सुननेकी लालसा मेरे हृदयमें निरन्तर बनी रहती है। सुननेमें इससे अधिक सुन्दर (प्रिय) क्या हो सकता है?॥ ३०-३१॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, जगज्जननी सरस्वतीकी पूजाविधिसे संयुक्त कण्वशाखोक्त पद्धतिका वर्णन कर रहा हूँ॥ ३२॥

माघ शुक्ल पंचमी तथा विद्यारम्भके दिन भी पूर्वाह्नकालमें प्रतिज्ञा करके आराधक उस दिन संयम तथा पवित्रतासे युक्त रहे। स्नान और नित्यक्रिया करके भक्तिपूर्वक कलश-स्थापन करनेके बाद अपनी शाखामें कही गयी विधिसे अथवा तान्त्रिक विधिसे पहले गणेशजीका पूजन करके अभीष्ट देवी सरस्वतीकी विधिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ३३-३४१/२॥

बताये गये ध्यानके द्वारा बाह्य घटमें देवीका ध्यान करके तत्पश्चात् व्रतीको चाहिये कि फिर ध्यानपूर्वक षोडशोपचार विधिसे भगवती सरस्वतीका पूजन करे। हे सौम्य! सरस्वती-पूजाके लिये उपयोगी जो कुछ नैवेद्य वेदोंमें बताये गये हैं और जैसा मैंने आगमशास्त्रमें अध्ययन किया है, उसे आपको बता रहा हूँ—मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलका लड्डू, सफेद गन्ना, गन्नेका रस, उसे पकाकर बनाया हुआ गुड़, मधु, स्वस्तिक (एक प्रकारका पक्वान्न), शक्कर, सफेद धानका बिना टूटा हुआ चावल (अक्षत), बिना उबाले हुए श्वेत धानका चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर बनाया गया शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, स्वस्तिक तथा पके हुए केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृततुल्य मधुर मिष्टान्न, नारियल, नारियलका जल, कसेरु, मूली, अदरक, पका हुआ केला, सुन्दर बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध सुन्दर, श्वेत और पवित्र ऋतुफल—ये नैवेद्य (प्रशस्त) हैं॥ ३५—४२॥

हे मुने! सुगन्धित श्वेत पुष्प, सुगन्धित श्वेत चन्दन, नवीन श्वेत वस्त्र तथा सुन्दर शंख, श्वेत पुष्पोंकी माला, श्वेत वर्णका हार तथा आभूषण भगवती सरस्वतीको अर्पण करने चाहिये॥ ४३१/२॥

हे महाभाग! भगवती सरस्वतीका जैसा ध्यान वेदमें वर्णित है; उस प्रशंसनीय, सुननेमें सुन्दर तथा भ्रमका नाश करनेवाले ध्यानके विषयमें सुनिये॥ ४४१/२॥

'मैं भक्तिपूर्वक शुक्ल वर्णवाली, मुसकानयुक्त, अत्यन्त मनोहर, करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले परिपुष्ट तथा श्रीसम्पन्नविग्रहवाली, अग्निसदृश विशुद्ध

वस्त्र धारण करनेवाली, हाथमें वीणा तथा पुस्तक धारण



करनेवाली, उत्कृष्ट कोटिके रत्नोंसे निर्मित नवीन आभूषणोंसे विभूषित, ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवगणोंसे सम्यक् पूजित तथा मुनीश्वरों, मनुगण और मनुष्योंसे वन्दित भगवती सरस्वतीकी वन्दना करता हूँ'—इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष समस्त पूजन-सामग्री मूलमन्त्रसे विधिपूर्वक सरस्वतीको अर्पण करके स्तुति करे और कवचको धारण करके दण्डकी भाँति भूमिपर गिरकर सरस्वतीको प्रणाम करे। हे मुने! ये सरस्वती जिन लोगोंकी इष्ट देवी हैं, उनके लिये तो यह नित्यक्रिया है। अन्य सभी लोगोंको विद्यारम्भके अवसरपर, वर्षके अन्तमें तथा पंचमी तिथिको यह आराधना अवश्य करनी चाहिये॥ ४५—४९॥

वैदिक अष्टाक्षर मूल मन्त्र परम श्रेष्ठ तथा सबके लिये उपयोगी है। अथवा जिन्हें जिसने जिस मन्त्रका उपदेश दिया है, उनके लिये वही मूल मन्त्र है। सरस्वती—इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी तथा अन्तमें 'स्वाहा' लगाकर सबके आदिमें लक्ष्मीबीज और मायाबीज लगाकर बना हुआ यह मन्त्र **'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा'** कल्पवृक्षके समान है॥ ५०-५१½॥

प्राचीन कालमें कृपानिधि भगवान् नारायणने पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें गंगाके तटपर वाल्मीकिको यह मन्त्र प्रदान किया था। इसी प्रकार भृगुमुनिने पुष्करक्षेत्रमें सूर्यग्रहणपर्वके अवसरपर यह मन्त्र शुक्राचार्यको प्रदान किया, मारीच (कश्यप)-ने चन्द्रग्रहणके समयपर प्रसन्न होकर बृहस्पतिको इसका उपदेश किया और ब्रह्माजीने भृगुसे सन्तुष्ट होकर बदरिकाश्रममें उन्हें यह मन्त्र दिया था॥ ५२—५४॥

जरत्कारुमुनिने क्षीरसागरके समीप आस्तिकको यह मन्त्र दिया था और विभाण्डकमुनिने मेरुपर्वतपर बुद्धिमान् ऋष्यशृंगको इसका उपदेश दिया था। भगवान् शिवने आनन्दित होकर कणादमुनि तथा गौतमको यह मन्त्र प्रदान किया था और सूर्यने याज्ञवल्क्य तथा कात्यायनको इस मन्त्रका उपदेश किया था। शेषनागने सुतल लोकमें बलिकी सभामें पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायनको यह मन्त्र दिया था॥ ५५—५७॥

चार लाख जप कर लेनेसे यह मन्त्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। यदि मनुष्य इस मन्त्रमें सिद्ध हो जाय, तो वह बृहस्पतिके समान हो जाता है॥ ५८॥

हे विप्रवर! अब आप विश्वपर विजय प्राप्त करानेवाले सरस्वतीकवचके विषयमें सुनिये, जिसे पूर्वकालमें जगत्का सृजन करनेवाले ब्रह्माजीने गन्धमादनपर्वतपर भृगुमुनिको प्रदान किया था॥ ५९॥

भृगु बोले—ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मज्ञानमें पारंगत, सब कुछ जाननेवाले, सबकी सृष्टि करनेवाले, सबके स्वामी तथा सभीके द्वारा पूजित हे ब्रह्मन्! हे प्रभो! आप मुझे मन्त्रोंके समूहसे युक्त तथा परम पवित्र 'विश्वजय' नामक सरस्वती-कवच बतलाइये॥ ६०-६१॥



ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! सुनिये; मैं आपसे सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, कानोंको सुख देनेवाले, वेदप्रतिपादित तथा वेदपूजित कवचका वर्णन करूँगा। रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने गोलोक वृन्दावनमें रासलीलाके अवसरपर रासमण्डलमें मुझे यह कवच बताया था॥ ६२-६३॥

हे ब्रह्मन्! यह कवच परम गोपनीय, कल्पवृक्षके समान श्रेष्ठ तथा न सुने हुए अद्भुत मन्त्रसमूहोंसे युक्त है,

जिसे धारण करके भगवान् शुक्राचार्य समस्त दैत्योंके पूज्य बन गये और जिसे धारण करके इसका पाठ करनेसे बृहस्पति परम बुद्धिमान् हो गये॥ ६४-६५॥

इसी प्रकार इस कवचके धारण करने तथा इसका पाठ करनेसे वाल्मीकिमुनि विद्वान् तथा कवीश्वर हो गये और स्वायम्भुव मनु इसे धारण करके सभीके पूज्य हो गये॥ ६६॥

इस कवचको धारण करके ही स्वयं कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन ग्रन्थ-रचना करनेमें समर्थ हुए॥ ६७॥

इसी प्रकार स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासजीने भी इसे धारण करके लीलामात्रमें वेदोंका विभाग तथा सम्पूर्ण पुराणोंका प्रणयन किया॥ ६८॥

शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर तथा याज्ञवल्क्यने इसे धारण करके इसके पाठसे ग्रन्थ-रचना की। इसी प्रकार ऋष्यशृंग, भरद्वाज, आस्तिक, देवल, जैगीषव्य और ययाति इस कवचको धारण करके सर्वत्र पूजित हुए॥ ६९-७०॥

हे विप्रेन्द्र! इस कवचके ऋषि स्वयं प्रजापति ही हैं इसका छन्द बृहती है और देवता माता शारदा हैं। सभी तत्त्वोंके परिज्ञान करनेमें, सम्पूर्ण अर्थोंके साधनमें तथा सभी कविताओंके विवेचनमें इस कवचका विनियोग बताया गया है॥ ७१-७२॥

'**श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सभी ओरसे मेरे सिरकी रक्षा करे। '**श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ललाटकी रक्षा करे॥ ७३॥

'**ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कानोंकी निरन्तर रक्षा करे और '**ॐ श्रीं ह्रीं भगवत्यै सरस्वत्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरे दोनों नेत्रोंकी सदा रक्षा करे॥ ७४॥

'**ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करे और '**ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे ओष्ठकी रक्षा करे॥ ७५॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी दन्तपंक्तिकी सदा रक्षा करे और '**ऐं**' यह एकाक्षरमन्त्र मेरे कण्ठकी सदा रक्षा करे॥ ७६॥

'**ॐ श्रीं ह्रीं**'—यह मन्त्र मेरी गर्दनकी रक्षा करे तथा '**श्रीं**'—यह मन्त्र मेरे दोनों कन्धोंकी सदा रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे॥ ७७॥

'**ह्रीं विद्याधिस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र मेरी नाभिकी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे दोनों हाथोंकी रक्षा करे॥ ७८॥

'**ॐ सर्ववर्णात्मिकायै [स्वाहा]**'—यह मन्त्र मेरे दोनों पैरोंकी सदा रक्षा करे और '**ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा मेरे सम्पूर्ण शरीरकी रक्षा करे॥ ७९॥

'**ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पूर्व दिशामें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ सर्वजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र अग्निकोणमें मेरी रक्षा करे॥ ८०॥

'**ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्रराज दक्षिण दिशामें सर्वदा निरन्तर मेरी रक्षा करे॥ ८१॥

'**ऐं ह्रीं श्रीं**'—यह त्र्यक्षर मन्त्र नैर्ऋत्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८२॥

'**ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा**'—यह मन्त्र वायव्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ऐं श्रीं क्लीं गद्यवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र सदा उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करे॥ ८३॥

'**ॐ ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र ईशानकोणमें सदा मेरी रक्षा करे और '**ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा**'—यह मन्त्र ऊपरसे सदा मेरी रक्षा करे॥ ८४॥

'**ॐ ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहा**'—यह मन्त्र नीचेसे सदा मेरी रक्षा करे। '**ॐ ग्रन्थबीजस्वरूपायै स्वाहा**'—यह मन्त्र सब ओरसे मेरी रक्षा करे॥ ८५॥

हे विप्र! मैंने आपको ब्रह्ममन्त्रसमूहके विग्रहरूप इस सरस्वतीकवचको बतला दिया। 'विश्वजय' नामक यह कवच साक्षात् ब्रह्मस्वरूप है॥ ८६॥

पूर्व कालमें मैंने गन्धमादनपर्वतपर धर्मदेवके मुखसे यह कवच सुना था। आपके स्नेहके कारण मैंने आपको इसे बतलाया है। किसी अन्य व्यक्तिको इसे नहीं बताना चाहिये॥ ८७॥

विद्वान् पुरुषको चाहिये कि नानाविध वस्त्र, अलंकार तथा चन्दनसे भलीभाँति गुरुकी पूजा करके दण्डकी भाँति जमीनपर गिरकर प्रणाम करे और इसके बाद इस कवचको धारण करे॥ ८८॥

पाँच लाख जप कर लेनेसे यह कवच सिद्ध हो जाता है। इस कवचको यदि साधक सिद्ध कर ले तो वह

बृहस्पतिके समान हो जाता है। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य महान् वक्ता, कवियोंका सम्राट् तथा तीनों लोकोंपर विजय प्राप्त करनेवाला हो जाता है और वह सब कुछ जीत लेनेमें समर्थ हो जाता है॥ ८९-९०॥

हे मुने! मैंने कण्वशाखाके अन्तर्गत वर्णित यह सरस्वती-कवच आपको बतला दिया। अब आप सरस्वतीके स्तोत्र, पूजाविधान, ध्यान तथा वन्दनके विषयमें सुनिये॥ ९१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'सरस्वती-स्तोत्रपूजा-कवचादिका वर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति

श्रीनारायण बोले—हे मुने! अब आप वाग्देवी सरस्वतीका वह स्तोत्र सुनिये, जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है और जिसके द्वारा महामुनि याज्ञवल्क्यने प्राचीन कालमें उन सरस्वतीदेवीकी स्तुति की थी॥ १॥

गुरुदेवके शापसे वे मुनि अपनी विद्यासे च्युत हो गये थे।* तब दुःखार्त होकर वे पुण्यप्रद सूर्यतीर्थ लोलार्कक्षेत्रमें चले गये। वहाँ पहुँचकर अपनी तपस्यासे भगवान् सूर्यके दर्शन प्राप्त करके उन्होंने सूर्यकी स्तुति की तथा शोकसे सन्तप्त होकर बार-बार रुदन किया॥ २-३॥

उस समय भगवान् सूर्यने उन याज्ञवल्क्यको वेद तथा वेदांग पढ़ाया और उनसे कहा कि आप स्मरणशक्ति प्राप्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक सरस्वतीदेवीकी स्तुति कीजिये॥ ४॥

उनसे ऐसा कहकर दीनोंके नाथ भगवान् सूर्य अन्तर्धान हो गये और याज्ञवल्क्यमुनि स्नान करके सिर



झुकाकर भक्तिपूर्वक देवी सरस्वतीकी स्तुति करने लगे॥ ५॥

याज्ञवल्क्य बोले—हे जगज्जननि! गुरुके शापसे इस प्रकार मुझ विनष्ट स्मृतिवाले, निस्तेज, विद्याविहीन तथा दुःखितपर कृपा कीजिये॥ ६॥

आप मुझे ज्ञान, स्मरणशक्ति, विद्या, शिष्योंको प्रबोध करानेवाली शक्ति, ग्रन्थनिर्माणका सामर्थ्य, सुप्रतिष्ठित शिष्य तथा सज्जनोंकी सभामें अभिव्यक्तिहेतु प्रतिभा एवं उत्तम विचारक्षमता प्रदान कीजिये। दैवयोगसे मेरी लुप्त हुई इन समस्त शक्तियोंको आप पुनः उसी प्रकार नवीनरूपमें कर दीजिये, जैसे देवता भस्ममें छिपे बीजको पुनः अंकुरित कर देते हैं॥ ७-८$^{1}/_{2}$॥

जो ब्रह्मस्वरूपिणी, परमा, ज्योतिरूपा, शाश्वत तथा सभी विद्याओंकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन सरस्वतीको बार-बार नमस्कार है॥ ९$^{1}/_{2}$॥

विसर्ग, बिन्दु तथा मात्रा—इन तीनोंमें जो अधिष्ठान-रूपसे विद्यमान हैं तथा जो उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उन नित्या देवीको बार-बार नमस्कार है। वे भगवती सरस्वती व्याख्यास्वरूपिणी तथा व्याख्याकी अधिष्ठातृ भी हैं॥ १०-११॥

जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी गणनाकार्य नहीं कर सकते तथा जो साक्षात् कालसंख्यास्वरूपिणी हैं; उन देवीको बार-बार नमस्कार है॥ १२॥

जो भ्रमसिद्धान्तस्वरूपा हैं, उन देवीको बार-बार नमस्कार है। जो स्मरणशक्ति, ज्ञानशक्ति, बुद्धिशक्ति, प्रतिभाशक्ति तथा कल्पनाशक्तिस्वरूपिणी हैं; उन देवीको

* महर्षि याज्ञवल्क्य वैशम्पायनजीके शिष्य थे। उनसे ही इन्होंने सम्पूर्ण वेदज्ञान प्राप्त किया था। एक बार गुरुसे विवाद हो जानेके कारण गुरुजीने इन्हें शाप दे दिया कि तुम मेरे द्वारा पढ़ी हुई यजुर्वेदकी शाखाको उगल दो। गुरुकी आज्ञासे याज्ञवल्क्यजीने अन्नरूपमें

बार-बार नमस्कार है॥ १३१/२॥

एक बार जब सनत्कुमारने ब्रह्माजीसे ब्रह्मज्ञानके विषयमें पूछा था, उस समय ब्रह्मसिद्धान्तकी व्याख्या करनेमें वे ब्रह्मा मूककी भाँति अक्षम हो गये थे। उसी समय स्वयं परमात्मा श्रीकृष्ण वहाँ आ गये और उन्होंने कहा—हे प्रजापते! आप भगवती सरस्वतीको अपनी इष्ट देवी बनाकर उनकी स्तुति कीजिये॥ १४-१५१/२॥

परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माजीने उन सरस्वतीकी स्तुति की। उसके बाद वे सरस्वतीकी कृपासे उत्तम सिद्धान्तका विवेचन करनेमें सफल हो गये॥ १६१/२॥

इसी तरह जब पृथ्वीने शेषनागसे ज्ञानका एक रहस्य पूछा था, तब वे शेष भी मूक-जैसे बन गये और सिद्धान्तका विवेचन करनेमें असमर्थ रहे। तब अत्यन्त व्यथितहृदय शेषने कश्यपकी आज्ञाके अनुसार उन सरस्वतीकी स्तुति की। तदनन्तर वे भ्रमका नाश करनेवाले उस पवित्र सिद्धान्तका विवेचन कर सके॥ १७-१८१/२॥

ऐसे ही जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्र पूछा, तब वे मौन हो गये और तब उन्होंने उन्हीं जगदम्बा सरस्वतीका स्मरण किया। तत्पश्चात् उनके वरसे भ्रमरूपी अन्धकारको मिटानेवाला ज्योतिसदृश निर्मल ज्ञान प्राप्त करके मुनीश्वर वाल्मीकि पुराण-सिद्धान्तका प्रतिपादन करनेमें समर्थ हो सके॥ १९-२०१/२॥

भगवान् कृष्णके अंशसे उत्पन्न व्यासजीने उस पुराणसूत्रको सुनकर उन कल्याणमयी सरस्वतीको जाना और पुष्करक्षेत्रमें सौ वर्षोंतक उनकी उपासना की। [हे माता!] तत्पश्चात् आपसे वर प्राप्त करके वे श्रेष्ठ कवीन्द्र हुए और उसके बाद उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की॥ २१-२२१/२॥

जब इन्द्रने भगवान् शंकरसे तत्त्वज्ञानके सम्बन्धमें पूछा, तब क्षणभर उन सरस्वतीका ध्यान करके ही शिवजीने उन इन्द्रको ज्ञानोपदेश दिया॥ २३१/२॥

[हे माता!] जब इन्द्रने शब्दशास्त्रके विषयमें बृहस्पतिसे पूछा था, तब उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक हजार वर्षोंतक आपकी आराधना की। तदुपरान्त आपसे वर प्राप्त करके वे एक हजार दिव्य वर्षोंतक देवपति इन्द्रको शब्दशास्त्रका उपदेश करते रहे। इसी तरह बृहस्पतिने जिन शिष्योंको पढ़ाया तथा अन्य जिन मुनीश्वरोंने उनसे अध्ययन किया, वे सब-के-सब उन भगवती सुरेश्वरीकी सम्यक् आराधना करके ही सफल हुए हैं॥ २४—२६१/२॥

मुनीश्वरों, मनुगणों, मनुष्यों, दैत्येश्वरों तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके द्वारा भी सम्यक् रूपसे आपकी स्तुति तथा पूजा की गयी है। हजार मुखवाले शेषनाग, पाँच मुखवाले शिव तथा चार मुखवाले ब्रह्मा भी जिनकी स्तुति करनेमें जड़वत् हो जाते हैं, तब मैं साधारण-सा मनुष्य एक मुखसे उन आपकी स्तुति कैसे कर सकता हूँ?॥ २७-२८१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार स्तुति करके याज्ञवल्क्यमुनि भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिभावसे उनका कन्धा झुक गया था, वे आहाररहित थे तथा बार-बार रो रहे थे॥ २९१/२॥

इसी बीच ज्योतिस्वरूपिणी महामाया सरस्वतीने उन्हें दर्शन दिया और वे मुनिसे बोलीं—'तुम महान् कवीन्द्र हो जाओ'—ऐसा कहकर वे वैकुण्ठ चली गयीं॥ ३०१/२॥

[हे नारद!] जो मनुष्य याज्ञवल्क्यके द्वारा रचित इस सरस्वतीस्तोत्रका पाठ करता है, वह कवीन्द्र तथा बृहस्पतिके समान महान् वक्ता हो जाता है। यदि कोई महान् मूर्ख तथा दुर्बुद्धि भी इस स्तोत्रका एक वर्षतक नियमपूर्वक पाठ करे, तो वह निश्चय ही पण्डित, मेधावी तथा श्रेष्ठ कवि हो जाता है॥ ३१—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'याज्ञवल्क्यकृत सरस्वतीस्तोत्रवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

वे ऋचाएँ उगल दीं, जिन्हें वैशम्पायनजीके अन्य शिष्योंने तित्तिर बनकर ग्रहण कर लिया, यजुर्वेदकी वही शाखा तैत्तिरीय शाखा कहलायी। वेदज्ञानसे शून्य याज्ञवल्क्यजीने सूर्यकी उपासनाकर पुनः नवीन वेदमन्त्रोंको प्राप्त किया; जो यजुर्वेदकी वाजसनेय या माध्यन्दिन शाखा कहलायी। (श्रीमद्भा० स्क० १२ अ० ६)

छठा अध्याय

लक्ष्मी, सरस्वती तथा गंगाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना

श्रीनारायण बोले—हे मुने! साक्षात् भगवान् विष्णुके पास वैकुण्ठमें रहनेवाली सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके द्वारा दिये गये शापसे भारतवर्षमें अपनी एक कलासे नदीरूपमें प्रतिष्ठित हैं। ये सरस्वती पुण्यदायिनी, पुण्यरूपिणी, पुण्यतीर्थस्वरूपिणी तथा पुण्यवान् मनुष्योंकी आश्रय हैं, अतः पुण्यात्मा लोगोंको इनका सेवन करना चाहिये॥ १-२॥

ये सरस्वती तपस्वियोंके लिये तपरूपिणी हैं और उनकी तपस्याका फल भी वे ही हैं। ये मनुष्यके द्वारा किये गये पापरूप ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं॥ ३॥

सरस्वतीकी महिमाको जानते हुए जो मनुष्य इनके जलमें अपना प्राण त्याग करते हैं, वे वैकुण्ठमें वास करते हुए दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिकी सन्निधि प्राप्त करते हैं॥ ४॥

भारतमें रहनेवाला कोई मनुष्य पाप कर लेनेके बाद खेल-खेलमें भी सरस्वतीमें स्नान कर लेनेमात्रसे सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और दीर्घकालतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य चातुर्मास्यमें, पूर्णिमा तिथिपर, अक्षय नवमीके दिन, क्षयतिथिको तथा व्यतीपात या ग्रहणके अवसर अथवा अन्य किसी भी पुण्य दिन किसी हेतुसे अथवा श्रद्धापूर्वक सरस्वतीमें स्नान करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है॥ ६-७॥

जो मनुष्य एक महीनेतक प्रतिदिन सरस्वतीनदीके तटपर इनके मन्त्रका जप करता है, वह महान् मूर्ख होते हुए भी कवीश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ८॥

जो मनुष्य मुण्डन कराकर प्रतिदिन सरस्वतीके जलमें स्नान करता है, वह मनुष्य फिरसे माताके गर्भमें वास नहीं करता है॥ ९॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सुख देनेवाले, मनोरथ पूर्ण करनेवाले तथा सारस्वरूप भगवतीके गुणकीर्तनका वर्णन आपसे कर दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ १०॥

सूतजी बोले—हे शौनक! भगवान् नारायणकी बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद अपनी इस शंकाके विषयमें पुनः शीघ्र उनसे पूछने लगे—॥ ११॥

नारदजी बोले—ये भगवती सरस्वती कलहके कारण गंगाजीके शापसे भारतवर्षमें अपनी कलासे पुण्यदायिनी नदीके रूपमें कैसे प्रकट हो गयीं?॥ १२॥

वेदोंके सारस्वरूप कथानकोंको सुननेहेतु मेरा कौतूहल बढ़ गया है, इस कथामृतको सुनकर ही मुझे तृप्ति होगी। अपने कल्याणके विषयमें कौन सन्तुष्ट होता है?॥ १३॥

जो सर्वदा पुण्य तथा कल्याण प्रदान करनेवाली हैं, उन सत्त्वस्वरूपा गंगाने पूज्य सरस्वतीको शाप क्यों दे दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण निश्चय ही कानोंके लिये सुखकर होगा। पुराणोंमें अत्यन्त दुर्लभ उस वृत्तान्तको आप मुझे बतलाइये॥ १४-१५॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! मैं यह प्राचीन कथा कह रहा हूँ, जिसके सुननेमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है; आप इसे सुनिये॥ १६॥

लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा—ये तीनों ही विष्णुकी भार्याएँ हैं। ये बड़े प्रेमके साथ सर्वदा भगवान् विष्णुके समीप विराजमान रहती हैं॥ १७॥

एक बार गंगा कामातुर होकर मुसकराती हुई कटाक्षपूर्वक भगवान् विष्णुका मुख निहार रही थीं॥ १८॥

तब भगवान् विष्णु क्षणभर उनके मुखकी ओर देखकर मुसकराने लगे। उसे देखकर लक्ष्मीने तो सहन कर लिया, किंतु सरस्वतीने नहीं॥ १९॥

उदारताकी मूर्ति लक्ष्मीने हँसकर उन सरस्वतीको समझाया, किंतु अत्यन्त कोपाविष्ट वे सरस्वती शान्त नहीं हुईं॥ २०॥

उस समय लाल नेत्रों तथा मुखमण्डलवाली और कुपित तथा कामवेगके कारण निरन्तर काँपते हुए ओठोंवाली सरस्वती अपने पति भगवान् विष्णुसे कहने लगीं॥ २१॥

सरस्वती बोलीं—एक धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ तथा उत्तम पतिकी बुद्धि अपनी सभी पत्नियोंके प्रति समान हुआ करती है, किंतु दुष्ट पतिकी बुद्धि इसके विपरीत होती है॥ २२॥

हे गदाधर! मुझे ज्ञात हो गया कि गंगापर आपका अधिक प्रेम रहता है और लक्ष्मीपर भी उसीके समान प्रेम रहता है। किंतु हे प्रभो! मुझपर आपका थोड़ा भी प्रेम नहीं है॥ २३॥

गंगा और लक्ष्मीके साथ आपकी प्रीति समान है, इसीलिये [गंगाके] इस विपरीत व्यवहारको भी लक्ष्मीने क्षमा कर दिया॥ २४॥

अब यहाँपर मुझ अभागिनीके जीवित रहनेसे क्या लाभ? क्योंकि जो स्त्री अपने पतिके प्रेमसे वंचित है, उसका जीवन व्यर्थ है॥ २५॥

जो विद्वान् लोग आपको सात्त्विक स्वरूपवाला कहते हैं, वे सब वेदज्ञ नहीं हैं अपितु मूर्ख हैं; वे आपकी बुद्धिको नहीं जानते हैं॥ २६॥

सरस्वतीकी यह बात सुनकर और उन्हें कोपाविष्ट देखकर भगवान्ने मन-ही-मन कुछ सोचा और इसके बाद वे वहाँसे बाहर निकलकर सभामें चले गये॥ २७॥

भगवान् नारायणके चले जानेपर वाणीकी अधिष्ठातृ-देवी उन सरस्वतीने कुपित होकर निर्भीकतापूर्वक गंगासे सुननेमें अत्यन्त कटु वचन कहा—॥ २८॥

हे निर्लज्ज! हे सकाम! तुम अपने पतिपर इतना गर्व क्यों कर रही हो? 'मेरे ऊपर पतिका अधिक प्रेम रहता है'—ऐसा तुम प्रदर्शित करना चाहती हो॥ २९॥

हे कान्तवल्लभे! आज मैं भगवान् विष्णुके सामने ही तुम्हारा अभिमान चूर्ण कर दूँगी; तुम्हारा वह पति मेरा क्या कर लेगा?॥ ३०॥

ऐसा कहकर वे गंगाके बाल खींचनेके लिये उद्यत हुईं; तब लक्ष्मीने दोनोंके बीचमें आकर उन सरस्वतीको ऐसा करनेसे रोक दिया॥ ३१॥

इससे महान् बलवती तथा सतीत्वमयी सरस्वतीने उन लक्ष्मीको शाप दे दिया कि तुम नदी और वृक्षके रूपवाली हो जाओगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३२॥

गंगाका विपरीत आचरण देखकर भी तुमने कुछ नहीं कहा और सभाके बीचमें वृक्ष तथा नदीकी भाँति तुम जड़वत् बन गयी थी; इसलिये तुम वही हो जाओ॥ ३३॥

यह शाप सुनकर भी लक्ष्मीने न तो शाप दिया और न क्रोध ही किया। वे सरस्वतीका हाथ पकड़कर दु:खित हो वहींपर बैठी रह गयीं॥ ३४॥

कोपके कारण काँपते हुए ओठों तथा लाल नेत्रोंवाली और अत्यन्त उन्मत्त उस सरस्वतीको देखकर गंगा लक्ष्मीसे कहने लगीं॥ ३५॥

गंगा बोलीं—हे पद्मे! तुम अत्यन्त उग्र स्वभाववाली इस सरस्वतीको छोड़ दो। यह शीलरहित, मुखर, विनाशिनी तथा नित्य वाचाल रहनेवाली सरस्वती मेरा क्या कर लेगी॥ ३६॥

वाणीकी अधिष्ठात्री देवी यह सरस्वती सर्वदा कलहप्रिय है। इसमें जितनी योग्यता तथा शक्ति हो, वह सब लगाकर यह आज मेरे साथ विवाद कर ले। यह दुर्मुखी अपने तथा मेरे बलका प्रदर्शन करना चाहती है तो सभी लोग आज दोनोंके प्रभाव तथा पराक्रमको जान लें॥ ३७-३८½॥

ऐसा कहकर गंगाने सरस्वतीको शाप दे दिया। [और उन्होंने लक्ष्मीसे कहा—] जिस सरस्वतीने तुम्हें शाप दिया है, वह भी नदीरूप हो जाय। यह नीचे मृत्युलोकमें चली जाय, जहाँ पापीलोग निवास करते हैं। [वहाँ] यह कलियुगमें उन पापियोंके पाप ग्रहण करेगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९-४०½॥

गंगाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने भी उसे शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और वहाँ पापियोंके पापको अंगीकार करना होगा॥ ४१½॥

इसी बीच चार भुजाओंवाले भगवान् विष्णु चार भुजाओंवाले अपने चारों पार्षदोंके साथ वहाँ आ गये॥ ४२½॥

सर्वज्ञ श्रीहरिने सरस्वतीका हाथ पकड़कर प्रेमपूर्वक उन्हें अपने वक्षसे लगा लिया और उन्हें शाश्वत तथा

सर्वोत्कृष्ट ज्ञान प्रदान किया। उनके कलह तथा शापकी बात सुनकर प्रभु श्रीहरि उन दु:खित स्त्रियोंसे समयानुकूल बात कहने लगे॥ ४३-४४१/२ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! हे शुभे! तुम अपने अंशसे पृथ्वीपर राजा धर्मध्वजके घर जाओ। तुम अयोनिजके रूपमें उनकी कन्या होकर प्रकट होओगी। वहींपर तुम



दुर्भाग्यसे वृक्ष बन जाओगी। मेरे ही अंशसे उत्पन्न शंखचूड नामक असुरकी भार्या होनेके बाद ही पुनः तुम मेरी पत्नी बनोगी; इसमें सन्देह नहीं है। उस समय तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली तुलसीके नामसे भारतवर्षमें तुम प्रसिद्ध होओगी। हे वरानने! अब तुम सरस्वतीके शापसे अपने अंशसे नदीरूपमें प्रकट होकर भारतवर्षमें शीघ्र जाओ और वहाँ 'पद्मावती' नामसे प्रतिष्ठित होओ॥ ४५—४८१/२ ॥

[तत्पश्चात् उन्होंने गंगासे कहा—] हे गंगे! लक्ष्मीके पश्चात् तुम भी सरस्वतीके शापवश पापियोंका पाप भस्म करनेके लिये अपने ही अंशसे विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाओ। हे सुकल्पिते! राजा भगीरथकी तपस्यासे उनके द्वारा धरातलपर ले जायी गयी तुम पवित्र 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध होओगी। हे सुरेश्वरि! मेरी आज्ञाके अनुसार तुम मेरे ही अंशसे उत्पन्न समुद्रकी पत्नी और मेरी कलाके अंशसे उत्पन्न राजा शन्तनुकी भी पत्नी होना स्वीकार कर लेना॥ ४९—५११/२ ॥

[तदनन्तर उन्होंने सरस्वतीसे कहा—] हे भारति! गंगाके शापको स्वीकार करके तुम अपनी कलासे भारतवर्षमें जाओ और दोनों सपत्नियों (गंगा तथा लक्ष्मी)-के साथ कलह करनेका फल भोगो। साथ ही हे अच्युते! अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनमें ब्रह्माकी भार्या बन जाओ॥ ५२-५३ ॥

गंगाजी शिवके स्थानपर चली जायँ। यहाँपर केवल शान्त स्वभाववाली, क्रोधरहित, मेरी भक्त, सत्त्वस्वरूपा, महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, सुशील तथा धर्मका आचरण करनेवाली लक्ष्मी ही विराजमान रहें। जिनके एक अंशकी कलासे समस्त लोकोंमें सभी स्त्रियाँ धर्मनिष्ठ, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशील बनकर पूजित होती हैं॥ ५४-५५१/२ ॥

[भगवान् बोले] विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियाँ, तीन नौकर तथा तीन बान्धवोंका एकत्र रहना वेदविरुद्ध है। अतः ये मंगलदायक नहीं हो सकते॥ ५६१/२ ॥

जिन गृहस्थोंके घरमें स्त्री पुरुषकी भाँति व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उनका जन्म निष्फल हो जाता है और पग-पगपर उनका अमंगल होता है॥ ५७१/२ ॥

जिसकी स्त्री मुखदुष्टा (कुवचन बोलनेवाली), योनिदुष्टा (व्यभिचारमें लिप्त रहनेवाली) तथा कलहप्रिया है, उस व्यक्तिको जंगलमें चले जाना चाहिये; क्योंकि उसके लिये बड़े-से-बड़ा जंगल भी घरसे बढ़कर श्रेयस्कर होता है; क्योंकि वहाँ उसे जल, स्थल और फल आदिकी निरन्तर प्राप्ति होती रहती है, किंतु घरपर ये सब नहीं मिल पाते॥ ५८-५९१/२ ॥

अग्निके पास रहना ठीक है अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है, किंतु दुष्ट स्त्रीके सान्निध्यमें रहनेवाले पुरुषोंको अवश्य ही उससे भी अधिक दुःख भोगना पड़ता है॥ ६०१/२ ॥

हे वरानने! व्याधिज्वाला तथा विषज्वाला तो पुरुषोंके लिये ठीक हैं, किंतु दुष्ट स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी बढ़कर कष्टकारक होती है॥ ६११/२ ॥

स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी निश्चित ही नहीं होती। ऐसा व्यक्ति दिनमें जो पुण्यकर्म करता है, उसके फलका भागी नहीं होता है। वह इस लोक तथा परलोकमें सर्वत्र निन्दित होता है और नरक प्राप्त करता है। जो यश और कीर्तिसे रहित है, वह जीते हुए भी मृतकके समान है॥ ६२-६३१/२ ॥

किसी पुरुषकी बहुत-सी पत्नियोंका एक साथ रहना

कल्याणप्रद नहीं है। एक भार्यावाला तो सुखी है ही नहीं, फिर अनेक भार्याओंवाला कैसे सुखी रह सकता है?॥ ६४१/२ ॥

हे गंगे! तुम शिवके स्थानपर जाओ और हे सरस्वति! तुम ब्रह्माके स्थानपर जाओ। यहाँ मेरे भवनमें उत्तम स्वभाववाली लक्ष्मी ही रहें॥ ६५१/२ ॥

जिस पुरुषकी पत्नी सहजरूपसे अनुकूल हो जानेवाली, उत्तम स्वभाववाली तथा पतिव्रता होती है, उसे इस लोकमें तथा स्वर्गमें सुख तथा धर्म प्राप्त होते हैं और परलोकमें मोक्ष-पद प्राप्त होता है। जिसकी पत्नी पतिव्रता होती है, वह मुक्त, पवित्र तथा सुखी है। इसके विपरीत दुराचारिणी स्त्रीका पति जीते-जी मृतकके समान, अपवित्र तथा दु:खी है॥ ६६-६७ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'लक्ष्मी, गंगा और सरस्वतीका भूलोक-अवतरणवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

भगवान् नारायणका गंगा, लक्ष्मी और सरस्वतीसे उनके शापकी अवधि बताना तथा अपने भक्तोंके महत्त्वका वर्णन करना

श्रीनारायण बोले—हे नारद! ऐसा कहकर जगत्के स्वामी भगवान् विष्णु चुप हो गये। तब वे तीनों देवियाँ एक-दूसरेका आलिंगन करके बहुत रोने लगीं॥ १ ॥

भगवान्की ओर देखकर भय तथा शोकसे काँपती हुई वे सभी देवियाँ अश्रुपूरित नेत्रोंसे उनसे बारी-बारीसे कहने लगीं॥ २ ॥

सरस्वती बोलीं—हे नाथ! मुझे जीवनभर सन्ताप देनेवाला कोई भी कठोर शाप दे दें (किंतु मेरा त्याग न करें); क्योंकि श्रेष्ठ स्वामीके द्वारा परित्यक्त वे स्त्रियाँ कैसे जीवित रह सकती हैं। भारतवर्षमें जाकर मैं निश्चय ही योगके द्वारा देह त्याग कर दूँगी। जिसकी भी अत्यधिक उन्नति होती है, उसका अधोपतन भी अवश्यम्भावी है॥ ३-४ ॥

गंगा बोली—हे जगत्पते! आपने मेरे किस अपराधके कारण मेरा त्याग कर दिया। मैं तो अपने देहको त्याग दूँगी और इस प्रकार आपको एक निरपराध स्त्रीके वधका पाप लगेगा। जो मनुष्य इस पृथ्वीपर निर्दोष पत्नीका परित्याग कर देता है, वह घोर नरककी यात्रा करता है, चाहे वह सर्वेश्वर ही क्यों न हो॥ ५-६ ॥

पद्मा बोलीं—हे नाथ! आप तो सत्त्वस्वरूप हैं। अहो, आपको ऐसा कोप कैसे हो गया! आप अपनी इन दोनों पत्नियोंको प्रसन्न कीजिये, क्योंकि एक उत्तम पतिके लिये क्षमा ही श्रेष्ठ है॥ ७ ॥

मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी, किंतु मैं वहाँ कितने समयतक रहूँगी और आपके चरणोंका दर्शन कब कर पाऊँगी?॥ ८ ॥

पापीजन स्नान तथा अवगाहन करके शीघ्र ही अपना पाप मुझे दे देंगे। तब किस उपायके द्वारा उस पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें मैं पुन: स्थान पाऊँगी?॥ ९ ॥

हे अच्युत! अपनी एक कलासे धर्मध्वजकी साध्वी पुत्री होकर तुलसीरूप प्राप्त करके मैं आपके चरणकमल पुन: कब प्राप्त कर सकूँगी?॥ १० ॥

आप जिसके अधिष्ठातृदेवता हैं, ऐसे वृक्षरूप तुलसीके रूपमें मैं प्रकट होऊँगी। किंतु हे कृपानिधान! आप मुझे यह बता दीजिये कि मेरा उद्धार कब करेंगे?॥ ११ ॥

यदि गंगा सरस्वतीके शापसे भारतमें जायँगी, तब पुन: कब शाप तथा पापसे मुक्त होकर ये आपको प्राप्त करेंगी?॥ १२ ॥

साथ ही, गंगाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जायँगी, तब पुन: कब शापसे मुक्त होकर ये आपके चरणोंका सांनिध्य प्राप्त कर सकेंगी?॥ १३ ॥

हे नाथ! आप जो उन सरस्वतीको ब्रह्माके तथा

गंगाको शिवके भवन जानेके लिये कह रहे हैं, तो मैं आपके इन वचनोंके लिये आपसे क्षमा चाहती हूँ॥ १४॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर लक्ष्मीने अपने पति श्रीविष्णुके चरण पकड़कर उन्हें प्रणाम किया और अपने केशोंसे उनके चरणोंको वेष्टित करके वे बार-बार रोने लगीं॥ १५॥

(भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले तथा मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाले भगवान् विष्णु लक्ष्मीको अपने वक्षसे लगाकर उनसे कहने लगे।)

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारे तथा अपने दोनोंके वचन सत्य सिद्ध करूँगा। हे कमलेक्षणे! सुनो, मैं तुम तीनोंमें समता कर दूँगा॥ १६॥

ये सरस्वती अपनी कलाके एक अंशसे नदीरूप होकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे ब्रह्माके भवन जायँ और पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें॥ १७॥

इसी प्रकार भगीरथके द्वारा ले जायी गयी ये गंगा तीनों लोकोंको पवित्र करनेके लिये अपने कलांशसे भारतवर्षमें जायँगी और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे भवनमें रहें। वहाँपर ये चन्द्रशेखर शिवके दुर्लभ मस्तकको प्राप्त करेंगी। वहाँ जानेपर स्वभावतः पवित्र ये गंगा और भी पवित्र हो जायँगी॥ १८-१९॥

हे वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे पद्मावती नामक नदीके रूपमें तथा तुलसी नामक वृक्षके रूपमें भारतवर्षमें जाओ॥ २०॥

कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर नदीरूपिणी तुम सब देवियोंकी मुक्ति हो जायगी और इसके बाद तुमलोग पुनः मेरे भवन आ जाओगी॥ २१॥

हे पद्मभवे! विपत्ति सभी प्राणियोंकी सम्पदाओंका हेतुस्वरूप है। विना विपत्तिके भला किन लोगोंको गौरव प्राप्त हो सकता है॥ २२॥

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले सत्पुरुषोंके द्वारा तुम्हारे जलमें स्नान तथा अवगाहनसे और उनके दर्शन तथा स्पर्शसे तुमलोगोंकी पापसे मुक्ति हो जायगी॥ २३॥

हे सुन्दरि! जितने भी असंख्य तीर्थ पृथ्वीपर हैं, वे सब मेरे भक्तोंके स्पर्श तथा दर्शनमात्रसे पवित्र हो जायँगे॥ २४॥

मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले भक्त पृथ्वीको अत्यन्त पवित्र करने तथा वहाँ रहनेवाले प्राणियोंको पावन करने तथा तारनेके लिये ही भारतवर्षमें निवास करते हैं॥ २५॥

मेरे भक्त जहाँ रहते तथा अपना पैर धोते हैं, वह स्थान निश्चितरूपसे अत्यन्त पवित्र महातीर्थके रूपमें हो जाता है॥ २६॥

स्त्रीवध करनेवाला, गोहत्या करनेवाला, कृतघ्न, ब्राह्मणका वध करनेवाला तथा गुरुपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाला प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २७॥

एकादशीव्रत तथा सन्ध्यासे विहीन, नास्तिक तथा मनुष्यका वध करनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्श-मात्रसे पवित्र हो जाता है॥ २८॥

शस्त्रसे आजीविका चलानेवाला, लेखनवृत्तिसे जीवनयापन करनेवाला, धावक, भिक्षावृत्तिसे निर्वाह करनेवाला तथा बैल हाँकनेवाला भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ २९॥

विश्वासघात करनेवाला, मित्रका वध करनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला तथा धरोहर सम्पत्तिका हरण कर लेनेवाला मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३०॥

अत्यन्त उग्र, दूषित करनेवाला, जार पुरुष, व्यभिचारिणी स्त्रीका पति और शूद्रा स्त्रीका पुत्र—ऐसा प्राणी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३१॥

शूद्रोंका रसोइया, देवधनका उपभोग करनेवाला, सभी वर्णोंका पौरोहित्य कर्म करानेवाला ब्राह्मण तथा दीक्षाविहीन मनुष्य भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३२॥

हे सुन्दरि! जो पिता, माता, पत्नी, भाई, पुत्र, पुत्री, गुरुकुल, बहन, नेत्रहीन, बन्धु-बान्धव, सास तथा श्वसुरका

भरण-पोषण नहीं करता, वह महापापी भी मेरे भक्तके दर्शन तथा स्पर्शसे पवित्र हो जाता है॥ ३३-३४॥

पीपलका वृक्ष काटनेवाला, मेरे भक्तोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका अन्न खानेवाला ब्राह्मण भी मेरे भक्तके दर्शनसे पवित्र हो जाता है॥ ३५॥

देवधन तथा विप्रधनका हरण करनेवाला, लाह-लोहा-रस तथा कन्याका विक्रय करनेवाला, महान् पातकी तथा शूद्रोंका शव जलानेवाला—ये सभी मेरे भक्तके स्पर्श तथा दर्शनसे पवित्र हो जाते हैं॥ ३६-३७॥

महालक्ष्मी बोलीं—भक्तोंपर कृपा करनेहेतु आतुर रहनेवाले हे प्रभो! अब आप अपने भक्तोंका लक्षण बतलाइये जिनके दर्शन तथा स्पर्शसे हरिभक्तिसे रहित, महान् अहंकारी, सदा अपनी प्रशंसामें लगे रहनेवाले, धूर्त, शठ, साधुनिन्दक तथा अत्यन्त अधम मनुष्य भी तत्काल पवित्र हो जाते हैं; जिनके स्नान तथा अवगाहनसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं; जिनके चरणरज तथा चरणोदकसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है एवं जिनके दर्शन तथा स्पर्शकी इच्छा भारतवर्षमें सभी लोग करते रहते हैं। विष्णुभक्तोंका समागम सभीके लिये परम लाभकारी होता है। जलमय तीर्थ तीर्थ नहीं है और मृण्मय तथा प्रस्तरमय देवता भी देवता नहीं हैं; क्योंकि वे बहुत समय बाद पवित्र करते हैं, किंतु यह आश्चर्य है कि विष्णुभक्त क्षणभरमें ही पवित्र कर देते हैं॥ ३८—४२॥

सूतजी बोले—महालक्ष्मीकी बात सुनकर कमलाकान्त श्रीहरि मुसकरा दिये और इसके बाद श्रेष्ठ तथा गूढ रहस्य कहनेके लिये उद्यत हुए॥ ४३॥

श्रीभगवान् बोले—हे लक्ष्मि! भक्तोंके लक्षण वेदों तथा पुराणोंमें रहस्यरूपमें प्रतिपादित हैं। वे पुण्यस्वरूप, पापोंका नाश करनेवाले, सुखप्रद तथा भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। ऐसे सारभूत तथा गोपनीय लक्षणोंको दुष्टोंके समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिये। तुम शुद्धस्वरूपा एवं प्राणप्रियासे इसे कह रहा हूँ, सुनो॥ ४४-४५॥

गुरुके मुखसे निकले विष्णुमन्त्र जिस मनुष्यके कानमें पड़ते हैं, वेद उसीको पवित्र तथा नरोंमें श्रेष्ठ कहते हैं। उस मनुष्यके जन्ममात्रसे पूर्वके सौ पुरुष चाहे वे स्वर्गमें हों या नरकमें हो, उसी क्षण मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं, उनमें जो कोई भी जिन योनियोंमें जहाँ कहीं भी जन्म प्राप्त किये रहते हैं, वे वहींपर पवित्र तथा जीवन्मुक्त हो जाते हैं और समयानुसार भगवान् विष्णुके परमधाम पहुँच जाते हैं॥ ४६—४८॥

जो मेरे गुणोंके अनुसार आचरण करता है तथा निरन्तर मेरी कथाओंमें ही आसक्त रहता है, मेरी भक्तिसे युक्त वह मनुष्य मेरे गुणोंसे युक्त होकर मुक्त हो जाता है। मेरे गुणोंके श्रवणमात्रसे वह आनन्दविभोर हो जाता है, उसका शरीर पुलकित हो उठता है, हर्षातिरेकके कारण उसका गला भर आता है, उसकी आँखोंमें आँसू आ जाते हैं और वह अपनेको भूल जाता है। वह सुख, सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व आदि कुछ भी नहीं चाहता है। वह सदा मेरी ही सेवामें लगा रहना चाहता है। वह स्वप्नमें भी इन्द्र, मनु, ब्रह्मा आदिके अत्यन्त दुर्लभ पदों तथा स्वर्गके राज्य आदिके भोगोंकी कामना नहीं करता है॥ ४९—५२॥

मेरे भक्त भारतवर्षमें भ्रमण करते रहते हैं, भक्तोंका वैसा जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। वे सदा मेरे गुणोंका श्रवण करते हुए तथा सुनानेयोग्य गीतोंको गाते हुए नित्य आनन्दित रहते हैं। अन्तमें वे मनुष्यों, तीर्थों तथा पृथ्वीको पवित्र करके मेरे धाम चले जाते हैं। हे पद्मे! इस प्रकार मैंने तुमसे यह सब कह दिया। अब तुम्हें जो उचित प्रतीत हो, वह करो। तत्पश्चात् उन श्रीहरिकी आज्ञाके अनुसार वे कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं और स्वयं भगवान् अपने सुखदायक आसनपर विराजमान हो गये॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'गंगा आदिका शापोद्धारवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

कलियुगका वर्णन, परब्रह्म परमात्मा एवं शक्तिस्वरूपा मूलप्रकृतिकी कृपासे त्रिदेवों तथा देवियोंके प्रभावका वर्णन और गोलोकमें राधा-कृष्णका दर्शन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] गंगाके शापसे सरस्वती अपनी एक कलासे पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें आ गयीं और अपने पूर्ण अंशसे भगवान् श्रीहरिके स्थानपर ही रह गयीं॥ १॥

वे सरस्वती भारतमें आनेके कारण 'भारती', ब्रह्माकी प्रिया होनेके कारण 'ब्राह्मी' और वाणीकी अधिष्ठातृदेवी होनेके कारण 'वाणी' नामसे कही गयीं॥ २॥

सरोवर, बावली तथा अन्य जलधाराओंमें सर्वत्र श्रीहरि दिखायी देते हैं, अतः वे सरस्वान् कहे जाते हैं; उनके इसी नामके कारण ये सरस्वती कही जाती हैं॥ ३॥

नदीके रूपमें आकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापियोंके पाप भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निरूपा हैं॥ ४॥

हे नारद! तत्पश्चात् भगीरथके द्वारा गंगाजी पृथ्वीपर ले जायी गयीं। वे सरस्वतीके शापसे अपनी एक कलासे पृथ्वीपर पहुँचीं॥ ५॥

उस समय गंगाके वेगको सह सकनेमें केवल शिव ही समर्थ थे। अतः पृथ्वीके प्रार्थना करनेपर सर्वशक्तिशाली शिवने उन गंगाको अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ ६॥

पुनः सरस्वतीके शापसे लक्ष्मीजी अपनी एक कलासे 'पद्मावती' नदीके रूपमें भारतमें पहुँचीं और अपने पूर्ण अंशसे स्वयं श्रीहरिके पास स्थित रहीं॥ ७॥

तत्पश्चात् लक्ष्मीजीने अपनी दूसरी कलासे भारतमें राजा धर्मध्वजकी पुत्रीके रूपमें जन्म ग्रहण किया और वे 'तुलसी'—इस नामसे विख्यात हुईं॥ ८॥

पूर्वकालमें सरस्वतीके शापसे और बादमें श्रीहरिके शापसे ये विश्वपावनी देवी अपनी एक कलासे वृक्षरूपमें हो गयीं॥ ९॥

कलिके पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर वे तीनों देवियाँ अपने नदीरूपका परित्यागकर वैकुण्ठधाम चली जायँगी॥ १०॥

काशी तथा वृन्दावनको छोड़कर अन्य जो भी तीर्थ हैं, वे सब श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे॥ ११॥

शालग्राम, शिव, शक्ति और जगन्नाथजी कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने स्थानपर चले जायँगे॥ १२॥

उन सभीके साथ साधु, पुराण, शंख, श्राद्ध, तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे चले जायँगे। देवताओंकी पूजा, देवताओंके नाम, उनके यश तथा गुणका कीर्तन, वेदांग तथा शास्त्र भी उनके साथ चले जायँगे। इसी प्रकार संत, सत्य, धर्म, समस्त वेद, ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास आदि भी उनके साथ चले जायँगे। उनके चले जानेके पश्चात् सभी लोग वाममार्गका आचरण करनेवाले तथा मिथ्या और कपटपूर्ण आचरणमें संलग्न हो जायँगे और सर्वत्र बिना तुलसीके ही पूजा होने लगेगी॥ १३—१६॥

उनके जाते ही सभी लोग शठ, क्रूर, दम्भयुक्त, महान् अहंकारी, चोर तथा हिंसक हो जायँगे॥ १७॥

पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) रहेगा, स्त्रीविभेद अर्थात् पुरुष-स्त्रीका ही भेद रहेगा, जातिभेद समाप्त हो जायगा; जिससे किसी भी वर्णके स्त्री-पुरुषका परस्पर विवाह निर्भयतापूर्वक होगा। वस्तुओंमें स्व-स्वामिभेद होगा अर्थात् लोग परस्पर एक-दूसरेको कोई वस्तु नहीं देंगे॥ १८॥

तब सभी पुरुष स्त्रियोंके वशमें हो जायँगे। घर-घरमें व्यभिचारिणी स्त्रियोंका बाहुल्य हो जायगा और वे अपने पतियोंको डाँटते हुए तथा दुर्वचन कहते हुए उन्हें पीड़ित करेंगी॥ १९॥

गृहिणी घरकी मालकिन बन जायगी तथा गृहस्वामी नौकरसे भी निकृष्ट रहेगा। घरकी बहू अपने सास-ससुरसे दाई-नौकर-जैसा व्यवहार करेगी॥ २०॥

घरमें बलवान् ही कर्ता माना जायगा, बान्धवोंकी सीमा [अपने बन्धु-बान्धवोंको छोड़कर] केवल स्त्रीके

परिवारमें ही सीमित हो जायगी और एक साथ विद्याध्ययन करनेवाले लोगोंमें परस्पर बातचीत तकका व्यवहार नहीं रहेगा॥ २१॥

लोग अपने ही बन्धु-बान्धवोंसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भाँति व्यवहार करेंगे और स्त्रीके आदेशके बिना पुरुष सभी कार्य करनेमें असमर्थ रहेंगे॥ २२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र अपनी-अपनी जातिके आचार-विचारका परित्याग कर देंगे। सन्ध्यावन्दन तथा यज्ञोपवीत आदिका लोप हो जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ २३॥

चारों वर्णोंके लोग म्लेच्छोंके समान आचरण करेंगे। वे अपने शास्त्र छोड़कर म्लेच्छशास्त्रका अध्ययन करेंगे॥ २४॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्योंके वंशज कलियुगमें शूद्रोंके यहाँ सेवक, रसोइया, वस्त्र धोनेवाले तथा बैलोंपर बोझा ढोनेका काम करनेवाले होंगे॥ २५॥

सभी प्राणी सत्यहीन हो जायँगे, वसुन्धरा फसलोंसे रहित हो जायगी, वृक्षोंमें फल नहीं रह जायँगे और स्त्रियाँ सन्तानविहीन हो जायँगी॥ २६॥

गायोंमें दूध देनेकी क्षमता नहीं रह जायगी, दूधमें घृतका अंश समाप्त हो जायगा, पति-पत्नी परस्पर प्रेमभावसे वंचित रहेंगे और गृहस्थोंमें सत्यका अभाव हो जायगा॥ २७॥

राजा पराक्रमहीन हो जायँगे, प्रजाएँ करोंके भारसे पीड़ित रहेंगी, बड़ी-बड़ी नदियाँ-जलाशय और कन्दरा आदि जलसे शून्य हो जायँगे॥ २८॥

चारों वर्णके लोग धर्म तथा पुण्यसे रहित हो जायँगे। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् नहीं रह जायगा॥ २९॥

उसके बाद पुरुष, स्त्री तथा बालक नीच स्वभाववाले तथा विकृत स्वरूपवाले हो जायँगे। उस समय बुरी बातों तथा निन्दित शब्दोंका प्रयोग होगा॥ ३०॥

कुछ गाँव और नगर मनुष्योंसे शून्य होकर बड़े भयानक प्रतीत होंगे। कुछ गाँवोंमें बहुत थोड़ी कुटिया तथा बहुत ही कम मनुष्य रह जायँगे॥ ३१॥

गाँवों और नगरोंमें जंगल हो जायँगे। जंगलमें रहनेवाले सभी लोग भी करोंके भारसे पीड़ित रहेंगे॥ ३२॥

[वर्षाके अभावमें] नदियों और तालाबोंमें फसलें उगायी जायँगी। कलियुगमें उत्कृष्ट वंशमें उत्पन्न लोग नीच हो जायँगे॥ ३३॥

हे नारद! उस समय लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले, धूर्त, मूर्ख तथा असत्यभाषी हो जायँगे। उत्तम कोटिके खेत भी फसलोंसे विहीन रहेंगे॥ ३४॥

नीच लोग भी धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे और देवभक्त नास्तिक हो जायँगे। सभी नगरनिवासी हिंसक, निर्दयी और मनुष्योंका वध करनेवाले हो जायँगे॥ ३५॥

कलियुगमें सभी जगहके स्त्री और पुरुष बौने, नानाविध व्याधियोंसे युक्त, अल्पायु, रोगग्रस्त तथा यौवनसे हीन हो जायँगे। सोलह वर्षमें ही उनके सिरके बाल पक जायँगे और बीस वर्षमें वे अत्यन्त वृद्ध हो जायँगे। आठ वर्षकी युवती रजस्वला होकर गर्भ धारण करने लगेगी। प्रत्येक वर्षमें सन्तान उत्पन्न करके वह स्त्री सोलह वर्षकी अवस्थामें ही वृद्धा हो जायगी। कलियुगमें प्रायः सभी स्त्रियाँ वन्ध्या रहेंगी, कोई-कोई स्त्री पति तथा पुत्रवाली होगी॥ ३६—३८॥

चारों वर्णोंके सभी लोग कन्याका विक्रय करेंगे। वे अपनी माता, पत्नी, बहू, कन्या तथा बहनके व्यभिचारी पुरुषोंसे प्राप्त धनसे अपनी आजीविका चलानेवाले होंगे और उनसे प्राप्त अन्नका भक्षण करनेवाले होंगे। कलियुगमें लोग भगवान्‌के नाम बेचनेवाले होंगे। लोग अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये दान देंगे और उसके बाद अपने उस दानरूप प्रदत्त धनको स्वयं ले लेंगे॥ ३९—४१॥

लोग अपने द्वारा दी गयी अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति अथवा गुरुकुलकी वृत्ति—उन सबको पुनः छीन लेंगे॥ ४२॥

कलियुगमें कुछ लोग कन्याके साथ, कुछ लोग सासके साथ, कुछ लोग अपनी बहूके साथ, कुछ लोग बहनके साथ, कुछ लोग सौतेली माँके साथ, कुछ लोग भाईकी स्त्रीके साथ और कुछ लोग सब प्रकारकी स्त्रियोंके साथ समागम करनेवाले होंगे॥ ४३-४४॥

लोग घर-घरमें अगम्या स्त्रीके साथ गमन करेंगे, केवल माताको छोड़कर वे सबके साथ रमण करेंगे।

कलियुगमें पतियों तथा पत्नियोंका कोई निर्णय नहीं रहेगा और विशेषरूपसे सन्तानों, ग्रामों तथा वस्तुओंका कोई निर्णय नहीं रहेगा॥ ४५-४६॥

सभी लोग अप्रिय वचन बोलनेवाले होंगे। सभी लोग चोर और लम्पट होंगे। सभी लोग एक-दूसरेकी हिंसा करनेवाले और नरघाती होंगे॥ ४७॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशके लोग पापी हो जायँगे। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे॥ ४८॥

विप्र-वंशमें उत्पन्न सभी लोग बैलोंपर बोझ ढोनेका कर्म करेंगे, शूद्रोंका शव जलायेंगे, शूद्रोंका अन्न खायेंगे और शूद्रजातिकी स्त्रीमें आसक्त होंगे, पंचयज्ञ करनेसे विरत रहेंगे, अमावास्याकी रात्रिमें भोजन करेंगे। यज्ञोपवीत धारण नहीं करेंगे और सन्ध्यावन्दन तथा शौचादि कर्मसे विहीन रहेंगे॥ ४९-५०॥

कुलटा, सूदसे जीविका चलानेवाली, कुट्टनी तथा रजस्वला स्त्री ब्राह्मणोंके भोजनालयोंमें भोजन पकानेवालीके रूपमें रहेगी॥ ५१॥

कलियुगमें अन्नोंके ग्रहणमें, आश्रम-व्यवस्थाके पालनमें तथा विशेषरूपसे स्त्रियोंके साथ सम्बन्धमें कोई भी नियम नहीं रह जायगा; सभी लोग म्लेच्छ हो जायँगे। इस प्रकार कलियुगके सम्यक्‌रूपसे प्रवृत्त हो जानेपर सम्पूर्ण जगत् म्लेच्छमय हो जायगा। उस समय वृक्ष हाथ-हाथ भर ऊँचे तथा मनुष्य अँगूठेकी लम्बाईके बराबर हो जायँगे॥ ५२-५३॥

उस समय विष्णुयश नामक ब्राह्मणके यहाँ उनके पुत्ररूपमें भगवान् कल्कि अवतरित होंगे। श्रीनारायणकी कलाके अंशसे उत्पन्न तथा बलशालियोंमें श्रेष्ठ वे भगवान् कल्कि एक विशाल अश्वपर आरूढ होकर अपनी विशाल तलवारसे तीन रातमें ही सम्पूर्ण पृथ्वीको म्लेच्छोंसे विहीन कर देंगे। इस प्रकार पृथ्वीको म्लेच्छरहित करके वे अन्तर्धान हो जायँगे। तब पृथ्वीपर पुनः अराजकता फैल जायगी और यह चोरों तथा लुटेरोंसे पीड़ित हो जायगी॥ ५४—५६॥

तदनन्तर मोटी धारसे निरन्तर छः दिनोंतक असीम वर्षा होगी, जिससे सम्पूर्ण पृथ्वी आप्लावित हो जायगी। वह प्राणियों, वृक्षों और घर आदिसे विहीन हो जायगी॥ ५७॥

हे मुने! उसके बाद बारह सूर्य एक साथ उदित होंगे। उनके प्रचण्ड तेजसे सम्पूर्ण पृथ्वी सूख जायगी॥ ५८॥

इसके बाद भयंकर कलियुगके समाप्त होनेके बाद तथा सत्ययुगके प्रवृत्त होनेपर तप और सत्त्वसे युक्त धर्म पूर्णरूपसे प्रकट होगा॥ ५९॥

उस समय पृथ्वीपर ब्राह्मण धर्मपरायण, तपस्वी तथा वेदज्ञ होंगे और घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता तथा धर्मनिष्ठ होंगी॥ ६०॥

क्षत्रियलोग ही राजा होंगे। वे सब सदा ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा तथा पुण्य कर्ममें संलग्न रहनेवाले होंगे॥ ६१॥

वैश्यलोग व्यापार-कर्ममें तत्पर, ब्राह्मणभक्त तथा धार्मिक होंगे। इसी प्रकार शूद्र भी पुण्य कृत्य करनेवाले, धर्मपरायण तथा विप्रोंके सेवक होंगे॥ ६२॥

ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्योंके वंशज सदा भगवतीकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले होंगे। वे सब देवीके मन्त्रका निरन्तर जप करनेवाले तथा उनके ध्यानमें सदा लीन रहनेवाले होंगे॥ ६३॥

उस समयके मनुष्य वेद-स्मृति-पुराणोंके ज्ञाता तथा ऋतुकालमें ही समागम करनेवाले होंगे। सत्ययुगमें लेशमात्र भी अधर्म नहीं रहेगा और धर्म अपने पूर्ण* स्वरूपमें स्थापित रहेगा। त्रेतायुगमें धर्म तीन पैरोंसे, द्वापरमें दो पैरोंसे तथा कलिके आनेपर एक पैरसे रहता है। तत्पश्चात् [घोर कलियुगके प्रवृत्त होनेपर] धर्मका पूर्णरूपसे लोप हो जाता है॥ ६४-६५॥

हे विप्र! सात वार, सोलह तिथियाँ, बारह महीने तथा छः ऋतुएँ बतायी गयी हैं। दो पक्ष (शुक्ल, कृष्ण), दो अयन (उत्तरायण, दक्षिणायन), चार प्रहरका एक दिन, चार प्रहरकी एक रात और तीस दिनोंका एक माह होता है॥ ६६-६७॥

---

* धर्मको चार पैरवाले वृषरूपमें कहा गया है—'वृषो हि भगवान् धर्मः' (मनु० ८। १६, श्रीमद्भा० १। १६। १८ आदि) तथा सत्य, दया, तप और दान—ये धर्मरूप वृषके चार चरण बताये गये हैं (चतुष्पाद् धर्म)। कृते प्रवर्तते धर्मश्चतुष्पात्तज्जनैर्धृतः। सत्यं दया तपो दानमिति पादा विभोर्नृप॥ (श्रीमद्भा० १२। ३। १८)

संवत्सर, इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष जानने चाहिये। यही कालकी संख्याका नियम है। जिस प्रकार दिन आते हैं तथा जाते हैं, उसी प्रकार चारों युगोंका आना-जाना लगा रहता है॥ ६८॥

मनुष्योंका एक वर्ष पूर्ण होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है। मनुष्योंके तीन सौ साठ युग बीतनेपर उसे देवताओंका एक युग समझना चाहिये—ऐसा कालसंख्याके विद्वानोंका मानना है। इस प्रकारके एकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इन्द्रकी आयु एक मन्वन्तरके बराबर समझनी चाहिये। अट्ठाईस इन्द्रके बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माका भी विनाश हो जाता है॥ ६९—७१ १/२॥

इसीको प्राकृत प्रलय समझना चाहिये, उस समय पृथ्वी दिखायी नहीं पड़ती। जगत्के सभी स्थावर-जंगम पदार्थ जलमें विलीन हो जाते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता, ऋषि तथा ज्ञानी—ये सब सत्यस्वरूप चिदात्मामें समाविष्ट हो जाते हैं। उसी परब्रह्ममें प्रकृति भी लीन हो जाती है। यही प्राकृतिक लय है। हे मुने! इस प्रकार प्राकृतिक लय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है, इस पूरे समयको भगवतीका एक निमेष कहा जाता है। हे मुने! इस प्रकार जितने भी ब्रह्माण्ड हैं, सब-के-सब देवीके एक निमेषमें विनष्ट हो जाते हैं। पुनः उसी निमेषमात्रमें ही सृष्टिके क्रमसे अनेक ब्रह्माण्ड बन भी जाते हैं॥ ७२—७५ १/२॥

इस प्रकार कितनी सृष्टियाँ हुईं तथा कितने लय हुए और कितने कल्प आये तथा गये—उनकी संख्याको कौन व्यक्ति जान सकता है? हे नारद! सृष्टियों, लयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी संख्याको भला कौन व्यक्ति जान सकता है?॥ ७६-७७ १/२॥

सभी ब्रह्माण्डोंका ईश्वर एक ही है। वही समस्त प्राणियोंका परमात्मस्वरूप तथा सच्चिदानन्दरूप धारण करनेवाला है॥ ७८ १/२॥

ब्रह्मा आदि देवता, महाविराट् और क्षुद्रविराट्—ये सब उसी परमेश्वरके अंश हैं और वे परमात्मा ही यह पराप्रकृति हैं। उसी पराप्रकृतिसे अर्धनारीश्वर भी आविर्भूत हुए हैं। वही पराप्रकृति श्रीकृष्णरूप भी है। वे श्रीकृष्ण दो भुजाओं तथा चार भुजाओंवाले होकर दो रूपोंमें विभक्त हो गये। उनमें चतुर्भुज श्रीहरिरूपसे वैकुण्ठमें और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णरूपसे गोलोकमें प्रतिष्ठित हुए॥ ७९—८१॥

ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सब कुछ प्राकृतिक है और जो कुछ भी प्रकृतिसे उत्पन्न है, वह सब नश्वर ही है॥ ८२॥

इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत वे परब्रह्म परमात्मा सत्य, नित्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण, प्रकृतिसे परे, उपाधिरहित, निराकार तथा भक्तोंपर कृपा करनेके लिये सदा व्याकुल रहनेवाले हैं। उन परब्रह्मको सम्यक् जानकर ही पद्मयोनि ब्रह्मा ब्रह्माण्डकी रचना करते हैं॥ ८३-८४॥

मृत्युपर विजय प्राप्त करनेवाले, समस्त तत्त्वार्थोंको जाननेवाले तथा महान् तपःस्वरूप सर्वेश्वर शिव उन्हींकी तपस्या करके, उन्हें जानकर ही जगत्का संहार करनेवाले हो सके। भगवान् विष्णु उन्हीं परब्रह्म परमात्माकी भक्ति तथा सेवाके द्वारा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वद्रष्टा, सर्वव्यापी, समस्त सम्पदा प्रदान करनेवाले, सबके ईश्वर, श्रीसम्पन्न तथा सबके रक्षक हुए॥ ८५-८६ १/२॥

जिसके ज्ञानसे, जिसके तपसे, जिसकी भक्तिसे तथा जिसकी सेवासे महामायास्वरूपिणी, सर्वशक्तिमयी तथा परमेश्वरी वे प्रकृति ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवती कही गयी हैं। जिसके ज्ञान तथा सेवासे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठातृदेवता, वेदज्ञानसे सम्पन्न तथा ब्राह्मणोंके द्वारा सुपूजित हुईं। जिनकी सेवा तथा तपस्याके द्वारा सरस्वती समस्त विद्याओंकी अधिष्ठातृदेवी, विद्वानोंके लिये पूज्य, श्रेष्ठ तथा समस्त लोकोंमें पूजित हुईं। इसी प्रकार इन्हींकी सेवा तथा तपस्यासे ही वे लक्ष्मी सभी प्रकारकी सम्पदा प्रदान करनेवाली, सभी प्राणिसमूहकी अधिष्ठातृदेवी, सर्वेश्वरी, सबकी वन्दनीया तथा सबको पुत्र देनेवाली हुईं और इन्हींकी उपासनाके प्रभावसे ही देवी दुर्गा सब प्रकारके कष्टका नाश करनेवाली, सबके द्वारा स्तुत तथा सर्वज्ञ हुईं॥ ८७—९१ १/२॥

श्रीकृष्णके वाम अंशसे आविर्भूत राधा प्रेमपूर्वक

उन्हीं शक्तिकी सेवा करके कृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवीके रूपमें प्रतिष्ठित हुईं और उनके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय बन गयीं। उन्हींकी सेवासे राधाने सर्वोत्कृष्ट रूप, सौभाग्य, सम्मान, गौरव तथा पत्नीके रूपमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर स्थान प्राप्त किया है॥ ९२-९३१/२ ॥

पूर्वकालमें श्रीराधाने श्रीकृष्णको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये शतशृंगपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया था। उससे उन शक्तिस्वरूपाके प्रसन्न हो जानेपर श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। वे प्रभु चन्द्रमाकी कलाके



समान शोभा पानेवाली राधाको देखकर उन्हें अपने वक्षःस्थलसे लगाकर [प्रेमातिरेकके कारण] रोने लगे। तत्पश्चात् कृपा करके उन प्रभु श्रीकृष्णने राधाको सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ यह उत्तम वर प्रदान किया—'मेरे वक्षःस्थलपर सदा विराजमान रहो, मेरी शाश्वत भक्त बनो और सौभाग्य, मान, प्रेम तथा गौरवसे नित्य सम्पन्न रहो। तुम मेरी सभी भार्याओंमें श्रेष्ठ तथा ज्येष्ठ प्रेयसीके रूपमें सदा प्रतिष्ठित रहोगी। तुम्हें वरिष्ठ तथा महिमामयी मानकर मैं सदा तुम्हारी स्तुति-पूजा किया करूँगा। हे प्राणवल्लभे! मैं तुम्हारे लिये सर्वदा सुलभ और हर प्रकारसे तुम्हारे अधीन रहूँगा।' परम सुन्दरी राधाको ऐसा वर प्रदान करके जगत्पति श्रीकृष्णने उन्हें सपत्नीके भावसे रहित कर दिया और अपनी प्राणप्रिया बना लिया॥ ९४—९९१/२ ॥

हे मुने! इसी प्रकार अन्य भी जो-जो देवियाँ हैं, वे भी मूलप्रकृतिकी सेवाके कारण ही सुपूजित हुई हैं। जिनका जैसा-जैसा तप रहा है, वैसा-वैसा उन्हें फल मिला है। भगवती दुर्गा हिमालयपर्वतपर एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करके तथा उन मूलप्रकृतिके चरणोंका ध्यान करके सबकी पूज्य हो गयीं। वे भगवती सरस्वती गन्धमादनपर्वतपर एक लाख दिव्य वर्षोंतक तप करके सर्ववन्द्या बन गयीं। श्रीलक्ष्मी पुष्करक्षेत्रमें दिव्य एक सौ युगोंतक तप करके भगवतीकी उपासनाके द्वारा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ देनेवाली बन गयीं। इसी प्रकार सावित्री दिव्य साठ हजार वर्षोंतक मलयगिरिपर उन मूलप्रकृतिके दिव्य चरणोंका ध्यान करते हुए कठोर तप करके सबके लिये पूजनीय तथा वन्दनीय हो गयीं॥ १००—१०४१/२ ॥

हे विभो! प्राचीन कालमें शंकरजीने एक सौ मन्वन्तरतक उन भगवतीका तप किया था। ब्रह्माजीने भी सौ मन्वन्तरतक शक्तिके नामका जप किया था। इसी प्रकार भगवान् विष्णु भी सौ मन्वन्तरतक तपस्या करके सम्पूर्ण जगत्के रक्षक बने॥ १०५-१०६ ॥

श्रीकृष्णने दस मन्वन्तरतक कठोर तप करके दिव्य गोलोक प्राप्त किया, जहाँपर आज भी वे आनन्द प्राप्त कर रहे हैं॥ १०७॥

उन्हीं भगवतीकी भक्तिसे युक्त होकर धर्म दस मन्वन्तरतक तपस्या करके सबके प्राणस्वरूप, सर्वपूज्य तथा सर्वाधार हो गये॥ १०८॥

इसी प्रकार सभी देवता, मुनि, मनुगण, राजा तथा ब्राह्मण भी उन भगवती मूलप्रकृतिकी तपस्याके द्वारा ही पूजित हुए हैं॥ १०९ ॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आगमसहित इस पुराणको गुरुके मुखसे जैसा जाना था, वह सब आपको बता दिया; अब आप आगे क्या सुनना चाहते हैं?॥ ११०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें कलिमाहात्म्य' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८ ॥

नौवाँ अध्याय

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसंग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा उनकी स्तुति

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने बतलाया कि देवीके निमेषमात्र व्यतीत होनेपर ब्रह्माका अन्त हो जाता है और उनका यह विनाश ही प्राकृतिक प्रलय कहा गया है। उस प्राकृत प्रलयके होनेपर पृथ्वी अदृश्य हो जाती है—ऐसा कहा गया है, साथ ही सभी लोक जलमें डूब जाते हैं और समस्त प्राणी परमात्मामें विलीन हो जाते हैं। [हे प्रभो!] उस समय अदृश्य हुई वह पृथ्वी कहाँ स्थित रहती है और सृष्टि होनेके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? वह पृथ्वी फिरसे धन्य, मान्य, सबको आश्रय प्रदान करनेवाली तथा विजयशालिनी कैसे हो जाती है? अब आप उस पृथ्वीके उद्भवकी मंगलकारी कथा कहिये॥ १—४॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें भगवतीसे ही अखिल जगत्की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सबका उन्हींसे आविर्भाव होता है और सभी प्रलयोंके समय प्राणियोंका उन्हींमें विलय हो जाता है—ऐसा श्रुति कहती है॥ ५॥

अब आप पृथ्वीके जन्मका वृत्तान्त सुनिये; जो सभी प्रकारका मंगल करनेवाला, विघ्नोंका नाश करनेवाला, पापोंका उच्छेद करनेवाला तथा पुण्यकी वृद्धि करनेवाला है॥ ६॥

कुछ लोग कहते हैं कि मधु-कैटभ नामक दैत्योंके मेदसे यह धन्य पृथ्वी उत्पन्न हुई, किंतु इससे जो भिन्न मत है, उसे सुनो। उन दोनों दैत्योंने प्राचीन कालमें भगवान् विष्णुके साथ युद्धमें उनके तेजसे प्रसन्न होकर उनसे कहा कि हमदोनोंका वध वहींपर हो, जहाँ पृथ्वी जलमग्न न हो। उनके जीवनकालमें पृथ्वी जलके भीतर स्थित रहनेके कारण स्पष्ट रूपसे दिखायी नहीं पड़ती थी; यह बात उन्हें ज्ञात भी थी। इसीलिये उन्होंने वह वर माँगा था। उन दोनोंके वधके उपरान्त उनका मेद प्रभूत मात्रामें फैल गया। इस कारण पृथ्वी मेदिनी नामसे प्रसिद्ध हुई। इसका स्पष्टीकरण सुनो; जलसे बाहर निकलनेके अनन्तर ही पृथ्वी मेदसे परिपुष्ट हुई। इसीलिये उसका नाम मेदिनी पड़ा। मैं अब पृथ्वीके जन्मकी मंगलकारिणी तथा श्रुतिप्रतिपादित सार्थक कथा कहता हूँ, जिसे मैंने पहले धर्मराजके मुखसे पुष्करक्षेत्रमें सुना था॥ ७—११॥

महाविराट् पुरुष अनन्त कालसे जलमें स्थित रहते हैं, यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वांगव्यापी शाश्वत मन प्रकट हुआ। तत्पश्चात् वह मन उस महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूपोंमें प्रविष्ट हो गया। हे मुने! बहुत समयके पश्चात् उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी प्रकट हुई॥ १२-१३॥

उस महाविराट्के जितने रोमकूप हैं, उन सबमें सर्वदा स्थित रहनेवाली यह पृथ्वी एक-एक करके जलसहित बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है॥ १४॥

यह पृथ्वी सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थित हो जाती है और प्रलयके समय यह अदृश्य होकर जलके भीतर स्थित रहती है॥ १५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह पृथ्वी पर्वतों तथा वनोंसे सम्पन्न रहती है, सात समुद्रोंसे घिरी रहती है और सात द्वीपोंसे युक्त रहती है॥ १६॥

यह वसुधा हिमालय तथा मेरु आदि पर्वतों, सूर्य तथा चन्द्र आदि ग्रहोंसे संयुक्त रहती है। महाविराट्की आज्ञाके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता इसपर प्रकट होते हैं तथा समस्त प्राणी इसपर निवास करते हैं॥ १७॥

यह पृथ्वी पुण्यतीर्थों तथा पवित्र भारतदेशसे सम्पन्न है। यह स्वर्णमयी भूमिसे सुशोभित है तथा सात स्वर्गोंसे समन्वित है। इस पृथ्वीके नीचे सात पाताल हैं, ऊपर ब्रह्मलोक है तथा ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है और उसमें समस्त विश्व स्थित है। इस प्रकार सम्पूर्ण लोक पृथ्वीपर ही निर्मित हैं। ये सभी विश्व विनाशशील तथा कृत्रिम हैं॥ १८—२०॥

प्राकृत प्रलयके अवसरपर ब्रह्माका भी निपात हो जाता है। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं; क्योंकि सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इनका सृजन किया था॥ २१॥

ये सृष्टि तथा प्रलय नित्य हैं और काष्ठा आदि

अवयवोंवाले कालके स्वामीके अधीन होकर रहते हैं। सभीकी अधिष्ठातृदेवी पृथ्वी भी नित्य हैं। वाराहकल्पमें सभी देवता, मुनि, मनु, विप्र, गन्धर्व आदिने उन पृथ्वीका पूजन किया था। वेदसम्मत वे पृथ्वी वराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुईं; उनके पुत्ररूपमें मंगलको तथा मंगलके पुत्ररूपमें घटेशको जानना चाहिये॥ २२-२३१/२॥

नारदजी बोले—देवताओंने वाराहकल्पमें किस रूपमें पृथ्वीका पूजन किया था? सभी लोग उस वाराहकल्पमें सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस वाराही साध्वी पृथ्वीकी पूजा करते थे। यह पृथ्वी पंचीकरण-मार्गसे मूलप्रकृतिसे उत्पन्न हुई है। हे प्रभो! नीचे तथा ऊपरके लोकोंमें उस पृथ्वीके पूजनके विविध प्रकार और (पृथ्वीपुत्र) मंगलके कल्याणमय जन्म तथा निवास-स्थानके विषयमें भी बताइये॥ २४—२६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें वाराहकल्पमें ब्रह्माजीके द्वारा स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि वराहरूप धारण करके हिरण्याक्षको मारकर रसातलसे पृथ्वीको निकाल ले आये॥ २७॥

उन्होंने पृथ्वीको जलमें इस प्रकार रख दिया, मानो सरोवरमें कमलपत्र स्थित हो। वहींपर रहकर ब्रह्माजीने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की॥ २८॥

पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवीको कामभावसे युक्त देखकर करोड़ों सूर्यके समान प्रभावाले वाराहरूपधारी सकाम भगवान् श्रीहरिने अपना अत्यन्त मनोहर तथा रतिकलायोग्य समग्र रूप बना करके उसके साथ एकान्तमें दिव्य एक वर्षतक निरन्तर विहार किया। आनन्दकी अनुभूतिसे वह सुन्दरी मूर्च्छित हो गयी। विदग्ध पुरुषके साथ विदग्ध स्त्रीका संगम अत्यन्त सुखदायक होता है। उस सुन्दरीके अंग-संश्लेषके कारण विष्णुको दिन-रातका ज्ञान भी नहीं रहा। एक वर्षके पश्चात् चेतना आनेपर भगवान् श्रीहरि उससे विलग हो गये॥ २९—३२॥

तदनन्तर उन्होंने लीलापूर्वक अपना पूर्वका वराह-रूप धारण कर लिया। इसके बाद साध्वी भगवती पृथ्वीका ध्यान करके धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, पुष्प और बलि आदिसे उनकी पूजा करके श्रीहरि उनसे कहने लगे॥ ३३-३४॥

श्रीभगवान् बोले—हे शुभे! तुम सबको आश्रय देनेवाली बनो। तुम मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि—सभीके द्वारा भलीभाँति पूजित होकर सुख प्राप्त करोगी॥ ३५॥

अम्बुवाचीयोग*को छोड़कर अन्य दिनोंमें, गृहारम्भ, गृहप्रवेश, बावली तथा सरोवरके निर्माणके समयपर, गृह तथा कृषिकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे और जो मूर्ख प्राणी तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे, वे नरकमें जायँगे॥ ३६-३७॥

वसुधा बोली—हे भगवन्! आपकी आज्ञाके अनुसार मैं वाराहीरूपसे समस्त स्थावर-जंगममय विश्वका लीलापूर्वक वहन करती हूँ। किंतु हे भगवन्! आप यह सुन लीजिये कि मैं मोती, सीप, शालग्रामशिला, शिवलिंग, पार्वतीविग्रह, शंख, दीप, यन्त्र, माणिक्य, हीरा, यज्ञोपवीत, पुष्प, पुस्तक, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, सुवर्ण, गोरोचन, चन्दन और शालग्रामका जल—इन वस्तुओंका वहन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ, इससे मुझे क्लेश होता है॥ ३८—४१॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुन्दरि! जो मूर्ख तुम्हारे ऊपर (अर्थात् आसनविहीन भूमिपर) ये वस्तुएँ रखेंगे, वे कालसूत्र नामक नरकमें दिव्य सौ वर्षोंतक निवास करेंगे॥ ४२॥

हे नारद! यह कहकर भगवान् चुप हो गये। उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थीं। उसी गर्भसे तेजस्वी मंगलग्रह उत्पन्न हुए॥ ४३॥

भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार वहाँ उपस्थित सभी लोगोंने पृथ्वीकी पूजा की और कण्वशाखामें कहे गये ध्यान तथा स्तोत्रपाठसे उनकी स्तुति की और मूलमन्त्रसे नैवेद्य आदि अर्पण किया। इस प्रकार तीनों लोकोंमें उन पृथ्वीकी पूजा तथा स्तुति होने लगी॥ ४४-४५॥

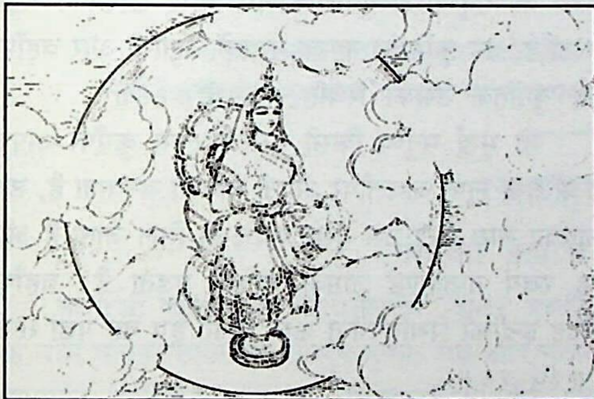
नारदजी बोले—पृथ्वीका ध्यान क्या है, उनका

* सौरमानसे आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी ऋतुमती रहती है; इतने समयका नाम अम्बुवाची है।

स्तवन क्या है और उनका मूलमन्त्र क्या है, यह सब मुझे बतलाइये। समस्त पुराणोंमें निगूढ़ इस प्रसंगको सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ ४६॥

श्रीनारायण बोले—सर्वप्रथम भगवान् वराहने भगवती पृथ्वीकी पूजा की, तत्पश्चात् ब्रह्माजीद्वारा इन पृथ्वीकी पूजा की गयी। इसके बाद सभी मुनीश्वरों, मनुओं और मनुष्यों आदिने पृथ्वीकी पूजा की॥ ४७१/२॥

हे नारद! सुनिये; अब मैं पृथ्वीके ध्यान, स्तवन तथा मन्त्रके विषयमें बता रहा हूँ। '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं वसुधायै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे भगवान् विष्णुने प्राचीनकालमें इनका पूजन किया था। उनके ध्यानका स्वरूप यह है—'पृथ्वीदेवी श्वेतकमलके वर्णके समान आभासे युक्त हैं, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है,



उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे अनुलिप्त हैं, वे रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित हैं, वे रत्नोंकी आधारस्वरूपा हैं, वे रत्नगर्भा हैं, वे रत्नोंके आकर (खान)-से समन्वित हैं, उन्होंने अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण कर रखे हैं, उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त है तथा वे सभी लोगोंके द्वारा वन्दित हैं—मैं ऐसी पृथ्वीदेवीकी आराधना करता हूँ।' इस प्रकारके ध्यानसे सभी लोगोंके द्वारा पृथ्वी पूजित हुईं। हे विप्रवर! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनिये॥ ४८—५११/२॥

श्रीनारायण बोले—जलकी आधारस्वरूपिणी, जलमयी तथा सबको जल प्रदान करनेवाली, यज्ञवराहकी भार्या तथा विजयकी प्राप्ति करानेवाली हे भगवति जये! आप मुझे विजय प्रदान कीजिये। मंगल करनेवाली, मंगलकी आश्रयस्वरूपिणी, मंगलमयी तथा मंगल प्रदान करनेवाली हे मंगलेश्वरि! हे भवे! मेरे मंगलके लिये आप मुझे मंगल प्रदान कीजिये। सबको आश्रय देनेवाली, सब कुछ जाननेवाली, सर्वशक्तिमयी तथा सभी लोगोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली हे देवि! हे भवे! मेरा सम्पूर्ण अभिलषित मुझे प्रदान कीजिये। पुण्यमय विग्रहवाली, पुण्योंकी बीजस्वरूपा, सनातनी, पुण्यको आश्रय देनेवाली, पुण्यवानोंकी शरणस्थली तथा पुण्य प्रदान करनेवाली हे भवे! मुझे पुण्य प्रदान कीजिये। सभी फसलोंकी आलयस्वरूपिणी, सभी प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न, सभी फसलें प्रदान करनेवाली, (समयपर) सभी फसलोंको अपनेमें विलीन कर लेनेवाली तथा सभी फसलोंकी आत्मस्वरूपा हे भवे! मुझे फसलें प्रदान कीजिये। राजाओंकी सर्वस्व, राजाओंसे सम्मान पानेवाली, राजाओंको सुखी करनेवाली तथा भूमि प्रदान करनेवाली हे भूमे! मुझे भूमि प्रदान कीजिये॥ ५२—५७१/२॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस महान् पुण्यप्रद स्तोत्रका पाठ करता है, वह करोड़ों जन्मोंतक बलवान् तथा राजाओंका अधीश्वर होता है। इसके पढ़नेसे मनुष्य भूमिदान करनेसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेते हैं। हे मुने! इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्य दानमें दी गयी भूमिका हरण करने, अम्बुवाची दिनोंमें भूमि-सम्बन्धी कार्य करने, बिना आज्ञाके दूसरेके कुएँमें कूप-खनन करने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, पृथ्वीपर वीर्यत्याग करने तथा भूमिपर दीपक आदि रखनेसे होनेवाले पापसे निश्चितरूपसे मुक्त हो जाता है और साथ ही वह एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे होनेवाला पुण्य भी प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। भूमिदेवीका यह महान् स्तोत्र सभी प्रकारका कल्याण करनेवाला है॥ ५८—६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'भूमिस्तोत्रवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

पृथ्वीके प्रति शास्त्र-विपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

नारदजी बोले—भूमिका दान करनेसे होनेवाले पुण्य तथा उसका हरण करनेसे होनेवाले पाप, दूसरेकी भूमि छीननेसे होनेवाले पाप, दूसरेके द्वारा खोदे गये जलहीन कुएँको बिना उसकी आज्ञा लिये खोदने, अम्बुवाची दिनोंमें भूखनन करने, पृथ्वीपर वीर्य-त्याग करने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उसे मैं यत्नपूर्वक सुनना चाहता हूँ। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीसम्बन्धी पाप हो, उसे तथा उसके निराकरणका उपाय बतलाइये॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—जो मनुष्य भारतवर्षमें वितस्ति (बित्ता)-मात्र भूमि भी किसी सन्ध्योपासनासे पवित्र हुए ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको सब प्रकारकी फसलोंसे सम्पन्न भूमि प्रदान करता है, वह उस भूमिमें विद्यमान धूलके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक भगवान् विष्णुके लोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणको ग्राम, भूमि और धान्यका दान करता है, उसके पुण्यसे दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर जगदम्बाके लोकमें स्थान पाते हैं॥ ६॥

जो सज्जन भूमिदानके अवसरपर दाताके इस कर्मका अनुमोदन करता है, वह अपने मित्रों तथा सगोत्री बन्धुओंसहित वैकुण्ठलोकको प्राप्त होता है॥ ७॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणकी अपने अथवा दूसरेके द्वारा दी गयी आजीविकाको उससे छीनता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त कालसूत्रनरकमें रहता है। इस पापके प्रभावसे उस व्यक्तिके पुत्र-पौत्र आदि भूमिसे हीन रहते हैं। वह लक्ष्मीरहित, पुत्रविहीन तथा दरिद्र होकर भीषण रौरवनरकमें पड़ता है॥ ८-९॥

जो मनुष्य गोचर भूमिको जोतकर उससे उपार्जित धान्य ब्राह्मणको देता है, वह देवताओंके दिव्य सौ वर्षोंतक कुम्भीपाकनरकमें निवास करता है॥ १०॥

जो मनुष्य गायोंके रहनेके स्थान, तड़ाग तथा मार्गको जोतकर वहाँसे पैदा किये हुए अन्नका दान करता है, वह चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्र नामक नरकमें पड़ा रहता है॥ ११॥

जो मनुष्य किसी दूसरेके कुएँ, तड़ाग आदिमेंसे पाँच मृत्तिका-पिण्डोंको निकाले बिना ही उसमें स्नान करता है, वह नरक प्राप्त करता है और उसका स्नान भी निष्फल होता है॥ १२॥

जो कामासक्त पुरुष एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्यका त्याग करता है, वहाँकी जमीनपर जितने धूलकण हैं, उतने वर्षोंतक वह रौरवनरकमें वास करता है॥ १३॥

जो मनुष्य अम्बुवाचीकालमें भूमि खोदनेका कार्य करता है, वह कृमिदंश नामक नरकमें जाता है और वहाँपर चार युगोंतक उसकी स्थिति रहती है॥ १४॥

जो मूर्ख मनुष्य किसी दूसरेके लुप्त कुएँपर अपना कुआँ तथा लुप्त बावलीपर अपनी बावली बनवाता है, उस कार्यका सारा फल उस दूसरे व्यक्तिको मिल जाता है और वह स्वयं तप्तकुण्ड नामक नरकमें पड़ता है। वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कष्ट भोगते हुए वह पड़ा रहता है॥ १५-१६॥

जो मनुष्य दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को साफ करके स्नान करता है, उस कीचड़में जितने कण होते हैं, उतने वर्षोंतक वह ब्रह्मलोकमें निवास करता है॥ १७॥

जो मूर्ख मनुष्य भूमिपतिके पितरको पिण्ड दिये बिना श्राद्ध करता है, वह अवश्य ही नरकगामी होता है॥ १८॥

जो व्यक्ति भूमिपर दीपक रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है और जो भूमिपर शंख रखता है, वह दूसरे जन्ममें कुष्ठरोगसे ग्रसित होता है॥ १९॥

जो मनुष्य मोती, माणिक्य, हीरा, सुवर्ण तथा मणि—इन पाँच रत्नोंको भूमिपर रखता है, वह सात जन्मोंतक अन्धा रहता है॥ २०॥

जो मनुष्य शिवलिंग, भगवती शिवाकी प्रतिमा तथा शालग्रामशिला भूमिपर रखता है, वह सौ मन्वन्तरतक कृमिभक्ष नामक नरकमें वास करता है॥ २१॥

जो शंख, यन्त्र, शालग्रामशिलाका जल, पुष्प और तुलसीदलको भूमिपर रखता है; वह निश्चितरूपसे नरकमें वास करता है॥ २२॥

जो मन्दबुद्धि मनुष्य जपमाला, पुष्पमाला, कपूर तथा गोरोचनको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे नरकगामी होता है॥ २३॥

चन्दनकाष्ठ, रुद्राक्ष और कुशकी जड़ जमीनपर रखनेवाला मनुष्य एक मन्वन्तरपर्यन्त नरकमें वास करता है॥ २४॥

जो मनुष्य पुस्तक तथा यज्ञोपवीत भूमिपर रखता है, वह अगले जन्ममें विप्रयोनिमें उत्पन्न नहीं होता है॥ २५॥

जो सभी वर्णोंके द्वारा पूज्य ग्रन्थियुक्त यज्ञोपवीतको भूमिपर रखता है, वह निश्चितरूपसे इस लोकमें ब्रह्म-हत्याके समान पापका भागी होता है॥ २६॥

जो मनुष्य यज्ञ करके यज्ञभूमिको दूधसे नहीं सींचता है, वह सात जन्मोंतक कष्ट भोगता हुआ तप्तभूमि नामक नरकमें निवास करता है॥ २७॥

जो मनुष्य भूकम्प तथा ग्रहणके अवसरपर भूमि खोदता है, वह महापापी जन्मान्तरमें निश्चितरूपसे अंगहीन होता है॥ २८॥

हे महामुने! इस धरतीपर सभी लोगोंके भवन हैं; इसलिये यह 'भूमि', कश्यपकी पुत्री होनेके कारण 'काश्यपी', स्थिररूपमें रहनेके कारण 'अचला', विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्त रूपोंवाली होनेके कारण 'अनन्ता' और पृथुकी कन्या होने अथवा सर्वत्र फैली रहनेके कारण 'पृथिवी' कही गयी है॥ २९-३०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'पृथ्वीके उपाख्यानमें नरकफलप्राप्तिवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

गंगाकी उत्पत्ति एवं उनका माहात्म्य

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान मैं सुन चुका; अब आप गंगाका उपाख्यान कहिये। सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा और स्वयं विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात वे श्रेष्ठ गंगा प्राचीनकालमें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार, किस युगमें तथा किसके द्वारा प्रार्थित और प्रेरित होकर गयीं। मैं इस पापनाशक, पुण्यप्रद तथा मंगलकारी प्रसंगको क्रमसे सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजराजेश्वर श्रीमान् सगर सूर्यवंशी राजा हो चुके हैं। वैदर्भी तथा शैव्या नामोंवाली उनकी दो मनोहर भार्याएँ थीं। उनकी शैव्या नामक पत्नीसे अत्यन्त सुन्दर तथा कुलकी वृद्धि करनेवाला एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो असमंज—इस नामसे विख्यात हुआ॥ ४-५॥

उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी आराधना की और शिवजीके वरदानसे उसने गर्भ धारण किया॥ ६॥

पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसने एक मांसपिण्डको जन्म दिया। उसे देखकर तथा शिवका ध्यान करके वह बार-बार ऊँचे स्वरमें विलाप करने लगी॥ ७॥

तब भगवान् शंकर ब्राह्मणका रूप धारणकर उसके पास गये और उन्होंने उस मांसपिण्डको बराबर-बराबर साठ हजार भागोंमें विभक्त कर दिया॥ ८॥

वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें हो गये। वे महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके शरीरकी कान्ति ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर देनेवाली थी॥ ९॥

कपिलमुनिके शापसे वे सभी जलकर भस्म हो गये। यह समाचार सुनकर राजा सगर बहुत रोये और वे घोर जंगलमें चले गये॥ १०॥

तदनन्तर उनके पुत्र असमंज गंगाको लानेके निमित्त तपस्या करने लगे। इस प्रकार एक लाख वर्षतक तप करनेके पश्चात् वे कालयोगसे मर गये॥ ११॥

उन असमंजके पुत्र अंशुमान् भी गंगाको पृथ्वीपर ले

आनेके उद्देश्यसे एक लाख वर्षतक तप करनेके उपरान्त कालयोगसे मृत्युको प्राप्त हो गये॥ १२॥

अंशुमान्‌के पुत्र भगीरथ थे। वे भगवान्‌के परम भक्त, विद्वान्, विष्णुके भक्त, गुणवान्, अजर-अमर तथा वैष्णव थे। उन्होंने गंगाको ले आनेके लिये एक लाख वर्षतक तप करके भगवान् श्रीकृष्णका साक्षात् दर्शन किया। वे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे सम्पन्न थे, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे हाथमें मुरली धारण किये हुए थे, उनकी किशोर अवस्था थी, वे गोपवेषमें थे और कभी गोपालसुन्दरीके रूपमें हो जाते थे, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही उन्होंने यह रूप धारण किया था, उस समय ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि देवता अपनी इच्छाके अधीन उन परिपूर्णतम परब्रह्मस्वरूप प्रभु श्रीकृष्णका स्तवन कर रहे



थे, मुनियोंने उनके समक्ष अपने मस्तक झुका रखे थे, सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी, निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर कृपा करनेवाले उन श्रीकृष्णका मुखमण्डल मन्द मुसकानयुक्त तथा प्रसन्नतासे भरा हुआ था; वे अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुए थे और रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित हो रहे थे—ऐसे स्वरूपवाले भगवान् कृष्णको देखकर राजा भगीरथ बार-बार प्रणामकर उनकी स्तुति करने लगे। उन्होंने लीलापूर्वक श्रीकृष्णसे अपने पूर्वजोंको तारनेवाला अभीष्ट वर प्राप्त कर लिया। उस समय भगवान्‌की स्तुति करनेसे उनका रोम-रोम पुलकित हो गया था॥ १३—१९॥

श्रीभगवान् बोले—हे सुरेश्वरि! सरस्वतीके शापके प्रभावसे आप शीघ्र ही भारतवर्षमें जाइये और मेरी आज्ञासे राजा सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र कीजिये॥ २०॥

आपसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर वे सब पवित्र हो जायँगे और मेरा स्वरूप धारण करके दिव्य रथपर आरूढ़ होकर मेरे लोकको प्राप्त होंगे। वे जन्म-जन्मान्तरमें किये गये कर्मोंके फलोंका समूल उच्छेद करके सर्वथा निर्विकार भावसे युक्त होकर मेरे पार्षदके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे॥ २१-२२॥

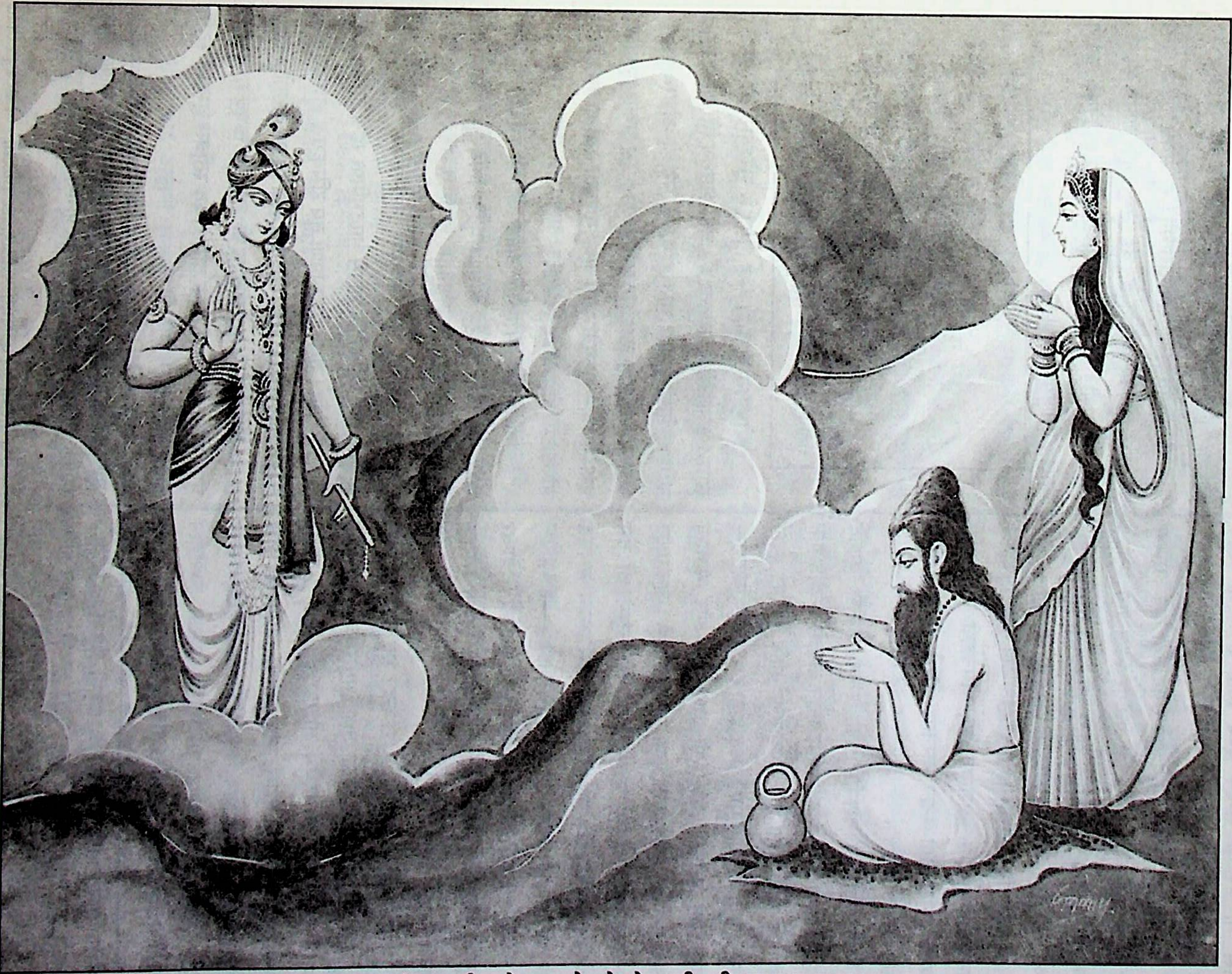
श्रुतिमें ऐसा कहा गया है कि भारतवर्षमें मनुष्योंके द्वारा करोड़ों जन्मोंमें किये गये दुष्कर्मके परिणामस्वरूप जो भी पाप संचित रहता है, वह गंगाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाता है॥ २३॥

गंगाजीके स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा दस गुना पुण्य गंगामें मौसल* स्नान करनेसे प्राप्त होता है। सामान्य दिनोंमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके सैकड़ों जन्मोंके पाप विनष्ट हो जाते हैं—ऐसा श्रुति कहती है। इच्छापूर्वक इस जन्ममें किये गये तथा अनेक पूर्वजन्मोंके संचित जो कुछ भी मनुष्योंके ब्रह्महत्या आदि पाप हैं, वे सब मौसलस्नान करनेमात्रसे नष्ट हो जाते हैं॥ २४—२६॥

हे विप्र! पुण्यप्रद दिनोंमें गंगास्नानसे होनेवाले पुण्यका वर्णन तो वेद भी नहीं कर सकते। आगमशास्त्रके जो विद्वान् हैं, वे आगमोंमें प्रतिपादित कुछ-कुछ फल बताते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता भी पुण्यप्रद दिनोंके स्नानका सम्पूर्ण फल नहीं बता सकते। हे सुन्दरि! अब सामान्य दिवसोंमें संकल्पपूर्वक किये गये स्नानका फल सुनो। साधारण दिवसके संकल्पपूर्वक स्नानका पुण्य मौसलस्नानसे दस गुना अधिक होता है। उससे भी तीस गुना पुण्य सूर्य-संक्रान्तिके दिन स्नान करनेसे होता है॥ २७—२९॥

अमावस्यातिथिको भी स्नान करनेसे उसी सूर्यसंक्रान्तिके स्नानके समान पुण्य होता है। किंतु दक्षिणायनमें गंगा-स्नान करनेसे उसका दूना और उत्तरायणमें गंगा-स्नान करनेसे मनुष्योंको उससे दस गुना पुण्य प्राप्त होता है। चातुर्मास तथा पूर्णिमाके अवसरपर स्नान करनेसे अनन्त पुण्य प्राप्त होता है, अक्षय तृतीयाके दिन स्नान

* गंगाको प्रणाम करके प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले। इसे मौसलस्नान कहते हैं।



गंगा-भगीरथके सामने गोपवेषधारी श्रीकृष्णका प्राकट्य

करनेसे भी उसीके समान पुण्य होता है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ ३०-३१॥

इन विशेष पर्वोंपर किये गये स्नान तथा दान असंख्य पुण्य-फल प्रदान करते हैं। इन पर्वोंपर किये गये स्नान-दानका फल सामान्य दिवसोंमें किये गये स्नान तथा दानकी अपेक्षा सौ गुना अधिक होता है॥ ३२॥

मन्वन्तरादि[१] तथा युगादि[२] तिथियों, माघ शुक्ल सप्तमी, भीष्माष्टमी, अशोकाष्टमी, रामनवमी तथा नन्दा तिथिको दुर्लभ गंगा-स्नान करनेपर उससे भी दूना फल मिलता है॥ ३३-३४॥

गंगादशहराकी दशमीतिथिको स्नान करनेसे युगादि तिथियोंके तुल्य और वारुणीपर्वपर स्नान करनेसे नन्दातिथिके तुल्य फल प्राप्त होता है। महावारुणी आदि पर्वोंपर स्नान करनेसे उससे चार गुना पुण्य प्राप्त होता है। महामहावारुणी-पर्वपर स्नान करनेसे उससे भी चार गुना और सामान्य स्नानकी अपेक्षा करोड़ गुना पुण्य प्राप्त होता है। चन्द्रग्रहण तथा सूर्यग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे उससे भी दस गुना पुण्य मिलता है और अर्धोदयकालमें स्नान करनेसे उससे भी सौ गुना फल प्राप्त होता है॥ ३५—३७॥

गंगा और भगीरथके समक्ष ऐसा कहकर देवेश्वर श्रीहरि चुप हो गये। तब गंगा भक्तिभावसे अपना मस्तक झुकाकर कहने लगीं॥ ३८॥

गंगा बोलीं—हे नाथ! हे राजेन्द्र! भारतीके पूर्व शाप और साथ ही आपकी आज्ञा तथा भगीरथकी तपस्याके कारण मैं इस समय भारतवर्षमें जा रही हूँ। किंतु हे प्रभो! वहाँ जानेपर पापीलोग मुझमें स्नान करके अपने जो कुछ पाप मुझे दे देंगे, वे मेरे पाप किस प्रकार नष्ट होंगे; इसका उपाय मुझे बताइये॥ ३९-४०॥

हे देवेश! मुझे भारतवर्षमें कितने समयतक रहना होगा और पुनः भगवान् विष्णुके परम धामको मैं कब प्राप्त होऊँगी?॥ ४१॥

हे सर्ववित्! हे सर्वान्तरात्मन्! हे सर्वज्ञ! मेरा अन्य जो कुछ भी अभिलषित है, वह सब आप जानते ही हैं। अतः हे प्रभो! मेरे उन अभीष्टोंके पूर्ण होनेका उपाय बतला दीजिये॥ ४२॥



श्रीभगवान् बोले—हे गंगे! हे सुरेश्वरि! मैं तुम्हारी समस्त इच्छाओंको जानता हूँ। वहाँ भारतवर्षमें लवणसमुद्र नदीस्वरूपिणी तुम्हारे पति होंगे। वे मेरे ही अंशस्वरूप हैं और तुम साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपिणी हो। इस प्रकार पृथ्वीपर एक गुणवान् पुरुषके साथ एक गुणवती स्त्रीका मेल बड़ा ही उत्तम होगा॥ ४३-४४॥

भारतवर्षमें सरस्वती आदि जो भी नदियाँ हैं, उन सबमें क्रीडाकी दृष्टिसे लवणसमुद्रके लिये तुम्ही सर्वाधिक सौभाग्यवती होओगी॥ ४५॥

हे देवेशि! इस समयसे कलियुगके पाँच हजार वर्षोंतक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतभूमिपर रहना होगा॥ ४६॥

हे देवि! रसिकास्वरूपिणी तुम रसिकराज लवणसमुद्रसे संयुक्त होकर उनके साथ एकान्तमें सदा विहार करोगी॥ ४७॥

भारतवर्षमें रहनेवाले सभी लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे और भगीरथके द्वारा रचित स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे॥ ४८॥

१- आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल तृतीया, भाद्र शुक्ल तृतीया, फाल्गुन अमावास्या, पौष शुक्ल एकादशी, आषाढ़ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल सप्तमी, श्रावण कृष्ण अष्टमी, आषाढ़ पूर्णिमा, कार्तिक पूर्णिमा, फाल्गुन पूर्णिमा, चैत्र पूर्णिमा और ज्येष्ठ पूर्णिमा—ये स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं। (मत्स्यपुराण १७। ६—८)

२- सत्ययुग—वैशाख शुक्ल तृतीया, त्रेतायुग—कार्तिक शुक्ल नवमी, द्वापर—माघ पूर्णिमा एवं कलियुग—भाद्र शुक्ल त्रयोदशी—ये सत्ययुग आदि चारों युगोंकी आरम्भिक तिथियाँ हैं (मत्स्यपुराण १७। ४)।

जो कण्वशाखामें बतायी गयी ध्यान-विधिसे तुम्हारा ध्यान करके तुम्हारी पूजा तथा स्तुति और तुम्हें नित्य प्रणाम करेगा, उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होगा॥ ४९॥

जो मनुष्य सौ योजन दूरसे भी 'गंगा, गंगा'—इस प्रकार उच्चारण करता है, वह सारे पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा विष्णुलोकको प्राप्त करता है॥ ५०॥

हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो पाप तुम्हें प्राप्त होगा, वह मूलप्रकृति देवी भुवनेश्वरीके भक्तोंके स्पर्शमात्रसे विनष्ट हो जायगा॥ ५१॥

हजारों पापी प्राणियोंके शवके स्पर्शसे जो पाप तुम्हें लगेगा, वह भगवतीके मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले पुण्यात्मा भक्तोंके स्नानसे नष्ट हो जायगा॥ ५२॥

हे शुभे! तुम सरस्वती आदि श्रेष्ठ नदियोंके साथ भारतवर्षमें निवास करोगी और वहाँ प्राणियोंको पापसे मुक्त करती रहोगी॥ ५३॥

जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तत्काल तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रज:कणका स्पर्शमात्र हो जानेसे पापी भी पवित्र हो जायगा और उन रज:कणोंकी जितनी संख्या होगी, उतने वर्षोंतक वह निश्चितरूपसे देवीलोकमें निवास करेगा॥ ५४१/२॥

जो मनुष्य ज्ञान तथा भक्तिसे युक्त होकर मेरे नामका स्मरण करते हुए तुम्हारे जलमें अपने प्राणोंका त्याग करेंगे, वे श्रीहरिके लोकमें जायँगे और वहाँपर दीर्घकालतक उनके श्रेष्ठ पार्षदोंके रूपमें प्रतिष्ठित होंगे और वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखेंगे॥ ५५-५६१/२॥

महान् पुण्यसे किसी मृत प्राणीका शव तुम्हारे जलमें आ सकता है। जितने दिनोंतक उसकी स्थिति तुम्हारेमें रहती है, उतने समयतक वह वैकुण्ठमें वास करता है। तदनन्तर जब वह अनेक शरीर धारण करके अपने कर्मोंका फल भोग चुकता है, तब मैं उसे सारूप्य मुक्ति दे देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ॥ ५७-५८१/२॥

यदि कोई अज्ञानी मनुष्य भी तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राणोंका त्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान कर देता हूँ और उसे अपना पार्षद बना लेता हूँ। अथवा तुम्हारे नामका स्मरण करके कोई व्यक्ति अन्यत्र कहीं भी यदि प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सालोक्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह ब्रह्माकी आयुपर्यन्त मेरे लोकमें निवास करता है॥ ५९-६०१/२॥

इसी प्रकार यदि कोई मनुष्य तुम्हारे नामका स्मरण करके अन्यत्र किसी भी स्थानपर प्राणत्याग करता है, तो मैं उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करता हूँ और वह असंख्य प्राकृतिक प्रलय देखता है। तदनन्तर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानमें बैठकर वह मेरे पार्षदोंके साथ गोलोकमें जा पहुँचता है और निश्चय ही मेरे तुल्य हो जाता है॥ ६१-६२१/२॥

प्रतिदिन मेरे मन्त्रकी उपासना तथा मेरा नैवेद्य ग्रहण करनेवाले भक्तोंके लिये तीर्थ अथवा अतीर्थमें मृत्युको प्राप्त होनेमें कुछ भी अन्तर नहीं है। मेरा ऐसा भक्त तीनों लोकोंको सहजतापूर्वक पवित्र करनेमें समर्थ है। अन्तमें मेरे वे भक्त बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक जाते हैं। साथ ही, मेरे भक्त जिनके बान्धव हैं; वे तथा उनके पशु आदि भी रत्ननिर्मित विमानसे अत्यन्त दुर्लभ गोलोकमें चले जाते हैं। हे सती! जो ज्ञानीजन चाहे जहाँ भी ज्ञानपूर्वक मेरा स्मरण करते हैं, वे मेरी भक्तिके प्रभावसे जीवन्मुक्त और पवित्र हो जाते हैं॥ ६३—६६१/२॥

[हे नारद!] गंगासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरिने उन भगीरथसे कहा—अब आप भक्तिपूर्वक इन गंगाकी स्तुति तथा पूजा कीजिये॥ ६७१/२॥

तदनन्तर भगीरथने कौथुमशाखामें बताये गये ध्यान तथा स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक उन गंगाकी बार-बार स्तुति तथा पूजा की। इसके बाद भगीरथ तथा गंगाने परमेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम किया तथा वे प्रभु अन्तर्धान हो गये॥ ६८-६९१/२॥

नारदजी बोले—हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! राजा भगीरथने किस ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिसे गंगाका पूजन किया, यह मुझे बतलाइये॥ ७०१/२॥

श्रीनारायण बोले—राजा भगीरथने नित्य-क्रिया तथा स्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारणकर इन्द्रियोंको नियन्त्रित करके भक्तिपूर्वक गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा—इन छ: देवताओंकी विधिवत् पूजा की। इन छ: देवताओंकी सम्यक् पूजा करके वे गंगापूजनके अधिकारी हुए॥ ७१-७२१/२॥

मनुष्यको चाहिये कि विघ्न दूर करनेके लिये गणेशकी, आरोग्यके लिये सूर्यकी, पवित्रताके लिये अग्निकी, लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये विष्णुकी, ज्ञानके लिये

ज्ञानेश्वर शिवकी तथा मुक्ति प्राप्त करनेके लिये भगवती शिवाकी पूजा करे। इन देवताओंकी पूजा कर लेनेके बाद ही विद्वान् पुरुष अन्य पूजामें सफलता प्राप्त कर सकता है, अन्यथा इसके विपरीत परिणाम होता है। हे नारद! जिस ध्यानके द्वारा भगीरथने गंगाका ध्यान किया था, उस ध्यानको सुनिये॥ ७३—७५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'गंगोपाख्यानवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

गंगाके ध्यान एवं स्तवनका वर्णन, गोलोकमें श्रीराधा-कृष्णके अंशसे गंगाके प्रादुर्भावकी कथा

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] कण्वशाखामें कहा गया यह देवी-ध्यान सभी पापोंका नाश करनेवाला है। गंगाका वर्ण श्वेतकमलके समान स्वच्छ है, ये समस्त पापोंका नाश करनेवाली हैं, भगवान् श्रीकृष्णके विग्रहसे आविर्भूत हैं, परम साध्वी गंगा उन्हीं श्रीकृष्णके समान हैं, इन्होंने अग्निके समान पवित्र वस्त्र धारण कर रखा है, ये रत्नमय भूषणोंसे विभूषित हैं, ये श्रेष्ठ गंगा शरत्कालीन पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रोंकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली हैं। मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्नतासे इनका मुखमण्डल शोभा पा रहा है, इनका तारुण्य सदा स्थिर रहनेवाला है, ये भगवान् नारायणकी प्रिया हैं, शान्त स्वभाववाली हैं और उनके सौभाग्यसे समन्वित हैं, ये मालतीके पुष्पोंकी मालासे विभूषित चोटी धारण की हुई हैं, इनका ललाट चन्दनकी बिन्दियोंके साथ



सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित है। इनके गण्डस्थलपर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थोंसे नाना प्रकारकी चित्रकारियाँ की हुई हैं, इनके परम मनोहर दोनों होठ पके हुए बिम्बाफलकी लालिमाको तिरस्कृत कर रहे हैं, इनकी मनोहर दन्तपंक्ति मोतियोंकी पंक्ति-प्रभाको भी तिरस्कृत कर रही है, इनके सुन्दर मुखपर कटाक्षपूर्ण चितवनसे युक्त मनोहर नेत्र शोभा पा रहे हैं, इन्होंने कठोर तथा श्रीफलके आकारवाले स्तनयुगल धारण कर रखे हैं, ये केलेके खम्भोंको भी लज्जित कर देनेवाले विशाल तथा कठोर जघनप्रदेशसे सम्पन्न हैं, इनके मनोहर दोनों चरणारविन्द स्थलपद्मकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर रहे हैं, रत्नमयी पादुकाओंसे युक्त इन चरणोंमें कुमकुम तथा महावर शोभित हो रहे हैं, देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दार पुष्पोंके रजकणसे ये चरण लाल हो गये हैं, देवता-सिद्ध-मुनीश्वरगणोंके द्वारा प्रदत्त अर्घसे इनके चरण सदा सिक्त रहते हैं, ये चरणकमल तपस्वियोंके जटा-समूहरूपी भ्रमरश्रेणियोंसे सुशोभित हैं, ये चरण मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको मोक्ष तथा सकाम पुरुषोंको सभी प्रकारके भोग प्रदान करनेवाले हैं! श्रेष्ठ, वरेण्य, वर देनेवाली, भक्तोंपर कृपा करनेवाली, मनुष्योंको भगवान् विष्णुका पद प्रदान करनेवाली विष्णुपदी नामसे विख्यात तथा साध्वी भगवती गंगाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १—११$^{१}/_{२}$॥

हे ब्रह्मन्! इसी ध्यानके द्वारा तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली पवित्र गंगाका ध्यान करके सोलह प्रकारके पूजनोपचारोंसे इनकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और

मनोहर शय्या—ये अर्पणयोग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भक्तिपूर्वक गंगाको अर्पण करके दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे। इस विधिसे गंगाकी विधिवत् पूजा करके वह मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ १२—१५१/२॥

नारदजी बोले—हे देवेश! हे लक्ष्मीकान्त! हे जगत्पते! अब मैं भगवान् विष्णुकी चिरसंगिनी विष्णुपदी गंगाके पापनाशक तथा पुण्यदायक स्तोत्रका श्रवण करना चाहता हूँ॥ १६१/२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं उस पापनाशक तथा पुण्यप्रद स्तोत्रको कहूँगा। जो भगवान् शिवके संगीतसे मुग्ध श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत तथा राधाके अंगद्रवसे सम्पन्न हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १७-१८॥

सृष्टिके आरम्भमें गोलोकके रासमण्डलमें जिनका आविर्भाव हुआ है और जो सदा शंकरके सान्निध्यमें रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ १९॥

जो कार्तिक-पूर्णिमाके दिन गोप तथा गोपियोंसे भरे राधा-महोत्सवके शुभ अवसरपर सदा विद्यमान रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २०॥

जो गोलोकमें करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी लाख गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २१॥

जो साठ लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईसे वैकुण्ठलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २२॥

जो ब्रह्मलोकमें तीन लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २३॥

जो तीन लाख योजन चौड़ी और उससे भी चार गुनी लम्बी होकर शिवलोकमें विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २४॥

जो ध्रुवलोकमें एक लाख योजन चौड़ाई तथा उससे भी सात गुनी लम्बाईसे विराजमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २५॥

जो एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर चन्द्रलोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २६॥

जो सूर्यलोकमें साठ हजार योजन चौड़े तथा उससे भी दस गुने लम्बे प्रस्तारमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २७॥

जो तपोलोकमें एक लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २८॥

जो जनलोकमें एक हजार योजन चौड़ाई तथा उससे भी दस गुनी लम्बाईमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ २९॥

जो दस लाख योजन चौड़ी तथा उससे भी पाँच गुनी लम्बी होकर महर्लोकमें फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३०॥

जो चौड़ाईमें एक हजार योजन और लम्बाईमें उससे भी सौ गुनी होकर कैलासपर फैली हुई हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३१॥

जो एक सौ योजन चौड़ी तथा उससे भी दस गुनी लम्बी होकर 'मन्दाकिनी' नामसे इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३२॥

जो दस योजन चौड़ी तथा लम्बाईमें उससे भी दस गुनी होकर पाताललोकमें 'भोगवती' नामसे विद्यमान हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३३॥

जो एक कोसभर चौड़ी तथा कहीं-कहीं इससे भी कम चौड़ी होकर 'अलकनन्दा' नामसे पृथ्वीलोकमें प्रतिष्ठित हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ॥ ३४॥

जो सत्ययुगमें दुग्धवर्ण, त्रेतायुगमें चन्द्रमाकी प्रभा और द्वापरमें चन्दनकी आभावाली रहती हैं; उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जो कलियुगमें केवल पृथ्वीतलपर जलकी प्रभावाली तथा स्वर्गलोकमें सर्वदा दुग्धके समान आभावाली रहती हैं, उन गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके जलकणोंका स्पर्श होते ही पापियोंके हृदयमें उत्पन्न हुआ ज्ञान उनके करोड़ों जन्मोंके संचित ब्रह्महत्या आदि पापोंको भस्म कर देता है, [उन भगवती गंगाको मैं प्रणाम करता हूँ]॥ ३५—३७॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार इक्कीस श्लोकोंमें गंगाकी यह स्तुति कही गयी है। यह श्रेष्ठ स्तोत्र पापोंका नाश तथा पुण्योंकी उत्पत्ति करनेवाला है॥ ३८॥

जो मनुष्य सुरेश्वरी गंगाकी भक्तिपूर्वक पूजा करके प्रतिदिन इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह नित्य ही अश्वमेध यज्ञका फल प्राप्त करता है; इसमें कोई संशय नहीं है॥ ३९॥

इस स्तोत्रके प्रभावसे पुत्रहीन मनुष्य पुत्र प्राप्त कर लेता है, स्त्रीहीन मनुष्यको स्त्रीकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी मनुष्य रोगरहित हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ प्राणी बन्धनमुक्त हो जाता है, कीर्तिरहित मनुष्य सुन्दर यशसे सम्पन्न हो जाता है और मूर्ख व्यक्ति विद्वान् हो जाता है; यह सर्वथा सत्य है। जो प्रात:काल उठकर इस पवित्र गंगास्तोत्रका पाठ करता है, दु:स्वप्नमें भी उसका मंगल ही होता है और वह गंगा-स्नानका फल प्राप्त कर लेता है॥ ४०-४११/२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस स्तोत्रके द्वारा गंगाकी स्तुति करके और फिर उन्हें अपने साथ लेकर वे भगीरथ उस स्थानपर पहुँचे, जहाँ राजा सगरके पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गंगाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुके सम्पर्कमें आते ही वे सगरपुत्र तत्काल वैकुण्ठ चले गये। वे गंगा भगीरथके द्वारा लायी गयीं, इसलिये 'भागीरथी' नामसे विख्यात हुईं॥ ४२-४३१/२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने सारभूत और पुण्य तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले उत्तम गंगोपाख्यानका सम्पूर्ण वर्णन कर दिया! अब आप आगे और क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४१/२॥

नारदजी बोले—हे प्रभो! तीन मार्गोंसे संचरण करनेवाली तथा समस्त लोकोंको पवित्र करनेवाली गंगा किसलिये, कहाँ और किस प्रकारसे आविर्भूत हुईं? यह सब मुझे बतलाइये। वहाँपर जो-जो लोग स्थित थे, उन्होंने क्या श्रेष्ठ कार्य किया? आप इन सभी बातोंको विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये॥ ४५-४६१/२॥

श्रीनारायण बोले—एक समयकी बात है—कार्तिक पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण राधाकी विधिवत् पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मा आदि देवता तथा शौनक आदि ऋषिगण श्रीकृष्णके द्वारा पूजित उन राधाकी प्रसन्नचित्त होकर विधिवत् पूजा करके वहींपर स्थित हो गये॥ ४७-४८१/२॥

इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती वीणा लेकर सुन्दर ताल-स्वरके साथ मनोहर गीत गाने लगीं॥ ४९१/२॥

तब ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर उन सरस्वतीको सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित एक हार समर्पित किया। इसी प्रकार शिवजीने उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि; भगवान् श्रीकृष्णने सभी रत्नोंसे श्रेष्ठतम कौस्तुभमणि, राधाने अमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक श्रेष्ठ हार, भगवान् नारायणने एक मनोहर माला, लक्ष्मीजीने बहुमूल्य रत्नोंसे जटित स्वर्ण-कुण्डल; विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मभक्ति; धर्मने धार्मिक बुद्धि तथा लोकमें महान् यशका वरदान; अग्निदेवताने अग्निके समान पवित्र वस्त्र तथा पवनदेवने मणिनिर्मित नूपुर भगवती सरस्वतीको प्रदान किये॥ ५०—५४१/२॥

इतनेमें ब्रह्माजीसे प्रेरित होकर भगवान् शंकर रासके उल्लासको बढ़ानेकी शक्तिसे सम्पन्न श्रीकृष्णसम्बन्धी मधुर गीत गाने लगे। उसे सुनकर सभी देवता सम्मोहित हो गये और चित्र-विचित्र पुतलेकी भाँति प्रतीत होने लगे।



बड़ी कठिनाईसे किसी प्रकार चेतना लौटनेपर उन्होंने देखा कि रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलमय हो गया है और वह राधा तथा श्रीकृष्णसे रहित है॥ ५५—५७॥

तब सभी गोप, गोपियाँ, देवता और द्विज उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। वहाँ उपस्थित ब्रह्माजीने ध्यानके द्वारा श्रीकृष्णका सारा पवित्र विचार जान लिया कि वे श्रीकृष्ण ही राधाके साथ मिलकर द्रवमय हो गये हैं। तदनन्तर ब्रह्मा आदि सभी देवता परमेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। पुन: उन्होंने कहा—हे विभो! हमलोगोंका यही अभिलषित वर है कि आप

हमें अपने श्रीविग्रहका दर्शन करा दें॥ ५८-५९१/२॥

इसी बीच आकाशवाणी हुई। पूर्णरूपसे स्पष्ट तथा मधुरतायुक्त उस वाणीको सभी लोगोंने सुना कि 'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण हूँ तथा मेरी शक्तिस्वरूपा यह राधा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली हैं। [हम दोनोंने ही यह जलमय विग्रह धारण किया है।] मेरे तथा इन राधाके देहसे आप सबको क्या करना है? हे सुरेश्वरो! मनु, मानव, मुनि तथा वैष्णव—ये सभी लोग मेरे मन्त्रोंसे पवित्र होकर मेरा दर्शन करनेके लिये मेरे धाममें आयेंगे। इसी प्रकार यदि आपलोग भी मेरे वास्तविक श्रीविग्रहका प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहते हैं, तो आपलोग ऐसा प्रयत्न कीजिये जिससे शिवजी वहींपर रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। हे विधातः! हे ब्रह्मन्! आप स्वयं जगद्गुरु शिवको आदेश कीजिये कि वे सम्पूर्ण अभीष्ट फल प्रदान करनेवाले बहुत-से अपूर्व मन्त्रों, स्तोत्रों, ध्यानों तथा पूजनकी विधियोंसे युक्त वेदांगस्वरूप अत्यन्त मनोहर तथा विशिष्ट शास्त्रकी रचना करें। मेरे मन्त्र, कवच और स्तोत्रसे सम्पन्न वह शिवरचित शास्त्र यत्नपूर्वक गुप्त रखा जाना चाहिये। मेरे जिन मन्त्रोंके गुप्त रखनेसे पापीलोग मुझसे विमुख रहें, वैसा ही कीजिये। किंतु हजारों-सैकड़ोंमें यदि कोई मेरे मन्त्रका उपासक पुण्यात्मा मिल जाय, तो उसके समक्ष मेरे मन्त्रका प्रकाशन कर देना चाहिये; क्योंकि सर्वथा गोपनीय रखनेसे शास्त्र-रचना ही व्यर्थ हो जायगी। इस प्रकार मेरे मन्त्रसे पवित्र होकर वे लोग मेरे धामको प्राप्त होंगे, नहीं तो शास्त्रके अभावमें कोई भी मेरे लोकमें नहीं जा पायेगा। साथ ही पुण्यात्माओंके लिये प्रकाशित किये गये पूर्वोक्त मन्त्रोपदेशके कारण यदि परम्परानुसार सभी लोग उस मन्त्रके प्रभावसे गोलोकवासी हो जायँगे, तब तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके अन्तर्गत प्राणियोंके अभावके कारण ब्रह्माजीका यह ब्रह्माण्ड ही निष्फल हो जायगा। अतः हे ब्रह्मन्! आप सात्त्विक आदि भेदसे पाँच प्रकारके लोगोंकी रचना प्रत्येक सृष्टिके अन्तर्गत कीजिये, यही सर्वथा समीचीन है। ऐसा होनेपर कुछ लोग पृथ्वीपर रहेंगे और कुछ लोग स्वर्गमें रहेंगे। हे ब्रह्मन्! यदि शिवजी तन्त्रशास्त्रकी रचनाहेतु देव-सभामें दृढ़ प्रतिज्ञा करेंगे, तो वे शीघ्र ही मेरे विग्रहका साक्षात् दर्शन भी प्राप्त कर लेंगे'॥ ६०—७०१/२॥

आकाशवाणीके रूपमें इस प्रकार कहकर सनातन श्रीकृष्ण चुप हो गये। उनकी वाणी सुनकर जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माजीने उन भगवान् शिवसे प्रसन्नतापूर्वक वह बात कही॥ ७११/२॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानेश्वर उन भगवान् शिवने हाथमें गंगाजल लेकर आज्ञाका पालन करना स्वीकार कर लिया॥ ७२१/२॥

उन्होंने कहा कि मैं प्रतिज्ञापालनके लिये विष्णुमायाके मन्त्र-समूहोंसे सम्पन्न तथा वेदोंके सारभूत उत्तम तन्त्रशास्त्रकी रचना करूँगा। यदि कोई मनुष्य हाथमें गंगाजल लेकर झूठी प्रतिज्ञा करता है तो वह 'कालसूत्र' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँपर उसे रहना पड़ता है॥ ७३-७४१/२॥

हे ब्रह्मन्! गोलोकमें देवसभामें शंकरजीके ऐसा कहते ही भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। तब उन पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको प्रत्यक्ष देखकर सभी देवता परम प्रसन्न होकर उनकी स्तुति करने लगे और परम आनन्दसे परिपूर्ण होकर फिरसे उत्सव मनाने लगे॥ ७५-७६१/२॥

[हे नारद!] समयानुसार उन भगवान् शिवने मुक्तिदीपस्वरूप तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया। इस प्रकार मैंने आपसे अत्यन्त गोपनीय तथा दुर्लभ प्रसंगका वर्णन कर दिया। गोलोकसे आविर्भूत तथा राधा और श्रीकृष्णके विग्रहसे उत्पन्न वे द्रवरूपिणी गंगा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णने स्थान-स्थानपर उन गंगाकी स्थापना की है। श्रीकृष्णस्वरूपा ये अतिश्रेष्ठ गंगा समस्त ब्रह्माण्डोंमें पूजी जाती हैं॥ ७७—७९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-संहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'गंगोपाख्यानवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

श्रीराधाजीके रोषसे भयभीत गंगाका श्रीकृष्णके चरणकमलोंकी शरण लेना, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गंगाका प्रकट होना

नारदजी बोले—हे सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर वे गंगा कहाँ चली गयीं? हे महाभाग! मुझे वह प्रसंग बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सरस्वतीके शापके प्रभावसे वे गंगा भारतवर्षमें आयीं और पुनः शापकी अवधि बीत जानेपर श्रीहरिकी इच्छासे वैकुण्ठ चली गयीं। इसी प्रकार सरस्वती और पद्मावती नदी-स्वरूपिणी वे लक्ष्मी भी शापके अन्तमें भारत छोड़कर उन विष्णुके लोकमें चली गयीं॥ २-३॥

हे ब्रह्मन्! गंगा, सरस्वती और लक्ष्मी—ये तीनों ही भगवान् श्रीहरिकी भार्याएँ हैं। साथ ही तुलसीसहित भगवान् श्रीहरिकी चार स्त्रियाँ वेदोंमें कही गयी हैं॥ ४॥

नारदजी बोले—हे भगवन्! विष्णुके चरण-कमलोंसे प्रकट होकर वे गंगाजी किस प्रकार ब्रह्माके कमण्डलमें स्थित हुईं और शिवकी प्रियाके रूपमें कैसे विख्यात हुईं? हे मुनिश्रेष्ठ! वे गंगा भगवान् नारायणकी भी प्रेयसी किस प्रकार हुईं। वह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५-६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालमें द्रवरूपिणी वे गंगा गोलोकमें विराजमान थीं। राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत वे गंगा उन्हींके अंश तथा स्वरूपवाली हैं॥ ७॥

जलमयी गंगाकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं, वे अनुपम रूप धारणकर पृथ्वीलोकमें आयीं। उनका श्रीविग्रह नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा सभी प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित था॥ ८॥

शरद् ऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलके समान प्रतीत होनेवाला उनका मुखमण्डल मुसकानसे युक्त तथा अत्यन्त मनोहर था। उनके शरीरका वर्ण तप्त स्वर्णकी आभाके समान तथा कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाके समान थी॥ ९॥

वे स्निग्ध प्रभावाली देवी अत्यन्त दयालु मुद्रामें थीं। उनका स्वरूप शुद्ध तथा सात्त्विक था। उनके जघन स्थूल तथा कठोर थे। उनके नितम्बयुगल अत्यन्त सुन्दर थे॥ १०॥

उनका वक्षःस्थल उन्नत, स्थूल, कठोर तथा गोल था। कटाक्षयुक्त तथा वक्राकार उनकी दोनों आँखें बड़ी सुन्दर थीं। मालतीके पुष्प-हारसे सुसज्जित उनके केशपाश घुँघराले थे। उनका ललाट चन्दनके तिलकके साथ-साथ सिन्दूरकी बिन्दियोंसे सुशोभित हो रहा था। उनके दोनों गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे मनोहर पत्र-रचनाएँ की हुई थीं। उनका अधरोष्ठ बन्धूकके पुष्पके समान अत्यन्त सुन्दर था। उनके दाँतोंकी अति उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। वे अग्निके समान पवित्र तथा नीवीयुक्त दो वस्त्र धारण किये हुए थीं। कामभाववाली वे गंगाजी वस्त्रसे मुँह ढँककर लज्जित होती हुई श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं और प्रसन्न होकर अपलक नेत्रोंसे प्रभुके मुख-सौन्दर्यका निरन्तर पान करने लगीं। हर्षके कारण नवीन संगमकी लालसासे युक्त उन गंगाका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा और उनके शरीरका रोम-रोम पुलकित हो गया। प्रभु श्रीकृष्णके रूपसे वे चेतनारहित-सी हो गयी थीं॥ ११—१६१/२॥

इसी बीच राधिका वहाँ आकर विराजमान हो गयीं। उनके साथ तीस करोड़ गोपियाँ भी थीं। उनके शरीरकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाके समान थी; कोपके कारण उनके मुख तथा नेत्र लाल कमलके समान प्रतीत हो रहे थे; उनके श्रीविग्रहका वर्ण पीले चम्पक-पुष्पके समान आभावाला था; वे मत्त गजराजकी भाँति मन्द गतिवाली थीं; बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थीं; वे अपने शरीरपर अमूल्य रत्नोंसे जटित तथा अग्निके समान पवित्र दो नीवीयुक्त बहुमूल्य पीले वस्त्र धारण किये हुए थीं, वे स्थल-कमलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले, कोमल, सुरंजित तथा

भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रदत्त अर्घ्यसे सुशोभित चरण-कमलोंको धीरे-धीरे रख रही थीं; वे देवी सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानसे उतरकर वहाँ उपस्थित हुई थीं; स्वच्छ चँवरकी वायुसे ऋषियोंके द्वारा उनकी सेवा की जा रही थी; कस्तूरीके बिन्दुओंसे युक्त, चन्दन-मिश्रित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला तथा बिन्दुरूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्य भागमें सुशोभित हो रहा था, उनके सीमन्त (माँग)-का निचला भाग परम स्वच्छ था, पारिजातके पुष्पोंकी मालासे सुशोभित अपनी घुँघराली तथा सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं, ऐसी वे राधा रोषके कारण अपने सुन्दर तथा रागयुक्त ओष्ठ कँपाती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर रत्नमय सुन्दर सिंहासनपर विराजमान हो गयीं। प्रभु श्रीकृष्णकी प्रिया उन राधाके साथ सखियोंका महान् समुदाय विद्यमान था॥ १७—२६॥

उन्हें देखते ही भगवान् श्रीकृष्ण आदरपूर्वक उठ खड़े हुए और आश्चर्यपूर्ण मुद्रामें मुसकराते हुए उनसे मधुर बातें करने लगे॥ २७॥

उस समय अत्यन्त भयभीत गोपोंने सिर झुकाकर भगवती राधिकाको प्रणाम किया और फिर वे भक्तिपूर्वक



उनकी स्तुति करने लगे। साथ ही परमेश्वर श्रीकृष्णने भी राधिकाकी स्तुति की॥ २८॥

तदनन्तर गंगाने भी तुरन्त उठकर राधिकाकी बहुत स्तुति की। भयभीत उन गंगाने अति विनम्रतापूर्वक राधासे कुशल पूछा॥ २९॥

वे डरके मारे झुककर खड़ी थीं। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। उन्होंने ध्यानपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी शरण ली॥ ३०॥

अपने हृदयकमलपर स्थित उन गंगाको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने उन भयभीत देवीको अभय प्रदान किया। सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गंगाका चित्त शान्त हो गया॥ ३१॥

तदनन्तर गंगाने राधाको ऊँचे आसनपर विराजमान देखा। उनका रूप परम मनोहर था, उन्हें देखनेमें सुख प्राप्त हो रहा था और वे ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हो रही थीं॥ ३२॥

वे सनातन देवी सृष्टिके आरम्भमें असंख्य ब्रह्माओंकी रचना करनेवाली हैं और नवीन यौवनसे युक्त कन्याके समान सदा बारह वर्षकी अवस्थामें रहती हैं॥ ३३॥

सम्पूर्ण विश्वमें रूप तथा गुणमें उनके समान कोई नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, आदि-अन्तसे रहित, साध्वी, पवित्र, कल्याणमयी, सुन्दर भाग्यवाली तथा अपने स्वामीके सौभाग्यसे सम्पन्न रहती हैं। वे सम्पूर्ण सुन्दरियोंमें श्रेष्ठ तथा सौन्दर्यसे सुशोभित हैं॥ ३४-३५॥

वे श्रीकृष्णकी अर्धांगिनी हैं। तेज, आयु और कान्तिमें वे श्रीकृष्णके ही सदृश हैं। लक्ष्मीपति श्रीविष्णुके द्वारा लक्ष्मीसहित वे महालक्ष्मीस्वरूपा राधिका पूजित हैं॥ ३६॥

वे राधिका परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रभामयी सभाको अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित किये रहती हैं। वे सखियोंके द्वारा प्रदत्त दुर्लभ ताम्बूलका सदा सेवन करती रहती हैं॥ ३७॥

वे स्वयं अजन्मा होती हुई भी सम्पूर्ण जगत्की जननी हैं। वे भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, उनके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवी, धन्य, मान्य तथा मानिनी और मनोरम हैं॥ ३८॥

[हे नारद!] उस समय उन रासेश्वरी राधिकाको देखकर सुरेश्वरी गंगा तृप्त नहीं हुईं और वे अपलक नेत्रोंसे राधाकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगीं॥ ३९॥

हे मुने! इसी बीच शान्त तथा विनम्र स्वभाववाली राधा मुसकराकर मधुर वाणीमें जगदीश्वर श्रीकृष्णसे कहने लगीं॥ ४०॥

राधा बोलीं—हे प्राणेश! पासमें बैठकर आपके मुसकानयुक्त मुखकमलको मुसकराकर तिरछी दृष्टिसे देखती हुई यह कामनायुक्त सुन्दरी कौन है? अपना मुख वस्त्रसे ढँककर आपके रूपको बार-बार देखती हुई पुलकित शरीरवाली यह सुन्दरी चेतनारहित हो जाया करती है॥ ४१-४२॥

आप भी कामनायुक्त होकर उसकी ओर देखकर हँस रहे हैं। मेरे जीवित रहते गोलोकमें ऐसी दुर्वृत्तिवाली स्त्री कैसे आयी? और आप भी बार-बार दुश्चेष्टा करते जा रहे हैं। कोमल स्वभाववाली स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं आपको क्षमा कर दे रही हूँ॥ ४३-४४॥

हे कामी व्रजेश्वर! अपनी इस अभीष्ट प्रेयसीको लेकर आप अभी गोलोकसे चले जाइये, अन्यथा आपका कल्याण नहीं है॥ ४५॥

एक बार पूर्वमें मैंने आपको चन्दनवनमें विरजाके साथ देखा था। सखियोंका वचन मानकर मैंने उस समय क्षमा कर दिया था॥ ४६॥

मेरी ध्वनि सुनते ही आप उस समय छिप गये थे। विरजाने वह शरीर त्याग दिया और उसने नदीका रूप धारण कर लिया था॥ ४७॥

वे देवी आज भी एक करोड़ योजन चौड़ाई तथा उससे भी चार गुनी लम्बाईवाली आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी नदीके रूपमें विद्यमान हैं॥ ४८॥

मेरे घर चले जानेपर आप पुनः उसके पास जाकर विरजे! विरजे! ऐसा कहते हुए जोर-जोरसे रोने लगे थे॥ ४९॥

तब उस सिद्धयोगिनीने योगबलके प्रभावसे जलसे बाहर निकलकर अलंकारयुक्त मूर्तिमती सुन्दरीके रूपमें आपको दर्शन दिया था॥ ५०॥

उस समय आपने उसमें अपने तेजका आधान किया था और समयानुसार उससे सात समुद्र उत्पन्न हुए॥ ५१॥

इसी प्रकार मैंने आपको शोभा नामक गोपीके साथ चम्पक वनमें देखा था। उस समय भी मेरी ध्वनि सुनते ही आप छिप गये थे और वह शोभा शरीर छोड़कर चन्द्रमण्डलमें चली गयी थी। तब उसका शरीर परम सुन्दर तथा तेजोमय हो गया था॥ ५२-५३॥

तत्पश्चात् आपने दुःखित हृदयसे उस तेजको विभक्त करके कुछ तेज रत्नको, कुछ स्वर्णको, कुछ श्रेष्ठ मणियोंको, कुछ स्त्रियोंके मुखकमलको, कुछ राजाको, कुछ नव पल्लवोंको, कुछ पुष्पोंको, कुछ पके फलोंको, कुछ फसलोंको, कुछ राजाओंके सुसज्जित महलोंको, कुछ नये पत्तोंको और कुछ तेज दुग्धको प्रदान कर दिया॥ ५४—५६१/२॥

इसी प्रकार मैंने वृन्दावनमें आपको प्रभा नामक गोपीके साथ देखा था। उस समय आप मेरा शब्द सुनते ही शीघ्रतापूर्वक छिप गये थे और प्रभा अपनी देह त्यागकर सूर्यमण्डलमें चली गयी थी॥ ५७-५८॥

उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय हो गया था और आपने रोते-रोते उस तेजको प्रेमपूर्वक विभाजित करके जगह-जगह स्थान प्रदान कर दिया था। हे कृष्ण! लज्जा तथा मेरे भयके कारण आपकी आँखोंसे निकले हुए उस तेजको आपने कुछ अग्निको, कुछ यक्षोंको, कुछ राजाओंको, कुछ देवताओंको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ नागोंको, कुछ ब्राह्मण-मुनि तथा तपस्वियोंको और कुछ तेज सौभाग्यवती स्त्रियों तथा यशस्वी पुरुषोंको प्रदान कर दिया। इस प्रकार इन सबको वह तेज प्रदान करके पूर्व कालमें आपने बहुत रुदन किया था॥ ५९—६२१/२॥

इसी तरह एक बार मैंने आपको शान्ति नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें देखा था। वसन्त ऋतुमें रत्नमय दीपकोंसे युक्त रत्ननिर्मित महलमें आप माला धारण किये तथा शरीरमें चन्दन लगाकर और विभिन्न प्रकारके आभूषण पहनकर अनेकविध रत्नाभूषणोंसे अलंकृत उसके साथ पुष्पकी शय्यापर विराजमान थे। हे विभो! पूर्वकालमें उसने आपको ताम्बूल दिया और आपने उसे प्रेमपूर्वक ग्रहण कर लिया था॥ ६३—६५॥

हे प्रभो! उस समय मेरा शब्द सुनकर आप तुरन्त छिप गये थे और वह शान्ति भयसे अपना देह त्यागकर आपमें समाविष्ट हो गयी थी॥ ६६॥

तब उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर रोते हुए आपने उसे विभाजित करके

प्रेमपूर्वक विश्वमें बाँट दिया था। हे प्रभो! उसका कुछ अंश निकुंजमें, कुछ भाग ब्राह्मणोंमें और कुछ भाग मुझ राधामें समाहित हो गया। हे विभो! फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्धस्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ भाग अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ भाग शक्तिकी आराधना करनेवालोंको, कुछ भाग तपस्वियोंको, कुछ भाग धर्मको और कुछ भाग धर्मात्मा पुरुषोंको दे दिया॥ ६७—६९॥

इसी तरह पूर्वकालमें मैंने आपको क्षमा नामक गोपीके साथ देखा था। आप सुन्दर वेष धारण करके, माला पहनकर तथा शरीरमें गन्ध और चन्दनका लेप करके रत्नोंके आभूषणोंसे अलंकृत और गन्ध-चन्दनचर्चित उस क्षमाके साथ पुष्प तथा चन्दनसे सुरभित शय्यापर सुखपूर्वक अचेतावस्थामें विराजमान थे। उस निद्राग्रस्त सुन्दरीके साथ आप सुखपूर्वक क्रीडामें संसक्त थे। उसी समय पहुँचकर मैंने उस क्षमाको तथा आपको जगाया था, इस बातको आप स्मरण कीजिये॥ ७०—७२॥

उस समय मैंने आपका पीताम्बर, मनोहर मुरली, वनमाला, कौस्तुभ और बहुमूल्य रत्नमय कुण्डल ले लिया था। किंतु बादमें सखियोंके प्रेमपूर्वक कहनेपर उसे आपको लौटा दिया था। हे प्रभो! उस समय आप लज्जा तथा पापसे कृष्णवर्णके हो गये थे॥ ७३-७४॥

तत्पश्चात् लज्जाके कारण क्षमा अपना शरीर त्यागकर पृथ्वीमें समा गयी और उसका शरीर उत्तम गुणोंके रूपमें परिणत हो गया। तब रोते हुए आपने उस क्षमाका विभाजन करके उसे प्रेमपूर्वक अनेक लोगोंको दे दिया। उसका कुछ अंश विष्णुको, कुछ विष्णुभक्तोंको, कुछ धार्मिक पुरुषोंको, कुछ धर्मको, कुछ दुर्बलोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ देवताओंको और कुछ भाग पण्डितोंको आपने दे दिया था॥ ७५—७७॥

हे प्रभो! यह सब मैंने आपको बता दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? आपके और भी बहुत-से बड़े-बड़े गुण हैं, किंतु मैं सब नहीं जानती॥ ७८॥

श्रीकृष्णसे ऐसा कहकर लालकमलके समान नेत्रोंवाली उन राधाने नीचेकी ओर मुख की हुई लज्जित साध्वी गंगासे कहना आरम्भ किया, तभी सिद्धयोगिनी वे गंगा योगके द्वारा सभी रहस्य समझकर सभाके मध्यमें अन्तर्धान होकर अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं॥ ७९-८०॥

तब सिद्धयोगिनी राधा योगबलके प्रभावसे इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गंगाको अंजलिसे उठाकर मुँहसे पान करने लगीं॥ ८१॥

तत्पश्चात् सिद्धयोगिनी गंगा योगबलसे इस रहस्यको जान लेनेके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें प्रवेश कर गयीं और उनके शरणागत हो गयीं॥ ८२॥

तब राधाने गोलोक, वैकुण्ठ तथा ब्रह्मलोक आदि सभी स्थानोंमें गंगाको खोजा, किंतु उन्हें कहीं भी गंगा दिखायी नहीं दीं॥ ८३॥

उस समय सर्वत्र जलका अभाव हो गया तथा सूखा कीचड़ और गोला दिखायी दे रहा था, जो जलचर जन्तुओंके मृत शरीरोंसे युक्त था॥ ८४॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनिवृन्द, देवता, सिद्ध और तपस्वी—ये सभी गोलोक चले गये। उस समय उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये थे। वहाँ पहुँचकर उन सबने प्रकृतिसे भी परे, सर्वेश्वर, श्रेष्ठ, पूज्य, वरदायक, वरिष्ठ, वरके कारणस्वरूप, सभी गोपों तथा गोपिकाओंके समुदायमें सर्वश्रेष्ठ, कामनारहित, निराकार, आसक्तिहीन, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार, निर्दोष, अपनी इच्छासे साकार रूपमें प्रकट होनेवाले, भक्तोंपर कृपा करनेवाले, सत्त्वस्वरूप, सत्येश, सबके साक्षीस्वरूप तथा सनातन प्रभु श्रीकृष्णको प्रणाम किया। उन परम परमेश्वर परमात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करके वे सब भक्तिके कारण अपने मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी, उनकी आँखोंमें आँसू भर आये थे और उनके शरीरके रोम-रोम पुलकित हो गये थे॥ ८५—९०½॥

इस प्रकार उन सबने सर्वेश्वर, परात्पर, ज्योतिर्मय विग्रहवाले, परब्रह्म तथा सभी कारणोंके भी कारण, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, विचित्र सिंहासनपर विराजमान, गोपालोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवा किये जाते हुए, प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए, गोपिकाओंका नृत्यसंगीत

देखनेमें संलग्न, राधाके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, राधाके वक्षःस्थलमें स्थित तथा उन राधाके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका सेवन करते हुए उन परिपूर्णतम सुरेश्वर भगवान्‌की स्तुति करके उन्हें रासमण्डलमें विराजमान देखा। सभी मुनि, सिद्ध और तपस्वी महात्मा प्रसन्नचित्त हो गये, उन्हें महान् आश्चर्य हुआ। एक-दूसरेको देखकर वे सभी लोग जगत्प्रभु चतुर्मुख ब्रह्मासे अपना वांछित अभिप्राय कहने लगे॥ ९१—९६१/२ ॥

उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी भगवान् विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके परम आनन्दसे परिपूर्ण श्रीकृष्ण तथा परमानन्दस्वरूपिणी राधाके पास पहुँचे॥ ९७-९८॥

उस समय ब्रह्माजीने रासमण्डलमें सब कुछ श्रीकृष्णमय देखा। सबकी वेष-भूषा एक समान थी, सभी लोग समान आसनपर विराजमान थे, सभी लोगों ने दो भुजाओंवाले श्रीकृष्णके रूपमें हाथमें मुरली ले रखी थी, सभी लोग वनमालासे सुशोभित थे, सबके मुकुटमें मोरके पंख लगे थे, सभी लोग कौस्तुभमणिसे शोभायमान हो रहे थे, गुण-भूषण-रूप-तेज-आयु और कान्तिसे सम्पन्न उन सबका विग्रह अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा शान्त था, सब-के-सब परिपूर्णतम और सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न थे, उन्हें देखकर कौन सेव्य है तथा कौन सेवक है, यह बता सकनेमें वे ब्रह्मा असमर्थ थे, भगवान् श्रीकृष्ण क्षणभरमें तेजःस्वरूप हो जाते थे और क्षणभरमें ही विग्रहवान् होकर आसनपर विराजित हो जाते थे, इस प्रकार ब्रह्माजीने एक ही क्षणमें उनके साकार तथा निराकार दोनों प्रकारके रूपों को देखा॥ ९९—१०३॥

तदनन्तर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि वे परमेश्वर श्रीकृष्ण राधासे रहित हैं और फिर उसी क्षण वे राधिकाके साथ प्रत्येक आसनपर विराजमान दिखायी देने लगे। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णको राधाका रूप धारण किये हुए तथा राधाको श्रीकृष्णका रूप धारण किये हुए देखा। इस प्रकार वहाँ कौन स्त्रीरूपमें तथा कौन पुरुषरूपमें है—इस रहस्यको जाननेमें वे ब्रह्मा भी अक्षम हो गये॥ १०४-१०५॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीने अपने हृदयकमलपर विराजमान श्रीकृष्णका ध्यान करके ध्याननेत्रसे उनका दर्शन किया और स्त्री-पुंभावविषयक संशयका अनेक प्रकारसे निराकरण करते हुए भक्तिपूर्वक उनका स्तवन किया॥ १०६॥

इसके बाद भगवान्‌की आज्ञासे उन्होंने अपने नेत्र खोलकर देखा कि वे अद्वितीय श्रीकृष्ण राधिकाके वक्षःस्थलपर स्थित हैं, वे अपने पार्षदोंसे घिरे हुए हैं और गोपिकाओंके समुदायसे सुशोभित हो रहे हैं। तदनन्तर उन ब्रह्मा आदि देवताओंने परमेश्वर श्रीकृष्णका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की॥ १०७-१०८॥

तदनन्तर सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, सब कुछ जाननेवाले, सर्वेश्वर तथा सबका सृजन करनेवाले लक्ष्मीपति भगवान् श्रीकृष्ण उन देवताओंका अभिप्राय समझकर उनसे कहने लगे॥ १०९॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! आपका कुशल हो, आइये। हे कमलापते! आइये। हे महादेव! यहाँ आइये। आप लोगोंका सदा कुशल हो। आप सभी महाभाग गंगाको ले जानेके लिये यहाँ आये हुए हैं, किंतु गंगाजी तो इस समय भयभीत होकर मेरे चरणकमलमें शरणागत हो गयी हैं। जब वे गंगा मेरे सांनिध्यमें थी, तब उन्हें देखकर पी जानेके लिये राधिका उद्यत हो गयी थीं, इसलिये वे मेरे सांनिध्यमें आ गयीं। मैं आपलोगोंको उन्हें अवश्य दे दूँगा, किंतु आपलोग पहले उन्हें भयमुक्त कीजिये॥ ११०—११२॥

[हे नारद!] श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कमलयोनि ब्रह्मा मुसकराने लगे और वे भक्तिके कारण अपना मस्तक झुकाकर चारों मुखोंसे सबकी आराध्या तथा श्रीकृष्णके



द्वारा सुपूजित राधिकाकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति

करके चारों वेदोंको धारण करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा राधासे इस प्रकार कहने लगे॥ ११३-११४॥

चतुरानन बोले—भगवान् शंकरकी संगीतध्वनिसे मुग्ध आपके तथा प्रभु श्रीकृष्णके द्रवरूपमें परिणत हुए अंगसे वह गंगा रासमण्डलमें प्रकट हुई थीं॥ ११५॥

अतः आप तथा श्रीकृष्णके अंशस्वरूप होनेके कारण आपकी प्रिय पुत्रीके तुल्य ये गंगा आपका मन्त्र ग्रहण करके आपकी पूजा करें। [इसके फलस्वरूप] वैकुण्ठके अधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इनको पतिके रूपमें प्राप्त होंगे और साथ ही अपनी एक कलासे जब ये भूमण्डलपर जायँगी, उस समय लवणसमुद्र भी इनके पति बनेंगे॥ ११६-११७॥

हे अम्बिके! ये गंगा जैसे गोलोकमें हैं, वैसे ही इन्हें सर्वत्र रहना चाहिये। आप देवेश्वरी इनकी माता हैं और वे सदा आपकी पुत्री हैं॥ ११८॥

[हे नारद!] ब्रह्माका यह वचन सुनकर राधाने हँसते हुए सभी बातें स्वीकार कर लीं। तब वे गंगा श्रीकृष्णके चरणके अँगूठेके नखके अग्रभागसे बाहर निकलीं। वहाँ सब लोगोंने उनका सत्कार किया और वे सबके मध्य शान्त होकर स्थित रहीं। तब जलस्वरूपा गंगाकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर वहींपर विराजमान हो गयीं॥ ११९-१२०॥

उस समय ब्रह्माजीने गंगाका कुछ जल अपने कमण्डलुमें रख लिया और कुछ जल चन्द्रशेखर भगवान् शिवने अपने मस्तकपर धारण कर लिया॥ १२१॥

तदनन्तर कमलयोनि ब्रह्माने गंगाको राधा-मन्त्र प्रदान किया और उन्हें राधाके स्तोत्र, कवच, ध्यान और पूजाकी विधि तथा पुरश्चर्याक्रम—इन सभी सामवेद-प्रतिपादित अनुष्ठानोंके विषयमें बतलाया। गंगाने इन नियमोंके द्वारा उन राधाकी विधिवत् पूजा करके नारायणके साथ वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया॥ १२२-१२३॥

हे मुने! लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी ही पत्नियाँ हैं॥ १२४॥

इसके बाद वे श्रीकृष्ण हँसकर उन ब्रह्माको दुर्बोध, सूक्ष्म तथा सामयिक वृत्तान्त बताने लगे॥ १२५॥

श्रीकृष्ण बोले—हे ब्रह्मन्! आप गंगाको ग्रहण कीजिये। हे विष्णो! हे महेश्वर! हे ब्रह्मन्! आपलोग ध्यानपूर्वक कालका वृत्तान्त मुझसे सुनिये॥ १२६॥

आपलोग तथा अन्य देवता, मुनि, मनुगण, सिद्ध तथा यशस्वीजन—जो-जो यहाँ आये हुए हैं—केवल ये लोग ही कालचक्रके प्रभावसे रहित इस गोलोकमें जीवित हैं। इस समय कल्पक्षयके कारण सम्पूर्ण विश्व जलमें आप्लावित हो गया है। अन्य ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि देवता हैं, वे मुझमें विलीन हो गये हैं। हे पद्मज! इस समय केवल वैकुण्ठको छोड़कर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें डूबा हुआ है। आप जाकर ब्रह्मलोक आदि लोकोंकी पुनः सृष्टि कीजिये। आप अपने ब्रह्माण्डकी रचना कीजिये, इसके बाद गंगा वहाँ जायँगी॥ १२७—१३०॥

इसी प्रकार इस सृष्टिके अवसरपर मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी ब्रह्मा आदिकी रचनाका प्रयत्न कर रहा हूँ। अब आप देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र जाइये। आपका बहुत समय बीत चुका है, न जाने कितने ब्रह्मा समाप्त हो गये और न जाने कितने ब्रह्मा अभी होंगे॥ १३१-१३२॥

हे मुने! ऐसा कहकर राधिकानाथ भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये और ब्रह्मा आदि देवता वहाँसे चलकर प्रयत्नपूर्वक सृष्टिकार्यमें संलग्न हो गये॥ १३३॥

तब गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानपर गंगाको रहनेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस-उसपर वे गंगा चली गयीं। वे गंगा भगवान् विष्णुके चरणकमलसे निकली हैं, इसलिये वे विष्णुपदी कही गयी हैं॥ १३४-१३५॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने आपसे गंगाके इस सर्वोत्तम, सुखदायक, मोक्षप्रद तथा सारगर्भित उपाख्यानका वर्णन कर दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १३६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'गंगोपाख्यानवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

गंगाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसंग

नारदजी बोले—[हे प्रभो!] यह तो मैंने आपसे सुन लिया कि लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों ही भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं और उनमेंसे गंगा वैकुण्ठ चली गयीं। किंतु वे गंगा विष्णुकी पत्नी कैसे हुईं—यह प्रसंग मैंने नहीं सुना॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] जब गंगाजी वैकुण्ठ चली गयीं, उसके पश्चात् जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजी भी वहाँ पहुँचे। गंगाके साथ जगदीश्वर विष्णुके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम करके वे उनसे कहने लगे॥ ३॥

ब्रह्माजी बोले—राधा और श्रीकृष्णके अंगसे आविर्भूत जो द्रवरूपिणी देवी गंगा हैं, वे इस समय नवीन यौवनसे सम्पन्न तथा उत्तम स्वभाववाली श्रेष्ठ सुन्दरीके रूपमें विराजमान हैं। ये देवी शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी तथा क्रोध और अहंकारसे रहित हैं। उन श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत ये गंगा उन्हें छोड़कर किसी अन्यका पतिरूपमें वरण नहीं करना चाहतीं॥ ४-५॥

किंतु अतिमानिनी राधा वहाँ विद्यमान हैं। वे श्रेष्ठ तथा तेजस्विनी राधा इन गंगाको पी जानेके लिये उद्यत थीं। इससे अत्यन्त भयभीत ये गंगा बड़ी बुद्धिमानीके साथ परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलमें समाविष्ट हो गयीं॥ ६१/२॥

उस समय सर्वत्र ब्रह्माण्ड-गोलकको शुष्क हुआ देखकर मैं गोलोक गया, जहाँपर सर्वान्तर्यामी श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिये विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणके अँगुष्ठ-नखके अग्रभागसे गंगाको बाहर निकाल दिया। तब मैंने इन गंगाको राधिका-मन्त्र प्रदानकर इनके जलसे ब्रह्माण्ड-गोलकको पूर्ण करके उन राधा तथा राधापति श्रीकृष्णको प्रणाम करके मैं इन्हें साथ लेकर यहाँ आया। हे प्रभो! अब आप गान्धर्व-विवाहके द्वारा इन सुरेश्वरी गंगाको स्वीकार कर लीजिये। श्रेष्ठ देवताओंमें आप परम रसिक हैं और यहाँ विराजमान ये गंगा भी रसिका हैं। हे देवेश! आप पुरुषोंमें रत्न हैं और ये साध्वी गंगा भी स्त्रियोंमें रत्न हैं। विदग्ध नारीका विदग्ध पुरुषके साथ सम्मिलन कल्याणकारी होता है॥ ७—१११/२॥

जो पुरुष स्वतःप्राप्त कन्याको नहीं ग्रहण करता, उससे महालक्ष्मी रुष्ट हो जाती हैं और उसे छोड़कर चली जाती हैं; इसमें सन्देह नहीं है। जो विद्वान् होता है, वह कभी प्रकृतिका अपमान नहीं करता॥ १२-१३॥

सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसी प्रकृतिकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान् जगन्नाथ ही निर्गुण और प्रकृतिसे परे हैं॥ १४॥

वे श्रीकृष्ण ही आधे अंगसे दो भुजावाले श्रीकृष्ण बने रहे और आधे भागसे चतुर्भुज हो गये। इसी प्रकार पूर्वकालमें श्रीकृष्णके वाम अंगसे प्रादुर्भूत राधा भी दो भागोंमें विभक्त हो गयी थीं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं राधा बनी रहीं और बायें अंशसे कमला हो गयीं। इसलिये ये गंगा आपको ही पतिरूपमें वरण करना चाहती हैं; क्योंकि ये आपके ही देहसे उत्पन्न हुई हैं। हे प्रभो! प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनोंका शरीर एक ही होता है॥ १५-१६१/२॥

ऐसा कहकर वे ब्रह्माजी श्रीहरिको गंगा सौंपकर वहाँसे चल दिये। तत्पश्चात् नारायण श्रीहरिने गंगाका पुष्प-चन्दनचर्चित हाथ पकड़कर गान्धर्व विवाह-विधिके अनुसार उन्हें पत्नीरूपमें ग्रहण किया। इसके बाद वे रमापति श्रीहरि गंगाके साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करने लगे। इस प्रकार जो गंगा पृथ्वीपर गयी हुई थीं, वे अपने स्थानपर पुनः आ गयीं। ये गंगा भगवान् विष्णुके चरण-कमलसे निकली हैं, इसलिये विष्णुपदी—इस नामसे विख्यात हुईं॥ १७—१९१/२॥

अब रसिकेश्वर भगवान् श्रीहरिके साथ प्रथम रतिक्रीड़ामें अतिशय सुखानुभूतिके कारण वे रसिका देवी गंगा मूर्च्छित हो गयीं। उन गंगाको देखकर सरस्वती नित्य दुःखित रहती

थीं। लक्ष्मीके बार-बार मना करनेपर भी सरस्वती उन गंगासे सदा ईर्ष्या करती थीं, किंतु गंगाने सरस्वतीके प्रति ऐसा नहीं किया। अन्तमें विष्णुप्रिया गंगाने कोप करके सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था॥ २०—२२॥

हे मुने! इस प्रकार उन रमापति श्रीहरिकी गंगासहित तीन भार्याएँ हैं। इसके बादमें तुलसीको लेकर उनकी चार पत्नियाँ हुईं॥ २३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'गंगाका कृष्णपत्नीत्ववर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

तुलसीके कथा-प्रसंगमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन

नारदजी बोले—परम साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी प्रिय भार्या कैसे बनीं, वे कहाँ उत्पन्न हुई थीं, पूर्वजन्ममें कौन थीं, किसके कुलमें उत्पन्न हुई थीं और वे सती किसके कुलमें कन्याके रूपमें प्रादुर्भूत हुईं और अपने किस तपस्याके प्रभावसे वे तुलसी प्रकृतिसे परे, विकाररहित, निष्काम, सर्वविश्वरूप, नारायण, परब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, सबके आराध्य, सर्वेश, सब कुछ जाननेवाले, सम्पूर्ण जगत्के कारण, सर्वाधार, सर्वरूप तथा सभी प्राणियोंका पालन करनेवाले भगवान् श्रीहरिको पत्नीरूपमें प्राप्त हुईं? ऐसी साध्वी देवी कैसे वृक्ष बन गयीं और वे तपस्विनी किस प्रकारसे असुरके द्वारा गृहीत हुईं। समस्त शंकाओंका निवारण करनेवाले हे प्रभो! यह सब जाननेके लिये मेरा कोमल तथा चंचल मन मुझे बार-बार प्रेरित कर रहा है। आप मेरे सम्पूर्ण सन्देहको दूर करनेकी कृपा कीजिये॥ १—६॥

श्रीनारायण बोले—विष्णुके अंशसे उत्पन्न दक्ष-सावर्णि मनु परम पवित्र, यशस्वी, कीर्तिमान्, पुण्यशाली तथा विष्णुभक्त थे। उनके पुत्र ब्रह्मसावर्णि थे, जो धर्म-परायण, भगवान् विष्णुके भक्त तथा परम पवित्र थे। उनके पुत्र धर्मसावर्णि थे, जो विष्णुके भक्त तथा जितेन्द्रिय थे। उनके पुत्र रुद्रसावर्णि भक्तिपरायण तथा जितेन्द्रिय थे। उन रुद्रसावर्णिके पुत्र देवसावर्णि थे, जो सर्वदा विष्णु-भगवान्‌का व्रत करनेमें संलग्न रहते थे। उन देवसावर्णिके पुत्र इन्द्रसावर्णि महाविष्णुके भक्त थे। उन इन्द्रसावर्णिका पुत्र वृषध्वज हुआ, जो भगवान् शिवकी भक्तिमें आसक्ति रखता था; उसके आश्रममें स्वयं भगवान् शंकर तीन युगोंतक स्थित रहे। राजा वृषध्वजके प्रति शिवजीका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था॥ ७—११॥

वह भगवान् नारायण, लक्ष्मी, सरस्वती—इनमें किसीके भी प्रति आस्था नहीं रखता था और उसने अन्य सभी देवताओंकी पूजाका परित्याग कर दिया था॥ १२॥

अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रपद महीनेमें महालक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उत्पन्न करता था। इसी प्रकार उस पापीने माघ शुक्ल पंचमीके दिन समस्त देवताओंद्वारा विस्तृत रूपसे की जानेवाली सरस्वती-पूजाका भी त्याग कर दिया था। इस तरह केवल शिवकी आराधनामें निरत रहनेवाले और यज्ञ तथा विष्णुकी पूजाकी निन्दा करनेवाले उस राजेन्द्र वृषध्वजपर भगवान् सूर्यदेव कुपित हो गये और उन्होंने उसे शाप दे दिया 'तुम श्रीविहीन हो जाओ'—यह शाप सूर्यने उसे दे दिया था॥ १३—१५॥

इसपर स्वयं भगवान् शिव हाथमें त्रिशूल लेकर सूर्यके पीछे दौड़े। तब सूर्य अपने पिता कश्यपके साथ ब्रह्माकी शरणमें गये॥ १६॥

तदनन्तर भगवान् शंकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए अत्यन्त क्रुद्ध होकर ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हुए। इसपर भयभीत ब्रह्माजीने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थान कर दिया॥ १७॥

वे सन्तप्त तथा शुष्क तालुवाले ब्रह्मा, कश्यप तथा सूर्य भयपूर्वक सर्वेश्वर नारायणकी शरणमें गये॥ १८॥

उन तीनोंने वहाँ पहुँचकर मस्तक झुकाकर भगवान्

श्रीहरिको प्रणाम किया और बार-बार उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने श्रीहरिसे भयका समस्त कारण बताया॥ १९॥

तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक [यह कहकर] उन्हें अभय प्रदान किया—हे भयभीत देवगण! आपलोग स्थिरचित्त हो जाइये। मेरे रहते आपलोगोंको भय कैसा? विपत्तिमें भयत्रस्त जो लोग जहाँ भी मुझे याद करते हैं, मैं हाथमें चक्र धारण किये वहाँ तत्काल पहुँचकर उनकी रक्षा करता हूँ॥ २०-२१॥

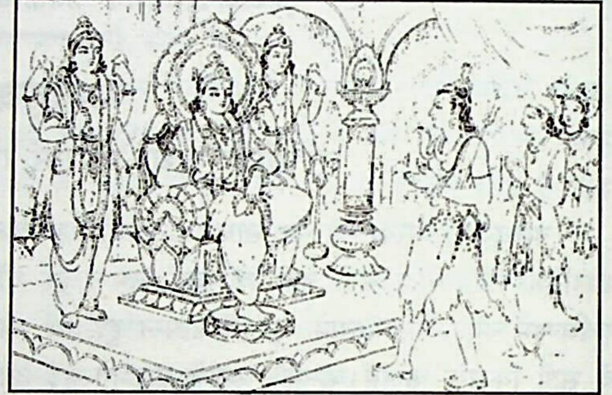
हे देवतागण! मैं सदा निरन्तर सम्पूर्ण लोकोंकी रचना तथा रक्षा किया करता हूँ। मैं ही ब्रह्मारूपसे जगत्‌की सृष्टि करनेवाला और शिवरूपसे संहार करनेवाला हूँ। मैं ही शिव हूँ, आप भी मेरे ही रूप हो और ये सूर्य भी मेरे ही स्वरूप हैं। तीनों गुणोंसे युक्त मैं ही अनेकविध रूप धारण करके सृष्टि-पालन करता हूँ॥ २२-२३॥

आपलोग जाइये। आपलोगोंका कल्याण होगा, आपलोगोंको भय कहाँ। मेरे वरके प्रभावसे आपलोगोंको आजसे शंकरजीसे भय नहीं होगा। वे सर्वेश्वर भगवान् शिव सज्जनोंके स्वामी, भक्तोंके वशमें रहनेवाले, भक्तोंकी आत्मा तथा भक्तवत्सल हैं। हे ब्रह्मन्! सुदर्शन चक्र और भगवान् शिव—ये दोनों ही मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, इन दोनोंसे बढ़कर तेजस्वी ब्रह्माण्डोंमें कोई भी नहीं है॥ २४—२६॥

वे महादेव खेल-खेलमें करोड़ों सूर्यों तथा करोड़ों ब्रह्माकी रचना कर सकते हैं। उन त्रिशूलधारी प्रभु शिवके लिये कुछ भी दुष्कर नहीं है। वे भगवान् शिव कुछ भी बाह्य ज्ञान न रखते हुए दिन-रात मेरा ही ध्यान करते रहते हैं और अपने पाँचों मुखोंसे भक्तिपूर्वक सदा मेरे मन्त्रोंका जप तथा गुणोंका गान करते रहते हैं॥ २७-२८॥

मैं भी दिन-रात उनके कल्याणका ही चिन्तन करता हूँ; क्योंकि जो लोग जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, उसी प्रकार मैं भी उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ। भगवान् शंकर शिवस्वरूप हैं और वे कल्याणके अधिष्ठातृदेवता हैं, उन्हींसे कल्याण होता है, अतः विद्वान् लोग उन्हें शिव कहते हैं॥ २९-३०॥

इसी बीच भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गये। उनके हाथमें त्रिशूल था, वे वृषभपर सवार थे तथा उनकी आँखें लाल कमलके समान थीं। वहाँ पहुँचते ही उन्होंने तुरंत वृषभसे उतरकर तथा भक्तिसे परिपूर्ण होनेके कारण अपना मस्तक झुकाकर उन शान्तस्वभाव परात्पर लक्ष्मीपति विष्णुको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया॥ ३१-३२॥



उस समय भगवान् श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे, रत्ननिर्मित अलंकारोंसे वे अलंकृत थे, वे किरीट; कुण्डल; चक्र और वनमाला धारण किये हुए थे, उनके शरीरकी कान्ति नूतन मेघके समान श्यामवर्णकी थी, वे परम सुन्दर थे, चार भुजाओंसे सुशोभित थे और चार भुजावाले अनेक पार्षदोंके द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की जा रही थी॥ ३३-३४॥

हे नारद! उनका सम्पूर्ण अंग दिव्य चन्दनसे अनुलिप्त था, वे अनेक प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा था। वे लक्ष्मीके द्वारा दिये गये ताम्बूलका सेवन कर रहे थे, मुसकराते हुए वे विद्याधरियोंके नृत्य-गीत आदिका निरन्तर अवलोकन कर रहे थे। भक्तोंके लिये साक्षात् कृपामूर्ति ऐसे उन परमेश्वर प्रभुको महादेवने प्रणाम किया। ब्रह्माजीने भी महादेवको प्रणाम किया और अत्यन्त भयभीत सूर्यने भी चन्द्रशेखर शिवको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। इसी प्रकार कश्यपने महान् भक्तिके साथ शिवकी स्तुति की और उन्हें प्रणाम किया॥ ३५—३७½॥

शिवजी सर्वेश्वर श्रीहरिका स्तवन करके एक सुखप्रद आसनपर विराजमान हो गये। इसके बाद सुखमय आसनपर सुखपूर्वक विराजमान तथा विष्णुके पार्षदोंके

द्वारा श्वेत चँवर डुलाकर सेवित होते हुए उन विश्रान्त, शिवजीसे भगवान् श्रीहरि अमृतके समान मधुर तथा मनोहर वचन कहने लगे॥ ३८-३९½॥

विष्णुजी बोले—आप यहाँ किसलिये आये हैं, आप अपने क्रोधका कारण बताइये॥ ४०॥

महादेवजी बोले—[हे भगवन्!] सूर्यने मेरे लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मेरे भक्त वृषध्वजको शाप दे दिया है—यही मेरे क्रोधका कारण है। जब मैं अपने पुत्रतुल्य भक्तके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिये उद्यत हुआ, तब उस सूर्यने ब्रह्माकी शरण ली और पुनः सूर्य तथा ब्रह्मा—ये दोनों आपकी शरणमें आ गये॥ ४१-४२॥

[हे प्रभो!] जो लोग ध्यानसे अथवा वचनसे भी आपकी शरण ग्रहण कर लेते हैं, वे विपत्ति तथा भयसे पूर्णतः मुक्त हो जाते हैं। वे जरा तथा मृत्युतकको जीत लेते हैं। ये लोग तो प्रत्यक्ष शरणागत हुए हैं। इस शरणागतिका फल क्या बताऊँ! आप श्रीहरिका स्मरण सदा अभय तथा सर्वविध मंगल प्रदान करता है। हे जगत्प्रभो! सूर्यके शापके कारण श्रीरहित तथा विवेकहीन मेरे भक्तका क्या होगा? इसे मुझे बतायें॥ ४३—४५॥

विष्णुजी बोले—[हे शिव!] दैवकी प्रेरणासे इक्कीस युगोंका बहुत बड़ा समय व्यतीत हो गया, यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थान चले जाइये। किसीसे भी नियन्त्रित न किये जा सकनेवाले अत्यन्त भीषण कालने वृषध्वजको मार डाला है। उसका पुत्र रथध्वज था, वह भी श्रीसे हीन होकर मृत्युको प्राप्त हो गया। उस रथध्वजके भी धर्मध्वज तथा कुशध्वज नामक दो महान् भाग्यशाली पुत्र भी सूर्यके शापसे श्रीहीन हो गये हैं। वे दोनों विष्णुके महान् भक्तके रूपमें प्रसिद्ध हैं। राज्य तथा श्रीसे भ्रष्ट वे दोनों लक्ष्मीके तपमें रत हैं। उन दोनोंकी भार्याओंसे भगवती लक्ष्मी अपनी कलासे आविर्भूत होंगी। उस समय वे दोनों महान् सम्पदासे सम्पन्न होकर श्रेष्ठ राजाके रूपमें पुनः प्रतिष्ठित होंगे। हे शम्भो! आपका भक्त मर चुका है; अब आप यहाँ से जाइये। हे देवतागण! अब आप सबलोग भी यहाँसे प्रस्थान कीजिये॥ ४६—५०॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर वे भगवान् श्रीहरि सभासे उठकर लक्ष्मीके साथ अन्तःपुरमें चले गये। तत्पश्चात् परम प्रसन्नतासे युक्त देवतागण भी परम आनन्दका अनुभव करते हुए अपने-अपने आश्रमके लिये प्रस्थित हो गये। तब परिपूर्णतम भगवान् शिव भी तपस्याके उद्देश्यसे वहाँसे चल दिये॥ ५१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें शक्तिप्रादुर्भाव' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

वेदवतीकी कथा, इसी प्रसंगमें भगवान् श्रीरामके चरित्रके एक अंशका कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदी के पूर्वजन्मका वृत्तान्त

श्रीनारायण बोले—हे मुने! उन दोनोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी आराधना करके अपना मनोवांछित वर प्राप्त कर लिया॥ १॥

महालक्ष्मीके वरदानसे ही वे धर्मध्वज और कुशध्वज महान् पुण्यशाली तथा पुत्रवान् राजा हो गये॥ २॥

कुशध्वजकी मालावती नामक साध्वी भार्या थी। उस देवीने दीर्घकाल बीतनेपर यथासमय लक्ष्मीके अंशसे सम्पन्न एक साध्वी कन्याको जन्म दिया। उसे जन्मसे ही ज्ञान प्राप्त था। वह कन्या स्पष्ट वाणीमें वेद-मन्त्रोंका उच्चारणकर सूतिकागृहसे बाहर निकल आयी। उस कन्याने जन्म लेते ही वेदध्वनि की थी, इसलिये विद्वान् लोग उसे 'वेदवती' कहने लगे॥ ३—५॥

जन्म लेते ही उस कन्याने विधिवत् स्नान किया और तपस्याके लिये वनको प्रस्थान कर दिया; यद्यपि सभी

लोगोंने श्रीहरिके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस कन्याको ऐसा करनेसे प्रयत्नपूर्वक रोका था॥ ६॥

उस तपस्विनी कन्याने एक मन्वन्तरतक पुष्कर-क्षेत्रमें रहकर लीलापूर्वक अत्यन्त कठोर तप किया, फिर भी वह दुर्बल नहीं हुई; अपितु स्वस्थ और नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही॥ ७१/२॥

उसने सहसा स्पष्ट शब्दोंवाली यह आकाशवाणी सुनी—हे सुन्दरि! दूसरे जन्ममें स्वयं भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा आदिके द्वारा भी बड़ी कठिनतासे प्रसन्न होनेवाले भगवान् श्रीहरिको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी॥ ८-९॥

यह आकाशवाणी सुनकर वह कन्या अत्यन्त प्रसन्न हो गयी और गन्धमादनपर्वतपर निर्जन स्थानमें पुनः तप करने लगी॥ १०॥

वहाँ दीर्घकालतक तपश्चर्या करती हुई वह निश्चिन्त होकर रहती थी। एक बार उसने अपने समक्ष उपस्थित ढीठ रावणको देखा॥ ११॥

उसे देखकर वेदवतीने अतिथिभक्तिसे युक्त होकर उसे पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल प्रदान किया। उन्हें ग्रहण करके वह पापी रावण उसके पास बैठ गया और उससे यह प्रश्न करने लगा 'हे कल्याणि! तुम कौन हो?'॥ १२-१३॥

स्थूल नितम्बदेश तथा वक्षःस्थलवाली, शरदृतुके विकसित कमलकी भाँति प्रसन्न मुखवाली, मुसकानयुक्त तथा स्वच्छ दाँतोंवाली उस परम साध्वी सुन्दरीको देखकर कामबाणसे आहत होकर वह नीच रावण मूर्च्छित हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर श्रृंगारिक चेष्टाएँ करने लगा॥ १४-१५॥

यह देखकर वह साध्वी अत्यन्त क्रोधित हो उठी और उसने [तपोबलसे] उसे स्तम्भित कर दिया। वह हाथों तथा पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया और कुछ भी बोल सकनेमें समर्थ नहीं रहा॥ १६॥

वह मन-ही-मन उस कमलनयनी देवीकी शरणमें गया और उसने उसका स्तवन किया। देवी वेदवती उसपर प्रसन्न हो गयी और [परलोकमें] उसे स्तुतिका फल देना स्वीकार कर लिया। साथ ही उसने यह शाप भी दिया—'तुम मेरे ही कारण अपने बान्धवोंसहित विनष्ट हो जाओगे; क्योंकि काम-भावनासे तुमने मेरा स्पर्श किया है। अब तुम मेरा बल देख लो'॥ १७-१८॥

ऐसा कहकर उसने योगबलसे अपने शरीरका त्याग कर दिया। इसके बाद रावणने उसे गंगामें छोड़कर अपने घरकी ओर प्रस्थान किया—'अहो, इस समय मैंने यह कैसा अद्भुत दृश्य देखा है, इस देवीने इस समय क्या कर डाला'— ऐसा सोच-सोचकर वह रावण बार-बार विलाप करता रहा॥ १९-२०॥

[हे मुने!] वही साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुईं और वे देवी 'सीतादेवी'—इस नामसे विख्यात हुईं, जिनके कारण रावण मारा गया। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे उस महान् तपस्विनी वेदवतीने परिपूर्णतम भगवान् श्रीरामको पतिरूपमें प्राप्त किया। तपस्याके द्वारा उस देवीने अत्यन्त कठिनतासे सन्तुष्ट होनेवाले तथा सबके आराध्य जगत्पति श्रीरामको प्राप्त किया था। उस सुन्दरी सीताने अत्यन्त दीर्घ कालतक भगवान् श्रीरामके साथ विलास किया॥ २१—२३॥

उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था, फिर भी पूर्व समयमें तपस्याके कष्टपर उसने ध्यान नहीं दिया। उसने सुखपूर्वक उस क्लेशका त्याग कर दिया था; क्योंकि परिणामके उत्तम होनेपर दुःख भी सुखके रूपमें हो जाता है॥ २४॥

उन सुकुमार श्रीरामको प्राप्त करके उस नवयौवना साध्वीने दीर्घकालतक नाना प्रकारके ऐश्वर्यको प्राप्त किया। उसने अपनी अभिलाषाके अनुरूप ही गुणवान्, रसिक, शान्त, कमनीय, स्त्रियोंके लिये कामदेवतुल्य मनोहर एवं सर्वश्रेष्ठ देवको प्राप्त किया था॥ २५-२६॥

तदनन्तर रघुकुलकी वृद्धि करनेवाले सत्यसंकल्प श्रीराम बलवान् कालसे प्रेरित होकर अपने पिताके वचनको सत्य करनेके लिये वनमें चले गये॥ २७॥

वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके समीप स्थित थे। उसी समय भगवान्ने विप्ररूपधारी अग्निदेवको वहाँ देखा। तब श्रीरामको दुःखित देखकर अग्नि भी बहुत

दुःखी हुए। इसके बाद सत्यपरायण वे अग्निदेव सत्यप्रेमी भगवान् श्रीरामसे यह सत्यवचन कहने लगे॥ २८-२९॥

द्विज बोले—हे भगवन्! हे श्रीराम! सुनिये, यह जो काल आपके समक्ष उपस्थित है, वह सीता-हरणके समयके रूपमें ही आया हुआ है। दैवका प्रतिकार अत्यन्त कठिन है, उस दैवसे बढ़कर बलवान् अन्य कोई नहीं है। अतः आप इस समय जगज्जननी सीताको मुझमें स्थापित करके छायामयी सीताको अपने साथ रख लीजिये। इनकी परीक्षाका समय आनेपर मैं इन सीताको पुनः आपको सौंप दूँगा। मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अपितु इसी कार्यहेतु देवताओंके द्वारा भेजा गया साक्षात् अग्निदेव हूँ॥ ३०—३२॥

श्रीरामने उनकी यह बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही अत्यन्त दुःखी मनसे वह वचन स्वीकार कर लिया॥ ३३॥

हे नारद! तत्पश्चात् अग्निदेवने योगबलसे सीताके ही समान एक माया-सीताकी रचना की। इसके बाद अग्निने गुण और स्वरूपमें उस सीताके ही तुल्य माया-सीताको श्रीरामको सौंप दिया॥ ३४॥

श्रीराम इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेका निषेध करके माया-सीताको साथ लेकर चल पड़े। लक्ष्मणतक इस रहस्यको नहीं जान पाये तो दूसरेकी बात ही क्या॥ ३५॥

इसी बीच श्रीरामने एक स्वर्णमृग देखा। तब सीता जिस किसी भी यत्नसे उसे लानेके लिये श्रीरामको प्रेरित करने लगीं॥ ३६॥

श्रीराम उस वनमें सीताकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको वहींपर नियुक्त करके स्वयं शीघ्रतापूर्वक मृगकी ओर दौड़ पड़े और बाणसे उसका वध कर दिया॥ ३७॥

उस मायामृगने 'हा लक्ष्मण'—यह शब्द करके अपने समक्ष भगवान् श्रीहरिका दर्शन प्राप्त करके उनका स्मरण करते हुए सहसा अपने प्राण त्याग दिये॥ ३८॥

मृगका शरीर त्यागकर दिव्य स्वरूप धारण करके वह रत्ननिर्मित विमानसे वैकुण्ठ चला गया। वह मारीच पूर्वजन्ममें दोनों द्वारपालोंके सेवकके रूपमें वैकुण्ठके द्वारपर रहता था। अब द्वारपालोंके आदेशानुसार वह फिर वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया॥ ३९-४०॥

इधर 'हा लक्ष्मण'—यह आर्तनाद सुनकर सीताने रामके पास जानेके लिये लक्ष्मणको प्रेरित किया॥ ४१॥

रामके पास लक्ष्मणके चले जानेपर अत्यन्त दुर्धर्ष वह रावण अपनी मायासे सीताका हरण करके लंकाकी ओर चल दिया॥ ४२॥

लक्ष्मणको वनमें देखकर श्रीराम विषादग्रस्त हो गये। अपने आश्रमपर तत्काल पहुँचकर जब उन्होंने सीताको नहीं देखा तब वे मूर्च्छित हो गये और पुनः [चेतना आनेपर] उन्होंने बार-बार बहुत विलाप किया। इसके बाद सीताको खोजते हुए वे बार-बार इधर-उधर भटकने लगे॥ ४३-४४॥

कुछ समय पश्चात् गोदावरीनदीके तटपर सीताका समाचार मिलनेपर भगवान् श्रीरामने वानरोंको अपना सहायक बनाकर समुद्रपर पुल बाँधा॥ ४५॥

पुनः समय आनेपर लंका जाकर उन रघुश्रेष्ठ रामने बाणसे रावणको मार डाला। इस प्रकार बान्धवोंसहित उस रावणका वध करके श्रीरामने तत्काल उन सीताकी अग्निपरीक्षा करायी। उसी समय अग्निदेवने वास्तविक सीता श्रीरामको सौंप दी॥ ४६-४७॥

तब छायामयी सीताने विनम्र होकर अग्निदेव और श्रीरामसे कहा—अब मैं क्या करूँ? मुझे वह उपाय बताइये॥ ४८॥

श्रीराम और अग्निदेव बोले—हे देवि! तुम तपस्या करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें जाओ। वहाँ तपस्या करके तुम स्वर्गलक्ष्मी बनोगी। वे यह वचन सुनकर पुष्करक्षेत्रमें जाकर दिव्य तीन लाख वर्षोंतक कठिन तपस्या करके स्वर्गलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठित हो गयीं॥ ४९-५०॥

कालक्रमसे वे ही देवी तपस्याके प्रभावसे यज्ञकुण्डसे उत्पन्न होकर महाराज द्रुपदकी पुत्री तथा पाण्डवोंकी प्रिया द्रौपदी बनीं॥ ५१॥

इस प्रकार सत्ययुगमें कुशध्वजकी वही कन्या कल्याणमयी वेदवती त्रेतायुगमें जनककी पुत्री सीता हुईं और बादमें वे श्रीरामकी पत्नी बनीं। पुनः वही छायासीता

द्वापरमें द्रुपदकी पुत्री देवी द्रौपदीके रूपमें आविर्भूत हुईं। अतः तीनों युगोंमें विद्यमान रहनेवाली उस देवीको 'त्रिहायणी' भी कहा गया है॥ ५२-५३॥

नारदजी बोले—शंकाओंका समाधान करनेवाले हे मुनिश्रेष्ठ! उस द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए? मेरे मनका यह सन्देह दूर कीजिये॥ ५४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! जब लंकामें वास्तविक सीता भगवान् रामको प्राप्त हो गयीं, तब रूप एवं यौवनसे सम्पन्न छायासीता महान् चिन्तासे व्याकुल हो उठी॥ ५५॥

तदनन्तर भगवान् श्रीराम और अग्निकी आज्ञाके अनुसार वह भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। कामातुर वह पतिप्राप्तिके लिये व्यग्र होकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगी—'हे त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये'। ऐसा उसने पाँच बार कहा था॥ ५६-५७॥

उस प्रार्थनाको सुनकर रसिकेश्वर शंकरने हँसकर यह वर दे दिया—'हे प्रिये! तुम्हारे पाँच पति होंगे'। [हे नारद!] इसीलिये वे छायासीता [द्वापरमें] पाँचों पाण्डवोंकी प्रिय भार्या हुईं। इस प्रकार मैंने आपको यह सब बता दिया, अब वास्तविक प्रसंग सुनिये॥ ५८-५९॥

भगवान् श्रीराम लंकामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके अनन्तर वह लंका विभीषणको सौंपकर अयोध्या वापस चले गये और भारतवर्षमें ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करके समस्त पुरवासियोंसहित वैकुण्ठ चले गये। लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत वह वेदवती लक्ष्मीके विग्रहमें समाविष्ट हो गयी॥ ६०-६१$^{1}/_{2}$॥

इस प्रकार मैंने यह पवित्र, पुण्यदायक तथा पापनाशक आख्यान आपसे कह दिया। मूर्तिमान् रूपमें चारों वेद उसकी जिह्वाके अग्रभागपर निरन्तर विराजमान रहते थे, इसीलिये वह वेदवती नामसे प्रसिद्ध थी। अब मैं आपको धर्मध्वजकी कन्याका आख्यान बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६२—६४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'महालक्ष्मीका वेदवतीके रूपमें राजगृहमें जन्म-वर्णन' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसंग

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा धर्मध्वजकी पत्नी माधवी नामसे प्रसिद्ध थी। वह राजाके साथ गन्धमादनपर्वतपर एक सुरम्य उपवनमें विहार करती थी॥ १॥

पुष्प और चन्दनसे सुरभित सुखदायी शय्यापर अपने समस्त अंगोंको चन्दनसे सुसज्जितकर, रत्नाभरणोंसे विभूषित हो पुष्प-चन्दनादिसे सुगन्धित पवनका सुख लेते हुए वह स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सर्वांगसुन्दरी अपने रसिक पतिके साथ कामोपभोगमें लगी रहती थी॥ २-३॥

रतिक्रीड़ाके विज्ञ वे दोनों कभी भी भोगसे विरत नहीं होते थे। इस प्रकार उनके दिव्य सौ वर्ष व्यतीत हो गये, किंतु उन्हें दिन-रातका भी ज्ञान नहीं रहा॥ ४॥

तदनन्तर राजाके हृदयमें कुछ ज्ञानका उदय होनेपर वे भोगसे विरत हो गये, किंतु वह कामासक्त सुन्दरी पूर्ण रूपसे तृप्त नहीं हुई। दैवयोगसे उसने शीघ्र ही गर्भ धारण कर लिया। श्रीस्वरूप गर्भवाली वह दिनों-दिन सौन्दर्यसम्पन्न होती गयी। उस साध्वीका गर्भ सौ वर्षोंतक रहा॥ ५-६॥

हे नारद! उस माधवीने कार्तिकपूर्णिमा तिथिमें शुक्रवारको शुभ दिन, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न, शुभ अंश तथा शुभ स्वामिग्रहसे युक्त उत्तम मुहूर्तमें लक्ष्मीकी अंशस्वरूपिणी तथा पद्मिनीतुल्य एक मनोहर कन्याको जन्म दिया॥ ७-८॥

उस कन्याका मुख शरत्-पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलके समान थे, ओष्ठ पके हुए बिम्बाफलके सदृश थे, उस समय वह कन्या मुसकराती हुई अपने घरको देख रही थी, उसके हाथ-

पैरके तलवे लाल थे, उसकी नाभि गम्भीर थी, उसका विग्रह मनको मुग्ध कर देनेवाला था, उसका कटिप्रदेश तीन वलियोंसे युक्त था। उसके दोनों नितम्ब गोल थे। शीतकालमें सुख देनेके लिये वह सम्पूर्ण उष्ण अंगोंवाली और ग्रीष्मकालमें शीतल अंगोंवाली थी। वह श्यामा सुन्दरी वटवृक्षको घेरकर शोभित होनेवाले वरोहोंकी भाँति बड़े सुन्दर केशपाशसे सुसज्जित थी, वह पीत चम्पकके वर्णके समान आभावाली थी, वह सुन्दरियोंकी भी सुन्दरी थी—ऐसे अनुपम सौन्दर्यवाली उस कन्याको देखकर सभी स्त्री और पुरुष किसीके साथ उसकी तुलना करनेमें असमर्थ थे, इसलिये विद्वान् पुरुष उसे तुलसी नामसे पुकारते हैं। पृथ्वीपर आते ही वह प्रकृतिदेवी-जैसी योग्य स्त्री हो गयी॥ ९—१३॥

सभी लोगोंद्वारा मना किये जानेपर भी वह तपस्या करनेके उद्देश्यसे बदरीवन चली गयी और वहाँ उसने



दिव्य एक लाख वर्षोंतक कठिन तप किया। स्वयं भगवान् नारायण मेरे स्वामी हों—ऐसा अपने मनमें निश्चय करके वह ग्रीष्मकालमें पंचाग्नि तापती थी, जाड़ेके समयमें गीले वस्त्र पहनती थी और वर्षाऋतुमें एक आसनपर बैठकर जलधाराओंको सहती हुई दिन-रात तप करती थी। वह तपस्विनी बीस हजार वर्षोंतक फल और जलके आहारपर, तीस हजार वर्षोंतक पत्तोंके आहारपर और चालीस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर रही। तत्पश्चात् वह कृशोदरी दस हजार वर्षोंतक निराहार रही॥ १४—१७१/२॥

इस प्रकार उसे निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर स्थित रहकर तपस्या करते हुए देखकर ब्रह्माजी उसे वर प्रदान करनेके लिये उत्तम बदरिकाश्रम आये॥ १८१/२॥

हंसपर विराजमान चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर उस तुलसीने प्रणाम किया। तब जगत्‌की सृष्टि करनेवाले तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा उससे कहने लगे—॥ १९१/२॥

ब्रह्माजी बोले—हे तुलसि! हरिकी भक्ति, हरिकी दासता और अजरता-अमरता—इनमेंसे जो भी तुम्हारे मनमें अभीष्ट हो, उसे माँग लो॥ २०१/२॥

तुलसी बोली—हे तात! सुनिये, मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे बता रही हूँ; क्योंकि सब कुछ जाननेवाले आप ब्रह्माके समक्ष अपनी बात कहनेमें मुझे अब लाज ही क्या है? मैं पूर्वजन्ममें तुलसी नामकी गोपी थी और गोलोकमें निवास करती थी। उस समय मैं भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अंशस्वरूपा तथा उनकी प्रेयसी सखीके रूपमें प्रतिष्ठित थी॥ २१-२२१/२॥

एक समय जब मैं भगवान् श्रीकृष्णके साथ विहारमें अचेत तथा अतृप्त अवस्थामें थी, तभी रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमण्डलमें आकर मुझे देख लिया। उन्होंने श्रीकृष्णकी बहुत भर्त्सना की और कुपित होकर मुझे शाप दे दिया था—'तुम मनुष्ययोनि प्राप्त करो'—यह शाप उन्होंने मुझे दे दिया॥ २३-२४१/२॥

तब उन गोविन्दने मुझसे कहा—'भारतवर्षमें जन्म लेकर घोर तपस्या करके तुम ब्रह्माजीके वरदानसे मेरे अंशस्वरूप चतुर्भुज विष्णुको पतिरूपमें प्राप्त करोगी'। इस प्रकार कहकर वे देवेश्वर श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। हे गुरो! देवी राधाके भयसे अपना वह शरीर त्यागकर मैंने अब भूमण्डलपर जन्म लिया है और सुन्दर विग्रहवाले तथा शान्तस्वभाव भगवान् नारायण जो उस समय मेरे पति थे, उन्हींको अब भी पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये वर माँग रही हूँ, आप मुझे यह वर दीजिये॥ २५—२७१/२॥

ब्रह्मदेव बोले—भगवान् श्रीकृष्णके अंगसे प्रादुर्भूत,

उन्हींके अंशस्वरूप तथा परम तेजस्वी सुदामा नामक गोपने भी इस समय भारतवर्षमें जन्म लिया है। वह राधाके शापसे दनुवंशमें उत्पन्न हुआ है और शंखचूड़ नामसे विख्यात है, उसके समान तीनों लोकोंमें कोई भी नहीं है॥ २८-२९१/२ ॥

पूर्वकालमें एक बार गोलोकमें तुम्हें देखकर उसके मनमें कामभावना उत्पन्न हो गयी, किंतु राधिकाके प्रभावके कारण वह तुम्हें नहीं पा सका था। वह सुदामा इस समय समुद्रमें उत्पन्न हुआ है। भगवान् श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातोंका स्मरण है। हे सुन्दरि! तुम्हें भी पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है, अतः तुम सब कुछ भलीभाँति जाननेवाली हो। हे शोभने! अब इस जन्ममें तुम उसी सुदामाकी पत्नी बनोगी और बादमें शान्तस्वरूप भगवान् नारायणका पतिरूपमें वरण करोगी॥ ३०—३२१/२ ॥

दैवयोगसे उन्हीं भगवान् नारायणके शापसे तुम अपनी कलासे विश्वको पवित्र करनेवाली पावन वृक्षरूपमें प्रतिष्ठित होओगी। तुम समस्त पुष्पोंमें प्रधान मानी जाओगी और भगवान् विष्णुके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय रहोगी। तुम्हारे बिना की गयी सभी देवताओंकी पूजा व्यर्थ समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूप तुम वृन्दावनी नामसे विख्यात रहोगी। समस्त गोप और गोपिकाएँ तुम्हारे पत्रोंसे ही भगवान् माधवकी पूजा करेंगे। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर विहार करोगी॥ ३३—३६१/२ ॥

[हे नारद!] ब्रह्माजीकी यह वाणी सुनकर तुलसी मुसकराने लगी और उसका चित्त प्रफुल्लित हो गया। उसने ब्रह्माजीको प्रणाम किया और फिर वह उनसे कुछ कहने लगी॥ ३७१/२ ॥

तुलसी बोली—हे तात! मैं यह सत्य कह रही हूँ कि दो भुजाओं वाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके प्रति जैसी मेरी रुचि है, वैसी चार भुजाओंवाले श्रीविष्णुके लिये नहीं है; क्योंकि मैं दैवयोगसे श्रृंगार-भंग होनेके कारण गोविन्दसे अभी भी अतृप्त ही हूँ। मैं तो उन गोविन्दकी आज्ञामात्रसे ही चतुर्भुज श्रीहरिके लिये प्रार्थना कर रही हूँ। अब तो मैं आपकी कृपासे उन अत्यन्त दुर्लभ गोविन्दको निश्चितरूपसे प्राप्त कर लूँगी। हे प्रभो! साथ ही आप मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये॥ ३८—४०१/२ ॥

ब्रह्मदेव बोले—हे सुभगे! मैं तुम्हें भगवती राधिकाका सोलह अक्षरोंवाला मन्त्र प्रदान करता हूँ; तुम इसे ग्रहण कर लो। तुम मेरे वरके प्रभावसे उन राधाके लिये प्राणतुल्य हो जाओगी। तुम दोनों (श्रीकृष्ण और तुलसी)-के गुप्त प्रेमको राधिका नहीं जान पायेंगी। राधाके समान ही तुम गोविन्दकी प्रेयसी हो जाओगी॥ ४१-४२१/२ ॥

[हे मुने!] ऐसा कहकर जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माने देवी तुलसीको भगवती राधाके षोडशाक्षर-मन्त्र, स्तोत्र, उत्तम कवच, समस्त पूजाविधान और पुरश्चर्याविधिके क्रम बता करके उसे उत्तम शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् तुलसीने [पूर्वोक्त विधिसे भगवती राधाका] पूजन किया और उनकी कृपासे वह देवी तुलसी भगवती लक्ष्मीके समान सिद्ध हो गयी॥ ४३—४५ ॥

ब्रह्माजीने जैसा कहा था, उस मन्त्रके प्रभावसे ठीक वैसा ही वर तुलसीको प्राप्त हो गया। उसने विश्वमें दुर्लभ महान् सुखोंका भोग किया। मन प्रसन्न हो जानेके कारण उस देवीके तपस्याजनित सभी कष्ट दूर हो गये; क्योंकि फलकी प्राप्ति हो जानेके बाद मनुष्योंका दुःख उत्तम सुखमें परिणत हो जाता है॥ ४६-४७ ॥

तदनन्तर भोजन-पानादि करके तथा सन्तुष्ट होकर उस तुलसीने पुष्प-चन्दनसे चर्चित मनोहर शय्यापर शयन किया॥ ४८ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें धर्मध्वजसुता तुलसीका उपाख्यान-वर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

तुलसीको स्वप्नमें शंखचूड़का दर्शन, ब्रह्माजीका शंखचूड़ तथा तुलसीको विवाहके लिये आदेश देना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] एक समयकी बात है—वृषध्वजकी नवयौवनसम्पन्न कन्या तुलसी अत्यन्त सन्तुष्ट तथा प्रसन्नचित्त होकर शयन कर रही थी॥ १॥

उसी समय कामदेवने उसपर अपने पाँचों बाण चला दिये। पुष्प तथा चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली वह कन्या कामदेवके पुष्प-बाणसे परितप्त हो गयी। उसका सारा अंग पुलकित हो उठा, उसके शरीरमें कँपकँपी होने लगी और उसकी आँखें लाल हो गयीं। वह क्षणभरमें सूख जाती थी और दूसरे क्षणमें मूर्च्छित हो जाती थी, पुनः क्षणभरमें उद्विग्न हो उठती थी और फिर क्षणभरमें सुखदायक तन्द्रासे युक्त हो जाती थी। वह क्षणभरमें उत्तप्त हो जाती थी और फिर तुरंत प्रसन्न हो जाती थी। क्षणभरमें सचेत हो जाती थी और क्षणमें विषादग्रस्त हो जाती थी। वह कभी शय्यासे उठती हुई, कभी क्षणभरमें पासमें ही टहलती हुई, क्षणभरमें उद्वेगपूर्वक घूमती हुई और क्षणभरमें बैठती हुई दिखायी पड़ती थी और फिर क्षणभरमें ही अत्यन्त उद्विग्न होकर अपनी शय्यापर पुनः सो जाती थी॥ २—६॥

पुष्प तथा चन्दनसे सुसज्जित शय्या उसे काँटों-जैसी लगने लगी, दिव्य सुख और सुन्दर फल तथा जल उसके लिये विषतुल्य हो गये। उसे अपना भव्य भवन बिलके समान, शरीरके कोमल वस्त्र अग्निके समान और मस्तकका सिन्दूर दुःखदायी व्रणके समान लगने लगा॥ ७-८॥

थोड़ी देरमें तन्द्राकी अवस्थामें उस साध्वी तुलसीने सुन्दर वेष धारण किये हुए, अपने सभी अंगोंमें चन्दन लगाये हुए तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत एक सुन्दर युवा अवस्थावाले, मुसकानयुक्त तथा परम रसिक पुरुषको देखा। मालासे सुशोभित वह युवक उसके मुखकमलका पान करनेके लिये उसकी ओर आ रहा था, वह निरन्तर रतिक्रीड़ा-सम्बन्धी कथाएँ कह रहा था और मधुर-मधुर बोल रहा था तथा सहसा अपनी भुजाओंमें आलिंगित करके शय्यापर विहार कर रहा था। कुछ ही क्षणोंमें वह चला गया और फिर पास आ गया। इसके बाद पुनः जाते हुए उस युवकसे तुलसीने कहा—'हे प्राणनाथ! आप कहाँ जा रहे हैं? बैठ जाइये।' तत्पश्चात् जाग जानेपर वह तुलसी बार-बार विलाप करने लगी। हे नारद! इस प्रकार युवावस्थाको प्राप्तकर वह तुलसी वहींपर स्थित रही॥ ९—१३॥

शंखचूड़ जैगीषव्यमुनिसे श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र प्राप्त करके और उस मन्त्रको पुष्करक्षेत्रमें सिद्ध करके महान् योगी हो गया था। सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाले उस कवचको गलेमें बाँधकर और ब्रह्माजीसे 'जो तुम्हारे मनमें अभिलषित हो, वह पूर्ण हो जाय'—ऐसा वर प्राप्तकर वह शंखचूड़ भी ब्रह्माकी आज्ञासे बदरीवन आ गया॥ १४-१५१/२॥

हे मुने! तुलसीने आते हुए शंखचूड़को देख लिया। वह नवयौवनसे सम्पन्न था, उसकी कान्ति कामदेवके समान थी, उसका वर्ण श्वेत चम्पाकी आभाके समान था, वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित था, उसका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान था, उसके नेत्र शरत्कालीन कमलसदृश थे, वह अमूल्य रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान था, वह अत्यन्त मनोहर था, दो रत्नमय कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल शोभायमान था, उसने पारिजात पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी, उसका मुखमण्डल मुसकानसे भरा हुआ था और उसका सर्वांग कस्तूरी, कुमकुमसे युक्त तथा सुगन्धित चन्दनसे अनुलिप्त था—ऐसे शंखचूड़को अपने पास देखकर वस्त्रसे अपना मुख ढँककर मुसकराती हुई तथा कटाक्षके साथ बार-बार उसकी ओर देखती हुई तुलसीने नवमिलनके कारण लज्जावश अपना मुख नीचेकी ओर झुका लिया॥ १६—२१॥

उसका चन्द्रसदृश मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी लज्जित कर रहा था, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित नूपुरोंकी

पंक्तिसे वह सुशोभित हो रही थी, सर्वोत्तम मणिसे निर्मित तथा सुन्दर शब्द करती हुई करधनीसे वह सुशोभित हो रही थी, वह मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केशपाश धारण किये हुई थी, उसने बहुमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल अपने कानोंमें धारण कर रखे थे, चित्रमय दो कुण्डलोंसे उसका गण्डस्थल सुशोभित था, सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हारके द्वारा उसके वक्षःस्थलका मध्यभाग उज्ज्वल दिखायी दे रहा था, रत्नमय कंकण-केयूर-शंख आदि आभूषणोंसे वह सुशोभित थी। रत्नजटित दिव्य अँगूठियाँ उसकी अँगुलियोंको सुशोभित कर रही थीं—ऐसी भव्य, रमणीय, सुशील, सुन्दर तथा साध्वी तुलसीको देखकर वह शंखचूड़ उसके पास बैठ गया और मधुर वाणीमें उससे कहने लगा॥ २२—२६$^{१}/_{२}$ ॥

शंखचूड़ बोला—हे मानिनि! हे कल्याणि! हे सर्वकल्याणदायिनि! तुम कौन हो और किसकी कन्या हो? तुम समस्त स्त्रियोंमें धन्य तथा मान्य हो। हे सुन्दरि! स्तब्ध हुए मुझ सेवकसे वार्तालाप करो॥ २७-२८॥

शंखचूड़का यह वचन सुनकर सुन्दर नेत्रोंवाली तथा कामयुक्त तुलसी उस कामपीड़ित शंखचूड़से मुसकराते हुए तथा नीचेकी ओर मुख झुकाकर कहने लगी॥ २९॥

तुलसी बोली—मैं धर्मध्वजकी पुत्री हूँ और इस तपोवनमें तपस्या करनेके निमित्त एक तपस्विनीके रूपमें रह रही हूँ। आप कौन हैं? आप यहाँसे सुखपूर्वक चले जाइये। श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न पुरुष उच्च कुलमें उत्पन्न किसी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें बातचीत नहीं करते—ऐसा मैंने श्रुतिमें सुना है॥ ३०-३१॥

जो नीच कुलमें उत्पन्न है तथा धर्मशास्त्रके ज्ञानसे वंचित है और जिसे श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी अवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामासक्त होकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्री ऊपरसे बड़ी मधुर दिखायी देती है, किंतु सदा अभिमानमें चूर रहती है, पुरुषके लिये विनाशक होती है, वह विषसे परिपूर्ण ऐसे घटके सदृश होती है, जिसके मुखपर अमृत लगा हुआ हो, स्त्रीका हृदय छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण होता है, किंतु ऊपरसे वह सदा मधुर बातें करती है, स्त्री अपना ही प्रयोजन सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहती है, अपने कार्यकी सिद्धिके लिये ही वह स्वामीके वशमें रहती है, अन्यथा वह सदा वशमें न रहनेवाली है, स्त्रीका हृदय अत्यन्त दूषित रहता है और उसके मुखमण्डल तथा नेत्रोंसे सदा प्रसन्नता झलकती रहती है॥ ३२—३५॥

श्रुतियों तथा पुराणोंमें जिन स्त्रियोंका चरित्र अत्यन्त दूषित बताया गया है; बुरे विचारवाले व्यक्तिको छोड़कर ऐसा कौन विद्वान् तथा बुद्धिमान् होगा, जो उनपर विश्वास कर सकता है*॥३६॥

उनका कौन शत्रु है और कौन मित्र? वे नित्य नये-नये पुरुषकी कामना करती हैं। वे किसी भी सुन्दर वेषयुक्त पुरुषको देखकर उसे मन-ही-मन चाहने लगती हैं॥ ३७॥

वे बाहरसे अपना हित साधनेके लिये अपने सतीत्वका प्रयत्नपूर्वक प्रदर्शन करती हैं, किंतु वास्तवमें सदा कामातुर रहती हैं। मनको आकृष्ट करनेवाली वे स्त्रियाँ कामदेवका आधारस्तम्भ होती हैं॥ ३८॥

स्त्री बाहरसे छलपूर्वक [अपनेको वासनावृत्तिसे रहित दिखाती हुई] अपने प्रेमीको सन्तप्त करती है, किंतु मनमें समागमकी अभिलाषा रखती है। वह बाहरसे अत्यन्त लज्जित दीखती है, किंतु एकान्तमें अपने प्रेमीके साथ हास-परिहास करती है॥ ३९॥

रतिका सुयोग न मिलनेपर मानिनी स्त्री कुपित हो जाती है और कलह करने लगती है। यथेच्छ सम्भोगसे स्त्री प्रसन्न रहती है और स्वल्प सम्भोगसे दुःखी हो जाती है॥ ४०॥

स्त्री स्वादिष्ट भोजन और शीतल जलकी अपेक्षा सुन्दर, रसिक, गुणी तथा युवक पतिकी ही आकांक्षा अपने मनमें रखती है॥ ४१॥

स्त्री अपने पुत्रसे भी अधिक स्नेह रसिक पुरुषपर रखती है। वह सम्भोगमें कुशल प्रेमीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती है॥ ४२॥

स्त्री वृद्ध तथा सम्भोग करनेमें अक्षम पुरुषको शत्रुके समान समझती है और वह अत्यन्त कुपित होकर उस पुरुषके साथ सदा कलह करती रहती है। जिस प्रकार सर्प चूहेपर झपटता है, उसी प्रकार स्त्री वैसे पुरुषको बात-

* श्रुतौ पुराणे यासां च चरित्रमतिदूषितम्। तासु को विश्वसेत्प्राज्ञः प्रज्ञावांश्च दुराशयः॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। १८। ३६)

बातपर खाने दौड़ती है। नारी दुःसाहसकी मूर्ति तथा सर्वदा समस्त दोषोंकी आश्रयस्थली है॥ ४३-४४॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंके लिये भी स्त्री दुःसाध्य है। मोहस्वरूपिणी नारी तपस्याके मार्गमें अर्गलादण्डके समान और मोक्षके द्वारपर कपाटके समान बाधक होती है। वह भगवान्‌की भक्तिमें बाधा डालनेवाली तथा सभी प्रकारकी मायाकी पिटारी है। वह संसाररूपी कारागारमें सदा जकड़े रखनेके लिये जंजीरके समान है। स्त्री इन्द्रजालस्वरूप तथा स्वप्नके समान मिथ्या कही गयी है। स्त्री बाह्य सौन्दर्य तो धारण करती है, किंतु इसके भीतरी अंग अत्यन्त कुत्सित रहते हैं। स्त्रीका शरीर विष्ठा-मूत्र-पीब आदिका आधार, मलयुक्त, दुर्गन्धि-दोषसे परिपूर्ण, रक्तरंजित तथा अपवित्र रहता है। पूर्व समयमें ब्रह्माने स्त्रीका सृजन मायावी पुरुषोंके लिये मायास्वरूपिणीके रूपमें, मुमुक्षुजनोंके लिये विषस्वरूपिणीके रूपमें तथा उसकी कामना करनेवालोंके लिये अदृश्यरूपिणीके रूपमें किया था॥ ४५—४९॥

हे नारद! उस शंखचूड़से ऐसा कहकर जब तुलसी चुप हो गयी, तब उसने हँसकर कहना आरम्भ किया॥ ५०॥

शंखचूड़ बोला—हे देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब असत्य नहीं है, किंतु अब मुझसे भी कुछ सत्य तथा कुछ असत्यके विषयमें सुन लीजिये॥ ५१॥

विधाताने सबको मोहित करनेवाला नारीरूप [वास्तविक और अवास्तविक] दो प्रकारसे रचा है—वास्तविक रूप प्रशंसनीय और दूसरा रूप निन्दनीय है। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, राधा आदि आद्या शक्तियाँ सृष्टिकी सूत्ररूपा हैं, इन्हींसे सृष्टिका प्रारम्भ हुआ है॥ ५२-५३॥

इन देवियोंके अंशसे प्रकट स्त्रीरूप वास्तविक कहा गया है; वह श्रेष्ठ, यशोरूप तथा समस्त मंगलोंका कारण है। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरकी पत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटभी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गंगा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मंगलचण्डी, धर्मपत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षान्ति, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—ये देवियाँ जो स्त्रीरूपमें प्रकट हैं, वे प्रत्येक युगमें श्रेष्ठ मानी गयी हैं॥ ५४—६०॥

जगदम्बाकी कलाके कलांशसे उत्पन्न जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, उन्हें अप्रशस्त तथा सम्पूर्ण लोकोंमें पुंश्चलीरूप कहा गया है॥ ६१॥

स्त्रियोंका जो सत्त्व-प्रधान रूप है, वही सर्वथा समीचीन है। अपने प्रभावके कारण वे ही उत्तम तथा साध्वीस्वरूप स्त्रियाँ सम्पूर्ण लोकोंमें प्रशंसित हैं। उन्हींको 'वास्तवरूपा' कहना चाहिये, ऐसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। रजोरूप और तमोरूपकी कलाओंके भेदसे अनेक प्रकारकी स्त्रियाँ प्रसिद्ध हैं॥ ६२-६३॥

रजोगुणका अंश जिनमें प्रधान है, वे मध्यम श्रेणीकी हैं और वे भोगोंमें आसक्त रहती हैं। सुखभोगके वशीभूत होकर वे सदा अपने ही कार्यमें संलग्न रहती हैं। वे कपटयुक्त, मोहकारिणी तथा धर्मके अर्थसे पराङ्मुख रहती हैं; अतः रजोगुणप्रधान स्त्रीमें साध्वीभाव कभी नहीं उत्पन्न हो सकता है, विद्वान् लोग इसे स्त्रियोंका मध्यमरूप कहते हैं॥ ६४-६५$^1/_2$॥

तमोरूप दुर्निवार्य है, बुद्धिमान् पुरुषोंने इस रूपको 'अधम' कहा है। [हे देवि! तुमने जो कहा है कि] उत्तम कुलमें उत्तम विद्वान् पुरुष निर्जन, जलविहीन तथा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछता है—यह तो उचित ही है, किंतु हे शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञासे ही तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्वविवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें पत्नीरूपमें ग्रहण करूँगा॥ ६६—६८॥

देवताओंको सन्त्रस्त करनेवाला शंखचूड़ मैं ही हूँ। मैं दनुवंशमें उत्पन्न हुआ हूँ। विशेष बात यह है कि पूर्व-जन्ममें मैं श्रीहरिके साथ उनके पार्षदरूपमें रहनेवाले आठ गोपोंमें सुदामा नामक एक गोप था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बन गया हूँ॥ ६९-७०॥

कृष्णके मन्त्रके प्रभावके कारण मैं पूर्वजन्मकी सभी बातें जानता हूँ। तुम्हें भी अपने पूर्वजन्मकी बातों का स्मरण

होगा कि तुम उस समय तुलसी थी और श्रीहरिने तुम्हारे साथ विहार किया था और वही तुम राधिकाके कोपके कारण भारत-भूमिपर उत्पन्न हुई हो। उस समय मैं तुम्हारे साथ रमण करनेके लिये बहुत लालायित था, किंतु राधिकाके भयके कारण ऐसा नहीं हुआ॥ ७१-७२॥

हे महामुने! इस प्रकार कहकर जब वह शंखचूड़ चुप हो गया, तब प्रसन्नतासे युक्त तुलसीने हँसते हुए कहना आरम्भ किया॥ ७३॥

तुलसी बोली—इस प्रकारके [सद्विचारसम्पन्न] विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। कोई स्त्री कामसे प्रेरित होकर ऐसे ही पतिकी सदा अभिलाषा रखती है॥ ७४॥

आप-जैसे उत्तम विचारवाले पुरुषसे मैं निश्चित ही इस समय पराजित हो गयी हूँ। निन्दनीय तथा अपवित्र पुरुष तो वह होता है, जो स्त्रीके द्वारा जीत लिया गया हो॥ ७५॥

पितृगण, देवता तथा बान्धव—ये सब लोग स्त्रीके द्वारा पराभूत व्यक्तिकी निन्दा करते हैं तथा माता-पिता एवं भ्राता भी स्त्रीजित मनुष्यकी मन-ही-मन निन्दा करते रहते हैं॥ ७६॥

शास्त्रोंमें विहित है कि जन्म और मृत्युजनित अशौचसे ब्राह्मण दस दिनोंमें, क्षत्रिय बारह दिनोंमें, वैश्य पन्द्रह दिनोंमें, शूद्र एक मासमें तथा वर्णसंकर अपनी मातृकुलपरम्पराके आचारके अनुसार शुद्ध हो जाते हैं, किंतु स्त्रीसे पराजित व्यक्ति सर्वदा अपवित्र रहता है और चितादहनके कालमें ही वह शुद्ध होता है॥ ७७-७८॥

स्त्रीजित मनुष्यके पितर उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड तथा तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते और देवता भी उसके द्वारा अर्पित पुष्प, जल आदिको स्वीकार नहीं करते हैं॥ ७९॥

जिसके मनको स्त्रियोंने हर लिया हो; उसके ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या प्रयोजन!॥ ८०॥

आपकी विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही मैंने आपकी परीक्षा की है; क्योंकि कोई स्त्री किसी पुरुषकी सम्यक् परीक्षा करके ही पतिरूपमें उसका वरण करती है॥ ८१॥

जो मनुष्य गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, नीच, परम क्रोधी, अत्यन्त कटुवचन बोलनेवाले, पंगु, अंगहीन, अन्धे, बहरे, जड़, गूँगे, नपुंसकतुल्य तथा पापी वरको अपनी कन्या देता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ८२—८४॥

शान्त, गुणी, युवक, विद्वान् तथा सदाचारी वरको अपनी पुत्री अर्पण करनेसे मनुष्यको दस यज्ञोंका फल प्राप्त होता है॥ ८५॥

कोई कन्याका पालन-पोषण करके यदि उसे बेच देता है, तब धनके लोभसे कन्याका विक्रय करनेवाले उस मनुष्यको 'कुम्भीपाक' नरकमें जाना पड़ता है। वहाँपर वह पापी भोजनके रूपमें कन्याके मल-मूत्रका ही भक्षण करता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कीड़े तथा कौवे उसे नोचते रहते हैं। तदनन्तर वह फिरसे जन्म प्राप्त करता है और अनेक रोगोंसे ग्रस्त रहता है। वह दिन-रात मांस ढोता है और मांस-विक्रय करता रहता है, यह निश्चित है। हे तपोनिधे! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी॥ ८६—८८१/२॥

ब्रह्मा बोले—हे शंखचूड़! तुम इसके साथ क्या बातचीत



कर रहे हो? गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार अब तुम इसे स्वीकार कर लो; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी तुलसी भी स्त्रियोंमें रत्न है। एक प्रवीण स्त्रीका एक प्रवीण पुरुषके साथ संयोग बड़ा कल्याणकारी होता है। हे राजन्! निर्बाध तथा दुर्लभ सुखको पाकर भला कौन उसका त्याग करता है। जो मनुष्य विरोधरहित सुखका त्याग कर देता

है, वह पशु है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ८९—९१½॥

[इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—] हे सति! तुम ऐसे गुणी और समस्त देवताओं, असुरों तथा दानवोंका दमन करनेवाले पतिकी क्या परीक्षा ले रही हो? जिस प्रकार विष्णुके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मुझ ब्रह्माके पास सावित्री, भगवान् शिवके पास भवानी, भगवान् वराहके पास धरा, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास साध्वी रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, यज्ञके पास दक्षिणा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्द (कार्तिकेय)-के पास देवसेना और धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे प्रतिष्ठित हैं; उसी प्रकार तुम भी शंखचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ और हे सुन्दरि! अपने इस सुन्दर प्रियतमके साथ विभिन्न स्थानोंपर अपनी इच्छाके अनुसार निरन्तर विहार करो। अन्तमें तुम गोलोकमें पुनः भगवान् श्रीकृष्णको तथा वैकुण्ठमें चतुर्भुज श्रीविष्णुको प्राप्त करोगी॥ ९२—१००॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'शंखचूड़के साथ तुलसीका संगतिवर्णन' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

तुलसीके साथ शंखचूड़का गान्धर्वविवाह, शंखचूड़से पराजित और निर्वासित देवताओंका ब्रह्मा तथा शंकरजीके साथ वैकुण्ठधाम जाना, श्रीहरिका शंखचूड़के पूर्वजन्मका वृत्तान्त बताना

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] आपने यह अत्यन्त अद्भुत आख्यान सुनाया, जिसे सुनकर किसी भी प्रकारसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। हे महामते! उसके बाद जो कुछ घटित हुआ, उसे आप मुझे बताइये॥ १½॥

श्रीनारायण बोले—इस प्रकार [शंखचूड़ तथा तुलसीको] आशीर्वाद देकर ब्रह्माजी अपने लोक चले गये। तब दानव शंखचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार उस तुलसीको पत्नीरूपमें ग्रहण कर लिया। उस अवसरपर स्वर्गमें दुंदुभियाँ बजने लगीं और पुष्पोंकी वर्षा होने लगी॥ २-३॥

अब वह शंखचूड़ अपने सुन्दर भवनमें तुलसीके साथ विलास करने लगा। आनन्दका अनुभवकर वह तुलसी मूर्च्छित-सी हो गयी। वह साध्वी उस समय सुखरूपी निर्जल सागरमें निमग्न हो गयी थी॥ ४½॥

कामशास्त्रमें जो चौंसठ प्रकारकी कलाएँ तथा चौंसठ प्रकारके सुख बताये गये हैं, वे रसिकजनोंके लिये अत्यन्त प्रिय हैं। अंग-प्रत्यंगके स्पर्श करनेसे स्त्रियोंको सुखप्रद लगनेवाले जो भी रस-शृंगार होते हैं, उन सबको रसिकेश्वर शंखचूड़ने प्रस्तुत किया॥ ५-६½॥

अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित वह रसिक शंखचूड़ पुष्प-चन्दनसे चर्चित तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत उस तुलसीको साथमें लेकर अत्यन्त रमणीक तथा पूर्णरूपसे निर्जन स्थानमें पुष्प-चन्दनसे सुरभित वायुयुक्त पुष्पोद्यान और पुष्प-चन्दनसे सुशोभित नदीके तटपर पुष्प-चन्दनसे चर्चित शय्यापर रासक्रीडामें निरत रहता था॥ ७—९॥

कामक्रीड़ाके ज्ञाता वे दोनों कभी भी विलाससे विरत नहीं होते थे। उस साध्वी तुलसीने अपनी चंचल लीलासे अपने पतिका मन हर लिया था। इसी प्रकार रस-भावोंके ज्ञाता शंखचूड़ने भी रसिका तुलसीका मन अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। उस तुलसीने राजाके वक्षःस्थलका चन्दन तथा मस्तकका तिलक मिटा दिया, उसी प्रकार उस शंखचूड़ने भी तुलसीके सिन्दूर-बिन्दुको मिटा दिया। कामक्रीड़ामें शंखचूड़ने प्रसन्नतापूर्वक

उस तुलसीके वक्षःस्थल आदिपर और उसी प्रकार तुलसीने उसके वाम पार्श्वमें अपने हाथके आभूषणका चिह्न बना दिया। इस प्रकार परस्पर आलिंगन आदि करते हुए कामकलाका सम्यक् ज्ञान रखनेवाले वे दोनों क्रीड़ा करने लगे॥ १०—१४½ ॥

रतिक्रीड़ासे विरत होकर वे दोनों मनमें जो-जो इच्छा रहती थी, उसके अनुसार एक-दूसरेका शृंगार करते थे। वह तुलसी शंखचूड़के मस्तकपर कुमकुम-मिश्रित चंदन लगाती थी और उसके सभी मनोहर अंगोंमें चन्दनका लेप करती थी। वह शंखचूड़को सुवासित ताम्बूल खिलाती थी, अग्निके समान शुद्ध दो वस्त्र पहनाती थी, वृद्धावस्थारूपी रोग दूर करनेवाला पारिजात पुष्प प्रदान करती थी, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित उत्तम अँगूठी पहनाती थीं और तीनों लोकोंमें दुर्लभ उत्तम मणियोंके आभूषणोंसे अलंकृत करती थी—इस प्रकार शंखचूड़का शृंगार करनेके पश्चात् 'मैं आपकी दासी हूँ'—ऐसा बार-बार कहकर वह तुलसी महान् भक्तिके साथ अपने गुणवान् पतिको प्रणाम करती थी। वह अपलक नेत्रोंसे कामदेवके समान अपने पतिके मुखारविन्दको मुसकराती हुई बार-बार देखती रहती थी॥ १५—२०½ ॥

इसी प्रकार शंखचूड़ भी प्रिया तुलसीको आकृष्ट करके वक्षसे लगा लेता था और वस्त्रसे ढँके हुए उसके मुसकानयुक्त मुखकमलको निहारने लगता था। वह तुलसीके कठोर कपोलों तथा बिम्बाफलके समान लाल ओठोंका स्पर्श करने लगता था॥ २१-२२ ॥

तदनन्तर उसने वरुणके यहाँसे प्राप्त वस्त्रोंका जोड़ा और तीनों लोकोंमें दुर्लभ रत्नमयी माला उस तुलसीको प्रदान की। इसी प्रकार उसने स्वाहादेवीसे प्राप्त दो मंजीर (पायजेब), छायासे प्राप्त एक जोड़ी बाजूबन्द और रोहिणीसे प्राप्त कुण्डल, रतिसे प्राप्त हाथके आभूषणके रूपमें रत्नमय अँगूठी और विश्वकर्मांके द्वारा प्रदत्त अद्भुत तथा मनोहर शंख तुलसीको प्रदान किये॥ २३—२५ ॥

तदनन्तर विचित्र कमल-पुष्पोंसे सुसज्जित हुई अत्यन्त दुर्लभ शय्या तथा अन्य भूषण प्रदान करके राजा शंखचूड़ हँसने लगा। उसने उसकी चोटीमें मांगलिक आभूषण लगाया और उसके गण्डस्थलपर सुगन्धित चन्दनसे तीन चन्द्रलेखाओंसे युक्त तथा चारों ओर कुमकुमबिन्दुओंसे सुशोभित सुन्दर चित्र बनाया। शंखचूड़ने उसके ललाटपर जलती हुई दीपशिखाके आकारके समान सिन्दूर-तिलक लगाया और स्थलकमलिनीको भी लज्जित कर देनेवाले उसके दोनों कमलसदृश चरणोंमें तथा नाखूनोंपर प्रसन्नतापूर्वक सुन्दर महावर लगाया। तत्पश्चात् तुलसीके महावरयुक्त चरणकमलको अपने वक्षःस्थलपर बार-बार रखकर 'हे देवि! मैं तुम्हारा दास हूँ'—ऐसा बार-बार उच्चारण करते हुए उस शंखचूड़ने रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत अपने हाथसे उसे अपने वक्षःस्थलसे लगा लिया॥ २६—३१ ॥

तदनन्तर राजा शंखचूड़ वह तपोवन छोड़कर अन्य स्थानपर चला गया। पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित शरीरवाला वह सकाम शंखचूड़ मलयपर्वतपर, देवस्थानोंमें, विभिन्न पर्वतोंपर, तपोवनोंमें, अत्यन्त रमणीक स्थानोंमें, निर्जन पुष्पोद्यानमें, समुद्रकी तटवर्ती अत्यन्त सुन्दर कन्दराओंमें, जल तथा वायुसे युक्त पुष्पभद्रा नदीके मनोहर तटपर, नदियों तथा सरोवरोंके दिव्य तटोंपर, वसन्त ऋतुमें भ्रमरोंकी मधुर ध्वनिसे निनादित वनोंमें, अत्यन्त अनुपम तथा आनन्दकर गन्धमादनपर्वतपर, नन्दन नामक देवोद्यानमें, अद्भुत चन्दनवनमें, चम्पा-केतकी तथा माधवीके निकुंजमें, कुन्द-मालती-कुमुद तथा कमलोंके वनमें, कल्पवृक्ष तथा पारिजातके वनमें, निर्जन कांचन स्थानमें, पवित्र कांचन-पर्वतपर, कांचीवनमें, किंजलक, कंचुक और कांचनाकर आदि स्थानोंमें—वनमें, जहाँ कोयलकी मधुर ध्वनि सुनायी देती और पुष्प-चन्दनकी सुगन्धसे सुरभित वायु बहती रहती थी, पुष्प-चन्दनसे सुसज्जित शय्यापर कामनायुक्त रमणी तुलसीके साथ इच्छानुसार विहार किया करता था। किंतु न तो दानवेन्द्र शंखचूड़ तृप्त हुआ और न वह तुलसी ही तृप्त हुई; अपितु आहुतिसे बढ़नेवाली अग्निकी भाँति उन दोनोंकी वासना निरन्तर बढ़ती ही गयी॥ ३२—४०½ ॥

तदनन्तर वह दानव शंखचूड़ उस तुलसीके साथ अपने आश्रम आकरके वहाँ अपने रमणीक क्रीड़ा-भवनमें जाकर बार-बार विहार करने लगा। इस प्रकार महान् प्रतापी राजराजेश्वर शंखचूड़ने पूरे एक मन्वन्तरतक राज्यका उपभोग किया॥ ४१-४२१/२॥

वह देवताओं, असुरों, दानवों, गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसोंको सदा शान्त कर देनेवाला था। उसके द्वारा छिने हुए अधिकारवाले देवतागण भिक्षुकोंकी भाँति विचरण करते थे, अतः वे सभी अत्यन्त दुःखी होकर ब्रह्माकी सभामें गये। उन्होंने अपना वृत्तान्त बताया और बार-बार अत्यधिक विलाप किया॥ ४३—४५॥

तब विधाता ब्रह्माजी देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये और वहाँ पहुँचकर उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश्वर शिवसे सारी बातें बतायीं॥ ४६॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा और शिव उन देवताओंको साथ लेकर जरा तथा मृत्युका नाश करनेवाले, सभीके लिये अत्यन्त दुर्लभ तथा परमधाम श्रेष्ठ वैकुण्ठलोकमें गये। जब वे श्रीहरिके लोकोंके श्रेष्ठ प्रवेशद्वारपर पहुँचे, तब वहाँपर उन्होंने रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको देखा। वे सभी पीताम्बरोंसे सुशोभित थे, वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके शरीर सुन्दर तथा श्यामवर्णके थे, शंख-चक्र-गदा-पद्मसे सुशोभित उनकी चार भुजाएँ थीं, उनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी और उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके समान थे॥ ४७—५०॥

ब्रह्माजीने उन द्वारपालोंको अपने आनेका प्रयोजन बताया। तब उन द्वारपालोंने ब्रह्माको अन्दर जानेकी आज्ञा दे दी और ब्रह्माजीने उनकी आज्ञा पाकर भीतर प्रवेश किया॥ ५१॥

इस प्रकार ब्रह्माजीने भीतर सोलह द्वारोंको देखा और देवताओंके साथ उन्हें पार करके वे श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। वह सभा देवर्षियों तथा चार भुजावाले पार्षदोंसे घिरी हुई थी। वे सभी पार्षद नारायणस्वरूप थे और कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। उस सभाका आकार नवीन चन्द्रमण्डलके समान था, वह मनोहर सभा चौकोर थी, वह सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे निर्मित थी, वह बहुमूल्य हीरोंसे सजी हुई थी, भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे निर्मित उस सभाभवनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे, मणिमयी मालाएँ उसमें जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं, मोतियोंकी झालरोंसे वह सुशोभित थी, मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय विचित्र दर्पणोंसे वह सभा मण्डित थी, अनेक प्रकारके रेखाचित्रोंसे युक्त वह सभा अत्यन्त सुन्दर तथा अद्भुत प्रतीत हो रही थी, पद्मरागमणिसे निर्मित वह सभा मणिमय पंकजोंसे परम सुन्दर प्रतीत हो रही थी, वह स्यमन्तकमणिसे बनी हुई सौ सीढ़ियोंसे युक्त थी, वहाँ दिव्य चन्दन वृक्षके सुन्दर पल्लव रेशमके सूत्रोंसे बँधे वन्दनवारके रूपमें शोभा दे रहे थे, वह मनोहर सभा उत्तम कोटिके इन्द्रनीलमणिसे निर्मित खम्भोंसे आवृत थी, वह उत्तम रत्नोंसे निर्मित अनेक कलशोंसे युक्त थी, पारिजात-पुष्पोंकी माला-पंक्तियोंसे तथा कस्तूरी और कुमकुमसे रंजित सुगन्धित चन्दनके वृक्षोंसे वह सभा सुसज्जित थी, वह सर्वत्र सुगन्धित वायुसे सुरभित थी, बहुत-सी विद्याधरियोंके नृत्यसे उस सभाकी शोभा बढ़ रही थी, वह सभा एक हजार योजन विस्तारवाली थी और बहुतसे सेवकोंसे व्याप्त थी॥ ५२—६१॥

देवताओंसहित ब्रह्मा तथा शिवने सभाके मध्य भागमें विराजमान श्रीहरिको तारोंसे घिरे चन्द्रमाके समान देखा। वे बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजमान थे। वे किरीट, कुण्डल तथा वनमालासे सुशोभित थे। उनके सम्पूर्ण अंग चन्दनसे अनुलिप्त थे। वे अपने हाथमें लीला-कमल धारण किये हुए थे। वे प्रसन्नतापूर्वक मुसकराते हुए अपने सामने नृत्य-गीत आदिका अवलोकन कर रहे थे। उन सरस्वतीकान्त भगवान् श्रीहरिका विग्रह शान्त था, लक्ष्मीजी उनके चरणकमल पकड़े हुए उनकी सेवामें संलग्न थीं और लक्ष्मीजीके द्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलका वे सेवन कर रहे थे। भगवती गंगा परम भक्तिके साथ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। वहाँ

उपस्थित सभी लोग भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति कर रहे थे॥ ६२—६६॥

[हे नारद!] ऐसे उन विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिको देखकर ब्रह्मा आदि सभी देवता प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। उस समय उनके सभी अंग पुलकित हो गये थे, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद हो गयी थी। वे सभी भक्त परम भक्तिके साथ अपने कन्धे झुकाये भयभीत होकर उनके समक्ष खड़े होकर स्तुति कर रहे थे। इसके बाद जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माजीने दोनों हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिके सामने विनम्रतापूर्वक सारा वृत्तान्त निवेदित कर दिया॥ ६७—६९॥

उनकी यह बात सुनकर सभी अभिप्रायोंको समझनेवाले सर्वज्ञ श्रीहरिने ब्रह्माजीसे हँसकर मनको मुग्ध करनेवाला एक अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया॥ ७०॥

श्रीभगवान् बोले—हे पद्मज! यह महान् तेजस्वी शंखचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था और मेरा परम भक्त था, मैं इसका सभी वृत्तान्त जानता हूँ। अब आप पुरातन इतिहासके रूपमें निबद्ध उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनिये। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाला यह चरित पापोंका नाश करनेवाला तथा पुण्य प्रदान करनेवाला है॥ ७१-७२॥

सुदामा नामक एक गोप मेरा प्रधान पार्षद था। राधिकाके दारुण शापके कारण उसे दानवयोनिमें जन्म लेना पड़ा ॥ ७३॥

एक बार मैं अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रेष्ठ विरजाको साथमें लेकर अपने निवास-स्थानसे रासमण्डलमें गया था॥ ७४॥

'मैं विरजाके साथ रासमण्डलमें गया हूँ'—परिचारिकाके मुखसे ऐसा सुनकर कुपित हो राधिका वहाँ आ गयीं, किंतु उसने मुझे वहाँ नहीं देखा। बादमें मेरे अन्तर्धान होने तथा विरजाके नदीरूपमें परिणत हो जानेका समाचार सुनकर राधा अपनी सखियोंके साथ फिर अपने भवन चली गयीं॥ ७५-७६॥

उस भवनमें सुदामाके साथ मौन तथा स्थिरचित्त होकर मुझे बैठा हुआ देखकर देवी राधाने मेरी बहुत भर्त्सना की॥ ७७॥

उसे सुनकर सुदामा सहन नहीं कर सका और उनपर कुपित हो गया। उसने मेरे सामने ही राधाको क्रोधके साथ बहुत फटकारा॥ ७८॥

उसकी बात सुनकर राधिका क्रोधित हो उठीं और उनकी आँखें रक्तकमलके समान लाल हो गयीं। उन्होंने तत्काल भयभीत सुदामाको मेरी सभासे बाहर निकाल देनेका आदेश दिया॥ ७९॥

[आज्ञा पाते ही] प्रबल तेजसे सम्पन्न तथा दुर्निवार्य सखियोंका समूह उठ खड़ा हुआ और उसे शीघ्र ही सभासे बाहर कर दिया। उस समय वह सुदामा बार-बार कुछ बोलता जा रहा था॥ ८०॥

इस तरह उन सखियोंसे सुदामाके विवाद करनेके कारण राधा और भी कुपित हो उठीं और उन्होंने कुपित होकर शाप दे दिया—'तुम दानवयोनिमें जन्म प्राप्त करो'। ऐसा दारुण वचन कहा था॥ ८१॥

तदनन्तर सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ तथा सखियोंको कोसता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब करुणामयी राधाने कृपावश उसके ऊपर फिर प्रसन्न होकर उसे रोक लिया और रोते हुए कहा—'हे वत्स! ठहरो, मत जाओ। कहाँ जा रहे हो?'—ऐसा बार-बार कहती हुई वे राधा व्याकुल होकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ीं॥ ८२-८३॥

यह देखकर सभी गोपी और गोप अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे। तब मैंने राधिकाको तथा उन सभीको समझाया कि शापका पालन करके वह सुदामा आधे क्षणमें ही वापस आ जायगा। हे सुदामन्! तुम यहाँ अवश्य आ जाना—ऐसा कहकर मैंने राधाको शान्त किया॥ ८४-८५॥

हे सम्पूर्ण जगत्की रक्षा करनेवाले ब्रह्मन्! गोलोकके आधे क्षणमें ही पृथ्वीलोकपर एक मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जाता है; यह बात बिलकुल सत्य है। इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओंका पूर्ण ज्ञाता, महान् बलशाली तथा योगेश्वर शंखचूड़ समय आनेपर पुनः उसी गोलोकमें वापस चला जायगा॥ ८६-८७॥

अब आपलोग मेरा त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें

चलें और वहाँपर शंकरजी मेरे त्रिशूलसे उस राक्षसका संहार करें॥ ८८॥



वह दानव शंखचूड़ अपने कण्ठमें मेरा सर्वमंगलकारी कवच निरन्तर धारण किये रहता है। इसीसे वह सदा संसार-विजयी बना हुआ है॥ ८९॥

हे ब्रह्मन्! उसके कण्ठमें उस कवचके रहते उसे मारनेमें कोई प्राणी समर्थ नहीं है। अतः मैं ही ब्राह्मणका रूप धारणकर उससे कवचकी याचना करूँगा॥ ९०॥

जिस समय उसकी पत्नीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—ऐसा आपने उसे वर भी दे रखा है॥ ९१॥

इसके लिये मैं अवश्य ही उसकी पत्नीके उदरमें अपना तेज स्थापित करूँगा, जिससे उसी क्षण उस शंखचूड़की मृत्यु हो जायगी; इसमें सन्देह नहीं है। तब उसकी पत्नी अपना शरीर त्यागकर पुनः मेरी प्रिया बन जायगी॥ ९२$^{1}/_{2}$॥

ऐसा कहकर जगत्के स्वामी भगवान् श्रीहरिने शंकरजीको त्रिशूल दे दिया और त्रिशूल देकर वे श्रीहरि प्रसन्नतापूर्वक तत्काल अन्तःपुरमें चले गये। इसके बाद सभी देवताओंने ब्रह्मा तथा शंकरजीको आगे करके भारतवर्षके लिये प्रस्थान किया॥ ९३-९४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'शंखचूड़के साथ तुलसीके संगमका वर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

पुष्पदन्तका शंखचूड़के पास जाकर भगवान् शंकरका सन्देश-सुनाना, युद्धकी बात सुनकर तुलसीका सन्तप्त होना और शंखचूड़का उसे ज्ञानोपदेश देना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस दानवके संहारकार्यमें शिवजीको नियुक्तकर ब्रह्माजी तत्काल अपने स्थानपर चले गये और अन्य देवता भी अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हो गये॥ १॥

तदनन्तर महादेवजी देवताओंके अभ्युदयके उद्देश्यसे चन्द्रभागानदीके तटपर एक मनोहर वटवृक्षके नीचे आसीन हो गये॥ २॥

उन्होंने अपने अत्यन्त प्रिय गन्धर्वराज चित्ररथ (पुष्पदन्त)-को दूत बनाकर तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक शंखचूड़के पास भेजा॥ ३॥

सर्वेश्वर शिवकी आज्ञा पाकर चित्ररथ तत्काल शंखचूड़के उत्तम नगरमें गया, जो इन्द्रपुरीसे भी उत्कृष्ट तथा कुबेरके भवनसे भी अधिक सुन्दर था॥ ४॥

वह नगर पाँच योजन चौड़ा तथा उससे दुगुना लम्बा था। वह स्फटिकके आकारवाली मणियोंसे निर्मित था तथा उसके चारों ओर अनेक वाहन स्थित थे। वह नगर सात दुर्गम खाइयोंसे युक्त था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंसे उसका निर्माण किया गया था। वह नगर सैकड़ों वीथियों तथा मणिमय विचित्र वेदियोंसे सम्पन्न था। वह व्यापारियोंके बड़े-बड़े महलोंसे आवृत था, जिनमें अनेक प्रकारकी सामग्रियाँ विराजमान थीं। उसी प्रकार वह नगर सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा निर्मित विचित्र, सुन्दर तथा दिव्य करोड़ों आश्रमोंसे सुशोभित था॥ ५—८॥

हे मुने! नगरमें पहुँचकर पुष्पदन्तने उसके मध्यमें स्थित शंखचूड़का श्रेष्ठ भवन देखा, जो पूर्णचन्द्र-मण्डलकी भाँति पूर्णतः वलयाकार था, प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान प्रतीत होनेवाली चार परिखाओंसे सुरक्षित था, शत्रुओंके लिये अत्यन्त दुर्गम था, किंतु दूसरे लोगोंके लिये सुगम एवं सुखप्रद था, अत्यन्त ऊँचाईवाले गगनस्पर्शी मणि-निर्मित कंगूरोंसे सुशोभित था, द्वारपालोंसे युक्त बारह द्वारोंसे सुसज्जित था और सर्वोत्कृष्ट मणियोंसे निर्मित लाखों मन्दिरों, सोपानों तथा रत्नमय खम्भोंसे मण्डित था॥ ९—१२॥

उसे देखकर पुष्पदन्तने एक दूसरा प्रधान द्वार देखा। उस द्वारपर सुरक्षाहेतु नियुक्त एक पुरुष हाथमें त्रिशूल धारण किये मुसकराता हुआ वहाँ स्थित था। पुष्पदन्तने पीली आँखोंवाले तथा ताम्र वर्णके शरीरवाले उस भयंकर पुरुषसे सारी बातें बतायीं और फिर उसकी आज्ञासे वह आगे बढ़ा। उस द्वारको पार करके वह भीतर चला गया। यह युद्धका सन्देश देनेवाला दूत है—यह जानकर कोई उसे रोकता भी नहीं था॥ १३—१५॥

भीतरी द्वारपर पहुँचकर उसने द्वारपालसे कहा—युद्धका सम्पूर्ण वृत्तान्त [राजाको] बता दो, इसमें विलम्ब मत करो। उस द्वारपालसे ऐसा कहकर वह दूत [पुष्पदन्त] स्वयं जानेके लिये बोला। वहाँ जाकर उसने राजमण्डलीके मध्यमें स्वर्णके सिंहासनपर बैठे हुए परम मनोहर शंखचूड़को देखा। उस दिव्य सिंहासनमें सर्वोत्तम मणियाँ जड़ी थीं, वह रत्नमय दण्डोंसे युक्त था, वह रत्ननिर्मित कृत्रिम तथा उच्च कोटिके पुष्पोंसे सदा सुशोभित था, एक सेवक शंखचूडके सिरके ऊपर स्वर्णका मनोहर छत्र लगाये खड़ा था, सुन्दर तथा श्वेत चँवर डुलाते हुए पार्षदगण उसकी सेवामें संलग्न थे, सुन्दर वेष धारण करने तथा रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत होनेके कारण वह रमणीय प्रतीत हो रहा था। हे मुने! वह माला पहने था, शरीरमें चन्दनका लेप किये हुआ था और दो महीन तथा सुन्दर वस्त्र धारण किये हुआ था। वह शंखचूड़ सुन्दर वेष धारण करनेवाले तीन करोड़ दानवेन्द्रोंसे घिरा हुआ था। इसी प्रकार हाथमें अस्त्र धारण किये हुए सैकड़ों करोड़ अन्य दानव भी उसके चारों ओर इधर-उधर घूम रहे थे। इस प्रकारके उस शंखचूड़को देखकर परम विस्मयको प्राप्त उस पुष्पदन्तने शंकरजीके द्वारा जो युद्धविषयक समाचार कहा गया था, उसे बताना आरम्भ किया॥ १६—२२½॥

पुष्पदन्त बोला—हे राजेन्द्र! हे प्रभो! मैं शंकरजीका सेवक हूँ, मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरजीने जो कुछ कहा है, मैं वही कह रहा हूँ, आप सुनिये—अब आप देवताओंका राज्य तथा अधिकार लौटा दीजिये; क्योंकि वे देवता देवेश श्रेष्ठ श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन श्रीहरिने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशार्थ शिवजीको भेजा है। वे त्रिलोचन शिव इस समय भद्रशीला नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। अतः आप उन देवताओंका राज्य लौटा दीजिये अथवा युद्ध कीजिये। अब आप मुझे यह भी बता दीजिये कि मैं शिवजीके पास जाकर उनसे क्या कहूँ?॥ २३—२६½॥

[हे नारद!] दूतकी बात सुनकर शंखचूड़ने हँसकर कहा—'तुम चलो, मैं प्रातःकाल वहाँ पहुँचूँगा'॥ २७½॥

तदनन्तर पुष्पदन्तने वटवृक्षके नीचे विराजमान परमेश्वर शिवके पास पहुँचकर शंखचूड़के मुखसे कही गयी वह बात ज्यों-की-त्यों उनसे कह दी॥ २८½॥

इतनेमें ही कार्तिकेयजी भगवान् शंकरके पास आ गये। वीरभद्र, नन्दी, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, बाण, पिंगलाक्ष, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाख्य, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालकण्ठ, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम तथा जो आठ भैरव, ग्यारह रुद्र, आठ वसु और बारह आदित्य कहे गये हैं—वे सब, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मंगल, धर्म, शनि, ईशान तथा ओजस्वी कामदेव भी वहाँ आ गये॥ २९—३५॥

उग्रद्रंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरा तथा कैटभी आदि देवियाँ भी वहाँ पहुँच गयीं। इसी प्रकार आठ भुजाएँ धारण करनेवाली तथा भय उत्पन्न करनेवाली साक्षात् भगवती

भद्रकाली भी वहाँ पहुँच गयीं। वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं। वे लाल वस्त्र तथा लाल पुष्पोंकी माला धारण किये थीं और लाल चन्दनसे अनुलिप्त थीं। वे प्रसन्नतापूर्वक नाचती, हँसती तथा मधुर स्वरमें गाती हुई सुशोभित हो रही थीं। वे देवी अभया भक्तोंको अभय तथा शत्रुओंको भय प्रदान करती हैं। वे योजनभर लम्बी तथा लपलपाती हुई भयंकर जीभ, शंख, चक्र, गदा, पद्म, खड्ग, ढाल, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, आकाशको छूता हुआ विशाल त्रिशूल, एक योजन लम्बी शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, गन्धर्वास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गरुडास्त्र, पर्जन्यास्त्र, पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पर्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहन दण्ड, दिव्य अमोघ अस्त्र तथा दिव्य श्रेष्ठ सैकड़ों अस्त्र धारणकर तीन करोड़ योगिनियों और तीन करोड़ भयंकर डाकिनियोंको साथ लिये वहाँ आकर विराजमान हो गयीं॥ ३६—४४॥

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, राक्षस, यक्ष और किन्नर भी वहाँ उपस्थित हो गये। उन सभी देवियों [तथा अन्य देवगणों]-को साथ लेकर कार्तिकेय अपने पिता शिवको प्रणाम करके सहायता प्रदान करनेके उद्देश्यसे उनकी आज्ञासे उनके पास बैठ गये॥ ४५-४६॥

इधर, दूतके चले जानेपर प्रतापी शंखचूड़ने अन्त:पुरमें जाकर तुलसीको सारी बात बतायी॥ ४७॥

युद्धकी बात सुनकर उस तुलसीके कण्ठ, ओष्ठ और तालु सूख गये और वह साध्वी तुलसी दु:खी मनसे मधुर वाणीमें कहने लगी॥ ४८॥

तुलसी बोली—हे प्राणबन्धो! हे नाथ! हे प्राणेश्वर! मेरे वक्ष:स्थलपर क्षणभरके लिये विराजिये। हे प्राणाधिष्ठातृदेव! क्षणभर मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये। मैं क्षणभर अपने नेत्रोंसे आदरपूर्वक आपको देख लूँ और यह जन्म पाकर आप मेरे मनमें विहारकी जो अभिलाषा है, उसे पूर्ण कीजिये। आज ही रात्रिके अन्तमें मैंने एक दु:स्वप्न देखा है, जिससे मेरे प्राण काँप रहे हैं और मनमें लगातार जलन हो रही है॥ ४९—५१॥

तुलसीकी बात सुनकर परम ज्ञानसम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड भोजन-पानादिसे निवृत्त होकर तुलसीसे हितकर, सत्य तथा यथोचित वचन कहने लगा॥ ५२॥

शंखचूड़ बोला—कल्याण, हर्ष, सुख, दु:ख, भय, शोक और मंगल—ये समस्त कर्मभोगके बन्धन कालके साथ बँधे हुए हैं॥ ५३॥

समयसे ही वृक्ष उगते हैं, समयसे ही उनमें शाखाएँ निकलती हैं और फिर क्रमश: पुष्प तथा फल भी उनमें कालानुसार ही लगते हैं। तत्पश्चात् उन वृक्षोंके फल भी समयसे ही पकते हैं। अन्तमें फलयुक्त वे सभी वृक्ष समयानुसार नष्ट भी हो जाते हैं॥ ५४-५५॥

हे सुन्दरि! समयसे विश्व बनते हैं और समयपर नष्ट हो जाते हैं। कालकी प्रेरणासे ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और विश्वके संहारक शम्भु संहार करते हैं। वे सब क्रमश: कालानुसार ही अपने-अपने कार्यमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवताओंकी नियामिका वे पराप्रकृति ही हैं। वही परमेश्वर सृष्टि, रक्षा तथा संहार करनेवाला है और वही परमात्मा कालको नचानेवाला है। उन्हीं प्रभुने समयानुसार इच्छा-पूर्वक अपनेसे अभिन्न प्रकृतिका निर्माणकर विश्वमें रहनेवाले समस्त स्थावर-जंगम जीवोंकी रचना की है। वे ही सबके ईश्वर हैं, सभी रूपोंमें वे ही विद्यमान हैं, वे ही सबकी आत्मा हैं और वे ही परम ईश्वर हैं॥ ५६—५९॥

जो जनसे जनकी उत्पत्ति करता है, जनसे जनकी रक्षा करता है और जनसे जनका संहार करता है, उन्हीं प्रभुकी अब तुम उपासना करो॥ ६०॥

जिनकी आज्ञासे शीघ्रगामी पवनदेव प्रवाहित होते हैं, सूर्य यथासमय तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वृष्टि करते हैं, मृत्यु सभी जीवोंमें विचरण करती है, अग्निदेव यथासमय दाह उत्पन्न करते हैं, शीतल चन्द्रमा आकाशमें परिभ्रमण करते हैं—उन्हीं मृत्युके भी मृत्यु, कालके भी काल,

यमराजसे भी बड़े यमराज, सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भी स्रष्टा, जगत्‌में माताकी माता, संहार करनेवाले शिवके भी संहर्ता परमप्रभु परमेश्वरकी शरणमें जाओ। हे प्रिये! इस जगत्‌में कौन किसका बन्धु है; अतः सभी प्राणियोंके बन्धुस्वरूप उन प्रभुकी उपासना करो॥ ६१—६४॥

मैं कौन हूँ और तुम कौन हो? ब्रह्माने पहले मुझे तुम्हारे साथ संयुक्त कर दिया और फिर उन्हींके द्वारा कर्मानुसार वियुक्त भी कर दिया जाऊँगा। शोक तथा विपत्तिमें अज्ञानी मनुष्य भयभीत होता है, न कि विद्वान्। इस प्रकार मनुष्य कालचक्रके क्रमसे सुख तथा दुःखके चक्रमें भ्रमण करता रहता है॥ ६५-६६॥

अब तुम निश्चय ही सर्वेश्वर भगवान् नारायणको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, जिनके लिये तुमने पूर्वकालमें बदरिकाश्रममें रहकर तप किया था॥ ६७॥

तपस्या तथा ब्रह्माजीके वरदानसे तुम मुझे प्राप्त हुई हो। हे कामिनि! उस समय जो तुम्हारी तपस्या थी, वह भगवान् श्रीहरिकी प्राप्तिके लिये थी, अतः तुम उन्हीं गोविन्द श्रीहरिको गोलोक-स्थित वृन्दावनमें प्राप्त करोगी। मैं भी अपना यह दानवी शरीर त्यागकर उसी लोकमें चलूँगा, तब वहींपर तुम मुझे देखोगी और मैं तुम्हें देखूँगा। हे प्रिये! सुनो इस समय मैं राधिकाके शापसे ही अगम तथा अत्यन्त दुर्लभ इस भारतवर्षमें आया हूँ और वहींपर पुनः चला जाऊँगा, अतः मेरे लिये शोक क्या? हे कान्ते! तुम भी शीघ्र ही इस शरीरका त्यागकर दिव्य रूप धारण करके उन्हीं श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करोगी, अतः दुःखी मत होओ॥ ६८—७१$^{१}/_{२}$॥

यह कहकर वह शंखचूड़ सायंकाल होनेपर उस तुलसीके साथ पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित सुन्दर शय्यापर सो गया और अनेकविध विलास करने लगा। रत्नके दीपकोंसे सुशोभित अपने रत्नमय भवनमें स्त्रीरत्नस्वरूपिणी सुन्दरीको पाकर राजा शंखचूड़ने मांगलिक आमोद-प्रमोदोंके द्वारा रात्रि व्यतीत की। तत्पश्चात् अत्यन्त दुःखित होकर रोती हुई, निराहार रहनेके कारण कृश शरीरवाली तथा शोक-सागरमें निमग्न अपनी उस प्रिया तुलसीको अपने वक्षःसे लगाकर वह ज्ञानसम्पन्न शंखचूड़ दिव्यज्ञानके द्वारा उसे पुनः समझाने लगा। प्राचीनकालमें भांडीरवनमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने जिस उत्तम, सभी शोकोंको दूर करनेवाले परम ज्ञानका उपदेश उसके लिये किया था, उसी सम्पूर्ण ज्ञानको शंखचूड़ने उस तुलसीको प्रदान किया। ज्ञान पाकर देवी तुलसीका मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठा। 'सब कुछ नश्वर है'—ऐसा मानकर वह हर्षपूर्वक विहार करने लगी॥ ७२—७७$^{१}/_{२}$॥

हे मुने! विहार करते हुए वे दोनों पति-पत्नी सुखके सागरमें निमग्न हो गये। रतिक्रीडाके लिये उत्सुक वे दोनों निर्जन स्थानमें परस्पर अंग-प्रत्यंगके स्पर्शसे मूर्च्छित-जैसे हो गये। उस समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त उन दोनोंके सभी अंग पुलकित थे। वे दोनों एक अंगके रूपमें होकर अर्धनारीश्वरके समान प्रतीत हो रहे थे। तुलसी अपने पतिको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझती थी और राजा शंखचूड़ भी अपनी उस साध्वी प्राणेश्वरीको अपने प्राणोंसे भी अधिक प्रिय समझता था। समान सौन्दर्यवाले वे दोनों ही तन्द्रायुक्त दम्पती सुखपूर्वक सोये हुए थे। सुन्दर वेष धारण किये हुए वे मनोहर दम्पती सम्भोगजनित सुखके कारण अचेत पड़े थे। जब कभी वे चेतनामें आते, तब परस्पर रसमयी बातें करने लगते तथा मनोरम और दिव्य कथा कहने लगते, फिर हँसने लगते थे, इसके बाद क्षणभरमें ही श्रृंगार भावसे युक्त होकर क्रीडा करने लगते थे। इस प्रकार कामकलाके जाननेवाले वे दोनों क्रीडा-विलाससे कभी भी विरत नहीं होते थे। दोनों ही निरन्तर विजयी बने रहकर कभी क्षणभरको भी अपनेको पराजित नहीं मानते थे॥ ७८—८४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें शंखचूड़के साथ देवताओंका संग्रामोद्योगवर्णन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

शंखचूड़ और भगवान् शंकरका विशद वार्तालाप

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर रहनेवाले शंखचूड़ने मनमें श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममूहूर्तमें ही अपनी मनोहर पुष्प-शय्यासे उठकर स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्यागकर धुले हुए दो वस्त्र धारण किये। तदनन्तर उज्ज्वल तिलक लगाकर उसने अपने इष्ट देवताके वन्दन आदि नित्य कृत्य सम्पन्न किये। उसने दधि, घृत, मधु और धानका लावा आदि मंगलकारी वस्तुओंका दर्शन किया॥ १—३॥

हे नारद! उसने प्रतिदिनकी भाँति ब्राह्मणोंको श्रद्धापूर्वक उत्तम रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ, सुन्दर वस्त्र तथा स्वर्ण प्रदान किया। यात्रा मंगलमयी होनेके लिये उसने बहुमूल्य रत्न, मोती, मणि तथा हीरा आदि जो कुछ उसके पास था, अपने विप्र गुरुको समर्पित किया। उसने अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ तथा सुन्दर हाथी, घोड़े और धन-सामग्री सब कुछ दरिद्र ब्राह्मणोंको प्रदान किये। इसी प्रकार शंखचूड़ने ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक हजारों कोष, भण्डार, दो लाख नगर और सौ करोड़ गाँव प्रदान किये॥ ४—७॥

तत्पश्चात् उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा, सेवक वर्ग, कोष और वाहन आदि सौंपकर स्वयं कवच पहन लिया और हाथमें धनुष धारण कर लिया, फिर क्रमसे सेवकोंके माध्यमसे सैनिकोंको एकत्र किया। हे नारद! उस दानवराजके द्वारा तीन लाख घोड़ों, एक लाख उत्तम कोटिके हाथियों, दस हजार रथों, तीन करोड़ धनुर्धारियों, तीन करोड़ कवचधारियों और तीन करोड़ त्रिशूलधारियोंसे युक्त एक विशाल सेना तैयार कर ली गयी॥ ८—११½॥

जो रणमें सभी रथियोंमें श्रेष्ठ होता है, उसे महारथी कहा जाता है। उसने युद्धशास्त्रमें विशारद ऐसे ही एक महारथीको उस सेनाका सेनापति नियुक्त कर दिया। इस प्रकार राजा शंखचूड़ने उसे तीन लाख अक्षौहिणी सेनाका सेनापति बनाकर उसे तीस-तीस अक्षौहिणी सेनाके समूहोंमें रक्षाके लिये सैन्यसामग्रीसे सम्पन्न कर दिया और तत्पश्चात् मनमें भगवान् श्रीहरिका स्मरण करता हुआ वह शिविरसे बाहर निकल गया॥ १२—१४॥

वह सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ हुआ और गुरुवृन्दोंको आगे करके भगवान् शंकरके पास चल पड़ा॥ १५॥

हे नारद! पुष्पभद्रानदीके तटपर एक सुन्दर वटवृक्ष है, वहाँ सिद्ध महात्माओंका सिद्धाश्रम है। उस स्थानको सिद्धिक्षेत्र कहा गया है। भारतमें स्थित वह पुण्यक्षेत्र कपिलमुनिकी तपोभूमि है। वह पश्चिमी समुद्रके पूर्वमें, मलयपर्वतके पश्चिममें, श्रीशैलपर्वतकी उत्तर दिशामें तथा गन्धमादनपर्वतकी दक्षिण दिशामें स्थित है॥ १६-१७½॥

वहाँ भारतवर्षकी एक पुण्यदायिनी नदी बहती है, जो पाँच योजन चौड़ी तथा उससे सौ गुनी लम्बी है। पुष्पभद्रा नामक वह कल्याणकारिणी, शाश्वत तथा शुद्ध स्फटिकमणिके सदृश प्रतीत होनेवाली नदी जलसे सदा परिपूर्ण रहती है। लवण-समुद्रकी प्रिय भार्याके रूपमें प्रतिष्ठित वह नदी सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। वह हिमालयसे निकली हुई है तथा कुछ दूर जाकर शरावती नदीमें मिल गयी है। वह गोमतीको अपनेसे बायें करके प्रवाहित होती हुई अन्तमें पश्चिमी समुद्रमें समाविष्ट हो जाती है॥ १८—२०½॥

वहाँ पहुँचकर शंखचूड़ने देखा कि करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान चन्द्रशेखर भगवान् शिव वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। वे मुद्रासे युक्त होकर योगासनमें स्थित थे और उनके मुखमण्डलपर मुसकान व्याप्त थी। ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान वे भगवान् शंकर शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रतीत हो रहे थे। वे अपने हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर धारण किये हुए थे॥ २१—२३॥

अपने भक्तोंकी मृत्युतकको टाल देनेवाले, शान्तस्वभाव, मनोहर, तपस्याओंका फल तथा सभी प्रकारकी सम्पदाएँ

प्रदान करनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसादपूर्ण मुखमण्डलवाले, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल, विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर, विश्वसंहारक, कारणोंके भी कारण, नरकरूपी समुद्रसे पार करनेवाले, ज्ञानप्रद, ज्ञानबीज, ज्ञानानन्द तथा सनातन उन गौरीपति महादेवको देखकर उस दानवेश्वर शंखचूड़ने विमानसे उतरकर सबके साथ वहाँ विद्यमान शंकरको सिर झुकाकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। शंखचूड़ने शिवके वामभागमें विराजमान भद्रकाली तथा उनके सामने स्थित कार्तिकेयको भी प्रणाम किया। तब भद्रकाली, कार्तिकेय तथा भगवान् शंकरने उसे आशीर्वाद प्रदान किया॥ २४—२८१/२ ॥



शंखचूड़को वहाँ आया देखकर नन्दीश्वर आदि सभी गण उठकर खड़े हो गये और परस्पर सामयिक बातें करने लगे। उनसें बातचीत करके राजा शंखचूड़ शिवके समीप बैठ गया, तब प्रसन्न चित्तवाले भगवान् महादेव उससे कहने लगे॥ २९-३०१/२ ॥

महादेवजी बोले—सम्पूर्ण जगत्की रचना करनेवाले धर्मात्मा ब्रह्मा धर्मके पिता हैं, परम वैष्णव तथा धर्मपरायण मरीचि उन धर्मके पुत्र हैं और उन मरीचिके पुत्र धर्मपरायण कश्यप हैं। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक उन्हें अपनी तेरह कन्याएँ सौंप दी थीं। उन्हीं कन्याओंमें एक परम साध्वी दनु भी है, जो उस वंशका सौभाग्य बढ़ानेवाली हुई॥ ३१—३३ ॥

उस दनुके चालीस पुत्र हुए, जो तेजसम्पन्न प्रबल दानवके रूपमें विख्यात थे। उन पुत्रोंमें महान् बल तथा पराक्रमसे युक्त एक पुत्र विप्रचित्ति था। उसका पुत्र दम्भ था; जो परम धार्मिक, विष्णुभक्त तथा जितेन्द्रिय था। उसने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर परमात्मा श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें एक लाख वर्षतक जप किया; तब उसने कृष्णकी भक्तिमें सदा संलग्न रहनेवाले तुम-जैसे श्रेष्ठ पुरुषको पुत्ररूपमें प्राप्त किया॥ ३४—३६ ॥

पूर्वजन्ममें तुम भगवान् कृष्णके पार्षद और गोपोंमें परम धार्मिक गोप थे। इस समय तुम राधिकाके शापसे भारतवर्षमें दानवेश्वर बन गये हो॥ ३७ ॥

भगवान् विष्णुका भक्त ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सभीको तुच्छ समझता है। वैष्णव श्रीहरिकी सेवाको छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन मुक्तियोंको दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णव ब्रह्मत्व अथवा अमरत्वको भी तुच्छ मानता है, इन्द्रत्व अथवा मनुष्यत्वको तो वह किन्हीं भी गणनाओंमें स्थान नहीं देता है; तो फिर तुम-जैसे कृष्णभक्तको देवताओंके भ्रमात्मक राज्यसे क्या प्रयोजन!॥ ३८—४० ॥

हे राजन्! तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो और मेरी प्रीतिकी रक्षा करो। तुम अपने राज्यमें सुखपूर्वक रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। प्राणियोंमें परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये; क्योंकि सभी तो मुनि कश्यपके ही वंशज हैं। ब्रह्महत्या आदिसे होनेवाले जितने पाप हैं, वे जाति-द्रोह करनेसे लगनेवाले पापकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४१-४२१/२ ॥

हे राजेन्द्र! यदि तुम इसे अपनी सम्पत्तिकी हानि मानते हो तो यह सोचो कि किन लोगोंकी सभी स्थितियाँ सदा एकसमान रहती हैं। प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्माका भी सदा तिरोधान हो जाया करता है। तदनन्तर ईश्वरके प्रभाव तथा उनकी इच्छासे पुनः उनका प्राकट्य होता है। उस समय उनकी स्मृति लुप्त रहती है, फिर तपस्याके द्वारा उनके ज्ञानमें वृद्धि हो जाती है, यह निश्चित है। तत्पश्चात् वे ब्रह्मा ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं॥ ४३—४५१/२ ॥

सत्ययुगमें लोग सदा सत्यके आश्रयपर रहते हैं, इसलिये उस युगमें धर्म अपने परिपूर्णतम स्वरूपमें

विद्यमान रहता है। वही धर्म त्रेतायुगमें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा गया है। इस प्रकार क्रमसे उसका एक-एक अंश कम होता रहता है। कलिके अन्तमें अमावस्याके चन्द्रमाकी भाँति धर्मकी कला केवल नाममात्र रह जाती है॥ ४६-४७१/२॥

ग्रीष्म ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा शिशिर ऋतुमें नहीं रह जाता। दिनमें भी सूर्यका जैसा तेज मध्याह्नकालमें होता है, उसके समान तेज प्रातः तथा सायंकालमें नहीं रहता। सूर्य समयसे उगते हैं, फिर क्रमसे बालसूर्यके रूपमें हो जाते हैं, तत्पश्चात् प्रचण्डरूपसे प्रकाशित होने लगते हैं और पुनः यथासमय अस्त हो जाते हैं। वह काल ऐसा भी कर देता है कि सूर्यको दिनमें ही मेघाच्छन्न आकाशमें छिप जाना पड़ता है। वे ही सूर्य राहुसे ग्रसित होनेपर काँपने लगते हैं और फिर थोड़ी ही देरमें प्रसन्न हो जाते हैं॥ ४८—५०॥

जैसे पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमा पूर्णतम रहते हैं, वैसे वे सदा नहीं रहते, अपितु प्रतिदिन उनकी कलामें क्रमशः क्षय होता रहता है। तत्पश्चात् अमावस्यासे इनमें दिनोंदिन वृद्धि होने लगती है ओर ये पुनः पुष्ट हो जाते हैं। चन्द्रमा शुक्लपक्षमें शोभायुक्त रहते हैं और कृष्णपक्षमें क्षयके द्वारा म्लान हो जाते हैं। राहुके द्वारा ग्रसित होनेके अवसरपर ये शोभाहीन हो जाते हैं और आकाशके मेघाच्छन्न होनेके समय ये प्रकाशित नहीं होते; इस प्रकार कालभेदसे चन्द्रमा किसी समय तेजस्वी और किसी समय शोभाविहीन हो जाते हैं॥ ५१—५३१/२॥

इस समय श्रीविहीन राजा बलि भविष्यमें सुतललोकके इन्द्र होंगे। सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी कालके प्रभावसे सस्योंसे सम्पन्न हो जाती है और फिर वही पृथ्वी कालके प्रभावसे [प्रलयकालीन] जलमें निमग्न हो जाती है और तिरोहित होकर आप्लावित हो जाती है॥ ५४-५५॥

एक निश्चित समयपर सभी लोक नष्ट हो जाते हैं और फिर समयपर उत्पन्न भी हो जाते हैं। इस प्रकार जगत्के सम्पूर्ण चराचर पदार्थ कालके ही प्रभावसे नष्ट होते हैं तथा उत्पन्न होते हैं॥ ५६॥

ऐश्वर्यसम्पन्न परब्रह्म परमात्माकी ही समता कालसे हो सकती है। उन्हींकी कृपासे मैं मृत्युंजय हो सका हूँ, मैंने असंख्य प्राकृत प्रलय देखे हैं तथा आगे भी बार-बार देखूँगा। वे ही प्रकृतिरूप हैं और वे ही परम पुरुष भी कहे गये हैं। वे परमेश्वर ही आत्मा हैं, वे ही जीव हैं और वे ही अनेक प्रकारके रूप धारण करके सर्वत्र विराजमान हैं॥ ५७-५८१/२॥

जो मनुष्य उन परमेश्वरके नामों तथा गुणोंका सतत कीर्तन करता है, वह यथासमय जन्म, मृत्यु, रोग, भय तथा बुढ़ापेपर विजय प्राप्त कर लेता है। उन्हीं परमेश्वरने ब्रह्माको सृजनकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता तथा मुझ महादेवको संहारकर्ताके रूपमें स्थापित किया है। इस प्रकार उन्हींके द्वारा हमलोग अपने-अपने कार्योंमें नियुक्त किये गये हैं॥ ५९-६०१/२॥

हे राजन्! इस समय मैं कालाग्नि रुद्रको संहार-कार्यमें नियुक्त करके उन्हीं परमात्माके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन कर रहा हूँ। इसीसे मैं मृत्युको जीत लेनेवाला हो गया हूँ और इस ज्ञानसे सम्पन्न हुआ मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मेरे पास आनेसे मृत्यु भी अपनी मृत्युके भयसे उसी प्रकार भाग जाती है, जैसे गरुडके भयसे सर्प॥ ६१-६२१/२॥

हे नारद! पूर्णरूपसे तत्पर होकर सभाके बीच अपने सम्पूर्ण भावोंको प्रदर्शित करते हुए सर्वेश्वर महादेव शंखचूड़से ऐसा कहकर चुप हो गये। उनकी बात सुनकर राजा शंखचूड़ने बार-बार उनकी प्रशंसा की और वह विनम्रतापूर्वक उन परम प्रभुसे यह मधुर वचन कहने लगा॥ ६३-६४१/२॥

शंखचूड़ बोला—[हे भगवन्!] आपने जो बात कही है, उसे अन्यथा नहीं कहा जा सकता, परन्तु मेरा भी कुछ यथार्थ निवेदन है, उसे आप सुन लीजिये॥ ६५१/२॥

आपने अभी यह कहा है कि जाति-द्रोह करनेमें महान् पाप होता है, तो फिर बलिका सर्वस्व छीनकर आपलोगोंने उसे सुतललोकमें क्यों भेज दिया? हे प्रभो! मैं ही बलिके समस्त ऐश्वर्यको पातालसे उठाकर यहाँ लाया हूँ, [अतः इसपर मेरा ही पूर्ण अधिकार है।] उस समय मैं बलिको सुतललोकसे लानेमें समर्थ नहीं था; क्योंकि भगवान् श्रीहरि

गदा धारण किये वहाँ स्थित थे। देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षका वध क्यों किया और उन्होंने शुम्भ आदि असुरोंको क्यों मार डाला? इसी प्रकार प्राचीन कालमें समुद्र-मन्थनके समय देवता सारा अमृत पी गये थे। उस समय कष्ट तो हम दानवोंने उठाया था और उसके अमृतरूपी फलका भोग उन समस्त देवताओंने किया था॥ ६६—६९$^{1}/_{2}$॥

यह विश्व प्रकृतिस्वरूप उन परमात्माका क्रीडाभाण्ड है। वे जिस व्यक्तिको जहाँ जो सम्पत्ति देते हैं, वह उस समय उसीकी हो जाती है। किसी निमित्तको लेकर देवता तथा दानवोंके बीच विवाद सदासे निरन्तर चला आ रहा है। किसी समय उनकी जीत अथवा हार होती है और समयानुसार कभी हमारी जीत-हार होती है। अत: ऐसी स्थितिमें देवता तथा दानव दोनोंके समान सम्बन्धी तथा बन्धुस्वरूप आप महात्मा परमेश्वरका हम दोनोंके विरोधके बीचमें आना निरर्थक है। यदि इस समय हमलोगोंके साथ आप युद्ध करेंगे, तो यह आपके लिये महान् लज्जाकी बात होगी। हमारी जीत होनेपर पहलेसे भी अधिक हम दानवोंकी कीर्ति बढ़ जायगी और पराजय होनेपर आपकी मानहानि होगी॥ ७०—७३$^{1}/_{2}$॥

[हे नारद!] शंखचूड़की यह बात सुनकर तीन नेत्रोंवाले भगवान् शिवने हँसकर उस दानवेन्द्रको समुचित उत्तर देना आरम्भ किया॥ ७४$^{1}/_{2}$॥

महादेवजी बोले—हे राजन्! ब्रह्माके ही वंशमें उत्पन्न हुए तुमलोगोंके साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर अपकीर्ति ही क्या होगी? हे नृप! इसके पहले भी तो मधु और कैटभसे श्रीहरिका युद्ध हो चुका है। एक बार उनके साथ हिरण्यकशिपुका युद्ध हुआ था और इसके बाद श्रीहरिने गदा लेकर हिरण्याक्षके साथ भी युद्ध किया था। मैं भी तो पूर्वकालमें त्रिपुर राक्षसके साथ युद्ध कर चुका हूँ। इसी प्रकार पूर्व समयमें शुम्भ आदि दानवोंके साथ सर्वेश्वरी, सर्वजननी पराप्रकृतिका भी अत्यन्त विस्मयकारी युद्ध हुआ था॥ ७५—७८$^{1}/_{2}$॥

तुम तो परमात्मा श्रीकृष्णके प्रधान पार्षद रहे हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, वे तुम्हारे-जैसे नहीं थे। अत: हे राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे कौन-सी बड़ी लज्जा है? सभी देवता श्रीहरिकी शरणमें गये थे, तब देवताओंकी सहायताके लिये उन्होंने मुझे भेजा है। तुम देवताओंका राज्य वापस कर दो—यह मेरा निश्चित वचन है, अन्यथा मेरे साथ युद्ध करो। वाणीका अपव्यय करनेसे क्या लाभ?॥ ७९—८१$^{1}/_{2}$॥

हे नारद! ऐसा कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये; और शंखचूड़ भी मन्त्रियोंके साथ शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ॥ ८२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें शंखचूड़के लिये प्रबोधवाक्यवर्णन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

कुमार कार्तिकेय और भगवती भद्रकालीसे शंखचूड़का भयंकर युद्ध और आकाशवाणीका पाशुपतास्त्रसे शंखचूड़की अवध्यताका कारण बताना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] दानवराज प्रतापी शंखचूड़ सिर झुकाकर शिवजीको प्रणाम करके मन्त्रियोंके साथ तत्काल यानपर सवार हुआ॥ १॥

उसी समय महादेवजीने अपनी सेना तथा देवताओंको तुरंत युद्धके लिये आज्ञा दे दी और दानवेन्द्र शंखचूड़ भी अपनी सेनाको साथ लेकर युद्धके लिये तैयार हो गया॥ २॥

स्वयं महेन्द्र वृषपर्वाके साथ और सूर्यदेव विप्रचित्तिके साथ वेगपूर्वक युद्ध करने लगे। इसी तरह दम्भके साथ चन्द्रमाने भीषण युद्ध किया। उस समय कालस्वरके साथ काल, गोकर्णके साथ अग्निदेव, कालकेयके साथ कुबेर, मयके साथ विश्वकर्मा, भयंकरके साथ मृत्यु, संहारके साथ यम, विकंकणके साथ वरुण, चंचलके साथ पवनदेव, घृतपृष्ठके साथ बुध, रक्ताक्षके साथ शनैश्चर, रत्नसारके

साथ जयन्त, वर्चसगणोंके साथ सभी वसु, दीप्तिमान्‌के साथ दोनों अश्विनीकुमार, धूम्रके साथ नलकूबर, धुरन्धरके साथ धर्म, उषाक्षके साथ मंगल, शोभाकरके साथ भानु, पिठरके साथ मन्मथ; गोधामुख, चूर्ण, खड्‌ग, ध्वज, कांचीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी, विश्व और पलाश आदि दानवोंके साथ आदित्यगण युद्ध करने लगे। इसी तरह ग्यारह भयंकर दानवोंके साथ ग्यारहों रुद्र, उग्रचण्डा आदिके साथ महामारी और दानवगणोंके साथ सभी नन्दीश्वर आदि गण प्रलयसदृश भयंकर महासंग्राममें युद्ध करने लगे॥ ३—११$^{1}/_{2}$॥

हे मुने! जब दोनों ओरके सभी सैनिक निरन्तर युद्ध कर रहे थे, उस समय भगवान् शंकर भगवती काली तथा पुत्र कार्तिकेयके साथ वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उधर रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत शंखचूड़ करोड़ों दानवोंके साथ रत्ननिर्मित रम्य सिंहासनपर बैठा हुआ था॥ १२-१३$^{1}/_{2}$॥

उस युद्धमें दानवोंने शंकरजीके अनेक योद्धाओंको परास्त कर दिया। सभी देवताओंके अंग क्षत-विक्षत हो गये और वे भयभीत होकर भाग चले। [यह देखकर] कार्तिकेय कुपित हो उठे और उन्होंने देवताओंको अभय प्रदान किया। उन्होंने अपने तेजसे अपने गणोंके बलमें वृद्धि की। तदनन्तर वे अकेले ही दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने संग्राममें एक सौ अक्षौहिणी सेनाको मार डाला॥ १४—१६$^{1}/_{2}$॥

उस युद्धमें कमलके समान नेत्रवाली कालीने बहुतसे असुरोंको धराशायी कर दिया और उसके बाद अत्यन्त क्रुद्ध होकर वे दानवोंका रक्त पीने लगीं। वे दस लाख हाथियों तथा करोड़ों-करोड़ों सैनिकोंको एक हाथसे पकड़-पकड़कर लीलापूर्वक अपने मुखमें डालने लगीं। हे मुने! उस समय हजारों मुण्डविहीन धड़ रणभूमिमें नाचने लगे॥ १७—१९॥

रणमें महान् पराक्रम प्रदर्शित करनेवाले समस्त दानव कार्तिकेयकी बाणवर्षासे क्षत-विक्षत शरीरवाले हो गये और भयभीत होकर भागने लगे। तत्पश्चात् वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकंकण—ये सभी दानव पराक्रमी कार्तिकेयके साथ युद्ध करने लगे। भगवती महामारी भी युद्ध करने लगीं, उन्होंने युद्धसे मुख नहीं मोड़ा। उधर स्वामी कार्तिकेयकी शक्तिसे पीड़ित होकर दानव क्षुब्ध हो उठे, किंतु वे भयके कारण रणसे नहीं भागे। कार्तिकेयका वह महाभयंकर तथा भीषण युद्ध देखकर स्वर्गसे पुष्पवृष्टि होने लगी। दानवोंका क्षय करनेवाला वह युद्ध प्राकृतिक प्रलयके समान था॥ २०—२३$^{1}/_{2}$॥

[दानवोंकी यह स्थिति देखकर] राजा शंखचूड़ विमानपर चढ़कर बाणोंकी वर्षा करने लगा। राजाकी बाणवर्षा मेघोंकी वृष्टिके समान थी। इससे चारों ओर महाघोर अन्धकार छा गया और सर्वत्र अग्निकी लपटें निकलने लगीं। इससे सभी देवता तथा अन्य नन्दीश्वर आदि गण भी भाग खड़े हुए। उस समय एकमात्र स्वामी कार्तिकेय ही समरभूमिमें डटे रहे॥ २४—२६॥

राजा शंखचूड़ पर्वतों, सर्पों, पत्थरों तथा वृक्षोंकी दुर्निवार्य तथा भयंकर वर्षा करने लगा। राजा शंखचूड़की बाणवर्षासे शिवपुत्र कार्तिकेय उसी प्रकार ढँक गये, जैसे घने कुहरेसे सूर्य ढँक जाते हैं। उसने कार्तिकेयके दुर्वह तथा भयंकर धनुषको काट डाला, दिव्य रथको खण्ड-खण्ड कर दिया और रथपीठोंको छिन्न-भिन्न कर दिया। उसने कार्तिकेयके मयूरको अपने दिव्य अस्त्रसे जर्जर कर दिया और सूर्यके समान चमकनेवाली प्राणघातिनी शक्ति उनके वक्षपर चला दी॥ २७—३०॥

इससे वे क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गये, फिर थोड़ी ही देरमें सचेत हो गये। तदनन्तर जिस दिव्य धनुषको पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने कार्तिकेयको दिया था, उसे हाथमें लेकर वे सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित विमानपर आरूढ़ होकर और अनेक शस्त्रास्त्रोंको लेकर भयंकर युद्ध करने लगे॥ ३१-३२॥

वह दानव सर्पों, पर्वतों, वृक्षों और पत्थरोंकी वर्षा करने लगा, किंतु शिवपुत्र कार्तिकेयने क्रोधित होकर अपने दिव्य अस्त्रसे उन सबको काट डाला। प्रतापी कार्तिकेयने शंखचूड़द्वारा लगायी गयी आगको अपने पार्जन्य अस्त्रसे बुझा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने शंखचूड़के रथ, धनुष, कवच, सारथी, किरीट तथा उज्ज्वल मुकुटको खेल-खेलमें

काट डाला और उस दानवेन्द्रके वक्षपर शुक्ल आभावाली शक्ति चला दी॥ ३३—३५॥

उसके आघातसे राजा शंखचूड़ मूर्च्छित हो गया, किंतु थोड़ी ही देरमें सचेत होनेपर वह तत्काल दूसरे रथपर सवार हो गया और उसने शीघ्र ही दूसरा धनुष उठा लिया। हे नारद! मायावियोंमें श्रेष्ठ उस शंखचूड़ने अपनी मायासे बाणोंका जाल फैला दिया और उस बाणजालसे कार्तिकेयको आच्छादित कर दिया॥ ३६-३७॥

उसने कभी भी व्यग्र न होनेवाली, सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभायुक्त, प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान आकृतिवाली और सदा विष्णुके तेजसे आवृत रहनेवाली शक्ति उठा ली तथा क्रोध करके बड़े वेगसे उसे कार्तिकेयपर चला दिया। अग्नि-राशिके समान उज्ज्वल वह शक्ति उनके शरीरपर गिरी और वे महाबली कार्तिकेय उस शक्तिके प्रभावसे मूर्च्छित हो गये॥ ३८-३९१/२॥

तब भद्रकाली उन्हें अपनी गोदमें लेकर शिवके पास ले गयीं। शिवने अपने ज्ञानके द्वारा उन्हें लीलापूर्वक चेतनायुक्त कर दिया, साथ ही उन्हें असीम शक्ति भी प्रदान की। तब प्रतापी कार्तिकेय उठ खड़े हुए॥ ४०-४१॥

कार्तिकेयकी रक्षामें तत्पर जो भद्रकाली थीं, वे युद्धभूमिके लिये प्रस्थित हो गयीं और नन्दीश्वर आदि जो वीर थे, वे भी उनके पीछे-पीछे चल पड़े। सभी देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, मृदंग आदि बाजे बजानेवाले तथा मधु ढोनेवाले कई सौ अन्य लोग भी उनके साथ चल दिये॥ ४२-४३॥

रणभूमिमें पहुँचते ही कालीने सिंह-गर्जन किया। भगवतीके सिंहनादसे बहुतसे दानव मूर्च्छित हो गये। दानवोंको देखकर देवीने बार-बार भीषण अट्टहास किया और मधुपान किया तथा वे रणभूमिमें नाचने लगीं। उग्रदंष्ट्रा, उग्रदण्डा, कोटवी, योगिनियों तथा डाकिनियोंके गण और देवतालोग भी मधुपान करने लगे॥ ४४—४६॥

भद्रकालीको देखकर शंखचूड़ भी शीघ्र युद्धभूमिमें आ गया। दानव डरे हुए थे, अतः राजा शंखचूड़ने उन्हें अभय प्रदान किया॥ ४७॥

भद्रकालीने प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान आग्नेयास्त्र शंखचूड़पर चला दिया। राजाने अपने पार्जन्यास्त्रसे खेल-खेलमें उसे बुझा दिया॥ ४८॥

तदनन्तर उस कालीने अत्यन्त तीव्र तथा अद्भुत वारुणास्त्र उसपर चलाया, जिसे उस दानवराजने अपने गान्धर्वास्त्रसे लीलापूर्वक काट दिया। तब कालीने अग्निशिखाके सदृश तेजस्वी माहेश्वरास्त्र उसपर चलाया, जिसे राजा शंखचूड़ने अपने वैष्णवास्त्रसे बड़ी सहजतापूर्वक शीघ्र ही विफल कर दिया॥ ४९-५०॥

इसके बाद कालीने राजा शंखचूड़पर मन्त्रपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उसे देखते ही उसने रथसे उतरकर प्रणाम किया और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजस्वी वह अस्त्र ऊपरकी ओर चला गया। शंखचूड़ भक्तिपूर्वक दण्डकी भाँति जमीनपर पड़कर पुनः प्रणाम करने लगा॥ ५१-५२॥

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नशील होकर मन्त्रपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया, उस राजा शंखचूड़ने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसका शमन कर दिया। तब देवीने मन्त्रपूर्वक दिव्यास्त्र चलाया, राजाने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसे भी नष्ट कर दिया॥ ५३-५४॥

तत्पश्चात् देवीने प्रयत्नपूर्वक राजापर योजनभर लम्बी शक्ति चलायी। उसने अपने दिव्यास्त्रके जालसे उसके सैकड़ों खण्ड कर दिये। तब देवीने कुपित होकर मन्त्रसे पवित्र किया हुआ पाशुपतास्त्र उठा लिया। इसी बीच उस अस्त्रको चलानेसे रोकने हेतु यह आकाशवाणी हुई—'महान् आत्मावाले इस राजाकी मृत्यु पाशुपतास्त्रसे नहीं होगी। जबतक यह भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच अपने गलेमें धारण किये रहेगा और जबतक इसकी साध्वी पत्नीका सतीत्व विद्यमान रहेगा, तबतक जरा और मृत्यु इसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते'—यह ब्रह्माका वचन है॥ ५५—५८॥

यह सुनकर भद्रकालीने उस अस्त्रको नहीं चलाया। अब वे क्षुधातुर होकर लीलापूर्वक करोड़ों दानवोंको निगलने लगीं। जब भयंकर भगवती काली शंखचूड़को निगल जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब उस दानवने अपने अत्यन्त तीक्ष्ण दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया॥ ५९-६०॥

तदनन्तर उन भद्रकालीने ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान तेजसम्पन्न खड्ग उसपर चला दिया। तब दानवेन्द्र शंखचूड़ने दिव्यास्त्रसे उसके सैकड़ों टुकड़े कर दिये। इसके बाद महादेवी उसे खा जानेके लिये वेगपूर्वक उसकी ओर बढ़ीं, तब सर्वसिद्धेश्वर तथा श्रीसम्पन्न दानवेन्द्र शंखचूड़ने अत्यन्त विशाल रूप धारण कर लिया॥ ६१-६२॥

भयंकर रूपवाली सती कालीने कुपित होकर तेज मुष्टिका-प्रहारसे उसका रथ खण्ड-खण्ड कर दिया और उसके सारथीको मार डाला॥ ६३॥

तत्पश्चात् उन भद्रकालीने उसके ऊपर प्रलयाग्निकी शिखाके समान त्रिशूल चलाया। शंखचूड़ने अपनी लीलासे बायें हाथसे उसे पकड़ लिया॥ ६४॥

इसके बाद देवीने अत्यन्त क्रोध करके बड़ी तेजीसे उसपर मुष्टिप्रहार किया। उसके फलस्वरूप उसे चक्कर आ गया और वह क्षणभरके लिये मूर्च्छित हो गया। वह प्रतापी शंखचूड़ अपने तेजसे थोड़ी ही देरमें फिर चेतनामें आकर उठ खड़ा हुआ। उसने देवीके साथ बाहुयुद्ध नहीं किया, बल्कि उन्हें प्रणाम करने लगा॥ ६५-६६॥

उस शंखचूड़ने अबतक भगवतीके अस्त्रोंको अपने तेजसे काट दिया था अथवा उनके अस्त्रोंको पकड़ लिया था, किंतु उस वैष्णव भक्तने मातृभक्तिके कारण उनपर अस्त्र नहीं चलाया था॥ ६७॥

तदनन्तर देवीने उस दानवको पकड़कर कई बार घुमाया और कुपित होकर बड़े वेगसे उसे ऊपरकी ओर फेंक दिया। वह प्रतापी शंखचूड़ ऊपरसे बड़े वेगसे गिरा और नीचे गिरते ही उठकर खड़ा हो गया। तदनन्तर भद्रकालीको प्रणाम करके वह अत्यन्त मनोहर रत्ननिर्मित विमानपर हर्षपूर्वक आरूढ़ हो गया। उस महारणमें उसने थोड़ी देर भी विश्राम नहीं किया॥ ६८—७०॥

इसके बाद भगवती भूखके कारण दानवोंका रक्त पीने लगीं। इस प्रकार दानवोंका रक्तपान तथा भक्षण करके वे भद्रकाली शंकरके पास चली गयीं॥ ७१॥

[वहाँ पहुँचकर] उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक युद्ध-सम्बन्धी सभी वृत्तान्त क्रमसे बतलाया। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् शंकर हँसने लगे। भद्रकालीने यह भी कहा—हे ईश्वर! रणभूमिमें इस समय भी एक लाख दानव बच गये हैं। जब मैं उन दानवोंको खा रही थी, उस समय कुछ दानव खानेसे बचकर मेरे मुखसे निकल गये थे। जब मैं संग्राममें दानवेन्द्र शंखचूड़को मारनेके लिये पाशुपतास्त्र छोड़नेको उद्यत हुई, उसी समय यह आकाशवाणी हुई 'राजा शंखचूड़ तुमसे अवध्य है।' महान् ज्ञानी तथा असीम बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न राजेन्द्र शंखचूड़ने मुझपर अस्त्र नहीं चलाया, अपितु मेरे द्वारा छोड़े गये बाणको वह काट दिया करता था॥ ७२—७५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें काली-शंखचूड़-युद्धवर्णन' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

भगवान् शंकर और शंखचूड़का युद्ध, भगवान् श्रीहरिका वृद्ध ब्राह्मणके वेशमें शंखचूड़से कवच माँग लेना तथा शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीसे हास-विलास करना, शंखचूड़का भस्म होना और सुदामागोपके रूपमें गोलोक पहुँचना

श्रीनारायण बोले—हे नारद! तत्त्वज्ञानके पूर्ण विद्वान् शिवजी सम्पूर्ण बातें सुनकर अपने गणोंके साथ स्वयं संग्राम-भूमिमें गये॥ १॥

शिवजीको देखकर उस शंखचूड़ने तत्काल विमानसे उतरकर परमभक्तिपूर्वक पृथ्वीपर मस्तक टेककर दण्डवत् प्रणाम किया॥ २॥

उन्हें प्रणाम करके वह बड़े वेगसे रथपर चढ़ गया और शीघ्रतापूर्वक कवच धारणकर उसने अपना दुर्वह धनुष उठा लिया॥ ३॥

हे ब्रह्मन्! भगवान् शिव तथा दानव शंखचूड़का

वह युद्ध पूरे सौ वर्षोंतक होता रहा। वे एक-दूसरेको न तो जीत पाते थे और न एक-दूसरेसे पराजित ही हो रहे थे॥ ४॥

कभी अपना शस्त्र रखकर भगवान् शिव वृषभपर विश्राम करने लगते और कभी शस्त्र रखकर दानव शंखचूड़ रथपर ही विश्राम करने लगता था॥ ५॥

असंख्य दानवोंका संहार हुआ। साथ ही रणमें देवपक्षके जो योद्धा मारे गये थे, उन्हें भगवान् शिवने पुनः जीवित कर दिया॥ ६॥

इसी बीच एक परम आतुर बूढ़े ब्राह्मणदेवता रणभूमिमें आकर दानवेन्द्र शंखचूड़से कहने लगे॥ ७॥

वृद्ध ब्राह्मण बोले—हे राजेन्द्र! मुझ ब्राह्मणको भिक्षा प्रदान कीजिये। इस समय आप सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हैं, अतः मेरे मनमें जो अभिलषित है, उसे दीजिये। इस समय पहले आप मुझ निरीह, वृद्ध तथा तृषित ब्राह्मणको देनेके लिये सत्य-प्रतिज्ञा कीजिये, तब बादमें मैं अपनी अभिलाषा बताऊँगा॥ ८-९॥

इसपर प्रफुल्लित मुख तथा नेत्रोंवाले राजेन्द्र शंखचूड़ने 'हाँ-हाँ, ठीक है'—ऐसा कहा। तत्पश्चात् वृद्ध ब्राह्मणरूपधारी श्रीहरिने अत्यधिक मायाके साथ कहा 'मैं तुम्हारा कवच चाहता हूँ'॥ १०॥

उनकी बात सुनकर शंखचूड़ने कवच दे दिया और भगवान् श्रीहरिने उसे ले लिया। तत्पश्चात् वे शंखचूड़का रूप धारणकर तुलसीके पास गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने मायापूर्वक उस तुलसीमें अपने तेजका आधान किया॥ ११॥

उसी समय शंकरजीने श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल शंखचूड़पर चलानेके लिये हाथमें ले लिया। वह त्रिशूल ग्रीष्म ऋतुमें मध्याह्नकालीन सूर्य और प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजवान् था, किसीसे भी रोका न जा सकनेवाला, प्रचण्ड, अव्यर्थ तथा शत्रुघाती वह त्रिशूल तेजमें भगवान् विष्णुके चक्रके समान था, वह सभी शस्त्रास्त्रोंका सारस्वरूप था, वह भयंकर त्रिशूल शिव तथा केशवके अतिरिक्त अन्य लोगोंके लिये दुर्वह तथा भयंकर था। वह लम्बाईमें हजार धनुष*के बराबर तथा चौड़ाईमें सौ हाथकी मापवाला था, वह त्रिशूल साक्षात् सजीव ब्रह्मस्वरूप ही था, वह नित्यस्वरूप था, उसे सभी लोग देख नहीं सकते थे॥ १२—१५॥

हे नारद! भगवान् शंकरने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका संहार करनेमें समर्थ उस त्रिशूलको अपनी लीलासे हाथपर सँभालकर शंखचूड़पर फेंक दिया॥ १६॥

[तब सभी रहस्य समझकर] राजा शंखचूड़ अपना धनुष त्यागकर तथा बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा॥ १७॥

वह त्रिशूल कुछ समयतक चक्कर काटकर दानव शंखचूड़के ऊपर जा गिरा। उस त्रिशूलने रथसमेत शंखचूड़को लीलापूर्वक जलाकर भस्म कर दिया॥ १८॥

तदनन्तर शंखचूड़ने किशोर अवस्था तथा दिव्य रूपवाले एक गोपका वेष धारण कर लिया। वह दो भुजाओंसे सुशोभित था, उसके हाथमें मुरली थी तथा वह रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत था। वह उसी समय गोलोकसे आये हुए तथा करोड़ों गोपोंसे घिरे हुए एक सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर आरूढ़ होकर गोलोक चला गया॥ १९-२०॥

हे मुने! वहाँ पहुँचकर उसने वहाँके वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य विराजमान श्रीकृष्ण और राधाके चरणकमलमें भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाकर प्रणाम किया॥ २१॥

उस सुदामागोपको देखकर उन दोनोंके मुख तथा नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और उन्होंने अत्यन्त प्रेमके साथ उसे अपनी गोदमें बैठा लिया॥ २२॥

तदनन्तर वह त्रिशूल वेगपूर्वक आदरके साथ श्रीकृष्णके पास लौट आया। शंखचूड़की हड्डियोंसे शंखजातिकी उत्पत्ति हुई। वही शंख अनेक प्रकारके रूपोंमें निरन्तर विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें पवित्र माना जाता है। अत्यन्त प्रशस्त, पवित्र तथा तीर्थजलस्वरूप शंखजल केवल शंकरजीको छोड़कर अन्य देवताओंके लिये परम प्रीतिदायक है। जहाँ शंखकी ध्वनि होती है, वहाँ लक्ष्मीजी स्थिररूपसे सदा विराजमान रहती हैं॥ २३—२५॥

जो शंखके जलसे स्नान कर लेता है, उसने मानो समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। शंख भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठानस्वरूप है। जहाँ शंख रहता है, वहाँ भगवान्

* चार हाथके बराबर लम्बाईकी नापको 'धनुष' कहा जाता है।

श्रीहरि विराजमान रहते हैं, वहींपर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं तथा उस स्थानसे सारा अमंगल दूर भाग जाता है, किंतु स्त्रियों और विशेषरूपसे शूद्रोंके द्वारा की गयी शंखध्वनियोंसे भयभीत तथा रुष्ट होकर लक्ष्मीजी उस स्थानसे अन्य देशको चली जाती हैं॥ २६-२७॥

दानव शंखचूड़को मारकर शिवजी भी वृषभपर सवार होकर अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शिवलोक चले गये। देवताओंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया और वे परम आनन्दित हो गये। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं, गन्धर्व तथा किन्नर गाने लगे, भगवान् शिवके ऊपर निरन्तर पुष्प-वृष्टि होने लगी और देवता तथा श्रेष्ठ मुनीश्वर आदि उन शिवजीकी प्रशंसा करने लगे॥ २८—३०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'शंखचूड़वधवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

शंखचूड़रूपधारी श्रीहरिका तुलसीके भवनमें जाना, तुलसीका श्रीहरिको पाषाण होनेका शाप देना, तुलसी-महिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण एवं माहात्म्यका वर्णन

नारदजी बोले—भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारणकर तुलसीमें वीर्याधान किया था, उसे मुझे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंका कार्य सिद्ध करनेमें सदा तत्पर रहनेवाले भगवान् श्रीहरि वैष्णवी मायाके द्वारा शंखचूड़का कवच लेकर और फिर उसी शंखचूड़का रूप धारणकर उसकी पत्नीका पातिव्रत्य नष्ट करके शंखचूड़को मारनेकी इच्छासे साध्वी तुलसीके घर गये थे॥ २-३॥

उन्होंने तुलसीके भवनके द्वारके पास दुन्दुभि बजवायी और उस द्वारपर जयकार लगवाकर सुन्दरी तुलसीको यह ज्ञात कराया कि उसके पति विजयी होकर आ गये हैं॥ ४॥

वह ध्वनि सुनकर साध्वी तुलसी परम आनन्दित हुई और अत्यन्त आदरके साथ [पतिदर्शनकी कामनासे] खिड़कीमेंसे राजमार्गकी ओर देखने लगी॥ ५॥

तत्पश्चात् उसने ब्राह्मणोंको धन प्रदान करके मंगलाचार करवाया और बन्दीजनों, भिक्षुकों तथा सूत-मागधोंको [न्यौछावरस्वरूप] धन दिया॥ ६॥

तदनन्तर भगवान् श्रीहरि रथसे उतरकर देवी तुलसीके सुन्दर, अत्यन्त मनोहर तथा अमूल्य रत्ननिर्मित भवनमें गये॥ ७॥

अपने कान्तिमान् पतिको समक्ष देखकर वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने प्रेमपूर्वक उनका चरण धोया, फिर उन्हें प्रणाम किया और वह रोने लगी॥ ८॥

तत्पश्चात् उस कामिनी तुलसीने उन्हें अत्यन्त मनोहर रत्नमय सिंहासनपर बैठाया, पुनः उसने कपूर आदिसे सुगन्धित ताम्बूल उन्हें प्रदान किया। [इसके बाद तुलसीने कहा—] आज मेरा जन्म तथा जीवन—ये दोनों सफल हो गये; क्योंकि मैं युद्धभूमिमें गये हुए अपने प्राणनाथको फिरसे घरमें देख रही हूँ॥ ९-१०॥

तत्पश्चात् मुसकानयुक्त, तिरछी दृष्टिसे देखती हुई, काममदसे विह्वल और पुलकित अंगोंवाली तुलसी अपने प्राणनाथसे मधुर वाणीमें युद्धसम्बन्धी समाचार पूछने लगी॥ ११॥

तुलसी बोली—प्रभो! असंख्य ब्रह्माण्डोंका संहार करनेवाले शिवजीके साथ हुए युद्धमें आपकी विजय कैसे हुई? हे कृपानिधे! इसे मुझे बताइये॥ १२॥

तुलसीका वचन सुनकर शंखचूड़रूपधारी लक्ष्मीकान्त श्रीहरि उस तुलसीसे हँसकर अमृतमय वाणीमें कहने लगे॥ १३॥

श्रीभगवान् बोले—हे प्रिये! हम दोनोंका युद्ध पूरे एक वर्षतक होता रहा। हे कामिनि! उस युद्धमें सभी दानवोंका विनाश हो गया। तब स्वयं ब्रह्माजीने हम दोनोंमें प्रेम करवा दिया और फिर उनकी आज्ञासे मैंने देवताओंको

उनका सम्पूर्ण अधिकार लौटा दिया। इसके बाद मैं अपने घर चला आया और शिवजी अपने लोकको चले गये॥ १४-१५¹/₂ ॥

हे नारद! यह कहकर जगन्नाथ रमापति श्रीहरि शय्यापर सो गये और जब उस रमणीके साथ विहार करने लगे, तब उस साध्वी तुलसीने अपने मनमें विचार करके सब कुछ जान लिया और 'तुम कौन हो?'—ऐसा वह उनसे पूछने लगी॥ १६-१७¹/₂ ॥

तुलसी बोली—हे मायेश! तुम कौन हो, यह मुझे बताओ। तुमने छलपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट किया, अतः मैं तुम्हें शाप देती हूँ॥ १८¹/₂ ॥

हे ब्रह्मन्! तुलसीका वचन सुनकर भगवान् श्रीहरिने शापके भयसे लीलापूर्वक अपना मनोहर विष्णुरूप धारण कर लिया॥ १९¹/₂ ॥

तब देवी तुलसीने नूतन मेघके समान श्याम वर्णवाले, शरत्कालीन कमलके समान नेत्रोंवाले, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर प्रतीत होनेवाले, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त प्रसन्न मुख-मण्डलवाले, पीताम्बर धारण किये हुए तथा अनुपम



शोभासम्पन्न देवाधिदेव सनातन श्रीहरिको अपने समक्ष देखा। उन्हें देखकर कामिनी तुलसी लीलापूर्वक पूर्णतः मूर्च्छित हो गयी और कुछ देर बाद चेतना प्राप्त करके वह उन श्रीहरिसे पुनः कहने लगी॥ २०—२२¹/₂ ॥

तुलसी बोली—हे नाथ! आप पाषाणसदृश हो गये हैं, आपमें दया नहीं है। आपने छलपूर्वक मेरा धर्म नष्ट करके मेरे स्वामीको मार डाला। हे प्रभो! आप पाषाण-हृदयवाले हैं तथा दयाहीन हो गये हैं, अतः हे देव! आप इसी समय लोकमें पाषाणरूप हो जायँ। जो लोग आपको साधु कहते हैं, वे भ्रमित हैं; इसमें सन्देह नहीं है। दूसरेका हित साधनेके लिये आपने अपने भक्तको क्यों मार डाला?॥ २३—२५¹/₂ ॥

[हे नारद!] इस प्रकार शोक-सन्तप्त तुलसीने बहुत रुदन तथा बार-बार विलाप किया। तदनन्तर करुणारसके सागर कमलापति श्रीहरि तुलसीकी कारुणिक अवस्था देखकर नीतियुक्त वचनोंसे उसे समझाते हुए कहने लगे॥ २६-२७॥

श्रीभगवान् बोले—हे भद्रे! तुमने भारतमें रहकर मेरे लिये बहुत समयतक तपस्या की है, साथ ही इस शंखचूड़ने भी उस समय तुम्हारे लिये दीर्घ समयतक तपस्या की थी॥ २८॥

तुम्हें पत्नीरूपमें प्राप्त करके उसने तपस्याका फल प्राप्त करके तुम्हारे साथ विहार किया है। अब तुम्हें तुम्हारेद्वारा की गयी तपस्याका फल देना उचित है॥ २९॥

हे रामे! अब तुम इस शरीरको त्यागकर तथा दिव्य देह धारण करके मेरे साथ आनन्द करो और [मेरे लिये] लक्ष्मीके समान हो जाओ॥ ३०॥

तुम्हारा यह शरीर गण्डकीनदीके रूपमें प्रसिद्ध होगा। वह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षके मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली होगी॥ ३१॥

तुम्हारा केशसमूह पुण्य वृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होगा। तुम्हारे केशसे उत्पन्न वह वृक्ष तुलसी नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ३२॥

हे वरानने! देवपूजनमें प्रयुक्त होनेवाले त्रिलोकीके समस्त पुष्पों तथा पत्रोंमें तुलसी प्रधानरूपवाली मानी जायगी॥ ३३॥

स्वर्गलोक, मृत्युलोक, पाताल तथा गोलोक—इन सभी स्थानोंमें तुम मेरे सान्निध्यमें रहोगी। वृक्षश्रेष्ठ उत्तम तुलसी नामसे तुम पुष्पोंके मध्य सदा प्रतिष्ठित रहोगी॥ ३४॥

गोलोक, विरजानदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन, माधवी, केतकी,

कुन्द, मालिका, मालतीवन—इन सभी पुण्यमय स्थानोंमें तुम्हारा पुण्यप्रद वास होगा॥ ३५-३६॥

तुलसीवृक्षके मूलोंके सान्निध्यवाले पुण्यमय स्थानोंमें समस्त तीर्थोंका पुण्यप्रद अधिष्ठान होगा। हे वरानने! तुलसीके पत्र अपने ऊपर पड़ें, इस उद्देश्यसे वहाँपर मेरा तथा सभी देवताओंका निवास होगा॥ ३७-३८॥

तुलसी-पत्रके जलसे जो व्यक्ति स्नान करता है, उसने मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया और वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया॥ ३९॥

हजारों अमृतकलशोंसे भगवान् श्रीहरिको जो सन्तुष्टि होती है, वह उन्हें तुलसीका एक पत्र अर्पण करनेसे अवश्य ही मिल जाती है॥ ४०॥

जो फल दस हजार गायोंका दान करनेसे होता है, वही फल कार्तिकमासमें तुलसीके पत्रके दानसे प्राप्त हो जाता है॥ ४१॥

जिस व्यक्तिको मृत्युके अवसरपर तुलसीपत्रका जल सुलभ हो जाता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ४२॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वह एक लाख अश्वमेधयज्ञोंसे होनेवाला पुण्य प्राप्त कर लेता है॥ ४३॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसी लेकर या शरीरमें इसे धारणकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोक जाता है॥ ४४॥

जो मनुष्य तुलसी-काष्ठसे निर्मित मालाको धारण करता है, वह पद-पदपर अश्वमेधयज्ञका फल निश्चय ही प्राप्त करता है॥ ४५॥

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर अपने प्रतिज्ञा-वचनकी रक्षा नहीं करता, वह कालसूत्रनरकमें पड़ता है और वहाँपर चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वास करता है॥ ४६॥

जो मनुष्य इस लोकमें तुलसीके समीप झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और चौदहों इन्द्रोंकी स्थितितक वहाँ पड़ा रहता है॥ ४७॥

मृत्युके समय जिस मनुष्यके मुखमें तुलसी-जलका एक कण भी पहुँच जाता है, वह रत्नमय विमानपर आरूढ़ होकर निश्चय ही विष्णुलोकको जाता है॥ ४८॥

पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी, सूर्य-संक्रान्ति, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों सन्ध्याएँ, अशौच तथा अपवित्र समयोंमें, रातके कपड़े पहने हुए तथा शरीरमें तेल लगाकर जो लोग तुलसीके पत्र तोड़ते हैं; वे साक्षात् श्रीहरिका मस्तक ही काटते हैं॥ ४९-५०॥

श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक शुद्ध बना रहता है॥ ५१॥

पृथ्वीपर पड़ा हुआ अथवा जलमें गिरा हुआ या श्रीविष्णुको चढ़ाया हुआ तुलसीपत्र धो देनेपर दूसरे कार्योंके लिये शुद्ध होता है॥ ५२॥

वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर तुम शाश्वत गोलोकमें मुझ कृष्णके साथ सदा विहार करोगी। उसी प्रकार भारतवर्षमें नदियोंकी जो अत्यन्त पुण्यदायिनी अधिष्ठात्री देवी हैं, उस रूपमें भी तुम मेरे ही अंशस्वरूप लवणसमुद्रकी पत्नी बनोगी॥ ५३-५४॥

स्वयं महासाध्वी तुम वैकुण्ठलोकमें मेरे सन्निकट लक्ष्मीके समान भार्याके रूपमें सदा विराजमान रहोगी; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

मैं भी तुम्हारे शापसे पाषाण बनकर भारतवर्षमें गण्डकीनदीके तटके समीप निवास करूँगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीट अपने तीक्ष्ण दाँतरूपी श्रेष्ठ आयुधोंसे काट-काटकर उस शिलाके गड्ढेमें मेरे चक्रका चिह्न बनायेंगे॥ ५६-५७॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान वर्णवाला पाषाण 'लक्ष्मीनारायण' नामसे प्रसिद्ध होगा॥ ५८॥

जिसमें एक द्वारका चिह्न तथा चार चक्रके चिह्न होंगे, किंतु जो वनमालाकी रेखासे रहित होगा, उस नवीन मेघके समान श्यामवर्णवाले पाषाणको 'लक्ष्मी-जनार्दन' नामवाला समझना चाहिये॥ ५९॥

दो द्वार तथा चार चक्रसे युक्त, गायके खुरसे सुशोभित तथा वनमालासे रहित पाषाणको 'रघुनाथ' नामसे

जानना चाहिये॥ ६०॥

जिसमें बहुत सूक्ष्म दो चक्रके चिह्न हों और वनमालाकी रेखा न हो, उस नवीन मेघके सदृश वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'वामन' नामसे मानना चाहिये॥ ६१॥

जिस पाषाणमें अत्यन्त सूक्ष्म आकारके दो चक्र हों तथा जो वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सदा श्री प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'श्रीधर' का ही स्वरूप समझना चाहिये॥ ६२॥

स्थूल, गोलाकार, वनमालासे रहित तथा अत्यन्त स्पष्ट दो चक्रोंसे अंकित पाषाणको भगवान्‌का 'दामोदर' नामवाला स्वरूप जानना चाहिये॥ ६३॥

जो मध्यम गोलाईके आकारवाला हो, जिसमें दो चक्र बने हों, जिसपर बाण तथा तरकशका चिह्न अंकित हो और जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'राम' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६४॥

मध्यम आकारवाले, सात चक्रोंके चिह्नोंसे अंकित, छत्र तथा आभूषणसे अलंकृत पाषाणको भगवान् 'राजराजेश्वर' समझना चाहिये। वह पाषाण मनुष्योंको विपुल राजसम्पदा प्रदान करनेवाला है॥ ६५॥

जो पाषाण स्थूल हो, चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघसदृश प्रभावाला हो; उस धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—इन चारों प्रकारके फल प्रदान करनेवाले पाषाणको भगवान् 'अनन्त' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ६६॥

जो चक्रके आकारवाला हो; जिसमें दो चक्र, श्री और गोखुरके चिह्न सुशोभित हों, ऐसे मध्यम तथा नवीन मेघके समान वर्णवाले पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' का विग्रह समझना चाहिये॥ ६७॥

सुन्दर दर्शनवाले तथा केवल एक गुप्त चक्रसे युक्त पाषाणको भगवान् 'गदाधर' तथा दो चक्रसे युक्त एवं अश्वके मुखकी आकृतिवाले पाषाणको भगवान् 'हयग्रीव' का विग्रह कहा गया है॥ ६८॥

जो अत्यन्त विस्तृत मुखवाला हो, दो चक्रके चिह्नोंसे सुशोभित हो, जो देखनेमें बड़ा विकट लगता हो, मनुष्योंको शीघ्र वैराग्य प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ६९॥

जिसमें दो चक्र हों, जो विस्तृत मुखवाला हो तथा वनमालासे सुशोभित हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले ऐसे पाषाणको 'लक्ष्मीनृसिंह' का स्वरूप समझना चाहिये॥ ७०॥

जिसके द्वारदेशमें दो चक्र तथा 'श्री' का चिह्न स्पष्ट रूपसे अंकित हो, समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह जानना चाहिये॥ ७१॥

जो सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त हो, नवीन मेघके समान श्यामवर्णका हो और जिसके मुखपर बहुतसे छोटे-छोटे छिद्र विद्यमान हों, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको 'प्रद्युम्न' का स्वरूप जानना चाहिये॥ ७२॥

जिसमें परस्पर सटे हुए दो चक्रोंके चिह्न विद्यमान हों तथा जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण' का ही रूप समझना चाहिये॥ ७३॥

जो अत्यन्त सुन्दर, गोलाकार तथा पीत आभावाला हो, गृहस्थोंको सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको विद्वान् पुरुष भगवान् 'अनिरुद्ध' का स्वरूप कहते हैं॥ ७४॥

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और वहींपर भगवती लक्ष्मी भी सभी तीर्थोंको साथ लेकर सदा निवास करती हैं॥ ७५॥

ब्रह्महत्या आदि जो भी पाप हैं, वे सब शालग्रामकी शिलाके पूजनसे नष्ट हो जाते हैं॥ ७६॥

छत्राकार शालग्रामके पूजनसे राज्य, गोलाकार शालग्रामके पूजनसे महालक्ष्मी, शकटके आकारवाले शालग्रामके पूजनसे कष्ट तथा शूलके समान अग्रभागवाले शालग्रामके पूजनसे निश्चितरूपसे मृत्यु होती है॥ ७७॥

विकृत मुखवाले शालग्रामसे दरिद्रता, पिंगलवर्णवालेसे हानि, खण्डित चक्रवालेसे व्याधि तथा विदीर्ण शालग्रामसे निश्चय ही मरण होता है॥ ७८॥

व्रत, स्नान, प्रतिष्ठा, श्राद्ध तथा देवपूजन आदि जो भी कर्म शालग्रामकी सन्निधिमें किया जाता है, वह प्रशस्त माना जाता है और वह कर्ता मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर

चुका और सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। इस प्रकार उसे सम्पूर्ण यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंका फल मिल जाता है॥ ७९-८०॥

चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह पुण्य शालग्रामकी शिलाके पूजनसे निश्चितरूपसे सुलभ हो जाता है॥ ८१॥

(जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलसे नित्य अभिषेक करता है, वह सभी दान करने तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जो पुण्य होता है, उसे प्राप्त कर लेता है।) जो मनुष्य शालग्रामशिलाके जलका नित्य पान करता है, वह देवाभिलषित प्रसाद प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। समस्त तीर्थ उसका स्पर्श करना चाहते हैं। वह जीवन्मुक्त तथा परम पवित्र मनुष्य अन्तमें भगवान् श्रीहरिके लोक चला जाता है। वहाँपर वह भगवान् श्रीहरिके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयपर्यन्त रहता है। वह वहाँ भगवान्‌का दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और उनके सेवाकार्यमें नियुक्त हो जाता है॥ ८२—८४॥

ब्रह्महत्यासदृश जो कोई भी पाप हों, वे भी उस व्यक्तिको देखते ही उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प॥ ८५॥

उस मनुष्यके चरणकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरन्त पवित्र हो जाती हैं और उसके जन्मसे उसके लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है॥ ८६॥

जो मनुष्य मृत्युके समय शालग्रामशिलाके जलका पान कर लेता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। इस प्रकार वह सभी कर्मभोगोंसे मुक्त होकर निर्वाणमुक्ति प्राप्त कर लेता है और भगवान् विष्णुके चरणोंमें लीन हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८७-८८॥

शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर जो मनुष्य मिथ्या वचन बोलता है, वह कुम्भीपाकनरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वहाँ निवास करता है॥ ८९॥

जो शालग्रामशिलाको हाथमें लेकर अपने द्वारा की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह असिपत्र नामक नरकमें जाता है और वहाँ एक लाख मन्वन्तरकी अवधितक रहता है॥ ९०॥

हे कान्ते! जो मनुष्य शालग्रामशिलासे तुलसीपत्रको हटा देता है, वह दूसरे जन्ममें स्त्रीसे वियुक्त हो जाता है। उसी प्रकार जो पुरुष शंखसे तुलसीपत्रको अलग करता है, वह भी सात जन्मोंतक भार्याविहीन तथा रोगयुक्त रहता है॥ ९१-९२॥

जो महाज्ञानी व्यक्ति शालग्राम, तुलसी और शंखको एकत्र रखता है, वह भगवान् श्रीहरिके लिये अत्यन्त प्रिय हो जाता है॥ ९३॥

जो पुरुष एक बार भी जिस किसी स्त्रीके साथ एकान्तवास कर लेता है, वियोग होनेपर उसका दुःख उन दोनोंको परस्पर होता है। तुम एक मन्वन्तरकी अवधितक शंखचूड़की भार्या रह चुकी हो, अतः उसके साथ तुम्हारा वियोग कष्टदायक तो होगा ही॥ ९४-९५॥

हे नारद! उस तुलसीसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तुलसी अपना वह शरीर त्यागकर और दिव्य रूप धारण करके श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति सुशोभित होने लगी। इसके बाद वे लक्ष्मीपति श्रीहरि उसके साथ वैकुण्ठलोक चले गये॥ ९६-९७॥

हे नारद! इस प्रकार लक्ष्मी, सरस्वती, गंगा और तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं॥ ९८॥

उसी समय तुरन्त तुलसीके शरीरसे गण्डकीनदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम बन गये॥ ९९॥

हे मुने! वहाँ रहनेवाले कीट शिलाको काट-काटकर उन्हें अनेक प्रकारके रूपोंवाला बना देते हैं। जो-जो शिलाएँ जलमें गिरती हैं, वे निश्चितरूपसे उत्तम फल देनेवाली होती हैं। जो शिलाएँ धरतीपर गिरी रहती हैं, वे सूर्यके तापके कारण पीली पड़ जाती हैं, उन्हें पिंगला शिला समझना चाहिये। इस प्रकार मैंने सारा प्रसंग कह दिया, अब पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १००-१०१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें तुलसीमाहात्म्यके साथ शालग्रामके माहात्म्यका वर्णन' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसीस्तवनका वर्णन

नारदजी बोले—जिस समय विष्णुप्रिया तुलसीकी पूजा की गयी थी, उस समय उनके लिये किये गये पूजन-विधान तथा स्तोत्रको अब आप मुझे बताइये। हे मुने! सर्वप्रथम किसने उनकी पूजा की, किसने उनका स्तवन किया और किस प्रकार वे सर्वत्र पूज्य हुईं—यह सब आप मुझे बताइये॥ १-२॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! नारदका वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ भगवान् नारायणने हँसकर सभी पापोंका नाश करनेवाली, पुण्यमयी तथा श्रेष्ठ कथा कहना आरम्भ किया॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—भगवान् श्रीहरि तुलसीकी विधिवत् पूजा करके उस साध्वीके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको गौरव प्रदान करके उसे लक्ष्मीके समान सौभाग्यवती बना दिया॥ ४॥

लक्ष्मी और गंगाने तो उस तुलसीके नवसमागम तथा सौभाग्य-गौरवको सहन कर लिया, किंतु अत्यधिक क्षोभ उत्पन्न होनेके कारण सरस्वती इसे सहन नहीं कर सकीं॥ ५॥

उस मानिनी सरस्वतीने कलहमें श्रीहरिके समक्ष तुलसीको बहुत पीड़ित किया। इससे लज्जा और अपमानके कारण तुलसी अन्तर्धान हो गयीं॥ ६॥

ज्ञानियोंके लिये सर्वसिद्धेश्वरी तथा सिद्धयोगिनी देवी तुलसी कोपके कारण भगवान् श्रीहरिकी आँखोंसे ओझल हो गयीं॥ ७॥

जब भगवान् श्रीहरिने तुलसीको कहीं नहीं देखा, तब सरस्वतीको समझा-बुझाकर तथा उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनकी ओर चल दिये॥ ८॥

वहाँ पहुँचकर श्रीहरिने विधिवत् स्नान किया और उन साध्वी तुलसीका पूजन किया। तत्पश्चात् उनका ध्यान करके भगवान्ने भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। उन्होंने लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजोंको पूर्वमें लगाकर 'वृन्दावनी'—इस शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर तथा अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा)-का प्रयोग करके दशाक्षर मन्त्र (**श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा**)-से पूजन किया था॥ ९-१०॥

हे नारद! जो इस कल्पवृक्षरूपी मन्त्रराजसे विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे समस्त सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है॥ ११॥

हे नारद! घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारों तथा स्तोत्रसे भगवान् श्रीहरिके द्वारा सम्यक् पूजित होकर तुलसीदेवी वृक्षसे तत्काल प्रकट हो गयीं। वे कल्याणकारिणी तुलसी प्रसन्न होकर श्रीहरिके चरणकमलकी शरणमें चली गयीं॥ १२-१३॥

तब भगवान् विष्णुने उन्हें यह वर प्रदान किया—'तुम सर्वपूज्या हो जाओ। सुन्दर रूपवाली तुमको मैं अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा और समस्त देवता आदि भी तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे'—ऐसा कहकर भगवान् श्रीहरि उन तुलसीको साथ लेकर अपने स्थानपर चले गये॥ १४-१५॥

नारदजी बोले—हे महाभाग! तुलसीका ध्यान क्या है, स्तवन क्या है तथा पूजा-विधान क्या है? यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] उस समय तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे व्यथित हो उठे और वृन्दावन जाकर उन तुलसीकी इस प्रकार स्तुति*

* वृन्दरूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च। विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने। तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्। तेन विश्वपूजिताख्यां पूजितां च भजाम्यहम्॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि त्वया सदा। तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना। तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्। नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवतादिह॥
यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च। तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥
कृष्णजीवनरूपा सा शश्वत्प्रियतमा सती। तेन कृष्णजीवनी सा सा मे रक्षतु जीवनम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। २५। १८—२५)

करने लगे॥ १७॥

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा अन्य वृक्ष एकत्र होते हैं, तब विद्वान् लोग उसे 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी 'वृन्दा' नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रियाकी मैं उपासना करता हूँ॥ १८॥ जो देवी प्राचीन कालमें सर्वप्रथम वृन्दावनमें प्रकट हुई थी और इसलिये जो 'वृन्दावनी' नामसे प्रसिद्ध हुई, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ॥ १९॥ असंख्य विश्वोंमें सदा जिसकी पूजा की जाती है, इसलिये 'विश्वपूजिता' नामसे प्रसिद्ध उस सर्वपूजित भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ २०॥ तुम असंख्य विश्वोंको सदा पवित्र करती हो, अतः तुम 'विश्वपावनी' नामक देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ॥ २१॥ जिसके विना प्रचुर पुष्प अर्पित करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते हैं, मैं शोकाकुल होकर 'पुष्पसारा' नामसे विख्यात, पुष्पोंकी सारभूत तथा शुद्धस्वरूपिणी उस देवी तुलसीके दर्शनकी कामना करता हूँ॥ २२॥ संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्तको निश्चय ही आनन्द प्राप्त होता है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे विख्यात वह देवी अब मुझपर प्रसन्न हो॥ २३॥ सम्पूर्ण विश्वोंमें जिस देवीकी कोई तुलना नहीं है, अतः 'तुलसी' नामसे विख्यात अपनी उस प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ॥ २४॥ वह साध्वी तुलसी श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा तथा उन्हें निरन्तर प्रेम प्रदान करनेवाली है, इसलिये 'कृष्णजीवनी' नामसे प्रसिद्ध वह देवी मेरे जीवनकी रक्षा करे॥ २५॥

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि वहीं विराजमान हो गये। तभी उन्होंने साक्षात् तुलसीको सामने देखा। वह साध्वी उन श्रीहरिके चरणकमलोंमें अपना मस्तक झुकाये हुए थी और अपमानके कारण वह मानिनी तुलसी रो रही थी। ऐसी मानपूजित प्रियाको देखकर प्रेममूर्ति श्रीहरिने उसे अपने वक्षपर स्थान दिया॥ २६-२७॥

तत्पश्चात् सरस्वतीसे आज्ञा लेकर श्रीहरि उसे अपने भवनमें ले गये और वहाँ शीघ्र ही सरस्वतीके साथ उसकी प्रीति करवायी। श्रीहरिने उसे वर प्रदान किया—'तुम सबके लिये तथा मेरे लिये पूजनीय, सिरपर धारण करने योग्य, वन्दनीय तथा मान्य हो जाओ'॥ २८-२९॥

भगवान् विष्णुके इस वरदानसे वे देवी तुलसी परम सन्तुष्ट हो गयीं और सरस्वतीने उन्हें पकड़कर अपने पास बैठा लिया॥ ३०॥

हे नारद! उस समय लक्ष्मी और गंगाके मुखपर मुसकराहट आ गयी और उन्होंने विनम्रतापूर्वक उन साध्वी तुलसीको पकड़कर घरमें प्रवेश करवाया॥ ३१॥

वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी तथा कृष्णजीवनी—ये तुलसीके आठ नाम हैं। जो मनुष्य तुलसीकी विधिवत् पूजा करके नामके अर्थोंसे युक्त आठ नामोंवाले इस नामाष्टकस्तोत्रका पाठ करता है, वह अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ३२-३३॥

कार्तिकपूर्णिमा तिथिको तुलसीका मंगलमय प्राकट्य हुआ था। उस समय सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उनकी पूजा सम्पन्न की थी। अतः जो मनुष्य उस दिन उन विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोक जाता है॥ ३४-३५॥

जो व्यक्ति कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गायोंके दानका फल निश्चितरूपसे प्राप्त करता है॥ ३६॥

इस नामाष्टकस्तोत्रके श्रवणमात्रसे पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त हो जाता है, भार्याहीनको भार्या मिल जाती है, बन्धुविहीनको बन्धुओंकी प्राप्ति हो जाती है, रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य निर्भय हो जाता है और पापी पापसे छूट जाता है॥ ३७-३८॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपको तुलसी-स्तोत्र बतला दिया। अब उनका ध्यान तथा पूजाविधि सुनिये। आप भी तो वेदमें कण्वशाखाके अन्तर्गत प्रतिपादित इनके ध्यानके विषयमें जानते ही हैं॥ ३९॥

तुलसीका ध्यान पापोंका नाश करनेवाला है, अतः उनका ध्यान करके बिना आवाहन किये ही तुलसीके वृक्षमें विविध पूजनोपचारोंसे पुष्पोंकी सारभूता, पवित्र, अत्यन्त मनोहर और किये गये पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान साध्वी तुलसीकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिये॥ ४०-४१॥

पुष्पोंमें किसीसे भी जिनकी तुलना नहीं है, जिनका महत्त्व वेदोंमें वर्णित है, जो सभी अवस्थाओंमें सदा पवित्र बनी रहती हैं, जो तुलसी नामसे प्रसिद्ध हैं, जो भगवान्‌के

लिये शिरोधार्य हैं, सबकी अभीष्ट हैं तथा जो सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र करनेवाली हैं; उन जीवन्मुक्त, मुक्तिदायिनी तथा श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ॥ ४२-४३॥

[हे नारद!] विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस प्रकारसे देवी तुलसीका ध्यान, पूजन तथा स्तवन करके उन्हें प्रणाम करे। मैंने आपसे तुलसीके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं॥ ४४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'तुलसीपूजाविधिवर्णन' नामक पचीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

सावित्रीदेवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारदजी बोले—तुलसीकी यह अमृततुल्य कथा तो मैंने सुन ली, अब आप सावित्रीकी कथा कहनेकी कृपा कीजिये। ऐसा सुना गया है कि वे सावित्री वेदोंकी जननी हैं। वे सर्वप्रथम किससे उत्पन्न हुईं, जगत्‌में सर्वप्रथम इनकी पूजा किसने की और बादमें किन लोगोंने इनकी पूजा की?॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदमाता सावित्रीकी पूजा की, इसके बाद वेदोंने और तदनन्तर विद्वद्‌गणोंने इनका पूजन किया। तत्पश्चात् भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने इनका पूजन किया और इसके बाद चारों वर्णके लोग इनकी पूजा करने लगे॥ ३-४॥

नारद बोले—हे ब्रह्मन्! वे अश्वपति कौन थे, सर्वप्रथम उन्होंने सर्वपूज्या उन देवीकी पूजा किस कामनासे की तथा बादमें किन लोगोंने उनका पूजन किया?॥ ५॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! मद्रदेशमें अश्वपति नामक एक महान् राजा हुए। वे अपने शत्रुओंके बलका नाश करनेवाले तथा मित्रोंका दुःख दूर करनेवाले थे॥ ६॥

उनकी महारानी मालती नामसे विख्यात थीं। वे रानी धर्मनिष्ठ थीं। वे उनके लिये उसी प्रकार थीं, जैसे गदाधारी विष्णुके लिये लक्ष्मी॥ ७॥

हे नारद! वे रानी मालती निःसन्तान थीं। अतः उन्होंने वसिष्ठके उपदेशानुसार भगवती सावित्रीकी भक्तिपूर्वक आराधना की। किंतु रानीको देवीसे न तो कोई संकेत मिला और न उनके दर्शन ही हुए, अतः कष्टसे व्याकुल होकर दुःखित मनसे वे घर चली गयीं॥ ८-९॥

राजा अश्वपतिने उन्हें दुःखित देखकर नीतिपूर्ण वचनोंसे समझाया। इसके बाद भक्तिपूर्वक सावित्रीकी तपस्याके लिये वे पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँपर उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके सौ वर्षतक तपस्या की। उन्हें सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। हे नारद! उन नृपेन्द्रने यह अशरीरी आकाशवाणी सुनी—[हे राजेन्द्र!] तुम गायत्रीका दस लाख जप करो॥ १०—१२॥

इसी बीच वहाँ मुनि पराशर आ गये। राजाने उन्हें प्रणाम किया। तदनन्तर मुनि राजासे कहने लगे॥ १३॥

मुनि बोले—एक बारका गायत्री-जप दिनभरके पापका नाश कर देता है। दस बार गायत्री-जप करनेसे दिन और रातका पाप नष्ट हो जाता है। गायत्रीका सौ बारका जप महीनेभरके संचित पापको हर लेता है और एक हजार बारका जप वर्षभरके संचित पापका नाश कर देता है। गायत्रीका एक लाख जप इस जन्मके किये गये पापों तथा दस लाख जप अन्य जन्मोंमें किये गये पापोंको नष्ट कर देता है। गायत्रीके एक करोड़ जपसे सभी जन्मोंमें किये गये पाप भस्म हो जाते हैं और इससे भी दस गुना जप विप्रोंकी मुक्ति कर देता है॥ १४—१६$^{1}/_{2}$॥

द्विजको चाहिये कि हाथको सर्पके फणके आकारका बनाकर अँगुलियोंको परस्पर पूर्णरूपसे सटाकर छिद्ररहित कर ले फिर हाथको नाभिस्थानसे ऊपरकी ओर हृदयदेशतक लाकर कुछ नीचेकी ओर झुकाये हुए उसे स्थिर करके स्वयं पूरबकी ओर मुख करके जप करे। अनामिकाके मध्य

भागसे नीचेकी ओर होते हुए प्रदक्षिण क्रमसे तर्जनीके मूलतक जाना चाहिये, करमालाके जपका यही नियम है॥ १७-१८½॥

हे राजन्! श्वेतकमलके बीजों अथवा स्फटिक-मणिकी पवित्र माला बनाकर तीर्थमें या किसी देवालयमें जप करना चाहिये। पीपलके पत्र अथवा कमलपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे, फिर गायत्री मन्त्रका उच्चारण करके विद्वान् पुरुष मालाको स्नान कराये। तत्पश्चात् उसी मालासे विधिपूर्वक गायत्री-मन्त्रका सौ बार जप करना चाहिये अथवा पंचगव्य या गंगाजलसे स्नान कराकर शुद्ध की हुई मालासे भी जप किया जा सकता है॥ १९—२२॥

हे राजर्षे! इस क्रमसे आप दस लाख गायत्रीका जप कीजिये। इससे आपके तीन जन्मोंके पापोंका नाश हो जायगा और आप भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन प्राप्त करेंगे॥ २३॥

हे राजन्! आप पवित्र होकर प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकालकी सन्ध्या सदा कीजिये। सन्ध्या न करनेवाला व्यक्ति अपवित्र रहता है और वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य हो जाता है। वह दिनमें जो भी सत्कर्म करता है, उसके फलका अधिकारी नहीं रह जाता है॥ २४-२५॥

जो ब्राह्मण प्रातः एवं सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह शूद्रके समान है और समस्त ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देनेयोग्य है॥ २६॥

जो विप्र जीवनपर्यन्त सदा त्रिकालसन्ध्या करता है, वह तपस्या तथा तेजके कारण सूर्यके समान हो जाता है। उसके चरण-कमलकी धूलसे पृथ्वी शीघ्र पवित्र हो जाती है। जो द्विज सन्ध्या करनेके कारण पवित्र हो चुका है, वह तेजसे सम्पन्न तथा जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सभी तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और उसके पाससे पाप उसी प्रकार भाग जाते हैं, जैसे गरुडको देखते ही सर्प॥ २७—२९॥

जो द्विज त्रिकालसन्ध्या नहीं करता, उसके द्वारा सम्पादित पूजाको देवगण तथा पिण्ड-तर्पणको पितृगण स्वेच्छापूर्वक स्वीकार नहीं करते हैं॥ ३०॥

जो व्यक्ति मूलप्रकृतिकी भक्ति नहीं करता, उनके मन्त्रकी आराधना नहीं करता और उनका उत्सव नहीं मनाता; वह विषहीन सर्पकी तरह तेजरहित होता है॥ ३१॥

जो द्विज विष्णुके मन्त्रसे विहीन है, त्रिकालसन्ध्यासे रहित है और एकादशी व्रतसे वंचित है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३२॥

जो ब्राह्मण भगवान् श्रीहरिको अर्पण किया गया नैवेद्य प्रसादरूपमें ग्रहण नहीं करता, धोबीका काम करता है, बैलपर बोझा ढोनेका काम करता है, शूद्रोंका अन्न खाता है; वह विषहीन सर्पके समान है॥ ३३॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका शव जलाता है, शूद्र स्त्रीका पति बनता है और शूद्रोंके लिये भोजन तैयार करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति निस्तेज होता है॥ ३४॥

जो द्विज शूद्रोंसे दान लेता है, शूद्रोंका यज्ञ कराता है, मुनीमीका काम करता है और तलवार लेकर पहरेदारी करके जीविकोपार्जन करता है; वह विषहीन सर्पकी भाँति तेजशून्य होता है॥ ३५॥

जो ब्राह्मण कन्या-विक्रय करता है, भगवान्का नाम बेचता है, पति तथा पुत्रसे हीन और ऋतुस्नाता स्त्रीके यहाँ भोजन करता है, स्त्रियोंके व्यभिचारसे अपनी आजीविका चलाता है और सूदखोर होता है; वह विषहीन सर्पके समान तेजरहित होता है। जो द्विज विद्याका विक्रय करता है, वह भी विषहीन सर्पके सदृश होता है। जो ब्राह्मण सूर्योदय हो जानेके बाद सोता रहता है, भोजनमें मछली ग्रहण करता है और भगवतीकी पूजासे वंचित है; वह विषहीन सर्पके समान निस्तेज है॥ ३६—३८॥

हे मुने! ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि आवश्यक प्रयोग बतला दिये। महाराज अश्वपतिको सम्पूर्ण उपदेश देकर मुनि अपने आश्रम चले गये। तत्पश्चात् राजाने भगवती सावित्रीकी विधिवत् उपासना करके उनके दर्शन प्राप्त किये तथा उन्हें अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया॥ ३९-४०॥

नारदजी बोले—उन मुनि पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीके किस ध्यान, पूजा-विधान, स्तोत्र तथा मन्त्रका

उपदेश देकर प्रस्थान किया था? साथ ही राजाने किस विधानसे वेदमाता सावित्रीकी भलीभाँति पूजा की और इस प्रकार उनकी विधिवत् पूजा करके उन्होंने कौन-सा वर प्राप्त किया? [हे प्रभो!] सावित्रीका वह परम महिमामय, अत्यन्त रहस्ययुक्त और वेदप्रमाणित सम्पूर्ण प्रसंग संक्षेपमें सुनना चाहता हूँ॥ ४१—४३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] ज्येष्ठमासके कृष्णपक्षकी त्रयोदशीतिथिको संयमपूर्वक रहकर व्रतीको चतुर्दशीतिथिमें व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिपूर्वक सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये॥ ४४॥

यह व्रत चौदह वर्षका है। इसमें चौदह फलसहित चौदह प्रकारके नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प, धूप, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवद्य अर्पण करना चाहिये। एक मंगल-कलश स्थापित करके उसपर पल्लव रख दे। तत्पश्चात् गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वतीकी सम्यक् पूजा करके द्विजको आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ४५—४७॥

माध्यन्दिनी शाखामें भगवती सावित्रीका जो ध्यान, स्तोत्र, पूजा-विधान तथा सर्वकामप्रद मन्त्र प्रतिपादित किया गया है, उसे आप सुनिये॥ ४८॥

ध्यान इस प्रकार है—'भगवती सावित्रीका वर्ण तप्त सुवर्णकी प्रभाके समान है, ये ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान हैं, ये ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी सम्मिलित प्रभासे सम्पन्न हैं, इनका मुखमण्डल प्रसन्नता तथा मुसकानसे युक्त है, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, अग्निके समान विशुद्ध वस्त्र इन्होंने धारण कर रखा है, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने यह विग्रह धारण किया है, ये सुख प्रदान करनेवाली हैं, मुक्ति देनेवाली हैं, ये शान्त स्वभाववाली हैं, जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजीकी प्रिया हैं, ये सर्वसम्पत्तिस्वरूपिणी हैं, सभी प्रकारकी सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली हैं, वेदकी अधिष्ठात्री देवी हैं तथा समस्त वेद-शास्त्र इन्हींके स्वरूप हैं—ऐसी उन वेदबीजस्वरूपा वेदमाता सावित्रीकी मैं उपासना करता हूँ।' इस ध्यानके द्वारा देवी सावित्रीका ध्यान करके नैवेद्य अर्पण करना चाहिये, तदनन्तर हाथोंको सिरसे लगाकर पुनः ध्यान करके भक्तिपूर्वक व्रतीको कलशपर देवी सावित्रीका आवाहन करना चाहिये॥ ४९—५३॥

तदनन्तर वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पण करके विधिपूर्वक महादेवी सावित्रीकी पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करना चाहिये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये ही देनेयोग्य सोलह उपचार हैं (इनके निम्न मन्त्र हैं)॥ ५४—५६॥

[आसन—] हे देवि! श्रेष्ठ काष्ठसे निर्मित अथवा स्वर्णनिर्मित यह देवताओंका आधारस्वरूप पुण्यप्रद आसन मैंने आपको श्रद्धापूर्वक निवेदित किया है॥ ५७॥

[पाद्य—] परम प्रीति उत्पन्न करनेवाला, पुण्यप्रद तथा पूजाका अंगभूत यह पवित्र तीर्थजल मेरे द्वारा आपको पाद्यरूपमें अर्पित किया गया है॥ ५८॥

[अर्घ्य—] दूर्वा, पुष्प, तुलसी तथा शंखजलसे समन्वित यह पवित्र तथा पुण्यदायक अर्घ्य मैंने आपको अर्पण किया है॥ ५९॥

[स्नान—] चन्दन मिलाकर सुगन्धित किया गया जल तथा सुगन्ध फैलानेवाला यह तैल आपको स्नानहेतु भक्तिपूर्वक निवेदित किया है, आप इसे स्वीकार करें॥ ६०॥

[अनुलेपन—] हे अम्बिके! सुगन्धित द्रव्योंसे निर्मित, दिव्य गन्ध प्रदान करनेवाला तथा चन्दनजलसे मिश्रित यह पवित्र तथा प्रीतिदायक अनुलेपन मैंने आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है॥ ६१॥

[धूप—] हे परमेश्वरि! समस्त मंगल प्रदान करनेवाला, पुण्यदायक, सुगन्धयुक्त, सुखदायक तथा सर्वमंगलरूप यह उत्तम धूप मैंने आपको अर्पण किया है, आप ग्रहण करें॥ ६२१/२॥

[दीप—] अन्धकारके नाशके बीजस्वरूप, प्रकाश फैलानेवाला यह दीपक मैंने आपको जगत्‌के दर्शनार्थ अर्पित किया है॥ ६३१/२॥

[नैवेद्य—] सन्तुष्टि, पुष्टि, प्रीति तथा पुण्य प्रदान करनेवाले एवं भूख शान्त करनेवाले इस स्वादिष्ट नैवेद्यको

आप स्वीकार करें॥ ६४½ ॥

[ताम्बूल—] कर्पूर आदिसे सुवासित, तुष्टिदायक, पुष्टिप्रद तथा रम्य यह उत्तम ताम्बूल मैंने आपको निवेदित किया है॥ ६५½ ॥

[शीतल जल—] प्यासका शमन करनेवाले, जगत्‌के जीवन तथा प्राणरूप इस परम शीतल जलको आप स्वीकार करें॥ ६६½ ॥

[वस्त्र—] कपास तथा रेशमसे निर्मित, देहके शोभास्वरूप तथा सभाओंमें सौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले इस वस्त्रको आप स्वीकार करें॥ ६७½ ॥

[आभूषण—] सुवर्ण आदिसे निर्मित, प्रभायुक्त, सदा शोभा बढ़ानेवाले, सुखदायक तथा पुण्यप्रद इस रत्नमय आभूषणको आप स्वीकार करें॥ ६८½ ॥

[फल—] अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न, विविध रूपोंवाले, फलस्वरूप तथा फल प्रदान करनेवाले इस फलको आप स्वीकार करें॥ ६९½ ॥

[पुष्पमाला—] सभी मंगलोंका मंगल करनेवाली, सर्वमंगलरूपा, अनेक प्रकारके पुष्पोंसे विनिर्मित, परम शोभासे सम्पन्न, प्रीतिदायिनी तथा पुण्यमयी इस मालाको आप स्वीकार करें॥ ७०-७१ ॥

[सिन्दूर—] हे देवि! पुण्यप्रद तथा सुगन्धपूर्ण इस गन्धको आप स्वीकार करें। ललाटकी शोभा बढ़ानेवाले, भूषणोंमें परम श्रेष्ठ तथा अत्यन्त मनोहर इस सिन्दूरको आप स्वीकार करें॥ ७२½ ॥

[यज्ञोपवीत—] पवित्र सूत्रोंसे निर्मित, विशुद्ध, ग्रन्थि (गाँठ)-से युक्त तथा वैदिक मन्त्रोंसे शुद्ध किये गये इस यज्ञोपवीतको आप स्वीकार करें॥ ७३½ ॥

[हे नारद!] विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए इन द्रव्योंको भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र-पाठ करे और इसके बाद व्रती ब्राह्मणको भक्तिपूर्वक दक्षिणा प्रदान करे। 'सावित्री'—इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके अन्तमें स्वाहा तथा उसके पूर्वमें लक्ष्मी, माया और कामबीजोंको लगानेसे **'श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा'**—यह अष्टाक्षर मन्त्र कहा गया है। माध्यन्दिनीशाखामें वर्णित, सभी कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले तथा विप्रोंके जीवनस्वरूप सावित्री-स्तोत्रको आपके सामने व्यक्त करता हूँ—इसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ७४—७६½ ॥

हे नारद! प्राचीन कालकी बात है—गोलोकमें विराजमान श्रीकृष्णने सावित्रीको ब्रह्माके पास जानेकी आज्ञा दी, किंतु वे सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको तैयार नहीं हुईं। तब कृष्णके कहनेपर ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीका स्तवन करने लगे। तदनन्तर उन सावित्रीने परम प्रसन्न होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया॥ ७७-७८½ ॥

ब्रह्माजी बोले—सच्चिदानन्द विग्रहवाली, मूलप्रकृति-स्वरूपिणी तथा हिरण्यगर्भरूपवाली हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। परम तेजमय विग्रहवाली, परमानन्दस्वरूपिणी तथा द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। नित्या, नित्यप्रिया, नित्यानन्दस्वरूपिणी तथा सर्वमंगलमयी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। ब्राह्मणोंकी सर्वस्वरूपिणी, मन्त्रोंकी सारभूता, परात्परा, सुख प्रदान करनेवाली तथा मोक्षदायिनी हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। विप्रोंके पापरूपी ईंधनको दग्ध करनेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तथा ब्रह्मतेज प्रदान करनेवाली हे देवि! हे सुन्दरि! आप मुझपर प्रसन्न हों। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी पाप करता है, वह सब आपके स्मरणमात्रसे जलकर भस्म हो जायगा॥ ७९—८४½ ॥

इस प्रकार स्तुति करके जगत्‌की रचना करनेवाले ब्रह्माजी वहींपर सभा-भवनमें विराजमान हो गये। तब वे सावित्री ब्रह्माजीके साथ ब्रह्मलोकके लिये प्रस्थित हो गयीं॥ ८५½ ॥

[हे मुने!] इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति करके उनका दर्शन किया और उनसे मनोभिलषित वर भी प्राप्त किया। जो मनुष्य सन्ध्या करके इस स्तोत्रराजका पाठ करता है, वह उस फलको प्राप्त कर लेता है, जो चारों वेदोंका पाठ करनेसे मिलता है॥ ८६-८७ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'सावित्रीपूजाविधिकथन' नामक छब्बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

भगवती सावित्रीकी उपासनासे राजा अश्वपतिको सावित्री नामक कन्याकी प्राप्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

श्रीनारायण बोले—हे नारद! राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनकी स्तुति करनेके अनन्तर उसी स्थानपर हजारों सूर्योंके समान तेजसे सम्पन्न उन देवीके दर्शन किये॥ १॥

अपने प्रभामण्डलसे दिशाओंको आलोकित करती हुई प्रसन्नवदना भगवतीने मुसकराते हुए इस प्रकार राजाको सम्बोधित किया, जैसे माता अपने पुत्रको कहती है॥ २॥

सावित्री बोलीं—हे महाराज! मैं जानती हूँ कि आपके मनमें क्या कामना है और आपकी पत्नी क्या चाहती है, मैं निश्चितरूपसे वह सब प्रदान करूँगी॥ ३॥

आपकी साध्वी पत्नी कन्याकी कामना करती है और आप पुत्रकी इच्छा रखते हैं, ये दोनों ही अभिलाषाएँ क्रमसे पूर्ण होंगी॥ ४॥

ऐसा कहकर वे भगवती सावित्री ब्रह्मलोक चली गयीं और राजा अश्वपति अपने घर लौट गये। उन्हें समयपर पहले कन्या उत्पन्न हुई। भगवती सावित्रीकी आराधनाके प्रभावसे श्रेष्ठ देवी कमला ही पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई थीं। राजा अश्वपतिने उस कन्याका नाम 'सावित्री' रखा॥ ५-६॥

वह कन्या शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान दिनोंदिन बढ़ने लगी और यथासमय रूप तथा यौवनसे सम्पन्न हो गयी॥ ७॥

उसने द्युमत्सेनके सत्यनिष्ठ तथा अनेक गुणोंसे युक्त पुत्र सत्यवान्‌का पतिरूपमें वरण किया। तब राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत उस कन्याको उन्हें समर्पित कर दिया। सत्यवान् भी बड़े हर्षके साथ उस कन्याको लेकर अपने घर चले गये॥ ८-९॥

एक वर्ष बीतनेके पश्चात् वे सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल तथा लकड़ी लानेके लिये वनमें गये॥ १०॥

साध्वी सावित्री भी उनके पीछे-पीछे गयी। दैवयोगसे सत्यवान् वृक्षसे गिर पड़े और उनके प्राण निकल गये॥ ११॥

हे मुने! सत्यवान्‌को मृत देखकर जब यमराजने उनके अंगुष्ठ-प्रमाण सूक्ष्म शरीरको साथ लेकर प्रस्थान किया, तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे जाने लगी॥ १२॥

संयमनीपुरीके स्वामी और साधुओंमें परम श्रेष्ठ धर्मराज सुन्दर दाँतोंवाली उस सावित्रीको अपने पीछे-पीछे



आते देखकर मधुर वाणीमें उससे कहने लगे॥ १३॥

धर्मराज बोले—हे सावित्रि! तुम यह मानव-शरीर धारण किये कहाँ जा रही हो? यदि तुम अपने पतिके साथ जानेकी इच्छा रखती हो, तो पहले इस शरीरका त्याग करो॥ १४॥

विनाशशील मनुष्य अपने इस नश्वर तथा पांचभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोक कभी नहीं जा सकता है॥ १५॥

हे साध्वि! भारतवर्षमें आये हुए तुम्हारे पतिकी आयु अब पूर्ण हो चुकी है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये अब यह सत्यवान् मेरे लोकमें जा रहा है॥ १६॥

प्राणी कर्मके अनुसार ही जन्म प्राप्त करता है और कर्मानुसार ही मृत्युको भी प्राप्त होता है। सुख-दुःख, भय और शोक भी कर्मसे ही मिलते रहते हैं। जीव

अपने कर्मके प्रभावसे इन्द्र हो सकता है, वह अपने कर्मसे ब्रह्मपुत्र बन सकता है और अपने कर्मके द्वारा वह हरिका दास बनकर जन्म-मरणके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मनुष्य अपने कर्मके प्रभावसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ, अमरत्व और भगवान् विष्णुके सालोक्य आदि चार प्रकारके मोक्षपद निश्चितरूपसे प्राप्त कर सकता है॥ १७—१९॥

मनुष्यको अपने कर्मके द्वारा देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव तथा गणेशतकका पद सुलभ हो जाता है। उसी प्रकार अपने कर्मके प्रभावसे ही मनुष्य श्रेष्ठ मुनि, तपस्वी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा म्लेच्छ बन जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। अपने कर्मानुसार ही प्राणीको जंगम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, वनके प्राणी, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीट, दैत्य, दानव तथा असुर आदि योनियाँ प्राप्त होती हैं। सावित्रीसे ऐसा कहकर वे यमराज चुप हो गये॥ २०—२५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'सावित्री-उपाख्यानमें यम-सावित्री-संवादका वर्णन' नामक सत्ताईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

सावित्री-यमराज-संवाद

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] यमराजकी बात सुनकर पतिव्रता तथा दृढ़ निश्चयवाली सावित्रीने परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की और वह उनसे कहने लगी॥ १॥

सावित्री बोली—कर्म क्या है, वह किससे होता है और उसका हेतु कौन है? देही कौन है, देह कौन है और इस लोकमें प्राणियोंसे कौन कर्म कराता है? ज्ञान क्या है, बुद्धि क्या है और शरीरधारियोंका प्राण क्या है? इन्द्रियाँ क्या हैं तथा उनके कौन-कौन-से लक्षण हैं और देवता कौन हैं, भोग करनेवाला कौन है, भोग करानेवाला कौन है, भोग क्या है, निष्कृति क्या है, जीव कौन है तथा परमात्मा कौन हैं?—यह सब आप मुझे कृपा करके बताइये॥ २—४॥

धर्म बोले—वेदमें जो भी प्रतिपादित है, वह धर्म है, और वही कर्म परम मंगलकारी कर्म है। इसके विपरीत जो कर्म अवैदिक होता है, वह निश्चितरूपसे अशुभ होता है॥ ५॥

देवताओंकी संकल्परहित तथा अहैतुकी सेवा कर्म-निर्मूलरूपा कही जाती है। यही सेवा पराभक्ति प्रदान करनेवाली होती है॥ ६॥

कर्मफलका भोक्ता कौन है और कौन निर्लिप्त है? इसके उत्तरमें श्रुतिका वचन है कि जो मनुष्य ब्रह्मकी भक्ति करता है, वही मुक्त है और वह जन्म-मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा भय—इन सबसे रहित हो जाता है॥ ७१/२॥

हे साध्वि! श्रुतिमें दो प्रकारकी सर्वमान्य भक्ति बतायी गयी है। पहली भक्ति निर्वाण पद प्रदान करती है और दूसरे प्रकारकी भक्ति मनुष्योंको साक्षात् श्रीहरिका रूप प्रदान करती है। वैष्णवजन श्रीहरिका सारूप्य प्रदान करनेवाली भक्तिकी कामना करते हैं और अन्य ब्रह्मवेत्ता योगी निर्वाणपद देनेवाली भक्ति चाहते हैं॥ ८-९१/२॥

कर्मका जो बीजरूप है, वह उसका सदा फल प्रदान करनेवाला है। कर्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि तथा परा प्रकृतिका ही रूप है। वे परमात्मा ही कर्मके कारणरूप हैं, यह शरीर तो सदासे नश्वर है॥ १०-११॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये सूत्ररूप पंच महाभूत हैं, जो परमात्माके सृष्टिप्रकरणमें प्रयुक्त होते हैं॥ १२॥

कर्म करनेवाला जीव देही है और वही अन्तर्यामी रूपसे भोजयिता भी है। सुख और दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवको ही भोग कहते हैं और इससे छूटनेको ही 'निष्कृति' (मोक्ष) कहा गया है॥ १३॥

सत् तथा असत्में भेद करनेका जो प्रधान बीजरूप

हेतु है, वही ज्ञान है और वह ज्ञान अनेक भेदोंवाला होता है। वह ज्ञान घट-पट आदि विषयोंके भेदका कारण कहा गया है ॥ १४ ॥

विवेचनमयी शक्ति ही बुद्धि है। वह श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे विख्यात है। वायुके विभिन्न रूप प्राण हैं। ये देहधारियोंके लिये बलस्वरूप हैं ॥ १५ ॥

जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, ईश्वरका अंशरूप, अतर्क्य, कर्मोंका प्रेरक, देहधारियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका भेदक है; उसीको मन कहा गया है ॥ १६१/२ ॥

आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा—ये कर्मेन्द्रियाँ प्राणियोंके अंगरूप, सभी कर्मोंकी प्रेरक, शत्रुरूप, मित्ररूप, [सत्कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] सुख देनेवाली तथा [बुरे कार्यमें प्रवृत्त होनेपर] दुःख देनेवाली हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी, ब्रह्मा आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं ॥ १७-१८१/२ ॥

जो प्राण तथा देहको धारण करता है, उसे जीव कहा गया है। प्रकृतिसे परे तथा कारणका भी कारण जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म है, वही परमात्मा कहा जाता है। [हे सावित्रि!] इस प्रकार तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने तुम्हें शास्त्रानुसार बतला दिया। यह प्रसंग ज्ञानियोंके लिये ज्ञानरूप है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक चली जाओ ॥ १९—२१ ॥

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] मैं अपने इन प्राणनाथ तथा ज्ञानके सागरस्वरूप आपको छोड़कर कहाँ जाऊँ? इस समय मैं आपसे जो-जो प्रश्न कर रही हूँ, उन्हें आप मुझे बताइये ॥ २२ ॥

हे पितः! किस-किस कर्मके प्रभावसे जीव किस-किस योनिमें जाता है, वह किस कर्मसे स्वर्ग तथा किस कर्मसे नरकमें जाता है? ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन्! किस कर्मसे मुक्ति होती है तथा किस कर्मसे गुरुके प्रति भक्ति होती है? उसी तरह किन-किन कर्मोंके प्रभावसे प्राणी योगी, रोगी, दीर्घजीवी, अल्पायु, दुःखी, सुखी, अंगहीन, काना, बहरा, अन्धा, पंगु, उन्मादी, पागल, अत्यन्त लोभी अथवा चोर हो जाता है? किस कर्मके द्वारा मनुष्य सिद्धि, सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियाँ, ब्राह्मणत्व, तपस्विता, स्वर्गके भोग आदि, वैकुण्ठ और सर्वोत्तम तथा विशुद्ध गोलोक प्राप्त करता है? ॥ २४—२८१/२ ॥

कितने प्रकारके नरक हैं, उनकी संख्या कितनी है, उनके नाम क्या-क्या हैं? कौन प्राणी किस नरकमें जाता है और वहाँ कितने समयतक निवास करता है? किस कर्मके प्रभावसे पापी मनुष्योंको कौन-सी व्याधि होती है? [हे प्रभो!] मैंने अपनी जो-जो प्रिय बात आपसे पूछी है, उसे कृपा करके मुझे बताइये ॥ २९-३० ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादके सावित्री-उपाख्यानमें यम-सावित्री-संवादवर्णन' नामक अट्ठाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २८ ॥

उनतीसवाँ अध्याय

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर और धर्मराजद्वारा सावित्रीको वरदान

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर यमराज आश्चर्यमें पड़ गये और हँसकर उन्होंने प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बताना आरम्भ किया ॥ १ ॥

धर्म बोले—हे वत्से! इस समय तुम्हारी अवस्था तो मात्र बारह वर्षकी है, किंतु तुम्हारा ज्ञान बड़े-बड़े विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर है ॥ २ ॥

हे पुत्रि! तुम भगवती सावित्रीके वरदानसे उन्हींकी कलासे जन्म लेकर सती सावित्री नामसे विख्यात हो। प्राचीन कालमें राजा अश्वपतिने अपनी की गयी तपस्याके द्वारा उन्हीं सावित्रीके सदृश तुम्हें कन्यारूपमें प्राप्त किया है ॥ ३ ॥

जिस प्रकार लक्ष्मी विष्णुकी गोदमें तथा भवानी भगवान् शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान रहती हैं एवं जैसे अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची महेन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके,

रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, सन्ध्या सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास उनकी सौभाग्यवती प्रिया बनकर सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार हे प्रिये! तुम भी सत्यवान्‌की सौभाग्यवती प्रियाके रूपमें सुशोभित होओ। यह वर मैंने तुम्हें प्रदान कर दिया। हे देवि! हे महाभागे! इसके अतिरिक्त और भी जो दूसरा वर तुम्हें अभीष्ट हो, उसे माँग लो; मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर प्रदान करूँगा॥ ४—८॥

सावित्री बोली—हे महाभाग! सत्यवान्‌से मुझे सौ औरस पुत्र प्राप्त हों, यह मेरा अभीष्ट वर है। मेरे पिताके भी सौ पुत्र हों, मेरे श्वसुरको नेत्र-ज्योति मिल जाय और उन्हें राज्य भी प्राप्त हो जाय—यह मेरा अभिलषित वर है। हे जगत्प्रभो! अन्तमें एक लाख वर्ष बीतनेके पश्चात् मैं सत्यवान्‌के साथ भगवान् श्रीहरिके धाम चली जाऊँ—यह वर भी आप मुझे दीजिये॥ ९—११॥

जीवके कर्मोंका फल तथा संसारसे उसके उद्धारका उपाय सुननेके लिये मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है, अतः वह सब मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ १२॥

धर्मराज बोले—हे महासाध्वि! तुम्हारे सभी मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं जीवोंके कर्मफलके विषयमें बता रहा हूँ, तुम ध्यानपूर्वक सुनो॥ १३॥

पुण्यभूमि भारतवर्षमें ही शुभ और अशुभ कर्मोंकी उत्पत्ति होती है, अन्यत्र नहीं। दूसरी जगह लोग केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। हे पतिव्रते! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व और राक्षसादि ये ही शुभाशुभ कर्म करनेवाले हैं, दूसरे पशु आदि प्राणी नहीं। देवादि विशिष्ट प्राणी ही सभी योनियोंका फल भोगते हैं, सभी योनियोंमें भटकते हैं और शुभाशुभ कर्मोंका फल स्वर्ग तथा नरकमें भोगते हैं॥ १४—१६॥

वे विशिष्ट प्राणी समस्त योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं और पूर्वजन्ममें अर्जित किये गये शुभ तथा अशुभ कर्मोंका फल भोगते रहते हैं। शुभ कर्मके प्रभावसे प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें जाते हैं तथा अशुभ कर्मके कारण वे विभिन्न नरकोंमें पड़ते हैं॥ १७-१८॥

कर्मके निःशेष हो जानेपर भक्ति उत्पन्न होती है। हे साध्वि! वह भक्ति दो प्रकारकी बतलायी गयी है। एक निर्वाणस्वरूपा भक्ति है और दूसरी ब्रह्मरूपिणी भगवती प्रकृतिके लिये की जानेवाली भक्ति है॥ १९॥

प्राणी पूर्वजन्ममें किये गये कुकर्मके कारण रोगी और शुभ कर्मके कारण रोगरहित होता है। इस प्रकार अपने कर्मसे ही जीव दीर्घजीवी, अल्प आयुवाला, सुखी तथा दुःखी होता है। प्राणी अपने कुत्सित कर्मके प्रभावसे नेत्रहीन तथा अंगहीन होता है। सर्वोत्कृष्ट कर्मके द्वारा प्राणी अपने दूसरे जन्ममें सिद्धि आदि भी प्राप्त कर लेता है॥ २०-२१॥

हे देवि! साधारण बात कह चुका, अब विशेष बात सुनो। हे सुन्दरि! यह अत्यन्त दुर्लभ विषय पुराणों और स्मृतियोंमें वर्णित है। इसे पूर्णरूपसे गुप्त रखना चाहिये॥ २२॥

भारतवर्षमें समस्त योनियोंमें मानवयोनि परम दुर्लभ है। सभी मनुष्योंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। वह सम्पूर्ण कर्मोंमें प्रशस्त माना गया है। हे साध्वि! उनमें ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण भारतवर्षमें अधिक गरिमामय माना जाता है। हे साध्वि! सकाम तथा निष्काम भेदसे ब्राह्मण दो प्रकारके होते हैं। सकाम होनेसे वह कर्मप्रधान होता है। निष्काम केवल भक्त होता है। सकाम कर्मफल भोगता है और निष्काम समस्त सुखासुख भोगोंके उपद्रवोंसे रहित रहता है। हे साध्वि! वह शरीर त्यागकर भगवान्‌का जो निरामय धाम है, उसे प्राप्त करता है और हे साध्वि! उन निष्काम जनोंको पुनः इस लोकमें नहीं आना पड़ता। वे द्विभुज परमात्मा श्रीकृष्णकी उपासना करते हैं और अन्तमें वे भक्त दिव्यरूप धारणकर गोलोकको प्राप्त होते हैं॥ २३—२७॥

सकाम वैष्णव वैकुण्ठधाममें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं और यहाँपर द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे सभी कुछ समय बीतनेपर क्रमशः निष्काम भक्त बन जाते हैं और मैं उन्हें अपनी निर्मल भक्ति प्रदान कर देता हूँ; यह सर्वथा निश्चित है। जो सकाम ब्राह्मण तथा वैष्णवजन हैं, अनेक जन्मोंमें भी विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण उनकी बुद्धि निर्मल नहीं हो पाती॥ २८—३०॥

हे साध्वि! जो द्विज तीर्थोंमें रहकर सदा तपस्यामें संलग्न रहते हैं, वे ब्रह्मलोक जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें आते हैं॥ ३१॥

जो तीर्थोंमें अथवा कहीं अन्यत्र रहकर सदा अपने

ही धर्म-कर्ममें लगे रहते हैं, वे सत्यलोक पहुँचते हैं और पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३२॥

जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न रहकर भारतवर्षमें सूर्यकी उपासना करते हैं, वे सूर्यलोक जाते हैं और समयानुसार लौटकर पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३३॥

जो धर्मपरायण तथा निष्काम मानव मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी भक्ति करते हैं, वे मणिद्वीप लोकमें जाते हैं और फिर वहाँसे लौटकर नहीं आते॥ ३४॥

जो अपने धर्मोंमें संलग्न रहते हुए शिव, शक्ति और गणपतिकी उपासना करते हैं; वे शिवलोक जाते हैं और कुछ समय पश्चात् वहाँसे पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं॥ ३५॥

हे साध्वि! जो ब्राह्मण अपने धर्ममें निरत रहकर अन्य देवताओंकी उपासना करते हैं, वे विभिन्न लोकोंमें जाते हैं और समयानुसार पुनः भारतवर्षमें जन्म लेते हैं॥ ३६॥

जो द्विज अपने धर्ममें संलग्न रहते हुए निष्काम भावसे भगवान् श्रीहरिकी भक्ति करते हैं, वे उस भक्तिके प्रभावसे क्रमसे श्रीहरिके लोकको प्राप्त होते हैं॥ ३७॥

जो विप्र सदा अपने धर्मसे विमुख, आचारहीन, कामलोलुप तथा देवाराधनसे रहित हैं, वे अवश्य ही नरकमें पड़ते हैं॥ ३८॥

चारों वर्णोंके लोग अपने-अपने धर्ममें संलग्न रहकर ही शुभ कर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं॥ ३९॥

जो अपने कर्तव्यसे विमुख हैं, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं और अपने कर्मका फल भोगते हैं। वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतः चारों वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्मका पालन करना चाहिये॥ ४०१/२॥

हे साध्वि! अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाले जो ब्राह्मण अपने धर्ममें संलग्न ब्राह्मणको अपनी कन्या प्रदान करते हैं, वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और वहाँपर चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। कन्याको अलंकारोंसे विभूषित करके दान करनेसे दुगुना फल कहा जाता है। सकाम भावसे दान करनेवाले उसी चन्द्रलोकमें जाते हैं, किंतु निष्काम भावसे दान करनेवाले साधुपुरुष वहाँ नहीं जाते, फलकी इच्छासे रहित वे विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं॥ ४१—४३१/२॥

जो लोग ब्राह्मणोंको गव्य, चाँदी, सोना, वस्त्र, घृत, फल और जल प्रदान करते हैं; वे चन्द्रलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे उस लोकमें एक मन्वन्तरतक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे ही वे लोग वहाँ इतने दीर्घकालतक सुखपूर्वक निवास करते हैं॥ ४४-४५१/२॥

हे साध्वि! जो लोग पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि देते हैं, वे सूर्यलोकमें जाते हैं और हे साध्वि! वे वहाँ उस लोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करते हैं। वे उस विस्तृत लोकमें निर्विकार होकर दीर्घकालतक निवास करते हैं॥ ४६-४७१/२॥

जो मनुष्य ब्राह्मणोंको भूमि तथा प्रचुर धन प्रदान करता है, वह भगवान् विष्णुके श्वेतद्वीप नामक मनोहर लोकमें पहुँच जाता है और वहाँपर चन्द्र-सूर्यकी स्थितिपर्यन्त निवास करता है। हे मुने! वह पुण्यवान् मनुष्य उस महान् लोकमें विपुल कालतक वास करता है॥ ४८-४९१/२॥

जो लोग विप्रको भक्तिपूर्वक गृहका दान करते हैं, वे चिरकालतक स्थिर रहनेवाले सुखदायी विष्णुलोकको प्राप्त होते हैं। हे साध्वि! वे मनुष्य दानमें दिये गये उस गृहके रजकणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस अत्यन्त श्रेष्ठ तथा विशाल विष्णुलोकमें निवास करते हैं। जो मनुष्य जिस किसी भी देवताके उद्देश्यसे मन्दिरका दान करता है, वह उस देवताके लोकमें जाता है और उस लोकमें उतने ही वर्षोंतक वास करता है, जितने उस मन्दिरमें रजकण होते हैं। अपने घरपर दान करनेसे चार गुना, किसी पवित्र तीर्थमें दान करनेसे सौ गुना और किसी श्रेष्ठ स्थानमें दान करनेसे दुगुना पुण्यफल प्राप्त होता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५०—५३१/२॥

जो व्यक्ति समस्त पापोंसे मुक्त होनेके लिये तड़ागका दान करता है, वह जनलोक जाता है और उस तड़ागमें विद्यमान रेणु-संख्याके बराबर वर्षोंतक उस लोकमें रहता है। वापीका दान करनेसे मनुष्य उससे भी दस गुना फल प्राप्त कर लेता है। वापीके दानसे तड़ाग-दानका फल स्वतः प्राप्त हो जाता है। चार हजार धनुषके बराबर लम्बा तथा उतना ही अथवा उससे कुछ कम चौड़ा जिसका प्रमाण हो, उसे वापी कहा गया है॥ ५४—५६१/२॥

यदि कन्या किसी योग्य वरको प्रदान की जाती है, तो वह दान दस वापीके दानके समान होता है और यदि

कन्या अलंकारोंसे सम्पन्न करके दी जाती है, तो उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है। जो फल तड़ागके दानसे मिलता है, वही फल उस तड़ागके जीर्णोद्धारसे भी प्राप्त हो जाता है। किसी वापीका कीचड़ दूर कराकर उसका उद्धार करनेसे वापी-दानके समान पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ ५७-५८१/२॥

हे साध्वि! जो मनुष्य पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह तपोलोक पहुँचता है और वहाँपर दस हजार वर्षोंतक निवास करता है। हे सावित्रि! जो व्यक्ति समस्त प्राणियोंके लिये पुष्पोद्यानका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें निश्चितरूपसे निवास करता है॥ ५९-६०१/२॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विष्णुके उद्देश्यसे भारतमें विमानका दान करता है, वह पूरे एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें निवास करता है। चित्रयुक्त तथा विशाल विमानका दान करनेपर उसके दानका चौगुना फल होता है। शिविकाका दान करनेसे मनुष्य उसका आधा फल प्राप्त करता है—यह निश्चित है। जो व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक दोलामन्दिरका दान करता है, वह भी विष्णुलोकमें सौ मन्वन्तरतक निवास करता है॥ ६१—६३१/२॥

हे पतिव्रते! जो मनुष्य आरामगृहोंसे युक्त राजमार्गका निर्माण कराता है, वह दस हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ६४१/२॥

ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्वजन्ममें दिया गया है, जन्मान्तरमें उसीका फल प्राप्त होता है और जो नहीं दिया गया है, उसका फल नहीं मिलता। पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि लोकोंके सुख भोगकर भारतवर्षमें क्रमशः उत्तमसे उत्तम ब्राह्मणकुलोंमें जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार वह पुण्यवान् विप्र भी पुनः स्वर्गमें अपने कर्मफलका भोग करके भारतवर्षमें ब्राह्मण होकर जन्म प्राप्त करता है। क्षत्रिय आदिके लिये भी ऐसा ही है। क्षत्रिय हो अथवा वैश्य—कोई करोड़ों कल्पके तपस्याके प्रभावसे भी ब्राह्मणत्व नहीं प्राप्त कर सकता—ऐसा श्रुतियोंमें सुना गया है॥ ६५—६८१/२॥

करोड़ों कल्प बीत जानेपर भी बिना भोग प्राप्त किये कर्मका क्षय नहीं होता। अपने द्वारा किये गये शुभ अथवा अशुभ कर्मका फल मनुष्यको भोगना ही पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायतासे तथा कायव्यूह (तप)-से प्राणी शुद्ध हो जाता है। हे साध्वि! ये कुछ बातें मैंने तुम्हें बतला दीं; अब आगे क्या सुनना चाहती हो?॥ ६९-७०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादके सावित्री-उपाख्यानमें कर्मविपाकवर्णन' नामक उनतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

दिव्य लोकोंकी प्राप्ति करानेवाले पुण्यकर्मोंका वर्णन

सावित्री बोली—हे यम! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यवान् मनुष्य स्वर्ग आदि अन्य लोकोंमें जाते हैं, उसे मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १॥



धर्मराज बोले—[हे साध्वि!] जो भारतवर्षमें विप्रको अन्नका दान करता है, वह दान दिये गये अन्नकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अन्नदान महादान है। जो अन्य लोगोंको भी अन्नदान करता है, वह भी अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें

प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। अन्नदानसे बढ़कर न कोई दान हुआ है और न होगा। इस दानमें पात्र-परीक्षा अथवा समय-सम्बन्धी नियमकी कोई आवश्यकता नहीं होती है॥ २—४॥

हे साध्वि! यदि कोई मनुष्य देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको आसनका दान करता है, तो वह दस हजार वर्षोंतक विष्णुलोकमें निवास करता है॥ ५॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको दूध देनेवाली दिव्य गाय प्रदान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित रहता है॥ ६॥

[साधारण दिनोंकी अपेक्षा] पुण्य-दिनमें दिये गये गोदानका फल चार गुना, तीर्थमें सौ गुना और नारायणक्षेत्रमें गोदानका फल करोड़ गुना होता है॥ ७॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गाय प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है॥ ८॥

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको उभयमुखी (प्रसव करती हुई) गायका दान करता है, वह उस गायके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ९॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको स्वच्छ तथा मनोहर छत्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोतक वरुणलोकमें आनन्दित रहता है॥ १०॥

हे साध्वि! जो मनुष्य पीड़ित शरीरवाले दुःखी ब्राह्मणको एक जोड़ा वस्त्र प्रदान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ११॥

जो व्यक्ति किसी ब्राह्मणको वस्त्रसहित शालग्रामका अर्पण करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त वैकुण्ठमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १२॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणको दिव्य तथा मनोहर शय्याका दान करता है, वह चन्द्रमा तथा सूर्यके स्थिति-कालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १३॥

जो देवताओं तथा ब्राह्मणोंको दीपकका दान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त अग्निलोकमें वास करता है॥ १४॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथीका दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान रहता है॥ १५॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको अश्वका दान करता है, वह जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वरुणलोकमें आनन्द प्राप्त करता है॥ १६॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणके लिये उत्तम शिबिकाका दान करता है, वह भी चौदह इन्द्रोंकी स्थितितक वरुणलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १७॥

हे साध्वि! जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम वाटिका प्रदान करता है, वह मन्वन्तरपर्यन्त वायुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १८॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणको पंखा तथा श्वेत चँवरका दान करता है, वह निश्चितरूपसे दस हजार वर्षोंतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ १९॥

जो मनुष्य धान्य तथा रत्नका दान करता है, वह दीर्घायु तथा विद्वान् होता है। दान देनेवाला तथा लेनेवाला—वे दोनों निश्चय ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं॥ २०॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका जप करता है, वह दीर्घजीवी होता है और मृत्यु उससे सदा दूर रहती है॥ २१॥

भारतवर्षमें जो विद्वान् पुरुष पूर्णिमाकी रातके कुछ शेष रहनेपर दोलोत्सव कराता है, वह जीवन्मुक्त होता है, इस लोकमें सुख भोगकर वह अन्तमें विष्णुके धामको प्राप्त होता है और वहाँ सौ मन्वन्तरकी अवधितक निश्चितरूपसे निवास करता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें यह उत्सव मनानेपर उससे भी दुगुना फल प्राप्त होता है और वह व्यक्ति कल्पपर्यन्त जीवित रहता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ २२—२४॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको तिलका दान करता है, वह तिलोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवजीके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वहाँसे पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह दीर्घकालतक जीवित रहते हुए सुख भोगता है। तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रका दान करनेसे उससे भी दूना फल प्राप्त होता है॥ २५-२६॥

भारतमें जो मनुष्य उपभोग करनेयोग्य पतिव्रता तथा सुन्दर कन्याको अलंकारों तथा वस्त्रोंसे विभूषित करके उसे किसी ब्राह्मणको भार्याके रूपमें अर्पण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और वहाँपर स्वर्गकी अप्सराओंके साथ दिन-रात आनन्द प्राप्त करता रहता है। उसके बाद वह निश्चय ही गन्धर्वलोकमें दस हजार वर्षोंतक निवास करता है और वहाँपर उर्वशीके साथ क्रीडा करते हुए दिन-रात आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् उसे हजारों जन्मतक सुन्दर, साध्वी, सौभाग्यवती, कोमल तथा प्रिय सम्भाषण करनेवाली भार्या प्राप्त होती है॥ २७—३०॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको सुन्दर फल प्रदान करता है, वह जितने फल दिये गये होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। इसके बाद वह उत्तम योनिमें जन्म लेकर श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानका फल उससे भी हजार गुना अधिक बताया गया है। जो मनुष्य ब्राह्मणको केवल फलदान करता है, वह भी दीर्घ कालतक स्वर्गमें निवास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहण करता है॥ ३१—३३॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य अनेक प्रकारके द्रव्योंसे युक्त तथा नानाविध धान्योंसे परिपूर्ण विशाल भवन ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह सौ मन्वन्तरतक देवलोकमें निवास करता है। तदनन्तर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनाढ्य हो जाता है॥ ३४-३५॥

हे साध्वि! पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो मनुष्य हरी-भरी फसलोंसे सम्पन्न सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे सौ मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर वह बहुत महान् राजा होता है। सौ जन्मोंतक भूमि उसका त्याग नहीं करती और वह श्रीयुक्त, धनवान् तथा पुत्रवान् राजा होता है॥ ३६—३८॥

जो व्यक्ति उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको प्रदान करता है, वह एक लाख मन्वन्तरतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर वह लाखों गाँवोंसे सम्पन्न हो जाता है और लाख जन्मोंतक भूमि उसका साथ नहीं छोड़ती॥ ३९-४०॥

भारतभूमिपर जो मनुष्य ब्राह्मणको उत्तम प्रजाओंसे युक्त, उत्कृष्ट, पकी हुई फसलोंसे सम्पन्न तथा अनेक प्रकारके कमलयुक्त जलाशयों, वृक्षों, फलों और लताओंसे सुशोभित नगर प्रदान करता है; वह दस लाख इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें उत्तम योनिमें जन्म लेकर राजेश्वर होता है और लाखों नगर प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। दस हजार वर्षोंतक धरा उस मनुष्यका साथ नहीं छोड़ती और वह निश्चितरूपसे पृथ्वीतलपर सर्वदा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है॥ ४१—४४॥

जो मनुष्य अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीवाले, प्रजाओंसे परिपूर्ण, बावली-तड़ागसे युक्त तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सम्पन्न एक सौ नगरोंका दान किसी द्विजको करता है, वह करोड़ मन्वन्तरकी अवधितक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। वह फिरसे उत्तम वंशमें जन्म लेकर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और जैसे इन्द्र स्वर्गमें सुशोभित होते हैं, वैसे ही वह परम ऐश्वर्यवान् होकर पृथ्वीलोकमें शोभा प्राप्त करता है। करोड़ों जन्मोंतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती और वह महान् राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होकर कल्पके अन्ततक जीवित रहता है॥ ४५—४८॥

जो मनुष्य ब्राह्मणको अपना सम्पूर्ण अधिकार दे देता है, उसे अन्तमें चौगुना फल प्राप्त होता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४९॥

जो व्यक्ति तपस्वी ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान देता है, वह अन्तमें सौ गुना फल प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५०॥

जम्बूद्वीपकी भूमिका दान करनेवाले, समस्त तीर्थोंमें निवास करनेवाले, सभी तपस्याओंमें रत रहनेवाले, सम्पूर्ण श्रेष्ठ स्थानोंमें निवास करनेवाले, अपना सर्वस्व दान करनेवाले तथा समस्त प्रकारकी सिद्धियोंको प्राप्त किये हुए महेश्वरी जगदम्बाके भक्तको पुनः संसारमें जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ५१-५२॥

भगवती जगदम्बाके उपासकोंके समक्ष असंख्य

ब्रह्माओंका लय हो जाता है, किंतु वे भगवती भुवनेश्वरीके परम धाम मणिद्वीपमें निवास करते रहते हैं॥ ५३॥

भगवतीके मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष मानव-शरीर त्यागनेके अनन्तर जन्म, मृत्यु एवं जरारहित ऐश्वर्यमय दिव्यरूप धारण करके उन भगवतीकी सारूप्यमुक्ति प्राप्तकर उनकी सेवामें सदा संलग्न रहते हैं। वे मणिद्वीपमें निवास करते हुए खण्डप्रलयका अवलोकन करते रहते हैं॥ ५४-५५॥

देवता, सिद्ध तथा समग्र विश्व एक निश्चित अवधिपर नष्ट हो जाते हैं; किंतु जन्म, मृत्यु और जरासे रहित देवीभक्त विनाशको प्राप्त नहीं होते॥ ५६॥

जो मनुष्य कार्तिक महीनेमें भगवान् श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह श्रीहरिके धाममें तीन युगोंतक आनन्दपूर्वक निवास करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह निश्चितरूपसे भगवान्‌की भक्ति प्राप्त करता है और इस भारतभूमिमें रहनेवाले जितेन्द्रिय पुरुषोंमें अति श्रेष्ठ हो जाता है॥ ५७-५८॥

जो व्यक्ति अरुणोदयके समय गंगाके मध्य स्नान करता है, वह साठ हजार युगोंतक भगवान् श्रीहरिके धाममें आनन्द प्राप्त करता है। वह श्रेष्ठ कुलमें जन्म पाकर विष्णुमन्त्रकी सिद्धि करता है और अन्तमें पुनः मानवशरीर त्यागकर भगवान् श्रीहरिके धाममें चला जाता है। उस वैकुण्ठधामसे फिर पृथ्वीतलपर उसका दुबारा जन्म नहीं होता। भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त करके वह सदा उनकी सेवामें संलग्न रहता है॥ ५९—६१॥

जो व्यक्ति प्रतिदिन गंगामें स्नान करता है, वह सूर्यकी भाँति पृथ्वीलोकमें पवित्र माना जाता है और उसे पग-पगपर अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है, यह सर्वथा निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। अन्तमें वह वैकुण्ठधाम पहुँचकर सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त वहाँ आनन्द प्राप्त करता है। तदनन्तर उत्तम कुलमें पुनः जन्म लेकर उसे अवश्य ही भगवान् श्रीहरिकी भक्ति सुलभ होती है। वह जीवन्मुक्त, परम तेजस्वी, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, स्वधर्मपरायण, निर्मलहृदय, विद्वान् तथा जितेन्द्रिय होता है॥ ६२—६४१/२॥

मीन और कर्कराशिपर रहते समय सूर्य अत्यधिक तपते हैं। जो पुरुष उस समय भारतमें सुवासित जलका दान करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त कैलासमें आनन्द भोगता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद-वेदांगका पारगामी विद्वान् होता है॥ ६५—६७॥

जो मनुष्य वैशाख महीनेमें ब्राह्मणको सत्तूका दान करता है, वह उस सत्तूके कणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें आनन्दपूर्वक निवास करता है॥ ६८॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीका व्रत करता है, वह अपने सौ जन्मोंमें किये गये पापोंसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जबतक चौदहों इन्द्रोंकी स्थिति बनी रहती है, तबतक वह वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। इसके बाद वह पुनः उत्तम योनिमें जन्म लेकर निश्चितरूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है॥ ६९-७०॥

इस भारतवर्षमें जो मनुष्य शिवरात्रिका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तरोंके कालतक शिवलोकमें आनन्दसे रहता है॥ ७१॥

जो मनुष्य शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र अर्पण करता है, वह बिल्वपत्रोंकी जितनी संख्या है उतने वर्षोंतक उस शिवलोकमें आनन्द भोगता है। पुनः श्रेष्ठ योनि प्राप्त करके वह निश्चय ही शिवभक्ति प्राप्त करता है और विद्या, पुत्र, श्री, प्रजा तथा भूमि—इन सबसे सदा सम्पन्न रहता है॥ ७२-७३॥

जो व्रती चैत्र अथवा माघमें पूरे मासभर, आधे मास, दस दिन अथवा सात दिनतक भगवान् शंकरकी पूजा करता है और हाथमें बेंत लेकर भक्तिपूर्वक उनके सम्मुख नर्तन करता है, वह उपासनाके दिनोंकी संख्याके बराबर युगोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ७४-७५॥

जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीरामनवमीका व्रत सम्पन्न करता है, वह विष्णुके धाममें सात मन्वन्तरतक आनन्द करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह निश्चय ही रामकी भक्ति प्राप्त करता है और जितेन्द्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा महान् धनी होता है॥ ७६-७७॥

हे साध्वि! जो मनुष्य विविध प्रकारके नैवेद्यों, उपहार-सामग्रियों, धूप-दीप आदि पूजनोपचारोंके द्वारा भगवती प्रकृतिकी शारदीय महापूजा करता है तथा उस अवसरपर नृत्य, गीत, वाद्य आदिके द्वारा अनेकविध मंगलोत्सव मनाता है; वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक शिवलोकमें निवास करता है। पुनः उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह मनुष्य निर्मल बुद्धि, अपार सम्पत्ति तथा पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि प्राप्त करता है। वह हाथी, घोड़े आदि वाहनोंसे सम्पन्न तथा महान् प्रभावशाली राजराजेश्वर हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ७८—८१½ ॥

शारदीय नवरात्रकी शुक्लाष्टमी तिथिसे प्रारम्भ करके एक पक्षतक नित्य पवित्र भारतभूमिपर जो मनुष्य भक्तिपूर्वक उत्तम षोडशोपचार अर्पित करके भगवती महालक्ष्मीकी पूजा करता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त गोलोकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम कुलमें जन्म लेकर वह राजराजेश्वर बनता है॥ ८२—८४ ॥

जो भारतवर्षमें कार्तिकपूर्णिमाको सैकड़ों गोपों तथा गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनाकर शिलापर या प्रतिमामें सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंसे भक्तिपूर्वक राधासहित श्रीकृष्णकी पूजा सम्पन्न करता है, वह ब्रह्माजीके स्थितिपर्यन्त गोलोकमें निवास करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर वह श्रीकृष्णकी स्थिर भक्ति प्राप्त करता है। भगवान् श्रीहरिकी क्रमशः सुदृढ़ भक्ति तथा उनका मन्त्र प्राप्त करके देह-त्यागके अनन्तर वह पुनः गोलोक चला जाता है। वहाँ श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके वह उनका प्रमुख पार्षद बन जाता है। पुनः वहाँसे उसका पतन नहीं होता, वह जरा तथा मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाता है॥ ८५—८९ ॥

जो व्यक्ति शुक्ल अथवा कृष्णपक्षकी एकादशीका व्रत करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त वैकुण्ठलोकमें आनन्दका भोग करता है। पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह निश्चय ही श्रीकृष्णकी भक्ति प्राप्त करता है और वह क्रमशः एकमात्र श्रीहरिके प्रति अपनी भक्तिको सुदृढ़ करता जाता है। अन्तमें मानव देह त्यागकर वह पुनः गोलोक चला जाता है और वहाँपर श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। वहाँसे पुनः संसारमें उसका आगमन नहीं होता और वह सदाके लिये जरा तथा मृत्युसे मुक्त हो जाता है॥ ९०—९२½ ॥

जो मनुष्य भाद्रपद मासके शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको इन्द्रकी पूजा करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक इन्द्रलोकमें सम्मानित होता है। जो भारतवर्षमें रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सूर्यकी पूजा करके भोजनमें हविष्यान्न ग्रहण करता है, वह चौदहों इन्द्रोंके आयुपर्यन्त सूर्यलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। इसके बाद भारतवर्षमें फिरसे जन्म लेकर वह आरोग्ययुक्त तथा श्रीसम्पन्न होता है॥ ९३—९५½ ॥

जो मनुष्य ज्येष्ठ मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको भगवती सावित्रीका पूजन करता है, वह सात मन्वन्तरोंकी अवधितक ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुनः पृथ्वीपर लौटकर वह श्रीमान्, अतुल पराक्रमी, चिरंजीवी, ज्ञानवान् तथा सम्पदासम्पन्न हो जाता है॥ ९६-९७½ ॥

जो मनुष्य माघ महीनेके शुक्लपक्षकी पंचमी तिथिको भक्तिपूर्वक सोलहों प्रकारके पूजनोपचारोंको अर्पणकर सरस्वतीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके आयुपर्यन्त मणिद्वीपमें दिन-रात प्रतिष्ठा प्राप्त करता है और पुनः जन्म ग्रहणकर महान् कवि तथा पण्डित होता है॥ ९८-९९½ ॥

भारतवर्षमें जो जीवनभर भक्तिसे सम्पन्न होकर ब्राह्मणको नित्य गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह उस गौके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उससे भी दुगुने वर्षोंतक विष्णुलोकमें वास करता है और वहाँ भगवान् श्रीहरिके साथ मंगलमय क्रीड़ा तथा उत्सव करते हुए आनन्दका भोग करता है। तत्पश्चात् पुनः भारतवर्षमें जन्म पाकर श्रीसम्पन्न, पुत्रवान्, विद्वान्, ज्ञानवान् तथा हर प्रकारसे सुखी राजराजेश्वरके रूपमें प्रतिष्ठित होता है॥ १००—१०२½ ॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणोंको मिष्टान्नका भोजन कराता है, वह उस ब्राह्मणके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक विष्णुलोकमें आनन्द प्राप्त करता है। तत्पश्चात् वहाँसे पुनः इस लोकमें जन्म लेकर वह सुखी, धनवान्, विद्वान्, दीर्घजीवी, श्रीमान् तथा अतुलनीय

पराक्रमवाला होता है॥ १०३-१०४$^{१}/_{२}$॥

भारतवर्षमें जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा इसके लिये दूसरेको प्रेरणा देता है, वह जपे गये नामोंकी संख्याके बराबर युगोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है और वहाँसे पुनः इस लोकमें आकर वह सुखी तथा धनवान् होता है॥ १०५-१०६॥

यदि भगवान्‌का नामजप नारायणक्षेत्रमें किया जाय तो उसका फल करोड़ों गुना अधिक होता है। जो मनुष्य नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे रहित होकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह सत्य है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह भगवान् विष्णुका सारूप्य प्राप्त कर लेता है और वहाँसे उसका पतन नहीं होता है। इस प्रकार वह भगवान् विष्णुकी परम भक्ति सुलभ कर लेता है और अन्ततः उसे भगवान् विष्णुकी सारूप्यमुक्ति प्राप्त हो जाती है॥ १०७—१०९॥

जो मनुष्य प्रतिदिन पार्थिव लिंग बनाकर शिवकी पूजा करता है और जीवनपर्यन्त इस नियमका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है और उस पार्थिव लिंगमें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म लेकर वह महान् राजा होता है॥ ११०-१११॥

जो मनुष्य प्रतिदिन शालग्रामका पूजन करता है और शालग्रामशिलाके जलका पान करता है, वह सौ ब्रह्माकी आयुतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। उसके बाद फिरसे जन्म लेकर भगवान् श्रीहरिकी दुर्लभ भक्ति प्राप्त करता है और पुनः विष्णुलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है और उसका पतन नहीं होता॥ ११२-११३॥

जो मनुष्य समस्त तपों तथा व्रतोंको सम्पन्न कर लेता है, वह चौदह इन्द्रोंके कालपर्यन्त वैकुण्ठमें निवास करता है। वहाँसे पुनः भारतवर्षमें जन्म ग्रहणकर वह महान् सम्राट् होता है। तदनन्तर वह मुक्त हो जाता है और फिर उसे दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ता॥ ११४-११५॥

जो सभी तीर्थोंमें स्नान तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा कर लेता है, वह निर्वाणपदको प्राप्त होता है और पुनः पृथ्वीलोकमें उसका जन्म नहीं होता है॥ ११६॥

जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें अश्वमेधयज्ञ करता है, वह उस अश्वके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं; उतने वर्षोंतक इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्य इससे भी चार गुना फल प्राप्त करता है॥ ११७॥

भगवतीका यज्ञ सभी यज्ञोंसे भी श्रेष्ठ कहा गया है। हे वरानने! विष्णु और ब्रह्माने पूर्वकालमें इस यज्ञको किया था और त्रिपुरासुरका वध करनेके लिये महादेव शंकरजीने भी इस यज्ञको सम्पन्न किया था। हे सुन्दरि! यह शक्ति-यज्ञ सम्पूर्ण यज्ञोंमें प्रधान है; तीनों लोकोंमें इस यज्ञके समान कोई भी यज्ञ नहीं है॥ ११८—१२०॥

हे साध्वि! पूर्व कालकी बात है, दक्षप्रजापतिने महान् उत्सवके साथ भगवतीका यज्ञ किया था, जिसमें दक्ष-प्रजापति तथा शंकरमें परस्पर कलह हो गया। क्रोधमें आकर ब्राह्मणोंने नन्दीको तथा नन्दीने ब्राह्मणोंको शाप दे दिया। इसलिये चन्द्रमाको मस्तकपर धारण करनेवाले शिवने दक्षके यज्ञका विध्वंस कर डाला॥ १२१-१२२॥

प्राचीन कालमें दक्षप्रजापति, धर्म, कश्यप, शेषनाग, मुनि कर्दम, स्वायम्भुव मनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुव—ये सभी लोग भगवतीयज्ञ सम्पन्न कर चुके हैं॥ १२३-१२४॥

देवीयज्ञ करनेवाला पुरुष हजारों राजसूययज्ञोंका फल निश्चित-रूपसे प्राप्त कर लेता है। देवीयज्ञसे बढ़कर फल प्रदान करनेवाला कोई यज्ञ नहीं है—ऐसा वेदमें कहा गया है॥ १२५॥

देवीयज्ञ करनेवाला सौ वर्षतक जीवित रहकर अन्तमें जीवन्मुक्त हो जाता है, यह सत्य है। वह इस लोकमें ज्ञान तथा तपमें साक्षात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो जाता है॥ १२६॥

हे वत्से! हे भामिनि! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, विष्णुभक्तोंमें नारद, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गंगा, पुण्यात्मा पवित्रोंमें शिव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड, स्त्रियोंमें मूलप्रकृति; राधा; सरस्वती तथा पृथिवी, शीघ्रगामी तथा चंचल इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजाओंमें राजा, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमान् लोगोंमें श्री, विद्वानोंमें सरस्वती,

पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्ण-भार्याओंमें राधा सर्वोपरि हैं, उसी प्रकार समस्त यज्ञोंमें देवीयज्ञ श्रेष्ठ है॥ १२७—१३२॥

एक सौ अश्वमेधयज्ञ करनेसे मनुष्य इन्द्रपद पा जाता है। एक हजार अश्वमेध करके राजा पृथुने विष्णुपद प्राप्त किया था॥ १३३॥

सम्पूर्ण तीर्थोंके स्नान, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, सभी व्रतों, तपों तथा चारों वेदोंके पाठोंका पुण्य और पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—इन सभी साधनोंके फलस्वरूप शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाकी सेवा सुलभ हो जाती है, जो प्राणीको मोक्ष प्रदान कर देती है॥ १३४-१३५॥

पुराणों, वेदों तथा इतिहासोंमें सर्वत्र भगवतीके चरणकमलकी उपासनाको ही सारभूत बताया गया है। उन भगवतीके चरित्रका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम तथा गुणोंका कीर्तन, उनके स्तोत्रोंका स्मरण, उनकी वन्दना, उनका नाम-जप, उनके चरणोदक तथा नैवेद्यका ग्रहण—यह सब नित्य सम्पादित करना चाहिये। हे साध्वि! यह सर्वसम्मत तथा सभीके लिये अभीष्ट भी है॥ १३६—१३८॥

हे वत्से! तुम निर्गुण परब्रह्मस्वरूपिणी पराम्बा भगवती मूलप्रकृतिकी उपासना करो। अब तुम अपने पतिको ग्रहण करो और सुखपूर्वक अपने भवनमें निवास करो। मनुष्योंका यह मंगलमय कर्मविपाक मैंने तुमसे कह दिया, यह प्रसंग सबके लिये अभीष्ट, सर्वसम्मत, श्रेष्ठ तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है॥ १३९-१४०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'यमके द्वारा कर्मविपाककथन' नामक तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३०॥

इकतीसवाँ अध्याय

सावित्रीका यमाष्टकद्वारा धर्मराजका स्तवन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] यमके मुखसे भगवतीके नामकीर्तनकी महिमा सुनकर सावित्रीके नेत्रोंमें अश्रु भर आये और उसका शरीर पुलकित हो गया। वह यमसे पुनः कहने लगी॥ १॥

सावित्री बोली—हे धर्म! शक्तिस्वरूपा भगवती जगदम्बाका नामकीर्तन सबका उद्धार करनेवाला और श्रोता तथा वक्ता—दोनोंके जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापेका नाश करनेवाला है॥ २॥

हे विभो! भगवतीका यह कीर्तन दानवों, सिद्धों तथा तपस्वियोंका परम पद है और समस्त योगों तथा वेदोंका सेवनरूप ही है॥ ३॥

मोक्षपद, अमरता और सभी प्रकारकी सिद्धियाँ श्रीशक्तिके उपासककी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ ४॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं किस विधिसे उन भगवतीकी उपासना करूँ, मुझे यह बताइये। मैंने आपसे मनुष्योंके शुभ कर्मका मनोहर फल सुन लिया, अब आप मुझे उनके अशुभ कर्मोंका फल बतानेकी कृपा कीजिये॥ ५ १/२॥

हे ब्रह्मन्! ऐसा कहकर वह सावित्री भक्तिभावसे अपना कन्धा झुकाकर वेदोक्त स्तोत्रके द्वारा उन धर्मराजकी स्तुति* करने लगी॥ ६ १/२॥

---

* तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा॥
धर्मं सूर्यः सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्। समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः॥
अतो यन्नाम शमनमिति तं प्रणमाम्यहम्। येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्॥
कामानुरूपं कालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्। बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे॥
नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वजीविनाम्। विश्वं च कलयत्येव यः सर्वेषु च सन्ततम्॥
अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्। तपस्वी ब्रह्मनिष्ठो यः संयमी सञ्जितेन्द्रियः॥
जीवानां कर्मफलदस्तं यमं प्रणमाम्यहम्। स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्॥
पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्। यज्जन्म ब्रह्मणोंऽशेन ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥
यो ध्यायति परं ब्रह्म तमीशं प्रणमाम्यहम्। (श्रीमद्देवीभा० ९। ३१। ७—१५)

सावित्री बोली—प्राचीन कालमें सूर्यने पुष्करक्षेत्रमें तपस्याके द्वारा धर्मकी उपासना की थी। उस समय जिन धर्मको सूर्यने पुत्ररूपमें प्राप्त किया, उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ७१/२ ॥ जो सभी प्राणियोंमें समभाव रखते हैं और जो सबके साक्षी हैं, अतः जिनका नाम शमन है—उन धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ८१/२ ॥ जो कालके अनुसार इच्छापूर्वक विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान् कृतान्तको मैं प्रणाम करती हूँ॥ ९१/२ ॥ जो सभी प्राणियोंको नियन्त्रणमें रखते हैं तथा पापियोंकी शुद्धिहेतु उन्हें दण्डित करनेके लिये हाथमें दण्ड धारण करते हैं, उन भगवान् दण्डधरको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १०१/२ ॥ जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंके समयका निरन्तर परिगणन करते हैं तथा जो परम दुर्धर्ष हैं, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १११/२ ॥ जो तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, संयमी, जितेन्द्रिय तथा जीवोंको उनके कर्मोंका फल देनेवाले हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १२१/२ ॥ जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्माओंके मित्र तथा पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं; उन भगवान् पुण्यमित्रको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १३१/२ ॥ ब्रह्माके अंशसे जिनका जन्म हुआ है तथा जो सदा परब्रह्मका ध्यान करते रहते हैं—ब्रह्मतेजसे दीप्तिमान् उन भगवान् ईशको मैं प्रणाम करती हूँ॥ १४१/२ ॥

हे मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके उस सावित्रीने यमराजको प्रणाम किया। तदनन्तर धर्मराजने उस सावित्रीको भगवतीके मन्त्र तथा प्राणियोंके कर्मफलके विषयमें बतलाया॥ १५१/२ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस यमाष्टकका नित्य पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि महान् पापी मनुष्य भी भक्तिपूर्वक नित्य इसका पाठ करे, तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चितरूपसे उसे शुद्ध कर देते हैं॥ १६-१७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'यमाष्टकवर्णन' नामक इकतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३१ ॥

बत्तीसवाँ अध्याय

धर्मराजका सावित्रीको अशुभ कर्मोंके फल बताना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सूर्यपुत्र यमराज सावित्रीको विधिपूर्वक भगवतीके महामन्त्र मायाबीजकी दीक्षा प्रदानकर उसे प्राणियोंके अशुभ कर्मका फल बताने लगे॥ १ ॥

धर्मराज बोले—शुभ कर्मके विपाकके कारण मनुष्य नरकमें नहीं जाता है। अब मैं अशुभ कर्मोंका फल कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो—॥ २ ॥

हे भामिनि! अनेक प्रकारके पुराणोंके अनुसार नामभेदसे अनेकविध स्वर्ग हैं। अपने-अपने कर्मोंके अनुसार जीव वहाँ जाता है॥ ३॥

मनुष्य अपने शुभ कर्मोंके फलसे नरकमें नहीं जाता है। वह अपने बुरे कर्मके कारण अनेक प्रकारके नरकमें पड़ता है॥ ४॥

नरकोंके अनेक प्रकारके कुण्ड हैं। हे वत्से! विविध शास्त्रोंके प्रमाणोंके अनुसार तथा जीवोंके कर्मभेदसे प्राप्त होनेवाले अत्यन्त विस्तृत, गहरे, पापियोंके लिये क्लेशदायक, भयंकर, घोर तथा कुत्सित कुल छियासी कुण्ड हैं; इसके अतिरिक्त कुछ अन्य कुण्ड भी हैं। हे साध्वि! उन कुण्डोंके वेदप्रसिद्ध नामोंको बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ५—७॥

वह्निकुण्ड, तप्तकुण्ड, भयानक क्षारकुण्ड, विट्कुण्ड, मूत्रकुण्ड, दुःसह श्लेष्मकुण्ड, गरकुण्ड, दूषिकुण्ड, वसाकुण्ड, शुक्रकुण्ड, असृक्कुण्ड, कुत्सित अश्रुकुण्ड, गात्रमलकुण्ड, कर्णविट्कुण्ड, मज्जाकुण्ड, मांसकुण्ड, दुस्तर नक्रकुण्ड, लोमकुण्ड, केशकुण्ड, दुस्तर अस्थिकुण्ड, ताम्रकुण्ड, प्रतप्त एवं महान् कष्टदायक लोहकुण्ड, चर्मकुण्ड, तप्तसुराकुण्ड, तीक्ष्ण कण्टककुण्ड, विषपूर्ण विषकुण्ड—ये कुण्ड बताये गये हैं॥ ८—१२॥

हे सुव्रते! इसी प्रकार प्रतप्त तैलकुण्ड, दुर्वह कुन्तकुण्ड, कृमिकुण्ड, पूयकुण्ड, अत्यन्त कष्टप्रद सर्पकुण्ड, मशककुण्ड, दंशकुण्ड, भयानक गरलकुण्ड और वज्रके समान दाँतोंवाले बिच्छुओंके भी कुण्ड हैं। हे शुचिस्मिते!

शरकुण्ड, शूलकुण्ड, भयंकर खड्गकुण्ड, गोलकुण्ड, नक्रकुण्ड, कष्टदायक काककुण्ड, मन्थानकुण्ड, बीजकुण्ड, दु:सह वज्रकुण्ड, तप्तपाषाणकुण्ड, तीक्ष्णपाषाणकुण्ड, लालाकुण्ड, मसीकुण्ड, चूर्णकुण्ड, चक्रकुण्ड, वक्रकुण्ड, महाभयंकर कूर्मकुण्ड, ज्वालाकुण्ड, भस्मकुण्ड, दग्धकुण्ड, तप्तसूचीकुण्ड, असिपत्रकुण्ड, क्षुरधारकुण्ड, सूचीमुखकुण्ड, गोकामुखकुण्ड, नक्रमुखकुण्ड, गजदंशकुण्ड, गोमुखकुण्ड, कुम्भीपाककुण्ड, कालसूत्रकुण्ड, मत्स्योदकुण्ड, कृमितन्तु-कुण्ड, पांसुभोज्यकुण्ड, पाशवेष्टकुण्ड, शूलप्रोतकुण्ड, प्रकम्पनकुण्ड, उल्कामुखकुण्ड, अन्धकूपकुण्ड, वेधनकुण्ड, ताडनकुण्ड, जालरन्ध्रकुण्ड, देहचूर्णकुण्ड, दलनकुण्ड, शोषणकुण्ड, कषकुण्ड, शूर्पकुण्ड, ज्वालामुखकुण्ड, धूमान्धकुण्ड और नागवेष्टनकुण्ड—ये कुण्ड कहे गये हैं॥ १३—२१॥

हे सावित्रि! ये सभी कुण्ड पापियोंके लिये क्लेशप्रद हैं। दस लाख अनुचर सदा इन कुण्डोंकी रखवाली करते रहते हैं। वे सभी निर्दयी, अभिमानमें चूर तथा भयंकर सेवकगण अपने हाथोंमें दण्ड, पाश, शक्ति, गदा और तलवार लिये रहते हैं। वे तमोगुणसे युक्त तथा दयाशून्य रहते हैं और कोई भी उनका प्रतिरोध नहीं कर सकता। उन तेजस्वी तथा निर्भीक अनुचरोंकी आँखें ताँबेके सदृश तथा कुछ-कुछ पीले वर्णकी हैं। योगयुक्त तथा सिद्धियोंसे सम्पन्न वे सभी सेवक अनेक प्रकारके रूप धारण कर लिया करते हैं। वे सेवक समस्त पापी प्राणियोंको उनकी मृत्यु निकट आनेपर दिखायी पड़ते हैं। शक्ति, सूर्य तथा गणपतिके उपासकों एवं अपने कर्मोंमें लगे रहनेवाले पुण्यशाली सिद्धों तथा योगियोंको वे दिखायी नहीं पड़ते। इसी प्रकार जो सदा अपने धर्ममें लगे रहते हैं, जिनका हृदय विशाल है, जो पूर्ण स्वतन्त्र हैं तथा जिन्हें स्वप्नमें या कहीं भी अपने इष्टदेवका दर्शन हो चुका है—ऐसे वैष्णवजनोंको वे बलवान् तथा नि:शंक यमदूत कभी दिखायी नहीं पड़ते॥ २२—२७॥

हे साध्वि! यह मैंने तुमसे कुण्डोंकी संख्याका निरूपण कर दिया। जिन-जिन पापियोंका जिन-जिन कुण्डोंमें वास होता है, अब मैं तुम्हें यह बता रहा हूँ, ध्यानसे सुनो॥ २८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धके 'नारायण-नारद-संवादमें सावित्री-उपाख्यानमें कुण्डसंख्यानिरूपण' नामक बत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

विभिन्न नरककुण्डोंमें जानेवाले पापियों तथा उनके पापोंका वर्णन

धर्मराज बोले—हे साध्वि! भगवान् श्रीहरिकी सेवामें संलग्न रहनेवाला, विशुद्धात्मा, योगसिद्ध, व्रती, तपस्वी तथा ब्रह्मचारी पुरुष निश्चित ही नरकमें नहीं जाता॥ १॥

जो बलशाली मनुष्य बलके अभिमानमें आकर अपने कटुवचनसे बान्धवोंको दग्ध करता है, वह वह्निकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस वह्निकुण्डमें वास करके वह तीन जन्मोंतक रौद्रदग्ध पशुयोनि प्राप्त करता है॥ २-३॥

जो मूर्ख घरपर आये हुए भूखे-प्यासे दु:खी ब्राह्मणको भोजन नहीं कराता है, वह तप्तकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस ब्राह्मणके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस दु:खप्रद नरकमें वास करके वह सात जन्मोंतक पक्षीकी योनिमें पैदा होकर तपते हुए स्थानपर वह्निशय्यापर यातना भोगता है॥ ४-५॥

जो मनुष्य रविवार, सूर्यसंक्रान्ति, अमावास्या और श्राद्धके अवसरपर क्षार पदार्थोंसे वस्त्र धोता है, वह क्षारकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस वस्त्रमें विद्यमान सूतोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक रजकयोनिमें उसे जन्म लेना पड़ता है॥ ६-७॥

जो अधम मनुष्य मूलप्रकृति भगवती जगदम्बाकी

निन्दा करता है, जो वेद-शास्त्र तथा पुराणोंकी निन्दा करता है, जो ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि देवताओंकी निन्दामें संलग्न रहता है और जो मनुष्य गौरी-सरस्वती आदि देवियोंकी निन्दामें तत्पर रहता है—वे सब उस भयानक नरककुण्डमें जाते हैं, जिससे बढ़कर दुःखदायी दूसरा कोई कुण्ड नहीं होता। उस कुण्डमें अनेक कल्पोंतक वास करके वह मनुष्य सर्पयोनिको प्राप्त होता है। भगवतीकी निन्दाके अपराधका कोई प्रायश्चित्त ही नहीं है॥ ८—११॥

जो मनुष्य अपने या दूसरेके द्वारा दी गयी देवता अथवा ब्राह्मणकी वृत्तिको छीनता है, वह साठ हजार वर्षोंके लिये विट्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उतने ही वर्षोंतक विष्ठाभोजी बनकर वहाँ रहता है। इसके बाद वह पुनः पृथ्वीपर साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कृमि होता है॥ १२-१३॥

जो व्यक्ति दूसरोंके बनवाये तड़ागमें अपने नामसे निर्माण करता है और फिर जनताके लिये उसका उत्सर्ग (लोकार्पण) करता है, वह उस दोषके कारण मूत्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह उस तड़ागके रज-कणकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उसी मूत्र आदिको ग्रहण करते हुए रहता है और पुनः भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक वृषकी योनिमें रहता है॥ १४-१५॥

जो अकेले ही मिष्टान्न आदिका भक्षण करता है, वह श्लेष्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी श्लेष्माको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक वहाँ रहता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें पूरे सौ वर्षोंतक प्रेतयोनिमें पड़ा रहता है; यहाँ श्लेष्मा, मूत्र तथा पीव आदिका उसे भक्षण करना पड़ता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १६-१७॥

जो मनुष्य माता, पिता, गुरु, पत्नी, पुत्र, पुत्री और अनाथका भरण-पोषण नहीं करता; वह गरकुण्ड (विषकुण्ड) नामक नरकमें जाता है और वहाँपर उसी विषको खाते हुए वह पूरे सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तदनन्तर वह सौ वर्षोंतकके लिये भूतयोनिमें जाता है, इसके बाद वह शुद्ध होता है॥ १८-१९॥

जो मनुष्य अतिथिको देखकर [उसके प्रति उपेक्षाभावसे] अपनी दृष्टिको वक्र कर लेता है, उस पापीके जलको देवता तथा पितर ग्रहण नहीं करते और ब्रह्महत्या आदि जो कुछ भी पाप हैं, उन सबका फल उसे इसी लोकमें भोगना पड़ता है। अन्तमें वह दूषिकाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँपर दूषित पदार्थोंको खाते हुए पूरे सौ वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक भूतयोनिमें रहनेके अनन्तर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २०—२२॥

यदि कोई मनुष्य ब्राह्मणको द्रव्यका दान करनेके बाद वह द्रव्य किसी अन्यको दे देता है, तो वह वसाकुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी वसाको खाते हुए उसे सौ वर्षोंतक वहीं रहना पड़ता है। तदनन्तर उसे भारतवर्षमें सात जन्मोंतक गिरगिट होना पड़ता है। उसके बाद वह महान् क्रोधी, दरिद्र तथा अल्पायु प्राणीके रूपमें जन्म लेता है॥ २३-२४॥

यदि कोई स्त्री परपुरुषसे सम्बन्ध रखती है अथवा कोई पुरुष परनारीमें वीर्याधान करता है, वह शुक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर उसी वीर्यको खाते हुए उसे पूरे सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। इसके बाद वह सौ वर्षोंतक कीटयोनिमें रहता है, तदनन्तर शुद्ध होता है॥ २५-२६॥

जो व्यक्ति गुरु अथवा ब्राह्मणको मारकर उनके शरीरसे रक्त बहाता है, वह असृक्कुण्ड नामक नरकमें जाता है और उसी रक्तका पान करते हुए उसे वहाँ सौ वर्षोंतक रहना पड़ता है। तदनन्तर वह भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याघ्रका जन्म प्राप्त करता है। इस प्रकार वह क्रमसे शुद्ध होता है और वह फिरसे मानवयोनिमें जन्म लेता है॥ २७-२८॥

भगवान् श्रीकृष्णका प्रेमपूर्वक गुणगान करनेवाले भक्तको दान देकर जो मनुष्य खेदपूर्वक आँसू बहाता है तथा उनके गुणसम्बन्धी संगीतके अवसरपर जो उपहास करता है, वह सौ वर्षोंतक अश्रुकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ उसी अश्रुको भोजनके रूपमें उसे ग्रहण करना पड़ता है, तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक चाण्डालकी योनिमें पैदा होता है, तब वह शुद्ध होता है॥ २९-३०॥

उसी प्रकार जो मनुष्य सहृदय व्यक्तिके साथ सदा

शठताका व्यवहार करता है, वह गात्रमलकुण्ड नामक नरकमें जाता है और सौ वर्षोंतक वहाँ वास करता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक गर्दभ-योनिमें तथा तीन जन्मोंतक शृगाल-योनिमें जन्म लेता है, इसके बाद वह निश्चित ही शुद्ध हो जाता है॥ ३१-३२॥

जो मनुष्य किसी बहरेको देखकर हँसता है और अभिमानपूर्वक उसकी निन्दा करता है, वह कर्णविट्कुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और वहाँ रहते हुए कानकी मैलका भोजन करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक दरिद्र तथा बहरा होता है। पुनः सात जन्मोंतक अंगहीन होकर वह जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ३३-३४॥

जो मनुष्य लोभके वशीभूत होकर अपने भरण-पोषणके लिये जीवोंकी हत्या करता है, वह मज्जाकुण्ड नामक नरकमें लाख वर्षोंतक वास करता है और वहाँपर भोजनमें उसे वही मज्जा ही मिलती है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक खरगोश और मछली, तीन जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक कुक्कुट होकर जन्म लेता है, फिर कर्मोंके प्रभावसे वह मृग आदि योनियाँ प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ३५-३६½॥

जो मनुष्य अपनी कन्याको पाल-पोसकर धनके लोभसे उसे बेच देता है, वह महामूर्ख मांसकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उस कन्याके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वह उस नरकमें रहता है और वहाँपर उसे भोजनके रूपमें वही मांस खाना पड़ता है। यमदूत उसपर दण्ड-प्रहार करते हैं। उसे मांस तथा रक्तका बोझ मस्तकपर उठाकर ढोना पड़ता है और रक्त आदिको चाटकर वह अपनी क्षुधा शान्त करता है। तत्पश्चात् वह पापी साठ हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें उस कन्याकी विष्ठाका कीड़ा बनकर रहता है। इसके बाद भारतवर्षमें सात जन्मोंतक व्याध, तीन जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कुक्कुट, सात जन्मोंतक मेढक और जोंक तथा पुनः सात जन्मोंतक कौएकी योनि प्राप्त करता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध होता है॥ ३७—४१½॥

जो मनुष्य व्रतों, उपवासों और श्राद्धों आदिके अवसरपर क्षौरकर्म करता है, वह सम्पूर्ण कर्मोंके लिये अपवित्र हो जाता है। हे सुन्दरि! वह नख आदि कुण्डोंमें उन दिनोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वास करता है, उन्हीं दुष्पदार्थोंका भक्षण करता है और डण्डोंसे पीटा जाता है॥ ४२-४३½॥

जो भारतवर्षमें केशयुक्त मिट्टीसे बने पार्थिव लिंगकी पूजा करता है, वह उस मृदामें विद्यमान रजकणोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक केशकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर भगवान् शिवके कोपके कारण वह यवनयोनिमें जन्म लेता है और फिर वह राक्षसयोनिमें जन्म ग्रहण करता है तथा सौ वर्षके पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४४-४५½॥

जो मनुष्य विष्णुपदतीर्थ (गयातीर्थ)-में पितरोंको पिण्ड नहीं देता, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अस्थिकुण्ड नामक अत्यन्त भयानक कुण्डमें वास करता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनि प्राप्तकर सात जन्मोंतक लँगड़ा तथा महान् दरिद्र होता है। तत्पश्चात् उसकी देहशुद्धि हो जाती है॥ ४६-४७½॥

जो महामूर्ख मनुष्य अपनी गर्भवती स्त्रीके साथ सहवास करता है, वह सौ वर्षोंतक अत्यन्त तपते हुए ताम्रकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है॥ ४८½॥

जो व्यक्ति पति-पुत्रहीन स्त्री तथा ऋतुस्नाता स्त्रीका अन्न खाता है, वह जलते हुए लोहकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक रहता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक रजक तथा कौएकी योनि पाता है। उस समय वह दरिद्र रहता है और विशाल घावोंसे युक्त रहता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ४९-५०½॥

जो व्यक्ति चर्मसे स्पर्शित हाथके द्वारा देवद्रव्यका स्पर्श करता है, वह सौ वर्षोंतक चर्मकुण्ड नामक नरकमें वास करता है॥ ५१½॥

जो ब्राह्मण किसी शूद्रसे स्वीकृति प्राप्तकर उसका अन्न खाता है, वह तप्तसुराकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक शूद्रयाजी (शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला) ब्राह्मण होता है और शूद्रोंका श्राद्धान्न ग्रहण करता है, तदनन्तर वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५२-५३½॥

जो कटुभाषी मनुष्य कठोर वचनके द्वारा अपने स्वामीको सदा पीडित करता रहता है, वह तीक्ष्णकण्टककुण्ड नामक नरकमें वास करता है और उसे वहाँपर कण्टक ही खानेको मिलते हैं। यमदूतके द्वारा डंडेसे वह चार गुना ताडित किया जाता है। उसके बाद वह सात जन्मतक अश्वकी योनि प्राप्त करता है, फिर वह शुद्ध हो जाता है॥ ५४-५५१/२ ॥

जो दयाहीन मनुष्य विषके द्वारा किसी प्राणीकी हत्या करता है, वह हजार वर्षोंतक विषकुण्ड नामक नरकमें रहता है और वहाँपर उसे उसी विषका भोजन करना पड़ता है। उसके बाद वह नरघाती सात जन्मोंतक बड़े-बड़े घावोंसे युक्त तथा सात जन्मोंतक कोढ़से ग्रस्त रहता है, तत्पश्चात् वह अवश्य ही शुद्ध हो जाता है॥ ५६-५७१/२ ॥

पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो वृषवाहक गायको और बैलको डण्डेसे स्वयं मारता है अथवा सेवकके द्वारा मरवाता है, उसे चार युगोंतक तपते हुए तैलकुण्ड नामक नरकमें वास करना पड़ता है और तत्पश्चात् उस गायके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उसे बैल होना पड़ता है॥ ५८-५९१/२ ॥

हे साध्वि! जो मनुष्य भालेसे अथवा अग्निमें तपाये गये लोहेसे किसी प्राणीकी उपेक्षापूर्वक हत्या कर देता है, वह दस हजार वर्षोंतक कुन्तकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उत्तम मानवयोनिमें जन्म प्राप्त करके वह उदररोगसे पीडित होता है। इस प्रकार एक ही जन्ममें कष्ट भोगनेके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६०-६११/२ ॥

जो अधम द्विज भगवत्प्रसादका त्याग करके मांसस्वादके लोभसे व्यर्थ ही मांस-भक्षण करता है, वह कृमिकुण्डमें जाता है। वहाँ अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके समान वर्षोंतक रोमका ही भक्षण करता हुआ वह पड़ा रहता है। फिर तीन जन्मोंतक म्लेच्छ जातिमें जन्म लेकर पुनः द्विज होता है॥ ६२-६३१/२ ॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंका यज्ञ कराता है, शूद्रोंका श्राद्धान्न खाता है तथा शूद्रोंका शव जलाता है, वह अपने शरीरमें जितने रोएँ हैं; उतने वर्षोंतक पूयकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। हे सुव्रते! वह उस नरकमें यमदूतके द्वारा यमदण्डसे पीटा जाता है तथा पीवका भोजन करते हुए पड़ा रहता है। तत्पश्चात् वह भारतवर्षमें जन्म लेकर सात जन्मोंतक शूद्र रहता है। उस समय वह अत्यन्त रोगी, दरिद्र, बहरा तथा गूँगा रहता है॥ ६४—६६१/२ ॥

कृष्णवर्णवाले तथा जिसके मस्तकपर कमलचिह्न विद्यमान हो, उस सर्पको जो मनुष्य मारता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतकके लिये सर्पकुण्ड नामक नरकमें जाता है। उसे वहाँपर सर्प काटते हैं तथा यमदूत उसे पीटते हैं। सर्पकी विष्ठा खाते हुए वह उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् उसे निश्चय ही सर्पयोनि प्राप्त होती है। तदनन्तर वह मानवयोनि प्राप्त करता है, उस समय वह दाद आदि रोगोंसे युक्त तथा अल्प आयुवाला होता है। उसके बाद सर्पके काटनेसे अत्यन्त कष्टपूर्वक उसकी मृत्यु होती है, यह निश्चित है॥ ६७—६९१/२ ॥

ब्रह्माके विधानके अनुसार रक्तपान आदिपर जीवित रहनेवाले [मच्छर आदि] क्षुद्र जन्तुओंको जो व्यक्ति मारता है, वह उन जन्तुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दंशकुण्ड और मशककुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। वे जन्तु उसे दिन-रात काटते रहते हैं, उसे वहाँ खानेको कुछ भी नहीं मिलता और वह जोर-जोरसे रोता-चिल्लाता रहता है। यमदूत उसके हाथ-पैर बाँधकर उसे पीटते हैं। तत्पश्चात् वह उन्हीं क्षुद्र जन्तुओंकी योनिमें जाता है और पुनः यवनजातिमें जन्म लेता है। तदनन्तर वह अंगहीन मानव होकर जन्म लेता है, तब उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ७०—७२१/२ ॥

जो मूर्ख मनुष्य मधुमक्खियोंको मारकर मधुका भक्षण करता है, वह उन मारी गयी मक्खियोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक गरलकुण्डमें वास करता है। वहाँपर उसे मधुमक्खियाँ काटती रहती हैं, वह सदा विषसे जलता रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह मक्खियोंकी योनिमें जन्म लेता है, तदनन्तर उसकी शुद्धि होती है॥ ७३-७४१/२ ॥

जो मनुष्य किसी विप्रको अथवा दण्ड न देनेयोग्य

किसी व्यक्तिको दण्डित करता है, वह वज्रके समान दाँतोंवाले भयानक जन्तुओंसे भरे वज्रदंष्ट्रकुण्ड नामक नरकमें शीघ्र ही जाता है। उस दण्डित व्यक्तिके शरीरमें जितने रोम होते हैं; उतने वर्षोंतक वह उस नरकमें निवास करता है। उसे नरकके वे कीड़े दिन-रात काटते रहते हैं और वह चीखता-चिल्लाता है। हे भद्रे! यमदूत उसे सदा पीटते रहते हैं, जिससे वह रोता है और प्रतिक्षण हाहाकार करता रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक सूअरकी योनिमें और तीन जन्मोंतक कौवेकी योनिमें उत्पन्न होता है, उसके बाद वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ७५—७८॥

जो मूर्ख धनके लोभसे प्रजाको दण्ड देता है, वह वृश्चिककुण्ड नामक नरकमें जाता है और उस प्रजाके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक उस नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक वह भारतवर्षमें बिच्छुओंकी योनिमें जन्म लेता है। इसके पश्चात् मनुष्ययोनिमें जन्म प्राप्त करता है तथा अंगहीन और रोगी होकर वह शुद्ध हो जाता है—यह सत्य है॥ ७९-८०॥

जो ब्राह्मण शस्त्र लेकर दूसरे लोगोंके लिये दूतका काम करता है, जो विप्र सन्ध्या-वन्दन नहीं करता तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख है, वह शर आदिके कुण्डोंमें (शरकुण्ड, शूलकुण्ड, खड्गकुण्ड आदिमें) अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। वह वहाँपर निरन्तर शर आदिसे बेधा जाता है, इसके पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ८१-८२॥

अभिमानमें चूर रहनेवाला जो व्यक्ति अन्धकारपूर्ण कारागारमें प्रजाओंको मारता-पीटता है, वह अपने इस दोषके प्रभावसे गोलकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वह गोलकुण्ड प्रतप्त कीचड़ तथा जलसे युक्त, अन्धकारपूर्ण, अत्यन्त भयंकर तथा तीखे दाँतोंवाले कीटोंसे परिपूर्ण है। उन कीड़ोंसे सदा काटा जाता हुआ वह व्यक्ति प्रजाओंके शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक उस नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् मनुष्यका जन्म पाकर वह उन प्रजाओंका सेवक बनता है, इस प्रकार क्रमसे वह शुद्ध हो जाता है॥ ८३—८५॥

जो मनुष्य सरोवरसे निकले हुए नक्र आदि जल-जन्तुओंकी हत्या करता है, वह नक्रकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ उस नक्रके शरीरमें विद्यमान काँटोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है। तत्पश्चात् वह निश्चितरूपसे नक्र आदि योनियोंमें जन्म लेता है और बार-बार दण्ड पानेपर शीघ्र ही उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ८६-८७॥

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जन्म लेकर कामवासनाके वशीभूत हो परायी स्त्रीका वक्ष, नितम्ब, स्तन तथा मुख देखता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक काककुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँ कौवे उसकी आँखें नोचते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक संतप्त होता रहता है॥ ८८-८९॥

जो मूढ भारतवर्षमें जन्म पाकर देवता तथा ब्राह्मणका स्वर्ण चुराता है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मन्थानकुण्ड नामक नरकमें अवश्य वास करता है। यमदूत उसकी आँखोंपर पट्टी बाँधकर उसे डण्डोंसे पीटते हैं। उसे वहाँ उनकी विष्ठा खानी पड़ती है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक अन्धा तथा सात जन्मोंतक दरिद्र रहता है। तदनन्तर वह पापी तथा अति क्रूर मनुष्य भारतमें स्वर्णकारका जन्म लेकर स्वर्णका व्यवसाय करता है॥ ९०—९२॥

हे सुन्दरि! जो मनुष्य भारतवर्षमें जन्म पाकर ताँबे तथा लोहेकी चोरी करता है, वह बीजकुण्ड नामक नरकमें जाता है और अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक वहाँ निवास करता है। वहाँ कीड़ोंकी विष्ठा खाता हुआ कीड़ोंसे ढकी आँखोंवाला वह प्राणी यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और तब कालक्रमसे वह शुद्ध होता है॥ ९३-९४॥

जो व्यक्ति भारतवर्षमें जन्म पाकर देवताओंकी मूर्ति तथा देवसम्बन्धी द्रव्योंकी चोरी करता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक दुस्तर वज्रकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे निवास करता है। उसे वहाँ भूखा रहना पड़ता है। उन वज्रोंके द्वारा यमदूतोंसे पीटे जानेपर उसका शरीर दग्ध हो जाता है और वह रोने-चिल्लाने लगता है, तत्पश्चात् उस मनुष्यकी शुद्धि हो जाती है॥ ९५-९६॥

जो मनुष्य ब्राह्मण और देवताके रजत, गव्य पदार्थ तथा वस्त्रोंको चुराता है; वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक तप्तपाषाणकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे वास करता है। तत्पश्चात् तीन जन्मोंतक कच्छप, तीन जन्मोंतक श्वेतकुष्ठी, एक जन्ममें श्वेत दागवाला और फिर श्वेत पक्षी होता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक रक्तदोषसे युक्त, शूलरोगसे पीडित तथा अल्पायु मनुष्य होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ ९७—९९॥

जो व्यक्ति देवता और ब्राह्मणके पीतल तथा कांसेके बर्तनोंका हरण करता है, वह अपने शरीरके लोमसंख्यक वर्षोंतक तीक्ष्णपाषाणकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। फिर वह सात जन्मोंतक भारतवर्षमें घोड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है। उसके बाद वह अधिक अंगोंवाला तथा पैरके रोगसे ग्रस्त होता है। तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १००-१०१॥

जो मनुष्य किसी व्यभिचारिणी स्त्रीका अन्न तथा उस स्त्रीकी जीविकापर आश्रित रहनेवाले व्यक्तिका अन्न खाता है, वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक लालाकुण्ड नामक नरकमें निश्चितरूपसे निवास करता है। वहाँपर वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है और अत्यन्त दुःखी होकर उसे वही लाला (लार) खानी पड़ती है। तदनन्तर वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर नेत्र तथा शूलके रोगसे पीड़ित होता है। इसके बाद वह क्रमसे शुद्ध हो जाता है॥ १०२-१०३॥

जो ब्राह्मण भारतवर्षमें म्लेच्छोंकी सेवा करनेवाला तथा मसिजीवी (मसिपर आश्रित रहकर अपनी जीविका चलानेवाला) है, वह अपने शरीरके रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक मसीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है और वहाँ बहुत दुःख पाता है। यमदूत उसे पीटते हैं और उसे वहाँपर उसी मसि (स्याही)-का सेवन करना पड़ता है। हे साध्वि! तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक काले रंगका पशु होता है। तदनन्तर वह तीन जन्मोंतक काले रंगका छाग बकरा होता है और उसके बाद तीन जन्मोंतक ताड़का वृक्ष होता है; तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता है॥ १०४—१०६॥

जो मनुष्य देवता अथवा ब्राह्मणके अन्न, फसल, ताम्बूल, आसन और शय्या आदिकी चोरी करता है; वह चूर्णकुण्ड नामक नरकमें जाता है और वहाँ सौ वर्षोंतक निवास करता है। वह यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक मेष और कुक्कुट होता है। उसके बाद वानर होता है। तदनन्तर भारतभूमिपर काशरोगसे पीड़ित, वंशहीन, दरिद्र तथा अल्पायु मनुष्य होता है; इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १०७—१०९॥

जो मनुष्य किसी ब्राह्मणके धनका हरण करके उससे चक्र (कोल्हू)-सम्बन्धी व्यवसाय करता है, वह चक्रकुण्ड नामक नरकमें डण्डोंसे पीटा जाता हुआ सौ वर्षोंतक वास करता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और तीन जन्मोंतक अनेक प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त रोगी तथा वंशहीन तैलकार (तेलका व्यापार करनेवाला) होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११०-१११॥

हे साध्वि! जो व्यक्ति गौओं और ब्राह्मणके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है, वह सौ युगोंतक वक्रतुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक वक्र अंगोंवाला, हीन अंगवाला, दरिद्र, वंशहीन तथा भार्याहीन मानव होता है। उसके बाद वह तीन जन्मोंतक गीध, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोर होता है; तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११२—११४॥

जो ब्राह्मण कछुएका निषिद्ध मांस खाता है, वह सौ वर्षोंतक कूर्मकुण्ड नामक नरकमें निवास करता है। वहाँपर उसे कछुए सदा नोंच-नोंचकर खाते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक कछुए, तीन जन्मोंतक सूअर, तीन जन्मोंतक बिल्ली और तीन जन्मोंतक मोरकी योनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ ११५-११६॥

जो व्यक्ति किसी देवता या ब्राह्मणका घृत, तेल आदि चुराता है, वह पापी ज्वालाकुण्ड और भस्मकुण्ड नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक सौ वर्षोंतक वास करते

हुए तेलमें पकाया जाता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक मछली और सात जन्मोंतक चूहा होता है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११७-११८॥

जो मनुष्य पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें किसी देवता या ब्राह्मणके सुगन्धित तेल, इत्र, आँवलाचूर्ण तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यकी चोरी करता है; वह दग्धकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वहाँपर वह अपने शरीरमें विद्यमान रोमोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक निवास करता है और दिन-रात दग्ध होता रहता है। इसके बाद वह सात जन्मोंतक दुर्गन्धिक होता है। पुनः तीन जन्मोंतक कस्तूरी मृग और सात जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा होता है, तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है॥ ११९—१२१॥

हे साध्वि! जो बलिष्ठ पुरुष भारतवर्षमें अपने बलसे अथवा छलसे अथवा हिंसाके द्वारा किसी दूसरेकी पैतृकसम्पत्तिका हरण करता है, वह तप्तसूचीकुण्ड नामक नरकमें वास करता है। वह उस नरकमें दिन-रात उसी तरह संतप्त होता रहता है, जैसे कोई जीव तप्त तेलमें निरन्तर दग्ध होता रहता है। जलाये जानेपर भी कर्मभोगके कारण उसका देह न तो भस्मसात् होता है और न तो उसका नाश ही होता है, अपितु वह पापी सात मन्वन्तरतक वहाँ सन्तप्त होता रहता है। वह सदा चिल्लाता रहता है, भूखा रहता है और यमदूत उसे पीटते रहते हैं। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होकर भूमिहीन और दरिद्र होता है। उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है और अपनी योनिमें जन्म प्राप्तकर पुनः शुभ आचरण करने लगता है॥ १२२—१२६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नानाकर्मविपाकफलकथन' नामक तैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

विभिन्न पापकर्म तथा उनके कारण प्राप्त होनेवाले नरकोंका वर्णन

यमराज बोले—[हे सावित्रि!] भारतवर्षमें जो कोई निर्दयी तथा क्रूर व्यक्ति खड्गसे किसी जीवको काटता है या कोई नरघाती धनके लोभसे किसी मनुष्यकी हत्या करता है, वह चौदहों इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त असिपत्रवन नामक नरकमें वास करता है। उनमें भी जो ब्राह्मणोंकी हत्या करता है, वह सौ मन्वन्तरतक वहाँ रहता है। तलवारकी धारसे उसके शरीरके अंग निरन्तर कटते रहते हैं। आहार न मिलने और यमदूतोंसे पीटे जानेके कारण वह जोर-जोरसे चिल्लाता रहता है। तत्पश्चात् वह सौ जन्मोंतक मन्थान नामक कीड़ा, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक मुर्गा, सात जन्मोंतक सियार, सात जन्मोंतक बाघ, तीन जन्मोंतक भेड़िया और सात जन्मोंतक मेंढक होता है, साथ ही वह यमदूतसे निरन्तर पीटा भी जाता है। इसके बाद वह भारतवर्षमें महिष होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १—५१/२॥

हे सति! जो मनुष्य गाँवों और नगरोंको जलाता है, वह क्षुरधार नामक नरकमें क्षत-विक्षत अंगोंवाला होकर तीन युगोंतक रहता है। तत्पश्चात् वह शीघ्र ही प्रेत होता है और मुँहसे आग उगलते हुए पृथ्वीपर घूमता रहता है। फिर वह सात जन्मोंतक अपवित्र मल-मूत्र आदि पदार्थोंको खाता रहता है और सात जन्मोंतक कपोत होता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक मानवयोनिमें उत्पन्न होता है और महान् शूलरोगसे पीड़ित रहता है। पुनः वह सात जन्मोंतक गलित कुष्ठरोगसे ग्रस्त रहता है और तत्पश्चात् वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ ६—८१/२॥

जो मनुष्य दूसरेके कानमें अपना मुख लगाकर परायी निन्दा करता है, परदोष निकालकर बड़ी-बड़ी डींग हाँकता है और देवता तथा ब्राह्मणकी निन्दा करता है, वह सूचीमुख नामक नरकमें तीन युगोंतक वास करता है। वहाँ उसके शरीरमें निरन्तर सूई चुभायी जाती है। तत्पश्चात् वह

सात जन्मोंतक बिच्छू, सात जन्मोंतक सर्प, सात जन्मोंतक वज्रकीट और सात जन्मोंतक भस्मकीटकी योनिमें रहता है। तदनन्तर मानवयोनिमें जन्म लेकर वह महाव्याधिसे ग्रस्त रहता है, पुनः शुद्ध हो जाता है॥ ९—१११/२ ॥

जो व्यक्ति गृहस्थोंके घरमें सेंध लगाकर वस्तुओंकी चोरी करता है और गौओं, बकरों तथा भेड़ोंको चुरा लेता है; वह गोकामुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ वह तीन युगोंतक वास करता है। तत्पश्चात् वह सात जन्मोंतक रोगग्रस्त गौकी योनिमें, तीन जन्मोंतक भेड़की योनिमें और तीन जन्मोंतक बकरेकी योनिमें जन्म पाता है। तत्पश्चात् वह मानवयोनिमें उत्पन्न होता है, उस समय वह नित्य रोगी, दरिद्र, भार्याहीन, बन्धु-बान्धवरहित और दुःखी रहता है, उसके बाद वह शुद्ध हो जाता है॥ १२—१५ ॥

सामान्य द्रव्योंकी चोरी करनेवाला नक्रमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह यमदूतके द्वारा पीटा जाता हुआ तीन वर्षोंतक निवास करता है, तदनन्तर वह सात जन्मोंतक रोगसे पीड़ित रहनेवाला बैल होता है। उसके बाद वह मानवयोनिमें जन्म लेकर महान् रोगोंसे ग्रस्त रहता है और फिर शुद्ध हो जाता है॥ १६-१७ ॥

जो मनुष्य गायों, हाथियों, घोड़ों और सर्पोंका वध करता है; वह महापापी गजदंश नामक नरकमें जाता है और तीन युगोंतक वहाँ वास करता है। यमदूत उसे हाथी-दाँतसे निरन्तर पीटते रहते हैं। तत्पश्चात् वह तीन जन्मोंतक हाथी, तीन जन्मोंतक घोड़े, तीन जन्मोंतक गाय और तीन जन्मोंतक म्लेच्छकी योनिमें पैदा होता है, तदनन्तर वह मनुष्य शुद्ध हो जाता है॥ १८-१९१/२ ॥

जो मनुष्य पानी पीती हुई प्यासी गायको वहाँसे हटा देता है, वह कीड़ोंसे भरे तथा तप्त जलसे युक्त गोमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँपर वह एक मन्वन्तरकी अवधितक सन्तप्त रहता है। तदनन्तर वह सात जन्मोंतक अन्त्य जातिमें उत्पन्न होकर गोहीन, महान् रोगी तथा दरिद्र मनुष्यके रूपमें रहता है। उसके बाद वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है॥ २०—२२ ॥

जो भारतवर्षमें शास्त्र-वचनकी आड़ लेकर गोहत्या, ब्रह्महत्या, स्त्रीहत्या, भिक्षुहत्या तथा भ्रूणहत्या करता है और जो अगम्या स्त्रीके साथ समागम करता है, वह महापापी व्यक्ति चौदह इन्द्रोंके स्थितिपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें वास करता है। यमदूतके द्वारा वह निरन्तर पीटा जाता है, जिससे उसके शरीरके अंग चूर-चूर हो जाते हैं। उसे कभी आगमें गिराया जाता है और कभी काँटोंपर लिटाया जाता है। उसे कभी तप्त तेलमें, कभी प्रतप्त लोहेमें और ताँबेमें डाला जाता है, जिससे वह प्रत्येक क्षण तपता रहता है। उसके बाद वह हजार जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर, सात जन्मोंतक कौवा और सात जन्मोंतक सर्प होता है। उसके बाद वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा और अनेक जन्मोंतक बैल होता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर कोढ़ी तथा दरिद्र होता है॥ २३—२८ ॥

सावित्री बोली—आतिदेशिकी ब्रह्महत्या तथा गोहत्या कितने प्रकारकी होती है? मनुष्योंके लिये कौन स्त्री अगम्य होती है और कौन मनुष्य सन्ध्यासे विहीन है, कौन अदीक्षित है, तीर्थ-प्रतिग्रही कौन है? कौन ग्रामयाजी द्विज है तथा कौन देवल ब्राह्मण है? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ रसोइयाका काम करता है, प्रमत्त है और शूद्रापति है—इन सभीके समस्त लक्षणोंको आप मुझे बतलाइये॥ २९—३१ ॥

धर्मराज बोले—हे साध्वि! हे सुन्दरि! श्रीकृष्णमें तथा उनकी मूर्तिमें, अन्य देवताओंमें तथा उनकी प्रतिमामें, शिवमें तथा शिवलिंगमें, सूर्यमें तथा सूर्यकान्तमणिमें, गणेशमें तथा उनकी मूर्तिमें और दुर्गामें तथा उनकी प्रतिमामें जो भेदबुद्धि रखता है, उसे [आतिदेशिकी] ब्रह्महत्या लगती है॥ ३२-३३ ॥

जो व्यक्ति अपने गुरु, अपने इष्टदेव तथा जन्म देनेवाली मातामें भेद मानता है; वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३४ ॥

जो भगवान् विष्णुके भक्तों तथा दूसरे देवताओंकी पूजा करनेवाले ब्राह्मणोंमें भेदबुद्धि करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३५ ॥

जो मनुष्य ब्राह्मणके चरणोदक तथा शालग्रामके

जलमें भेदबुद्धि करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३६॥

जो मनुष्य शिवके नैवेद्य तथा भगवान् विष्णुके नैवेद्यमें भेदबुद्धि रखता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ३७॥

जो व्यक्ति सर्वेश्वरोंके भी ईश्वर, सभी कारणोंके कारण, सबके आदिस्वरूप, सभी देवताओंके आराध्य, सबकी अन्तरात्मा, एक होते हुए भी अपनी योगमायाके प्रभावसे अनेक रूप धारण करनेमें सक्षम तथा निर्गुण श्रीकृष्णमें और ईशान शिवजीमें भेद करता है; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ३८-३९॥

जो मनुष्य भगवती शक्तिकी उपासना करनेवालेके प्रति द्वेषभाव रखता है तथा शक्ति-शास्त्रोंकी निन्दा करता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४०॥

जो मनुष्य वेदोंमें प्रतिपादित रीतिसे पितृपूजन तथा देवार्चनका त्याग कर देता है और निषिद्ध विधिसे कर्म सम्पन्न करता है, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ४१॥

जो भगवान् हृषीकेश और उनके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंकी निन्दा करता है और जो पवित्रोंके भी पवित्र, ज्ञानानन्द, सनातन, वैष्णवोंके परम आराध्य तथा देवताओंके सेव्य परमेश्वरकी पूजा नहीं करते; अपितु निन्दा करते हैं, वे ब्रह्महत्याके पापके भागी होते हैं॥ ४२-४३॥

जो कारणब्रह्मरूपिणी, सर्वशक्तिस्वरूपा, सर्वजननी, सर्वदेवस्वरूपिणी, सबके द्वारा वन्दित तथा सर्वकारणरूपिणी मूलप्रकृति महादेवीकी सदा निन्दा करते हैं; उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४४-४५॥

जो मनुष्य पुण्यदायिनी कृष्णजन्माष्टमी, रामनवमी, शिवरात्रि, एकादशी और रविवार—इन पाँच पुण्य पर्वोंके अवसरपर व्रत नहीं करते, वे चाण्डालसे भी बढ़कर पापी हैं और उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४६-४७॥

जो इस भारतवर्षमें अम्बुवाचीयोग (आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरण)-में पृथ्वी खोदते हैं या जलमें शौच आदि करते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४८॥

जो मनुष्य अपने गुरु, माता, पिता, साध्वी भार्या, पुत्र तथा अनिन्दनीय आचरण करनेवाली पुत्रीका भरण-पोषण नहीं करता; उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है॥ ४९॥

जिसका विवाह न हुआ हो, जिसने पुत्र न देखा हो, अर्थात् पुत्रवान् न हो तथा जो भगवान् श्रीहरिकी भक्तिसे विमुख हो, वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ ५०॥

जो मनुष्य भगवान् श्रीहरिको नैवेद्य अर्पण किये बिना भोजन करता है, विष्णुका नित्य पूजन नहीं करता और पवित्र पार्थिव लिंगका पूजन नहीं करता; उसे ब्रह्महत्यारा कहा गया है॥ ५१॥

जो किसी मनुष्यको गायपर प्रहार करते हुए देखकर उसे नहीं रोकता और जो गाय तथा ब्राह्मणके बीचसे निकलता है, वह गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ५२॥

जो मूर्ख ब्राह्मण गायोंको डंडोंसे पीटता है और बैलपर सवारी करता है, उसे प्रतिदिन गोहत्याका पाप लगता है॥ ५३॥

जो व्यक्ति गायोंको जूठा अन्न खिलाता है, बैलकी सवारी करनेवालेको भोजन कराता है और बैलकी सवारी करनेवालेका अन्न खाता है; उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५४॥

जो ब्राह्मण शूद्रापतिके यहाँ यज्ञ कराता है और उसका अन्न ग्रहण करता है, वह एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५॥

जो मनुष्य पैरसे अग्निका स्पर्श करता है, गायोंको पैरसे मारता है और स्नान करके बिना पैर धोये देवालयमें प्रवेश करता है; उसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५६॥

जो व्यक्ति गीले पैर भोजन करता है, गीले पैर सोता है और सूर्योदयके समय भोजन करता है; उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ५७॥

जो द्विज पति-पुत्रहीन स्त्रीका तथा योनिजीवी व्यक्तिका अन्न खाता है और जो त्रिकाल सन्ध्यासे विहीन है, उसे भी गोहत्याका पाप लगता है॥ ५८॥

जो स्त्री अपने पति तथा देवतामें भेदबुद्धि रखती है तथा कटु वचनोंसे अपने पतिको पीड़ित करती है, उसे निश्चितरूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ५९॥

जो मनुष्य गोचरभूमिको जोतकर उसमें अनाज बोता

है या तालाब अथवा दुर्गमें फसल उगाता है, उसे निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६०॥

जो व्यक्ति पुत्रके मोहसे अथवा अज्ञानके कारण गोवधके प्रायश्चित्तमें व्यतिक्रम करता है, उसे निश्चित-रूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६१॥

जो गायका स्वामी अराजकता तथा दैवोपद्रवके अवसरपर गायकी रक्षा नहीं करता तथा जो गायको पीड़ा पहुँचाता है, उस मूर्खको निश्चय ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६२॥

जो मनुष्य प्राणियों, देवमूर्ति, अग्नि, जल, नैवेद्य, पुष्प तथा अन्नको लाँघता है; वह निश्चितरूपसे गोहत्याके पापका भागी होता है॥ ६३॥

मेरे पास कुछ नहीं है—ऐसा जो सदा कहता है, झूठ बोलता है, दूसरोंको ठगता है और देवता तथा गुरुसे द्वेष करता है, उसे गोहत्याका पाप अवश्य लगता है॥ ६४॥

हे साध्वि! जो मनुष्य देवप्रतिमा, गुरु तथा ब्राह्मणको देखकर आदरपूर्वक प्रणाम नहीं करता, उसे निश्चित-रूपसे गोहत्याका पाप लगता है॥ ६५॥

जो ब्राह्मण प्रणाम करनेवालेको क्रोधवश आशीर्वाद नहीं देता और विद्यार्थीको विद्या प्रदान नहीं करता, उसे अवश्य ही गोहत्याका पाप लगता है॥ ६६॥

[हे साध्वि!] यह मैंने आतिदेशिकी ब्रह्महत्या और गोहत्याका वर्णन कर दिया, अब मैं मनुष्योंके लिये गम्य स्त्रीके विषयमें तुमसे कह रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६७॥

सभी मनुष्योंको केवल अपनी भार्याके साथ गमन करना चाहिये—यह वेदोंका आदेश है। उसके अतिरिक्त अन्य स्त्री अगम्य है—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ६८॥

हे सुन्दरि! यह सब सामान्य नियम कहा गया, अब कुछ विशेष नियमोंको सुनो। जो स्त्रियाँ विशेषरूपसे गमन करनेयोग्य नहीं हैं, उनके विषयमें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ६९॥

हे पतिव्रते! शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी पत्नी और ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी पत्नी अति अगम्य तथा निन्द्य है—ऐसा लोक और वेदमें प्रसिद्ध है॥ ७०॥

ब्राह्मणीके साथ समागम करनेसे शूद्र एक सौ गोहत्याके पापका भागी होता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरक प्राप्त करता है तथा उस शूद्रके साथ ब्राह्मणी भी कुम्भीपाक नरकमें जाती है। अतः शूद्रोंके लिये ब्राह्मणकी स्त्री तथा ब्राह्मणोंके लिये शूद्रकी स्त्री सर्वथा अगम्य है॥ ७१$^{१}/_{२}$॥

यदि कोई विप्र शूद्रा नारीका सेवन करता है तो वह वृषलीपति कहा जाता है। वह विप्रजातिसे च्युत हो जाता है और वह चाण्डालसे भी बढ़कर अधम कहा गया है। उसके द्वारा दिया गया पिण्ड विष्ठातुल्य तथा तर्पण मूत्रके समान हो जाता है। उसके द्वारा प्रदत्त पिण्ड आदि पितरों तथा देवताओंको प्राप्त नहीं होता। करोड़ों जन्मोंमें पूजन तथा तप करके उस ब्राह्मणके द्वारा अर्जित किया गया पुण्य शूद्रा नारीके साथ गमन करनेसे नष्ट हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। सुरापान करनेवाला, वेश्याओंका अन्न खानेवाला, शूद्रा नारीका सेवन करनेवाला, तप्त मुद्रा तथा तप्त त्रिशूल आदिसे दागे गये शरीरवाला तथा एकादशीको अन्न ग्रहण करनेवाला ब्राह्मण कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७२—७६॥

ब्रह्माजीने गुरुकी पत्नी, राजाकी पत्नी, सौतेली माँ, पुत्री, पुत्रवधू, सास, गर्भवती स्त्री, बहन, पतिव्रता स्त्री, सहोदर भाईकी पत्नी, मामी, दादी, नानी, मौसी, भतीजी, शिष्या, शिष्यकी पत्नी, भाँजेकी स्त्री और भाईके पुत्रकी पत्नीको अति अगम्या कहा है। जो नराधम काममोहित होकर इनके साथ गमन करता है, उसे वेदोंमें मातृगामी कहा गया है और उसे सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है। वह कोई भी कर्म करनेका पात्र नहीं रह जाता, वह अस्पृश्य है और लोकमें तथा वेदमें सब जगह उसकी निन्दा होती है। वह महापापी अत्यन्त क्लेशदायक कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ७७—८१॥

जो शास्त्रोक्त विधानसे सन्ध्या नहीं करता अथवा सन्ध्या करता ही नहीं और जो तीनों कालोंकी सन्ध्यासे रहित है, वह द्विज सन्ध्याहीन द्विज कहा गया है॥ ८२॥

जो अहंकारके कारण विष्णु, शिव, शक्ति, सूर्य तथा गणेश—इन देवोंके मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण नहीं करता, उसे

'अदीक्षित' कहा गया है॥ ८३॥

गंगाके प्रवाहके दोनों ओरकी चार हाथकी चौड़ी भूमिको गंगागर्भ कहते हैं; वहींपर भगवान् नारायण निवास करते हैं। उस नारायणक्षेत्रमें मृत्युको प्राप्त होनेवाला व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके धाममें पहुँच जाता है॥ ८४॥

वाराणसी, बदरिकाश्रम, गंगासागरसंगम, पुष्करक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र, कामाख्यापीठ, हरिद्वार, केदारक्षेत्र, मातृपुर, सरस्वती नदीके तट, पवित्र वृन्दावन, गोदावरीनदी, कौशिकीनदी, त्रिवेणीसंगम और हिमालय—इन तीर्थोंमें जो मनुष्य कामनापूर्वक दान लेता है; वह तीर्थप्रतिग्राही है और इस दानग्रहणके कारण वह कुम्भीपाक नरकमें जाता है॥ ८५—८८॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंकी सेवा करता है तथा उनके यहाँ यज्ञ आदि कराता है, उसे ग्रामयाजी कहा गया है। देवताकी पूजा करके अपनी आजीविका चलानेवाला ब्राह्मण देवल कहा गया है। शूद्रके यहाँ रसोई बनाकर आजीविका चलानेवाले विप्रको सूपकार कहा गया है। सन्ध्या तथा पूजनकर्मसे विमुख विप्रको प्रमत्त तथा पतित कहा गया है॥ ८९-९०॥

हे कल्याणि! वृषलीपतिके समस्त लक्षणोंका वर्णन मैंने कर दिया है। ये सब महापापी हैं और वे कुम्भीपाक नामक नरकमें जाते हैं। [हे साध्वि!] जो पापी दूसरे कुण्डोंमें जाते हैं, उनके विषयमें अब मैं तुम्हें बता रहा हूँ; ध्यानपूर्वक सुनो॥ ९१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धके 'नारायण-नारद-संवादमें सावित्री-उपाख्यानके अन्तर्गत नानाकर्मविपाकफलवर्णन' नामक चौंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

विभिन्न पापकर्मोंसे प्राप्त होनेवाली विभिन्न योनियोंका वर्णन

धर्मराज बोले—हे साध्वि! देवताओंकी उपासनाके बिना कर्म-बन्धनसे मुक्ति नहीं होती। शुद्ध कर्मका बीज शुद्ध होता है और कुकर्मसे नरककी प्राप्ति होती है॥ १॥

हे पतिव्रते! जो ब्राह्मण पुंश्चली स्त्रीका अन्न खाता है अथवा जो इसके साथ भोग करता है, वह मरनेके पश्चात् अत्यन्त कष्टदायक कालसूत्र नामक नरकमें जाता है और उस कालसूत्रमें सौ वर्षोंतक पड़ा रहता है। तत्पश्चात् मानवयोनिमें जन्म लेकर वह सदा रोगी रहता है। उसके बाद वह द्विज शुद्ध हो जाता है॥ २-३॥

एक पतिवाली स्त्री पतिव्रता तथा दो पतिवाली स्त्री कुलटा कही गयी है। तीन पतिवाली स्त्री धर्षिणी, चार पतिवाली पुंश्चली, पाँच-छः पतिवाली वेश्या तथा सात-आठ पतिवाली स्त्रीको पुंगी जानना चाहिये। इससे अधिक पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रीको महावेश्या कहा गया है, वह सभी जातिके लोगोंके लिये अस्पृश्य है॥ ४-५॥

जो द्विज कुलटा, धर्षिणी, पुंश्चली, पुंगी, वेश्या तथा महावेश्याके साथ समागम करता है; वह निश्चित-रूपसे मत्स्योद नामक नरकमें जाता है। उस नरकमें कुलटागामी सौ वर्षोंतक, धर्षिणीगामी उससे चार गुने अर्थात् चार सौ वर्षोंतक, पुंश्चलीगामी छः सौ वर्षोंतक, वेश्यागामी आठ सौ वर्षोंतक और पुंगीगामी एक हजार वर्षोंतक निवास करता है, महावेश्याके साथ गमन करनेवाले कामुक व्यक्तिको दस हजार वर्षोंतक वहाँ रहना पड़ता है; इसमें संशय नहीं है। वहाँपर यमदूतसे पीटा जाता हुआ वह तरह-तरहकी यातना भोगता है। उसके बाद कुलटागामी तीतर, धर्षिणीगामी कौवा, पुंश्चलीगामी कोयल, वेश्यागामी भेड़िया और पुंगीगामी सूअरकी योनिमें भारतवर्षमें सात जन्मोंतक पैदा होते रहते हैं—ऐसा कहा गया है। महावेश्यासे समागम करनेवाला मनुष्य सेमरका वृक्ष होता है॥ ६—१०१/२॥

जो अज्ञानी मनुष्य चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर भोजन करता है, वह अन्नके दानोंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक अरुन्तुद नामक नरककुण्डमें जाता है। तत्पश्चात् वह मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होता है। उस समय

वह उदररोगसे पीड़ित, प्लीहारोगसे ग्रस्त, काना तथा दन्तविहीन हो जाता है; उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ११-१२१/२ ॥

जो अपनी कन्याका वाग्दान करके उसे किसी अन्य पुरुषको प्रदान कर देता है, वह पांसुकुण्ड नामक नरकमें सौ वर्षोंतक वास करता है और उसी धूलराशिका भोजन करता है। हे साध्वि! जो मनुष्य अपनी कन्याके धनका हरण करता है, वह पांशुवेष्ट नामक नरककुण्डमें सौ वर्षोंतक वास करता है। वह वहाँ बाणोंकी शय्यापर लेटा रहता है और मेरे दूत उसे पीटते रहते हैं॥ १३-१४१/२ ॥

जो विप्र भक्तिपूर्वक पार्थिव शिवलिंगकी पूजा नहीं करता, वह त्रिशूल धारण करनेवाले भगवान् शिवके प्रति अपराधजन्य पापके कारण शूलप्रोत नामक अत्यन्त भयानक नरककुण्डमें जाता है। वहाँ सौ वर्षतक रहनेके पश्चात् वह सात जन्मोंतक वन्य पशु होता है। उसके बाद सात जन्मोंतक देवल होता है, फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १५-१६१/२ ॥

जो किसी विप्रको कुण्ठित कर देता है और उसके भयसे वह काँपने लगता है, वह उस द्विजके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक प्रकम्पनकुण्डमें निवास करता है॥ १७१/२ ॥

कोपाविष्ट मुखवाली जो स्त्री अपने पतिको क्रोधभरी दृष्टिसे देखती है और कटु वाणीमें उससे बात करती है, वह उल्मुक नामक नरककुण्डमें जाती है। वहाँपर मेरे दूत उसके मुखमें निरन्तर प्रज्वलित अंगार डालते रहते हैं और उसके सिरपर डंडेसे प्रहार करते रहते हैं। उसके पतिके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने वर्षोंतक उस स्त्रीको उस नरककुण्डमें रहना पड़ता है। उसके बाद मानवजन्म प्राप्त करके वह सात जन्मोंतक विधवा रहती है। विधवाका जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् वह रोगसे ग्रस्त हो जाती है, तत्पश्चात् उसकी शुद्धि हो जाती है॥ १८—२०१/२ ॥

जो ब्राह्मणी शूद्रके साथ भोग करती है, वह अन्धकूप नामक नरककुण्डमें जाती है। अन्धकारमय तथा तप्त शौचजलयुक्त उस कुण्डमें वह दिन-रात पड़ी रहती है और उसी तप्त शौचजलका भोजन करती है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटी जाती हुई वह वहाँ अत्यन्त सन्तप्त रहती है। वह स्त्री चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त उस शौचजलमें डूबी रहती है। तत्पश्चात् वह एक हजार जन्मतक कौवी, एक सौ जन्मतक सूकरी, एक सौ जन्मतक सियारिन, एक सौ जन्मतक कुक्कुटी, सात जन्मतक कबूतरी और सात जन्मतक वानरी होती है। इसके बाद वह भारतवर्षमें सर्वभोग्या चाण्डाली होती है, उसके बाद वह व्यभिचारिणी धोबिन होती है और सदा यक्ष्मारोगसे ग्रस्त रहती है। तत्पश्चात् वह कोढ़रोगसे युक्त तैलकारी (तेलिन) होती है और उसके बाद शुद्ध हो जाती है॥ २१—२५१/२ ॥

वेश्या वेधनकुण्डमें, पुंगी दण्डताडनकुण्डमें, महावेश्या जलरन्ध्रकुण्डमें, कुलटा देहचूर्णकुण्डमें, स्वैरिणी दलनकुण्डमें और धृष्टा शोषणकुण्डमें वास करती है। हे साध्वि! मेरे दूतसे पीटी जाती हुई वह वहाँ यातना भोगती रहती है। उसे एक मन्वन्तरतक निरन्तर विष्ठा और मूत्रका भक्षण करना पड़ता है। उसके बाद वह एक लाख वर्षतक विष्ठाके कीटके रूपमें रहती है और फिर उसकी शुद्धि हो जाती है॥ २६—२८१/२ ॥

यदि ब्राह्मण किसी परायी ब्राह्मणीके साथ, क्षत्रिय क्षत्राणीके साथ, वैश्य किसी वैश्याके साथ और शूद्र किसी शूद्राके साथ भोग करता है; तो अपने ही वर्णकी परायी स्त्रियोंके साथ भोग करनेवाले वे पुरुष कषाय नामक नरकमें जाते हैं। वहाँ वे कषाय (खारा) तथा गर्म जल पीते हुए सौ वर्षतक पड़े रहते हैं। उसके बाद वे ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि पुरुष शुद्ध होते हैं। उसी प्रकार यातनाएँ भोगकर वे ब्राह्मणी आदि स्त्रियाँ भी शुद्ध होती हैं—ऐसा पितामह ब्रह्माने कहा है॥ २९—३११/२ ॥

हे पतिव्रते! जो क्षत्रिय अथवा वैश्य किसी ब्राह्मणीके साथ समागम करता है, वह मातृगामी होता है और वह शूर्प नामक नरकमें वास करता है। ब्राह्मणीसहित वह मनुष्य सूपके आकारके कीड़ोंके द्वारा नोचा जाता है। वहाँ वह अत्यन्त गर्म मूत्रका सेवन करता है और मेरे दूत उसे पीटते हैं। वहाँपर वह चौदह इन्द्रोंके आयुपर्यन्त यातना भोगता है। उसके बाद वह सात जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक बकरा होता है, तत्पश्चात् वह शुद्ध हो जाता

है॥ ३२—३४½॥

जो मनुष्य हाथमें तुलसीदल लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता अथवा मिथ्या शपथ लेता है, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी प्रकार जो मनुष्य अपने हाथमें गंगाजल, शालग्रामशिला अथवा किसी देवताकी प्रतिमा लेकर की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो मनुष्य किसी दूसरे व्यक्तिके दाहिने हाथमें अपना दायाँ हाथ रखकर अथवा किसी देवालयमें स्थित होकर की गयी प्रतिज्ञाको पूर्ण नहीं करता, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। जो द्विज किसी ब्राह्मण अथवा गायका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, वह ज्वालामुख नामक नरकमें जाता है। उसी तरह जो मनुष्य अपने मित्रके साथ द्रोह करता है, कृतघ्न है, विश्वासघात करता है और झूठी गवाही देता है, वह भी ज्वालामुख नरकमें जाता है। ये लोग उस नरकमें चौदह इन्द्रोंकी स्थितिपर्यन्त निवास करते हैं। मेरे दूत अंगारोंसे उन्हें दागते हैं और बहुत पीटते हैं॥ ३५—४०½॥

तुलसीका स्पर्श करके मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक चाण्डाल होता है, उसके बाद उसकी शुद्धि होती है। गंगाजलका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला पाँच जन्मतक म्लेच्छ होता है, उसके बाद वह शुद्ध होता है। हे सुन्दरि! शालग्रामशिलाका स्पर्श करके की गयी प्रतिज्ञाका पालन न करनेवाला सात जन्मतक विष्ठाका कीड़ा होता है। किसी देवप्रतिमाका स्पर्श करके जो मिथ्या प्रतिज्ञा करता है, वह सात जन्मतक ब्राह्मण-गृहस्थके घर कीड़ा होता है, इसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है। किसीके दाहिने हाथपर अपना दाहिना हाथ रखकर मिथ्या शपथ लेनेवाला सात जन्मतक सर्प होता है। उसके बाद ब्रह्मज्ञानविहीन मानव होता है, पुनः शुद्ध हो जाता है। जो देवमन्दिरमें मिथ्या वचन बोलता है, वह सात जन्मतक देवल होता है। ब्राह्मण आदिको स्पर्श करके झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला निश्चितरूपसे बाघयोनिमें जन्म लेता है। उसके बाद वह तीन जन्मतक गूँगा और फिर तीन जन्मतक बहरा होता है। वह भार्यारहित, बन्धु-बान्धवोंसे विहीन तथा निःसन्तान रहता है, तत्पश्चात् शुद्ध हो जाता है। जो मित्रके साथ द्रोह करता है, वह नेवला होता है; जो दूसरोंका उपकार नहीं मानता, वह गैंडा होता है; जो विश्वासघाती होता है, वह सात जन्मतक भारतवर्षमें बाघ होता है और जो झूठी गवाही देता है, वह सात जन्मतक मेढक होता है। वह अपनी सात पीढ़ी पहले तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंका अधःपतन करा देता है॥ ४१—४७½॥

जो द्विज नित्यक्रियासे विहीन तथा जड़तासे युक्त है, वेदवाक्योंमें जिसकी आस्था नहीं है, जो कपटपूर्वक उनका सदा उपहास करता है, जो व्रत तथा उपवास नहीं करता और दूसरोंके उत्तम विचारोंकी निन्दा करता है, वह धूम्रान्ध नामक नरकमें धूमका ही भक्षण करते हुए एक सौ वर्षतक निवास करता है। उसके बाद वह क्रमसे सौ जन्मोंतक अनेक प्रकारका जलजन्तु होता है। तत्पश्चात् वह अनेक प्रकारकी मत्स्ययोनिमें जन्म लेता है, उसके बाद उसकी शुद्धि हो जाती है॥ ४८—५०½॥

जो मनुष्य देवता तथा ब्राह्मणकी सम्पत्तिका उपहास करता है, वह अपनी दस पीढ़ी पहले तथा दस पीढ़ी बादके पुरुषोंका पतन कराकर स्वयं धूम्र तथा अन्धकारसे युक्त धूम्रान्ध नामक नरकमें जाता है। वहाँपर धुएँसे कष्ट सहते हुए तथा धुएँका ही भोजन करते हुए वह चार सौ वर्षतक रहता है। उसके बाद वह भारतवर्षमें सात जन्मतक चूहेकी योनिमें जन्म पाता है। तदनन्तर वह अनेक प्रकारके पक्षियों तथा कीड़ोंकी योनिमें जाता है, उसके बाद अनेकविध वृक्ष तथा पशु होनेके अनन्तर वह मनुष्ययोनिमें जन्म ग्रहण करता है॥ ५१—५४॥

जो विप्र ज्योतिषविद्यासे अपनी आजीविका चलाता है, वैद्य होकर चिकित्सावृत्तिसे आजीविका चलाता है, लाख-लोहा आदिका व्यापार करता और रस आदिका विक्रय करता है; वह नागोंसे व्याप्त नागवेष्टन नामक नरकमें जाता है और नागोंसे आबद्ध होकर अपने शरीरके रोमप्रमाण वर्षोंतक वहाँ निवास करता है, तत्पश्चात् उसे नानाविध पक्षी-योनियाँ मिलती हैं और उसके बाद वह मनुष्य होता है, तत्पश्चात् वह सात जन्मतक गणक और सात जन्मतक वैद्य होता है। पुनः गोप, कर्मकार और

रंगकार होकर शुद्ध होता है ॥ ५५—५७१/२ ॥

हे पतिव्रते! मैंने प्रसिद्ध नरककुण्डोंका वर्णन कर दिया। इनके अतिरिक्त और भी छोटे-छोटे कुण्ड हैं, जो प्रसिद्ध नहीं हैं, अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये पापी लोग वहाँ जाते हैं और विविध योनियोंमें भ्रमण करते रहते हैं, अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? ॥ ५८-५९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नानाकर्मविपाकफलकथन' नामक पैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ३५ ॥

छत्तीसवाँ अध्याय

धर्मराजद्वारा सावित्रीसे देवोपासनासे प्राप्त होनेवाले पुण्यफलोंको कहना

सावित्री बोली— हे वेद-वेदांगमें पारंगत महाभाग धर्मराज! नानाविध पुराणों तथा इतिहासोंमें जो सारस्वरूप है, उसे प्रदर्शित कीजिये। अब आप मुझसे उस कर्मका वर्णन कीजिये; जो सबका सारभूत, सबका अभीष्ट, सर्वसम्मत, कर्मोंका उच्छेद करनेके लिये बीजरूप, परम श्रेष्ठ, मनुष्योंको सुख देनेवाला, सब कुछ प्रदान करनेवाला तथा सभीका सब प्रकारका कल्याण करनेवाला है और जिसके प्रभावसे सभी मनुष्य भय तथा दुःखका अनुभव नहीं करते, नरककुण्डोंको उन्हें देखना नहीं पड़ता, वे उनमें नहीं गिरते तथा जिससे उनका जन्म आदि नहीं होता है ॥ १—४ ॥

उन नरककुण्डोंके आकार कैसे हैं और वे किस प्रकार बने हैं? कौन-कौन पापी किस रूपसे वहाँ निवास करते हैं? अपने देहके भस्मसात् हो जानेपर मनुष्य किस देहसे परलोकमें जाता है और अपने द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मोंके फल भोगता है? दीर्घकालतक महान् क्लेशका भोग करनेपर भी उस देहका नाश क्यों नहीं होता और वह देह किस प्रकारका होता है? हे ब्रह्मन्! यह मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ ५—७ ॥

श्रीनारायण बोले— [हे नारद!] सावित्रीकी बात सुनकर धर्मराजने भगवान् श्रीहरिका स्मरण करते हुए कर्मबन्धनको काटनेवाली कथा कहनी आरम्भ की ॥ ८ ॥

धर्मराज बोले— हे वत्से! हे सुव्रते! चारों वेदों, धर्मशास्त्रों, संहिताओं, पुराणों, इतिहासों, पांचरात्र आदि धर्मग्रन्थों तथा अन्य धर्मशास्त्रों और वेदांगोंमें पाँच देवताओंकी उपासनाको सर्वेष्ट तथा सारभूत बताया गया है ॥ ९-१० ॥

यह देवोपासना जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक तथा संतापका नाश करनेवाली; सर्वमंगलरूप; परम आनन्दका कारण; सम्पूर्ण सिद्धियोंको प्रदान करनेवाली; नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेवाली; भक्तिरूपी वृक्षको अंकुरित करनेवाली; कर्मबन्धनरूपी वृक्षको काटनेवाली; मोक्षके लिये सोपानस्वरूप; शाश्वतपदस्वरूप; सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य तथा सामीप्य आदि मुक्तियोंको प्रदान करनेवाली तथा मंगलकारी बतायी गयी है ॥ ११—१३ ॥

हे शुभे! यमदूत इन नरककुण्डोंकी सदा रखवाली किया करते हैं। पंचदेवोंकी आराधना करनेवाले मनुष्योंको स्वप्नमें भी इन कुण्डोंका दर्शन नहीं होता। जो भगवतीकी भक्तिसे रहित हैं, वे ही मेरी पुरीको देखते हैं ॥ १४१/२ ॥

जो भगवान्‌के तीर्थोंमें जाते हैं, एकादशीका व्रत करते हैं, भगवान् श्रीहरिको नित्य प्रणाम करते हैं और उनकी प्रतिमाकी पूजा करते हैं, उन्हें भी मेरी भयंकर संयमिनी पुरीमें नहीं जाना पड़ता ॥ १५-१६ ॥

त्रिकाल सन्ध्यासे पवित्र तथा विशुद्ध सदाचारसे युक्त ब्राह्मण भी बिना भगवतीकी उपासनाके मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकते ॥ १७ ॥

अपने धार्मिक आचार-विचारसे सम्पन्न तथा अपने धर्ममें संलग्न रहनेवालोंको मृत्युलोक गये हुए मेरे दूत दिखायी नहीं पड़ते। मेरे दूत शिवके उपासकोंसे उसी तरह भयभीत होते हैं, जैसे गरुड़से सर्प। हाथमें पाश लिये हुए अपने दूतको शिवोपासककी ओर जाते देखकर मैं उसे रोक देता हूँ ॥ १८-१९ ॥

मेरे दूत भगवान् श्रीहरिके भक्तोंके आश्रमको छोड़कर

सभी जगह जा सकते हैं। श्रीकृष्णके मन्त्रोंकी उपासना करनेवालोंसे मेरे दूत गरुड़से सर्पकी भाँति डरते हैं॥ २०॥

[पाप करनेवालोंकी सूचीसे] देवीके मन्त्रोपासकोंके लिखे नामोंको चित्रगुप्त भयभीत होकर अपनी नखरूपी लेखनीसे काट देते हैं; साथ ही मधुपर्क आदिसे बार-बार उनका सत्कार करते हैं। हे सति! वे भक्त ब्रह्मलोक पार करके भगवतीके लोक (मणिद्वीप)-को चले जाते हैं॥ २१-२२॥

जिनके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, वे [भक्त] महान् सौभाग्यशाली हैं। वे हजारों कुलोंको पवित्र कर देते हैं। जलती हुई अग्निमें पड़े सूखे पत्तोंकी भाँति उनके पाप जल जाते हैं। उन भक्तोंको देखकर मोह भी भयभीत होकर मोहित हो जाता है, हे साध्वि! काम निर्मूल हो जाता है, लोभ तथा क्रोध नष्ट हो जाते हैं और मृत्यु विलीन हो जाती है; इसी प्रकार रोग, जरा, शोक, भय, काल, शुभाशुभ कर्म, हर्ष तथा भोग—ये सब प्रभावहीन हो जाते हैं॥ २३—२५ $^{1}/_{2}$ ॥

हे साध्वि! जो-जो लोग उस नारकीय पीड़ाको प्राप्त नहीं करते, उनके विषयमें मैंने बता दिया। अब आगम-शास्त्रके अनुसार देहका विवरण बताता हूँ, उसे सुनो। पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँच तत्त्व स्पष्ट ही हैं। स्रष्टाके सृष्टिविधानमें प्राणियोंके लिये एक देहबीज निर्मित होता है। पृथ्वी आदि पाँच भूतोंसे जो देह निर्मित होता है, वह कृत्रिम तथा नश्वर है और इस लोकमें ही वह भस्मसात् हो जाता है॥ २६—२८ $^{1}/_{2}$ ॥

उस शरीरमें जो जीव आबद्ध रहता है, वह उस समय अँगूठेके आकारवाले पुरुषके रूपमें हो जाता है। अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये वह जीव सूक्ष्मरूपसे उस देहको धारण करता है। मेरी पुरीमें प्रज्वलित अग्निमें डाले जानेपर भी वह देह भस्म नहीं होता॥ २९-३०॥

वह सूक्ष्म यातनाशरीर न तो जलमें नष्ट होता है और न दीर्घकालतक प्रहार करनेपर ही नष्ट होता है। उस शरीरको अस्त्र अथवा शस्त्रसे नष्ट नहीं किया जा सकता। अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाले काँटे, तपते हुए तेल, तप्त लोहे और तप्त पाषाणपर पड़नेपर तथा अत्यन्त तप्त प्रतिमासे सटानेपर और पूर्वकथित नरककुण्डोंमें गिरानेपर भी वह यातनाशरीर न तो दग्ध होता है और न भग्न ही होता है; अपितु कष्ट ही भोगता रहता है। [हे साध्वि!] आगमशास्त्रके अनुसार देहवृत्तान्त तथा कारण आदि मैंने बता दिये, अब तुम्हारी जानकारीके लिये नरककुण्डोंका लक्षण बताता हूँ॥ ३१—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें देवपूजनसे सर्वारिष्टनिवृत्तिवर्णन' नामक छत्तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

विभिन्न नरककुण्ड तथा वहाँ दी जानेवाली यातनाका वर्णन

धर्मराज बोले—हे साध्वि! वे सभी नरककुण्ड पूर्ण चन्द्रमाकी भाँति गोलाकार तथा बहुत गहरे हैं। वे अनेक प्रकारके पत्थरोंसे बनाये गये हैं। वे कुण्ड नाशवान् नहीं हैं और प्रलयकालतक बने रहते हैं। भगवान्की इच्छासे उनकी रचना की गयी है, वे पापियोंको क्लेश देनेवाले हैं और अनेक रूपोंवाले हैं॥ १-२॥

चारों ओरसे एक कोसके विस्तारवाले, सौ हाथ ऊपरतक उठती हुई लपटोंवाले तथा प्रज्वलित अंगारके रूपवाले कुण्डको अग्निकुण्ड कहा गया है। भयानक चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वह भरा रहता है। उन पापियोंको पीटनेवाले मेरे दूत निरन्तर उस कुण्डकी रक्षामें तत्पर रहते हैं॥ ३-४॥

तप्तजल तथा हिंसक जन्तुओंसे भरा पड़ा, अत्यन्त भयंकर तथा आधे कोसके विस्तारवाला कुण्ड तप्तकुण्ड कहा गया है, जो मेरे सेवकों तथा दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे युक्त रहता है। उनके दृढ़ प्रहार करनेपर वे नारकी जीव उसमें चिल्लाते रहते हैं॥ ५ $^{1}/_{2}$ ॥

तप्तक्षारोदकुण्ड एक कोश परिमाणवाला है, वह भयानक कुण्ड खौलते हुए खारे जलसे परिपूर्ण तथा कौवोंसे भरा पड़ा रहता है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जानेपर 'मेरी

रक्षा करो'—ऐसे शब्दका जोर-जोरसे उच्चारण करते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड परिपूर्ण रहता है। आहार न मिलनेके कारण सूखे कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले पापी उस कुण्डमें इधर-उधर भागते फिरते हैं॥ ६-७½ ॥

एक कोसके विस्तारवाला विट्कुण्ड है। वह दारुण नरक विष्ठासे सदा पूर्ण रहता है, उसमें अत्यन्त दुर्गन्ध फैली रहती है। मेरे महानिर्दयी दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, 'मेरी रक्षा करो'—ऐसे शब्द करके चिल्लाते हुए तथा विष्ठाका आहार करनेवाले पापियोंसे वह नरककुण्ड सदा भरा रहता है। विष्ठाके कीड़े उन पापियोंको सदा काटते रहते हैं॥ ८-९½ ॥

मूत्रकुण्ड नामक नरक खौलते हुए मूत्रसे भरा रहता है। उसमें मूत्रके कीड़े सर्वत्र व्याप्त रहते हैं। दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस नरककुण्डमें मूत्रके कीड़ोंद्वारा निरन्तर काटे जाते हुए तथा मेरे भयानक दूतों द्वारा लगातार पीटे जानेके कारण जोर-जोर चिल्लाते हुए और सूखे कण्ठ, ओष्ठ और तालुवाले महापापी भरे पड़े रहते हैं॥ १०-११½ ॥

श्लेष्मकुण्ड नामक नरक श्लेष्मा आदि अपवित्र वस्तुओं तथा उनके कीड़ोंसे सदा व्याप्त रहता है। वह नरककुण्ड श्लेष्माका ही निरन्तर भोजन करनेवाले पापीजनोंसे भरा पड़ा हुआ है॥ १२½ ॥

गरकुण्डका विस्तार आधे कोसका है, जो विषका भोजन करनेवाले पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। सर्पके समान आकारवाले, वज्रमय दाँतोंसे युक्त, सूखे कण्ठवाले तथा अत्यन्त भयंकर विषैले जन्तुओंके द्वारा काटे जाते हुए और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते तथा अत्यन्त भयके मारे काँपते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड भरा पड़ा रहता है॥ १३-१४½ ॥

आधे कोसके विस्तारवाला दूषिकाकुण्ड है, जो आँखोंके मल तथा कीटोंसे सदा भरा रहता है। कीड़ोंके काटनेपर व्याकुल होकर इधर-उधर सदा घूमते हुए पापियोंसे वह नरककुण्ड व्याप्त रहता है॥ १५½ ॥

वसारससे परिपूर्ण तथा चार कोसके विस्तारवाला वसाकुण्ड है, जो अत्यन्त दुःसह है। वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए वसाभोजी पापियोंसे पूर्णतः भरा रहता है॥ १६½ ॥

एक कोसके विस्तारवाला शुक्रकुण्ड है। शुक्रके कीड़ोंसे वह व्याप्त रहता है। कीड़ोंके द्वारा काटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ १७½ ॥

वापीके समान परिमाणवाला, दुर्गन्धित रक्तसे परिपूर्ण तथा अत्यन्त गहरा रक्तकुण्ड नामक नरक है। उसमें रक्तका पान करनेवाले पापी तथा उन्हें काटनेवाले कीड़े भरे रहते हैं॥ १८½ ॥

अश्रुकुण्ड नामक नरक चार बावलियोंके समान विस्तारवाला है। वह अत्यन्त तप्त तथा नेत्रके आँसुओंसे परिपूर्ण रहता है एवं वहाँके कीड़ोंके काटनेपर रोते हुए बहुत-से पापियोंसे भरा पड़ा रहता है॥ १९½ ॥

मनुष्यके शरीरके मलोंसे तथा मलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे युक्त गात्रकुण्ड नामक नरक है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा वहाँके कीटोंद्वारा काटे जाते हुए व्याकुल पापियोंसे वह कुण्ड व्याप्त रहता है॥ २०½ ॥

चार बावलियोंके समान विस्तारवाला कर्णविट्कुण्ड है। वह कानोंकी मैलसे सदा भरा रहता है। उसी मैलको खानेवाले तथा कीड़ोंके काटनेपर चिल्लाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ २१½ ॥

मनुष्योंकी मज्जासे भरा हुआ तथा अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मज्जाकुण्ड है। चार बावलियोंके विस्तारवाला वह नरककुण्ड महापापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २२½ ॥

एक वापीके समान विस्तारवाला अत्यन्त भयानक मांसकुण्ड है। वह कुण्ड गीले मांसों तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे भरा रहता है। कन्याका विक्रय करनेवाले वे पापी वहाँ रहकर उसी मांसका भक्षण करते हैं और भयानक कीड़ोंके काटनेपर अत्यन्त भयभीत होकर 'बचाओ-बचाओ'—इस शब्दको बोलते रहते हैं॥ २३-२४½ ॥

चार बावलियोंके विस्तारवाले नखादि चार कुण्ड हैं। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड भरे पड़े रहते हैं॥ २५½ ॥

ताम्रमयी उल्कासे युक्त तथा जलते हुए ताँबेके सदृश ताम्रकुण्ड है। वह ताँबेकी लाखों अतितप्त प्रतिमाओंसे

परिपूर्ण रहता है। दो कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे सटानेपर रोते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ २६-२७१/२॥

प्रज्वलित लोहधार तथा दहकते हुए अंगारोंसे युक्त लोहकुण्ड लोहेकी प्रतिमाओंसे चिपके हुए तथा रोते हुए पापियोंसे भरा रहता है। वहाँ निरन्तर दग्ध होते हुए तथा प्रत्येक प्रतिमासे शिलष्ट और मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर भयभीत होकर 'रक्षा करो, रक्षा करो'—ऐसे शब्द करनेवाले महापापियोंसे भरे पड़े, भयानक, दो कोसके विस्तारवाले तथा अन्धकारमय उस कुण्डको लोहकुण्ड कहा गया है॥ २८—३०१/२॥

चर्मकुण्ड और तप्तसुराकुण्ड आधी बावलीके प्रमाणवाले हैं। चर्म खाते हुए तथा सुरापान करते हुए और मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वे कुण्ड सदा व्याप्त रहते हैं॥ ३११/२॥

कण्टकमय वृक्षोंसे भरा शाल्मलीकुण्ड है। एक कोसके विस्तारवाले उस दु:खप्रद कुण्डमें लाखों पुरुष समा सकते हैं। वहाँ शाल्मलीवृक्षसे गिरकर तथा मेरे दूतोंद्वारा गिराये जाकर धनुषकी लम्बाईवाले अत्यन्त तीखे काँटे बिछे रहते हैं। एक-एक करके सभी पापियोंके अंग काँटोंसे छिद उठते हैं। सूखे तालुवाले वे पापी 'मुझे जल दो'—ऐसा शब्द करते रहते हैं। जिस प्रकार प्रतप्त तेलमें पड़नेपर जीव छटपटा उठते हैं, वैसे ही मेरे दूतोंके डण्डोंके प्रहारसे भग्न सिरवाले वे महापापी महान् भयसे अत्यधिक व्याकुल होकर चकराने लगते हैं॥ ३२—३५१/२॥

विषोदकुण्ड एक कोसके परिमाणवाला है। वह कुण्ड तक्षकके समान विषधर जीवों, मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए और उसी विषका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ३६१/२॥

प्रतप्ततैलकुण्डमें सदा खौलता हुआ तेल भरा रहता है। उसमें कीड़े आदि नहीं रहते। चारों ओर जलते हुए अंगारोंसे घिरा हुआ वह नरककुण्ड मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेसे चीत्कार करते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए महापापियोंसे भरा रहता है। एक कोसके विस्तारवाला वह नरककुण्ड बड़ा ही भयानक, क्लेशप्रद तथा अन्धकारपूर्ण है॥ ३७-३८१/२॥

कुन्तकुण्ड त्रिशूलके समान आकारवाले तथा अत्यन्त तीखी धारवाले लौहके अस्त्रोंसे परिपूर्ण है। चार कोसके विस्तारवाला वह नरककुण्ड शस्त्रोंकी शय्याके समान प्रतीत होता है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए, भालोंसे बिँधे हुए, सूखे कंठ; ओठ तथा तालुवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ३९-४०१/२॥

हे साध्वि! शंकु तथा सर्पके आकार-प्रकारवाले, भयंकर, तीक्ष्ण दाँतोंवाले तथा विकृत कीड़ोंसे युक्त कृमिकुण्ड है। वह अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है॥ ४१-४२॥

पूयकुण्ड चार कोसके विस्तारवाला कहा गया है। मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए पूयभक्षी पापियोंसे वह कुण्ड परिपूर्ण रहता है॥ ४३॥

सर्पकुण्ड ताड़के वृक्षके समान लम्बाईवाले करोड़ों सर्पोंसे युक्त है। सर्पोंसे जकड़े हुए शरीरवाले, सर्पोंके द्वारा डँसे जाते हुए तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर चीत्कार करते हुए पापियोंसे वह कुण्ड सदा भरा रहता है॥ ४४१/२॥

मशक आदि जन्तुओंसे पूर्ण मशककुण्ड, दंशकुण्ड और गरलकुण्ड—ये तीन नरक हैं। उन नरकोंका विस्तार आधे-आधे कोसका है। जिनके हाथ बँधे रहते हैं, रुधिरसे सभी अंग लाल रहते हैं तथा जो मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जानेपर 'हा-हा'—ऐसा शब्द करते रहते हैं—उन महापापियोंसे वे कुण्ड भरे रहते हैं॥ ४५-४६१/२॥

वज्र तथा बिच्छुओंसे परिपूर्ण वज्रकुण्ड तथा वृश्चिककुण्ड है। आधी वापीके विस्तारवाले वे कुण्ड वज्र तथा बिच्छुओंसे निरन्तर डँसे जाते हुए पापियोंसे भरे रहते हैं॥ ४७१/२॥

शरकुण्ड, शूलकुण्ड और खड्गकुण्ड—ये तीन नरककुण्ड उन्हीं शर, शूल और खड्गसे परिपूर्ण हैं। आधी वापीके परिमाणवाले वे कुण्ड उन तीनों अस्त्रोंसे बिँधे तथा रक्तसे लोहित शरीरवाले पापियोंसे व्याप्त रहते हैं॥ ४८१/२॥

गोलकुण्ड तप्त जलसे भरा हुआ तथा अन्धकारसे पूर्ण रहता है। आधी वापीके विस्तारवाला वह नरककुण्ड शंकुके समान आकारवाले कीड़ोंसे भक्षित होनेवाले पापियोंसे

भरा रहता है। वह कुण्ड कीड़ोंके काटने तथा मेरे दूतोंके मारनेपर भयभीत तथा व्याकुल होकर रोते हुए पापियोंसे सदा व्याप्त रहता है॥ ४९-५०१/२ ॥

अत्यन्त दुर्गन्धसे युक्त तथा पापियोंको निरन्तर दुःख देनेवाला नक्रकुण्ड है। नक्र आदि करोड़ों भयानक तथा विकृत आकारवाले जलचर जन्तुओंके द्वारा खाये जाते हुए पापियोंसे आधी वापीके परिमाणवाला वह कुण्ड भरा रहता है॥ ५१-५२ ॥

काककुण्ड भयानक तथा विकृत आकारवाले कौओंके द्वारा नोचे जाते हुए तथा विष्ठा, मूत्र, श्लेष्मभोजी सैकड़ों-करोड़ों पापियोंसे सदा परिपूर्ण रहता है॥ ५३ ॥

मन्थानकुण्ड तथा बीजकुण्ड—इन्हीं दोनों मन्थान तथा बीज नामक कीटोंसे भरे रहते हैं। इन कुण्डोंका परिमाण सौ धनुषके बराबर है। कीड़ोंके काटनेपर निरन्तर चीत्कार करनेवाले पापियोंसे वे कुण्ड व्याप्त रहते हैं॥ ५४ ॥

हाहाकार करनेवाले पापियोंसे व्याप्त वज्रकुण्ड है। वज्रके समान दाँतवाले जन्तुओंसे युक्त तथा अत्यन्त घने अन्धकारसे आच्छादित उस नरककुण्डका विस्तार सौ धनुषके परिमाणके बराबर है॥ ५५ ॥

दो वापीके समान विस्तारवाला, अत्यन्त तप्त पत्थरोंसे निर्मित तथा जलते हुए अंगारके सदृश तप्तपाषाणकुण्ड है। वह व्याकुल होकर इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे व्याप्त रहता है॥ ५६ ॥

छुरेकी धारके समान तीक्ष्ण पाषाणोंसे बना हुआ विशाल तीक्ष्णपाषाणकुण्ड है। वह महापापियोंसे परिपूर्ण रहता है। रक्तसे लथपथ जीवोंसे भरा हुआ लालाकुण्ड है। कोसभरकी गहराईवाला यह कुण्ड मेरे दूतोंसे निरन्तर पीटे जाते हुए पापियोंसे परिपूर्ण रहता है। इसी प्रकार सौ धनुषके परिमाणवाला मसीकुण्ड है, वह काजलके समान वर्णवाले तप्त पत्थरोंसे बना हुआ है। मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए तथा इधर-उधर भागते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूर्णरूपसे भरा रहता है॥ ५७-५८१/२ ॥

तपे हुए बालूसे परिपूर्ण एक कोसके विस्तारवाला चूर्णकुण्ड है। [अत्यन्त दहकते हुए बालूसे] दग्ध उसी बालूका भोजन करनेवाले तथा मेरे दूतोंके द्वारा पीटे जाते हुए पापियोंसे वह कुण्ड पूरित रहता है॥ ५९१/२ ॥

कुम्हारके चक्रकी भाँति निरन्तर घूमता हुआ, अत्यन्त तीक्ष्ण तथा सोलह अरोंवाला चक्रकुण्ड क्षत-विक्षत अंगोंवाले पापियोंसे भरा रहता है। चार कोसके विस्तारवाला, कन्दराके आकारवाला, अत्यन्त गहरा, टेढ़ा-मेढ़ा तथा सदा खौलते हुए जलसे परिपूर्ण वक्रकुण्ड है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारसे परिपूर्ण वह कुण्ड जल-जन्तुओंके काटने तथा तप्त जलसे दग्ध होनेके कारण चीत्कार करते हुए महापापियोंसे भरा रहता है॥ ६०—६२१/२ ॥

विकृत आकारवाले अत्यन्त भयानक करोड़ों कच्छपोंसे भरा हुआ कूर्मकुण्ड है। जलमें रहनेवाले कछुए वहाँके पापियोंको नोंचते रहते हैं। प्रज्वलित ज्वालाओंसे व्याप्त ज्वालाकुण्ड है, जो एक कोसके विस्तारमें है। वह क्लेशप्रद कुण्ड चीखते-चिल्लाते हुए पापियोंसे सदा भरा रहता है॥ ६३-६४१/२ ॥

एक कोसकी गहराईवाला भस्मकुण्ड है। उस कुण्डमें अत्यन्त तपता हुआ भस्म व्याप्त रहता है। जलते भस्मको खानेके कारण वहाँके पापियोंके अंगोंमें निरन्तर दाह उत्पन्न होता रहता है। जो तप्त पाषाण तथा लोहेके समूहोंसे परिपूर्ण तथा जले हुए शरीरवाले पापियोंसे युक्त नरक है, उसे दग्धकुण्ड कहा गया है। वह अत्यन्त भयंकर, गहरा,एक कोसके विस्तारवाला तथा अन्धकारमय कुण्ड मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए तथा जलाये जाते हुए शुष्क तालुवाले पापियोंसे भरा रहता है॥ ६५—६७१/२ ॥

जो बड़ी-बड़ी लहरोंवाले खौलते हुए खारे जल तथा नाना प्रकारके शब्द करनेवाले जल-जंतुओंसे युक्त है, चार कोसके विस्तारमें फैला हुआ है, अत्यन्त गहरा तथा अन्धकारपूर्ण है, जल-जन्तुओंके काटनेपर चीत्कार करनेवाले तथा तापसे जलते रहनेवाले और घोर अन्धकारके कारण एक-दूसरेको न देख पानेवाले पापियोंसे सदा भरा रहता है, उस भयानक कुण्डको प्रतप्तसूचीकुण्ड कहा गया है॥ ६८—७०१/२ ॥

तलवारकी धारके समान तीखे पत्तोंवाले ऊँचे-ऊँचे ताड़के वृक्षोंके नीचे स्थित, एक कोसके परिमाणवाले, उन वृक्षोंसे गिरे हुए पत्तोंसे परिपूर्ण, वृक्षोंके अग्रभागसे गिराये जानेपर 'रक्षा करो-रक्षा करो'—ऐसा शब्द करनेवाले अधम पापियोंके रक्तसे भरे हुए, अत्यन्त गहरे, अन्धकारपूर्ण,

रक्तके कीड़ोंसे व्याप्त तथा अत्यन्त भयानक कुण्डको असिपत्रकुण्ड कहा गया है॥ ७१—७३१/२॥

क्षुरधारकुण्ड सौ धनुषके बराबर विस्तारवाला, छुरेकी धारके समान तीखे अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे परिपूर्ण और बड़ा ही भयानक है॥ ७४१/२॥

सूईकी नोंकवाले अस्त्रोंसे युक्त, पापियोंके रक्तसे सदा परिपूर्ण, पचास धनुषके बराबर विस्तारवाले तथा क्लेशप्रद कुण्डको सूचीमुखकुण्ड कहा गया है॥ ७५१/२॥

जो कुण्ड 'गोका' नामक जन्तुविशेषके मुखके समान आकृतिवाला, कुएँके समान गहरा, बीस धनुषके बराबर विस्तारवाला तथा महापापियोंके लिये अत्यन्त कष्टदायक है, वह गोकामुखकुण्ड है। उस नरकके कीड़ोंके काटनेसे वहाँके पापी जीव सदा अपना मुख नीचे किये रहते हैं॥ ७६-७७१/२॥

नक्र (मगर)-के मुखके समान आकृतिवाले कुण्डको नक्रमुखकुण्ड कहते हैं। वह सोलह धनुषके बराबर विस्तारवाला, गहरा, कुएँके सदृश तथा पापियोंसे परिपूर्ण है। गजदंशकुण्डको सौ धनुषके बराबर विस्तारवाला बताया गया है॥ ७८-७९॥

तीस धनुषके बराबर विस्तृत, गोके मुखकी आकृतिके तुल्य और पापियोंको निरन्तर क्लेश प्रदान करनेवाले कुण्डको गोमुखकुण्ड कहा गया है॥ ८०॥

कुम्भीपाककुण्ड कालचक्रसे युक्त होकर निरन्तर चक्कर काटनेवाला तथा कुम्भके समान आकारवाला है। अत्यन्त भयानक तथा अन्धकारपूर्ण इस कुण्डका विस्तार चार कोसमें है। हे साध्वि! यह नरक एक लाख पौरुष* (पोरसा) मानके बराबर गहरा तथा विस्तृत है। उसमें कहीं-कहीं तप्ततैल तथा ताम्रकुण्ड आदि अनेक कुण्ड हैं। उस कुण्डमें बड़े-बड़े पापी अचेत होकर पड़े रहते हैं। भयंकर कीड़ोंके काटनेपर चीत्कार करते हुए वे पापी एक-दूसरेको देखतक नहीं पाते हैं। मूसलों तथा मुद्गरोंसे मेरे दूतोंद्वारा पीटे जाते हुए वे क्षण-क्षणमें कभी चक्कर खाने लगते हैं, कभी गिर पड़ते हैं और कभी मूर्च्छित हो जाते हैं। वे पापी क्षण-प्रतिक्षण यमदूतोंके द्वारा गिराये जानेपर रोने लगते हैं। हे सुन्दरि! जितने पापी अन्य सभी कुण्डोंमें हैं, उनसे चौगुने पापी केवल इस अति दु:खप्रद कुम्भीपाक नरकमें हैं। दीर्घकालतक यातना पानेपर भी उन भोगदेहोंका विनाश नहीं होता। वह कुम्भीपाक समस्त कुण्डोंमें मुख्य कहा गया है॥ ८१—८६१/२॥

जहाँ कालके द्वारा निर्मित सूत्रसे बँधे हुए प्राणी निवास करते हैं, वे मेरे दूतोंके द्वारा क्षणभरमें ऊपर उठाये जाते हैं तथा क्षणभरमें डुबो दिये जाते हैं। उनकी साँसें बहुत देरतक बन्द रहती हैं, पुन: वे अचेत हो जाते हैं तथा हे सुन्दरि! देहभोगके कारण पापियोंको जहाँ महान् क्लेश प्राप्त होता है तथा जो खौलते जलसे युक्त है, उसे कालसूत्रकुण्ड कहा गया है॥ ८७—८९॥

अवट नामक एक कूप है, उसीको मत्स्योदकुण्ड कहा गया है। चौबीस धनुषके बराबर विस्तारवाला वह कुण्ड प्रतप्त जलसे सदा परिपूर्ण रहता है। मेरे दूतोंके द्वारा निरन्तर पीटे जाते हुए, दग्ध अंगोंवाले महापापियोंसे युक्त उस नरकको अवटोदकुण्ड भी कहा गया है॥ ९०-९१॥

सौ धनुषकी लम्बाईके बराबर विस्तारवाले जिस नरककुण्डके जलका स्पर्श होते ही उसमें अकस्मात् गिरे हुए पापियोंको सभी व्याधियाँ ग्रस्त कर लेती हैं तथा जो अरुन्तुद नामक भयानक कीड़ोंके काटनेसे हाहाकार मचाते हुए पापी जीवोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे अरुन्तुदकुण्ड कहा गया है॥ ९२-९३॥

पांसुकुण्ड अत्यन्त तपी हुई धूलसे भरा रहता है। उसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है। जलती हुई धूलसे दग्ध त्वचावाले तथा उसी धूलका भक्षण करनेवाले पापियोंसे वह कुण्ड भरा रहता है॥ ९४॥

जिसमें गिरते ही पापी पाशसे आवेष्टित हो जाता है तथा जिसका विस्तार कोसभरका है, उसे पाशवेष्टनकुण्ड कहा गया है॥ ९५॥

जिसमें गिरते ही पापी शूलसे जकड़ उठता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके परिमाणके बराबर है, उसे शूलप्रोतकुण्ड कहा गया है॥ ९६॥

जिस नरककुण्डमें गिरनेवाले पापियोंके शरीरमें कँपकँपी उठने लगती है, उसे प्रकम्पनकुण्ड कहा जाता है। आधे कोसके विस्तारवाला वह कुण्ड सदा बर्फके समान अत्यन्त शीतल जलसे भरा रहता है॥ ९७॥

जिस नरकमें रहनेवाले पापियोंके मुखमें मेरे दूत

* सामान्य पुरुषकी लम्बाईको पौरुष (पोरसा) कहा गया है।

जलती हुई लकड़ी डाल देते हैं, वह उल्कामुखकुण्ड है। जलती हुई लकड़ियोंसे युक्त उस कुण्डका विस्तार बीस धनुषके बराबर है॥ ९८॥

एक लाख पोरसेके बराबर गहरे, सौ धनुषके बराबर विस्तृत, भयानक, अनेक प्रकारके कीड़ोंसे युक्त, कुएँके समान गोलाकार तथा सदा अन्धकारसे व्याप्त नरकको अन्धकूप कहा गया है। वह कीड़ोंके काटनेपर परस्पर लड़नेवाले, खौलते हुए जलसे दग्ध शरीरवाले, कीड़ोंके द्वारा निरन्तर काटे जाते हुए और अन्धकारके कारण नेत्रोंसे देखनेमें असमर्थ पापियोंसे युक्त रहता है॥ ९९—१०१॥

जहाँ पापियोंको अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे वेधा जाता है तथा जिसका विस्तार बीस धनुषके प्रमाणके बराबर है, उसे वेधनकुण्ड कहा गया है॥ १०२॥

जहाँ मेरे दूतोंके द्वारा पापीलोग पीटे जाते हैं तथा जो सोलह धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह दण्डताडनकुण्ड है॥ १०३॥

जहाँ जाते ही पापी मछलियोंकी भाँति बड़े-बड़े जालोंमें फँस जाते हैं तथा जो बीस धनुषोंके प्रमाणवाला है, वह जालरन्ध्रकुण्ड कहा गया है॥ १०४॥

जिस कुण्डमें गिरनेवाले पापियोंकी देह चूर-चूर हो जाती है, जहाँके पापियोंके पैरमें लोहेकी बेड़ियाँ पड़ी रहती हैं,जो करोड़ पोरसा गहरा तथा बीस धनुषके बराबर विस्तृत है, जो पूर्णरूपसे अन्धकारसे व्याप्त है तथा जहाँ पापी जीव मूर्च्छित होकर जड़की भाँति पड़े रहते हैं—उसे देहचूर्णकुण्ड कहा गया है॥ १०५-१०६॥

जहाँ मेरे दूत पापियोंको कुचलते तथा पीटते हैं तथा जो सोलह धनुषके विस्तारमें है, उसे दलनकुण्ड कहा गया है॥ १०७॥

प्रतप्त बालूसे व्याप्त होनेके कारण जहाँ गिरते ही पापीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख जाते हैं; जो तीस धनुषके परिमाणके विस्तारवाला तथा सौ पोरसा गहरा है, जो सदा अन्धकारसे आच्छादित रहता है तथा पापियोंको महान् कष्ट पहुँचानेवाला है, उसे शोषणकुण्ड कहा गया है॥ १०८-१०९॥

जो अनेक प्रकारके चर्मोंके कषाय (कसैले) जलसे परिपूर्ण रहता है, जिसका विस्तार सौ धनुषके बराबर है, जो दुर्गन्धसे भरा रहता है तथा जो चमड़ेके आहारपर रहनेवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, उसे कषकुण्ड कहा गया है॥ ११०॥

हे साध्वि! जिस कुण्डका मुख सूपके आकारका है, जिसका विस्तार बारह धनुषके बराबर है, जो तपते हुए लौहकणोंसे व्याप्त रहता है, जहाँ सर्वत्र पापी भरे रहते हैं, जो दुर्गन्धसे परिपूर्ण रहता है तथा जो उसी लोहबालुकाका भक्षण करनेवाले पापियोंसे भरा रहता है, उसे शूर्पकुण्ड कहा जाता है॥ १११-११२॥

हे सुन्दरि! जो प्रतप्त बालूसे भरा रहता है, महान् पापियोंसे युक्त रहता है, जिसके भीतर आगकी लपटें उठती रहती हैं, जिसका मुखभाग ज्वालाओंसे सदा व्याप्त रहता है, जिसका विस्तार बीस धनुषके बराबर है, जो ज्वालाओंसे दग्ध शरीरवाले पापियोंसे सदा पूरित रहता है, निरन्तर महान् कष्ट प्रदान करनेवाले उस कुण्डको ज्वालामुखकुण्ड कहा गया है॥ ११३—११४$^{१}/_{२}$॥

जिसमें गिरते ही पापी मनुष्य मूर्च्छित हो जाता है, जिसका भीतरी भाग तपती हुई ईंटोंसे युक्त है, जो आधी बावड़ीके विस्तारवाला है, वह जिह्मकुण्ड है। धुएँके कारण अन्धकारसे युक्त, धूम्रसे अन्धे हो जानेवाले पापियोंसे सदा भरे रहनेवाले, सौ धनुषके बराबर परिमाणवाले तथा श्वास लेनेहेतु बहुतसे छिद्रोंसे युक्त नरककुण्डको धूम्रान्धकुण्ड कहा गया है। जहाँ जाते ही पापी नागोंके द्वारा लपेट लिये जाते हैं, जो सौ धनुषके तुल्य परिमाणवाला है तथा जो नागोंसे सदा परिपूर्ण रहता है, उसे नागवेष्टनकुण्ड कहा गया है। [हे सावित्रि!] सुनो, मैंने इन छियासी नरककुण्डों तथा इनके लक्षणोंका वर्णन कर दिया; अब तुम क्या सुनना चाहती हो?॥ ११५—११८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें नाना नरककुण्डोंका वर्णन' नामक सैंतीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३७॥



अड़तीसवाँ अध्याय

धर्मराजका सावित्रीसे भगवतीकी महिमाका वर्णन करना और उसके पतिको जीवनदान देना

सावित्री बोली—[हे प्रभो!] आप मुझे भगवतीकी भक्ति प्रदान कीजिये; वह देवीभक्ति समस्त तत्त्वोंका तत्त्व, मनुष्योंके लिये मुक्तिद्वारका मूल कारण, नरकरूपी समुद्रसे तारनेवाली, मुक्तिके तत्त्वोंका आधार, सभी अशुभोंका नाश करनेमें समर्थ, समस्त कर्मवृक्षोंको काटनेवाली तथा मनुष्यके द्वारा किये गये पापोंका हरण करनेवाली है॥ १-२॥

[हे भगवन्!] मुक्ति कितने प्रकारकी होती है और उनके क्या लक्षण हैं? देवीभक्तिके स्वरूप, भक्तिके भेद तथा किये हुए कर्मोंके भोगके नाशके विषयमें मुझे बताइये। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! ब्रह्माके द्वारा निर्मित स्त्रीजाति तत्त्वज्ञानसे रहित होती है, अत: आप संक्षेपमें मुझे सारभूत बात बताइये॥ ३-४॥

हे प्रभो! दान, यज्ञ, तीर्थ, स्नान, व्रत और तप—ये सब अज्ञानी मनुष्यको ज्ञान देनेसे होनेवाले पुण्यफलकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। पिताकी अपेक्षा माता सौ गुनी श्रेष्ठ हैं, यह निश्चित है, किंतु ज्ञान प्रदान करनेवाला गुरु मातासे भी सौ गुना अधिक श्रेष्ठ होता है॥ ५-६॥

धर्मराज बोले—हे वत्से! तुम्हारे मनमें पहले जो भी अभिलषित वर था, वह सब मैं दे चुका हूँ, अब जो तुम भगवतीकी भक्ति चाहती हो, वह भी मेरे वरके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त हो जाय॥ ७॥

हे कल्याणि! तुम जो श्रीदेवीका गुणकीर्तन सुनना चाहती हो, वह उसे करनेवाले, सुननेवाले तथा इसके विषयमें पूछनेवाले—इन सभीके कुलका उद्धार कर देता है॥ ८॥

भगवान् शेषनाग अपने हजार मुखोंसे उसे बता नहीं सकते और मृत्युंजय महादेव भी अपने पाँच मुखसे उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ९॥

चारों वेदोंकी उत्पत्ति तथा सम्पूर्ण लोकोंका विधान करनेवाले ब्रह्मा अपने चार मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते, उसी प्रकार सर्वज्ञ विष्णु भी उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ १०॥

भगवान् कार्तिकेय अपने छ: मुखोंसे उसका वर्णन नहीं कर सकते और योगीश्वरोंके गुरुके भी गुरु श्रीगणेश भी भगवतीकी महिमाका वर्णन कर सकनेमें समर्थ नहीं हैं—यह निश्चित है॥ ११॥

सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारभूत चारों वेद तथा उन्हें जाननेवाले जो विद्वान् हैं—ये सब उन भगवतीके गुणोंकी एक कलातकको नहीं जानते॥ १२॥

सरस्वती भी जड़के समान होकर उन भगवतीके गुणोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, धर्म, कपिल तथा सूर्य—ये लोग तथा ब्रह्माजीके अन्य बुद्धिमान् पुत्रगण भी उनकी महिमाका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं, तो फिर अन्य जड़बुद्धिवाले लोगोंकी बात ही क्या!॥ १३-१४॥

श्रीदेवीके जिन गुणोंका वर्णन करनेमें सिद्ध, मुनीन्द्र तथा योगीजन भी समर्थ नहीं हैं, उनका वर्णन करनेमें हम तथा अन्य लोग भला किस प्रकार समर्थ हो सकते हैं?॥ १५॥

ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवगण भगवतीके जिस चरणकमलका ध्यान करते हैं, वह उनके भक्तोंके लिये तो अति सुगम है, किंतु अन्य लोगोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ है॥ १६॥

कोई व्यक्ति उन भगवतीके पवित्र गुणकीर्तनको कुछ-कुछ जान सकता है, किंतु ब्रह्मज्ञानी ब्रह्माजी उससे अधिक जानते हैं। ज्ञानियोंके भी गुरु गणेशजी उन ब्रह्मासे भी कुछ विशेष जानते हैं और सब कुछ जाननेवाले भगवान् शिव सबसे अधिक जानते हैं॥ १७-१८॥

पूर्वकालमें गोलोकमें अत्यन्त निर्जन वनमें रासमण्डलके मध्य परमेश्वर श्रीकृष्णने उन शिवको ज्ञान प्रदान किया था। वहींपर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें भगवतीके कुछ पवित्र गुण बताये थे॥ १९१/२॥

तत्पश्चात् स्वयं भगवान् शिवने शिवलोकमें धर्मके

प्रति उसका उपदेश किया था। उसके बाद सूर्यके पूछनेपर धर्मने उनसे भगवतीके गुणोंका वर्णन किया था। हे साध्वि! मेरे पिता सूर्यने भी तपस्याके द्वारा उन देवीकी आराधना करके उस ज्ञानको प्राप्त किया था॥ २०-२१॥

हे सुव्रते! पूर्वसमयमें मेरे पिताजी यत्नपूर्वक मुझे अपना राज्य देना चाहते थे, किंतु मैंने स्वीकार नहीं किया। उस समय वैराग्ययुक्त होनेके कारण मैं तपस्याके लिये जाना चाहता था। तब पिताजीने मेरे सामने भगवतीके गुणोंका वर्णन किया। उस समय मैंने उनसे जो प्राप्त किया, उसी परम दुर्लभ तत्त्वको तुम्हें बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनो॥ २२-२३॥

हे वरानने! जैसे आकाश अपना ही अन्त नहीं जानता, उसी प्रकार वे भगवती भी अपने सभी गुण नहीं जानतीं, तो अन्य व्यक्तिकी बात ही क्या है!॥ २४॥

सर्वात्मा, सबके भगवान्, सभी कारणोंके भी कारण, सर्वेश्वर, सबके आदिरूप, सर्वज्ञ, परिपालक, नित्यस्वरूप, नित्य देहवाले, नित्यानन्द, निराकार, स्वतन्त्र, निराशंक, निर्गुण, निर्विकार, अनासक्त, सर्वसाक्षी, सर्वाधार, परात्पर तथा मायाविशिष्ट परमात्मा ही मूलप्रकृतिके रूपमें अभिव्यक्त हो जाते हैं; सभी प्राकृत पदार्थ उन्हींसे आविर्भूत हैं॥ २५—२७॥

स्वयं परम पुरुष ही प्रकृति हैं। वे दोनों परस्पर उसी प्रकार अभिन्न हैं, जैसे अग्निसे उसकी शक्ति कुछ भी भिन्न नहीं है॥ २८॥

वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी शक्ति महामाया हैं। वे निराकार होते हुए भी भक्तोंपर कृपा करनेके लिये रूप धारण करती हैं॥ २९॥

उन भगवतीने सर्वप्रथम गोपालसुन्दरीका रूप धारण किया था। वह रूप अत्यन्त कोमल, सुन्दर तथा मनोहर था। किशोर गोपवेषवाला वह रूप नवीन मेघके समान श्यामवर्णका था। वह करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर था, वह मनोहर लीलाधामस्वरूप था, उस विग्रहके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तुच्छ बना देनेवाले थे, मुख शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत कर देनेवाला था, अमूल्य रत्नोंसे निर्मित अनेक प्रकारके आभूषणोंसे उनका विग्रह सुशोभित था, मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाला वह विग्रह निरन्तर अमूल्य पीताम्बरसे शोभित हो रहा था, परब्रह्मस्वरूप वह विग्रह ब्रह्मतेजसे प्रकाशित था, वह रूप देखनेमें बड़ा ही सुखकर था, वह शान्तरूप राधाको अत्यधिक प्रसन्न करनेवाला था, मुसकराती हुई गोपियाँ उस रूपको निरन्तर निहार रही थीं, वह भगवद्विग्रह रासमण्डलके मध्य रत्नजटित सिंहासनपर विराजमान था, उनकी दो भुजाएँ थीं, वे वंशी बजा रहे थे, उन्होंने वनमाला धारण कर रखी थी, उनके वक्षःस्थलपर



मणिराज श्रेष्ठ कौस्तुभमणि निरन्तर प्रकाशित हो रही थी, उनका विग्रह कुमकुम-अगुरु-कस्तूरीसे मिश्रित दिव्य चन्दनसे लिप्त था, वह चम्पा और मालतीकी मनोहर मालाओंसे सुशोभित था, वह कान्तिमान् चन्द्रमाकी शोभासे परिपूर्ण तथा मनोहर चूडामणिसे सुशोभित था। भक्तिरससे आप्लावित भक्तजन उनके इसी रूपका ध्यान करते हैं॥ ३०—३८॥

जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्मा उन्हींके भयसे सृष्टिका विधान करते हैं तथा कर्मानुसार सभी प्राणियोंके कर्मोंका उल्लेख करते हैं और उन्हींकी आज्ञासे वे मनुष्योंको तपों तथा कर्मोंका फल देते हैं। उन्हींके भयसे सभी प्राणियोंके रक्षक भगवान् विष्णु सदा रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे कालाग्निके समान भगवान् रुद्र सम्पूर्ण जगत्का संहार करते हैं। ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु मृत्युंजय शिव उसी परब्रह्मरूप विग्रहको जान लेनेपर ज्ञानवान्, योगीश्वर, ज्ञानविद्, परम आनन्दसे परिपूर्ण तथा भक्ति-वैराग्यसे सम्पन्न हो सके हैं॥ ३९—४२॥

हे साध्वि! उन्हींके भयसे तीव्र चलनेवालोंमें प्रमुख

पवनदेव प्रवाहित होते हैं और उन्हींके भयसे सूर्य निरन्तर तपते रहते हैं॥ ४३॥

उन्हींकी आज्ञासे इन्द्र वृष्टि करते हैं, मृत्यु प्राणियोंपर अपना प्रभाव डालती है, उन्हींकी आज्ञासे अग्नि जलाती है और जल शीतल करता है॥ ४४॥

उन्हींके आदेशसे भयभीत दिक्पालगण दिशाओंकी रक्षा करते हैं और उन्हींके भयसे ग्रह तथा राशियाँ अपने मार्गपर परिभ्रमण करती हैं॥ ४५॥

उन्हींके भयसे वृक्ष फलते तथा फूलते हैं और उन्हींकी आज्ञा स्वीकार करके भयभीत काल निश्चित समयपर प्राणियोंका संहार करता है॥ ४६॥

उनकी आज्ञाके बिना जल तथा स्थलमें रहनेवाले कोई भी प्राणी जीवन धारण नहीं कर सकते और संग्राममें आहत तथा विषम स्थितियोंमें पड़े प्राणीकी भी अकाल-मृत्यु नहीं होती॥ ४७॥

उन्हींकी आज्ञासे वायु जलराशिको, जल कच्छपको, कच्छप शेषनागको, शेष पृथ्वीको और पृथ्वी सभी समुद्रों तथा पर्वतोंको धारण किये रहती है। जो सब प्रकारसे क्षमाशालिनी हैं, वे पृथ्वी उन्हींकी आज्ञासे नानाविध रत्नोंको धारण करती हैं। उन्हींकी आज्ञासे पृथ्वीपर सभी प्राणी रहते हैं तथा नष्ट होते हैं॥ ४८-४९॥

[हे साध्वि!] देवताओंके इकहत्तर युगोंकी इन्द्रकी आयु होती है; ऐसे अट्ठाईस इन्द्रोंके समाप्त होनेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। ऐसे तीस दिनोंका एक महीना होता है और इन्हीं दो महीनोंकी एक ऋतु कही गयी है। इन्हीं छ: ऋतुओंका एक वर्ष होता है और ऐसे (सौ वर्षों)-की ब्रह्माकी आयु कही गयी है॥ ५०-५१॥

ब्रह्माकी आयु समाप्त होनेपर श्रीहरि आँखें मूँद लेते हैं। श्रीहरिके आँखें मूँद लेनेपर प्राकृत प्रलय हो जाता है। उस प्राकृतिक प्रलयके समय समस्त चराचर प्राणी, देवता, विष्णु तथा ब्रह्मा—ये सब श्रीकृष्णके नाभिकमलमें लीन हो जाते हैं॥ ५२-५३॥

क्षीरसागरमें शयन करनेवाले तथा वैकुण्ठवासी चतुर्भुज भगवान् श्रीविष्णु प्रलयके समय परमात्मा श्रीकृष्णके वाम पार्श्वमें विलीन होते हैं। ज्ञानके अधिष्ठाता सनातन शिव उनके ज्ञानमें विलीन हो जाते हैं। सभी शक्तियाँ विष्णुमाया दुर्गामें समाविष्ट हो जाती हैं और वे बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवता दुर्गा भगवान् श्रीकृष्णकी बुद्धिमें प्रविष्ट हो जाती हैं। नारायणके अंश स्वामी कार्तिकेय उनके वक्ष:स्थलमें लीन हो जाते हैं॥ ५४—५६॥

हे सुव्रते! श्रीकृष्णके अंशस्वरूप तथा गणोंके स्वामी देवेश्वर गणेश श्रीकृष्णकी दोनों भुजाओंमें समाविष्ट हो जाते हैं। श्रीलक्ष्मीकी अंशस्वरूपा देवियाँ भगवती लक्ष्मीमें तथा वे देवी लक्ष्मी राधामें विलीन हो जाती हैं। इसी प्रकार समस्त गोपिकाएँ तथा देवपत्नियाँ भी उन्हीं श्रीराधामें अन्तर्हित हो जाती हैं और श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधीश्वरी वे राधा उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें अधिष्ठित हो जाती हैं॥ ५७-५८॥

सावित्री तथा जितने भी वेद और शास्त्र हैं, वे सब सरस्वतीमें प्रवेश कर जाते हैं और सरस्वती उन परमात्मा श्रीकृष्णकी जिह्वामें विलीन हो जाती हैं॥ ५९॥

गोलोकके सभी गोप उनके रोमकूपोंमें प्रवेश कर जाते हैं। सभी प्राणियोंकी प्राणवायु उन श्रीकृष्णके प्राणोंमें, समस्त अग्नियाँ उनकी जठराग्निमें तथा जल उनकी जिह्वाके अग्रभागमें विलीन हो जाते हैं। सारके भी सारस्वरूप तथा भक्तिरसरूपी अमृतका पान करनेवाले वैष्णवजन परम आनन्दित होकर उनके चरणकमलमें समाहित हो जाते हैं॥ ६०-६१$^{१}/_{२}$॥

विराट्के अंशस्वरूप क्षुद्रविराट् महाविराट्में और महाविराट् उन श्रीकृष्णमें विलीन हो जाते हैं, जिनके रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्व समाहित हैं, जिनके आँख मीचनेपर प्राकृतिक प्रलय हो जाता है और जिनके नेत्र खुल जानेपर पुन: सृष्टिकार्य आरम्भ हो जाता है। जितना समय उनके पलक गिरनेमें लगता है, उतना ही समय उनके पलक उठानेमें लगता है। ब्रह्माके सौ वर्ष बीत जानेपर सृष्टिका सूत्रपात और पुन: लय होता है। हे सुव्रते! जैसे पृथ्वीके रज:कणोंकी संख्या नहीं है, वैसे ही ब्रह्माकी सृष्टि तथा प्रलयकी कोई संख्या नहीं है॥ ६२—६५$^{१}/_{२}$॥

जिन सर्वान्तरात्मा परमेश्वरकी इच्छासे उनके पलक झपकते ही प्रलय होता है तथा पलक खोलते ही पुन:

सृष्टि आरम्भ हो जाती है, वे श्रीकृष्ण प्रलयके समय उन परात्पर मूलप्रकृतिमें लीन हो जाते हैं; उस समय एकमात्र पराशक्ति ही शेष रह जाती है, यही निर्गुण परम पुरुष भी है। यही सत्स्वरूप तत्त्व सर्वप्रथम विराजमान था—ऐसा वेदोंके ज्ञाताओंने कहा है॥ ६६—६८॥

अव्यक्तस्वरूपी मूलप्रकृति 'अव्याकृत' नामसे कही जाती हैं। चैतन्यस्वरूपिणी वे ही केवल प्रलयकालमें विद्यमान रहती हैं। उनके गुणोंका वर्णन करनेमें ब्रह्माण्डमें कौन समर्थ है?॥ ६९$^{१}/_{२}$॥

चारों वेदोंने चार प्रकारकी मुक्तियाँ बतलायी हैं। भगवान्‌की भक्ति प्रधान है; क्योंकि वह मुक्तिसे श्रेष्ठ है। एक मुक्ति सालोक्य प्रदान करनेवाली, दूसरी सारूप्य देनेवाली, तीसरी सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाली और चौथी निर्वाण प्रदान करनेवाली है; इस प्रकार मुक्ति चार तरहकी होती है। भक्तजन उन परमात्मप्रभुकी सेवा छोड़कर उन मुक्तियोंकी कामना नहीं करते हैं। वे शिवत्व, अमरत्व तथा ब्रह्मत्वतककी अवहेलना करते हैं। वे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय, शोक, धन, दिव्यरूप धारण करना, निर्वाण तथा मोक्षकी अवहेलना करते हैं। मुक्ति सेवारहित है तथा भक्ति सेवाभावमें वृद्धि करनेवाली है—भक्ति तथा मुक्तिमें यही भेद है; अब निषेकखण्डनका प्रसंग सुनो॥ ७०—७४$^{१}/_{२}$॥

विद्वान् पुरुषोंने निषेक (जन्म) एवं भोगके खण्डनका कल्याणकारी उपाय श्रीप्रभुकी एकमात्र परम सेवाको ही कहा है। हे साध्वि! यह तत्त्वज्ञान लोक और वेदमें प्रतिष्ठित है। इसे विघ्नरहित तथा शुभप्रद बताया गया है। हे वत्से! अब तुम सुखपूर्वक जाओ॥ ७५-७६$^{१}/_{२}$॥

ऐसा कहकर सूर्यपुत्र धर्मराज उसके पतिको जीवितकर और उसे आशीर्वाद प्रदान करके वहाँसे जानेके लिये उद्यत हो गये। धर्मराजको जाते देखकर सावित्री उन्हें प्रणाम करके उनके दोनों चरण पकड़कर साधुवियोगके कारण उत्पन्न दुःखसे व्याकुल हो रोने लगी॥ ७७-७८$^{१}/_{२}$॥

सावित्रीका विलाप सुनकर कृपानिधि धर्मराज भी स्वयं रोने लगे और सन्तुष्ट होकर उससे इस प्रकार कहने लगे—॥ ७९$^{१}/_{२}$॥

धर्मराज बोले—[हे सावित्रि!] तुम पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुखका भोग करके अन्तमें उस लोकमें जाओगी, जहाँ साक्षात् भगवती विराजमान रहती हैं॥ ८०$^{१}/_{२}$॥

हे भद्रे! अब तुम अपने घर जाओ और स्त्रियोंके लिये मोक्षके कारणरूप सावित्रीव्रतका चौदह वर्षतक पालन करो। ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको किया गया सावित्रीव्रत उसी प्रकार अत्यन्त मंगलकारी होता है, जैसे भाद्रपद महीनेके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको महालक्ष्मीव्रत कल्याणप्रद होता है। हे शुचिस्मिते! इस महालक्ष्मीव्रतको सोलह वर्षतक करना चाहिये। जो स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भगवान् श्रीहरिके चरणोंकी सन्निधि प्राप्त कर लेती है॥ ८१—८३$^{१}/_{२}$॥

प्रत्येक मंगलवारको मंगलकारिणी भगवती मंगलचण्डिकाका व्रत करना चाहिये। प्रत्येक मासकी शुक्लषष्ठीके दिन व्रतपूर्वक मंगलदायिनी देवी षष्ठीकी पूजा करनी चाहिये। उसी प्रकार आषाढ़-संक्रान्तिके अवसरपर समस्त सिद्धियाँ प्रदान करनेवाली देवी मनसाकी पूजा करनी चाहिये॥ ८४-८५॥

कार्तिकपूर्णिमाको रासके अवसरपर श्रीकृष्णके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधाकी उपासना करनी चाहिये। प्रत्येक मासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिको उपवासपूर्वक व्रत करके वर प्रदान करनेवाली भगवती दुर्गाकी पूजा करनी चाहिये। पति-पुत्रवती तथा पुण्यमयी पतिव्रताओं, प्रतिमाओं तथा यन्त्रोंमें दुर्गतिनाशिनी विष्णुमाया भगवती दुर्गाकी भावना करके जो स्त्री धन-सन्तानकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक

उनका पूजन करती है, वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें ऐश्वर्यमयी भगवतीके परम पदको प्राप्त होती है। इस प्रकार साधकको भगवतीकी विभूतियोंकी निरन्तर पूजा करनी चाहिये। उन सर्वरूपा परमेश्वरीकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये; इससे बढ़कर कृतकृत्यता प्रदान करनेवाला और कुछ भी नहीं है॥ ८६—९०॥

[हे नारद!] उससे ऐसा कहकर धर्मराज अपने लोकको चले गये और अपने पतिको साथ लेकर सावित्री भी अपने घर चली गयी॥ ९१॥

हे नारद! सावित्री और सत्यवान् जब घरपर आ गये तब सावित्रीने अपने अन्य बन्धु-बान्धवोंसे यह सारा वृत्तान्त कहा॥ ९२॥

धर्मराजके वरके प्रभावसे सावित्रीके पिताने पुत्र प्राप्त कर लिये, उसके ससुरकी दोनों आँखें ठीक हो गयीं और उन्हें अपना राज्य मिल गया तथा उस सावित्रीको भी पुत्रोंकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें एक लाख वर्षतक सुख भोगकर वह पतिव्रता सावित्री अपने पतिके साथ देवीलोक चली गयी॥ ९३-९४॥

सविताकी अधिष्ठात्री देवी होने अथवा सूर्यके ब्रह्म-प्रतिपादक गायत्री मन्त्रकी अधिदेवता होने तथा सम्पूर्ण वेदोंकी जननी होनेसे ये जगत्में सावित्री नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ९५॥

हे वत्स! इस प्रकार मैंने सावित्रीके श्रेष्ठ उपाख्यान तथा प्राणियोंके कर्मविपाकका वर्णन कर दिया, अब आगे क्या सुनना चाहते हो॥ ९६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें सावित्री-उपाख्यानवर्णन' नामक अड़तीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उनतालीसवाँ अध्याय

भगवती लक्ष्मीका प्राकट्य, समस्त देवताओंद्वारा उनका पूजन

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैं सावित्री तथा धर्मराजके संवादमें निराकार मूलप्रकृति भगवती गायत्रीका निर्मल यश सुन चुका। उनके गुणोंका कीर्तन सत्यस्वरूप तथा मगलोंका भी मंगल है। हे प्रभो! अब मैं लक्ष्मीका उपाख्यान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! सर्वप्रथम उन भगवती लक्ष्मीकी पूजा किसने की, उनका स्वरूप क्या है तथा पूर्वकालमें किसने उनके गुणोंका कीर्तन किया? यह सब मुझे बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! प्राचीन समयमें सृष्टिके आरम्भमें रासमण्डलके मध्य परमात्मा श्रीकृष्णके वाम भागसे भगवती राधा प्रकट हुईं॥ ४॥

वे भगवती लावण्यसम्पन्न तथा अत्यन्त सुन्दर थीं, उनके चारों ओर वटवृक्ष सुशोभित थे, वे बारह वर्षकी सुन्दरीकी भाँति दिख रही थीं, सर्वदा स्थिर रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न थीं, श्वेत चम्पाके पुष्प-जैसी कान्तिवाली थीं, उन मनोहारिणी देवीका दर्शन बड़ा ही सुखदायक था, उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभाको तिरोहित कर रहा था और उनके नेत्र शरद् ऋतुके मध्याह्नकालीन कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे थे॥ ५-६$^{1}/_{2}$॥

सर्वेश्वर श्रीकृष्णके साथ विराजमान रहनेवाली वे देवी उनकी इच्छासे दो रूपोंमें व्यक्त हो गयीं। वे दोनों ही देवियाँ अपने रूप, वर्ण, तेज, आयु, कान्ति, यश, वस्त्र, कृत्य, आभूषण, गुण, मुसकान, अवलोकन, प्रेम तथा अनुनय-विनय आदिमें समान थीं। उनके बायें अंशसे महालक्ष्मी आविर्भूत हुईं तथा दाहिने अंशसे राधिका स्वयं ही विद्यमान रहीं॥ ७—९॥

पहले राधिकाने दो भुजाओंवाले परात्पर श्रीकृष्णको पतिरूपसे वरण किया। तत्पश्चात् महालक्ष्मीने भी उन्हीं मनोहर श्रीकृष्णको पति बनानेकी इच्छा प्रकट की। तब उन्हें गौरव प्रदान करनेके विचारसे वे श्रीकृष्ण भी दो रूपोंमें हो गये। वे अपने दाहिने अंशसे दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और बायें अंशसे चार भुजाओंवाले

श्रीविष्णु हो गये। उसके बाद द्विभुज श्रीकृष्णने चतुर्भुज विष्णुको महालक्ष्मी समर्पित कर दी॥ १०-१११/२ ॥

जो भगवती अपनी स्नेहमयी दृष्टिसे निरन्तर विश्वकी देख-भाल करती रहती हैं, वे अत्यन्त महत्त्वशालिनी होनेके कारण महालक्ष्मी कही गयी हैं। इस प्रकार दो भुजाओंवाले श्रीकृष्ण राधाके पति बने और चतुर्भुज श्रीविष्णु महालक्ष्मीके पति हुए॥ १२-१३ ॥

शुद्ध सत्त्वस्वरूपिणी भगवती श्रीराधा गोपों और गोपिकाओंसे आवृत होकर अत्यन्त शोभा पाने लगीं और चतुर्भुज भगवान् विष्णु लक्ष्मीके साथ वैकुण्ठ चले गये॥ १४ ॥

परात्पर श्रीकृष्ण और श्रीविष्णु—वे दोनों ही समस्त अंशोंमें समान हैं। भगवती महालक्ष्मी योगबलसे नाना रूपोंमें विराजमान हुईं॥ १५ ॥

वे ही भगवती परिपूर्णतम परम शुद्धस्वरूपा महालक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हो सम्पूर्ण सौभाग्योंसे सम्पन्न होकर वैकुण्ठलोकमें निवास करने लगीं॥ १६ ॥

वे प्रेमके कारण समस्त नारियोंमें प्रधान हुईं। वे भगवती इन्द्रकी विभवस्वरूपा होकर स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी नामसे प्रसिद्ध हुईं। वे पातालमें नागलक्ष्मी, राजाओंके यहाँ राजलक्ष्मी और गृहस्थोंके घरोंमें गृहलक्ष्मीके रूपमें अपनी कलाके एक अंशसे विराजमान हुईं। सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी गृहस्थोंके लिये सम्पत्तिस्वरूपिणी हैं॥ १७-१८१/२ ॥

गायोंकी जननी सुरभि तथा यज्ञपत्नी दक्षिणाके रूपमें वे ही प्रतिष्ठित हैं। वे महालक्ष्मी ही क्षीरसागरकी कन्याके रूपमें प्रकट हुईं। वे कमलिनियोंमें श्रीरूपसे तथा चन्द्रमामें शोभारूपसे विराजमान हैं और सूर्यमण्डल इन्हींसे सुशोभित है। भूषण, रत्न, फल, जल, राजा, रानी, दिव्य स्त्री, गृह, सभी प्रकारके धान्य, वस्त्र, पवित्र स्थान, देवप्रतिमा, मंगलकलश, माणिक्य, मुक्ता, माला, श्रेष्ठ मणि, हीरा, दुग्ध, चन्दन, वृक्षोंकी सुरम्य शाखा तथा नवीन मेघ—इन सभी वस्तुओंमें परम मनोहर महालक्ष्मीका ही अंश विद्यमान है॥ १९—२३१/२ ॥

हे मुने! सर्वप्रथम भगवान् नारायणने वैकुण्ठमें उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की थी, दूसरी बार ब्रह्माने तथा तीसरी बार शंकरने भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, भगवान् विष्णुने भारतवर्षमें क्षीरसागरमें उन महालक्ष्मीकी पूजा की। उसके बाद स्वायम्भुव मनु, सभी राजागण, श्रेष्ठ ऋषि, मुनीश्वर तथा सदाचारी गृहस्थ—इन सभी लोगोंने जगत्में महालक्ष्मीकी उपासना की। गन्धर्वों तथा नाग आदिके द्वारा वे पाताललोकमें पूजित हुईं॥ २४—२६१/२ ॥

हे नारद! ब्रह्माजीने भाद्रपदके शुक्लपक्षकी अष्टमीसे प्रारम्भ करके पक्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की, फिर तीनों लोकोंमें उनकी पूजा होने लगी। चैत्र, पौष तथा भाद्रपदमासोंके पवित्र मंगलवारको विष्णुके द्वारा उनकी पूजा की गयी, बादमें तीनों लोकोंमें सभी लोग भक्तिपूर्वक उनकी उपासना करने लगे॥ २७-२८१/२ ॥

वर्षके अन्तमें पौषकी संक्रान्तिके अवसरपर मध्याह्नकालमें मनुने मंगलकलशपर आवाहन करके उनकी पूजा की। उसके बाद वे भगवती तीनों लोकोंमें पूज्य हो गयीं। इन्द्रके द्वारा वे पूजित हुईं। मंगलने भी उन मंगलमयी भगवतीकी पूजा की। उसके बाद केदार, नील, सुबल, नल, ध्रुव, उत्तानपाद, शक्र, बलि, कश्यप, दक्ष, कर्दम, विवस्वान्, प्रियव्रत, चन्द्र, कुबेर, वायु, यम, अग्नि और वरुणने उनकी उपासना की। इस प्रकार समस्त ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री देवी तथा समग्र सम्पदाओंकी विग्रहस्वरूपिणी वे भगवती महालक्ष्मी सर्वत्र सब लोगोंद्वारा सदा पूजित तथा वन्दित हुईं॥ २९—३३ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'लक्ष्म्युपाख्यानवर्णन' नामक उनतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३९ ॥

चालीसवाँ अध्याय

दुर्वासाके शापसे इन्द्रका श्रीहीन हो जाना

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] वे श्रेष्ठ महालक्ष्मी भगवान् नारायणकी प्रिया होकर वैकुण्ठमें निवास करती हैं। वे सनातनी भगवती वैकुण्ठकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे महालक्ष्मी पूर्व कालमें पृथ्वीलोकमें सिन्धुकी पुत्री कैसे बनीं और सर्वप्रथम किसके द्वारा उनकी स्तुति की गयी, वह सब मुझे बताइये॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! पूर्व कालमें दुर्वासाके शापके कारण इन्द्र श्रीविहीन हो गये थे और सम्पूर्ण देवसमुदाय मृत्युलोकमें भटकने लगा। हे नारद! तब कुपित लक्ष्मीने स्वर्गका परित्याग करके अत्यन्त दु:खित हो वैकुण्ठलोक पहुँचकर वहाँ महालक्ष्मीमें अपनेको विलीन कर दिया॥ ३-४॥

उस समय शोकसे संतप्त सभी देवता ब्रह्माकी सभामें गये और वहाँसे ब्रह्माजीको आगे करके वैकुण्ठलोकको गये। वहाँपर सभी देवताओंने भगवान् नारायण श्रीविष्णुकी शरण ग्रहण की। उस समय अत्यन्त दीनतायुक्त सभी देवताओंके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे॥ ५-६॥

तब पुराणपुरुष भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वे सर्वसम्पत्तिस्वरूपा लक्ष्मी अपनी कलासे सिन्धुकी कन्या हुई थीं। उस समय सभी देवताओंने दैत्योंके साथ मिलकर समुद्रमन्थन करके महालक्ष्मीकी प्राप्ति की थी। भगवान् विष्णुने महालक्ष्मीको प्रेमपूर्वक देखा। तब प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलवाली परम सन्तुष्ट भगवती महालक्ष्मीने देवता आदिको वर प्रदान करके क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीविष्णुको वनमाला अर्पित कर दी॥ ७—९॥

हे नारद! देवताओंने असुरोंके द्वारा अपहृत किया गया अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् उन भगवती महालक्ष्मीकी भलीभाँति पूजा करके वे देवता सब प्रकारसे विपत्तिरहित हो गये॥ १०॥

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें ब्रह्मनिष्ठ तथा तत्त्वज्ञानी मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने कब, क्यों और किस अपराधके कारण इन्द्रको शाप दिया था? उन देवता आदिने किस रूपसे समुद्रका मन्थन किया, किस स्तोत्रसे प्रसन्न होकर भगवती लक्ष्मी इन्द्रके समक्ष प्रकट हुईं और उन दोनोंके बीच क्या संवाद हुआ? हे प्रभो! यह सब आप मुझे बताइये॥ ११-१२१/२॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है—तीनों लोकोंके अधिपति इन्द्र मधुपानसे प्रमत्त और कामासक्त होकर रम्भाके साथ एकान्तमें विहार कर रहे थे। उस कामुकी अप्सराके साथ क्रीडा करनेसे उनका मन मोहित हो गया था। इस प्रकार कामदेवसे मथित मनवाले वे इन्द्र उसी महावनमें स्थित हो गये॥ १३-१४॥

उसी समय इन्द्रने वैकुण्ठधामसे कैलासपर्वतकी ओर जाते हुए महर्षि दुर्वासाको देखा। उनका शरीर ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान था, ऐश्वर्यसम्पन्न वे ग्रीष्मऋतुके मध्याह्नकालीन हजारों सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, उनका अत्यन्त स्वच्छ जटाजूट प्रतप्त सुवर्णके समान प्रकाशमान था, वे श्वेतवर्णका यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे, उन्होंने अपने हाथोंमें चीर, दण्ड तथा कमण्डलु धारण कर रखा था, वे अपने ललाटपर चन्द्रमाके समान प्रतीत होनेवाला अत्यन्त उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए थे। वेदवेदांगके पारगामी लाखों शिष्य उनके साथ विद्यमान थे॥ १५—१८॥

उन्हें देखकर अति प्रमत्त इन्द्रने सिर झुकाकर मुनि तथा शिष्यवर्गको प्रणाम किया और प्रसन्न होकर उनकी स्तुति की। तब शिष्योंसहित मुनि दुर्वासाने इन्द्रको शुभाशीर्वाद दिया, साथ ही उन्होंने भगवान् विष्णुद्वारा प्रदत्त परम मनोहर पारिजात पुष्प भी उन्हें समर्पित किया॥ १९-२०॥

तब बुढ़ापा, रोग, मृत्यु तथा शोकका नाश करनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले उस पुष्पको लेकर राज्यसम्पदासे मदोन्मत्त इन्द्रने उसे ऐरावत हाथीके मस्तकपर फेंक दिया॥ २११/२॥

उस पुष्पका स्पर्श होते ही वह ऐरावत हाथी रूप,

गुण, तेज तथा आयुमें अकस्मात् भगवान् विष्णुके तुल्य हो गया। तब इन्द्रको छोड़कर वह गजराज घोर वनमें चला गया। हे मुने! अपने तेजोबलसे सम्पन्न इन्द्र उस ऐरावतको रोक पानेमें समर्थ नहीं हो सके॥ २२-२३१/२॥

इन्द्रने उस पुष्पका तिरस्कार किया है—ऐसा जानकर मुनीश्वर दुर्वासा अत्यन्त कुपित हो उठे और रोषमें आकर उन्हें शाप देते हुए कहने लगे॥ २४१/२॥

मुनि बोले—अरे! राज्यश्रीके अभिमानसे प्रमत्त होकर तुम मेरा अपमान क्यों कर रहे हो? मेरे द्वारा दिये गये पुष्पको तुमने गर्वित होकर हाथीके मस्तकपर फेंक दिया? श्रीविष्णुको समर्पित किये हुए नैवेद्य, फल अथवा जलके प्राप्त होते ही उनका उपभोग कर लेना चाहिये, उनका त्याग करनेसे वह ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है॥ २५-२६१/२॥

जो मनुष्य सौभाग्यसे प्राप्त हुए भगवान् विष्णुके पावन नैवेद्यका त्याग करता है; वह श्री, बुद्धि तथा राज्य—इन सबसे वंचित हो जाता है॥ २७१/२॥

जो भक्त श्रीविष्णुके लिये अर्पित किये गये नैवेद्यको पाते ही उसे ग्रहण कर लेता है, वह अपने सौ पूर्वजोंका उद्धार करके स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है॥ २८१/२॥

जो मनुष्य प्रतिदिन भगवान् श्रीहरिके नैवेद्यको ग्रहण करके उन्हें प्रणाम करता है तथा भक्तिपूर्वक उनका पूजन एवं स्तवन करता है, वह भगवान् विष्णुके समान हो जाता है। हे मूर्ख! उसका स्पर्श करके चलनेवाली वायुका संयोग पाकर तीर्थसमुदाय शीघ्र ही शुद्ध हो जाता है और उसकी चरणरजसे पृथ्वी शीघ्र ही पवित्र हो जाती है॥ २९-३०१/२॥

भगवान् श्रीहरिको भोग न लगाया हुआ अन्न व्यभिचारिणी स्त्री, पतिपुत्रहीन स्त्री तथा शूद्रके श्राद्धान्नके समान व्यर्थ होता है और वह मांस-भक्षणके समान है॥ ३११/२॥

शिवलिंगके लिये अर्पण किया हुआ अन्न, शूद्रोंके यहाँ यजन करानेवाले ब्राह्मणके द्वारा प्रदत्त अन्न, चिकित्सावृत्तिमें लगे ब्राह्मणका अन्न; देवल, कन्याविक्रयी तथा वेश्याओंकी वृत्तिपर आश्रित रहनेवाले पुरुषोंका अन्न; उच्छिष्ट, बासी तथा सबके भोजन कर लेनेपर बचा हुआ अन्न; शूद्रापति द्विज, वृषवाही द्विज, दीक्षाहीन द्विज, शवदाही, अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाले द्विज, मित्रद्रोही, विश्वासघाती, कृतघ्न तथा झूठी गवाही देनेवाले और तीर्थप्रतिग्राही ब्राह्मणोंका अन्न ग्रहण करनेवाले—ये सभी भगवान् विष्णुका नैवेद्य भक्षण करनेसे शुद्ध हो जाते हैं॥ ३२—३६१/२॥

यदि चाण्डाल भी भगवान् विष्णुकी उपासना करता है, तो वह अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति न करनेवाला मनुष्य स्वयं अपनी भी रक्षा करनेमें असमर्थ रहता है॥ ३७१/२॥

यदि कोई मनुष्य अनजानमें भी श्रीविष्णुका नैवेद्य ग्रहण कर लेता है, वह अपने सात जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। जो ज्ञानपूर्वक भक्तिके साथ भगवान् विष्णुका नैवेद्य ग्रहण करता है, वह तो करोड़ों जन्मोंके अर्जित पापोंसे मुक्त हो जाता है—यह निश्चित है। हे इन्द्र! तुमने जो अभिमानवश इस पारिजात पुष्पको हाथीके मस्तकपर फेंक दिया है, इस अपराधके कारण लक्ष्मीजी तुमलोगोंका परित्याग करके भगवान् श्रीहरिके लोकमें चली जायँ॥ ३८—४०१/२॥

मैं नारायणका भक्त हूँ। मैं देवता, ब्रह्मा, काल, मृत्यु तथा जरासे भी भयभीत नहीं होता तो फिर अन्य किन लोगोंकी गिनती करूँ। हे इन्द्र! तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यप और गुरु बृहस्पति मुझ निःशंकका क्या कर लेंगे? यह पारिजात पुष्प जिसके सिरपर रहता है, उसीकी पूजा श्रेष्ठ मानी जाती है॥ ४१—४३॥

यह सुनकर देवराज इन्द्र मुनि दुर्वासाके चरण पकड़कर शोकसन्तप्त तथा भयसे व्याकुल हो उच्च स्वरसे रोने लगे और उनसे कहने लगे—॥ ४४॥

महेन्द्र बोले—हे प्रभो! आपने मुझे अत्यन्त उचित शाप दिया है; क्योंकि यह मायाका नाश कर देनेवाला है। मैं अपनी अपहृत सम्पत्तिकी याचना नहीं कर रहा हूँ, आप मुझे कुछ ज्ञानोपदेश दीजिये। [क्योंकि यह लौकिक] ऐश्वर्य समस्त विपत्तियोंका बीजस्वरूप है, ज्ञानका आच्छादन कर देनेवाला है, मुक्तिमार्गका कुठार है तथा भक्तिमें व्यवधान उत्पन्न करनेवाला है॥ ४५-४६॥

मुनि बोले—यह ऐश्वर्य जन्म, मृत्यु, जरा, शोक और रोगके बीजका महान् अंकुर है। सम्पत्तिके घोर अन्धकारसे अन्धा बना हुआ मानव मुक्तिका मार्ग नहीं देख पाता है॥ ४७॥

हे इन्द्र! जो मूर्ख सम्पत्तिसे उन्मत्त है, उसको वास्तवमें मदिरापानसे भी प्रमत्त समझना चाहिये। बन्धु-बान्धव उसे बन्धु समझकर सदा घेरे रहते हैं॥ ४८॥

सम्पत्तिके मदमें उन्मत्त वह व्यक्ति विषयान्ध, विह्वल, महाकामी और राजसिक होकर सात्त्विक मार्गका अवलोकन नहीं कर पाता है॥ ४९॥

विषयान्ध भी राजस तथा तामस भेदसे दो प्रकारका बताया गया है। शास्त्रज्ञानसे हीन व्यक्तिको तामस तथा शास्त्रज्ञको राजस कहा गया है॥ ५०॥

हे सुरश्रेष्ठ! शास्त्र भी दो प्रकारके मार्ग दिखलाता है। एक संसृतिका हेतु है तथा दूसरा निवृत्तिका कारण कहा गया है॥ ५१॥

पहले प्रवृत्तिबीजरूपी दुःखमय मार्गपर सभी प्राणी स्वच्छन्द तथा प्रसन्न होकर निर्विरोधभावसे निरन्तर चलते रहते हैं। जैसे मधुके लोभसे भौंरा अत्यन्त सुख मानकर क्लेशके साथ पुष्पोंपर आता है, वैसे ही मनुष्य परिणाममें विनाशके बीजस्वरूप तथा जन्म-मृत्यु-जराके आश्रयस्वरूप इस प्रवृत्तिमार्गपर अग्रसर होता है॥ ५२-५३॥

प्रसन्नतापूर्वक अनेक जन्मोंतक अपने किये कर्मके परिणामस्वरूप नाना प्रकारकी योनियोंमें क्रमशः भ्रमण करनेके पश्चात् भगवान्‌की कृपासे ही सैकड़ों तथा हजारों प्राणियोंमेंसे कोई बिरला ही संसारसागरसे पार करनेवाले सत्संगको प्राप्त कर पाता है॥ ५४-५५॥

जब कोई साधु तत्त्वज्ञानरूपी दीपकसे उसे मुक्तिमार्ग दिखा देता है, तब संसारबन्धनको तोड़नेके लिये जीव प्रयत्न करने लगता है। अनेक जन्मोंमें किये गये तप तथा उपवाससे जब मानवका पुण्योदय होता है, तब वह निर्विघ्न तथा परम सुखप्रद मुक्तिमार्गको प्राप्त कर पाता है। हे इन्द्र! तुम जो बात पूछ रहे हो, उसे मैंने गुरुके मुखसे सुना है॥ ५६-५७½॥

हे ब्रह्मन्! मुनि दुर्वासाका यह वचन सुनकर देवराज इन्द्र रागरहित हो गये और उनके हृदयमें दिनोंदिन वैराग्यकी भावना बढ़ने लगी॥ ५८½॥

तत्पश्चात् मुनिके स्थानसे अपने भवन पहुँचकर इन्द्रने देखा कि अमरावतीपुरी दैत्यों तथा असुरोंसे भरी हुई है, चारों ओर भय व्याप्त है, सर्वत्र विषमता तथा उपद्रवकी स्थिति है, कहीं किसीके पुत्र तथा बन्धु-बान्धव नहीं थे, कहीं किसीके माता-पिता और स्त्री आदिने उसका साथ छोड़ दिया है, चारों ओर हलचल मची हुई है तथा सम्पूर्ण नगरी शत्रुओंसे पूर्णतया आक्रान्त है। उस अमरावतीको इस स्थितिमें देखकर इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके पास गये॥ ५९—६१॥

मन्दाकिनीनदीके तटपर पहुँचकर देवराज इन्द्रने देखा कि गुरुदेव बृहस्पति पूरबकी ओर सूर्यके अभिमुख हो गंगाजलमें खड़े होकर सर्वतोमुख परब्रह्म परमात्माका ध्यान कर रहे हैं और पुलकित तथा प्रसन्नतायुक्त उनके नेत्रोंसे अश्रु गिर रहे हैं। परम श्रेष्ठ, आदरणीय, धर्मनिष्ठ, श्रेष्ठ जनोंद्वारा सेवित, बन्धुवर्गोंमें अति महान्, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ, भाई-बन्धुओंमें ज्येष्ठ तथा देवशत्रुओंके लिये अनिष्टकारी गुरु बृहस्पतिको जप करते हुए देखकर सुरेश्वर इन्द्र वहींपर स्थित हो गये॥ ६२—६५॥

एक प्रहरके बाद गुरुको ध्यानसे उपरत देखकर इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उनके चरणकमलमें मस्तक झुकाकर इन्द्र उच्च स्वरसे बार-बार विलाप करने



लगे। देवराज इन्द्रने गुरु बृहस्पतिसे दुर्वासाके द्वारा प्रदत्त शाप आदिसे सम्बन्धित सारा वृत्तान्त, वरकी उपलब्धि, दुर्वासासे अत्यन्त दुर्लभ ज्ञानकी प्राप्ति और शत्रुओंसे

आक्रान्त अपनी नगरीके विषयमें सभी बातें क्रमसे कहीं ॥ ६६-६७१/२ ॥

अपने शिष्य इन्द्रकी बात सुनकर क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले परम बुद्धिमान् तथा वक्ताओंमें श्रेष्ठ बृहस्पति इस प्रकार कहने लगे— ॥ ६८१/२ ॥

गुरु बोले—हे सुरश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया, मत रोओ, मेरी बात सुनो। नीतिज्ञ पुरुष विपत्तिकालमें कभी भी घबराता नहीं; क्योंकि सम्पत्ति अथवा विपत्ति नश्वर हैं। ये दोनों ही श्रमसाध्य हैं। सम्पत्ति अथवा विपत्ति अपने पूर्व जन्ममें किये गये कर्मका फल है और उन्हींके अधीन होकर कर्ताको स्वयं फल भोगना पड़ता है। सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये प्रत्येक जन्ममें यही स्थिति है, जो चक्रमण्डलकी भाँति निरन्तर आती-जाती रहती है, अतः इस विषयमें चिन्ताकी क्या आवश्यकता है? ॥ ६९—७११/२ ॥

ऐसा कहा गया है कि सम्पूर्ण भारतमें अपने द्वारा किये गये कर्मका फल भोगना ही पड़ता है। शुभ अथवा अशुभ जो कुछ भी कर्म मनुष्य करता है, वह उसे भोगता ही है। सैकड़ों करोड़ों कल्प बीत जानेके बाद भी बिना भोगे हुए कर्मोंका क्षय नहीं होता ॥ ७२-७३ ॥

अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मका फल अवश्य भोगना पड़ता है—ऐसा परमात्मा श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको सम्बोधित करके सामवेदकी शाखामें कहा है। किये हुए सम्पूर्ण कर्मोंका भोग शेष रह जानेपर उन प्राणियोंका कर्मानुसार भारतवर्षमें अथवा अन्यत्र जन्म होता है ॥ ७४-७५१/२ ॥

प्राणी कर्मसे ही ब्रह्मशाप, कर्मसे ही शुभाशीर्वाद, कर्मसे ही महालक्ष्मी और कर्मसे ही दरिद्रता प्राप्त करता है। हे पुरन्दर! करोड़ों जन्मोंके संचित कर्म प्राणीके पीछे उसकी छायाकी भाँति लगे रहते हैं और बिना भोगे उस प्राणीको नहीं छोड़ते ॥ ७६-७७१/२ ॥

काल, देश और पात्रके भेदसे कर्मोंका न्यूनाधिक भाव हुआ ही करता है। साधारण समयमें दानमें दी गयी वस्तुओंका साधारण फल होता है। यदि किसी विशेष पुण्य दिनमें कोई वस्तु दानमें दी जाती है तो उसका फल साधारण दिनकी अपेक्षा करोड़ों गुना उससे भी अधिक या असंख्य गुना प्राप्त होता है ॥ ७८-७९१/२ ॥

उसी प्रकार हे इन्द्रदेव! साधारण स्थानमें दानमें दी गयी वस्तुका साधारण पुण्य होता है, किंतु देशभेदके अनुसार किसी विशेष स्थानमें दानका फल करोड़ गुना या उससे भी अधिक असंख्य गुना होता है ॥ ८०१/२ ॥

साधारण पात्रको दान करनेपर उन वस्तुओंका दान करनेवालेको उसका साधारण पुण्य मिलता है, किंतु किसी विशेष पात्रको दान देनेसे उसकी अपेक्षा सौ गुना या उससे अधिक असंख्य गुना पुण्य होता है ॥ ८११/२ ॥

जैसे क्षेत्रभेदसे भिन्न-भिन्न खेतोंमें बीज बोनेपर किसानोंके लिये कम या अधिक धान्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही पात्रभेदसे दान देनेपर दाता न्यूनाधिक फल प्राप्त करता है ॥ ८२१/२ ॥

सामान्य दिनमें ब्राह्मणको दिये गये दानका सामान्य फल होता है, किंतु अमावास्या तथा सूर्यसंक्रान्तिको दान देनेसे सौ गुना फल होता है और चातुर्मास्यमें तथा पूर्णिमा तिथिको दिये गये दानका अनन्त फल होता है। चन्द्रग्रहणके अवसरपर दान देनेसे करोड़ गुना फल प्राप्त होता है तथा सूर्यग्रहणके समयपर दिये गये दानका फल उससे भी दस गुना अधिक होता है। अक्षय तृतीयाको दिया गया दान अक्षय होता है और उसका अनन्त फल कहा गया है। इसी प्रकार अन्य पर्वदिनोंमें भी फलोंकी अधिकता हो जाती है। जिस प्रकार दानके फलमें आधिक्य हो जाता है, उसी प्रकार स्नान, जप तथा अन्य पुण्यकार्योंमें भी होता है। मनुष्योंके लिये कर्मफलके विषयमें इसी प्रकार सर्वत्र समझना चाहिये ॥ ८३—८७ ॥

जिस प्रकार पृथ्वीलोकमें कुम्भकार दण्ड, चक्र, शराव और भ्रमणके द्वारा मिट्टीसे कुम्भका निर्माण करता है, उसी प्रकार विधाता कर्मसूत्रसे प्राणियोंको फल प्रदान करते हैं ॥ ८८ ॥

[अतः हे देवराज!] जिनकी आज्ञासे इस जगत्‌की सृष्टि हुई है, उन भगवान् नारायणकी आप आराधना कीजिये। वे भगवान् नारायण त्रिलोकीमें विधाताके भी विधाता, पालन करनेवालेके भी पालक, सृष्टि करनेवालेके भी स्रष्टा, संहार करनेवालेके भी संहारक और कालके भी

काल हैं ॥ ८९-९० ॥

जो मनुष्य इस संसारमें घोर विपत्तिके समयमें भगवान् मधुसूदनका स्मरण करता है, उसके लिये उस विपत्तिमें भी सम्पत्ति उत्पन्न हो जाती है—ऐसा भगवान् शंकरने कहा है। ॥ ९१ ॥

हे नारद! ऐसा कहकर तत्त्वज्ञानी बृहस्पतिने देवराज इन्द्रको हृदयसे लगाकर और शुभाशीर्वाद देकर उन्हें अभीष्ट बात समझा दी ॥ ९२ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'लक्ष्मीकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक चालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४० ॥

इकतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माजीका इन्द्र तथा देवताओंको साथ लेकर श्रीहरिके पास जाना, श्रीहरिका उनसे लक्ष्मीके रुष्ट होनेके कारणोंको बताना, समुद्रमन्थन तथा उससे लक्ष्मीजीका प्रादुर्भाव

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! भगवान् श्रीहरिका ध्यान करके देवराज इन्द्र बृहस्पतिको आगे करके सम्पूर्ण देवताओंके साथ ब्रह्माकी सभामें गये ॥ १ ॥

इन्द्रसमेत सभी देवताओंने गुरु बृहस्पतिके साथ शीघ्र ही ब्रह्मलोक जाकर पद्मयोनि ब्रह्माजीका दर्शन करके उन्हें प्रणाम किया ॥ २ ॥

तत्पश्चात् देवगुरु बृहस्पतिने ब्रह्माजीसे सारा वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर ब्रह्माजी हँस करके देवराज इन्द्रसे कहने लगे ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी बोले—हे वत्स! तुम मेरे वंशमें उत्पन्न हुए हो और मेरे बुद्धिमान् प्रपौत्र हो, इसके अतिरिक्त बृहस्पतिके शिष्य हो और स्वयं देवताओंके स्वामी हो। परम प्रतापी तथा विष्णुभक्त दक्षप्रजापति तुम्हारे नाना हैं। जिसके तीनों कुल पवित्र हों, वह पुरुष अहंकारी कैसे हो सकता है? जिसकी माता पतिव्रता, पिता शुद्धस्वरूप और नाना तथा मामा जितेन्द्रिय हों, वह अहंकारयुक्त कैसे हो सकता है? पिताके दोष, नानाके दोष और गुरुके दोष—इन्हीं तीन दोषोंसे ही मनुष्य भगवान् श्रीहरिका द्रोही हो जाता है ॥ ४—७ ॥

सभीकी अन्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीरमें विराजमान रहते हैं। वे भगवान् जिसके शरीरसे निकल जाते हैं, वह प्राणी उसी क्षण शव हो जाता है ॥ ८ ॥

मैं प्राणियोंके शरीरमें इन्द्रियोंका स्वामी मन बनकर रहता हूँ, शंकर ज्ञानका रूप धारण करके रहते हैं और विष्णुकी प्राणस्वरूपा भगवती श्रीराधा मूलप्रकृतिके रूपमें और साध्वी भगवती दुर्गा बुद्धिरूपमें विराजमान हैं। निद्रा आदि सभी शक्तियाँ भगवती प्रकृतिकी कलाएँ हैं। आत्माका प्रतिबिम्ब भोगशरीर धारण करके जीवरूपमें प्रतिष्ठित है। शरीरके स्वामीरूप आत्माके देहसे निकल जानेपर ये सब उसीके साथ तुरंत उसी प्रकार चले जाते हैं, जैसे मार्गमें चलते हुए राजाके पीछे-पीछे उसके अनुचर आदि चलते हैं ॥ ९—११ ॥

मैं, शिव, शेषनाग, विष्णु, धर्म, महाविराट् तथा तुम सब लोग जिनके अंश तथा भक्त हैं; उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णके पवित्र पुष्पका तुमने अपमान कर दिया है ॥ १२ ॥

शंकरजीने जिस पुष्पसे भगवान् श्रीहरिके चरणकमलकी पूजा की थी, वही पुष्प मुनि दुर्वासाके द्वारा तुम्हें प्रदान किया गया था; किंतु तुमने दैववश उसका तिरस्कार कर दिया ॥ १३ ॥

भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलसे च्युत वह पुष्प जिसके मस्तकपर स्थान पाता है, उसकी पूजा सभी देवताओंमें सबसे पहले होती है ॥ १४ ॥

तुम तो दैवके द्वारा ठग लिये गये हो। प्रारब्ध सबसे अधिक बलशाली होता है। भाग्यहीन तथा मूर्ख व्यक्तिकी रक्षा करनेमें कौन समर्थ है? ॥ १५ ॥

भगवान् श्रीकृष्णको अर्पित किये जानेवाले पुष्पका तुम्हारे द्वारा त्याग किये जानेके कारण वे भगवती श्रीदेवी

कोप करके इस समय तुम्हारे पाससे चली गयी हैं। अतः तुम इसी समय मेरे तथा गुरु बृहस्पतिके साथ वैकुण्ठ चलो। मेरे वरके प्रभावसे वहाँपर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिकी सेवा करके तुम लक्ष्मीको पुनः प्राप्त कर लोगे॥ १६१/२॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर ब्रह्माजीने सभी देवताओंके साथ वैकुण्ठलोक पहुँचकर परब्रह्म सनातन भगवान् श्रीहरिको देखा। वे तेजस्वरूप प्रभु अपने ही तेजसे देदीप्यमान हो रहे थे, वे ग्रीष्म ऋतुके मध्याह्नकालीन सौ करोड़ सूर्योंकी प्रभासे युक्त थे, आदि-अन्त-मध्यसे रहित अनन्तरूप लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि शान्तभावसे विराजमान थे, वे प्रभु चार भुजाओंवाले पार्षदों तथा भगवती सरस्वतीके साथ सुशोभित हो रहे थे और चारों वेदोंसहित देवी गंगा भक्तिभावसे युक्त होकर उनके पास विराजमान थीं। उन प्रभुको देखकर ब्रह्माके अनुगामी सभी देवताओंने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। भक्ति तथा विनयसे युक्त होकर देवताओंने नेत्रोंमें आँसू भरकर उन परमेश्वरकी स्तुति की॥ १७—२१॥

तत्पश्चात् स्वयं ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर भगवान् श्रीहरिसे सारा वृत्तान्त कहा। अपने अधिकारसे वंचित सभी देवता उस समय रो रहे थे॥ २२॥

उन भगवान् श्रीहरिने देखा कि सभी देवगण विपत्तिसे ग्रस्त, भयसे व्याकुल, रत्न तथा आभूषणसे विहीन, वाहन आदिसे रहित, शोभाशून्य, श्रीहीन, निस्तेज तथा अत्यन्त भयग्रस्त हैं। उन्हें इस प्रकार कष्टसे व्याकुल देखकर संसारका भय दूर करनेवाले प्रभु कहने लगे॥ २३-२४॥

श्रीभगवान् बोले—हे ब्रह्मन्! हे देवगण! आप लोग मत डरिये। मेरे रहते आपलोगोंको किस बातका भय है। मैं आपलोगोंको परम ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाली स्थिर लक्ष्मी प्रदान करूँगा। किंतु मेरी कुछ समयोचित बात सुनिये; जो हितकर, सत्य, सारभूत तथा परिणाममें सुखकारी है॥ २५-२६॥

जैसे अनन्त ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले सभी प्राणी निरन्तर मेरे अधीन रहते हैं, वैसे ही मैं भी अपने भक्तोंके अधीन रहता हूँ, स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे प्रति समर्पित मेरा निरंकुश भक्त जिस-जिसके ऊपर रुष्ट होता है, उसके घर मैं लक्ष्मीके साथ कभी नहीं ठहरता—यह निश्चित है॥ २७-२८॥

भगवान् शंकरके अंशसे उत्पन्न ऋषि दुर्वासा महान् वैष्णव हैं तथा मेरे प्रति अनन्य भक्ति रखते हैं। उन्होंने तुम्हें शाप दे दिया है, अतः मैं आपलोगोंके घरसे लक्ष्मीसहित चला आया हूँ॥ २९॥

जहाँ शंखध्वनि नहीं होती, तुलसी नहीं रहतीं, शिवकी पूजा नहीं होती तथा ब्राह्मणोंको भोजन नहीं कराया जाता, वहाँ लक्ष्मी नहीं रहतीं॥ ३०॥

हे ब्रह्मन्! हे देवगण! जहाँ मेरी तथा मेरे भक्तोंकी निन्दा होती है, वहाँसे महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं और उसका पराभव हो जाता है॥ ३१॥

जो मूर्ख मनुष्य मेरी भक्तिसे रहित है तथा एकादशी और मेरे जन्मके दिन (जन्माष्टमी आदि)-को भोजन करता है, उसके भी घरसे लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३२॥

जो व्यक्ति मेरे नामका तथा अपनी कन्याका विक्रय करता है और जिसके यहाँ अतिथि भोजन नहीं करता, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३३॥

जो ब्राह्मण वेश्याका पुत्र है अथवा उसका पति है, वह महापापी है। जो विप्र ऐसे पापीके घर जाता है तथा शूद्रका श्राद्धान्न खाता है, उसके घरसे कमलासना महालक्ष्मी अत्यन्त रुष्ट होकर चली जाती हैं॥ ३४१/२॥

हे देवगण! जो द्विजाधम शूद्रोंका शव जलाता है, वह भाग्यहीन हो जाता है। उससे रुष्ट होकर कमलवासिनी लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३५१/२॥

जो ब्राह्मण शूद्रोंके यहाँ भोजन पकानेका काम करता है तथा जो बैल हाँकता है, उसका जल पीनेसे लक्ष्मी डरती हैं और उसके घरसे चली जाती हैं॥ ३६१/२॥

जो ब्राह्मण अशुद्ध हृदयवाला, क्रूर, हिंसक, दूसरोंकी निन्दा करनेवाला तथा शूद्रोंका यज्ञ करानेवाला होता है, उसके घरसे भगवती लक्ष्मी चली जाती हैं। जो ब्राह्मण पति-पुत्रहीन स्त्रीका अन्न खाता है, उसके घरसे भी जगज्जननी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३७-३८॥

जो नखोंसे निष्प्रयोजन तृण तोड़ता है अथवा नखोंसे भूमिको कुरेदता रहता है तथा जिसके यहाँसे ब्राह्मण निराश होकर चला जाता है, उसके घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ३९॥

जो ब्राह्मण सूर्योदयके समय भोजन करता है, दिनमें शयन करता है तथा दिनमें मैथुन करता है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४०॥

जो ब्राह्मण आचारहीन, शूद्रोंसे दान ग्रहण करनेवाला, दीक्षासे विहीन तथा मूर्ख है; उसके भी घरसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४१॥

जो अल्पज्ञ भींगे पैर अथवा नग्न होकर सोता है तथा वाचालकी भाँति निरन्तर बोलता रहता है, उसके घरसे वे साध्वी लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४२॥

जो व्यक्ति अपने सिरपर तेल लगाकर उसी हाथसे दूसरेके अंगका स्पर्श करता है और अपने किसी अंगको बाजेकी तरह बजाता है, उससे रुष्ट होकर वे लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती हैं॥ ४३॥

जो ब्राह्मण व्रत-उपवास नहीं करता, सन्ध्या-वन्दन नहीं करता, सदा अपवित्र रहता है तथा भगवान् विष्णुकी भक्तिसे रहित है, उसके यहाँसे मेरी प्रिया लक्ष्मी चली जाती हैं॥ ४४॥

जो व्यक्ति ब्राह्मणकी निन्दा करता है और उससे सदा द्वेषभाव रखता है, जीवोंकी हिंसा करता है तथा प्राणियोंके प्रति दयाभाव नहीं रखता है; सबकी जननी लक्ष्मी उस व्यक्तिसे दूर चली जाती हैं॥ ४५॥

जिस-जिस जगह भगवान् विष्णुकी पूजा होती है तथा उनका गुणगान होता है, वहाँ सम्पूर्ण मंगलोंको भी मंगल प्रदान करनेवाली वे भगवती लक्ष्मी निवास करती हैं॥ ४६॥

हे पितामह! जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तोंका यशोगान किया जाता है, वहाँ उन श्रीकृष्णकी प्रिया भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं॥ ४७॥

जहाँ शंखध्वनि होती है और शंख, शालग्रामशिला तथा तुलसीदल—ये रहते हैं एवं उनकी सेवा, वन्दना तथा ध्यान किया जाता है; वहाँ वे लक्ष्मी सर्वदा निवास करती हैं॥ ४८॥

जहाँ शिवलिंगकी पूजा तथा उनके गुणोंका शुभ कीर्तन और भगवती दुर्गाका पूजन तथा उनका गुणगान किया जाता है, वहाँ पद्मनिवासिनी देवी लक्ष्मी वास करती हैं॥ ४९॥

जहाँ ब्राह्मणोंकी सेवा होती है, उन्हें उत्तम भोजन कराया जाता है और सभी देवताओंकी पूजा होती है, वहाँ कमलके समान मुखवाली साध्वी लक्ष्मी विराजमान रहती हैं॥ ५०॥

[हे नारद!] समस्त देवताओंसे ऐसा कहकर लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरिने लक्ष्मीजीसे कहा—क्षीरसागरके यहाँ तुम



अपनी एक कलासे जन्म ग्रहण करो॥ ५१॥

लक्ष्मीजीसे ऐसा कहकर जगत्प्रभु श्रीहरिने ब्रह्माजीसे पुनः कहा—हे कमलोद्भव! आप समुद्रमन्थन करके उससे प्रकट होनेवाली लक्ष्मी देवताओंको सौंप दीजिये॥ ५२॥

हे मुने! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरि अन्तःपुरमें चले गये और देवताओंने भी कुछ कालके अनन्तर क्षीरसागरकी ओर प्रस्थान किया॥ ५३॥

समस्त देवताओं तथा राक्षसोंने मन्दराचलपर्वतको मथानी, कच्छपको आधार और शेषनागको मथानीकी रस्सी बनाकर समुद्रमन्थन किया। उसके परिणामस्वरूप उन्हें धन्वन्तरि, अमृत, इच्छित उच्चैःश्रवा नामक अश्व, अनेकविध रत्न, हाथियोंमें रत्नस्वरूप ऐरावत, लक्ष्मी, सुदर्शन चक्र और वनमाला आदि प्राप्त हुए। हे मुने! तब विष्णुपरायणा साध्वी लक्ष्मीने वह वनमाला क्षीरसागरमें शयन करनेवाले मनोहर सर्वेश्वर श्रीविष्णुको समर्पित कर दी॥ ५४—५६॥

तत्पश्चात् ब्रह्मा, शिव तथा देवताओंके द्वारा पूजा तथा स्तुति किये जानेपर भगवती लक्ष्मीने देवताओंके भवनपर अपनी कृपादृष्टि डाली, फलस्वरूप वे देवगण मुनि दुर्वासाके शापसे मुक्त हो गये। हे नारद! इस प्रकार महालक्ष्मीके अनुग्रह तथा वरदानसे उन देवताओंने दैत्योंके द्वारा अधिकृत किये गये तथा भयंकर बना दिये गये अपने राज्यको पुनः प्राप्त कर लिया॥ ५७-५८॥

इस प्रकार मैंने लक्ष्मीका अत्यन्त उत्तम, सुखप्रद तथा सारभूत सम्पूर्ण उपाख्यान आपसे कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ५९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'श्रीलक्ष्मी-उपाख्यानवर्णन' नामक इकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

इन्द्रद्वारा भगवती लक्ष्मीका षोडशोपचार-पूजन एवं स्तवन

नारदजी बोले—हे प्रभो! मैंने भगवान् श्रीहरिका कल्याणप्रद गुणानुवाद, उनका उत्तम ज्ञान तथा भगवती लक्ष्मीका अभीष्ट उपाख्यान सुना। अब उन देवीके ध्यान तथा स्तोत्रके विषयमें बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] प्राचीन कालकी बात है। इन्द्रने क्षीरसमुद्रके तटपर तीर्थस्नान करके दो स्वच्छ वस्त्र धारण करनेके बाद कलशकी स्थापना करके श्रीगणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा की। गन्ध, पुष्प आदिसे भक्तिपूर्वक इन देवोंकी पूजा करके देवेश्वर इन्द्रने ब्रह्माजी तथा अपने पुरोहित गुरु बृहस्पतिके द्वारा निर्दिष्ट विधानके अनुसार परम ऐश्वर्यमयी भगवती महालक्ष्मीका आवाहन करके उनकी पूजा की। हे मुने! उस समय उस पावनस्थलपर अनेक मुनि, ब्राह्मणसमुदाय, गुरु बृहस्पति, श्रीहरि, देवगण तथा ज्ञानानन्द भगवान् शिव आदि विराजमान थे॥ २—५॥

हे नारद! इन्द्रने पारिजातका चन्दन-चर्चित पुष्प लेकर पूर्वकालमें भगवान् श्रीहरिने ब्रह्माजीको सामवेदमें वर्णित जो ध्यान बतलाया था, उसी ध्यानके द्वारा भगवती महालक्ष्मीका ध्यान करके उनका पूजन किया, मैं वही ध्यान तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो॥ ६-७॥

'ये पराम्बा महालक्ष्मी सहस्रदलवाले कमलपर स्थित कर्णिकाके ऊपर विराजमान हैं, वे श्रेष्ठ भगवती शरत्पूर्णिमाके करोड़ों चन्द्रमाओंकी कान्तिका हरण करनेवाली हैं, अपने ही तेजसे देदीप्यमान हैं, इन मनोहर देवीका दर्शन अत्यन्त सुखप्रद है, ये साध्वी महालक्ष्मी मूर्तिमान् होकर तपाये हुए सुवर्णके समान शोभित हो रही हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत तथा पीताम्बरसे सुशोभित हो रही हैं, इनके प्रसन्न मुखमण्डलपर मन्द-मन्द मुसकान विराज रही है, ये सर्वदा स्थिर रहनेवाले यौवनसे सम्पन्न हैं—ऐसी कल्याणमयी तथा सर्वसम्पत्तिदायिनी महालक्ष्मीकी मैं उपासना करता हूँ'॥ ८—१०१/२॥

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके इन्द्रने ब्रह्माजीके कथनानुसार सोलह पूजनोपचारोंसे अनेक गुणोंवाली उन भगवती महालक्ष्मीकी पूजा की, उन्होंने भक्तिके साथ मन्त्रपूर्वक विधानके अनुसार प्रत्येक उपचार अर्पित किया। इन्द्रने विविध प्रकारके प्रशस्त, उत्कृष्ट तथा श्रेष्ठ उपचार इस प्रकार समर्पित किये॥ ११-१२१/२॥

हे महालक्ष्मि! विश्वकर्माके द्वारा निर्मित अमूल्य रत्नसारस्वरूप इस विचित्र आसनको ग्रहण कीजिये॥ १३१/२॥

हे कमलालये! पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये वह्निस्वरूप, सबके द्वारा वन्दित तथा अभिलषित और परम पवित्र इस गंगाजलको [पाद्यके रूपमें] स्वीकार कीजिये॥ १४१/२॥

हे पद्मवासिनि! पुष्प, चन्दन, दूर्वा आदिसे युक्त इस शंखमें स्थित गंगाजलको सुन्दर अर्घ्यके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ १५१/२॥

हे श्रीहरिप्रिये! सुगन्धित पुष्पोंसे सुवासित तैल तथा सुगन्धपूर्ण आमलकीचूर्ण—इन देहसौन्दर्यके बीजरूप

स्नानीय उपचारोंको आप ग्रहण कीजिये। हे देवि! कपास तथा रेशमसे निर्मित इस वस्त्रको आप स्वीकार कीजिये॥ १६-१७॥

हे देवि! स्वर्ण तथा रत्नोंसे निर्मित, देहसौन्दर्यकी वृद्धि करनेवाले, ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण सुन्दरताके कारणस्वरूप तथा शीघ्र ही शोभा प्रदान करनेवाले इस श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणको अपनी शोभाके लिये आप ग्रहण कीजिये। हे श्रीकृष्णकान्ते! वृक्षसे रसके रूपमें निकले हुए तथा सुगन्धित द्रव्योंसे युक्त यह पवित्र धूप आप ग्रहण करें। हे देवि! सुगन्धसे परिपूर्ण तथा सुखप्रद इस चन्दनको आप स्वीकार कीजिये॥ १८—२०॥

हे सुरेश्वरि! जगत्के लिये चक्षुस्वरूप, अन्धकार दूर करनेवाले, सुखरूप तथा परम पवित्र इस दीपकको आप स्वीकार कीजिये॥ २१॥

नाना प्रकारके उपहारस्वरूप अनेकविध रसोंसे युक्त तथा अत्यन्त स्वादिष्ट इस नैवेद्यको आप स्वीकार कीजिये। अन्न ब्रह्मस्वरूप होता है, यह प्राणरक्षाका परम कारण है, तुष्टि तथा पुष्टि प्रदान करता है, अतः हे देवि! आप इस अन्नको ग्रहण कीजिये॥ २२-२३॥

हे महालक्ष्मि! शर्करा और गोघृत मिलाकर अगहनी चावलसे तैयार किये गये इस स्वादिष्ट पक्वान्नको परमान्नके रूपमें आप स्वीकार करें। हे परमेश्वरि! शर्करा और घृतमें पकाया गया यह स्वादिष्ट तथा अत्यन्त मनोहर स्वस्तिक नामक नैवेद्य आप ग्रहण करें॥ २४-२५॥

हे अच्युतप्रिये! ये अनेक प्रकारके सुन्दर पक्वान्न तथा फल और सुरभीधेनुके स्तनसे दुहे गये मृत्युलोकके लिये अमृतस्वरूप, अत्यन्त मनोहर तथा सुस्वादु दुग्धको आप स्वीकार कीजिये। ईखसे निकाले गये अत्यन्त स्वादिष्ट रसको अग्निपर पकाकर निर्मित किये गये इस परम स्वादिष्ट गुड़को आप स्वीकार कीजिये। हे देवि! जौ, गेहूँ आदिके चूर्णमें गुड़ तथा गायका घृत मिलाकर भलीभाँति पकाये गये इस मिष्टान्नको आप ग्रहण कीजिये। मैंने धान्यके चूर्णसे बनाये गये तथा स्वस्तिक आदिसे युक्त यह पका हुआ नैवेद्य आपको भक्तिपूर्वक अर्पण किया है, इसे स्वीकार करें॥ २६—२९½॥

हे कमले! शीतल वायु प्रदान करनेवाला और उष्णकालमें परम सुखदायक यह पंखा तथा स्वच्छ चँवर ग्रहण कीजिये॥ ३०½॥

कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित तथा जिह्वाकी जड़ताको दूर करनेवाले इस उत्तम ताम्बूलको आप स्वीकार करें॥ ३१½॥

हे देवि! प्यास बुझानेवाले, अत्यन्त शीतल, सुवासित तथा जगत्के लिये जीवनस्वरूप इस जलको स्वीकार कीजिये॥ ३२½॥

हे देवि! देहसौन्दर्यके मूल कारण तथा सदा शोभा बढ़ानेवाले इस सूती तथा रेशमी वस्त्रको आप ग्रहण करें॥ ३३½॥

हे देवि! रक्तस्वर्णनिर्मित, शरीरकी शोभा आदिकी वृद्धि करनेवाला, सौन्दर्यका आधार तथा कान्तिवर्धक यह आभूषण ग्रहण कीजिये॥ ३४½॥

हे देवि! विविध ऋतुओंके पुष्पोंसे गूँथी गयी, अत्यधिक शोभाके आश्रयस्वरूप तथा देवराज इन्द्रके लिये भी परम प्रिय इस श्रेष्ठ तथा पवित्र मालाको आप स्वीकार करें॥ ३५½॥

हे देवि! सुगन्धित द्रव्योंसे सम्पन्न, सभी मंगलोंका भी मंगल करनेवाले, शुद्धि प्रदान करनेवाले तथा शुद्धस्वरूप इस दिव्य चन्दनको आप ग्रहण कीजिये॥ ३६½॥

हे कृष्णकान्ते! यह पवित्र तीर्थजल स्वयं शुद्ध है तथा दूसरोंको भी सदा शुद्धि प्रदान करनेवाला है, इस दिव्य जलको आप आचमनके रूपमें ग्रहण कीजिये॥ ३७½॥

हे देवि! अमूल्य रत्नोंसे निर्मित, पुष्प तथा चन्दनसे चर्चित और वस्त्र-आभूषण तथा शृंगारसामग्रीसे सम्पन्न इस दिव्य शय्याको आप स्वीकार करें। हे देवि! इस पृथ्वीपर जो भी अपूर्व तथा दुर्लभ द्रव्य शरीरकी शोभावृद्धिके योग्य हैं, उन समस्त द्रव्योंको आपको अर्पण कर रहा हूँ, आप ग्रहण कीजिये॥ ३८-३९½॥

[हे मुने!] मूलमन्त्र पढ़ते हुए ये उपचार भगवतीको समर्पित करके देवराज इन्द्रने विधानके अनुसार भक्तिपूर्वक उनके मूल मन्त्रका दस लाख जप किया। उस दस लाख जपसे इन्द्रको मन्त्रकी सिद्धि हो गयी॥ ४०-४१॥

सभीके लिये कल्पवृक्षके समान यह मूलमन्त्र उन्हें ब्रह्माजीके द्वारा प्रदान किया गया था। पूर्वमें लक्ष्मीबीज (श्रीं), मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)-का प्रयोग करके कमलवासिनी इस शब्दके अन्तमें 'ङे'

(चतुर्थी) विभक्ति लगाकर पुनः 'स्वाहा' शब्द जोड़ देनेपर **'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं कमलवासिन्यै स्वाहा'**—यही मन्त्र वैदिक मन्त्रराजके रूपमें प्रसिद्ध है। कुबेरने इसी मन्त्रके द्वारा परम ऐश्वर्य प्राप्त किया था और दक्षसावर्णि नामक मनुने राजराजेश्वरका पद प्राप्त कर लिया था। मंगल इसी मन्त्रके प्रभावसे सात द्वीपोंके राजा हुए थे। हे नारद! प्रियव्रत, उत्तानपाद और केदार—ये सभी इसी मन्त्रके प्रभावसे परम सिद्ध राजाधिराज बने॥ ४२—४५॥

इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर भगवती महालक्ष्मीने इन्द्रको दर्शन दिया। उस समय वे वरदायिनी भगवती सर्वोत्तम रत्नसे निर्मित विमानपर विराजमान थीं, उन्होंने अपने तेजसे सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीको व्याप्त कर रखा था, उनका श्रीविग्रह श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान था, वे रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थीं, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये परम आतुर थीं, उन्होंने रत्नमयी माला धारण कर रखी थी और वे करोड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिसे युक्त थीं। उन शान्त स्वभाववाली जगज्जननी भगवती महालक्ष्मीको देखकर इन्द्रके सभी अंग पुलकित हो उठे और वे दोनों हाथ जोड़कर अश्रुपूरित नेत्रोंसे ब्रह्माजीसे प्राप्त तथा सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करनेवाले इस वैदिक स्तोत्रराजके द्वारा उन महालक्ष्मीकी स्तुति* करने लगे॥ ४६-५०॥

पुरन्दर बोले—भगवती कमलवासिनीको नमस्कार है। देवी नारायणीको नमस्कार है, कृष्णप्रिया महालक्ष्मीको निरन्तर बार-बार नमस्कार है॥ ५१॥ कमलपत्रके समान नेत्रवाली और कमलके समान मुखवालीको बार-बार नमस्कार है। पद्मासना, पद्मिनी और वैष्णवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५२॥ सर्वसम्पत्स्वरूपा तथा सबकी आराध्या देवीको बार-बार नमस्कार है। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाली तथा हर्षदायिनी भगवती लक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५३॥ हे रत्नपद्मे! हे शोभने! श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर सुशोभित होनेवाली तथा चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली आप कृष्णेश्वरीको बार-बार नमस्कार है॥ ५४॥ सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। वृद्धिस्वरूपिणी भगवती महालक्ष्मीको नमस्कार है। वृद्धि प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीको बार-बार नमस्कार है॥ ५५॥ हे भगवति! आप वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, क्षीरसागरमें लक्ष्मी, इन्द्रके भवनमें स्वर्गलक्ष्मी, राजाओंके भवनमें राजलक्ष्मी, गृहस्थोंके घरमें गृहलक्ष्मी और गृहदेवता, सागरके यहाँ सुरभि तथा यज्ञके पास दक्षिणाके रूपमें विराजमान रहती हैं॥ ५६-५७॥ आप अदिति, देवमाता, कमला तथा कमलालया नामसे प्रसिद्ध हैं और हवि प्रदान करते समय स्वाहा तथा कव्य प्रदान करते समय स्वधा नामसे कही गयी हैं॥ ५८॥ सम्पूर्ण जगत्को धारण करनेवाली विष्णुस्वरूपिणी पृथ्वी आप ही हैं। आप भगवान् नारायणकी आराधनामें सदा तत्पर रहनेवाली तथा विशुद्ध सत्त्वसम्पन्न हैं। आप क्रोध तथा हिंसासे रहित, वर प्रदान करनेवाली, बुद्धि प्रदान करनेवाली, मंगलमयी, श्रेष्ठ, परमार्थ तथा भगवान्का दास्य प्रदान करनेवाली हैं॥ ५९-६०॥ आपके बिना सम्पूर्ण जगत् भस्मीभूत तथा सारहीन है। आपके बिना यह समग्र विश्व सर्वथा जीते-जी मरे हुएके समान है॥ ६१॥ आप समस्त प्राणियोंकी श्रेष्ठ माता, सबकी बान्धवस्वरूपिणी और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष (पुरुषार्थचतुष्टय)-की मूल कारण

* नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सततं महालक्ष्म्यै नमो नमः॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥
सर्वसम्पत्स्वरूपिण्यै सर्वाराध्यै नमो नमः। हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः॥
कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः। चन्द्रशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने॥
सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः। नमो वृद्धिस्वरूपायै वृद्धिदायै नमो नमः॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्या लक्ष्मीः क्षीरसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता। सुरभिः सागरे जाता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालया। स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा शारदा शुभा। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥
यया विना जगत्सर्वं भस्मीभूतमसारकम्। जीवन्मृतं च विश्वं च शश्वत्सर्वं यया विना॥
सर्वेषां च परा माता सर्वबान्धवरूपिणी। धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥
यथा माता स्तनान्धानां शिशूनां शैशवे सदा। तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥
मातृहीनः स्तनान्धस्तु स च जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके। (श्रीमद्देवीभा० ९।४२।५१—६५)

हैं॥ ६२॥ जिस प्रकार माता शैशवावस्थामें स्तनपायी शिशुओंकी सदा रक्षा करती है, उसी प्रकार आप सभी प्राणियोंकी माताके रूपमें सब प्रकारसे उनकी रक्षा करती हैं॥ ६३॥ स्तनपायी शिशु माताके न रहनेपर भी दैवयोगसे जी भी सकता है, किंतु आपसे रहित होकर कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता—यह निश्चित है। हे अम्बिके! आप अत्यन्त प्रसन्नतापूर्ण स्वरूपवाली हैं, अतः मुझपर प्रसन्न हों॥ ६४१/२॥

हे सनातनि! शत्रुओंके द्वारा अधिकृत किया गया मेरा राज्य मुझे पुनः प्राप्त कराइये। हे हरिप्रिये! मैं जबतक आपके दर्शनसे वंचित था; तभीतक बन्धुहीन, भिक्षुक और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे विहीन था। अब आप मुझे ज्ञान, धर्म, पूर्ण सौभाग्य, सम्पूर्ण अभीष्ट, प्रभाव, प्रताप, सम्पूर्ण अधिकार, परम ऐश्वर्य, पराक्रम तथा युद्धमें विजय प्रदान कीजिये॥ ६५—६७१/२॥

[हे नारद!] ऐसा कहकर सभी देवताओंके साथ इन्द्रने अश्रुपूरित नेत्रोंसे तथा मस्तक झुकाकर भगवतीको बार-बार प्रणाम किया। ब्रह्मा, शंकर, शेषनाग, धर्म तथा केशव—इन सभीने देवताओंके कल्याणहेतु भगवतीसे बार-बार प्रार्थना की॥ ६८-६९१/२॥

तब देवसभामें परम प्रसन्न होकर भगवती महालक्ष्मीने देवताओंको वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्णको मनोहर पुष्पमाला समर्पित कर दी। हे नारद! तदनन्तर सभी देवता प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये और प्रसन्नचित्त महालक्ष्मी भी क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् श्रीहरिके लोकको चली गयीं। हे नारद! देवताओंको आशीर्वाद देकर ब्रह्मा और शिव भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने लोकको चले गये॥ ७०—७२१/२॥

[हे नारद!] जो मनुष्य तीनों सन्ध्याकालमें इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह कुबेरके समान महान् राजराजेश्वर हो जाता है। पाँच लाख जप करनेपर मनुष्योंके लिये यह स्तोत्र सिद्ध हो जाता है। यदि कोई मनुष्य एक मासतक निरन्तर इस सिद्ध स्तोत्रका पाठ करे, तो वह परम सुखी तथा राजेन्द्र हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ ७३—७५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'महालक्ष्मीका ध्यानस्तोत्रवर्णन' नामक बयालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

भगवती स्वाहाका उपाख्यान

नारदजी बोले—हे नारायण! हे महाभाग! हे महाप्रभो! आप रूप, गुण, यश, तेज और कान्तिमें साक्षात् नारायण ही हैं॥ १॥

हे मुने! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! आप ज्ञानियों, सिद्धों, योगियों, तपस्वियों और मुनियोंमें परम श्रेष्ठ हैं। मैंने आपसे महालक्ष्मीका अत्यन्त अद्भुत उपाख्यान जान लिया, अब आप मुझे कोई दूसरा उपाख्यान बतलाइये; जो रहस्यमय, अत्यन्त गोपनीय, सबके लिये उपयोगी, पुराणोंमें अप्रकाशित, धर्मयुक्त तथा वेदप्रतिपादित हो॥ २—४॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! ऐसे अनेकविध आख्यान हैं, जो पुराणोंमें वर्णित नहीं हैं। कई प्रकारके आख्यान सुने भी गये हैं, जो अत्यन्त दुर्लभ तथा गूढ़ हैं, उनमें किस सारभूत आख्यानको आप सुनना चाहते हैं? हे महाभाग! आप पहले मुझसे उसे बताइये, तब मैं उसका वर्णन करूँगा॥ ५-६॥

नारदजी बोले—सभी धार्मिक कर्मोंमें हवि-प्रदानके समय स्वाहादेवी और श्राद्धकर्ममें स्वधादेवी प्रशस्त मानी गयी हैं। यज्ञ आदि कर्मोंमें दक्षिणादेवी सर्वश्रेष्ठ हैं। हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैं आपके मुखसे इन्हीं देवियोंके चरित्र, अवतारग्रहणका प्रयोजन तथा महत्त्व सुनना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ७-८॥

सूतजी बोले—नारदजीकी बात सुनकर मुनिवर नारायणने हँसकर पुराणप्रतिपादित प्राचीन कथा कहनी आरम्भ की॥ ९॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! प्राचीन समयमें सृष्टिके प्रारम्भिक कालमें देवतागण अपने आहारके लिये ब्रह्मलोक

गये। वहाँपर वे ब्रह्माजीकी मनोहर सभामें आये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने आहारके लिये ब्रह्माजीसे प्रार्थना की। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजीने उनके लिये आहारकी प्रतिज्ञा करके परमेश्वर श्रीहरिकी आराधना की॥ १०-११॥

नारदजी बोले—भगवान् श्रीहरि अपनी कलासे यज्ञके रूपमें प्रकट हो चुके थे। तब यज्ञमें ब्राह्मणोंके द्वारा उन देवताओंको जो-जो हव्य प्रदान किया जाता था, क्या उससे उनकी तृप्ति नहीं होती थी?॥ १२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! ब्राह्मण और क्षत्रिय आदि वर्ण देवताओंके निमित्त भक्तिपूर्वक जो हविदान करते थे, उस प्रदत्त हविको देवगण नहीं प्राप्त कर पाते थे। उसीसे वे सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मसभामें गये और वहाँ जाकर उन्होंने आहारके अभावकी बात बतायी॥ १३-१४॥

देवताओंकी यह प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने ध्यान करके श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण की। तब उन श्रीकृष्णके आदेशानुसार ब्रह्माजी ध्यानके साथ मूलप्रकृति भगवतीकी आराधना करने लगे। इसके फलस्वरूप सर्वशक्तिस्वरूपिणी स्वाहादेवी भगवती मूलप्रकृतिकी कलासे प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, लावण्यमय, रमणीय तथा मनोहर था, उनका मुखमण्डल मन्द-मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वे अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर-सी प्रतीत हो रही थीं, ऐसे स्वरूपवाली उन भगवती स्वाहाने ब्रह्माके सम्मुख उपस्थित होकर कहा—हे पद्मयोने! वर माँगो। उनका वचन सुनकर ब्रह्माजी आदरपूर्वक उन भगवतीसे कहने लगे—॥ १५—१७१/२॥

प्रजापति बोले—[हे देवि!] आप अग्निकी परम सुन्दर दाहिकाशक्ति हो जाइये; क्योंकि आपके बिना अग्निदेव आहुतियोंको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हैं। जो मनुष्य मन्त्रके अन्तमें आपके नामका उच्चारण करके देवताओंको हवि प्रदान करेगा, उसे देवगण प्रेमपूर्वक ग्रहण करेंगे। हे अम्बिके! आप अग्निदेवकी सम्पत्स्वरूपिणी तथा श्रीरूपिणी गृहस्वामिनी बन जाइये, देवता तथा मनुष्य आदिके लिये आप नित्य पूजनीय होवें॥ १८—२०१/२॥

ब्रह्माजीकी बात सुनकर वे भगवती स्वाहा उदास हो गयीं। उसके बाद उन्होंने ब्रह्माजीसे अपना अभिप्राय व्यक्त कर दिया॥ २११/२॥

स्वाहा बोलीं—हे ब्रह्मन्! मैं दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँगी; क्योंकि उनके अतिरिक्त जो कुछ भी है, वह सब स्वप्नकी भाँति केवल भ्रम है॥ २२१/२॥

जिनके अनुग्रहसे आप जगत्का विधान करते हैं, भगवान् शिवने मृत्युपर विजय प्राप्त की है, शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं, धर्मराज सभी धर्मनिष्ठ प्राणियोंके साक्षी बने हैं, गणेश्वर सभी देवगणोंमें सबसे पहले पूजे जाते हैं, पूर्वकालमें भगवती मूलप्रकृति सबके द्वारा पूजित हुईं और जिनकी उपासनाके प्रभावसे ऋषि तथा मुनिगण पूजित हुए हैं, मैं उन परमेश्वर श्रीकृष्णके चरणकमलका संयत होकर प्रेमपूर्वक निरन्तर ध्यान करती हूँ॥ २३—२५१/२॥

ब्रह्माजीसे ऐसा कहकर कमलके समान मुखवाली स्वाहादेवी भगवान् विष्णुकी आज्ञाके अनुसार तपस्या करनेके लिये चली गयीं और उन पद्मजा स्वाहाने निर्विकार श्रीकृष्णका ध्यान करके एक पैरपर खड़े होकर एक लाख वर्षतक तप किया। तत्पश्चात् उन्हें अप्राकृत निर्गुण भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन हुए। भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त



मनोहर रूप देखकर ही वे रूपवती भगवती स्वाहा मूर्च्छित हो गयीं; क्योंकि उन कामुकी देवीने दीर्घकालके अनन्तर उन कामेश्वर श्रीकृष्णको देखा था॥ २६—२८१/२॥

भगवती स्वाहाका अभिप्राय समझकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्ण दीर्घकालतक तपस्याके कारण अत्यन्त क्षीण देहवाली उन देवीको गोदमें बैठाकर उनसे कहने लगे॥ २९१/२॥

श्रीभगवान् बोले—हे कान्ते! तुम अंशरूपसे

वाराहकल्पमें मेरी भार्या बनोगी, उस समय तुम नग्नजित्की पुत्रीके रूपमें उत्पन्न होकर नाग्नजिती नामसे विख्यात होओगी। इस समय तुम दाहिकाशक्तिके रूपमें अग्निदेवकी मनोहर पत्नी बनो। मेरे अनुग्रहसे तुम मन्त्रोंकी अंगस्वरूपिणी बनकर सबसे पूजित होओगी। अग्निदेव तुम्हें गृहस्वामिनी बनाकर भक्तिभावके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे और वे परम रमणीया भार्याके रूपमें तुम्हारे साथ रमण करेंगे॥ ३०—३२१/२॥

हे नारद! देवी स्वाहासे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये। इसके बाद ब्रह्माज्ञासे अत्यन्त भयभीत अग्निदेव वहाँ आये। उन्होंने सामवेदमें कही गयी ध्यानविधिसे उन भगवती जगदम्बिकाका ध्यान करके तथा विधिपूर्वक पूजन करके उन्हें परम प्रसन्न किया तथा मन्त्रोच्चारपूर्वक उनका पाणिग्रहण किया॥ ३३-३४१/२॥

तत्पश्चात् वे विहारके लिये सुखप्रद तथा अत्यन्त निर्जन स्थानमें भगवती स्वाहाके साथ दिव्य एक सौ वर्षोंतक रमण करते रहे और अग्निके तेजसे उन्होंने गर्भधारण कर लिया। देवी स्वाहा उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन भगवती स्वाहाने क्रमसे दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि तथा आहवनीयाग्नि—इन सुन्दर तथा मनोहर पुत्रोंको उत्पन्न किया॥ ३५—३७१/२॥

तभीसे ऋषि, मुनि, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मन्त्रके अन्तमें स्वाहा शब्द जोड़कर मन्त्रोच्चारण करके अग्निमें हवन करने लगे। जो मनुष्य स्वाहायुक्त प्रशस्त मन्त्रका उच्चारण करता है; मन्त्रके उच्चारणमात्रसे उसे सभी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ ३८-३९१/२॥

जिस प्रकार विषरहित सर्प, वेदविहीन ब्राह्मण, पतिसेवाविहीन स्त्री, विद्यासे शून्य मनुष्य और फल तथा शाखासे रहित वृक्ष निन्दनीय होता है, उसी प्रकार स्वाहारहित मन्त्र निन्द्य होता है; ऐसे मन्त्रसे किया गया हवन फलप्रद नहीं होता॥ ४०-४११/२॥

तब समस्त ब्राह्मण सन्तुष्ट हो गये और देवताओंको आहुतियाँ मिलने लगीं। अन्तमें स्वाहायुक्त मन्त्रसे सब कुछ सफल हो जाता है। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने भगवती स्वाहासे सम्बन्धित सम्पूर्ण उत्तम आख्यानका वर्णन कर दिया। यह आख्यान सुखदायक, सारभूत तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ४२-४३१/२॥

नारदजी बोले—हे मुनीश्वर! हे प्रभो! अग्निने जिस पूजा-विधान, ध्यान तथा स्तोत्रद्वारा स्वाहाको प्रसन्न किया था, उसे आप मुझे बताइये॥ ४४१/२॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं भगवतीके सामवेदोक्त ध्यान, स्तोत्र तथा पूजा-विधानको बता रहा हूँ, आप सावधान होकर सुनिये॥ ४५१/२॥

फलप्राप्तिके निमित्त सम्पूर्ण यज्ञोंके आरम्भिक कालमें शालग्राम अथवा कलशपर यत्नपूर्वक भगवती स्वाहाका विधिवत् पूजन करके यज्ञ करना चाहिये॥ ४६१/२॥

भगवती स्वाहा वेदांगमय मन्त्रोंसे सम्पन्न, मन्त्रसिद्धिस्वरूपा, सिद्धस्वरूपिणी, मनुष्योंको सिद्धि तथा उनके कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा कल्याणमयी हैं—इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे पाद्य आदि अर्पण करके भगवतीका स्तवन करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त कर लेता है। हे मुने! अब मूलमन्त्र सुनिये—'**ॐ ह्रीं श्रीं वह्निजायायै देव्यै स्वाहा**'—इस मन्त्रसे जो व्यक्ति भक्तिपूर्वक उन भगवती स्वाहाकी पूजा करता है, उसका समस्त अभीष्ट निश्चितरूपसे पूर्ण हो जाता है॥ ४७—४९१/२॥

वह्नि बोले—स्वाहा, वह्निप्रिया, वह्निजाया, सन्तोषकारिणी, शक्ति, क्रिया, कालदात्री, परिपाककरी, ध्रुवा, मनुष्योंकी गति, दाहिका, दहनक्षमा, संसारसाररूपा, घोरसंसारतारिणी, देवजीवनरूपा और देवपोषणकारिणी—ये सोलह नाम भगवती स्वाहाके हैं। जो मनुष्य इनका भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इस लोक तथा परलोकमें सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है। उसका कोई कर्म अपूर्ण नहीं रहता, समस्त कर्म उत्तम फलदायी होते हैं, पुत्रहीन व्यक्ति पुत्रवान् हो जाता है तथा भार्याहीन व्यक्ति पत्नीको प्राप्त कर लेता है और रम्भातुल्य अपनी उस भार्याको प्राप्त करके वह सुख भोगता है॥ ५०—५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें स्वाहोपाख्यानवर्णन' नामक तैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

भगवती स्वधाका उपाख्यान

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, अब मैं स्वधाका उत्तम आख्यान कहूँगा, जो पितरोंके लिये तृप्तिकारक तथा श्राद्धान्नके फलकी वृद्धि करनेवाला है॥ १॥

जगत्का विधान करनेवाले ब्रह्माने सृष्टिके आरम्भमें चार मूर्तिमान् तथा तीन तेजःस्वरूप पितरोंका सृजन किया। उन सातों सुखस्वरूप तथा मनोहर पितरोंको देखकर उन्होंने श्राद्ध-तर्पणपूर्वक उनका आहार भी सृजित किया॥ २-३॥

स्नान, तर्पण, श्राद्ध, देवपूजन तथा त्रिकाल सन्ध्या—ये ब्राह्मणोंके आह्निक कर्म श्रुतिमें प्रसिद्ध हैं॥ ४॥

जो ब्राह्मण प्रतिदिन त्रिकाल सन्ध्या, श्राद्ध, तर्पण, बलिवैश्वदेव और वेदध्वनि नहीं करता, वह विषहीन सर्पके समान है॥ ५॥

हे नारद! जो व्यक्ति भगवतीकी सेवासे वंचित है तथा भगवान् श्रीहरिको बिना नैवेद्य अर्पण किये ही भोजन ग्रहण करता है, उसका अशौच केवल दाहपर्यन्त बना रहता है और वह कोई भी शुभ कृत्य करनेके योग्य नहीं रह जाता॥ ६॥

इस प्रकार ब्रह्माजी पितरोंके लिये श्राद्ध आदिका विधान करके चले गये, किंतु ब्राह्मण आदि जो श्राद्धीय पदार्थ अर्पण करते थे, उन्हें पितरगण प्राप्त नहीं कर पाते थे॥ ७॥

अतः क्षुधासे व्याकुल तथा उदास मनवाले सभी पितर ब्रह्माजीकी सभामें गये और उन्होंने जगत्का विधान करनेवाले उन ब्रह्माको सारी बात बतायी॥ ८॥

तब ब्रह्माजीने एक मनोहर मानसी कन्याका सृजन किया। वह रूप तथा यौवनसे सम्पन्न थी और उसका मुख सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमान् था। वह साध्वी विद्या, गुण तथा परम रूपसे सम्पन्न थी। उसका वर्ण श्वेत चम्पाके समान उज्ज्वल था और वह रत्नमय आभूषणोंसे सुशोभित थी। विशुद्ध, मूलप्रकृतिकी अंशरूपा, वरदायिनी तथा कल्याणमयी वह मन्द-मन्द मुसकानसे युक्त थी। लक्ष्मीके लक्षणोंसे युक्त स्वधा नामक वह देवी सुन्दर दाँतोंवाली थी। शतदलकमलके ऊपर रखे चरणकमलवाली वह देवी अतिशय सुशोभित हो रही थी। पितरोंकी पत्नीस्वरूपा उस कमलोद्भवा स्वधादेवीके मुख तथा नेत्र कमलके समान थे। ब्रह्माजीने उस तुष्टिरूपिणी देवीको सन्तुष्ट पितरोंको समर्पित कर दिया। उसी समय ब्रह्माजीने ब्राह्मणोंको यह गोपनीय उपदेश भी प्रदान किया कि आपलोगोंको अन्तमें स्वधायुक्त मन्त्रका उच्चारण करके ही पितरोंको कव्य पदार्थ अर्पण करना चाहिये। तभीसे ब्राह्मणलोग उसी क्रमसे पितरोंको कव्य प्रदान करने लगे॥ ९—१४॥

देवताओंके लिये हव्य प्रदान करते समय स्वाहा और पितरोंको कव्य प्रदान करते समय स्वधाका उच्चारण श्रेष्ठ माना गया है। दक्षिणा सर्वत्र प्रशस्त मानी गयी है; क्योंकि दक्षिणाविहीन यज्ञ विनष्ट हो जाता है॥ १५॥

उस समय पितरों, देवताओं, ब्राह्मणों, मुनियों तथा मनुगणोंने परम आदरपूर्वक शान्तिस्वरूपिणी भगवती स्वधाकी पूजा तथा स्तुति की॥ १६॥

भगवती स्वधाके वरदानसे पितरगण, देवता तथा विप्र आदि परम सन्तुष्ट तथा पूर्ण मनोरथवाले हो गये॥ १७॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने सभी प्राणियोंको तुष्टि प्रदान करनेवाला यह सम्पूर्ण स्वधाका उपाख्यान आपसे कह दिया; अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ १८॥

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हे महामुने! मैं भगवती स्वधाकी पूजाका विधान, उनका ध्यान तथा स्तोत्र सुनना चाहता हूँ; यत्नपूर्वक बतलाइये॥ १९॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! आप समस्त प्राणियोंका मंगल करनेवाला भगवती स्वधाका वेदोक्त ध्यान तथा स्तवन आदि सब कुछ जानते ही हैं तो फिर उसे क्यों जानना चाहते हैं? तो भी लोगोंके कल्याणार्थ मैं उसे आपको बता रहा हूँ—शरत्कालमें आश्विनमासके कृष्णपक्षमें

त्रयोदशी तिथिको मघा नक्षत्रमें अथवा श्राद्धके दिन यत्नपूर्वक देवी स्वधाकी विधिवत् पूजा करके श्राद्ध करना चाहिये॥ २०-२१॥

अहंकारयुक्त बुद्धिवाला जो विप्र भगवती स्वधाका पूजन किये बिना ही श्राद्ध करता है, वह श्राद्ध तथा तर्पणका फल प्राप्त नहीं करता, यह सत्य है॥ २२॥

मैं सर्वदा स्थिर यौवनवाली, पितरों तथा देवताओंकी पूज्या और श्राद्धोंका फल प्रदान करनेवाली ब्रह्माकी मानसी कन्या भगवती स्वधाकी आराधना करता हूँ—इस प्रकार ध्यान करके शिला अथवा मंगलमय कलशपर उनका आवाहनकर मूलमन्त्रसे उन्हें पाद्य आदि उपचार अर्पण करने चाहिये—ऐसा श्रुतिमें प्रसिद्ध है॥ २३-२४॥

हे महामुने! द्विजको चाहिये कि **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं स्वधादेव्यै स्वाहा'** इस मन्त्रका उच्चारण करके उनकी विधिवत् पूजा तथा स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे॥ २५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! हे ब्रह्मपुत्र! हे विशारद! अब आप सभी मनुष्योंकी सम्पूर्ण कामनाएँ पूर्ण करनेवाले उस स्तोत्रको सुनिये, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माजीने पाठ किया था॥ २६॥

श्रीनारायण बोले—'स्वधा' शब्दका उच्चारण करने-मात्रसे मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा वाजपेययज्ञका फल प्राप्त कर लेता है॥ २७॥

यदि मनुष्य स्वधा, स्वधा, स्वधा—इस प्रकार तीन बार स्मरण कर ले तो वह श्राद्ध, बलिवैश्वदेव तथा तर्पणका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

जो व्यक्ति श्राद्धके अवसरपर सावधान होकर स्वधास्तोत्रका श्रवण करता है, वह श्राद्धसे होनेवाला सम्पूर्ण फल प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ २९॥

जो मनुष्य त्रिकाल सन्ध्याके समय स्वधा, स्वधा, स्वधा—ऐसा उच्चारण करता है; उसे पुत्रों तथा सद्गुणोंसे सम्पन्न, विनम्र, प्रिय तथा पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है॥ ३०॥

हे देवि! आप पितरोंके लिये प्राणतुल्य और ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूपिणी हैं। आप श्राद्धकी अधिष्ठात्री देवी हैं और श्राद्ध आदिका फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ३१॥

हे सुव्रते! आप नित्य, सत्य तथा पुण्यमय विग्रहवाली हैं। आप सृष्टिके समय प्रकट होती हैं तथा प्रलयके समय तिरोहित हो जाती हैं॥ ३२॥

आप ॐ, स्वस्ति, नमः, स्वाहा, स्वधा तथा दक्षिणा रूपमें विराजमान हैं। चारों वेदोंने आपकी इन मूर्तियोंको अत्यन्त प्रशस्त बतलाया है। प्राणियोंके कर्मोंकी पूर्तिके लिये ही परमेश्वरने आपकी ये मूर्तियाँ बनायी हैं॥ ३३½॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजी ब्रह्मलोकमें अपनी सभामें विराजमान हो गये। उसी समय भगवती स्वधा सहसा



प्रकट हो गयीं। तब ब्रह्माजीने उन कमलमुखी स्वधादेवीको पितरोंके लिये समर्पित कर दिया। उन भगवतीको पाकर पितरगण अत्यन्त हर्षित हुए और वहाँसे चले गये। जो मनुष्य एकाग्रचित्त होकर भगवती स्वधाके इस पवित्र स्तोत्रका श्रवण करता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया। वह इसके प्रभावसे वांछित फल प्राप्त कर लेता है॥ ३४—३६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें स्वधोपाख्यानवर्णन' नामक चौवालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भगवती दक्षिणाका उपाख्यान

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने भगवती स्वाहा तथा स्वधाका अत्यन्त मधुर तथा कल्याणकारी उपाख्यान बता दिया। अब मैं भगवती दक्षिणाका आख्यान कह रहा हूँ, सावधान होकर सुनिये॥ १॥

प्राचीनकालमें गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णकी प्रेयसी सुशीला नामक एक गोपी थी। परम धन्य, मान्य तथा मनोहर वह गोपी भगवती राधाकी प्रधान सखी थी। वह अत्यन्त सुन्दर, लक्ष्मीके लक्षणोंसे सम्पन्न, सौभाग्यवती, उज्ज्वल दाँतोंवाली, परम पतिव्रता, साध्वी, विद्या; गुण तथा रूपसे अत्यधिक सम्पन्न थी। वह विविध कलाओंमें निपुण, कोमल अंगोंवाली, आकर्षक, कमलनयनी, श्यामा, सुन्दर नितम्ब तथा वक्षःस्थलसे सुशोभित होती हुई वटवृक्षोंसे घिरी रहती थी। उसका मुखमण्डल मन्द मुसकान तथा प्रसन्नतासे युक्त था, वह रत्नमय अलंकारोंसे सुशोभित थी, उसके शरीरकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी, उसके ओष्ठ बिम्बाफलके समान रक्तवर्णके थे, मृगके सदृश उसके नेत्र थे, कामिनी तथा हंसके समान गतिवाली वह कामशास्त्रमें निपुण थी। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रियभामिनी वह सुशीला उनके भावोंको भलीभाँति जानती थी तथा उनके भावोंसे सदा अनुरक्त रहती थी। रसज्ञानसे परिपूर्ण, रासक्रीडाकी रसिक तथा रासेश्वर श्रीकृष्णके प्रेमरसहेतु लालायित रहनेवाली वह गोपी सुशीला एक बार राधाके सामने ही भगवान् श्रीकृष्णके वाम अंकमें बैठ गयी॥ २—७॥

तब मधुसूदन श्रीकृष्णने गोपिकाओंमें परम श्रेष्ठ राधाकी ओर देखकर भयभीत हो अपना मुख नीचे कर लिया। उस समय कामिनी राधाका मुख लाल हो गया और उनके नेत्र रक्तकमलके समान हो गये। क्रोधसे उनके अंग काँप रहे थे तथा ओठ प्रस्फुरित हो रहे थे। तब उन राधाको बड़े वेगसे जाती देखकर उनके विरोधसे अत्यन्त डरे हुए भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ ८—१०॥

कान्तिमान्, शान्त स्वभाववाले, सत्त्वगुणसम्पन्न तथा सुन्दर विग्रहवाले भगवान् श्रीकृष्णको अन्तर्हित हुआ देखकर सुशीला आदि गोपियाँ भयसे काँपने लगीं। श्रीकृष्णको अन्तर्धान हुआ देखकर वे भयभीत लाखों-करोड़ों गोपियाँ भक्तिपूर्वक कन्धा झुकाकर और दोनों हाथ जोड़कर 'रक्षा कीजिये-रक्षा कीजिये'—ऐसा भगवती राधासे बार-बार कहने लगीं और उन राधाके चरणकमलमें भयपूर्वक शरणागत हो गयीं। हे नारद! वहाँके तीन लाख करोड़ सुदामा आदि गोप भी भयभीत होकर उन राधाके चरणकमलकी शरणमें गये॥ ११—१४॥

परमेश्वरी राधाने अपने कान्त श्रीकृष्णको अन्तर्धान तथा सहचरी सुशीलाको पलायन करते देखकर उन्हें शाप दे दिया कि यदि गोपिका सुशीला आजसे गोलोकमें आयेगी, तो वह आते ही भस्मसात् हो जायगी॥ १५-१६॥

ऐसा कहकर देवदेवेश्वरी रासेश्वरी राधा रोषपूर्वक रासमण्डलके मध्य रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको पुकारने लगीं॥ १७॥

श्रीकृष्णको समक्ष न देखकर राधिकाजी विरहसे व्याकुल हो गयीं। उन परम साध्वीको एक-एक क्षण करोड़ों युगोंके समान प्रतीत होने लगा। उन्होंने श्रीकृष्णसे प्रार्थना की—हे कृष्ण! हे प्राणनाथ! हे ईश! आ जाइये। हे प्राणोंसे अधिक प्रिय तथा प्राणके अधिष्ठाता देवेश्वर! आपके बिना मेरे प्राण निकल रहे हैं॥ १८-१९॥

पतिके सौभाग्यसे स्त्रियोंका स्वाभिमान दिन-प्रतिदिन बढ़ता रहता है और उन्हें महान् सुख प्राप्त होता है। अतः स्त्रीको सदा धर्मपूर्वक पतिकी सेवा करनी चाहिये॥ २०॥

कुलीन स्त्रियोंके लिये पति ही बन्धु, अधिदेवता, आश्रय, परम सम्पत्तिस्वरूप तथा भोग प्रदान करनेवाला साक्षात् विग्रह है॥ २१॥

वही स्त्रीके लिये धर्म, सुख, निरन्तर प्रीति, सदा शान्ति तथा सम्मान प्रदान करनेवाला; आदरसे देदीप्यमान होनेवाला और मानभंग भी करनेवाला है। पति ही स्त्रीके

लिये परम सार है और बन्धुओंमें बन्धुभावको बढ़ानेवाला है। समस्त बन्धु-बान्धवोंमें पतिके समान कोई बन्धु दिखायी नहीं देता॥ २२-२३॥

वह स्त्रीका भरण करनेके कारण 'भर्ता', पालन करनेके कारण 'पति', उसके शरीरका शासक होनेके कारण 'स्वामी' तथा उसकी कामनाएँ पूर्ण करनेके कारण 'कान्त' कहा जाता है। वह सुखकी वृद्धि करनेसे 'बन्धु', प्रीति प्रदान करनेसे 'प्रिय', ऐश्वर्य प्रदान करनेसे 'ईश', प्राणका स्वामी होनेसे 'प्राणनायक' और रतिसुख प्रदान करनेसे 'रमण' कहा गया है। स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। पतिके शुक्रसे पुत्र उत्पन्न होता है, इसलिये वह प्रिय होता है॥ २४—२६॥

उत्तम कुलमें उत्पन्न स्त्रियोंके लिये उनका पति सदा सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। जो असत्-कुलमें उत्पन्न स्त्री है, वह पतिके महत्त्वको समझनेमें सर्वथा असमर्थ रहती है॥ २७॥

सभी तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दक्षिणादान, पृथ्वीकी प्रदक्षिणा, सम्पूर्ण तप, सभी प्रकारके व्रत और जो महादान आदि हैं, जो-जो पुण्यप्रद उपवास आदि प्रसिद्ध हैं और गुरुसेवा, विप्रसेवा तथा देवपूजन आदि जो भी शुभ कृत्य हैं, वे सब पतिके चरणकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं॥ २८—३०॥

गुरु, ब्राह्मण और देवता—इन सभीकी अपेक्षा स्त्रीके लिये पति ही श्रेष्ठ है। जिस प्रकार पुरुषोंके लिये विद्याका दान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है; उसी प्रकार कुलीन स्त्रियोंके लिये पति श्रेष्ठ है॥ ३१॥

जिनके अनुग्रहसे मैं लाखों करोड़ गोपियों, गोपों, असंख्य ब्रह्माण्डों, वहाँके निवासियों तथा अखिल ब्रह्माण्ड-गोलककी ईश्वरी बनी हूँ, अपने उन कान्त श्रीकृष्णका रहस्य मैं नहीं जानती। स्त्रियोंका स्वभाव अत्यन्त दुर्लंघ्य है॥ ३२-३३॥

ऐसा कहकर श्रीराधा भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका ध्यान करने लगीं। विरहसे दुःखित तथा दीन वे राधिका प्रेमके कारण रो रही थीं और 'हे नाथ! हे रमण! मुझे दर्शन दीजिये'—ऐसा कह रही थीं॥ ३४½॥

हे मुने! इसके बाद राधाके द्वारा गोलोकसे च्युत सुशीला नामक वह गोपी दक्षिणा नामसे प्रसिद्ध हुई। दीर्घकालतक तपस्या करके उसने भगवती लक्ष्मीके विग्रहमें स्थान प्राप्त कर लिया। अत्यन्त दुष्कर यज्ञ करनेपर भी जब देवताओंको यज्ञफल नहीं प्राप्त हुआ, तब वे उदास होकर ब्रह्माजीके पास गये॥ ३५-३६॥

देवताओंकी प्रार्थना सुनकर ब्रह्माजीने बहुत समयतक भक्तिपूर्वक जगत्पति भगवान् श्रीहरिका ध्यान किया। अन्तमें उन्हें प्रत्यादेश प्राप्त हुआ। भगवान् नारायणने महालक्ष्मीके विग्रहसे मर्त्यलक्ष्मीको प्रकट करके और उसका नाम दक्षिणा रखकर ब्रह्माजीको सौंप दिया। ब्रह्माजीने भी यज्ञकार्योंकी सम्पन्नताके लिये उन देवी दक्षिणाको यज्ञपुरुषको समर्पित कर दिया। तब यज्ञपुरुषने प्रसन्नतापूर्वक उन देवी दक्षिणाकी विधिवत् पूजा करके उनकी स्तुति की॥ ३७—३९½॥

उन भगवती दक्षिणाका वर्ण तपाये हुए सोनेके समान था; उनके विग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंके तुल्य थी; वे अत्यन्त कमनीय, सुन्दर तथा मनोहर थीं; उनका मुख कमलके समान था; उनके अंग अत्यन्त कोमल थे; कमलके समान उनके विशाल नेत्र थे; कमलके आसनपर पूजित होनेवाली वे भगवती कमलाके शरीरसे प्रकट हुई थीं, उन्होंने अग्निके समान शुद्ध वस्त्र धारण कर रखे थे; उन साध्वीके ओष्ठ बिम्बाफलके समान थे; उनके दाँत अत्यन्त सुन्दर थे; उन्होंने अपने केशपाशमें मालतीके पुष्पोंकी माला धारण कर रखी थी; उनके प्रसन्नतायुक्त मुखमण्डलपर मन्द मुसकान व्याप्त थी; वे रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत थीं; उनका वेष अत्यन्त सुन्दर था; वे विधिवत् स्नान किये हुए थीं; वे मुनियोंके भी मनको मोह लेती थीं; कस्तूरीमिश्रित सुगन्धित चन्दनसे बिन्दीके रूपमें अर्धचन्द्राकार तिलक उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था; केशोंके नीचेका भाग (सीमन्त) सिन्दूरकी छोटी-छोटी बिन्दियोंसे अत्यन्त प्रकाशमान था। सुन्दर नितम्ब, बृहत् श्रोणी तथा विशाल वक्षःस्थलसे वे शोभित हो रही थीं; उनका विग्रह कामदेवका आधारस्वरूप था और वे कामदेवके बाणसे अत्यन्त व्यथित थीं—ऐसी उन रमणीया

दक्षिणाको देखकर यज्ञपुरुष मूर्च्छित हो गये। पुनः ब्रह्माजीके कथनानुसार उन्होंने भगवती दक्षिणाको पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया॥ ४०—४६१/२॥

तत्पश्चात् यज्ञपुरुष उन रमेशने रमारूपिणी भगवती दक्षिणाको निर्जन स्थानमें ले जाकर उनके साथ दिव्य सौ वर्षोंतक आनन्दपूर्वक रमण किया। वे देवी दक्षिणा दिव्य बारह वर्षोंतक गर्भ धारण किये रहीं। तत्पश्चात् उन्होंने सभी कर्मोंके फलरूप पुत्रको जन्म दिया। कर्मके परिपूर्ण होनेपर वही पुत्र फल प्रदान करनेवाला होता है। भगवान् यज्ञ भगवती दक्षिणा तथा अपने पुत्र फलसे युक्त होनेपर ही कर्म करनेवालोंको फल प्रदान करते हैं—ऐसा वेदवेत्ता पुरुषोंने कहा है॥ ४७—५०॥

हे नारद! इस प्रकार देवी दक्षिणा तथा फलदायक पुत्रको प्राप्तकर यज्ञपुरुष सभी प्राणियोंको उनके कर्मोंका फल प्रदान करने लगे। तदनन्तर परिपूर्ण मनोरथवाले वे सभी देवगण प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानको चले गये—ऐसा मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ५१-५२॥

हे मुने! कर्ताको चाहिये कि कर्म करके तुरंत दक्षिणा दे दे। ऐसा करनेसे कर्ताको उसी क्षण फल प्राप्त हो जाता है—ऐसा वेदोंने कहा है॥ ५३॥

कर्मके सम्पन्न हो जानेपर यदि कर्ता दैववश या अज्ञानसे उसी क्षण ब्राह्मणोंको दक्षिणा नहीं दे देता, तो एक मुहूर्त बीतनेपर वह दक्षिणा निश्चय ही दो गुनी हो जाती है और एक रात बीतनेपर वह सौ गुनी हो जाती है। वह दक्षिणा तीन रात बीतनेके बाद उसकी सौ गुनी और एक सप्ताह बीतनेपर उसकी दो गुनी हो जाती है। एक माहके बाद वह लाख गुनी बतायी गयी है। इस प्रकार ब्राह्मणोंकी दक्षिणा बढ़ती जाती है और एक वर्ष बीत जानेपर वह तीन करोड़ गुनी हो जाती है, जिससे यजमानोंका सारा कर्म भी व्यर्थ हो जाता है॥ ५४—५७॥

ब्राह्मणका धन हरनेवाला वह मनुष्य अपवित्र हो जाता है तथा किसी भी कर्मानुष्ठानके योग्य नहीं रह जाता। उस पापके कारण वह पापी मनुष्य रोगी तथा दरिद्र रहता है। भगवती लक्ष्मी उसे दारुण शाप देकर उसके घरसे चली जाती हैं। उसके द्वारा प्रदत्त श्राद्ध तथा तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते। उसी प्रकार देवतागण उसकी पूजा तथा उसके द्वारा अग्निमें प्रदत्त आहुतिको स्वीकार नहीं करते॥ ५८-५९१/२॥

यदि यज्ञके समय कर्ताके द्वारा संकल्पित दान नहीं दिया गया और प्रतिग्रह लेनेवालेने उसे माँगा भी नहीं, तो वे दोनों ही (यजमान और ब्राह्मण) नरकमें उसी प्रकार गिरते हैं, जैसे-रस्सी टूट जानेपर घड़ा॥ ६०१/२॥

ब्राह्मणके याचना करनेपर भी यदि यजमान उसे दक्षिणा नहीं देता, तो वह ब्राह्मणका धन हरण करनेवाला कहा जाता है और वह निश्चितरूपसे कुम्भीपाक नरकमें पड़ता है। वहाँ यमदूतोंके द्वारा पीटा जाता हुआ वह एक लाख वर्षतक रहता है। उसके बाद वह चाण्डाल होकर सदा दरिद्र तथा रोगी बना रहता है। वह अपनी सात पीढ़ी पूर्वके तथा सात पीढ़ी बादके पुरुषोंको नरकमें गिरा देता है। हे विप्र! मैंने यह सब कह दिया। अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं?॥ ६१—६३१/२॥

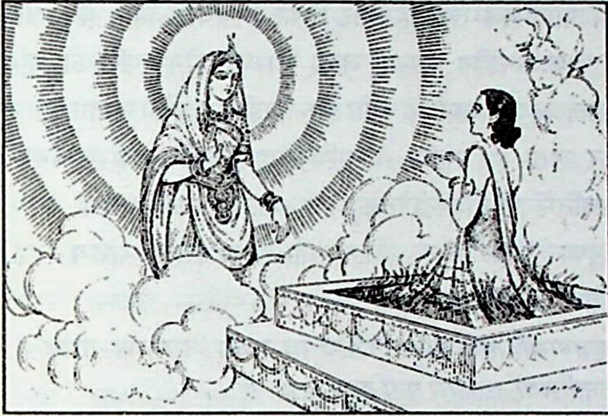
नारदजी बोले—हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके किया जाता है, उसका फल कौन भोगता है? साथ ही, यज्ञपुरुषके द्वारा पूर्वकालमें की गयी भगवती दक्षिणाकी पूजाविधिको भी मुझे बतलाइये॥ ६४१/२॥

श्रीनारायण बोले—हे मुने! दक्षिणाविहीन कर्मका फल हो ही कहाँ सकता है? दक्षिणायुक्त कर्ममें ही फल-प्रदानका सामर्थ्य होता है। हे मुने! जो कर्म बिना दक्षिणाके सम्पन्न होता है, उसके फलका भोग राजा बलि करते हैं। हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् वामन राजा बलिके लिये वैसा कर्म अर्पण कर चुके हैं॥ ६५-६६१/२॥

अश्रोत्रिय व्यक्तिके द्वारा श्रद्धाहीन होकर दिया गया श्राद्धद्रव्य तथा दान आदि, शूद्रापति ब्राह्मणोंका पूजा-द्रव्य आदि, सदाचारहीन विप्रोंद्वारा किया गया यज्ञ, अपवित्र व्यक्तिका पूजन और गुरुभक्तिसे हीन मनुष्यके कर्मफलको राजा बलि आहारके रूपमें ग्रहण करते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६७-६८१/२॥

[हे नारद!] भगवती दक्षिणाका जो भी ध्यान, स्तोत्र तथा पूजाविधिका क्रम आदि है, वह सब कण्वशाखामें वर्णित है, अब मैं उसे बताऊँगा, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ६९१/२॥

पूर्वसमयमें कर्मका फल प्रदान करनेमें दक्ष उन भगवती दक्षिणाको प्राप्त करके वे यज्ञपुरुष कामपीड़ित होकर उनके स्वरूपपर मोहित हो गये और उनकी स्तुति करने लगे॥ ७०१/२॥



यज्ञ बोले—[हे महाभागे!] तुम पूर्वकालमें गोलोककी एक गोपी थी और गोपियोंमें परम श्रेष्ठ थी। श्रीकृष्ण तुमसे अत्यधिक प्रेम करते थे और तुम राधाके समान ही उन श्रीकृष्णकी प्रिय सखी थी॥ ७११/२॥

एक बार कार्तिकपूर्णिमाको राधामहोत्सवके अवसरपर रासलीलामें तुम भगवती लक्ष्मीके दक्षिणांशसे प्रकट हो गयी थी, उसी कारण तुम्हारा नाम दक्षिणा पड़ गया। हे शोभने! इससे भी पहले अपने उत्तम शीलके कारण तुम सुशीला नामसे प्रसिद्ध थी। तुम भगवती राधिकाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर और पुनः देवी लक्ष्मीके दक्षिणांशसे आविर्भूत हो अब देवी दक्षिणाके रूपमें मेरे सौभाग्यसे मुझे प्राप्त हुई हो। हे महाभागे! मुझपर कृपा करो और मुझे ही अपना स्वामी बना लो॥ ७२—७४१/२॥

तुम्हीं यज्ञ करनेवालोंको उनके कर्मोंका सदा फल प्रदान करनेवाली देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंका सारा कर्म निष्फल हो जाता है और तुम्हारे बिना अनुष्ठानकर्ताओंका कर्म शोभा नहीं पाता है॥ ७५-७६॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, दिक्पाल आदि भी तुम्हारे बिना प्राणियोंको कर्मका फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७७॥

ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं, महेश्वर फलरूप हैं और मैं विष्णु यज्ञरूप हूँ, इन सबमें तुम ही साररूपा हो॥ ७८॥

फल प्रदान करनेवाले परब्रह्म, गुणरहित पराप्रकृति तथा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे ही सहयोगसे शक्तिमान् हैं॥ ७९॥

हे कान्ते! जन्म-जन्मान्तरमें तुम्हीं सदा मेरी शक्ति रही हो। हे वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं सारा कर्म करनेमें समर्थ हूँ॥ ८०॥

ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठातृदेवता भगवान् यज्ञपुरुष दक्षिणाके समक्ष स्थित हो गये। तब भगवती कमलाकी कलास्वरूपिणी देवी दक्षिणा प्रसन्न हो गयीं और उन्होंने यज्ञपुरुषका वरण कर लिया॥ ८१॥

जो मनुष्य यज्ञके अवसरपर भगवती दक्षिणाके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है॥ ८२॥

राजसूय, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध, लांगलयज्ञ, यश बढ़ानेवाला विष्णुयज्ञ, धनदायक और भूमि देनेवाला पूर्तयज्ञ, फल प्रदान करनेवाला गजमेध, लोहयज्ञ, स्वर्णयज्ञ, रत्नयज्ञ, ताम्रयज्ञ, शिवयज्ञ, रुद्रयज्ञ, इन्द्रयज्ञ, बन्धुकयज्ञ, वृष्टिकारक वरुणयज्ञ, वैरिमर्दन कण्डकयज्ञ, शुचियज्ञ, धर्मयज्ञ, पापमोचनयज्ञ, ब्रह्माणीकर्मयज्ञ और कल्याणकारी अम्बायज्ञ—इन सभीके आरम्भमें जो व्यक्ति इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसका सारा यज्ञकर्म निर्विघ्नरूपसे अवश्य ही सम्पन्न हो जाता है॥ ८३—८७॥

यह स्तोत्र मैंने कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। शालग्राममें अथवा कलशपर भगवती दक्षिणाका आवाहन करके विद्वान्‌को उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ८८॥

[उनका ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—] भगवती लक्ष्मीके दाहिने स्कन्धसे आविर्भूत होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं, सभी कर्मोंमें अत्यन्त प्रवीण हैं, सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं, भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं, सबकी वन्दनीय तथा पूजनीय, मंगलमयी, शुद्धिदायिनी, शुद्धिस्वरूपिणी, शोभनशीलवाली और शुभदायिनी हैं—ऐसी देवीकी मैं आराधना करता हूँ॥ ८९-९०॥

हे नारद! इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुषको

मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मन्त्रके द्वारा देवी दक्षिणाको पाद्य आदि अर्पण करके '**ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं दक्षिणायै स्वाहा**'—इस मूल मन्त्रसे बुद्धिमान् व्यक्तिको सभी प्राणियोंद्वारा पूजित भगवती दक्षिणाकी भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजा करनी चाहिये॥ ९१-९२॥

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवती दक्षिणाका यह आख्यान आपसे कह दिया; यह सुख, प्रीति तथा सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है॥ ९३॥

पृथ्वीतलपर भारतवर्षमें जो मनुष्य सावधान होकर देवी दक्षिणाके इस आख्यानका श्रवण करता है, उसका कोई भी कार्य अपूर्ण नहीं रहता। पुत्रहीन व्यक्ति गुणी पुत्र तथा भार्याहीन पुरुष परम सुन्दर तथा सुशील पत्नी प्राप्त कर लेता है; साथ ही वह सुन्दर, पुत्रवती, विनम्र, प्रियभाषिणी, पतिव्रता, पवित्र तथा कुलीन श्रेष्ठ पुत्रवधू भी प्राप्त कर लेता है और विद्याहीन विद्या प्राप्त कर लेता है तथा धनहीन धन पा जाता है। भूमिहीन व्यक्तिको भूमि उपलब्ध हो जाती है और सन्तानहीन व्यक्ति सन्तान प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनकी स्थितिमें एक महीनेतक इस आख्यानका श्रवण करके मनुष्य इनसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ९४—९८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें दक्षिणोपाख्यानवर्णन' नामक पैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४५॥

छियालीसवाँ अध्याय

भगवती षष्ठीकी महिमाके प्रसंगमें राजा प्रियव्रतकी कथा

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मैंने अनेक उत्तम देवियोंका उत्तम आख्यान सुन लिया; अब आप दूसरी देवियोंके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे विप्र! पूर्वकालमें कही गयी सभी देवियोंके चरित्र वेदोंमें अलग-अलग बताये गये हैं, आप इनमेंसे किनका चरित्र सुनना चाहते हैं?॥ २॥

नारदजी बोले—भगवती षष्ठी, मंगलचण्डी और मनसादेवी मूलप्रकृतिकी कला हैं; मैं इनकी उत्पत्ति तथा इनका चरित्र साररूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—मूलप्रकृतिके छठे अंशसे जो देवी आविर्भूत हैं, वे भगवती षष्ठी कही गयी हैं। ये बालकोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें विष्णुमाया और बालदा भी कहा जाता है। ये मातृकाओंमें देवसेना नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली तथा साध्वी ये भगवती षष्ठी स्वामी कार्तिकेयकी भार्या हैं और उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। ये बालकोंको आयु प्रदान करनेवाली, उनका भरण-पोषण करनेवाली तथा उनकी रक्षा करनेवाली हैं। ये सिद्धयोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे शिशुओंके पास निरन्तर विराजमान रहती हैं॥ ४—६॥

हे ब्रह्मन्! उन षष्ठीदेवीकी पूजाविधि तथा यह इतिहास भी सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है; यह आख्यान पुत्र तथा परम सुख प्रदान करनेवाला है॥ ७॥

स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत नामवाले एक राजा थे। योगिराज प्रियव्रत विवाह नहीं करना चाहते थे। वे सदा तपस्याओंमें संलग्न रहते थे, किंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा उनके प्रयत्नसे उन्होंने विवाह कर लिया॥ ८॥

हे मुने! विवाह करनेके अनन्तर बहुत समयतक जब उन्हें पुत्रप्राप्ति नहीं हुई, तब महर्षि कश्यपने उनसे पुत्रेष्टियज्ञ कराया। मुनिने उनकी प्रिय भार्या मालिनीको यज्ञचरु प्रदान किया। उस चरुको ग्रहण कर लेनेपर उन्हें शीघ्र ही गर्भ स्थित हो गया। वे देवी उस गर्भको दिव्य बारह वर्षोंतक धारण किये रहीं॥ ९—११॥

हे ब्रह्मन्! तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्णसदृश कान्तिवाले, शरीरके समस्त अवयवोंसे सम्पन्न, मरे हुए तथा उलटी आँखोंवाले पुत्रको जन्म दिया॥ १२॥

उसे देखकर सभी स्त्रियाँ तथा बान्धवोंकी पत्नियाँ रोने लगीं और महान् पुत्रशोकके कारण उसकी माता मूर्च्छित हो गयीं॥ १३॥

हे मुने! उस बालकको लेकर राजा प्रियव्रत श्मशान गये और वहाँ निर्जन स्थानमें पुत्रको अपने वक्षसे लगाकर रुदन करने लगे। राजाने उस पुत्रको नहीं छोड़ा। वे प्राणत्याग करनेको तत्पर हो गये। अत्यन्त दारुण पुत्रशोकके कारण राजाका ज्ञानयोग विस्मृत हो गया॥ १४-१५॥

इसी बीच वहाँ उन्होंने शुद्ध स्फटिकमणिके समान प्रकाशमान, बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित, तेजसे निरन्तर देदीप्यमान, रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे विभूषित और पुष्प तथा मालाओंसे सुसज्जित एक विमान देखा। साथ ही उन्होंने उस विमानमें कमनीय, मनोहर, श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली, सदा स्थायी रहनेवाले तारुण्यसे सम्पन्न, मन्द-मन्द मुसकानयुक्त, प्रसन्न मुखमण्डलवाली, रत्ननिर्मित आभूषणोंसे अलंकृत, कृपाकी साक्षात् मूर्ति, योगसिद्ध और भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम आतुर प्रतीत होनेवाली देवीको भी देखा॥ १६—१९॥

उन देवीको समक्ष देखकर राजाने उस बालकको भूमिपर रखकर परम आदरपूर्वक उनका स्तवन तथा पूजन किया। हे नारद! तत्पश्चात् राजा प्रियव्रत प्रसन्नताको प्राप्त, ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, अपने तेजसे देदीप्यमान तथा शान्त स्वभाववाली उन कार्तिकेयप्रिया [भगवती षष्ठी]-से पूछने लगे—॥ २०-२१॥

राजा बोले—हे सुशोभने! हे कान्ते! हे सुव्रते! हे वरारोहे! समस्त स्त्रियोंमें परम धन्य तथा आदरणीय तुम कौन हो, किसकी भार्या हो और किसकी पुत्री हो?॥ २२॥

[हे नारद!] नृपेन्द्र प्रियव्रतकी बात सुनकर जगत्का कल्याण करनेमें दक्ष तथा देवताओंके लिये संग्राम करनेवाली भगवती देवसेना उनसे कहने लगीं। वे देवी प्राचीनकालमें दैत्योंके द्वारा पीडित देवताओंकी सेना बनी थीं। उन्होंने उन्हें विजय प्रदान किया था, इसलिये वे देवसेना नामसे विख्यात हैं॥ २३-२४॥

श्रीदेवसेना बोलीं—हे राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। सबपर शासन करनेवाली मैं 'देवसेना' नामसे विख्यात हूँ। विधाताने अपने मनसे मेरी सृष्टि करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया। मातृकाओंमें विख्यात मैं स्वामी कार्तिकेयकी पतिव्रता भार्या हूँ। भगवती परा-प्रकृतिका षष्ठांश होनेके कारण मैं विश्वमें 'षष्ठी'—इस नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं पुत्रहीनको पुत्र, पतिको प्रिय पत्नी, दरिद्रोंको धन देनेवाली और कर्म करनेवालोंको उनके कर्मका फल प्रदान करनेवाली हूँ॥ २५—२७॥

हे राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मंगल, सम्पत्ति और विपत्ति—यह सब कर्मानुसार होता है। अपने कर्मसे मनुष्य अनेक पुत्रोंवाला होता है, कर्मसे ही वह वंशहीन होता है, कर्मसे ही उसे मरा हुआ पुत्र होता है और कर्मसे ही वह पुत्र दीर्घजीवी होता है। मनुष्य कर्मसे ही गुणी, कर्मसे ही अंगहीन, कर्मसे ही अनेक पत्नियोंवाला तथा कर्मसे ही भार्याहीन होता है। कर्मसे ही मनुष्य रूपवान् तथा कर्मसे ही निरन्तर रोगग्रस्त रहता है, कर्मसे ही व्याधि तथा कर्मसे ही नीरोगता होती है। अतः हे राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—ऐसा श्रुतिमें कहा गया है॥ २८—३१ १/२॥



हे मुने! इस प्रकार कहकर उन भगवती षष्ठीने बालकको लेकर अपने महाज्ञानके द्वारा खेल-खेलमें उसे जीवित कर दिया। अब राजा प्रियव्रत स्वर्णकी प्रभाके समान कान्तिसे सम्पन्न तथा मुसकानयुक्त उस बालकको देखने लगे। उसी समय वे भगवती देवसेना बालकको देख रहे राजासे कहकर उस बालकको ले करके आकाशमें जानेको उद्यत हो गयीं॥ ३२—३४॥

[यह देखकर] शुष्क कण्ठ, ओष्ठ तथा तालुवाले

वे राजा उन भगवतीकी स्तुति करने लगे, तब राजाके स्तोत्रसे वे देवी षष्ठी अत्यन्त प्रसन्न हो गयीं और हे ब्रह्मन्! उन राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहने लगीं॥ ३५१/२॥

देवी बोलीं—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो और तीनों लोकोंके राजा हो। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराकर स्वयं भी करो, तभी मैं तुम्हें कुलके कमलस्वरूप यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। यह सुव्रत नामसे विख्यात होगा, यह गुणी तथा विद्वान् होगा, इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी, यह योगीन्द्र होगा तथा भगवान् नारायणकी कलासे सम्पन्न होगा, यह क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ तथा सभीके द्वारा वन्दनीय होगा और सौ अश्वमेधयज्ञ करनेवाला होगा। यह बालक लाखों मतवाले हाथियोंके समान बल धारण करेगा तथा महान् कल्याणकारी होगा। यह धनी, गुणवान्, शुद्ध, विद्वानोंका प्रिय और योगियों, ज्ञानियों तथा तपस्वियोंका सिद्धिस्वरूप, समस्त लोकोंमें यशस्वी तथा सभीको समस्त सम्पदाएँ प्रदान करनेवाला होगा॥ ३६—४०१/२॥

ऐसा कहकर उन देवीने वह बालक राजाको दे दिया। राजा प्रियव्रतने भी पूजाकी बातें स्वीकार कर लीं। तब भगवती भी उन्हें कल्याणकारी वर देकर स्वर्ग चली गयीं और राजा प्रसन्नचित्त होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर आ गये। घर आकर उन्होंने पुत्र-विषयक वृत्तान्त सबसे कहा। हे नारद! उसे सुनकर समस्त नर तथा नारी परम प्रसन्न हुए॥ ४१—४३१/२॥

राजाने पुत्र-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें सर्वत्र मंगलोत्सव कराया, भगवती षष्ठीकी पूजा की तथा ब्राह्मणोंको धन प्रदान किया॥ ४४१/२॥

उसी समयसे राजा प्रियव्रत प्रत्येक महीनेमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको भगवती षष्ठीका महोत्सव प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र कराने लगे॥ ४५१/२॥

सूतिकागृहमें बालकोंके जन्मके छठें दिन, इक्कीसवें दिन, बालकोंसे सम्बन्धित किसी भी मांगलिक कार्यमें तथा शुभ अन्नप्राशनके अवसरपर वे भगवतीकी पूजा कराने लगे और स्वयं भी करने लगे, इस प्रकार उन्होंने सर्वत्र भगवतीकी पूजाका प्रचार कराया॥ ४६-४७१/२॥

हे सुव्रत! अब आप मुझसे भगवती षष्ठीके ध्यान, पूजाविधान तथा स्तोत्रको सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था और जो सामवेदकी कौथुमशाखामें वर्णित है॥ ४८१/२॥

हे मुने! शालग्राम, कलश अथवा वटके मूलमें अथवा दीवालपर पुत्तलिका बनाकर भगवती प्रकृतिके छठें अंशसे प्रकट होनेवाली, शुद्धस्वरूपिणी तथा दिव्य प्रभासे सम्पन्न षष्ठीदेवीको प्रतिष्ठित करके बुद्धिमान् मनुष्यको उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ४९-५०॥

'उत्तम पुत्र प्रदान करनेवाली, कल्याणदायिनी, दयास्वरूपिणी, जगत्की सृष्टि करनेवाली, श्वेत चम्पाके पुष्पकी आभाके समान वर्णवाली, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत, परम पवित्रस्वरूपिणी तथा अतिश्रेष्ठ परा भगवती देवसेनाकी मैं आराधना करता हूँ।' विद्वान् पुरुषको चाहिये कि इस विधिसे ध्यान करके [हाथमें लिये हुए] पुष्पको अपने मस्तकसे लगाकर उसे भगवतीको अर्पण कर दे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, पुष्प, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फल आदि उपचारोंके द्वारा उत्तम व्रतमें निरत रहनेवाली साध्वी भगवती देवसेनाकी पूजा करनी चाहिये और उस मनुष्यको **'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा'** इस अष्टाक्षर महामन्त्रका अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक जप भी करना चाहिये। तदनन्तर एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक स्तुति करके देवीको प्रणाम करना चाहिये। पुत्र-फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो मनुष्य भगवती षष्ठीके अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, वह निश्चितरूपसे सुन्दर पुत्र प्राप्त करता है—ऐसा ब्रह्माजीने कहा है॥ ५१—५६१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब आप सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाले, सभी प्राणियोंको वांछित फल प्रदान करनेवाले तथा वेदोंमें रहस्यमय रूपसे प्रतिपादित स्तोत्रका श्रवण कीजिये॥ ५७१/२॥

देवीको नमस्कार है, महादेवीको नमस्कार है, भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना तथा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा तथा धनदा

देवीको बार-बार नमस्कार है। सुखदा, मोक्षदा तथा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठें अंशसे अवतीर्ण, सृष्टिस्वरूपिणी तथा सिद्धस्वरूपिणी भगवतीको बार-बार नमस्कार है। माया तथा सिद्धयोगिनी षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। सारस्वरूपिणी, शारदा तथा परादेवीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री देवीको नमस्कार है। षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याणस्वरूपिणी, सभी कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली तथा अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सम्पूर्ण कार्योंमें सभीके लिये पूजनीय तथा देवताओंकी रक्षा करनेवाली स्वामी कार्तिकेयकी भार्या देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। शुद्धसत्त्वस्वरूपिणी, मनुष्योंके लिये सदा वन्दनीय तथा क्रोध-हिंसासे रहित षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुरेश्वरि! आप मुझे धन दीजिये, प्रिय भार्या दीजिये, पुत्र प्रदान कीजिये, मान प्रदान कीजिये तथा विजय प्रदान कीजिये और हे महेश्वरि! मेरे शत्रुओंका संहार कर डालिये। मुझे धर्म दीजिये और कीर्ति दीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है। हे सुपूजिते! भूमि दीजिये, प्रजा दीजिये, विद्या दीजिये, कल्याण और जय प्रदान कीजिये, आप षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है॥ ५८—६७॥

इस प्रकार भगवती षष्ठीकी स्तुति करके महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीकी कृपासे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया॥ ६८॥

हे ब्रह्मन्! जो एक वर्षतक भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह पुत्रहीन मनुष्य सुन्दर तथा दीर्घजीवी पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवी षष्ठीकी विधिवत् पूजा करके इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। महावन्ध्या स्त्री भी इसके श्रवणसे प्रसवके योग्य हो जाती है और वह भगवती षष्ठीकी कृपासे वीर, गुणी, विद्वान्, यशस्वी तथा दीर्घजीवी पुत्र उत्पन्न करती है। यदि कोई स्त्री काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा हो तो भी वह एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करके षष्ठीदेवीके अनुग्रहसे पुत्र प्राप्त कर लेती है। पुत्रके व्याधिग्रस्त हो जानेपर यदि माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रको सुनें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे वह बालक रोगमुक्त हो जाता है॥ ६९—७३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें षष्ठी-उपाख्यानवर्णन' नामक छियालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

भगवती मंगलचण्डी तथा भगवती मनसाका आख्यान

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! आगमशास्त्रके अनुसार मैंने षष्ठीदेवीका आख्यान कह दिया, अब भगवती मंगलचण्डीका आख्यान और उनका पूजा-विधान आदि सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था। यह उपाख्यान श्रुतिसम्मत है तथा सभी विद्वानोंको अभीष्ट है॥ १-२॥

कल्याण करनेमें सुदक्षा जो चण्डी अर्थात् प्रतापवती हैं तथा मंगलोंके मध्यमें जो प्रचण्ड मंगला हैं, वे देवी 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं। अथवा भूमिपुत्र मंगल भी जिन चण्डीकी पूजा करते हैं तथा जो भगवती उन मंगलकी अभीष्ट देवी हैं, वे 'मंगलचण्डिका' नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३-४॥

मनुवंशमें उत्पन्न मंगल नामक एक राजा सात द्वीपोंवाली सम्पूर्ण पृथ्वीके स्वामी थे। ये भगवती उनकी पूज्य अभीष्ट देवी थीं, इससे भी वे 'मंगलचण्डिका' नामसे विख्यात हैं॥ ५॥

वे ही मूर्तिभेदसे मूलप्रकृति भगवती दुर्गा हैं। कृपारूपिणी होकर वे देवी साक्षात् प्रकट होनेवाली हैं और स्त्रियोंकी अभीष्ट देवता हैं॥ ६॥

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने विष्णुकी प्रेरणासे तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे उन परात्परा भगवतीकी पूजा की थी। हे ब्रह्मन्! त्रिपुरासुरके घोर वधके समय जब शिवजी संकटमें पड़ गये थे और उस दैत्यके द्वारा रोषपूर्वक उनका विमान आकाशसे नीचे गिरा दिया गया था, तब ब्रह्मा और विष्णुका उपदेश मानकर दुर्गतिको प्राप्त भगवान् शंकरने भगवती दुर्गाकी स्तुति की। वे मंगलचण्डी ही थीं; जिन्होंने केवल रूप बदल लिया था, वे शिवजीके सामने प्रकट होकर बोलीं— हे प्रभो! अब आपको कोई भय नहीं है, सर्वेश्वर भगवान् श्रीहरि वृषरूपमें आपका वाहन बनेंगे और मैं युद्धमें शक्तिस्वरूपा होकर आपकी सहायता करूँगी, इसमें सन्देह नहीं है। हे वृषध्वज! तब मायास्वरूप भगवान् श्रीहरिकी सहायतासे आप देवताओंको पदच्युत कर देनेवाले अपने शत्रु उस त्रिपुरदैत्यका वध कर डालेंगे॥ ७—१११/२॥

हे मुनिवर! ऐसा कहकर वे भगवती अन्तर्धान हो गयीं और उसी क्षण वे भगवान् शिवकी शक्ति बन गयीं। तत्पश्चात् उमापति शंकरने विष्णुजीके द्वारा दिये गये शस्त्रसे उस दैत्यको मार डाला। उस दैत्यके धराशायी हो जानेपर सभी देवता तथा महर्षिगण भक्तिपूर्वक अपना सिर झुकाकर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे॥ १२-१३१/२॥

उसी क्षण भगवान् शिवके सिरपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा तथा विष्णुने परम प्रसन्न होकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया॥ १४१/२॥

तत्पश्चात् हे मुने! ब्रह्मा तथा विष्णुका उपदेश मानकर भगवान् शंकरने विधिवत् स्नान करके पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, अनेक प्रकारके वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, वस्त्रालंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा, अनेक प्रकारके फल आदि उपचारों, संगीत, नृत्य, वाद्य, उत्सव तथा नामकीर्तन आदिके द्वारा भक्तिपूर्वक उन देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया॥ १५—१८१/२॥

हे नारद! माध्यन्दिनशाखामें बताये गये ध्यानमन्त्रके द्वारा भगवती मंगलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान करके उन्होंने मूल मन्त्रसे ही सभी द्रव्य अर्पण किये। **'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके हुं हुं फट् स्वाहा'** यह इक्कीस अक्षरोंवाला मन्त्र पूजनीय तथा भक्तोंको समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाला कल्पवृक्ष ही है। दस लाख जप करनेसे इस मन्त्रकी सिद्धि निश्चितरूपसे हो जाती है॥ १९—२११/२॥

हे ब्रह्मन्! अब वेदोक्त तथा सर्वसम्मत ध्यानका श्रवण कीजिये—'सोलह वर्षकी अवस्थावाली, सर्वदा सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न, बिम्बाफलके समान होठोंवाली, सुन्दर दन्तपंक्तिवाली, शुद्धस्वरूपिणी, शरत्कालीन कमलके समान मुखवाली, श्वेत चम्पाके वर्णकी आभावाली, विकसित नीलकमलके सदृश नेत्रोंवाली, जगत्का पालन-पोषण करनेवाली, सभीको सम्पूर्ण सम्पदाएँ प्रदान करनेवाली और घोर संसारसागरमें पड़े हुए प्राणियोंके लिये ज्योतिस्वरूपिणी भगवतीकी मैं सदा आराधना करता हूँ।' हे मुने! यह भगवती मंगलचण्डिकाका ध्यान है, अब उनका स्तवन सुनिये॥ २२—२५॥

महादेवजी बोले—जगत्की माता, विपत्तिराशिका नाश करनेवाली, हर्ष तथा मंगल उत्पन्न करनेवाली, हर्ष तथा मंगल देनेमें प्रवीण, हर्ष तथा मंगल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी, मंगल करनेमें दक्ष, शुभस्वरूपिणी, मंगलरूपिणी, मंगल करनेमें परम योग्यतासम्पन्न, समस्त मंगलोंकी भी मंगलरूपा, सज्जनोंको मंगल प्रदान करनेवाली, सभी मंगलोंकी आश्रयस्वरूपिणी, मंगलवारके दिन पूजी जानेवाली, मंगलग्रहकी अभीष्ट देवी, मनुवंशमें उत्पन्न राजा मंगलके लिये सदा पूजनीया, मंगलकी अधिष्ठात्री देवी, मंगलोंके लिये भी मंगल, संसारके समस्त मंगलोंकी आधारस्वरूपा, मोक्षरूप मंगल प्रदान करनेवाली, साररूपिणी, मंगलाधार, सभी कर्मोंकी फलस्वरूपिणी तथा मंगलवारको पूजित होनेपर सबको महान् सुख प्रदान करनेवाली हे देवि मंगलचण्डिके! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये॥ २६—३१॥

भगवान् शिव इस स्तोत्रसे देवी मंगलचण्डिकाकी स्तुति करके तथा प्रत्येक मंगलवारको उनकी पूजा करके वहाँसे [अपने लोक] चले गये॥ ३२॥

इस प्रकार सर्वप्रथम भगवान् शिवके द्वारा वे सर्वमंगला देवी मंगलचण्डिका पूजित हुईं। दूसरी बार मंगलग्रहने उनकी पूजा की, तीसरी बार राजा मंगलने उन कल्याणमयी देवीकी पूजा की। चौथी बार मंगलवारके दिन भद्र महिलाओंने उनकी पूजा की। तत्पश्चात् पाँचवीं बार अपने कल्याणकी कामना

रखनेवाले पुरुषोंने देवी मंगलचण्डिकाका पूजन किया। इस तरह विश्वेश्वर शिवके द्वारा पूजित ये भगवती सभी लोकोंमें पूजी जाने लगीं। हे मुने! तदनन्तर सभी देवताओं, मुनियों, मानवों तथा मनुओंके द्वारा भगवती मंगलचण्डिका सर्वत्र पूजित हो गयीं॥ ३३—३६॥

जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर भगवती मंगलचण्डिकाके इस मंगलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसका सदा मंगल होता है और उसका अमंगल कभी नहीं होता, पुत्र-पौत्रोंसहित उसके मंगलकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती रहती है॥ ३७॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मपुत्र! मैंने आगमशास्त्रके अनुसार देवी षष्ठी और मंगलचण्डिका—इन दोनोंके उपाख्यानका वर्णन कर दिया; अब आप भगवती मनसाका आख्यान सुनिये, जिसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ ३८॥

वे भगवती कश्यपकी मानसी कन्या हैं तथा वे मनसे ध्यान करनेपर प्रकाशित होती हैं; इसीलिये 'मनसा' देवी नामसे विख्यात हैं। वे मनसे परब्रह्म परमात्माका ध्यान करती हैं तथा उसी ध्यानयोगके द्वारा प्रकाशित होती हैं, इसीलिये वे देवी 'मनसा'—इस नामसे प्रसिद्ध हैं॥ ३९-४०॥

आत्मामें रमण करनेवाली तथा सिद्धयोगिनी उन वैष्णवी देवीने तीन युगोंतक तप करके परमात्मा श्रीकृष्णका दर्शन प्राप्त किया। उस समय गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर उनका नाम 'जरत्कारु' रख दिया। कृपानिधि श्रीकृष्णने उन देवीको कृपापूर्वक वाञ्छित वर प्रदान किया। उन प्रभुने उनकी स्वयं पूजा की तथा और लोगोंसे भी उनकी पूजा करायी॥ ४१—४३॥

ब्रह्मलोकसे लेकर स्वर्गमें, पृथ्वीलोकमें तथा नागलोकमें सर्वत्र ये पूजित होने लगीं। सम्पूर्ण जगत्में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी तथा मनोहारिणी हैं, अत: ये साध्वी 'जगद्गौरी'—इस नामसे विख्यात होकर पूजित हैं। वे देवी भगवान् शिवकी शिष्या हैं, इसलिये 'शैवी' कही गयी हैं। वे सदा भगवान् विष्णुकी परम भक्तिमें संलग्न रहती हैं, इसलिये 'वैष्णवी' कही गयी हैं॥ ४४-४५ $^{1}/_{2}$॥

परीक्षित्पुत्र राजा जनमेजयके यज्ञमें उन्होंने नागोंकी प्राणरक्षा की थी, अत: वे 'नागेश्वरी' तथा 'नागभगिनी' नामसे विख्यात हुईं। वे विषका हरण करनेमें समर्थ हैं, अत: 'विषहरी' कही गयी हैं। उन्होंने भगवान् शिवसे सिद्धयोग प्राप्त किया था, इसलिये वे 'सिद्धयोगिनी' कही जाती हैं। साथ ही शिवजीसे उन्होंने महाज्ञान, योग तथा परम मृतसंजीवनीविद्या प्राप्त की थी, अत: विद्वान् पुरुष उन्हें 'महाज्ञानयुता' कहते हैं॥ ४६—४८ $^{1}/_{2}$॥

वे तपस्विनी देवी मुनीश्वर आस्तीककी माता हैं, इसलिये 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात होकर जगत्में सुप्रतिष्ठित हैं। वे भगवती विश्ववन्द्य, परम योगी तथा मुनियोंमें श्रेष्ठ महात्मा जरत्कारुकी प्रिय पत्नी थीं, इसलिये 'जरत्कारुप्रिया' कहलाती हैं॥ ४९-५० $^{1}/_{2}$॥

जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरा और महाज्ञानयुता—इन नामोंसे वे भगवती विश्वमें पूजी जाती हैं। जो मनुष्य पूजाके समय देवीके इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको नागोंका भय नहीं रहता॥ ५१—५३ $^{1}/_{2}$॥

जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें नाग रहते हों, जो स्थान नागोंसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त दारुण बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, उन स्थानोंपर इस स्तोत्रका पाठ करके मनुष्य सर्पभयसे मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५४-५५॥

जो मनुष्य इसे नित्य पढ़ता है, उसे देखकर नागोंका समुदाय भाग जाता है। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिस मनुष्यको स्तोत्रसिद्धि हो जाती है, वह विषभक्षण करनेमें समर्थ हो जाता है। वह नागोंको भूषण बनाकर नागोंपर सवारी करनेमें सक्षम हो जाता है। वह व्यक्ति नागोंपर आसन लगानेवाला, नागोंपर शयन करनेवाला तथा महासिद्ध हो जाता है और अन्तमें भगवान् विष्णुके साथ दिन-रात क्रीडा करता है॥ ५६—५८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें मंगलचण्डी और मनसादेवीके उपाख्यानोंका वर्णन' नामक सैंतालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४७॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भगवती मनसाका पूजन-विधान, मनसा-पुत्र आस्तीकका जनमेजयके सर्पसत्रमें नागोंकी रक्षा करना, इन्द्रद्वारा मनसादेवीका स्तवन करना

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! मैंने देवी मनसाके विषयमें विधानपूर्वक कह दिया। अब आप उनके सामवेदोक्त ध्यान तथा पूजा-विधानके विषयमें मुझसे सुनिये॥ १॥

'भगवती मनसा श्वेत चम्पकपुष्पके वर्णके समान आभावाली हैं, ये रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण कर रखा है, ये नागोंके यज्ञोपवीतसे युक्त हैं, महान् ज्ञानसे सम्पन्न हैं, प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हैं, सिद्ध पुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सिद्धिस्वरूपिणी हैं तथा सिद्धि प्रदान करनेवाली हैं—ऐसी भगवती मनसाकी मैं आराधना करता हूँ'॥ २-३॥

इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे देवी मनसाकी विधिवत् पूजा करनी चाहिये। वेदोक्त मूलमन्त्रोंका उच्चारण करके विविध प्रकारके नैवेद्य, धूप, पुष्प तथा पवित्र गन्ध-द्रव्योंके अनुलेपनसे उनकी पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। हे मुने! भगवतीका द्वादशाक्षर मन्त्र पूर्णरूपसे सिद्ध हो जानेपर कल्पतरु नामक वृक्षकी भाँति भक्तोंको वांछित फल प्रदान करनेवाला हो जाता है। वह मन्त्र '**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा**'—ऐसा बताया गया है। पाँच लाख जप करनेसे मनुष्योंके लिये इस मन्त्रकी सिद्धि हो जाती है। जिसकी मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह पृथ्वीतलपर सिद्ध हो जाता है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है और वह धन्वन्तरितुल्य हो जाता है॥ ४—७॥

हे ब्रह्मन्! जो मनुष्य संक्रान्तिके दिन स्नान करके यत्नपूर्वक किसी गुप्त स्थानमें अति भक्तिसे सम्पन्न होकर भगवती मनसाका आवाहन करके इनकी पूजा करता है तथा पंचमी तिथिको मनसे ध्यान करते हुए देवीको नैवेद्य अर्पण करता है, वह निश्चितरूपसे धनवान्, पुत्रवान् तथा कीर्तिमान् होता है॥ ८-९॥

हे महाभाग! मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान बतला चुका, अब मैं उनके उपाख्यानका वर्णन आपसे कर रहा हूँ, जिसे मैंने साक्षात् धर्मदेवके मुखसे सुना, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १०॥

प्राचीन कालमें एक बार भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। तब वे सब मुनिश्रेष्ठ कश्यपकी शरणमें गये॥ ११॥

तत्पश्चात् अत्यन्त भयभीत मुनि कश्यपने ब्रह्माजीके साथ मिलकर मन्त्रोंकी रचना की। उन्होंने वेदबीजमन्त्रोंके अनुसार तथा ब्रह्माजीके उपदेशसे मन्त्रोंका सृजन किया था। साथ ही उन्होंने अपने मनसे मन्त्रोंकी अधिष्ठात्री देवी उन भगवती मनसाका सृजन भी किया, अतः तपस्या तथा मनसे सृजित होनेके कारण वे 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं॥ १२-१३॥

कुमारी अवस्थामें विद्यमान वे भगवान् शिवके धाममें चली गयीं। कैलासपर उन्होंने भक्तिपूर्वक विधिवत् शिवजीकी पूजा करके उनकी स्तुति की। इस प्रकार दिव्य एक हजार वर्षोंतक उस मुनि-कन्याने शिवजीकी उपासना की॥ १४½॥

आशुतोष भगवान् शिव उनपर प्रसन्न हो गये। हे मुने! तब उन्होंने मनसादेवीको महाज्ञान प्रदान किया तथा सामवेद पढ़ाया और श्रीकृष्णके कल्पवृक्षस्वरूप अष्टाक्षर मन्त्रका उपदेश किया। लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजका पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें 'ङे' (चतुर्थी) विभक्ति लगाकर उसके बाद 'नमः' जोड़ देनेपर बना हुआ अष्टाक्षर (**श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः**) मन्त्र है॥ १५-१६½॥

भगवान् मृत्युंजय शिवसे त्रैलोक्यमंगल नामक कवच, पूजनक्रम, सर्वसम्मत तथा वेदोक्त पुरश्चरण-क्रम और मन्त्र प्राप्त करके वे मुनिकन्या साध्वी मनसा भगवान् शंकरकी आज्ञासे तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चली गयीं। वहाँ तीन युगोंतक परमेश्वर श्रीकृष्णकी तपस्या करके वे देवी सिद्ध हो गयीं और उन्होंने अपने समक्ष साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन किये॥ १७—१९½॥

उस समय कृपानिधि भगवान् श्रीकृष्णने कृश शरीरवाली उन बालाको कृपापूर्वक देखकर उनकी स्वयं पूजा की तथा दूसरोंसे भी पूजा करायी। उन्होंने उन देवीको यह वर भी दिया कि 'तुम जगत्‌में पूजित होओ'। कल्याणी मनसा-देवीको यह वर प्रदान करके भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये॥ २०-२१$^{१}/_{२}$ ॥

इस प्रकार वे मनसादेवी सर्वप्रथम परमात्मा श्रीकृष्णके द्वारा पूजित हुईं। दूसरी बार भगवान् शिवने उनकी पूजा की और इसके बाद कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिके द्वारा वे सुव्रता मनसादेवी तीनों लोकोंमें पूजित हुईं॥ २२-२३$^{१}/_{२}$ ॥

इसके बाद कश्यपजीने उन देवीको जरत्कारुमुनिको सौंप दिया। कामनारहित होते हुए भी मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुने ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्हें पत्नीरूपमें स्वीकार कर लिया। विवाह करनेके पश्चात् चिरकालीन तपस्यासे थके हुए महायोगी मुनि जरत्कारु पुष्करक्षेत्रमें एक वटवृक्षके नीचे देवी मनसाके जंघापर लेट गये और निद्रेश्वर भगवान् शिवका स्मरण करके सो गये॥ २४—२६ ॥

इतनेमें सूर्य अस्त हो गये। तब सायंकाल उपस्थित होनेपर परम साध्वी देवी मनसा धर्मलोपके भयसे अपने मनमें विचार करके यह सोचने लगीं कि 'ब्राह्मणोंके लिये नित्यकी सायंकालीन सन्ध्या न करके मेरे पतिदेव ब्रह्महत्या आदि पापके भागी होंगे। जो मनुष्य प्रातः तथा सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, वह सब प्रकारसे सदा अपवित्र होकर ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है—ऐसा वेदोमें कहा गया है'—यह सोचकर उस सुन्दरीने अपने पतिको जगा दिया। हे मुने! जग जानेपर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारु मनसादेवीपर अत्यधिक कुपित हो उठे॥ २७—३०$^{१}/_{२}$ ॥

मुनि बोले—हे साध्वि! तुमने सुखपूर्वक सोये हुए मेरी निद्रा क्यों भंग कर दी? जो स्त्री अपने पतिका अपकार करती है, उसके व्रत आदि निरर्थक हो जाते हैं। अपने पतिका अपकार करनेवाली स्त्रीका जो भी तप, उपवास, व्रत, दान आदि है; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ३१-३२$^{१}/_{२}$ ॥

जिस स्त्रीने अपने पतिकी पूजा की, उसने मानो साक्षात् श्रीकृष्णकी पूजा कर ली। पतिव्रता नारियोंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिरूपमें विराजमान रहते हैं॥ ३३$^{१}/_{२}$ ॥

समस्त दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और सभी देवताओंका पूजन आदि जो भी पुण्य-कर्म है, वह सब पतिकी सेवाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है॥ ३४-३५$^{१}/_{२}$ ॥

जो स्त्री पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने पतिके साथ वैकुण्ठधाम जाती है और वहाँ परब्रह्म भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है॥ ३६$^{१}/_{२}$ ॥

हे साध्वि! असत्कुलमें उत्पन्न जो स्त्री अपने पतिके प्रतिकूल आचरण करती है तथा उससे अप्रिय वचन बोलती है, उसके कृत्यका फल सुनो। वह स्त्री कुम्भीपाक नरकमें जाती है और वहाँ सूर्य तथा चन्द्रमाके स्थितिकालतक निवास करती है। तत्पश्चात् वह चाण्डाली होती है और पति तथा पुत्रसे विहीन रहती है॥ ३७-३८$^{१}/_{२}$ ॥

ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ जरत्कारुके ओष्ठ प्रस्फुरित होने लगे, जिससे वह साध्वी भयसे काँपने लगी और वह अपने पतिसे कहने लगी॥ ३९$^{१}/_{२}$ ॥

साध्वी बोली—हे महाभाग! आपकी सन्ध्याके लोपके भयसे ही मैंने आपकी निद्रा भंग की है। हे सुव्रत! मुझ दुष्टाका यह अपराध अवश्य है, अब आप शान्त हो जाइये॥ ४०$^{१}/_{२}$ ॥

जो मानव श्रृंगार, आहार और निद्राका भंग करता है, वह सूर्य तथा चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्रनरकमें वास करता है॥ ४१$^{१}/_{२}$ ॥

ऐसा कहकर भयभीत मनसादेवी भक्तिपूर्वक अपने स्वामीके चरणकमलोंपर गिर पड़ीं और बार-बार विलाप करने लगीं॥ ४२$^{१}/_{२}$ ॥

मुनि जरत्कारुको कुपित होकर सूर्यको शाप देनेके लिये उद्यत देखकर भगवान् सूर्य देवी सन्ध्याको साथ लेकर वहाँ आ गये। हे नारद! उन देवीके साथ स्वयं भगवान् भास्कर वहाँ आकर भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिसे सम्यक् प्रकारसे यथोचित बात कहने लगे॥ ४३-४४$^{१}/_{२}$ ॥

भास्कर बोले—हे विप्र! सूर्यास्तका समय जानकर

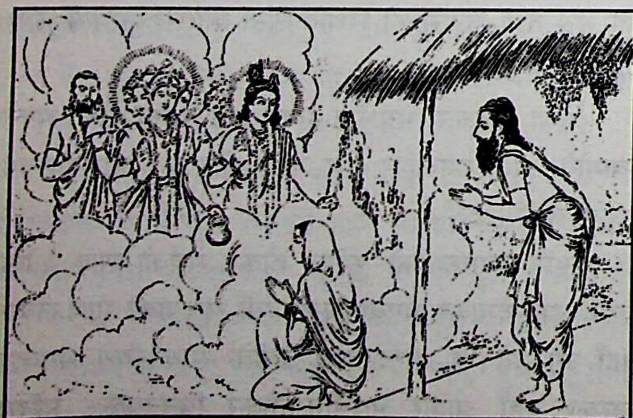
साध्वी मनसाने धर्मलोपके भयसे आपको जगा दिया है। हे भगवन्! मैं आपकी शरणमें आ गया हूँ, मुझे क्षमा कर दीजिये। हे ब्रह्मन्! हे मुने! मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय तो सदा नवनीतके समान कोमल होता है, उनके आधे क्षणमात्रके क्रोधसे सारा संसार भस्म हो सकता है, द्विज फिरसे जगत्‌की सृष्टि भी कर सकता है, द्विजसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई नहीं है। ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान, ब्रह्मज्योतिस्वरूप तथा ब्रह्मवंश ब्राह्मणको निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करनी चाहिये॥ ४५—४८१/२ ॥

सूर्यका वचन सुनकर द्विज जरत्कारु प्रसन्न हो गये। भगवान् सूर्य भी विप्र जरत्कारुका आशीर्वाद लेकर अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन विप्रने विक्षुब्ध हृदयसे रुदन करती हुई तथा शोकसन्तप्त देवी मनसाका परित्याग कर दिया॥ ४९-५०१/२ ॥

उस विपत्तिमें भयसे व्याकुल देवी मनसाने अपने गुरुदेव शिव, इष्टदेवता ब्रह्मा, भगवान् श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया॥ ५११/२ ॥

मनसे देवी मनसाके ध्यान करनेपर गोपियोंके ईश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यपजी वहाँ आ गये॥ ५२१/२ ॥

प्रकृतिसे परे तथा निर्गुण अपने अभीष्ट देवको देखकर मुनि जरत्कारुने उनकी स्तुति की तथा बार-बार उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने भगवान् शिव, ब्रह्मा



तथा कश्यपको भी नमस्कार किया। 'हे देवगण! यहाँ आपलोगोंका आगमन किसलिये हुआ है?' उन्होंने ऐसा प्रश्न किया॥ ५३-५४१/२ ॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके सहसा समयोचित उत्तर दिया—'हे मुने! यदि आप अपनी साध्वी तथा धर्मपरायणा पत्नी मनसाका त्याग ही करना चाहते हैं, तो इसे स्त्रीधर्म-पालनके योग्य बनानेहेतु पहले इससे पुत्र उत्पन्न कीजिये। अपनी भार्यासे पुत्र उत्पन्न करनेके बाद आप इसका त्याग कर सकते हैं; क्योंकि जो विरागी पुरुष पुत्र उत्पन्न किये बिना ही अपनी प्रिय भार्याका त्याग करता है, उसका पुण्य चलनीसे बहकर निकल जानेवाले जलकी भाँति नष्ट हो जाता है'॥ ५५—५८ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजीका वचन सुनकर मुनीश्वर जरत्कारुने मन्त्रोच्चारण करते हुए योगबलका आश्रय लेकर मनसादेवीकी नाभिका स्पर्श किया। तत्पश्चात् मुनिवर जरत्कारु उन देवीसे कहने लगे॥ ५९१/२ ॥

जरत्कारु बोले—हे मनसे! तुम्हारे इस गर्भसे जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्राह्मणोंमें अग्रणी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणसम्पन्न और वेदवेत्ताओं-ज्ञानियों-योगियोंमें श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा। वह धार्मिक तथा विष्णुभक्त पुत्र कुलका उद्धार करेगा। ऐसे पुत्रके जन्म लेनेमात्रसे पितृगण हर्षपूर्वक नाच उठते हैं। प्रिय पत्नी वही है; जो मृदुभाषिणी, सुशीला, पतिव्रता, धर्मिष्ठा, सुपुत्रकी माता, कुलस्त्री तथा कुलका पालन करनेवाली होती है। श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करनेवाला ही सच्चा बन्धु होता है, न कि अभीष्ट सुख देनेवाला। भगवत्प्राप्तिका मार्ग दिखानेवाला बन्धु ही सच्चा पिता है। जो आवागमनसे मुक्त कर देनेवाली है, वही सच्ची माता होती है। वही बहन दयास्वरूपिणी है, जो यमके त्राससे छुटकारा दिला दे॥ ६०—६५ ॥

गुरु वही है, जो विष्णुका मन्त्र प्रदान करनेवाला तथा भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करनेवाला हो। ज्ञानदाता गुरु वही है, जो भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करानेवाला ज्ञान प्रदान करे; क्योंकि तृणसे लेकर ब्रह्मपर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व आविर्भूत होकर पुनः विनष्ट हो जाता है, तो फिर अन्य वस्तुसे ज्ञान कैसे हो सकता है?

वेद अथवा यज्ञसे जो भी सारतत्त्व निकलता है, वह भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही है। यही हरिसेवा समस्त तत्त्वोंका सारस्वरूप है, भगवान् श्रीहरिकी सेवाके अतिरिक्त अन्य सब कुछ विडम्बनामात्र है॥ ६६—६८१/२॥

[हे देवि!] इस प्रकार मैंने तुम्हें ज्ञानोपदेश कर दिया। ज्ञानदाता स्वामी वही है, जो ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त कर देता है और जो बन्धनमें डालता है, वह शत्रु है॥ ६९१/२॥

जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, वह शिष्यघाती तथा शत्रु है; क्योंकि वह बन्धनसे मुक्त नहीं करता। जो जननीके गर्भजनित कष्ट तथा यमयातनासे मुक्त न कर सके; उसे गुरु, तात तथा बान्धव कैसे कहा जाय? जो भगवान् श्रीकृष्णके परमानन्दस्वरूप सनातन मार्गका निरन्तर दर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है?॥ ७०—७२१/२॥

अत: हे साध्वि! तुम निर्गुण तथा अच्युत परब्रह्म श्रीकृष्णकी आराधना करो। उनकी उपासनासे मनुष्योंका सारा कर्म निर्मूल हो जाता है। हे प्रिये! मैंने छलपूर्वक तुम्हारा परित्याग किया है, अत: मेरे इस अपराधको क्षमा करो। सत्त्वगुणके प्रभावसे क्षमाशील साध्वी नारियोंमें क्रोध नहीं रहता। हे देवि! मैं तप करनेके लिये पुष्करक्षेत्र जा रहा हूँ। तुम भी यहाँसे सुखपूर्वक चली जाओ। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलमें अनुराग ही नि:स्पृह प्राणियोंका एकमात्र मनोरथ होता है॥ ७३—७५१/२॥

मुनि जरत्कारुका वचन सुनकर शोकसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली मनसादेवी अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे विनम्रतापूर्वक कहने लगीं॥ ७६१/२॥

मनसा बोलीं—हे प्रभो! निद्राभंग कर देनेके कारण जो आप मेरा त्याग कर रहे हैं, इसमें मेरा दोष नहीं है। [अत: आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि] मैं जहाँ भी आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे सदा दर्शन दीजियेगा॥ ७७१/२॥

अपने बन्धुओंका वियोग अत्यन्त कष्टदायक होता है, पुत्रका वियोग उससे भी अधिक कष्टदायक होता है, किंतु प्राणेश्वर पतिदेवका वियोग प्राण-विच्छेदके तुल्य होनेके कारण सबसे अधिक कष्टकर होता है॥ ७८१/२॥

पतिव्रता स्त्रियोंके लिये पति सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। स्त्रियोंके लिये पति सबसे बढ़कर प्रिय होता है, अत: विद्वान् पुरुषोंने पतिको प्रियकी संज्ञा प्रदान की है॥ ७९१/२॥

जिस प्रकार एक पुत्रवाले लोगोंका मन पुत्रमें, वैष्णवजनोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे प्राणियोंका जलमें, भूखे प्राणियोंका अन्नमें, कामासक्त-जनोंका मैथुनमें, चोरोंका पराये धनमें, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंका व्यभिचारी पुरुषमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका मन वाणिज्यमें लगा रहता है; उसी प्रकार हे प्रभो! पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने पतिमें लगा रहता है॥ ८०—८२१/२॥

ऐसा कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंपर गिर पड़ीं। कृपानिधि मुनिवर जरत्कारुने कृपा करके क्षणभरके लिये उन्हें अपनी गोदमें ले लिया। मुनिने अश्रुसे मनसादेवीको सम्पृक्त कर दिया। वियोगजन्य भयसे व्याकुल तथा अश्रुपूरित नेत्रोंवाली देवी मनसाने भी अपने आँसुओंसे उन मुनिकी गोदको सींच डाला॥ ८३-८४१/२॥

तत्पश्चात् मुनि जरत्कारु तथा देवी मनसा—वे दोनों ही ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हो गये। अपनी प्रियाको समझाकर बार-बार परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करते हुए मुनि जरत्कारु तपस्याके लिये चले गये और देवी मनसा भी अपने गुरु भगवान् शिवके धाम कैलासपर चली गयीं। वहाँ पार्वतीने शोकसन्तप्त देवी मनसाको बहुत समझाया और कल्याण-निधान भगवान् शिवने भी उसे अत्यन्त मंगलकारी ज्ञान प्रदान किया॥ ८५—८७१/२॥

तदनन्तर देवी मनसाने अत्यन्त प्रशस्त तथा मंगलमय वेलामें एक पुत्रको जन्म दिया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों तथा ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह बालक गर्भमें स्थित रहते हुए ही भगवान् शिवके मुखसे महाज्ञानका श्रवण करके योगियों तथा ज्ञानियोंका गुरु और योगीश्वर हो गया था॥ ८८-८९॥

भगवान् शिवने उस शिशुका जातकर्म-संस्कार कराया

तथा उसके कल्याणके लिये स्वस्तिवाचन और वेदपाठ कराया॥ ९०१/२॥

शिवजीने बहुतसे मणि, रत्न तथा मुकुट ब्राह्मणोंको दान दिये और पार्वतीजीने लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न उन्हें प्रदान किये॥ ९११/२॥

भगवान् शिवने उस बालकको चारों वेद तथा वेदांग पढ़ाये और उसे श्रेष्ठ मृत्युंजय-ज्ञानका उपदेश दिया॥ ९२१/२॥

अपने पति, अभीष्ट देवता तथा गुरुमें उस मनसाकी अत्यधिक भक्ति थी, इसलिये उसके पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ॥ ९३१/२॥

मुनि जरत्कारु पहले ही शिवजीकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। वहाँ परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके वे तपोधन महायोगी जरत्कारु दिव्य तीन लाख वर्षोंतक तपस्या करनेके पश्चात् भगवान् शिवको नमस्कार करनेके लिये आये। शंकरको नमस्कार करके वे वहीं रुक गये। बालक भी वहींपर था॥ ९४—९६॥

तत्पश्चात् वे देवी मनसा अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें आ गयीं। पुत्रसहित उस पुत्रीको देखकर प्रजापति कश्यप अत्यन्त हर्षित हुए। हे मुने! कश्यपजीने शिशुके कल्याणके लिये ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्नोंका दान किया और असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया॥ ९७-९८॥

हे परंतप! प्रजापति कश्यपकी दिति, अदिति तथा अन्य सभी पत्नियाँ परम प्रसन्न हुईं। उस समय देवी मनसा अपने पुत्रके साथ दीर्घकालतक अपने पिताके आश्रममें स्थित रहीं। अब उनका आगेका आख्यान पुनः कहूँगा, उसे ध्यानपूर्वक सुनिये॥ ९९१/२॥

हे ब्रह्मन्! एक समयकी बात है, अभिमन्युपुत्र राजा परीक्षित् दैवकी प्रेरणासे अपने द्वारा किये गये सदोष कर्मके कारण ब्रह्मशापसे सहसा ग्रस्त हो गये। श्रृंगीऋषिने कौशिकीनदीका जल लेकर उन्हें शाप दे दिया कि एक सप्ताह व्यतीत होते ही तक्षकनाग तुम्हें डँस लेगा॥ १००-१०११/२॥

श्रृंगीऋषिका वह शाप सुनकर राजा परीक्षित् ऐसे सुरक्षित स्थानपर आ गये, जहाँ वायु भी प्रवेश नहीं कर सकता था। अपने देहकी रक्षामें तत्पर रहते हुए राजा परीक्षित् एक सप्ताहतक वहाँ रहे॥ १०२१/२॥

राजा परीक्षित्को विषमुक्त करनेके लिये जाते हुए धन्वन्तरिने सप्ताह बीतनेपर राजाको डँसनेके लिये जा रहे तक्षकको मार्गमें देखा॥ १०३१/२॥

उन दोनोंमें बातचीत होने लगी और परस्पर बड़ी प्रीति हो गयी। तक्षकने अपनी इच्छासे उन्हें मणि दे दी और धन्वन्तरिने मणि ग्रहण कर ली। मणि पाकर वे सन्तुष्ट हो गये और प्रसन्नचित्त होकर लौट गये। इसके बाद तक्षकने मंचपर बैठे हुए राजाको डँस लिया। इसके परिणामस्वरूप राजा परीक्षित् तत्काल देह त्यागकर परलोक चले गये। तब राजा जनमेजयने अपने पिताका समस्त और्ध्वदैहिक संस्कार कराया॥ १०४—१०६१/२॥

हे मुने! तत्पश्चात् राजाने सर्पसत्र नामक यज्ञ आरम्भ किया, जिसमें ब्रह्मतेजके कारण अनेक सर्प प्राण त्यागने लगे। तब तक्षक भयभीत होकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। विप्रसमुदाय इन्द्रसहित तक्षकको मारनेके लिये उद्यत हुआ॥ १०७-१०८१/२॥

ऐसी स्थितिमें इन्द्रसहित सभी देवगण देवी मनसाके पास गये। वहाँपर भयातुर तथा व्याकुल इन्द्रने उन भगवती मनसाकी स्तुति की॥ १०९१/२॥

तदनन्तर मुनिवर आस्तीकने माताकी आज्ञासे यज्ञमें आकर श्रेष्ठ राजा जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। तब महाराज जनमेजयने उन्हें कृपापूर्वक प्राणदानका वर दे दिया और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे यज्ञका समापन करके विप्रोंको प्रसन्नतापूर्वक दक्षिणा दी॥ ११०-११११/२॥

तत्पश्चात् ब्राह्मण, मुनि तथा देवताओंने देवी मनसाके पास जाकर पृथक्-पृथक् उनकी पूजा तथा स्तुति की। इन्द्रने भी सभी पूजन-सामग्री एकत्र करके पवित्र होकर परम आदरपूर्वक मनसादेवीका पूजन तथा स्तवन किया। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर देवीको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करके उन्हें षोडशोपचार तथा प्रियपदार्थ प्रदान किये। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञाके अनुसार देवी मनसाकी पूजा करके वे सब अपने-अपने स्थानको चले

गये। [हे मुने!] इस प्रकार मैंने मनसादेवीका सम्पूर्ण आख्यान कह दिया, अब आप पुनः क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ११२—११५१/२ ॥

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की? साथ ही मैं उन देवीके पूजा-विधानका क्रम यथार्थरूपमें सुनना चाहता हूँ॥ ११६१/२ ॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवराज इन्द्रने विधिपूर्वक स्नान किया। इसके बाद पवित्र होकर तथा आचमन करके उन्होंने दो शुद्ध वस्त्र धारण किये, फिर देवी मनसाको भक्तिपूर्वक रत्नमय सिंहासनपर विराजित किया। तत्पश्चात् इन्द्रने वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए रत्नमय कलशमें भरे हुए स्वर्गंगाके जलसे भगवतीको स्नान कराया और अग्नितुल्य शुद्ध दो मनोहर वस्त्र पहनाये। देवीके सम्पूर्ण अंगोंमें चन्दन लगाकर उन्हें भक्तिपूर्वक पाद्य तथा अर्घ्य अर्पण करनेके अनन्तर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती—इन छः देवताओंकी विधिवत् पूजा करके इन्द्रने साध्वी मनसाका पूजन किया॥ ११७—१२०१/२ ॥

इन्द्रने **'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा'**—इस दशाक्षर मूल मन्त्रके द्वारा यथोचितरूपसे सभी पूजन-सामग्री अर्पित की। इस तरह भगवान् विष्णुकी प्रेरणा पाकर देवराज इन्द्रने सोलह प्रकारके दुर्लभ पूजनोपचार अर्पण करके प्रसन्नतापूर्वक भक्तिके साथ देवी मनसाकी पूजा की। उस समय इन्द्रने नाना प्रकारके वाद्य बजवाये॥ १२१—१२३ ॥

देवताओंके प्रिय इन्द्रकी आज्ञा तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे देवी मनसाके ऊपर आकाशसे पुष्पवृष्टि होने लगी। तत्पश्चात् पुलकित शरीरवाले इन्द्र नेत्रोंमें आँसू भरकर भगवती मनसाकी स्तुति करने लगे॥ १२४१/२ ॥

पुरन्दर बोले—हे देवि! पतिव्रताओंमें अतिश्रेष्ठ, परात्पर तथा परमा आप भगवतीकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु इस समय आपकी स्तुति कर पानेमें समर्थ नहीं हूँ। हे प्रकृते! मैं वेदमें वर्णित आपके स्तोत्रोंके लक्षण तथा आपके चरित्रसम्बन्धी आख्यान आदिका वर्णन करनेमें सक्षम नहीं हूँ। [हे देवि!] मैं आपके गुणोंकी गणना नहीं कर सकता॥ १२५-१२६१/२ ॥

आप शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं तथा क्रोध, हिंसा आदिसे रहित हैं। मुनि जरत्कारु आपका त्याग कर सकनेमें समर्थ नहीं थे, इसलिये उन्होंने आपसे क्षमायाचना की थी। आप साध्वी मेरी माता अदितिके समान ही मेरी पूजनीया हैं। आप दयारूपसे मेरी भगिनी तथा क्षमारूपसे मेरी जननी हैं॥ १२७-१२८१/२ ॥

हे सुरेश्वरि! आपके द्वारा मेरे प्राण, पुत्र और स्त्रीकी रक्षा हुई है, अतः मैं आपकी पूजा करता हूँ। आपके प्रति मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ती रहे। हे जगदम्बिके! यद्यपि आप सनातनी भगवती सर्वत्र पूज्य हैं, फिर भी मैं आपकी पूजाका प्रचार कर रहा हूँ। हे सुरेश्वरि! जो मनुष्य आषाढ़-मासकी संक्रान्ति, मनसा-पंचमी (नागपंचमी), मासके अन्तमें अथवा प्रतिदिन भक्तिपूर्वक आपकी पूजा करेंगे, उनके पुत्र-पौत्र आदि तथा धनकी वृद्धि अवश्य ही होगी और वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्यासम्पन्न तथा गुणी होंगे। जो प्राणी आपकी पूजा नहीं करेंगे तथा अज्ञानके कारण आपकी निन्दा करेंगे, वे लक्ष्मीविहीन रहेंगे और उन्हें सदा नागोंसे भय बना रहेगा॥ १२९—१३३१/२ ॥

[हे देवि!] आप स्वयं सर्वलक्ष्मी हैं तथा वैकुण्ठमें कमलालया हैं और मुनीश्वर भगवान् जरत्कारु नारायणके अंश हैं। आपके पिताने हमलोगोंकी रक्षाके उद्देश्यसे ही तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा आपका सृजन किया है, अतः आप 'मनसा' नामसे विख्यात हैं॥ १३४-१३५१/२ ॥

हे मनसादेवि! आप अपनी शक्तिसे सिद्धयोगिनी हैं, अतः आप मनसादेवी सबके द्वारा पूजित और वन्दित हों। देवगण भक्तिपूर्वक मनसे निरन्तर आपकी श्रेष्ठ पूजा करते हैं, इसीलिये विद्वान् पुरुष आपको 'मनसादेवी' कहते हैं। हे देवि! सत्यकी सर्वदा उपासना करनेके कारण आप सत्यस्वरूपिणी हैं। जो मनुष्य तत्पर होकर निरन्तर आपका ध्यान करता है, वह आपको प्राप्त कर लेता है॥ १३६—१३८१/२ ॥

[हे मुने!] इस प्रकार मनसादेवीकी स्तुति करके और

उन भगिनीरूप देवीसे वर प्राप्तकर देवराज इन्द्र अनेकविध भूषणोंसे अलंकृत अपने भवनको चले गये॥ १३९१/२ ॥

मनसादेवीने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपके आश्रममें दीर्घकालतक निवास किया। भ्राताओंके द्वारा वे सदा पूजित, सम्मानित और वन्दित हुईं॥ १४०१/२ ॥

हे ब्रह्मन्! तदनन्तर सुरभि गौने गोलोकसे वहाँ आकर इन्द्रद्वारा सुपूजित उन मनसादेवीको अपने दुग्धसे स्नान कराकर आदरपूर्वक उनकी पूजा की और उन देवीने उन्हें अत्यन्त दुर्लभ तथा गोपनीय सम्पूर्ण ज्ञानका उपदेश दिया। तत्पश्चात् उस सुरभि तथा देवताओंके द्वारा पूजित वे देवी मनसा पुनः स्वर्गलोकको चली गयीं॥ १४१-१४२१/२ ॥

जो मनुष्य पुण्यबीजस्वरूप इस इन्द्रस्तोत्रका पाठ करता है तथा भगवती मनसाकी पूजा करता है, उसे तथा उसके वंशजोंके लिये नागोंका भय नहीं रह जाता। यदि मनुष्य इस स्तोत्रको सिद्ध कर ले, तो उसके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप कर लेनेसे मनुष्यको इसकी सिद्धि हो जाती है और वह निश्चय ही सर्पपर शयन करनेवाला तथा सर्पपर सवारी करनेवाला हो जाता है॥ १४३—१४५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'मनसोपाख्यानवर्णन' नामक अड़तालीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

आदि गौ सुरभिदेवीका आख्यान

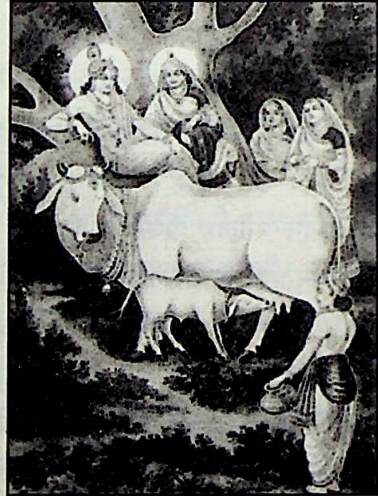
नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! गोलोकसे जो सुरभि-देवी आयी थीं, वे कौन थीं? मैं ध्यानपूर्वक उनका जन्मचरित्र सुनना चाहता हूँ॥ १ ॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] वे देवी सुरभि गोलोकमें प्रकट हुईं। वे गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी तथा गौओंमें प्रधान हैं। मैं सभी गौओंकी आदिसृष्टिस्वरूपा उन सुरभिके चरित्रका वर्णन कर रहा हूँ, आप ध्यानपूर्वक सुनिये। पूर्वकालमें वृन्दावनमें सुरभिका प्रादुर्भाव हुआ था॥ २-३ ॥

एक समयकी बात है, गोपांगनाओंसे घिरे हुए परम कौतुकी राधिकापति श्रीकृष्ण राधाके साथ पुनीत वृन्दावनमें गये हुए थे। वहाँ वे एकान्तमें क्रीडापूर्वक विहार करने लगे, तभी सहसा उन स्वेच्छामय प्रभुको दुग्धपानकी इच्छा हो गयी॥ ४-५ ॥

उसी समय उन्होंने अपने वामभागसे लीलापूर्वक बछड़ेसहित दुग्धवती सुरभि गौको प्रकट कर दिया। उस बछड़ेका नाम मनोरथ था॥ ६ ॥

बछड़ेसहित उस गायको देखकर श्रीदामाने एक नवीन पात्रमें उसका दूध दुहा। जन्म, मृत्यु तथा बुढ़ापाको हरनेवाला वह दुग्ध अमृतसे भी बढ़कर था। सुरभिसे दुहे



गये उस स्वादिष्ट दूधको स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्ण पीने लगे। तभी पात्रके गिरकर फूट जानेसे चारों ओर सौ योजनकी लम्बाई तथा चौड़ाईवाला एक विशाल दूधका सरोवर हो गया। यही सरोवर गोलोकमें क्षीरसरोवर नामसे प्रसिद्ध है॥ ७—९ ॥

वह सरोवर गोपिकाओं तथा राधाका क्रीडावापी हो गया। वापीके [घाट आदि] पूर्णरूपसे श्रेष्ठ रत्नोंसे निर्मित थे। भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे उसी समय सहसा लाखों-

करोड़ों कामधेनु गौएँ प्रकट हो गयीं। वहाँ जितने गोप थे वे सभी उस सुरभिके रोमकूपोंसे प्रकट हुए थे। तत्पश्चात् उन गौओंकी असंख्य सन्तानें उत्पन्न हो गयीं। इस प्रकार उस सुरभिसे गायोंकी सृष्टि कही गयी है; उसीसे यह जगत् व्याप्त है॥ १०—१२॥

हे मुने! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभिकी पूजा की थी, उसी समयसे तीनों लोकोंमें उस सुरभिकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभि पूजित हुई थीं—यह मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना है॥ १३-१४॥

हे महाभाग! अब मैं आपको देवी सुरभिका वेदोक्त ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा जो-जो पूजाका विधिक्रम है, उसे बता रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये॥ १५॥

'**ॐ सुरभ्यै नमः**'—यह उनका षडक्षर मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षतुल्य हो जाता है॥ १६॥

देवी सुरभिका ध्यान यजुर्वेदमें वर्णित है। उनकी पूजा सब प्रकारसे ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति तथा समस्त अभीष्ट प्रदान करनेवाली है॥ १७॥

[ध्यान इस प्रकार है—] 'लक्ष्मीस्वरूपा, परमा, राधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदिस्वरूपिणी, गौओंकी जननी, पवित्ररूपिणी, पावन, भक्तोंके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करनेवाली तथा जिनसे सम्पूर्ण जगत् पावन बना हुआ है—उन पराभगवती सुरभिकी मैं आराधना करता हूँ'॥ १८-१९॥

द्विजको चाहिये कि कलश, गायके मस्तक, गायोंके बाँधनेके स्तम्भ, शालग्रामशिला, जल अथवा अग्निमें सुरभिकी भावना करके उनकी पूजा करे॥ २०॥

जो मनुष्य दीपावलीके दूसरे दिन पूर्वाह्नकालमें भक्तिसे युक्त होकर सुरभिकी पूजा करता है, वह पृथ्वीलोकमें पूज्य हो जाता है॥ २१॥

एक समयकी बात है, वाराहकल्पमें भगवान् विष्णुकी मायासे देवी सुरभिने तीनों लोकोंमें दूध देना बन्द कर दिया, जिससे समस्त देवता आदि चिन्तित हो गये। ब्रह्मलोकमें जाकर उन्होंने ब्रह्माकी स्तुति की, तब ब्रह्माजीकी आज्ञासे इन्द्र सुरभिकी स्तुति* करने लगे॥ २२-२३॥

पुरन्दर बोले—देवीको नमस्कार है, महादेवी सुरभिको बार-बार नमस्कार है। हे जगदम्बिके! गौओंकी बीजस्वरूपिणी आपको नमस्कार है॥ २४॥ राधाप्रियाको नमस्कार है, देवी पद्मांशाको बार-बार नमस्कार है, कृष्णप्रियाको नमस्कार है और गौओंकी जननीको बार-बार नमस्कार है॥ २५॥ हे परादेवि! सभी प्राणियोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपिणी, दुग्ध देनेवाली, धन प्रदान करनेवाली तथा बुद्धि देनेवाली आपको बार-बार नमस्कार है॥ २६॥ शुभा, सुभद्रा तथा गोप्रदाको बार-बार नमस्कार है। यश, कीर्ति तथा धर्म प्रदान करनेवाली भगवती सुरभिको बार-बार नमस्कार है॥ २७॥

इस स्तोत्रको सुनते ही जगज्जननी सनातनी देवी सुरभि सन्तुष्ट तथा प्रसन्न होकर उस ब्रह्मलोकमें प्रकट हो गयीं॥ २८॥

देवराज इन्द्रको दुर्लभ वांछित वर प्रदान करके वे गोलोकको चली गयीं और देवता आदि अपने-अपने स्थानको चले गये॥ २९॥

हे नारद! उसके बाद विश्व सहसा दुग्धसे परिपूर्ण हो गया। दुग्ध होनेसे घृतका प्राचुर्य हो गया और उससे यज्ञ होने लगा, जिससे देवताओंको सन्तुष्टि होने लगी॥ ३०॥

जो भक्तिपूर्वक इस परम पवित्र स्तोत्रका पाठ करता है, वह गौओंसे सम्पन्न, धनवान्, यशस्वी तथा पुत्रवान् हो जाता है। उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया तथा वह सभी यज्ञोंमें दीक्षित हो गया। वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है। वह वहाँ दीर्घकालतक निवास करता है और भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें संलग्न रहता है। उसका पुनर्जन्म नहीं होता, वह ब्रह्मपुत्र ही हो जाता है॥ ३१—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'नारायण-नारद-संवादमें सुरभ्युपाख्यानवर्णन' नामक उनचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४९॥

---

* नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥
नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परे। क्षीरदायै धनदायै बुद्धिदायै नमो नमः॥
शुभायै च सुभद्रायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै कीर्तिदायै धर्मदायै नमो नमः॥ (श्रीमद्देवीभा० ९।४९।२४—२७)

पचासवाँ अध्याय

भगवती श्रीराधा तथा श्रीदुर्गाके मन्त्र, ध्यान, पूजा-विधान तथा स्तवनका वर्णन

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मूलप्रकृतिरूपा देवियोंका सारा आख्यान मैंने यथार्थरूपमें सुन लिया, जिसका श्रवण करके प्राणी जन्म-मरणरूपी भवबन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब मैं भगवती राधा तथा दुर्गाका वेदगोपित रहस्य तथा वेदोक्त पूजा-विधान सुनना चाहता हूँ॥ १-२॥

हे मुनीश्वर! आपने इन दोनों पराशक्तियोंकी अद्भुत महिमा बतायी, उसे सुनकर भला किस पुरुषका मन उनमें लीन नहीं हो जायगा॥ ३॥

[हे भगवन्!] यह सम्पूर्ण जगत् जिनका अंश है, यह चराचर विश्व जिनसे नियन्त्रित है तथा जिनकी भक्तिसे प्राणियोंकी मुक्ति हो जाती है, उन देवियोंके पूजा-विधानके विषयमें अब आप मुझे बताइये॥ ४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! सुनिये, मैं वह वेदवर्णित परम सारस्वरूप तथा परात्पर रहस्य आपको बता रहा हूँ, जिसे मैंने किसीको भी नहीं बताया है। इसे सुनकर आप किसी दूसरेसे मत कहियेगा; क्योंकि यह परम गोपनीय है॥ ५॥

जगत्‌की उत्पत्तिके समय मूलप्रकृतिस्वरूपिणी ज्ञानमयी भगवतीसे प्राण तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवियोंके रूपमें दो शक्तियाँ प्रकट हुईं। [श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी तथा श्रीदुर्गा उनकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं।] वे शक्तियाँ ही सम्पूर्ण जीवोंको सदा नियन्त्रित तथा प्रेरित करती हैं। विराट् आदि चराचरसहित सम्पूर्ण जगत् उन्हीं शक्तियोंके अधीन है॥ ६-७$^{1}/_{2}$॥

जबतक उन दोनों शक्तियोंकी कृपा नहीं होती, तबतक मोक्ष दुर्लभ रहता है। अतएव उन दोनोंकी प्रसन्नताके लिये उनकी निरन्तर उपासना करनी चाहिये॥ ८$^{1}/_{2}$॥

हे नारद! उनमें आप पहले राधिकामन्त्रको भक्तिपूर्वक सुनिये, जिस परात्पर मन्त्रको ब्रह्मा, विष्णु आदि भी सदा जपते रहते हैं। 'श्रीराधा' इस शब्दके अन्तमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर उसके आगे अग्निपत्नी 'स्वाहा' पद जोड़ देनेपर '**श्रीराधायै स्वाहा**' नामक यह षडक्षर महामन्त्र धर्म, अर्थ आदिको प्रकाशित करनेवाला है। इसी राधिकामन्त्रके आदिमें मायाबीज (ह्रीं)-से युक्त होकर **ह्रीं श्रीराधायै स्वाहा**—यह वाञ्छाचिन्तामणि मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्रका माहात्म्य करोड़ों मुखों तथा जिह्वाओंके द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है॥ ९—१२॥

सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने गोलोकमें रासमण्डलमें मूलदेवी भगवती श्रीराधाके उपदेश करनेपर भक्तिपूर्वक इस मन्त्रको ग्रहण किया था। तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्णने विष्णुको, विष्णुने विराट् ब्रह्माको, ब्रह्माने धर्मदेवको और धर्मदेवने मुझको इस मन्त्रका उपदेश किया। इस प्रकार यह परम्परा चली आयी॥ १३-१४॥

मैं उस मन्त्रका जप करता हूँ, इसी कारणसे मैं ऋषिरूपमें पूजित हूँ। ब्रह्मा आदि समस्त देवता भी सदा प्रसन्नतापूर्वक उन श्रीराधिकाका ध्यान करते रहते हैं। राधाकी पूजाके विना श्रीकृष्णकी पूजा करनेका अधिकार नहीं है, अतः सभी वैष्णवोंको राधिकाका पूजन [अवश्य] करना चाहिये॥ १५-१६॥

वे भगवती राधिका भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अतः वे विभु उनके अधीन रहते हैं। वे श्रीकृष्णके रासकी सदा स्वामिनी हैं, इसलिये श्रीकृष्ण उन राधिकाके बिना नहीं रह सकते। वे [प्राणियोंके] सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करती हैं, इसलिये वे 'राधा'—इस नामसे विख्यात हैं॥ १७$^{1}/_{2}$॥

यहाँ कहे गये सभी मन्त्रोंका ऋषि मैं नारायण ही हूँ, उनमें राधामन्त्रका देवीगायत्री छन्द है तथा राधिका देवता हैं, तार (प्रणव) बीज है और देवी भुवनेश्वरीको शक्ति कहा गया है। मूलमन्त्रकी आवृत्तिसे षडंगन्यास कर लेना चाहिये॥ १८-१९$^{1}/_{2}$॥

हे मुने! इसके बाद सामवेदमें वर्णित पूर्वोक्त रीतिके अनुसार रासेश्वरी महादेवी राधिकाका ध्यान करना चाहिये। [ध्यान इस प्रकार है]—'परमेश्वरी श्रीराधा

श्वेत चम्पाके वर्णके समान आभावाली हैं, शरत्कालीन चन्द्रमाके समान मुखवाली हैं, इनके श्रीविग्रहकी कान्ति करोड़ों चन्द्रोंकी प्रभाके समान है, ये शरद् ऋतुके खिले हुए कमलके समान नेत्रोंवाली हैं, बिम्बाफलके समान ओष्ठवाली तथा स्थूल श्रोणीवाली हैं, करधनीसे सुशोभित नितम्बदेशवाली हैं। कुन्द-पुष्पोंकी पंक्तिके सदृश आभावाली दन्तपंक्तिसे सुशोभित हैं, इन्होंने अग्निके समान विशुद्ध रेशमी वस्त्र धारण कर रखा है, ये मन्द-मन्द मुसकानयुक्त प्रसन्न मुखमण्डलवाली हैं, इनके दोनों वक्षःस्थल हाथीके मस्तकके समान विशाल हैं, ये सदा बारह वर्षकी अवस्थावाली प्रतीत होती हैं, रत्नमय आभूषणोंसे अलंकृत हैं, शृंगारसिन्धुकी तरंगोंके समान हैं, भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर हैं, मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंकी मालाओंसे युक्त केशपाशसे सुशोभित हो रही हैं, इनके सुकुमार अंगोंमें मोतियोंकी लड़ियाँ शोभा दे रही हैं, ये रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान हैं, इन्होंने अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्राओंको धारण कर रखा है, ये शान्त स्वभाववाली हैं, सदा शाश्वत यौवनसे सम्पन्न हैं, रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान हैं, समस्त गोपियोंकी स्वामिनी हैं, ये भगवान् श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं और वेदोंमें इन परमेश्वरी राधिकाकी महिमाका वर्णन हुआ है'॥ २०—२७॥

इस प्रकार हृदयदेशमें ध्यान करके बाहर शालग्रामशिला, कलश अथवा आठ दलवाले यन्त्रपर विधानपूर्वक देवी राधिकाकी पूजा करनी चाहिये॥ २८॥

देवी राधिकाका आवाहन करनेके पश्चात् आसन आदि समर्पण करे। मूलमन्त्रका सम्यक् उच्चारण करके ही आसन आदि वस्तुएँ भगवतीके सम्मुख उपस्थित करनी चाहिये। पाद्य-जल उनके चरणोंमें अर्पण करना चाहिये। उनके मस्तकपर अर्घ्य देनेका विधान बताया गया है। मूलमन्त्रसे तीन बार मुखमें आचमन कराना चाहिये। तत्पश्चात् मधुपर्क देकर श्रीराधाके लिये एक पयस्विनी (दूध देनेवाली) गौ प्रदान करनी चाहिये। तदनन्तर उन्हें स्नानगृहमें ले जाकर वहींपर उनकी भावना करे॥ २९—३१॥

तैल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे विधिपूर्वक स्नान करानेके पश्चात् दो वस्त्र अर्पण करे। तदनन्तर नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत करके चन्दन समर्पित करे। इसके बाद तुलसीकी मंजरीसे युक्त अनेक प्रकारकी पुष्पमालाएँ और पारिजात तथा शतदल कमलके पुष्प आदि समर्पित करे॥ ३२-३३॥

तदनन्तर प्रधान देवता उन भगवतीकी पवित्र आवरण-पूजा सम्पन्न करनी चाहिये। अग्निकोण, ईशानकोण, नैर्ऋत्यकोण, वायव्यकोण तथा पूर्व आदि दिशाओंमें भगवती राधिकाके अंगपूजनका विधान है। इसके बाद अष्टदल यन्त्रको आगे करके दक्षिणावर्त क्रमसे पूर्वसे प्रारम्भ करके पूजन करे। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अष्टदल यन्त्रके पूर्वदिशावाले दलमें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें परावतीका पूजन करे तथा ईशानकोणमें सुन्दरी प्रियकारिणीकी पूजा करे। यन्त्रपर दलके बाहर ब्राह्मी आदि शक्तियोंकी तथा भूपुरमें दिक्पालों और वज्र आदि आयुधोंका अर्चन करे—इस विधिसे भगवती श्रीराधिकाका पूजन करना चाहिये॥ ३४—३८॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको राजोपचारसहित गन्ध आदि पूजनोपचारोंसे आवरणोंसहित भगवती राधिकाकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद सहस्रनामस्तोत्रसे देवेश्वरी राधाकी स्तुति करनी चाहिये और मन्त्रका एक हजार जप भी नित्य प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ ३९-४०॥

जो मनुष्य इस विधिसे रासेश्वरी परात्परा राधिकाकी पूजा करता है, वह विष्णुतुल्य हो जाता है और गोलोकमें जाकर सदा वास करता है॥ ४१॥

जो बुद्धिमान् पुरुष कार्तिकपूर्णिमा तिथिको भगवती श्रीराधाका जन्मोत्सव मनाता है, उसे रासेश्वरी परमा श्रीराधिका अपना सान्निध्य प्रदान कर देती हैं॥ ४२॥

गोलोकमें सदा निवास करनेवाली भगवती श्रीराधा किसी कारणसे ही वृन्दावनमें वृषभानुकी पुत्रीके रूपमें आविर्भूत हुईं॥ ४३॥

यहाँ कहे गये मन्त्रोंकी वर्णसंख्याके अनुसार पुरश्चरण-

क्रिया बतायी गयी है। इसमें जपे गये मन्त्रके दशांशसे हवन करना चाहिये, भक्ति-भावपूर्वक दुग्ध, मधु और घृत—इन तीन मधुर पदार्थोंसे मिश्रित तिलोंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ ४४१/२ ॥

नारदजी बोले—हे मुने! अब आप वह स्तोत्र* बताइये, जिससे भगवती श्रीराधिका भलीभाँति प्रसन्न हो जाती हैं॥ ४५॥

श्रीनारायण बोले—[स्तोत्र इस प्रकार है—]

रासमण्डलमें निवास करनेवाली हे परमेश्वरि! आपको नमस्कार है। कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हे रासेश्वरि! आपको नमस्कार है॥ ४६॥ ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओंके द्वारा वन्दित चरणकमलवाली हे त्रैलोक्यजननि! आपको नमस्कार है। हे करुणार्णवे! आप मुझपर प्रसन्न होइये॥ ४७॥ हे सरस्वतीरूपे! आपको नमस्कार है। हे सावित्रि! हे शंकरि! हे गंगा-पद्मावतीरूपे! हे षष्ठि! हे मंगलचण्डिके! आपको नमस्कार है॥ ४८॥ हे तुलसीरूपे! आपको नमस्कार है। हे लक्ष्मीस्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। हे दुर्गे! हे भगवति! आपको नमस्कार है। हे सर्वरूपिणि! आपको नमस्कार है॥ ४९॥ हे अम्ब! मूलप्रकृतिस्वरूपिणी तथा करुणासिन्धु आप भगवतीकी हम उपासना करते हैं, संसारसागरसे हमारा उद्धार कीजिये, दया कीजिये॥ ५०॥

जो मनुष्य तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में श्रीराधिकाका स्मरण करते हुए इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये कोई भी वस्तु कभी भी दुर्लभ नहीं रहती। वह देह-त्यागके अनन्तर गोलोकमें रासमण्डलमें निरन्तर निवास करता है। [हे मुने!] इस परम रहस्यको किसीके समक्ष प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥ ५१-५२॥

हे विप्रवर! अब आप उन भगवती दुर्गाका पूजा-विधान सुनिये, जिनके स्मरणमात्रसे घोर विपत्तियाँ भाग जाती हैं॥ ५३॥

जो इन भगवती दुर्गाकी उपासना नहीं करता हो, वैसा कोई मनुष्य कहीं नहीं है। ये भगवती सबकी उपास्या, सभी प्राणियोंकी जननी तथा अत्यन्त अद्भुत शैवी शक्ति हैं। ये समस्त प्राणियोंकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा अन्तर्यामीस्वरूपिणी हैं। ये घोर संकटसे रक्षा करती हैं, अतः जगत्में 'दुर्गा' नामसे विख्यात हैं॥ ५४-५५॥

सभी वैष्णवों तथा शैवोंकी ये सदा उपास्य हैं। मूल प्रकृतिरूपिणी हैं और जगत्का सृजन, पालन तथा संहार करनेवाली हैं॥ ५६॥

[हे नारद!] अब मैं उन भगवती दुर्गाके उत्तमोत्तम नवाक्षर मन्त्रका वर्णन करूँगा। सरस्वतीबीज (ऐं), भुवनेश्वरीबीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं)—इन तीनोंका आदिमें क्रमशः प्रयोग करनेके बाद 'चामुण्डायै'—इस पदको लगानेके अनन्तर 'विच्चे' इन दो अक्षरोंको जोड़ देनेपर बना हुआ **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'**—यह नवाक्षर मन्त्र कहा गया है, जो जप करनेवाले मनुष्यके लिये कल्पवृक्षके समान है॥ ५७-५८॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक् और अनुष्टुप्—ये तीनों इस मन्त्रके छन्द कहे गये हैं। महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती इस मन्त्रकी देवता हैं। रक्तदन्तिका, दुर्गा तथा भ्रामरी—इस मन्त्रके बीज हैं। नन्दा, शाकम्भरी और भीमा—ये देवियाँ इस मन्त्रकी शक्तियाँ कही गयी हैं॥ ५९-६०॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिये इस मन्त्रका विनियोग किया जाता है। ऋषि, छन्द और देवताका क्रमशः मस्तकपर, मुखमें और हृदयमें न्यास करना चाहिये। सर्वार्थसिद्धिके लिये दोनों स्तनोंमें शक्तिबीजोंका न्यास करना चाहिये॥ ६१-६२॥

ऐं, ह्रीं, क्लीं—तीन बीजमन्त्रों, चार वर्णोंवाले

---

* नमस्ते परमेशानि रासमण्डलवासिनि। रासेश्वरि नमस्तेऽस्तु कृष्णप्राणाधिकप्रिये॥
नमस्त्रैलोक्यजननि प्रसीद करुणार्णवे। ब्रह्मविष्ण्वादिभिर्देवैर्वन्द्यमानपदाम्बुजे॥
नमः सरस्वतीरूपे नमः सावित्रि शङ्करि। गङ्गापद्मावतीरूपे षष्ठि मङ्गलचण्डिके॥
नमस्ते तुलसीरूपे नमो लक्ष्मीस्वरूपिणि। नमो दुर्गे भगवति नमस्ते सर्वरूपिणि॥
मूलप्रकृतिरूपां त्वां भजामः करुणार्णवाम्। संसारसागरादस्मानुद्धराम्ब दयां कुरु॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। ५०। ४६—५०)

चामुण्डायै, दो वर्णोंवाले **विच्चेके** साथ तथा पूरे मन्त्रके साथ क्रमशः **नमः**, **स्वाहा**, **वषट्**, **हुम्**, **वौषट्** और **फट्**—इन छः जातिसंज्ञक वर्णोंको लगाकर साधकको शिखा, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, मुख और गुदा आदि छः स्थानोंमें न्यास करना चाहिये; साथ ही सम्पूर्ण मन्त्रसे [सिरसे लेकर पैरतक] व्यापक न्यास करना चाहिये॥ ६३-६४॥

[महाकालीका ध्यान—] 'हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, कपाल तथा शंख धारण करनेवाली; नानाविध आभूषणोंसे अलंकृत; नीलांजनके समान कान्तिवाली; दस चरणों तथा दस मुखोंवाली एवं तीन नेत्रोंवाली भगवती महाकालीकी मैं आराधना करता हूँ, जिनका स्तवन कमलासन ब्रह्माजीने मधु और कैटभका वध करनेके लिये किया था'—इस प्रकार कामबीजस्वरूपिणी भगवती महाकालीका ध्यान करना चाहिये[1]॥ ६५—६७॥

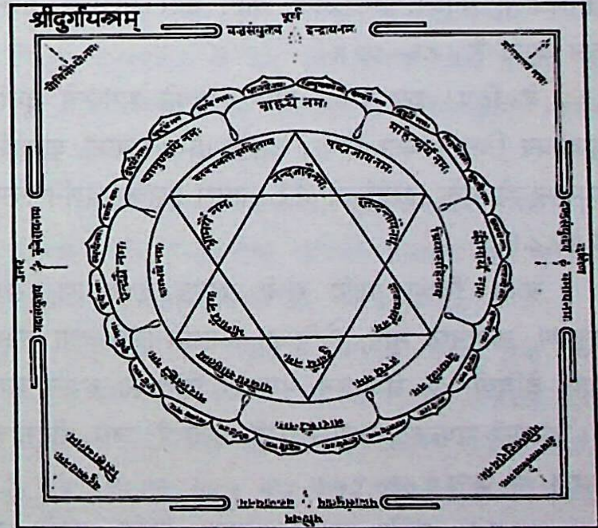
[महालक्ष्मीका ध्यान—] 'जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, परशु, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, कमल, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और सुदर्शनचक्र धारण करती हैं; जो अरुण प्रभावाली हैं; रक्त कमलके आसनपर विराजमान हैं तथा माया-बीजस्वरूपिणी हैं'—इस तरहसे महिषासुरमर्दिनी उन महालक्ष्मीका ध्यान करना चाहिये[2]॥ ६८—७०॥

[महासरस्वतीका ध्यान—] 'जो अपने कर-कमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शंख, मुसल, सुदर्शनचक्र, धनुष तथा बाण धारण करती हैं; कुन्दके समान मनोहर कान्तिवाली हैं; शुम्भ आदि दैत्योंका संहार करनेवाली हैं; सच्चिदानन्द-विग्रहसे सम्पन्न हैं तथा वाणीबीज-स्वरूपिणी हैं'—उन भगवती महासरस्वतीका ध्यान करना चाहिये[3]॥ ७१-७२॥

हे प्राज्ञ! अब इन भगवतीके यन्त्रके विषयमें सुनिये। तीन अस्त्रोंवाला तथा छः कोणोंसे युक्त यन्त्र होना चाहिये, उसके चारों ओर अष्टदलकमल हो और कमलमें चौबीस पंखुड़ियाँ विद्यमान हों, वह यन्त्र भूगृहसे सम्पन्न हो—इस प्रकारके यन्त्रके विषयमें चिन्तन करना चाहिये॥ ७३½॥

एकाग्रचित्त होकर शालग्राम, कलश, यन्त्र, प्रतिमा, बाणलिंग अथवा सूर्यमें भगवतीकी भावना करके उनका यजन करना चाहिये। जया आदि शक्तियोंसे सम्पन्न पीठपर देवीकी विधिवत् पूजा करे॥ ७४-७५॥

यन्त्रके पूर्वकोणमें सरस्वतीसहित ब्रह्माकी पूजा करे, नैर्ऋत्यकोणमें लक्ष्मीसहित विष्णुकी पूजा करे तथा वायव्यकोणमें पार्वतीसहित भगवान् शिवकी पूजा करे। देवीके उत्तरमें सिंहकी तथा बायीं ओर महिषासुरकी पूजा करनी चाहिये। इसके बाद छः कोणोंमें क्रमशः भगवती नन्दजा, रक्तदन्ता, शाकम्भरी, कल्याणकारिणी दुर्गा, भीमा तथा भ्रामरीका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर आठ दलोंमें ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री और चामुण्डाकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् चौबीस



---

१. खड्गचक्रगदाबाणचापानि परिघं तथा। शूलं भुशुण्डीं च शिरः शङ्खं सन्दधतीं करैः॥
महाकालीं त्रिनयनां नानाभूषणभूषिताम्। नीलाञ्जनसमप्रख्यां दशपादाननां भजे॥
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः। एवं ध्यायेन्महाकालीं कामबीजस्वरूपिणीम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। ५०। ६५—६७)

२. अक्षमालां च परशुं गदेषुकुलिशानि च। पद्मं धनुष्कुण्डिकां च दण्डं शक्तिमसिं तथा॥
चर्माम्बुजं तथा घण्टां सुरापात्रं च शूलकम्। पाशं सुदर्शनं चैव दधतीमरुणप्रभाम्॥
रक्ताम्बुजासनगतां मायाबीजस्वरूपिणीम्। महालक्ष्मीं भजेदेवं महिषासुरमर्दिनीम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। ५०। ६८—७०)

३. घण्टाशूले हलं शङ्खं मुसलं च सुदर्शनम्। धनुर्बाणान् हस्तपद्मैर्दधानां कुन्दसन्निभाम्॥
शुम्भादिदैत्यसंहर्त्रीं वाणीबीजस्वरूपिणीम्। महासरस्वतीं ध्यायेत्सच्चिदानन्दविग्रहाम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ९। ५०। ७१-७२)

पंखुड़ियोंमें पूर्वके क्रमसे विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, पराशक्ति, तृष्णा, शान्ति, जाति, लज्जा, क्षान्ति, श्रद्धा, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, वृत्ति, श्रुति, स्मृति, दया, तुष्टि, पुष्टि, माता और भ्रान्ति—इन देवियोंकी पूजा करनी चाहिये॥ ७६—८२॥

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि भूपुर-कोणोंमें गणेश, क्षेत्रपाल, बटुक और योगिनियोंकी पूजा करे। दलके बाहर वज्र आदि आयुधोंसे युक्त इन्द्र आदि देवताओंकी भी पूजा करे। इसी रीतिसे आवरणसहित भगवती दुर्गाकी पूजा करे। भगवतीकी प्रसन्नताके लिये विविध प्रकारके राजसी पूजनोपचार उन्हें अर्पण करने चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्रार्थपर ध्यान रखते हुए नवार्ण मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ८३—८५॥

तदनन्तर भगवती दुर्गाके सामने सप्तशतीस्तोत्रका पाठ करना चाहिये। तीनों लोकोंमें इस स्तोत्रके सदृश दूसरा कोई भी स्तोत्र नहीं है, इसलिये मनुष्यको इस स्तोत्रके द्वारा प्रतिदिन देवेश्वरी दुर्गाको प्रसन्न करना चाहिये। ऐसा करनेवाला मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका आलय बन जाता है॥ ८६-८७॥

हे विप्र! इस प्रकार मैंने आपको भगवती दुर्गाके पूजनका विधान बता दिया। इसके द्वारा सबकी कृतार्थता सम्पन्न हो सके, इसीलिये मैंने आपसे इसका वर्णन किया है॥ ८८॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी प्रमुख देवतागण, सभी मनुगण, ज्ञाननिष्ठ मुनि, योगिजन, आश्रमवासी तथा लक्ष्मी आदि देवियाँ—ये सब उन भगवती शिवाका ध्यान करते हैं। जन्मकी सफलता तभी समझी जाती है, जब श्रीदुर्गाका स्मरण हो जाय॥ ८९-९०॥

भगवती दुर्गाके चरणकमलका ध्यान करके ही चौदहों मनुओंने मनुपद तथा देवतागणोंने अपना-अपना स्थान प्राप्त किया है॥ ९१॥

इस प्रकार मैंने रहस्योंका भी अति रहस्यस्वरूप यह सारा आख्यान कह दिया। इसमें भगवती प्रकृतिके पाँच मुख्य स्वरूपों तथा उनके अंशोंका वर्णन है॥ ९२॥

इसका नित्य श्रवण करनेसे मनुष्य चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) प्राप्त कर लेता है, इसमें सन्देह नहीं है। यह सब मैंने सच-सच कहा है॥ ९३॥

इस रहस्यके प्रभावसे पुत्रहीन व्यक्ति पुत्र तथा विद्याभिलाषी मनुष्य विद्या प्राप्त कर लेता है। इसका श्रवण करके मनुष्य जिस-जिस मनोरथकी पूर्णताकी कामना करता है, उस-उसको प्राप्त कर लेता है॥ ९४॥

नवरात्रमें एकाग्रचित्त होकर भगवती दुर्गाके सम्मुख इसका पाठ करना चाहिये। जगद्धात्री भगवती दुर्गा इससे निश्चय ही प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९५॥

जो मनुष्य प्रतिदिन इस नवम स्कन्धके एक अध्यायका पाठ करता है, भगवती दुर्गा उसके अधीन हो जाती हैं और वह मनुष्य देवीका प्रियकर हो जाता है॥ ९६॥

इस विषयमें किसी कुमारीके दिव्य हाथ अथवा बालकके करकमलसे यथाविधि शकुनकी परीक्षा करनी चाहिये। अपने मनोरथका संकल्प करके पुस्तककी पूजा करे, तत्पश्चात् जगदीश्वरी भगवती दुर्गाको बार-बार प्रणाम करे। भलीभाँति स्नान की हुई कन्याको वहाँ विराजमान करके [देवीके रूपमें] उसकी विधिपूर्वक पूजा करनेके अनन्तर स्वर्णनिर्मित शलाका उस कन्यासे स्कन्धके मध्यमें रखवाना चाहिये। शलाका रखनेपर शुभ अथवा अशुभ जो भी प्रसंग आता है, वैसा ही फल होता है; अथवा उदासीन प्रसंग आनेपर कार्य भी उदासीन ही होता है—यह निश्चित है॥। ९७—१००॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत नौवें स्कन्धका 'देवीकी आवरणपूजाकी विधिका वर्णन' नामक पचासवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५०॥

॥ नवम स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

दशम स्कन्ध

पहला अध्याय

स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्ति, उनके द्वारा भगवतीकी आराधना

नारदजी बोले—हे नारायण! हे धराके आधार! हे सर्वपालनकारण! आपने पापोंका नाश करनेवाले देवीचरित्रका वर्णन कर दिया॥ १॥

सभी मन्वन्तरोंमें वे देवी जो-जो स्वरूप धारण करती हैं तथा जिस-जिस स्वरूपसे उन माहेश्वरीका प्रादुर्भाव हुआ है—भगवतीकी महिमासे युक्त उन समस्त प्रसंगोंका अब आप हमसे सम्यक् वर्णन करें॥ २१/२॥

जिस प्रकारसे तथा जिस-जिस मन्त्र अथवा स्तोत्रसे भगवतीका पूजन तथा स्तवन किया गया है और वे भक्तवत्सला देवी भक्तोंका जिस प्रकार मनोरथ पूर्ण करती हैं, सुननेकी अभिलाषावाले हमलोगोंसे आप देवीके उस उत्तम चरित्रका वर्णन कीजिये, जिससे महान् सुख प्राप्त होता है॥ ३-४१/२॥

श्रीनारायण बोले—हे महर्षे! भक्तोंके हृदयमें भक्ति उत्पन्न करनेवाले, महान् सम्पदा प्रदान करनेवाले तथा पापोंका शमन करनेवाले देवी-चरित्रका अब आप श्रवण कीजिये॥ ५१/२॥

सर्वप्रथम जगत्के मूल कारण महान् तेजस्वी लोकपितामह ब्रह्मा चक्रधारी देवदेव भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे प्रादुर्भूत हुए॥ ६१/२॥

हे महामते! विष्णुके नाभिकमलसे प्रकट होकर उन चतुर्मुख ब्रह्माने स्वायम्भुव नामक मनुको अपने मनसे उत्पन्न किया। इस प्रकार वे मनु परमेष्ठी ब्रह्माके मानस पुत्र कहलाये। पुनः ब्रह्माजीने धर्मस्वरूपिणी शतरूपाको उत्पन्न किया और उन्हें मनुकी पत्नीके रूपमें प्रतिष्ठित किया। तत्पश्चात् वे मनु क्षीरसागरके परम पवित्र तटपर महान् सौभाग्य प्रदान करनेवाली जगदम्बाकी आराधना करने लगे॥ ७—९१/२॥

वहाँपर देवीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर पृथ्वीपति मनु एकान्तमें उन भगवतीके वाग्भव-मन्त्रका जप करते हुए उनकी उपासनामें तत्पर हो गये॥ १०१/२॥

नियमों तथा व्रतोंका पालन करते हुए निराहार रहकर श्वासको नियन्त्रित करके वे सौ वर्षोंतक निरन्तर पृथ्वीपर एक पैरसे खड़े रहे। महात्मा मनुने काम तथा क्रोधपर विजय प्राप्त कर ली। अपने हृदयमें भगवतीके चरणोंका चिन्तन करते हुए वे किसी स्थावरकी भाँति हो गये॥ ११-१२१/२॥

उनकी उस तपस्यासे जगन्मयी भगवती प्रकट हो गयीं और उन्होंने यह दिव्य वचन कहा—'हे भूपाल! तुम वर माँगो'॥ १३१/२॥

तब देवीका आनन्ददायक वचन सुनकर महाराज मनुने देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ अपने मनोभिलषित

उन श्रेष्ठ वरोंकी याचना की॥ १४१/२॥



मनु बोले—हे देवि! हे विशालनयने! हे समस्त प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाली! आपकी जय हो। हे मान्ये! हे पूज्ये! हे जगद्धात्रि! हे सर्वमंगलमंगले! आपके कटाक्षपातमात्रसे पद्मयोनि ब्रह्मा जगत्‌की सृष्टि करते हैं, भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा रुद्र क्षणभरमें संहार करते हैं, शचीपति इन्द्र आपकी ही आज्ञासे तीनों लोकोंपर शासन करते हैं॥ १५—१७॥

आपके ही आदेशपर यमराज दण्डके द्वारा प्राणियोंको नियन्त्रित करते हैं तथा जलचर जीवोंके स्वामी वरुणदेव हम-जैसे प्राणियोंका पालन करते हैं। आपकी ही कृपासे कुबेर निधियोंके अविनाशी अधिपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। अग्नि, नैर्ऋत, वायु, ईशान और शेषनाग आपके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं और आपकी ही शक्तिसे परिवर्धित हैं॥ १८-१९१/२॥

फिर भी हे देवि! यदि इस समय आप मुझे वर देना चाहती हैं तो हे शिवे! सृष्टिकार्यमें आनेवाले मेरे सभी विघ्न क्षीण होकर नष्ट हो जायँ। जो भी लोग वाग्भव बीजमन्त्रके उपासक हों, उनके कार्योंकी सिद्धि शीघ्र ही हो जाय। हे देवि! जो लोग इस संवादको पढ़ें और दूसरोंको सुनायें, उनके लिये इस लोकमें भोग तथा मोक्ष सुलभ हो जायँ। हे शिवे! उन्हें पूर्वजन्मोंकी स्मृति बनी रहे और वे वक्तृता तथा वाणी-सौष्ठवसे सम्पन्न रहें। उन्हें ज्ञानकी सिद्धि हो तथा कर्मयोगकी भी सिद्धि प्राप्त हो, साथ ही उनके यहाँ पुत्र-पौत्रकी समृद्धि निरन्तर होती रहे—यही मेरा आपसे निवेदन है॥ २०—२४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'मनुकृत देवीस्तवन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

देवीद्वारा मनुको वरदान, नारदजीका विन्ध्यपर्वतसे सुमेरुपर्वतकी श्रेष्ठता कहना

श्रीदेवी बोलीं—हे भूमिपाल! हे महाबाहो! हे मनुजाधिप! यह सब पूर्ण होगा। तुमने जो-जो माँगा है, वह मैं तुम्हें दे रही हूँ॥ १॥

बड़े-बड़े दैत्योंका संहार करनेवाली तथा अमोघ पराक्रमवाली मैं तुम्हारे द्वारा किये गये वाग्भव-मन्त्रके जप तथा तपसे निश्चितरूपसे प्रसन्न हूँ। हे वत्स! तुम्हारा राज्य निष्कण्टक होगा और तुम्हारे पुत्र वंशकी वृद्धि करनेवाले होंगे; तुम मेरे प्रति दृढ़ भक्तिवाले रहोगे और अन्तमें परमपद प्राप्त करोगे॥ २-३॥

इस प्रकार उन महात्मा मनुको वर देकर महादेवी जगदम्बा उनके देखते-देखते विन्ध्यपर्वतपर चली गयीं॥ ४॥

यह वही विन्ध्याचल है, जो सूर्यके मार्गका अवरोध करनेके लिये आकाशको छूता हुआ ऊपरकी ओर बढ़नेके लिये प्रवृत्त था और महर्षि अगस्त्यने उसे रोक दिया था॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! वरदायिनी तथा परमेश्वरी वे विष्णुभगिनी विन्ध्यवासिनी सभी लोगोंके लिये पूज्य हो गयीं॥ ६॥

ऋषि बोले—हे सूतजी! वह विन्ध्याचल कौन है, आकाशको छूता हुआ वह क्यों बढ़ा, उसने सूर्यके मार्गका अवरोध क्यों किया और मैत्रावरुणि अगस्त्यजीने उस महान् ऊँचे पर्वतको बढ़नेसे क्यों रोक दिया? यह सब आप विस्तारसे मुझे बताइये॥ ७-८॥

हे साधो! आपके मुखसे निःसृत देवीचरित्ररूपी अमृतका पान करते हुए हम सब तृप्त नहीं हो रहे हैं,

अपितु तृष्णा बढ़ती ही जा रही है॥ ९॥

सूतजी बोले—सम्पूर्ण पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल नामक एक पर्वत था। वह बड़े-बड़े वनोंसे सम्पन्न तथा अति विशाल वृक्षोंसे घिरा था। वह अनेक प्रकारके पुष्पोंसे लदी हुई लताओं तथा वल्लरियोंसे आच्छादित था। मृग, वराह, महिष, बाघ, सिंह, वानर, खरगोश, भालू, सियार आदि हृष्ट-पुष्ट तथा अति शक्तिशाली वन्य जन्तु उसमें चारों ओर सदा विचरण करते रहते थे। वह नदियों तथा नदोंके जलसे व्याप्त था एवं देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों, अप्सराओं, किम्पुरुषों तथा सभी प्रकारके मनोवांछित फल देनेवाले वृक्षोंसे शोभायमान था॥ १०—१३॥

किसी समय देवर्षि नारद परम प्रसन्न होकर इच्छापूर्वक पृथ्वीलोकमें विचरण करते हुए इस प्रकारके विन्ध्यपर्वतपर पहुँच गये॥ १४॥

उन्हें देखकर विन्ध्याचलने शीघ्र ही वेगपूर्वक उठ करके आदरपूर्वक उन्हें पाद्य-अर्घ्य प्रदानकर उत्तम आसन अर्पित किया। तदनन्तर सुखपूर्वक आसनपर विराजमान उन प्रसन्न देवर्षि नारदसे विन्ध्यपर्वत कहने लगा॥ १५$^1/_2$॥

विन्ध्य बोला—हे देवर्षे! कहिये, आपका यह शुभागमन कहाँसे हुआ है?॥ १६॥



आपके आगमनसे मेरा घर परम पावन हो गया। जैसे सूर्य संसारके कल्याणार्थ भ्रमण करते हैं, उसी प्रकार आप भी देवताओंको अभय प्रदान करनेहेतु भ्रमण करते रहते हैं। हे नारदजी! आपके मनमें जो भी विशेष बात हो, उसे मुझे बताइये॥ १७$^1/_2$॥

नारदजी बोले—हे इन्द्रशत्रु! मेरा आगमन सुमेरुगिरिसे हुआ है। वहाँ मैंने इन्द्र, अग्नि, यम तथा वरुणके लोकोंको देखा है। हे विन्ध्यपर्वत! वहाँपर मुझे समस्त लोकपालोंके नानाविध भोग प्रदान करनेवाले भवन चारों ओर दिखायी पड़े॥ १८-१९$^1/_2$॥

ऐसा कहकर ब्रह्माजीके पुत्र नारदने दीर्घ श्वास ली। नारदमुनिको इस प्रकार श्वास लेते हुए देखकर पर्वतराज विन्ध्यने उनसे पुनः पूछा—हे देवर्षे! इस उच्छ्वासका क्या कारण है, उसे मुझे बताइये॥ २०-२१॥

विन्ध्यपर्वतका यह कथन सुनकर अपरिमित तेजवाले देवर्षि नारद बोले—हे वत्स! मेरे उच्छ्वासका कारण सुनो॥ २२॥

पार्वतीके पिता हिमालय शिवजीके श्वसुर हैं। इस प्रकार शंकरजीसे सम्बन्ध होनेके कारण वे सभी पर्वतोंके पूज्य हो गये॥ २३॥

इसी प्रकार शिवजीका निवास-स्थल कैलास भी सभी पर्वतोंका पूज्य स्वामी बन गया और लोकमें पापसमूहका विनाशक हो गया॥ २४॥

इसी तरह निषध, नील तथा गन्धमादन आदि सभी पर्वत भी अपने-अपने स्थानपर स्थित होकर पूज्य पर्वतके रूपमें प्रतिष्ठित हैं॥ २५॥

यह वही सुमेरुगिरि है, जिसकी परिक्रमा समस्त विश्वकी आत्मा, स्वर्गके राजा तथा हजारों किरणें धारण करनेवाले सूर्य समस्त ग्रह-नक्षत्रोंके समूहसहित करते हैं॥ २६॥

वह अपनेको पर्वतोंमें श्रेष्ठ तथा महान् मानता है। वह समझता है कि मैं ही सभी पर्वतोंमें अग्रणी हूँ तथा मेरे समान लोकोंमें कोई नहीं है॥ २७॥

इस प्रकारके मान-अभिमानवाले उस पर्वतका स्मरण करके मैंने यह उच्छ्वास लिया है। हे पर्वत! जो भी हो, तपरूपी बलवाले हम सबको इससे कोई प्रयोजन नहीं है। मैंने तो प्रसंगवश आपसे ऐसा कह दिया; अब मैं अपने घरके लिये प्रस्थान कर रहा हूँ॥ २८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'विन्ध्योपाख्यानवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

विन्ध्यपर्वतका आकाशतक बढ़कर सूर्यके मार्गको अवरुद्ध कर लेना

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस प्रकार विन्ध्यगिरिसे वार्तालाप करके परम स्वतन्त्र तथा स्वेच्छापूर्वक विचरण करनेवाले महामुनि देवर्षि नारद ब्रह्मलोक चले गये॥ १॥

मुनिवर नारदके चले जानेपर विन्ध्य निरन्तर चिन्तित रहने लगा। उसे शान्ति नहीं मिल पाती थी। वह अपने अन्तर्मनमें सदा यही सोचता कि अब मैं कौन-सा कार्य करूँ तथा किस प्रकारसे सुमेरुगिरिको जीत लूँ? इस समय मुझे न तो शान्ति मिल पा रही है और न तो मेरा मन ही सुस्थिर हो पा रहा है। (मेरे उत्साह, सम्मान, यश तथा कुलको धिक्कार है) मेरे बल तथा पुरुषार्थको धिक्कार है। पूर्वकालीन महात्माओंने भी ऐसा ही कहा है॥ २-३$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार चिन्तन करते हुए विन्ध्यगिरिके मनमें कर्तव्यके निर्णयमें दोष उत्पन्न कर देनेवाली बुद्धिका उदय हो गया॥ ४$^{१}/_{२}$॥

सूर्य सभी ग्रह-नक्षत्रसमूहोंसे युक्त होकर सुमेरु-पर्वतकी सदा परिक्रमा करते रहते हैं, जिससे यह सुमेरु-गिरि अभिमानमें चूर रहता है। मैं अपने शिखरोंसे उस सूर्यका मार्ग रोक दूँगा। तब इस प्रकार अवरुद्ध हुए ये सूर्य सुमेरुगिरिका परिक्रमण कैसे कर सकेंगे?॥ ५-६$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार मेरे द्वारा सूर्यका मार्गावरोध कर दिये जानेसे उस दिव्य सुमेरुगिरिका अभिमान निश्चितरूपसे खण्डित हो जायगा॥ ७$^{१}/_{२}$॥

ऐसा निश्चय करके विन्ध्यगिरि अपने शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ बढ़ने लगा और अत्युच्च श्रेष्ठ शिखरोंसे सम्पूर्ण आकाशको व्याप्त करके व्यवस्थित हो गया। वह प्रतीक्षा करने लगा कि कब सूर्य उदित हों और कब मैं उनका मार्ग अवरुद्ध करूँ॥ ८-९॥

इस प्रकार उसके सोचते-सोचते वह रात्रि व्यतीत हो गयी और विमल प्रभातका आगमन हो गया। अपनी किरणोंसे दिशाओंको अन्धकाररहित करते हुए भगवान् सूर्य उदयाचलपर उदित होनेके लिये प्रकट होने लगे। सूर्यकी शुभ किरणोंसे आकाश स्वच्छ प्रकाशित होने लगा, कमलिनी खिलने लगी और कुमुदिनी संकुचित होने लगी, सभी प्राणी अपने-अपने कार्योंमें लग गये॥ १०—१२॥

इस प्रकार पूर्वाह्न, अपराह्ण तथा मध्याह्नके विभागसे देवताओंके लिये हव्य, कव्य तथा भूतबलिका संवर्धन करते हुए प्रभाके स्वामी सूर्य चिरकालीन विरहाग्निसे सन्तप्त तथा वियोगिनी कामिनीसदृश प्राची तथा आग्नेयी दिशाओंको आश्वासन देकर एवं पुनः अग्नि-दिशाको छोड़कर बड़ी तेजीसे दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेका प्रयास करने लगे। किंतु जब वे सूर्य आगे नहीं बढ़ सके, तब उनका सारथि अनूरु (अरुण) कहने लगा—॥ १३—१५$^{१}/_{२}$॥

अनूरु बोला—हे सूर्य! अत्यधिक अभिमानी विन्ध्यगिरि आपका मार्ग रोककर आकाशमें स्थित हो गया है। वह सुमेरुगिरिसे स्पर्धा करता है और आपके द्वारा सुमेरुकी की जानेवाली परिक्रमा प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखता है॥ १६$^{१}/_{२}$॥

सूतजी बोले—अरुणका यह वचन सुनकर सूर्य सोचने लगे—अहो! आकाशका भी मार्ग अवरुद्ध हो गया, यह तो महान् आश्चर्य है। प्रायः कुमार्गपर चलनेवाला



पराक्रमी व्यक्ति क्या नहीं कर सकता॥ १७-१८॥

दैव बड़ा बलवान् होता है। आज मेरे घोड़ोंका मार्ग रोक दिया गया है। राहुकी भुजाओंमें जकड़े जानेपर जो क्षणभरके लिये भी नहीं रुकता था, वही मैं चिरकालसे अवरुद्ध मार्गवाला हो गया हूँ। बलवान् विधाता अब न जाने क्या करेगा?॥ १९$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो जानेसे समस्त लोक तथा लोकेश्वर कहीं भी शरण नहीं प्राप्त कर सके और वे अपने-

अपने कार्य सम्पादित करनेमें अक्षम हो गये॥ २०१/२॥

चित्रगुप्त आदि सभी लोग जिन सूर्यसे समयका ज्ञान करते थे, वे ही सूर्य आज विन्ध्यगिरिके द्वारा अवरुद्ध कर दिये गये। अहो! दैव भी कितना विपरीत हो जाता है॥ २११/२॥

जब स्पर्धाके कारण विन्ध्यने सूर्यको रोक दिया, तब स्वाहा-स्वधाकार नष्ट हो गये और सम्पूर्ण जगत् भी नष्टप्राय हो गया॥ २२१/२॥

पश्चिम तथा दक्षिणके प्राणी रात्रिके प्रभावमें थे और निद्रासे नेत्र बन्द किये हुए थे, साथ ही पूर्व तथा उत्तरके प्राणी सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीसे दग्ध हो रहे थे। प्रजाओंका विनाश होने लगा। बहुत-से प्राणी मर गये, कितने ही नष्ट हो गये, कितने भग्न हो गये, सम्पूर्ण जगत्में हाहाकार मच गया और श्राद्ध-तर्पणसे जगत् रहित हो गया। इन्द्रसहित सभी देवता व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे कि अब हमलोग क्या करें ?॥ २३—२५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'देवी-माहात्म्यके अन्तर्गत विन्ध्योपाख्यानवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

देवताओंका भगवान् शंकरसे विन्ध्यपर्वतकी वृद्धि रोकनेकी प्रार्थना करना और शिवजीका उन्हें भगवान् विष्णुके पास भेजना

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] तत्पश्चात् इन्द्र आदि सभी प्रधान देवगण ब्रह्माजीको आगे करके भगवान् शिवकी शरणमें गये॥ १॥

गिरिपर शयन करनेवाले तथा चन्द्रमासे सुशोभित मस्तकवाले देवदेव शिवको प्रणाम करके वे देवता उनके सम्मुख खड़े हो गये और सुन्दर महिमासे युक्त स्तोत्रोंसे उनका स्तवन करने लगे॥ २॥



देवता बोले—हे देव! हे गणाध्यक्ष! हे पार्वतीद्वारा पूजित चरणकमलवाले! हे भक्तजनको आठों सिद्धियोंकी विभूतियाँ प्रदान करनेवाले आपकी जय हो॥ ३॥

महामायारूपी स्थलीमें विलास करनेवाले, परमात्मा, वृषांक, अमरेश, कैलासवासी, अहिर्बुध्न्य, मान्य, मनु, मान प्रदान करनेवाले, अज, अनेक रूपोंवाले, अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, शम्भु, गणोंके नाथ, गिरिपर शयन करनेवाले, महान् ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा महाविष्णुके द्वारा स्तुत किये जानेवाले आप महादेवको नमस्कार है॥ ४—६॥

विष्णुके हृदयकमलमें निवास करनेवाले, महायोगमें रत रहनेवाले, योगसे प्राप्त होनेवाले, योगस्वरूप तथा योगियोंके अधीश्वरको नमस्कार है॥ ७॥

योगीश, योगोंके फलदाता, दीनोंको दान देनेमें तत्पर तथा दयासागरकी साक्षात् मूर्ति आपको नमस्कार है॥ ८॥

आर्त प्राणियोंका कष्ट निवारण करनेवाले, उग्र पराक्रमवाले, गुणमूर्ति, वृषध्वज, कालस्वरूप तथा कालोंके भी काल आपको नमस्कार है॥ ९॥

सूतजी बोले—यज्ञभोक्ता देवताओंके द्वारा इस प्रकार स्तुत किये गये वृषध्वज देवेश शिव उन श्रेष्ठ देवताओंसे हँसते हुए गम्भीर वाणीमें कहने लगे—॥ १०॥

श्रीभगवान् बोले—हे स्वर्गमें निवास करनेवाले! हे उत्तम पुरुषो! मैं [आपलोगोंकी] स्तुतिसे प्रसन्न हूँ। हे श्रेष्ठ देवताओ! मैं आप सभीका मनोरथ पूर्ण करूँगा॥ ११॥

देवता बोले—हे सर्वदेवेश! हे गिरिश! हे शशिशेखर! हे महाबल! आप दुःखी प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, अतएव हमारा भी कल्याण कीजिये॥ १२॥

हे पुण्यात्मन्! विन्ध्य नामक एक पर्वत है, जिसने सुमेरुगिरिसे द्वेष करके आकाशमें अत्यधिक ऊपर उठकर

सूर्यका मार्ग रोक दिया है और वह सबके लिये दुःखदायी बन गया है ॥ १३ ॥

हे ईशान! उसकी वृद्धिको रोक दीजिये और सबके लिये कल्याणकारी बन जाइये। सूर्यकी गति अवरुद्ध हो जानेपर लोगोंको कालज्ञान कैसे होगा? लोकमें स्वाहा तथा स्वधाकारके विलुप्त हो जानेपर हमें कौन शरण देगा? भयसे पीड़ित हम देवताओंके लिये एकमात्र शरणदाता तो केवल आप ही परिलक्षित हो रहे हैं। हे पार्वतीपते! हे देव! आप हमपर प्रसन्न होइये और हमारे कष्टका निवारण कीजिये ॥ १४-१५१/२ ॥

श्रीशिव बोले—हे देवताओ! उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोकनेकी शक्ति इस समय मुझमें नहीं है। अब हमलोग भगवान् लक्ष्मीकान्तसे यह समाचार कहेंगे ॥ १६१/२ ॥

वे कारणरूपधारी, समस्त कारणोंके कारण, आत्मारूप, गोविन्द भगवान् श्रीविष्णु हमलोगोंके पूज्य स्वामी हैं। अतएव उन्हींके पास जाकर हम कहेंगे और वे हमारा दुःख दूर करनेवाले होंगे ॥ १७-१८ ॥

इस प्रकार भगवान् शिवका कथन सुनकर इन्द्र तथा ब्रह्मासहित समस्त देवता शंकरजीको आगे करके थर-थर काँपते हुए शीघ्रतापूर्वक वैकुण्ठलोकके लिये प्रस्थित हुए ॥ १९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'रुद्रप्रार्थना' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ४ ॥

पाँचवाँ अध्याय

देवताओंका वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् विष्णुकी स्तुति करना

सूतजी बोले—वैकुण्ठमें जाकर उन देवताओंने कमलपत्रके समान नेत्रोंवाले, देवदेवेश्वर, रमाकान्त, जगद्गुरु भगवान् विष्णुको लक्ष्मीजीके साथ विराजमान देखा। वे गद्गद वाणीसे सत्कार करते हुए भक्तिपूर्वक स्तोत्र*से उनकी स्तुति करने लगे ॥ ११/२ ॥

देवता बोले—हे विष्णो! हे रमेश! हे आद्य! हे महापुरुष! हे पूर्वज! हे दैत्यशत्रु! हे कामजनक! हे सम्पूर्ण कामनाओंके फल प्रदान करनेवाले! हे महावराह! हे गोविन्द! हे महायज्ञस्वरूप! आपकी जय हो ॥ २-३ ॥

हे महाविष्णो! हे ध्रुवेश! हे आद्य! हे जगत्की उत्पत्तिके कारण! हे मत्स्यावतारमें वेदोंका उद्धार करनेके लिये आधारस्वरूप! हे सत्यव्रत! हे धराधीश! आप मत्स्यरूपधारीको नमस्कार है ॥ ४१/२ ॥

हे कच्छपावतार! हे दैत्यशत्रु! हे देवकार्यसमर्पक! आपकी जय हो। अमृतकी प्राप्ति करानेवाले हे ईश्वर! आप कूर्मरूपधारीको नमस्कार है ॥ ५१/२ ॥

आदिदैत्य हिरण्याक्षका संहार करनेके लिये सूकररूप-धारी हे ईश्वर! आपकी जय हो। पृथ्वीका उद्धार करनेहेतु

---

* जय विष्णो रमेशाद्य महापुरुष पूर्वज ॥
दैत्यारे कामजनक सर्वकामफलप्रद। महावराह गोविन्द महायज्ञस्वरूपक ॥
महाविष्णो ध्रुवेशाद्य जगदुत्पत्तिकारण। मत्स्यावतारे वेदानामुद्धाराधाररूपक ॥
सत्यव्रत धराधीश मत्स्यरूपाय ते नमः। जयाकूपार दैत्यारे सुरकार्यसमर्पक ॥
अमृताप्तिकरेशान कूर्मरूपाय ते नमः। जयादिदैत्यनाशार्थमादिसूकररूपधृक् ॥
मह्युद्धारकृतोद्योगकोलरूपाय ते नमः। नारसिंहं वपुः कृत्वा महादैत्यं ददार यः ॥
करजैर्वरदृप्ताङ्गं तस्मै नृहरये नमः। वामनं रूपमास्थाय त्रैलोक्यैश्वर्यमोहितम् ॥
बलिं सञ्छलयामास तस्मै वामनरूपिणे। दुष्टक्षत्रविनाशाय सहस्रकरशत्रवे ॥
रेणुकागर्भजाताय जामदग्न्याय ते नमः। दुष्टराक्षसपौलस्त्यशिरश्छेदपटीयसे ॥
श्रीमद्दाशरथे तुभ्यं नमोऽनन्तक्रमाय च। कंसदुर्योधनाद्यैश्च दैत्यैः पृथ्वीशलाञ्छनैः ॥
भाराक्रान्तां महीं योऽसावुज्जहार महाविभुः। धर्मं संस्थापयामास पापं कृत्वा सुदूरतः ॥
तस्मै कृष्णाय देवाय नमोऽस्तु बहुधा विभो। दुष्टयज्ञविघाताय पशुहिंसानिवृत्तये ॥
बौद्धरूपं दधौ योऽसौ तस्मै देवाय ते नमः। म्लेच्छप्रायेऽखिले लोके दुष्टराजन्यपीडिते ॥
कल्किरूपं समादध्यौ देवदेवाय ते नमः। दशावतारास्ते देव भक्तानां रक्षणाय वै ॥
दुष्टदैत्यविघाताय तस्मात्त्वं सर्वदुःखहृत्। जय भक्तार्तिनाशाय धृतं नारीजलात्मसु ॥
रूपं येन त्वया देव कोऽन्यस्त्वत्तो दयानिधिः। (श्रीमद्देवीभा० १०।५।२—१७)

उद्योगपरायण आप वराहरूपधारीको नमस्कार है॥ ६१/२॥

नृसिंहका रूप धारणकर जिन्होंने वरदानसे उन्मत्त अंगोंवाले महान् दैत्य हिरण्यकशिपुको अपने नखोंसे विदीर्ण कर डाला, उन नृसिंहभगवान्‌को नमस्कार है॥ ७१/२॥

वामनरूप धारणकर जिन्होंने त्रिलोकीके ऐश्वर्यसे मोहित राजा बलिको छला था, उन वामनरूपधारीको नमस्कार है॥ ८१/२॥

दुष्ट क्षत्रियोंका संहार करनेवाले, कार्तवीर्य सहस्रार्जुनके शत्रु तथा रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न आप जमदग्निपुत्र परशुरामको नमस्कार है॥ ९१/२॥

पुलस्त्यनन्दन दुराचारी राक्षस रावणके सिर काटनेमें परम पटु, अनन्त पराक्रमवाले आप दशरथपुत्र श्रीमान् रामको नमस्कार है॥ १०१/२॥

राजाओंके लिये कलंकस्वरूप कंस, दुर्योधन आदि दैत्योंके द्वारा भाराक्रान्त पृथ्वीका जिन महाप्रभुने उद्धार किया तथा पापोंका अन्त करके जिन्होंने धर्मकी स्थापना की, हे विभो! उन आप श्रीकृष्णभगवान्‌को बार-बार नमस्कार है॥ ११-१२१/२॥

दुष्ट यज्ञोंको विनष्ट करने तथा पशुहिंसा रोकनेके लिये जिन्होंने बौद्धरूप धारण किया; उन आप बुद्धदेवको नमस्कार है॥ १३१/२॥

सम्पूर्ण जगत्‌में म्लेच्छोंका बाहुल्य हो जानेपर तथा दुष्ट राजाओंद्वारा प्रजाओंको पीड़ित किये जानेपर आपने कल्किरूप धारण किया था; उन आप देवाधिदेवको नमस्कार है॥ १४१/२॥

हे देव! आपके ये दसों अवतार भक्तोंकी रक्षाके लिये तथा दुष्ट राक्षसोंके विनाशके लिये ही हुए हैं, अतएव आप सभी प्राणियोंका दुःख हरनेवाले हैं॥ १५१/२॥

भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिये आपने मोहिनी स्त्री तथा जल-जन्तुओंका रूप धारण किया, अतएव हे देव! आपके अतिरिक्त दूसरा कौन दयासागर हो सकता है? आपकी जय हो॥ १६१/२॥

इस प्रकार पीताम्बरधारी देवदेवेश श्रीहरिका स्तवन करके उन श्रेष्ठ देवताओंने भक्तिपूर्वक उन्हें साष्टांग प्रणाम किया॥ १७१/२॥

उनकी स्तुति सुनकर गदाधर पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु सभी देवताओंको हर्षित करते हुए बोले—॥ १८१/२॥

श्रीभगवान् बोले—हे देवताओ! मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, आपलोग शोकका त्याग कर दें। मैं आपलोगोंके इस परम दुःसह कष्टको दूर करूँगा॥ १९१/२॥



हे देवताओ! आपलोग मुझसे परम दुर्लभ वर माँग लीजिये; [आपलोगोंकी] इस स्तुतिके प्रभावसे अति प्रसन्न होकर मैं वर प्रदान करूँगा॥ २०१/२॥

जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर मुझमें दृढ़ भक्ति रखकर इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसे कभी शोक स्पर्श नहीं कर सकेगा। हे देवताओ! दरिद्रता तथा दुर्भाग्य उसके घरपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। विघ्न-बाधाएँ, वेताल, ग्रह तथा ब्रह्मराक्षस उसे पीड़ित नहीं कर सकते। वात-पित्त-कफसम्बन्धी रोग भी उसे नहीं होंगे। उसकी अकाल-मृत्यु कभी नहीं होगी और उसकी सन्तानें दीर्घ कालतक जीवित रहेंगी। जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उस मनुष्यके घरमें सुख आदि सभी भोग-साधन विद्यमान रहेंगे। अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन, यह स्तोत्र सभी अर्थोंका परम साधन करनेवाला है॥ २१—२५॥

इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मनुष्योंके लिये भोग तथा मोक्ष उनसे दूर नहीं रहेंगे। हे देवताओ! आपलोगोंको जो कष्ट हो, उसे आप निःसंकोच बताइये, मैं उसे दूर करूँगा; इसमें आपलोगोंको अणुमात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २६१/२॥

इस प्रकार श्रीभगवान्‌का वचन सुनकर सभी देवताओंका मन प्रसन्नतासे भर गया और वे पुनः वृषाकपि भगवान् विष्णुसे कहने लगे॥ २७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'श्रीविष्णुके द्वारा देवताओंको वरप्रदान' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

भगवान् विष्णुका देवताओंको काशीमें अगस्त्यजीके पास भेजना, देवताओंकी अगस्त्यजीसे प्रार्थना

सूतजी बोले—[हे ऋषियो!] लक्ष्मीकान्त श्रीविष्णुके वचनसे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये। उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर उन भगवान्‌से पुनः इस प्रकार कहा—॥ १ ॥

देवता बोले—हे देवदेव! हे महाविष्णो! हे सृजन-पालन-संहारके कारण! हे विष्णो! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग रोक दिया है। सूर्यका मार्ग अवरुद्ध हो जानेके कारण हमलोगोंको यज्ञभाग नहीं मिल पा रहा है। अतएव हे महाविभो! अब हमलोग क्या करें तथा कहाँ जायँ?॥ २-३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे उत्तम देवगण! सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करनेवाली, आदिस्वरूपिणी तथा कुलकी अभिवृद्धि करनेवाली जो भगवती अम्बा हैं, उन्हींके उपासक परम तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजी हैं। वे इस समय वाराणसीमें विद्यमान हैं। वे अगस्त्यमुनि ही उस विन्ध्यगिरिके तेजको निरस्त करनेमें समर्थ होंगे। हे देवताओ! मोक्षपद प्रदान करनेवाली उस काशीपुरीमें जाकर परम ओजस्वी द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यजीको प्रसन्न करके याचना कीजिये॥ ४—६ ॥

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] इस प्रकार भगवान् विष्णुसे आदेश प्राप्त करके वे सभी श्रेष्ठ देवता आश्वस्त होकर नम्रतापूर्वक काशीपुरीके लिये प्रस्थित हुए॥ ७ ॥

क्षणभरमें पावन काशीपुरीमें पहुँचकर वे श्रेष्ठ देवगण मणिकर्णिकातीर्थमें भक्तिपूर्वक सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करके पुनः देवतर्पण तथा पितृतर्पण करनेके बाद विधिपूर्वक दान देकर मुनिवर अगस्त्यके परम पवित्र आश्रमपर आये, जो शान्तस्वभाववाले हिंसक पशुओंसे व्याप्त था; वहाँ नानाविध वृक्ष उगे हुए थे। वह आश्रम मयूर, सारस, हंस, चक्रवाक, महावराह, शूकर, व्याघ्र, सिंह, मृग, काले हिरन, गैंडा तथा शरभ आदि जन्तुओंसे परिपूर्ण था। सभी देवता परम कान्तिसे सम्पन्न मुनिवर अगस्त्यके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े और बार-बार उन्हें प्रणाम करने लगे॥ ८—१२ ॥

देवता बोले—हे द्विजगणोंके स्वामी! हे मान्य! हे पूज्य! हे भूसुर! हे वातापीका बल नष्ट करनेवाले तथा घटसे प्रकट होनेवाले आपको नमस्कार है, आपकी जय हो॥ १३ ॥ हे लोपामुद्रापते! हे श्रीमन्! हे मित्रावरुणसे आविर्भूत! हे सम्पूर्ण विद्याओंके भण्डार! हे शास्त्रयोनि अगस्त्यमुने! आपको नमस्कार है॥ १४ ॥ जिनके उदय होनेपर समुद्रोंका जल प्रसन्न तथा विमल हो जाता है, उन आपको नमस्कार स्वीकार हो॥ १५ ॥ काशपुष्पको विकसित करनेवाले, लंकावास (श्रीराम)-के परम प्रिय, जटासमूहसे सम्पन्न तथा शिष्योंसे निरन्तर आवृत आपको नमस्कार है॥ १६ ॥ समस्त देवताओंसे स्तुत होनेवाले हे महामुने! हे गुणनिधे! वरिष्ठ, पूज्य तथा भार्यासहित आपको नमस्कार है, आपकी जय हो*॥ १७ ॥

हे स्वामिन्! आप हमपर अनुग्रह करें; हम आपकी शरणको प्राप्त हुए हैं। हे परमद्युते! विन्ध्यगिरिद्वारा उत्पन्न किये गये दुःसह कष्टसे हमलोग बहुत पीड़ित हैं॥ १८ ॥

देवताओंके इस प्रकार स्तुति करनेपर परम धर्मनिष्ठ द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनि हँसते हुए प्रसन्नतासे युक्त वाणीमें कहने लगे—॥ १९ ॥

मुनि बोले—हे देवताओ! आपलोग परम श्रेष्ठ, त्रिलोकीके स्वामी, लोकपाल, महान् आत्मावाले तथा निग्रह-अनुग्रह करनेमें सक्षम हैं॥ २० ॥

जो अमरावतीपुरीके स्वामी हैं, वज्र ही जिनका शस्त्र

* जय द्विजगणाधीश मान्य पूज्य धरासुर। वातापीबलनाशाय नमस्ते कुम्भयोनये॥
लोपामुद्रापते श्रीमन्मित्रावरुणसम्भव। सर्वविद्यानिधेऽगस्त्य शास्त्रयोने नमोऽस्तु ते॥
यस्योदये प्रसन्नानि भवन्त्युज्ज्वलभांज्यपि। तोयानि तोयराशीनां तस्मै तुभ्यं नमोऽस्तु ते॥
काशपुष्पविकासाय लङ्कावासप्रियाय च। जटामण्डलयुक्ताय सशिष्याय नमोऽस्तु ते॥
जय सर्वामरस्तव्य गुणराशे महामुने। वरिष्ठाय च पूज्याय सस्त्रीकाय नमोऽस्तु ते॥ (श्रीमद्देवीभा० १०।६।१३—१७)

है, आठों सिद्धियाँ जिनके द्वारपर विराजमान रहती हैं तथा जो मरुद्गणोंके नायक हैं—वे ही ये इन्द्रदेव हैं॥ २१॥

सर्वदा हव्य-कव्यका वहन करनेवाले, वैश्वानर तथा कृशानु नामसे प्रसिद्ध और सभी देवताओंके मुखस्वरूप जो ये अग्निदेव हैं, उनके लिये कौन-सा कार्य दुष्कर है?॥ २२॥

हे देवताओ! हाथमें दण्ड लेकर सदा व्यस्त रहनेवाले, सभी प्राणियोंके कर्मोंके साक्षीस्वरूप तथा राक्षसगणोंके अधिपति भयंकर यमदेवके लिये कौन-सा कार्य सुकर नहीं है? तथापि हे देवताओ! मेरे सामर्थ्यसे यदि आपका कोई कार्य सिद्ध होनेवाला हो तो आप उसे बताइये। हे देवगण! मैं उसे अवश्य करूँगा; इसमें सन्देह नहीं है॥ २३-२४॥

मुनिवर अगस्त्यका वचन सुनकर वे श्रेष्ठ देवता आश्वस्त हो गये और अधीर होकर विनम्रतापूर्वक अपने कार्यके विषयमें बताने लगे—हे महर्षे! विन्ध्यपर्वतने सूर्यका मार्ग निरुद्ध कर दिया है और तीनों लोकोंको आच्छादित कर रखा है, जिससे सर्वत्र हाहाकार मच गया है तथा सभी प्राणियोंमें अचेतनता उत्पन्न हो गयी है॥ २५-२६॥

हे मुने! आप अपने तपोबल तथा प्रतापसे उस विन्ध्यगिरिकी वृद्धिको रोक दीजिये। हे अगस्त्य! आपके तेजसे वह अवश्य ही नम्र हो जायगा, इस समय आपको हमारा इतना ही कार्य सम्पन्न करना है॥ २७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'अगस्त्याश्वासनवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

अगस्त्यजीकी कृपासे सूर्यका मार्ग खुलना

सूतजी बोले—[हे मुनियो!] देवताओंका यह वचन सुनकर द्विजश्रेष्ठ अगस्त्यमुनिने उनसे कहा—मैं आपलोगोंका यह कार्य करूँगा॥ १॥

हे द्विजवरो! कुम्भसे आविर्भूत अगस्त्यमुनिके द्वारा देवकार्य करना स्वीकार कर लिये जानेपर समस्त देवता अत्यन्त हर्षित हो उठे॥ २॥

मुनिके वचनसे आश्वस्त होकर जब वे देवता अपने-अपने स्थानोंको चले गये तब श्रीमान् मुनिवर अगस्त्यने अपनी पत्नी राजकन्या लोपामुद्रासे कहा—॥ ३॥

हे राजपुत्रि! विन्ध्यगिरिने सूर्यके मार्गका अवरोध करके महान् अनर्थकारी विघ्न उपस्थित कर दिया है॥ ४॥

मुझे इसका कारण ज्ञात हो गया। काशीको उद्देश्य करके तत्त्वदर्शी मुनियोंने जो कहा है, वह पुरातन वाक्य मुझे स्मरण हो आया कि मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले प्राणियोंको अविमुक्त काशीक्षेत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये, किंतु काशीवास करनेवाले सत्पुरुषोंके समक्ष भी विघ्न आते हैं। हे प्रिये! काशीमें निवास कर रहे मेरे समक्ष भी वही बाधा उपस्थित हुई॥ ५-६ १/२॥

अपनी उन भार्यासे ऐसा कहकर परम तपस्वी मुनि अगस्त्य मणिकर्णिकाकुण्डमें स्नान करके तथा भगवान् विश्वनाथ और दण्डपाणिका सम्यक् पूजन करके कालभैरवका दर्शन करने वहाँ आये॥ ७-८॥

[वहाँ पहुँचकर वे कहने लगे—]* हे भक्तोंका भय दूर करनेवाले महाबाहो कालराज! आप काशीपुरीके अधिपति हैं, मुझे इस पुरीसे दूर क्यों कर रहे हैं?॥ ९॥ आप तो काशीमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी बाधाओंका नाश करनेवाले तथा भक्तजनोंके रक्षक हैं, तो फिर हे भक्तोंका दुःख दूर करनेवाले स्वामिन्! मुझे क्यों दूर कर रहे हैं?॥ १०॥ मैंने दूसरोंके लिये कभी निन्दित

* कालराज महाबाहो भक्तानां भयहारक। कथं दूरयसे पुर्याः काशीपुर्यास्त्वमीश्वरः॥
त्वं काशीवासविघ्नानां नाशको भक्तरक्षकः। मां किं दूरयसे स्वामिन् भक्तार्तिविनिवारक॥
परापवादो नोक्तो मे न पैशुन्यं न चानृतम्। केन कर्मविपाकेन काश्या दूरं करोषि माम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १०।७।९—११)

वचन नहीं कहा, चुगली नहीं की तथा मिथ्या-भाषण नहीं किया, तो मेरे किस कर्मके परिणामस्वरूप आप मुझे काशीसे दूर कर रहे हैं? ॥ ११ ॥

उन कालभैरवसे ऐसी प्रार्थना करके कुम्भयोनि अगस्त्यमुनि समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले साक्षीविनायकके पास गये ॥ १२ ॥

उन साक्षीविनायकका दर्शन, पूजन तथा स्तवन करके लोपामुद्रापति श्रीमान् अगस्त्य उस पुरीसे दक्षिण दिशाकी ओर निकल पड़े ॥ १३ ॥

काशीत्यागसे सन्तप्त महान् भाग्यशाली अगस्त्यमुनि प्रतिक्षण काशीका स्मरण करते हुए अपने तपोबलरूपी विमानपर चढ़कर अपनी भार्याके साथ आधे निमेषमें ही वहाँ पहुँच गये और मुनिने देखा कि सामने विन्ध्यगिरिने अत्यन्त ऊँचे उठकर आकाशको आच्छादित कर रखा है ॥ १४-१५ ॥

मुनिको समक्ष उपस्थित देखकर विन्ध्यपर्वत तेजीसे काँपने लगा। वह पर्वत पूर्णरूपसे अभिमानरहित होकर कुछ कहनेके विचारसे उनके सम्मुख पृथ्वीकी भाँति विनयावनत हो भक्ति-भावनासे युक्त होकर दण्डकी भाँति



भूमिपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करने लगा ॥ १६१/२ ॥

तब उस विन्ध्य नामक महागिरिको उस समय नम्र शिखरवाला देखकर प्रसन्न मुखवाले अगस्त्यमुनिने विन्ध्याचलसे कहा—हे वत्स! जबतक मैं लौटकर आता हूँ तबतक तुम इसी प्रकार स्थित रहो; क्योंकि हे पुत्र! मैं तुम्हारे उच्च शिखरपर चढ़नेमें असमर्थ हूँ ॥ १७-१८१/२ ॥

इस प्रकार कहकर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान करनेकी इच्छावाले अगस्त्यमुनि उस विन्ध्यके शिखरोंपर चढ़कर क्रमशः नीचे पृथ्वीपर उतर आये और वहाँसे दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े। मार्गमें श्रीशैलका अवलोकन करते हुए मलयाचलपर आकर आश्रममें निवास करने लगे ॥ १९-२०१/२ ॥

मनुके द्वारा पूजित वे भगवती भी वहीं विन्ध्यगिरिपर आ गयीं। हे शौनक! वे ही देवी समस्त लोकोंमें विन्ध्यवासिनी नामसे विख्यात हो गयीं ॥ २११/२ ॥

सूतजी बोले—हे मुनियो! इन देवीका चरित्र परम पावन तथा शत्रुओंका नाश करनेवाला है। अगस्त्य तथा विन्ध्यगिरिका यह उपाख्यान समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। यह आख्यान राजाओंको विजय दिलाता है तथा द्विजोंके ज्ञानकी वृद्धि करता है। यह वैश्योंके लिये धन-धान्यदायक तथा शूद्रोंके लिये सुखप्रद है। इस आख्यानके भक्तिपूर्वक एक बार श्रवण करनेसे धर्म चाहनेवाला धर्म प्राप्त करता है, धनकी अभिलाषा रखनेवाला धन प्राप्त कर लेता है और सकाम पुरुष अपने सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ २२—२४१/२ ॥

इस प्रकार स्वायम्भुव मनुने भक्तिपूर्वक देवीकी आराधना करके अपने मन्वन्तरपर्यन्त पृथ्वीका राज्य प्राप्त किया। हे सौम्य! मन्वन्तरसे सम्बन्ध रखनेवाले भगवती श्रीदेवीके इस आद्य चरित्रका वर्णन मैंने कर दिया; अब आगे किस प्रसंगका वर्णन आपसे करूँ? ॥ २५-२६ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-संहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'विन्ध्यवृद्ध्यवरोधवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ७ ॥

आठवाँ अध्याय

स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नामक मनुओंका वर्णन

शौनकजी बोले—[हे सूतजी!] यह तो आपने आदिमन्वन्तरका उत्तम उपाख्यान कहा, अब दिव्य तेजवाले अन्य मनुओंकी उत्पत्तिका वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी बोले—इसी प्रकार भगवतीके तात्त्विक रहस्योंको पूर्णरूपेण जाननेवाले परम ज्ञानी देवर्षि नारदजीने भी आद्य स्वायम्भुव मनुकी उत्पत्तिका प्रसंग सुनकर क्रमशः अन्य मनुओंके प्रादुर्भावके विषयमें भगवान् नारायणसे पूछा था॥ २$^{१}/_{२}$॥

नारदजी बोले—हे सनातन! मनुओंकी उत्तम उत्पत्तिके विषयमें मुझे भलीभाँति बताइये॥ ३॥

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! मैंने इन आद्य स्वायम्भुव मनुका वर्णन कर दिया, जिन्होंने देवीकी उपासनासे निष्कण्टक राज्य प्राप्त किया। उन मनुके प्रियव्रत तथा उत्तानपाद नामक महान् तेजस्वी दो पुत्र हुए। राज्यका भलीभाँति पालन करनेवाले वे दोनों भूलोकमें अतिप्रसिद्ध हुए॥ ४-५॥

विद्वानोंने स्वारोचिष मनुको द्वितीय मनु कहा है। अमित पराक्रमवाले वे श्रीमान् स्वारोचिष मनु राजा प्रियव्रतके पुत्र थे॥ ६॥

सभी प्राणियोंका हित करनेवाले वे स्वारोचिष नामक मनु यमुनाके तटपर निवास करने लगे। वे सूखे पत्तोंके आहारपर रहकर एक महान् व्रतीके रूपमें तपस्या करनेमें संलग्न हो गये और भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति बनाकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करने लगे॥ ७-८॥

हे तात! इस प्रकार वनमें रहकर बारह वर्षोंतक तपस्या करनेवाले उन मनुके समक्ष हजारों सूर्योंके समान तेजवाली देवी प्रकट हो गयीं॥ ९॥

तत्पश्चात् उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उन देवेश्वरीने उस स्तवराजसे प्रसन्न होकर स्वारोचिष मनुको सम्पूर्ण मन्वन्तरका आधिपत्य प्रदान कर दिया। उसी समयसे भगवती जगद्धात्रीको तारिणी मानकर उनकी उपासना करनेकी प्रथा चल पड़ी॥ १०$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार स्वारोचिष मनुने उन तारिणीदेवीकी उपासनासे समस्त शत्रुओंसे रहित राज्य प्राप्त कर लिया। इसके अनन्तर वे ऐश्वर्यसम्पन्न मनु विधिपूर्वक धर्मकी स्थापना करके पुत्रोंके साथ अपना राज्य भोगकर अन्तमें अपने मन्वन्तरका अधिकार त्यागकर स्वर्गलोक चले गये॥ ११-१२$^{१}/_{२}$॥

इसके बाद प्रियव्रतके उत्तम नामक पुत्र तृतीय मनु हुए। उन्होंने गंगाके तटपर रहकर एकान्तमें निरन्तर भगवतीके वाग्भव मन्त्रका जप करते हुए तीन वर्षोंतक तप करके देवीका अनुग्रह प्राप्त किया॥ १३-१४॥

भक्तिपूर्ण मनसे उत्तम स्तोत्रोंके द्वारा भगवतीकी स्तुति करके उन्होंने निष्कंटक राज्य तथा दीर्घजीवी सन्तान प्राप्त की॥ १५॥

राज्यसे प्राप्त होनेवाले सुखोंका भोग करके तथा युग-धर्मोंका पालन करके वे अन्य श्रेष्ठ राजर्षियोंद्वारा प्राप्त पदपर पहुँच गये॥ १६॥

तामस नामवाले चौथे मनु प्रियव्रतके पुत्र थे। नर्मदा नदीके दक्षिणी तटपर गुह्य कामबीज मन्त्रका सतत जप करते हुए उन्होंने जगद्व्यापिनी महेश्वरीकी आराधना की। चैत्र तथा आश्विनमासके नवरात्रमें उपासनाके द्वारा उन्होंने कमलके समान नेत्रोंवाली अनुपमेय देवेश्वरीको सन्तुष्ट किया॥ १७-१८$^{१}/_{२}$॥

अतिश्रेष्ठ स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके उनकी कृपा प्राप्तकर तामस मनुने निःशंक होकर निष्कण्टक विशाल राज्यका भोग किया॥ १९$^{१}/_{२}$॥

अपनी भार्यासे दस ओजस्वी, शक्तिशाली तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न करके वे उत्तम लोकको प्राप्त हुए॥ २०$^{१}/_{२}$॥

तामस मनुके अनुज रैवतको पाँचवाँ मनु कहा गया है। यमुनाके तटपर रहकर उन्होंने परम वाक्-शक्ति तथा प्रतिष्ठा प्रदान करनेवाले एवं साधकोंके लिये आश्रयस्वरूप

कामबीजसंज्ञक मन्त्रका जप किया॥ २१-२२॥

भगवतीकी इस आराधनासे उन्होंने उत्तम समृद्धिसे सम्पन्न अपना राज्य तथा जगत्‌में सभी सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला अप्रतिहत बल प्राप्त कर लिया। उन्होंने शुभ तथा पुत्र-पौत्रसे सम्पन्न सन्तति प्राप्त की। पुनः लोकमें धर्मकी स्थापना करके, राज्यकी व्यवस्था करके तथा राज्य-सुख भोगकर अप्रतिम शूर उन रैवत मनुने उत्तम इन्द्रपुरीके लिये प्रस्थान किया॥ २३-२४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'मनुओंकी उत्पत्तिका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

चाक्षुष मनुकी कथा, उनके द्वारा देवीकी आराधनाका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] अब आप जगदम्बाका अद्भुत तथा उत्तम माहात्म्य और अंगके पुत्र मनुने जिस तरहसे श्रेष्ठ राज्य प्राप्त किया था, उसे सुनिये॥ १॥

राजा अंगके उत्तम पुत्र चाक्षुष छठें मनु हुए। वे सुपुलह नामक ब्रह्मर्षिकी शरणमें गये॥ २॥

[उन्होंने सुपुलहसे कहा—] शरणागतोंके कष्टोंको दूर करनेवाले हे ब्रह्मर्षे! मैं आपकी शरणमें आया हूँ। हे [illegible]! मुझ सेवकको ऐसी शिक्षा दीजिये; जिससे मैं 'श्री' प्राप्त कर सकूँ, पृथ्वीपर मेरा अखण्ड आधिपत्य हो जाय, मेरी भुजाओंमें अप्रतिहतबल हो जाय तथा अस्त्र-शस्त्रके प्रयोगमें मैं निपुण तथा समर्थ हो जाऊँ, मेरी सन्तानें चिरकालतक जीवित रहें, मैं अखण्डित उत्तम आयुवाला हो जाऊँ तथा आपके उपदेशसे अन्तमें मुझे मोक्षलाभ हो जाय॥ ३—५॥

उन चाक्षुष मनुका यह वचन जब मुनि पुलहके कानमें पड़ा तब उन श्रीमान्‌ने कहा—हे राजन्! कानोंको महान् सुख प्रदान करनेवाली मेरी बात सुनिये—देवीकी आराधना सबसे बढ़कर है। इस समय आप कल्याणी जगदम्बाकी उपासना कीजिये; उन्हींके अनुग्रहसे आपको यह सब सुलभ हो जायगा॥ ६-७॥

चाक्षुष बोले—उन देवीकी परम पावन आराधनाका क्या स्वरूप है तथा उसे किस प्रकार करना चाहिये? इसे आप मेरे ऊपर दया करके बतायें॥ ८॥

मुनि बोले—हे राजन्! देवीके परम सनातन पूजनके विषयमें सुनिये। देवीके अव्यक्त वाग्भव मन्त्रका सतत जप करना चाहिये। इस मन्त्रको त्रिकाल जपनेवाला मनुष्य भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। हे राजनन्दन! इस वाग्भव बीजसे बढ़कर अन्य कोई बीजमन्त्र नहीं है॥ ९-१०॥

जप करनेसे यह मन्त्र श्रेष्ठ सिद्धियाँ प्रदान करता है और वीर्य तथा बलकी वृद्धि करता है। इस मन्त्रका जप करके ही ब्रह्माजी महाबली तथा सृजन करनेकी क्षमतावाले बन गये। हे राजन्! इसी बीजका जप करके भगवान् विष्णु सृष्टिपालक कहे गये तथा इसीके जपसे भगवान् शंकर जगत्‌का संहार करनेवाले हुए॥ ११-१२॥

इन्हींका आश्रय लेकर अन्यान्य लोकपाल भी निग्रह तथा अनुग्रह करनेमें समर्थ और बल तथा वीर्यसे सम्पन्न हुए हैं॥ १३॥

हे राजन्य! इसी प्रकार आप भी महेश्वरी जगदम्बाकी सम्यक् आराधना करके थोड़े ही समयमें महान् समृद्धि प्राप्त कर लेंगे॥ १४॥

इस प्रकार मुनिश्रेष्ठ पुलहसे उपदिष्ट होकर वे अंगपुत्र चाक्षुष मनु तप करनेके लिये विरजानदीके तटपर गये॥ १५॥

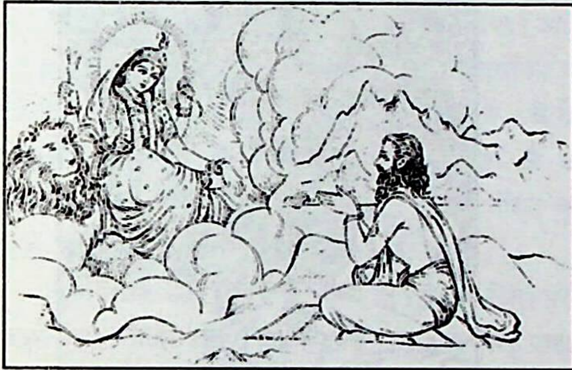
वे ऐश्वर्यशाली राजा चाक्षुष जीर्ण-शीर्ण पत्तोंके आहारपर रहकर भगवतीके वाग्भव बीजके जपमें निरन्तर रत रहते हुए उग्र तपस्या करने लगे॥ १६॥

वे प्रथम वर्षमें पत्तोंके आहारपर, दूसरे वर्षमें जल पीकर और तीसरे वर्षमें केवल वायुका आहार करते हुए

ठूँठ वृक्षकी भाँति अविचल स्थित रहे॥ १७॥

आहार छोड़कर बारह वर्षोंतक वाग्भव बीजका निरन्तर जप करते हुए राजा चाक्षुषकी बुद्धि परम पवित्र हो गयी॥ १८॥

इस प्रकार देवीके उस परम पवित्र मन्त्रका एकान्तमें जप करते हुए उन राजाके समक्ष जगन्माता परमेश्वरी भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। किसीसे भी पराभूत न होनेवाली तेजस्विनी सर्वदेवमयी भगवती प्रसन्न होकर ललितवाणीमें उन अंगपुत्र चाक्षुषसे कहने लगीं—॥ १९-२०॥



देवी बोलीं—हे पृथ्वीपाल! तुमने अपने मनमें जो भी श्रेष्ठ वर सोचा हो, उसे बताओ, तुम्हारे तपसे परम सन्तुष्ट मैं उसे अवश्य दूँगी॥ २१॥

चाक्षुष बोले—हे देवदेवेश्वरि! हे देवपूजिते! मैं जिस मनोवांछित वरके लिये आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ, उसे आप अन्तर्यामी स्वरूपवाली होनेके कारण भलीभाँति जानती हैं, तथापि हे देवि! मेरे सौभाग्यसे यदि आपका दर्शन हो गया है तो मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि आप मुझे मन्वन्तरसे सम्बन्धित राज्य प्रदान करें॥ २२-२३॥

देवी बोलीं—हे नृपश्रेष्ठ! इस मन्वन्तरका राज्य मैंने तुम्हें दे दिया, तुम्हारे पुत्र भी अत्यधिक गुणवान् तथा महान् बलशाली होंगे। तुम्हारा राज्य निष्कंटक होगा तथा अन्तमें तुम्हें निश्चितरूपसे मोक्ष मिलेगा॥ २४ १/२॥

इस प्रकार उन चाक्षुष मनुके द्वारा भक्तिपूर्वक स्तुत वे देवी उन्हें अत्यन्त उत्तम वर प्रदान करके शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ २५ १/२॥

वे राजा चाक्षुष मनु भी भगवतीकी कृपासे उनका आश्रय प्राप्तकर छठें मनुके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और वे सम्मान्य मनु सार्वभौम सुखोंसे सम्पन्न हो गये। उनके पुत्र बलवान्, कार्यभार सँभालनेमें दक्ष, देवीभक्त, शूरवीर, महान् बलशाली, पराक्रमी, सर्वत्र समादर प्राप्त करनेवाले तथा महान् राज्यसुखके अधिष्ठान थे॥ २६—२८॥

इस प्रकार प्रभुतासम्पन्न वे चाक्षुष मनु भगवतीकी आराधनाके प्रभावसे मनुश्रेष्ठके रूपमें प्रतिष्ठित हुए और अन्तमें देवीके परम धामको प्राप्त हुए॥ २९॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'देवीचरित्रमें चाक्षुषमनुवृत्तवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

वैवस्वत मनुका भगवतीकी कृपासे मन्वन्तराधिप होना, सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथा

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] राजा वैवस्वत सातवें मनु कहे गये हैं। समस्त राजाओंमें मान्य तथा दिव्य आनन्दका भोग करनेवाले वे श्राद्धदेव भी कहे जाते हैं॥ १॥

वे वैवस्वत मनु पराम्बा भगवतीकी तपस्या करके उनके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति बन गये॥ २॥

आठवें मनु भूलोकमें सावर्णि नामसे विख्यात हुए। पूर्वजन्ममें देवीकी आराधना करके तथा उनसे वरदान प्राप्तकर वे मन्वन्तरके अधिपति हो गये। वे सभी राजाओंसे पूजित, धीर, महापराक्रमी तथा देवीभक्तिपरायण थे॥ ३-४॥

नारदजी बोले—उन सावर्णि मनुने पूर्वजन्ममें भगवतीकी पार्थिव मूर्तिकी किस प्रकार आराधना की थी; इसे मुझे बतानेकी कृपा करें॥ ५॥

श्रीनारायण बोले—स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंशमें उत्पन्न सुरथ नामसे विख्यात एक राजा हुए। वे महान् बल

तथा पराक्रमसे सम्पन्न, गुणग्राही, धनुर्धर, माननीय, श्रेष्ठ, कवि, कुशल, धनसंग्रह करनेवाले तथा याचकोंको दान देनेवाले, शत्रुओंका दमन करनेवाले, मानी, सभी अस्त्रोंके संचालनमें परम दक्ष तथा बलवान् थे॥ ६-७१/२ ॥

एक बार कोलाविध्वंसी* नामक क्षत्रिय राजा उनके शत्रु हो गये। महान् बलशाली शत्रुओंने सेनाके साथ चढ़ाई करके सम्मानके धनी उन राजा सुरथकी नगरीको घेर लिया॥ ८-९ ॥

तत्पश्चात् शत्रुओंका विनाश करनेवाले वे राजा सुरथ सेनासे सुसज्जित होकर अपने नगरसे निकल पड़े॥ १० ॥

वे राजा सुरथ युद्धमें शत्रुओंके द्वारा जीत लिये गये। उनके अमात्यों तथा मन्त्रियोंने अवसर पाकर उनके कोषमें स्थित सम्पूर्ण धनका पूरी तरहसे हरण कर लिया। इससे राजाको महान् सन्ताप हुआ। वे परम तेजस्वी राजा सुरथ नगरसे निष्कासित कर दिये गये॥ ११-१२ ॥

तत्पश्चात् वे एक अश्वपर चढ़कर आखेट करनेके बहाने वनमें गये और भ्रमित चित्तवाले वे उस निर्जन वनमें अकेले घूमने लगे॥ १३ ॥

पुनः शान्त स्वभाववाले पशुओंसे युक्त तथा मुनिशिष्योंसे



परिपूर्ण [सुमेधा] मुनिके आश्रममें पहुँच जानेपर उनके चित्तको शान्ति मिली॥ १४ ॥

उन राजाने दूरदृष्टिवाले मुनिवर सुमेधाऋषिके परम रमणीक आश्रममें कुछ कालतक निवास किया॥ १५ ॥

एक दिन राजा सुरथ मुनिके पूजनकृत्यकी समाप्तिपर शीघ्र उनके पास पहुँचकर प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक उनसे पूछने लगे—॥ १६ ॥

हे मुने! मेरा मन अत्यधिक मानसिक कष्टके कारण सदा सन्तप्त रहता है। हे भूदेव! इस दुःखने सभी तत्त्वोंके ज्ञाता होनेपर भी मुझे अज्ञानी-सा बना दिया है। मैं शत्रुओंसे पराजित कर दिया गया हूँ तथा राज्यच्युत हो गया हूँ, फिर भी उनके प्रति मेरे मनमें बार-बार ममता उत्पन्न हो रही है॥ १७-१८ ॥



हे मुने! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अब तो मैं एकमात्र आपसे ही अनुग्रहकी आशा करता हूँ। इस कष्टके निवारणका कोई उपाय बताइये॥ १९ ॥

मुनि बोले—हे राजन्! आप अत्यन्त विस्मयकारी, अनुपम तथा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले श्रेष्ठ देवी-माहात्म्यका श्रवण कीजिये॥ २० ॥

वे विश्वमयी महामाया ब्रह्मा, विष्णु तथा महेशको भी उत्पन्न करनेवाली हैं। वे ही प्राणियोंके मनको बलपूर्वक आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं; हे राजन्! इस रहस्यको आप भलीभाँति जान लीजिये। हे पृथ्वीपते! वे ही समग्र विश्वका सृजन करती हैं, सर्वदा पालन करती हैं तथा अन्तमें रुद्ररूपसे संहार करती हैं। वे महामाया सभी मनोरथ पूर्ण करनेवाली, विश्वका संहार करनेवाली तथा दुर्धर्ष कालरात्रिरूपा

* 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

साक्षात् काली हैं और वे ही कमलनिवासिनी महालक्ष्मी हैं। यह जगत् उन्हींसे उत्पन्न हुआ है, उन्हींमें स्थित भी है और अन्तमें उन्हींमें विलीन भी हो जायगा, अतएव वे भगवती परात्परा हैं। हे राजन्! उन भगवतीकी कृपा जिसके ऊपर हो जाती है, वही इस मोहजालसे मुक्त होता है; हे भूपते! इसमें सन्देह नहीं है॥ २१—२५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'सुरथनृपतिवृत्तवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

सावर्णि मनुके पूर्वजन्मकी कथाके प्रसंगमें मधु-कैटभकी उत्पत्ति और भगवान् विष्णुद्वारा उनके वधका वर्णन

राजा बोले—हे कालज्ञान रखनेवालोंमें श्रेष्ठ! आपने जिन देवीका वर्णन किया है, वे कौन हैं, वे प्राणियोंको क्यों मोहित करती हैं और हे द्विज! इसमें क्या कारण है? वे देवी किसलिये आविर्भूत होती हैं, उनका स्वरूप क्या है तथा उनका स्वभाव कैसा है? हे भूदेव! इन सभी बातोंको कृपा करके सम्यक् प्रकारसे मुझे बताइये॥ १-२॥

मुनि बोले—हे राजन्! वे जगन्मयी भगवती जिस प्रकार उत्पन्न हुईं, जिनसे उत्पन्न हुईं तथा उन देवीका जैसा स्वरूप है—इन सबका मैं आपसे वर्णन कर रहा हूँ; ध्यानसे सुनिये॥ ३॥

[कल्पके अन्तमें] जब योगराट् भगवान् नारायण विश्वका संहार करके समुद्रके भीतर शेषनागकी शय्यापर योगनिद्रामें सोये हुए थे। तब उन देवदेव भगवान् जनार्दनके निद्राके वशीभूत हो जानेपर उनके कानोंके मैलसे मधु तथा कैटभ नामक दो दानव उत्पन्न हुए। भयंकर आकृतिवाले वे



दोनों दानव ब्रह्माजीको मारनेको उद्यत हो गये॥ ४-५½॥

तब पद्मयोनि ब्रह्मदेव उन मधु-कैटभ दानवोंको तथा देवदेव नारायणको निद्रित देखकर घोर चिन्तामें पड़ गये॥ ६½॥

भगवान् विष्णु तो निद्राकी अवस्थामें हैं और ये दोनों दानव दुर्जेय हैं। ऐसी स्थितिमें मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ तथा किस प्रकार शान्ति प्राप्त करूँ? हे तात! इस प्रकार चिन्तन कर रहे कमलयोनि महात्मा ब्रह्माके मनमें कार्य सिद्ध करनेवाली यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि निद्रित अवस्थावाले ये भगवान् विष्णुदेव इस समय जिनकी अधीनताको प्राप्त हैं, सबको उत्पन्न करनेवाली उन्हीं निद्रा देवीकी शरणमें मैं भी चला जाऊँ॥ ७—९½॥

ब्रह्माजी बोले—हे देवि! हे जगत्का पालन करनेवाली देवि! हे भक्तोंको अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली! हे जगन्माये! हे महामाये! हे समुद्रमें शयन करनेवाली! हे शिवे! आपकी आज्ञाके अधीन होकर ही सभी अपना-अपना कार्य सम्पादित करते हैं॥ १०-११॥

आप ही कालरात्रि हैं, आप ही महारात्रि हैं तथा आप ही भयंकर मोहरात्रि हैं। आप सर्वव्यापिनी, भक्तोंके वशीभूत, सम्माननीया तथा महान् आनन्दकी एकमात्र सीमा हैं। आप ही महनीया, महाराध्या, माया, मधुमती, मही तथा पर-अपर सभीमें श्रेष्ठतम कही गयी हैं॥ १२-१३॥

आप लज्जा, पुष्टि, क्षमा, कीर्ति, कान्ति, करुणाकी प्रतिमूर्ति, कमनीया, विश्ववन्द्या तथा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिके स्वरूपवाली हैं॥ १४॥

आप ही परमा, परमेशानी तथा परमानन्दपरायणा हैं। आप ही एका (अद्वितीया) हैं, अतएव आप प्रथमा हैं।

आप ही सद्वितीया (मायासहित) होनेके कारण द्वितीया भी हैं। आप ही धर्म-अर्थ-काम—इन तीनोंका धाम होनेसे त्रयी अर्थात् तृतीया हैं। आप तुर्या अर्थात् सबसे परे होनेके कारण चतुर्थी भी हैं। आप पंचमहाभूतों (पृथ्वी, तेज, जल, वायु, आकाश)-की ईश्वरी होनेके कारण पंचमी और काम-क्रोध-लोभ-मोह-मद-मत्सर—इन छ:की अधिष्ठात्री होनेके कारण षष्ठी हैं॥ १५-१६॥

आप रवि आदि सातों वारोंकी ईश्वरी होनेके कारण तथा सात-सात वर प्रदान करनेके कारण सप्तमी हैं तथा आठ वसुओंकी स्वामिनी होनेके कारण अष्टमी हैं। आप ही नवग्रहमयी ईश्वरी, रम्य नौ रागोंकी कला तथा नवेश्वरी होनेके कारण नवमी हैं। आप दसों दिशाओंमें व्याप्त रमारूपिणी हैं तथा दसों दिशाओंमें पूजित होती हैं, अतएव दशमी कही जाती हैं॥ १७-१८॥

आप एकादश रुद्रद्वारा आराधित हैं, एकादशी तिथिके प्रति आपकी प्रीति है तथा आप ग्यारह गणोंकी अधीश्वरी हैं; अत: आप एकादशी हैं॥ १९॥

आप बारह भुजाओंवाली हैं तथा बारह आदित्योंको जन्म देनेवाली हैं, अत: द्वादशी हैं। आप मलमास-सहित तेरह मासस्वरूपा हैं, तेरह गणोंकी प्रिया हैं और विश्वेदेवोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं, अत: आप त्रयोदशी नामसे प्रसिद्ध हैं। आप चौदह इन्द्रोंको वर प्रदान करनेवाली तथा चौदह मनुओंको उत्पन्न करनेवाली हैं, अतएव चतुर्दशी हैं॥ २०-२१॥

आप पंचदशी अर्थात् कामराज-विद्यारूपा त्रिपुर-सुन्दरीरूपसे जानी जाती हैं तथा आप पंचदशी तिथि-रूपिणी हैं। सोलह भुजाओंवाली, चन्द्रमाकी सोलहवीं कलासे विभूषित तथा चन्द्रमाकी षोडश कलारूपी किरणोंसे व्याप्त दिव्य विग्रहवाली होनेके कारण आप षोडशी हैं। हे तमोगुणसे युक्त होकर प्रकट होनेवाली! हे निर्गुणे! हे देवेशि! आप इस प्रकारके विविध रूपवाली हैं॥ २२-२३॥

देवाधिदेव लक्ष्मीकान्त भगवान् विष्णुको आपने निद्राके वशवर्ती कर रखा है और ये दोनों मधु-कैटभ दानव अत्यन्त पराक्रमी तथा दुर्जेय हैं; अतएव आप इन दोनोंका संहार करनेके लिये देवेश्वर विष्णुको जगाइये॥ २४१/२॥

मुनि बोले—[ब्रह्माजीके] इस प्रकार स्तुति करनेपर भगवान्‌को प्रिय तमोगुणमयी भगवतीने देवदेव विष्णुके शरीरको छोड़कर उन दोनों दानवोंको मोहित कर दिया॥ २५१/२॥

उसी समय जगन्नाथ, परमात्मा, परमेश्वर भगवान् विष्णु जग गये और उन्होंने दानवोंमें श्रेष्ठ उन दोनों मधु-कैटभको देखा॥ २६१/२॥

तभी उन दोनों भयंकर दानवोंने मधुसूदन विष्णुको देखकर युद्ध करनेका निश्चय किया और वे भगवान्‌के पास पहुँच गये॥ २७१/२॥

तब सर्वव्यापी भगवान् मधुसूदन उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक बाहुयुद्ध करते रहे॥ २८१/२॥

तत्पश्चात् जगन्मायाके द्वारा विमोहित किये गये वे दोनों अत्यधिक बलसे उन्मत्त दानव परमेश्वर विष्णुसे कहने लगे—आप [हम दोनोंसे] वरदान माँग लीजिये॥ २९१/२॥

उन दोनोंकी यह बात सुनकर आदिपुरुष भगवान् विष्णुने यह वर माँगा—तुम दोनों मेरे द्वारा आज ही मार दिये जाओ॥ ३०१/२॥

इसके बाद अत्यन्त बलशाली उन दोनों दानवोंने भगवान् श्रीहरिसे पुन: कहा—जिस स्थानपर पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो, वहींपर आप हमारा वध कीजिये॥ ३११/२॥

हे राजन्! 'वैसा ही होगा'—यह कहकर गदा तथा शंख धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने उनके मस्तकोंको



अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट दिया॥ ३२१/२॥

हे नृप! हे महाराज! इस प्रकार ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर सभी योगेश्वरोंकी ईश्वरी महाकाली भगवती प्रकट हुई थीं। हे महीपते! अब आप महालक्ष्मीकी उत्पत्तिके विषयमें सुनिये॥ ३३-३४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'देवीमाहात्म्यमें मधु-कैटभवधवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

समस्त देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनीका प्राकट्य और उनके द्वारा महिषासुरका वध, शुम्भ-निशुम्भका अत्याचार और देवीद्वारा चण्ड-मुण्डसहित शुम्भ-निशुम्भका वध

मुनि बोले—[एक बार] महिषीके गर्भसे उत्पन्न महान् बलशाली तथा पराक्रमी महिषासुर सभी देवताओंको पराजित करके सम्पूर्ण जगत्‌का स्वामी हो गया॥ १॥

वह महान् असुर समस्त लोकपालोंके अधिकारोंको बलपूर्वक छीनकर तीनों लोकोंके अद्भुत ऐश्वर्यका भोग करने लगा॥ २॥

सभी देवता उससे पराजित होकर स्वर्गसे निष्कासित कर दिये गये। तत्पश्चात् वे ब्रह्माजीको आगे करके उस उत्तम लोकमें पहुँचे, जहाँ देवाधिदेव भगवान् विष्णु तथा शिव विराजमान थे। वे उस दुरात्मा महिषासुरका वृत्तान्त बताने लगे—॥ ३-४॥



हे देवेश्वरो! बल, वीर्य तथा मदसे उन्मत्त वह महिषासुर नामक दुष्ट दैत्य सभी देवताओंके लोकोंको शीघ्र जीतकर उनपर स्वयं शासन कर रहा है। हे असुरोंका नाश करनेवाले! आप दोनों शीघ्र ही उस महिषासुरके वधका कोई उपाय सोचिये॥ ५-६॥

तब देवताओंकी यह दुःखभरी वाणी सुनकर वे भगवान् विष्णु, शिव तथा पद्मयोनि ब्रह्मा अत्यधिक कुपित हो उठे॥ ७॥

हे महीपते! इस प्रकार कुपित उन भगवान् विष्णुके मुखसे हजारों सूर्योंकी कान्तिके समान दिव्य तेज उत्पन्न हुआ॥ ८॥

इसके पश्चात् क्रमसे इन्द्र आदि सभी देवताओंके शरीरसे उन देवाधिपोंको प्रसन्न करता हुआ तेज निकला॥ ९॥

शिवके शरीरसे जो तेज निकला, उससे मुख बना, यमराजके तेजसे केश बने तथा विष्णुके तेजसे भुजाएँ बनीं॥ १०॥

हे भूप! चन्द्रमाके तेजसें दोनों स्तन हुए। इन्द्रके तेजसे कटिप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और ऊरु उत्पन्न हुए। पृथिवीके तेजसे दोनों नितम्ब, ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अँगुलियाँ और वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ निर्मित हुईं॥ ११-१२॥

हे पृथ्वीपते! कुबेरके तेजसे नासिका और प्रजापतिके उत्कृष्ट तेजसे दाँत उत्पन्न हुए। अग्निके तेजसे शुभकारक तीनों नेत्र उत्पन्न हुए, सन्ध्याके तेजसे कान्तिकी निधिस्वरूपा दोनों भृकुटियाँ उत्पन्न हुईं और वायुके तेजसे दोनों कान उत्पन्न हुए। हे नरेश! इस प्रकार सभी देवताओंके तेजसे भगवती महिषमर्दिनी प्रकट हुईं॥ १३—१५॥

शिवजीने उन्हें अपना शूल, विष्णुने चक्र, वरुणने शंख, अग्निने शक्ति और वायुने धनुष-बाण प्रदान किये॥ १६॥

इन्द्रने वज्र तथा ऐरावत हाथीका घण्टा, यमराजने कालदण्ड और ब्रह्माने अक्षमाला तथा कमण्डलु प्रदान

किये ॥ १७ ॥

हे पृथ्वीपते! सूर्यने देवीके रोमछिद्रोंमें अपनी रश्मिमालाओंका संचार किया। कालने देवीको तलवार तथा स्वच्छ ढाल दी ॥ १८ ॥

हे राजन्! समुद्रने स्वच्छ हार, कभी जीर्ण न होनेवाले दो वस्त्र, चूड़ामणि, कुण्डल, कटक, बाजूबन्द, विमल अर्धचन्द्र, नूपुर तथा गलेमें धारण किया जानेवाला आभूषण अति प्रसन्न होकर उन भगवतीको प्रदान किये ॥ १९-२० ॥

हे धरणीपते! विश्वकर्माने उन भगवतीको अँगूठियाँ दीं। हिमालयने उन्हें वाहनके रूपमें सिंह तथा विविध प्रकारके रत्न प्रदान किये। धनपति कुबेरने उन्हें सुरासे पूर्ण एक पानपात्र दिया तथा सर्वव्यापी भगवान् शेषनागने उन्हें नागहार प्रदान किया ॥ २१-२२ ॥

इसी प्रकार अन्य समस्त देवताओंने जगन्मयी भगवतीको सम्मानित किया। इसके बाद महिषासुरद्वारा पीडित देवताओंने जगत्‌की उत्पत्तिकी कारणस्वरूपिणी उन महेश्वरी महाभगवतीकी अनेक स्तोत्रोंसे स्तुति की ॥ २३½ ॥

उन देवताओंकी स्तुति सुनकर देवपूजित सुरेश्वरी महिषासुरके वधके लिये उच्च स्वरसे गर्जना करने लगीं ॥ २४½ ॥

हे भूपते! महिषासुर उस नादसे चकित हो उठा और अपने सभी सैनिकोंको साथमें लेकर जगद्धात्री भगवतीके पास पहुँचा ॥ २५½ ॥

तत्पश्चात् महिष नामक वह प्रबल दानव अपने द्वारा छोड़े गये विविध शस्त्रास्त्रोंसे सम्पूर्ण आकाश-मण्डलको आच्छादित करते हुए भगवतीके साथ युद्ध करने लगा ॥ २६½ ॥

प्रधान सेनापति चिक्षुरके अतिरिक्त दुर्धर, दुर्मुख, बाष्कल, ताम्र तथा विडालवदन—इन सभीसे तथा संग्राममें यमराजकी भाँति भयंकर अन्य असंख्य योद्धाओंसे वह दानवश्रेष्ठ पराक्रमी महिषासुर घिरा हुआ था ॥ २७-२८½ ॥

तदनन्तर क्रोधसे लाल आँखोंवाली उन जगन्मोहिनी भगवतीने युद्धभूमिमें महिषासुरके अधीनस्थ मुख्य योद्धाओंको मार डाला ॥ २९½ ॥

उन योद्धाओंके मारे जानेके अनन्तर परम मायावी वह महिषासुर क्रोधसे मूर्च्छित होकर देवीके समक्ष शीघ्रतासे आ खड़ा हुआ ॥ ३०½ ॥

वह दानवेन्द्र महिष अपनी मायाके प्रभावसे अनेक प्रकारके रूप धारण कर लेता था; किंतु वे देवी उसके उन सभी रूपोंको नष्ट कर डालती थीं ॥ ३१½ ॥

तब अन्तमें महिषका रूप धारण किये हुए उस देवपीडक तथा देवगणोंके लिये यमराजतुल्य महिषासुरको पाशमें दृढ़तापूर्वक बाँधकर भगवतीने अपने खड्गसे उसका सिर काटकर [पृथ्वीपर] गिरा दिया ॥ ३२-३३ ॥



इससे [दानवी सेनामें] हाहाकार मच गया और उसकी शेष सेना दसों दिशाओंमें भाग गयी। समस्त देवगण इससे अति प्रसन्न होकर देवदेवेश्वरी भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥

महिषासुरका वध करनेवाली देवी महालक्ष्मीका इस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ था। हे राजन्! जिस प्रकार सरस्वतीका आविर्भाव हुआ; अब आप वह वृत्तान्त सुनिये ॥ ३५ ॥

एक समयकी बात है—अपने मद तथा बलका अहंकार करनेवाला शुम्भ नामक दैत्य था। महान् बल तथा पराक्रमसे सम्पन्न निशुम्भ नामक उसका एक भाई भी था ॥ ३६ ॥

हे नृप! उस शुम्भसे सन्तापित सभी देवता राज्यविहीन

होकर हिमालयपर्वतपर जाकर श्रद्धापूर्वक भगवतीका स्तवन करने लगे॥ ३७॥



देवता बोले—हे भक्तोंका कष्ट दूर करनेमें परम दक्ष देवेश्वरि! हे दानवोंके लिये यमराजस्वरूपिणि! हे जरा-मरणसे रहित! हे अनघे! आपकी जय हो॥ ३८॥

हे देवेश्वरि! हे भक्तिसे प्राप्त होनेवाली! हे महान् बल तथा पराक्रमवाली! हे ब्रह्मा-विष्णु-महेशस्वरूपिणि! हे अनन्त शौर्यशालिनि! हे सृजन तथा पालन करनेवाली! हे संहार करनेवाली! हे कान्तिप्रदे! हे महाताण्डवमें प्रीति रखनेवाली! हे मोददायिके! हे माधवि! हे देवदेवेश्वरि! आप हमपर प्रसन्न होइये। हे करुणानिधे! प्रसन्न होइये। हे शरणमें आये हुए प्राणियोंके दुःखका नाश करनेवाली! शुम्भ तथा निशुम्भसे उत्पन्न महान् भयरूपी अपार समुद्रसे हम शरणागत देवताओंका उद्धार कीजिये॥ ३९—४१$^{१}/_{२}$॥

हे महाराज सुरथ! इस प्रकार उन देवताओंके स्तुति करनेपर हिमाद्रितनया पार्वती प्रसन्न हो गयीं और बोलीं—आपलोग इस स्तुतिका उद्देश्य बताइये॥ ४२$^{१}/_{२}$॥

इसी बीच उनके शरीररूपी कोशसे जगद्वन्द्या कौशिकीदेवी प्रकट हुईं और वे बड़ी प्रसन्नतापूर्वक देवताओंसे कहने लगीं॥ ४३$^{१}/_{२}$॥

हे सुरश्रेष्ठ! उत्तमस्वरूपिणी मैं आपलोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूँ, अतः आपलोग वर माँग लीजिये। देवीके ऐसा कहनेपर देवताओंने इस प्रकार वर माँगा—शुम्भ नामक एक प्रसिद्ध दानव है तथा निशुम्भ नामवाला उसका एक लघु भ्राता भी है। उस बलवान् दैत्यने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंको आतंकित कर रखा है। हे देवि! उसके वधका कोई उपाय सोचिये; क्योंकि हे भगवति! वह कुत्सित आत्मावाला दानवेन्द्र शुम्भ अपने बलसे हमें अपमानित करके सदा पीडित करता रहता है॥ ४४—४६$^{१}/_{२}$॥

श्रीदेवी बोलीं—मैं देवताओंके शत्रु शुम्भ तथा निशुम्भको मार गिराऊँगी। आपलोग निश्चिन्त रहिये। आपलोगोंका कल्याण होगा। मैं आपलोगोंके कंटकरूप दैत्यका विनाश अभी करती हूँ॥ ४७$^{१}/_{२}$॥

इन्द्रसहित सभी देवताओंसे ऐसा कहकर करुणामयी देवदेवेश्वरी उन देवताओंके देखते-देखते शीघ्र ही अन्तर्धान हो गयीं॥ ४८$^{१}/_{२}$॥

तत्पश्चात् सभी देवता हर्षित होकर सुमेरुपर्वतकी सुन्दर कन्दरामें चले गये। इधर, शुम्भ-निशुम्भके चण्ड-मुण्ड नामक दो सेवकोंने [उन देवीको] देख लिया॥ ४९$^{१}/_{२}$॥

तब उन दोनों चण्ड-मुण्ड नामवाले दानव-सेवकोंने सम्पूर्ण लोकको मोहित करनेवाली सर्वांगसुन्दरी भगवतीको देखकर अपने राजा शुम्भके पास आकर उससे कहा॥ ५०॥

हे देव! हे समस्त असुरोंमें श्रेष्ठ! हे रत्नोंका भोग करनेयोग्य! हे मान प्रदान करनेवाले! हे शत्रुदलन! हम दोनोंने अभी-अभी एक अद्वितीय कामिनी देखी है। उसके साथ भोग करनेयोग्य एकमात्र आप ही हैं। अतएव इसी समय सुन्दर अंगोंवाली उस स्त्रीको ले आइये और सुखपूर्वक उसका भोग कीजिये। जैसी मनोहर वह स्त्री है, वैसी न कोई असुर-नारी है, न गन्धर्व-नारी, न दानव-नारी, न मानव-नारी और न तो कोई देवनारी ही है॥ ५१—५३$^{१}/_{२}$॥

इस प्रकार अपने सेवककी बात सुनकर शत्रुके बलका मर्दन करनेवाले शुम्भने सुग्रीव नामक दानवको दूतके रूपमें भेजा॥ ५४$^{१}/_{२}$॥

उस दूतने तत्काल देवीके पास पहुँचकर शुम्भकी जो बात थी, उस वृत्तान्तको आदरपूर्वक यथाविधि देवीसे कह दिया॥ ५५$^{१}/_{२}$॥

हे देवि! शुम्भ नामक असुर तीनों लोकोंके विजेता राजा हैं। सभी रत्न-सामग्रियोंका भोग करनेवाले उस शुम्भका सभी देवता भी सम्मान करते हैं॥ ५६१/२॥



उन्होंने जो कहा है, उसे मुझसे सुनिये—हे देवि! मैं नित्य सभी रत्नोंका उपभोग करनेवाला हूँ, तुम भी रत्न-स्वरूपा हो, अतएव हे सुलोचने! मेरा वरण कर लो। समस्त देवताओं, असुरों तथा मनुष्योंके पास जो-जो रत्न थे, वे सब इस समय मेरे पास हैं। अतएव हे सुभगे! कामजन्य रसोंके द्वारा तुम मेरे साथ भोग करो॥ ५७-५८१/२॥

देवी बोलीं—हे दूत! तुम दैत्यराज शुम्भके लिये प्रियकर तथा सत्य बात कह रहे हो, किंतु मैंने पूर्वकालमें जो प्रतिज्ञा की है, वह भी मिथ्या कैसे हो सकती है? हे दूत! मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तुम सुनो॥ ५९-६०॥

जो मेरा अभिमान चूर कर देगा, जो मेरे बलको निष्प्रभावी बना देगा तथा मेरे समान बलशाली होगा, वही मेरे साथ भोग करनेका अधिकारी हो सकता है॥ ६१॥

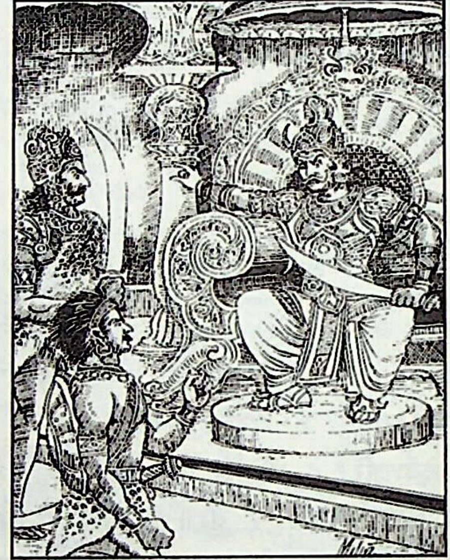
अतएव वह असुराधिपति मेरी इस प्रतिज्ञाको सत्य सिद्ध करके तत्काल मेरा पाणिग्रहण कर ले। इस लोकमें ऐसा क्या है, जिसे वह नहीं कर सकता?॥ ६२॥

इसलिये हे महादूत! तुम जाओ और अपने स्वामीसे आदरपूर्वक यह बात कहो। वह अत्यधिक बलवान् शुम्भ मेरी प्रतिज्ञाको अवश्य सत्य सिद्ध कर देगा॥ ६३॥

महादेवीका यह वचन सुनकर उस दानव-दूतने आरम्भसे लेकर अन्ततक देवीका वृत्तान्त शुम्भसे कह दिया॥ ६४॥

तब दूतकी अप्रिय बात सुनकर महाबली दानवराज शुम्भ अत्यधिक कुपित हो उठा॥ ६५॥

तत्पश्चात् उस दानवपति बलशाली शुम्भने धूम्राक्ष



नामक दैत्यको आदेश दिया—हे धूम्राक्ष! सावधान होकर मेरी बात सुनो। तुम उस दुष्टाको उसके केशपाश पकड़कर मेरे पास शीघ्र ले आओ। अब तुम मेरे सामनेसे शीघ्र चले जाओ॥ ६६-६७॥

ऐसा आदेश प्राप्तकर वह महाबली दैत्येश धूम्रलोचन साठ हजार असुरोंके साथ चल पड़ा और शीघ्र ही देवीके पास हिमालयपर्वतपर पहुँचकर उसने उच्च स्वरमें देवीसे कहा—हे कल्याणि! तुम शीघ्र ही महान् पराक्रमी शुम्भ नामक दैत्यपतिका वरण कर लो और सभी प्रकारके सुखोपभोग प्राप्त करो अन्यथा तुम्हारे केश पकड़कर मैं तुम्हें दैत्यराजके पास ले चलूँगा॥ ६८—७०॥

देवशत्रु दैत्यके ऐसा कहनेपर उन भगवतीने कहा—हे महाबली दैत्य! यह जो तुम बोल रहे हो, वह तो ठीक है, किंतु यह बताओ कि तुम्हारे राजा शुम्भासुर तथा तुम मेरा क्या कर लोगे?॥ ७११/२॥

देवीके ऐसा कहनेपर वह दैत्य-सेनापति धूम्राक्ष शस्त्र लेकर बड़ी तेजीसे देवीकी ओर दौड़ा, किंतु महेश्वरीने अपने

हुंकारमात्रसे उसे तत्क्षण भस्म कर दिया॥ ७२१/२॥



हे महीपते! देवीका वाहन सिंह भी दैत्यसेनाको नष्ट करने लगा। सम्पूर्ण सेना हाहाकार मचाती हुई बेसुध होकर दसों दिशाओंमें तेजीसे तितर-बितर हो गयी॥ ७३१/२॥

दैत्यराज पराक्रमी शुम्भ यह वृत्तान्त सुनकर बड़ा कुपित हुआ और अत्यन्त क्रोधपूर्वक उसकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। उस प्रतापी दैत्यराजने कोपाविष्ट होकर क्रमशः चण्ड, मुण्ड तथा रक्तबीज [नामक दैत्यों]-को भेजा। वे तीनों बलशाली और क्रूर दैत्य वहाँ जाकर बलपूर्वक देवीको पकड़नेका यत्न करने लगे। तब मदोन्मत्त होकर जगदम्बा शूल लेकर वेगपूर्वक उनकी ओर दौड़ीं और उन्होंने उन्हें धराशायी कर दिया॥ ७४—७७१/२॥

उन तीनों दैत्योंको सेनासहित मारा गया सुनकर दानवराज शुम्भ और निशुम्भ तेजीसे वहाँ आ पहुँचे। देवीके साथ भयंकर युद्ध करनेके अनन्तर वे दोनों असुर उनके अधीन हो गये और अन्तमें उनके द्वारा मार डाले गये॥ ७८-७९१/२॥

तत्पश्चात् दैत्यश्रेष्ठ शुम्भका वध करके वे साक्षात् वागीश्वरी पराम्बा जगन्मयी सरस्वती भगवती महालक्ष्मीकी भाँति देवताओंके द्वारा स्तुत हुईं॥ ८०१/२॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे क्रमशः काली, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीके अत्यन्त सुन्दर प्रादुर्भावका वर्णन कर दिया॥ ८११/२॥

वे ही परमा परमेश्वरी भगवती समस्त जगत्की रचना करती हैं और वे ही देवी पालन तथा संहारकार्य भी सम्पादित करती हैं। [हे राजन्!] आप सांसारिक मोहको दूर करनेवाली उन्हीं पूज्यतमा महामाया देवेश्वरीका आश्रय लीजिये; वे ही आपका कार्य सिद्ध करेंगी॥ ८२-८३१/२॥

श्रीनारायण बोले—मुनि (सुमेधा)-की यह परम सुन्दर बात सुनकर राजा सुरथ सभी वांछित फल प्रदान करनेवाली भगवतीकी शरणमें गये। निराहार रहते हुए एकाग्रचित्त होकर संयत आत्मावाले वे राजा सुरथ तन्मनस्क होकर देवीकी पार्थिव मूर्तिकी भक्तिपूर्वक पूजा करने लगे। पूजाकी समाप्तिपर उन्होंने देवीको अपने



शरीरके रक्तसे बलि प्रदान किया॥ ८४—८६॥

तब दयामयी जगन्माता देवेश्वरी प्रसन्न होकर उनके समक्ष प्रकट हो गयीं और कहने लगीं—वर माँगो। इसपर उन राजा सुरथने महेश्वरीसे अपने मोहका नाश करनेवाले उत्तम ज्ञान तथा निष्कंटक राज्यकी याचना की॥ ८७-८८॥

देवी बोलीं—हे राजन्! मैं आपको वर प्रदान करती हूँ कि इसी जन्ममें आपको निष्कंटक राज्य तथा मोहका नाश करनेवाला ज्ञान प्राप्त होगा। हे भूपाल! अब आप अपने दूसरे जन्मके विषयमें सुनिये। आप उस जन्ममें सूर्यके अंशसे जन्म लेकर सावर्णि मनु होंगे। मेरे वरदानसे आप उस जन्ममें भी मन्वन्तरका स्वामित्व, अत्यधिक पराक्रम तथा बहुत-सी सन्तानें प्राप्त करेंगे॥ ८९—९१॥

ऐसा वर देकर भगवती उसी समय अन्तर्धान हो गयीं। वे राजा सुरथ भी देवीके अनुग्रहसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ ९२॥

हे साधो! इस प्रकार मैंने सावर्णि मनुके जन्म तथा कर्मका वर्णन कर दिया। इसको पढ़ने तथा सुननेवाला व्यक्ति भगवतीकी कृपा प्राप्त कर लेता है॥ ९३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'देवीचरित्रसहित सावर्णिमनुवृत्तान्तवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

मनुपुत्रोंकी तपस्या, भगवतीका उन्हें मन्वन्तराधिपति होनेका वरदान देना, दैत्यराज अरुणकी तपस्या और ब्रह्माजीका वरदान, देवताओंद्वारा भगवतीकी स्तुति और भगवतीका भ्रामरीके रूपमें अवतार लेकर अरुणका वध करना

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अब आप शेष मनुओंकी अद्भुत उत्पत्तिके विषयमें सुनिये, जिसके स्मरणमात्रसे देवीभक्ति उत्पन्न हो जाती है॥ १॥

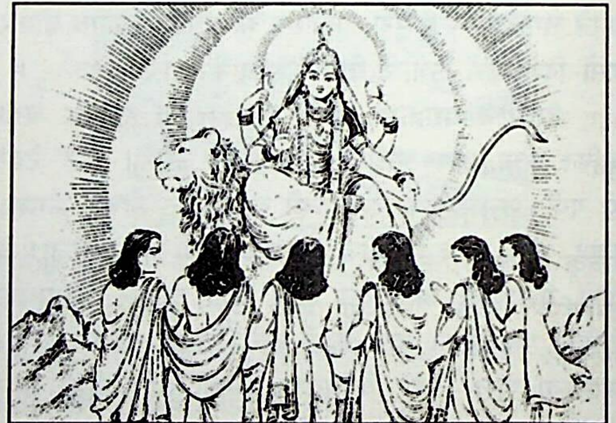
वैवस्वत मनुके करूष, पृषध्र, नाभाग, दिष्ट, शर्याति तथा त्रिशंकु नामक उज्ज्वल यशवाले छः पुत्र थे। वे सब महान् पराक्रमी थे॥ २$^1/_2$॥

वे छहों पुत्र यमुनाके पावन तटपर जाकर निराहार रहते हुए अपने श्वासपर नियन्त्रण रखकर वहीं स्थित होकर भगवतीकी उपासना करने लगे। भगवतीकी अलग-अलग पार्थिव मूर्ति बनाकर वे भाँति-भाँतिके उपचारोंसे आदरपूर्वक उनकी पूजा करते थे। इसके बाद उन सभी महाबली तथा महातपस्वी मनुपुत्रोंने क्रमशः सूखे पत्तों, वायु, जल, धूम्र तथा सूर्यकी किरणोंके आहारपर जीवन धारण करते हुए घोर तपस्या की॥ ३—६॥

तत्पश्चात् आदरपूर्वक देवीकी अनवरत आराधना कर रहे उन पुत्रोंके मनमें समस्त मोहोंको नष्ट कर देनेवाली निर्मल बुद्धि जाग्रत् हुई॥ ७॥

वे मनुपुत्र एकमात्र भगवतीके चरणोंमें ही मन लगाये हुए थे। विशुद्ध बुद्धिके प्रभावसे उन्हें शीघ्र अपने ही भीतर सम्पूर्ण जगत् दिखायी पड़ने लगा। वह अद्भुत स्थिति थी। इस प्रकार बारह वर्षोंके पश्चात् उनके तपसे हजारों सूर्योंके समान कान्तिवाली जगत्‌की स्वामिनी देवेश्वरी प्रकट हुईं॥ ८-९$^1/_2$॥

तब विमल आत्मावाले वे छहों राजकुमार देवीको देखते ही विनम्र तथा भाव-विह्वल होकर भक्तिपूर्ण अन्तःकरणसे उनकी स्तुति करने लगे॥ १०$^1/_2$॥



राजकुमार बोले—हे महेश्वरि! हे ईशानि! हे परमे! हे करुणालये! हे वाग्भव बीजमन्त्रकी आराधनासे प्रसन्न होनेवाली! हे वाग्भव मन्त्रसे प्रतिपादित होनेवाली! हे क्लींकाररूपी विग्रहवाली! हे 'क्लीं' बीजमन्त्रसे उपासित होनेपर प्रीति प्रदान करनेवाली! हे कामेश्वरके मनको प्रसन्नता प्रदान करनेवाली! हे परमेश्वरको सन्तुष्ट करनेवाली! हे महामाये! हे मोदपरे! हे महान् साम्राज्य देनेवाली! हे विष्णु, सूर्य, महेश, इन्द्र आदिके स्वरूपवाली! हे भोगकी वृद्धि करनेवाली! आपकी जय हो॥ ११—१३$^1/_2$॥

इस प्रकार उन महात्मा राजपुत्रोंके स्तुति करनेपर प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाली भगवती उनसे कल्याणमय

वचन कहने लगीं॥ १४१/२॥

देवी बोलीं—हे महात्मा राजपुत्रो! तपस्यासे युक्त आपलोग मेरी उपासनासे निष्कल्मष तथा विमल बुद्धिवाले हो गये हैं। अब आपलोग अपना मनोवांछित वर शीघ्र ही माँग लीजिये। मैं अतीव प्रसन्न हूँ, इस समय आपलोगोंके मनमें जो भी होगा, वह सब मैं अवश्य दूँगी॥ १५-१६१/२॥

राजपुत्र बोले—हे भगवति! निष्कंटक राज्य, दीर्घजीवी सन्तान, अखण्डित भोग, यथेच्छ यश, तेज, बुद्धि तथा सभीसे अपराजेयता हमें प्राप्त हो जाय, यही हमारे लिये हितकर वर है॥ १७-१८॥

देवी बोलीं—ऐसा ही हो, आप सभीकी जो मनोगत कामनाएँ हैं, वे पूर्ण होंगी। अब आपलोग मेरी एक और बात सावधान होकर सुन लीजिये॥ १९॥

हे राजपुत्रो! मेरी कृपासे आप सभी लोग क्रमसे मन्वन्तराधिपति बनेंगे, दीर्घजीवी सन्तानें तथा अनेक प्रकारके भोग आपको प्राप्त होंगे। अखण्डित बल, ऐश्वर्य, यश, तेज तथा विभूतियाँ—ये सब आपको प्राप्त होंगे॥ २०-२१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इस प्रकार उन राजकुमारोंके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेपर साध्वी भ्रामरी जगदम्बिका उन्हें वर प्रदानकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं॥ २२॥

उन महान् तेजस्वी सभी राजपुत्रोंने उस जन्ममें महान् राज्य तथा समस्त सांसारिक सुखोंका भोग किया॥ २३॥

सावर्णि पद नामवाले वे सभी राजपुत्र अखण्डित सन्तानें उत्पन्न करके भूलोकमें अपनी-अपनी वंश-परम्परा स्थापितकर दूसरे जन्ममें क्रमसे मन्वन्तरोंके अधिपति हुए॥ २४१/२॥

दक्षसावर्णि नामक पहले राजपुत्र नौवें मनु कहलाये। भगवतीकी कृपासे वे अव्याहत बलवाले तथा परम ऐश्वर्यशाली हुए॥ २५१/२॥

मेरुसावर्णि नामक दूसरे राजपुत्र दसवें मनु हुए। महादेवीकी कृपासे वे मन्वन्तरपतिके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ २६१/२॥

सूर्यसावर्णि नामक तीसरे राजपुत्र ग्यारहवें मनुके रूपमें प्रसिद्ध हुए। अपनी तपस्यासे भावित ये मनु परम उत्साहसे सम्पन्न थे॥ २७१/२॥

चन्द्रसावर्णि नामक चौथे राजपुत्र परम ऐश्वर्यशाली बारहवें मनुके रूपमें अधिष्ठित हुए, जो देवीकी उपासनाके प्रभावसे मन्वन्तरके अधिपति हो गये॥ २८१/२॥

रुद्रसावर्णि नामवाले पाँचवें राजपुत्र तेरहवें मनु कहे गये हैं। महान् बल तथा महान् पराक्रमसे सम्पन्न वे मनु पृथ्वीके स्वामी हुए॥ २९१/२॥

विष्णुसावर्णि नामक छठे राजपुत्र चौदहवें मनु कहे गये हैं। भगवतीके वरदानसे वे लोकोंमें विख्यात राजाके रूपमें प्रतिष्ठित हुए॥ ३०१/२॥

ये सभी चौदहों मनु भगवती भ्रामरीकी आराधना तथा उनके प्रसादसे महान् तेज तथा बलसे सम्पन्न, लोकोंमें नित्य पूजनीय, वन्दनीय और महाप्रतापी हो गये थे॥ ३१-३२॥

नारदजी बोले—ये भ्रामरी देवी कौन हैं, वे कैसे प्रकट हुईं तथा किस स्वरूपवाली हैं? हे प्राज्ञ! आप शोकका नाश करनेवाले उस अद्भुत आख्यानका वर्णन कीजिये॥ ३३॥

मैं भगवतीके कथारूपी अमृतका पान करके भी तृप्त नहीं हो रहा हूँ। अमृत पीनेवालेकी मृत्यु तो सम्भव है, किंतु इस कथाका श्रवण करनेवालेकी मृत्यु सम्भव नहीं है॥ ३४॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! अब मैं अचिन्त्य तथा अव्यक्तस्वरूपिणी जगज्जननीकी मोक्षदायिनी अद्भुत लीलाका वर्णन करूँगा; आप सुनिये॥ ३५॥

भगवती श्रीदेवीके जो-जो चरित्र हैं, वे सब अहैतुकी दयासे लोकहितमें उसी प्रकार सम्पादित किये जाते हैं; जैसे माताके कार्य पुत्रके हितार्थ हुआ करते हैं॥ ३६॥

पूर्वकालमें अरुण नामक एक महान् बलशाली दैत्य था। देवताओंसे द्वेष रखनेवाला वह घोर नीच दानव दैत्योंके निवासस्थान पातालमें रहता था॥ ३७॥

देवताओंको जीतनेकी इच्छावाला वह दैत्य हिमालयपर पहुँचकर उसके समीप अत्यन्त शीतल गंगाजलमें पद्मयोनि ब्रह्माको प्रसन्न करनेके उद्देश्यसे यह सोचकर कठोर तप

करने लगा कि एकमात्र वे ही हमारे रक्षक हो सकते हैं। सूखे पत्तोंके आहारपर रहते हुए वह अपना श्वास रोककर तमोगुणसे युक्त हो सकामभावसे योगपरायण होते हुए गायत्रीमन्त्रके जपमें लीन हो गया। इसके बाद दस हजार वर्षोंतक जलकण पीकर, पुनः दस हजार वर्षोंतक वायुके आहारपर और पुनः दस हजार वर्षोंतक वह पूर्णरूपसे निराहार रहा॥ ३८—४१॥

इस प्रकार तप करते हुए उस दैत्यके शरीरसे अग्नि उठी, जो सम्पूर्ण जगत्‌को जलाने लगी; वह एक अद्भुत घटना थी॥ ४२॥

यह क्या, यह क्या? ऐसा कहते हुए सभी देवता काँपने लगे तथा सभी प्राणी भयभीत हो गये। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। वहाँ सभी श्रेष्ठ देवताओंने वह बात बतायी। उसे सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माजी गायत्रीसहित हंसपर सवार



होकर प्रसन्नतापूर्वक वहाँ गये॥ ४३-४४॥

उस समय उस दैत्यके सैकड़ों नाड़ियोंसे युक्त शरीरमें प्राणमात्र अवशिष्ट था, उसका उदर सूख गया था, शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था, आँखें मूँदकर वह ध्यानमें अवस्थित था तथा अपने तेजसे दूसरे अग्निकी भाँति प्रतीत हो रहा था—ऐसे उस दैत्यको ब्रह्माजीने देखा और तब श्रवणमात्रसे ही सन्तुष्टि प्रदान करनेवाला यह वाक्य उससे कहा—हे वत्स! तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारे मनमें जो भी हो, वह माँग लो॥ ४५-४६½॥

ब्रह्माजीके मुखसे अमृतकी धाराके सदृश वाणी सुनकर अरुणने जब आँखें खोलीं, तब उसने गायत्रीको साथ लिये हुए, चारों वेदोंको धारण किये हुए, हाथोंमें अक्षमाला तथा कुण्डिका ग्रहण किये हुए तथा शाश्वत ब्रह्मका जप करते हुए पद्मयोनि ब्रह्माजीको सामने देखा॥ ४७-४८½॥

उसने ब्रह्माजीको देखते ही उठकर प्रणाम किया तथा अनेकविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति करके अपनी बुद्धिमें स्थित वरकी याचना की कि मेरी मृत्यु कभी न हो॥ ४९½॥

अरुणका यह वचन सुनकर ब्रह्माजीने उसे आदरपूर्वक समझाया—हे दानवश्रेष्ठ! जब ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि भी मृत्युके ग्रास बन जाते हैं तो फिर मृत्युके सम्बन्धमें अन्य लोगोंकी बात ही क्या? अतएव तुम दूसरा उचित वर माँगो, जिसे मैं तुम्हें दे सकूँ, बुद्धिमान् लोग इस विषयमें कभी भी आग्रह नहीं करते॥ ५०—५२॥

ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर उसने पुनः आदरपूर्वक कहा—हे प्रभो! हे देव! तो फिर मुझे यह वर दीजिये कि मेरी मृत्यु न युद्धमें हो, न अस्त्र-शस्त्रसे हो, न पुरुषसे हो, न स्त्रीसे हो, न दो पैरवाले, न चार पैरोंवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवाले प्राणीसे ही हो, इसके साथ-साथ मुझे अत्यधिक बल भी दीजिये, जिससे देवताओंपर मेरी विजय स्थापित हो जाय॥ ५३-५४½॥

अरुणकी यह बात सुनकर ब्रह्माजीने तथास्तु—ऐसा वचन कह दिया और इस प्रकार उसे वर प्रदान करके वे तत्काल अपने लोक चले गये॥ ५५½॥

तत्पश्चात् ब्रह्माजीसे वरदान पाकर अभिमानमें चूर उस अरुण नामक दैत्यने अपने आश्रित रहनेवाले पातालवासी दैत्योंको बुला लिया॥ ५६½॥

पातालसे आकर उन सभी दैत्योंने उसे दैत्योंका राजा बना दिया और देवताओंसे युद्ध करनेके अभिप्रायसे देवपुरीके लिये एक दूत भेजा॥ ५७½॥

दूतकी बात सुनकर देवराज इन्द्र भयसे काँपने लगे और शीघ्र ही देवताओंके साथ ब्रह्मलोकके लिये चल पड़े॥ ५८½॥

वहाँसे पुनः ब्रह्मा तथा विष्णुको आगे करके वे देवता

शिवलोक पहुँचे और वहाँ देवशत्रु राक्षसोंके वधके लिये विचार-विमर्श करने लगे॥ ५९$^{1}/_{2}$॥

उसी समय वह अरुण नामक दैत्यराज दैत्यसेनाको साथमें लेकर स्वर्ग पहुँच गया। हे मुने! अपनी तपस्यासे अनेक रूप धारण करनेवाले उस दैत्यने सूर्य, चन्द्रमा, यम तथा अग्निके समस्त अधिकारोंको पृथक्-पृथक् अपने अधीन कर लिया॥ ६०-६१$^{1}/_{2}$॥

तदनन्तर अपने-अपने स्थानसे च्युत हुए सभी देवता कैलासपर्वतपर गये और एक-एक करके शंकरजीको अपनी दु:खगाथा सुनाने लगे॥ ६२$^{1}/_{2}$॥

उस समय शंकरजी भी महान् सोचमें पड़ गये कि अब ऐसी स्थितिमें क्या करना चाहिये? क्योंकि ब्रह्माजी इसे वरदान दे चुके हैं, अत: इसकी मृत्यु न युद्धमें, न शस्त्रास्त्रोंसे, न पुरुषसे, न स्त्रीसे, न दो पैरवाले प्राणियोंसे, न चार पैरवाले प्राणियोंसे और न तो उभय आकारवालोंसे ही सम्भव है। वे सभी इसी चिन्तामें व्याकुल थे; किंतु कुछ भी कर पानेमें समर्थ नहीं हुए॥ ६३—६५॥

इसी बीच वहाँ उच्च स्वरमें सन्तोषदायिनी आकाशवाणी हुई—[हे देवताओ!] तुमलोग भगवती भुवनेश्वरीकी आराधना करो। वे ही तुमलोगोंका कार्य सिद्ध करेंगी। गायत्रीजपमें संलग्न दैत्यराज अरुण यदि गायत्री-उपासनाका त्याग कर दे तो उसकी मृत्यु हो सकती है॥ ६६-६७॥

इस दिव्य वाणीको सुनकर आदरणीय देवताओंने परस्पर मन्त्रणा की। तदुपरान्त देवराज इन्द्रने बृहस्पतिको बुलाकर उनसे यह वचन कहा—हे गुरो! आप देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये दैत्य अरुणके पास जाइये और जिस किसी भी तरहसे उसके द्वारा गायत्री-जपका त्याग हो सके, वैसा प्रयत्न कीजिये। इधर, हमलोग भी ध्यानयोगमें अवस्थित होकर परमेश्वरीकी उपासना कर रहे हैं। वे प्रसन्न होकर आपकी सहायता अवश्य करेंगी॥ ६८—७०॥

गुरु बृहस्पतिसे इस प्रकार कहकर वे सभी देवता भगवती जम्बूनदेश्वरीके पास गये कि वे कल्याणी उस दैत्यके भयसे त्रस्त हम देवताओंकी रक्षा अवश्य करेंगी॥ ७१॥

वहाँ पहुँचकर देवीयज्ञपरायण वे सभी देवता अत्यन्त निष्ठापूर्वक मायाबीजके जपमें लीन होकर घोर तपश्चर्या करने लगे॥ ७२॥

इधर, बृहस्पति शीघ्र ही दानव अरुणके पास पहुँच गये। तब आये हुए उन मुनिवर बृहस्पतिसे उस दैत्यराजने पूछा—हे मुने! आप यहाँ कहाँ आ गये? इस समय कहाँसे तथा किस उद्देश्यसे यहाँ आपका आगमन हुआ है? यह मुझे बताइये। मैं आपका पक्षधर तो हूँ नहीं, अपितु सदासे शत्रु ही हूँ॥ ७३-७४॥

उसकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ बृहस्पतिने कहा—जो देवी हम लोगोंकी आराध्या हैं, उन्हींकी उपासना तुम भी अनवरत कर रहे हो, तो फिर यह बताओ कि क्या तुम हमारे पक्षधर नहीं हुए?॥ ७५$^{1}/_{2}$॥

हे सत्तम (नारद!) उन बृहस्पतिकी यह बात सुनकर देवमायासे मोहित हुए उस दैत्यने अभिमानपूर्वक परम गायत्री-मन्त्रके जपका त्याग कर दिया। तब गायत्री-जपसे विरत होते ही वह तेजशून्य हो गया॥ ७६-७७॥

इसके बाद गुरु बृहस्पति अपना कार्य सिद्ध करके उस स्थानसे चल दिये और वापस आकर उन्होंने इन्द्रसे सम्पूर्ण वृत्तान्त बताया। इससे सभी देवता सन्तुष्ट हो गये और वे देवी परमेश्वरीकी आराधना करने लगे॥ ७८$^{1}/_{2}$॥

हे मुने! इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद किसी समय जगत्का कल्याण करनेवाली जगज्जननी प्रकट हुईं। वे देवी करोड़ों सूर्योंके समान प्रभावाली थीं, करोड़ों कामदेवके सदृश सुन्दर, अंगोंमें अद्भुत अनुलेपनसे युक्त, दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित तथा विचित्र माला तथा आभूषणोंसे मण्डित थीं। वे अपनी मुट्ठीमें अद्भुत प्रकारके भ्रमर लिये हुए थीं, वे भगवती अपने हाथोंमें वर तथा अभय मुद्रा धारण की हुई थीं, शान्त तथा करुणामृतके सागरके सदृश अनेकविध भ्रमरोंसे युक्त पुष्पोंकी मालासे वे शोभायमान थीं, वे अद्भुत प्रकारकी असंख्य भ्रामरियोंसे घिरी हुई थीं और वे अम्बिका 'ह्रींकार' मन्त्रका गान कर रहे करोड़ों-करोड़ों भ्रमरोंसे सभी ओरसे परिवृत थीं। वे सभी प्रकारके शृंगारों तथा वेषोंसे अलंकृत थीं तथा सभी वेदोंद्वारा स्तुत हो रही थीं। वे सबकी आत्मारूपा, सर्वमयी, सर्वमंगलरूपिणी, सर्वज्ञ, सर्वजननी, सर्वरूपिणी, सर्वेश्वरी तथा कल्याणमयी हैं॥ ७९—८५॥

उन्हें देखकर ब्रह्माजीको आगे करके दीन देवगण

प्रसन्नचित्त होकर वेदोंमें प्रतिपादित देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ८६ ॥

देवता बोले—सृष्टि, पालन तथा संहार करनेवाली हे देवि! हे महाविद्ये! आपको नमस्कार है। हे कमल-पत्रके समान नेत्रोंवाली! आपको नमस्कार है। हे समस्त जगत्‌को धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है ॥ ८७ ॥

हे विश्व, तैजस, प्राज्ञ तथा विराट्‌रूपके साथ सूक्ष्मरूप धारण करनेवाली! आपको नमस्कार है। व्याकृत तथा कूटस्थरूपवाली आप भगवतीको बार-बार नमस्कार है ॥ ८८ ॥

हे दुर्गे! हे उत्पत्ति आदिसे रहित देवि! हे दुष्टोंके अवरोधार्थ अर्गलास्वरूपिणि! हे अटूट प्रेमसे प्राप्त की जानेवाली! हे तेजोमयी देवि! आपको नमस्कार है ॥ ८९ ॥

हे श्रीकालिके! आपको नमस्कार है। हे मातः! आपको नमस्कार है। हे नीलसरस्वति! हे उग्रतारे! हे महोग्रे! आपको नित्य बार-बार नमस्कार है ॥ ९० ॥

हे पीताम्बरे! आपको नमस्कार है। हे देवि! हे त्रिपुरसुन्दरि! आपको नमस्कार है। हे भैरवि! आपको नमस्कार है। हे मातंगि! हे धूमावति! आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ९१ ॥

हे छिन्नमस्ते! आपको नमस्कार है। हे क्षीरसागरकन्यके! आपको नमस्कार है। हे शाकम्भरि! हे शिवे! हे रक्तदन्तिके! आपको नमस्कार है ॥ ९२ ॥

हे शुम्भ तथा निशुम्भका संहार करनेवाली! हे रक्तबीजका विनाश करनेवाली! हे धूम्रलोचनका वध करनेवाली! हे वृत्रासुरका ध्वंस करनेवाली! हे चण्ड तथा मुण्डका दलन करनेवाली! हे दानवोंका अन्त करनेवाली! हे शिवे! हे विजये! हे गंगे! हे शारदे! हे प्रसन्नमुखि! आपको नमस्कार है ॥ ९३-९४ ॥

हे पृथ्वीरूपे! हे दयारूपे! हे तेजोरूपे! आपको बार-बार नमस्कार है। हे प्राणरूपे! हे महारूपे! हे भूतरूपे! आपको नमस्कार है ॥ ९५ ॥

हे विश्वमूर्ते! हे दयामूर्ते! हे धर्ममूर्ते! आपको बार-बार नमस्कार है। हे देवमूर्ते! हे ज्योतिमूर्ते! हे ज्ञानमूर्ते! आपको नमस्कार है ॥ ९६ ॥

हे गायत्रि! हे वरदे! हे देवि! हे सावित्रि! हे सरस्वति! आपको नमस्कार है। हे स्वाहे! हे स्वधे! हे मातः! हे दक्षिणे! आपको बार-बार नमस्कार है ॥ ९७ ॥

समस्त शास्त्र 'नेति-नेति' वचनोंसे जिनका बोध करते हैं, उन प्रत्यक्‌स्वरूपा परादेवता भगवतीकी हम सभी देवगण उपासना करते हैं ॥ ९८ ॥

सदा भ्रमरोंसे घिरी रहनेके कारण जो 'भ्रामरी' कही जाती हैं, उन भगवतीको नित्य-नित्य अनेकशः प्रणाम है ॥ ९९ ॥

हे अम्बिके! आपके पार्श्व तथा पृष्ठ भागमें हमारा नमस्कार है। आपके आगे नमस्कार है, ऊपर नमस्कार है, नीचे नमस्कार है तथा सभी ओर नमस्कार है ॥ १०० ॥

हे मणिद्वीपमें निवास करनेवाली! हे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंकी अधीश्वरि! हे महादेवि! हे जगदम्बिके! हम सबपर कृपा कीजिये ॥ १०१ ॥

हे जगज्जननि! हे देवि! आपकी जय हो! हे देवि! हे परात्परे! आपकी जय हो! हे श्रीभुवनेश्वरि! आपकी जय हो! हे सर्वोत्तमोत्तमे! आपकी जय हो ॥ १०२ ॥

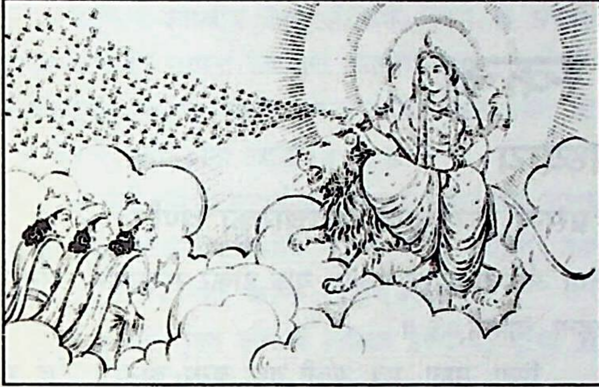
हे कल्याण तथा गुणरत्नोंकी निधिस्वरूपे! हे भुवनेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे परमेश्वरि! प्रसन्न हो जाइये। हे संसारकी तोरणस्वरूपे! प्रसन्न हो जाइये ॥ १०३ ॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] देवताओंकी यह प्रगल्भ तथा मधुर वाणी सुनकर मत्त कोयलके समान बोलनेवाली वे जगदम्बा कहने लगीं ॥ १०४ ॥

देवी बोलीं—हे देवताओ! वर प्रदान करनेवालोंमें श्रेष्ठ मैं (आपसे) सदा प्रसन्न हूँ। आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा हो, उसे बतायें ॥ १०५ ॥

देवीका यह वचन सुनकर देवताओंने अपने दुःखका कारण बतलाया। उन्होंने दुष्ट दैत्यके द्वारा जगत्‌में किये जानेवाले महान् पीडाकारक कृत्यों; सर्वत्र देवताओं, ब्राह्मणों और वेदोंकी अवहेलना तथा विनाश और अपने-अपने स्थानसे देवताओंके च्युत कर दिये जानेका वर्णन बड़े विनयपूर्वक कर दिया। साथ ही ब्रह्माजीद्वारा उस दैत्यको दिये गये वरदानके विषयमें भी देवताओंने देवीसे यथावत् कह दिया ॥ १०६-१०७½ ॥

तब देवताओंके मुखसे यह वाणी सुनकर महाभगवती भ्रामरीने अपने हस्तस्थित, पार्श्वप्रान्तस्थित तथा अग्रभागस्थित अनेकरूपधारी भ्रमरोंको प्रेरित किया; इसके साथ ही बहुत-से भ्रमरोंको उत्पन्न भी किया, जिनसे तीनों भुवन व्याप्त हो गये॥ १०८-१०९ १/२ ॥



उस समय उन भ्रमरोंके झुण्ड टिड्डियोंके दलके समान निकलने लगे। उन भ्रमरोंसे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष आच्छादित हो गया और पृथ्वीपर अन्धकार छा गया। आकाशमें, पर्वतोंके शिखरोंपर, वृक्षोंपर तथा वनोंमें सर्वत्र भ्रमर-ही-भ्रमर हो गये। वह दृश्य अत्यन्त आश्चर्यजनक था॥ ११०-१११ १/२ ॥

वे सभी भ्रमर निकल-निकलकर दैत्योंके वक्ष:स्थलको उसी प्रकार छेदने लगे, जैसे क्रोधमें भरी मधुमक्खियाँ मधुका दोहन करनेवाले व्यक्तिको काटती हैं॥ ११२ १/२ ॥

उस समय अस्त्रों तथा शस्त्रोंसे किसी प्रकार भी सुरक्षाका उपाय सम्भव नहीं हो सका। दैत्य न युद्ध कर सके और न कोई सम्भाषण ही। उन्हें केवल अपनी मृत्यु दिखायी दे रही थी॥ ११३ १/२ ॥

जिस-जिस स्थानपर जो-जो दैत्य जिस-जिस स्थितिमें विद्यमान थे, वे सब उसी रूपमें उसी स्थानपर अट्टहास करते हुए मृत्युको प्राप्त हुए॥ ११४ १/२ ॥

उन दैत्योंमेंसे किसीकी भी एक-दूसरेसे कोई बातचीत भी नहीं हो सकी और वे सभी दैत्यश्रेष्ठ क्षणभरमें विनष्ट हो गये॥ ११५ १/२ ॥

इस प्रकार यह कार्य करके वे भ्रमर पुन: देवीके पास आ गये। यह तो आश्चर्य हो गया—ऐसा सभी लोग कहने लगे। जिन जगदम्बाकी इस प्रकारकी यह माया है, उनके लिये कौन-सा कार्य आश्चर्यजनक है॥ ११६-११७॥

तदनन्तर हर्षरूपी समुद्रमें डूबे हुए सभी देवगणोंने ब्रह्मा, विष्णु आदिको अग्रसर करके अनेक प्रकारके उपचारोंसे देवीकी पूजा की, अपने हाथोंसे उन्हें नानाविध उपहार प्रदान किये और जय-जयकार करते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा की॥ ११८-११९॥

आकाशमें दुन्दुभियाँ बज उठीं, अप्सराएँ नृत्य करने लगीं, गन्धर्व आदि गाने लगे तथा श्रेष्ठ मुनिगण वेदपाठ करने लगे। मृदंग, ढोल, वीणा, ढाक, डमरू, घण्टा और शंख आदिकी ध्वनियोंसे तीनों लोक व्याप्त हो गये॥ १२०-१२१॥

उस समय अनेकविध स्तोत्रोंसे देवीका स्तवन करके अपनी अंजलियाँ मस्तकपर रखकर सभी देवता कहने लगे—हे मात:! आपकी जय हो। हे ईशानि! आपकी जय हो॥ १२२॥

उनके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करनेपर उनपर परम प्रसन्न भगवती महादेवीने उन देवताओंको पृथक्-पृथक् वर प्रदान करके उन्हें अपनी विपुल भक्ति प्रदान की। इसके बाद देवताओंके देखते-देखते वे अन्तर्धान हो गयीं॥ १२३ १/२ ॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने आपसे भगवती भ्रामरीके सम्पूर्ण महिमाशाली चरित्रका वर्णन कर दिया, जिसके पढ़ने तथा सुननेवालोंके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। सुननेमें आश्चर्यजनक यह [देवीचरित्र] संसाररूपी सागरसे पार कर देनेवाला है॥ १२४-१२५॥

इसी प्रकार अन्य सभी मनुओंका चरित्र भी पापको नष्ट करनेवाला, देवीके माहात्म्यसे परिपूर्ण तथा पढ़ने-सुननेवालेके लिये कल्याणप्रद है॥ १२६॥

जो मनुष्य इस चरित्रको नित्य पढ़ता है तथा निरन्तर सुनता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर देवी-सायुज्य प्राप्त कर लेता है॥ १२७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत दसवें स्कन्धका 'भ्रामरीचरित्रवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

॥ दशम स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

एकादश स्कन्ध

पहला अध्याय

भगवान् नारायणका नारदजीसे देवीको प्रसन्न करनेवाले सदाचारका वर्णन

नारद बोले—हे भगवन्! हे भूतभव्येश! हे नारायण! हे सनातन! आपने भगवतीके परम विस्मयकारक एवं श्रेष्ठ चरित्रका वर्णन किया। साथ ही आपके द्वारा असुरद्रोही देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके निमित्त माता भगवतीके उत्तम प्राकट्य तथा देवीकी पूर्ण कृपासे उनकी अधिकार-प्राप्तिका वर्णन भी किया गया॥ १-२॥

हे प्रभो! अब मैं उस आचारके विषयमें सुनना चाहता हूँ, जिससे भगवती अपने भक्तोंपर सदा प्रसन्न होती हैं तथा उनका पालन-पोषण करती हैं, उसे बताइये॥ ३॥



श्रीनारायण बोले—हे तत्त्वोंके ज्ञाता नारद! जिस सदाचारके अनुष्ठानसे देवी सर्वदा प्रसन्न रहती हैं, उसकी विधिके विषयमें अब आप क्रमसे सुनिये॥ ४॥

प्रातःकाल उठकर द्विजको प्रतिदिन जिस आचारका पालन करना चाहिये; अब मैं द्विजोंका उपकार करनेवाले उस आचारका भलीभाँति वर्णन करूँगा॥ ५॥

द्विजको सूर्योदयसे लेकर सूर्यास्तपर्यन्त नित्य, नैमित्तिक तथा अनिन्द्य काम्य कर्मोंसे युक्त होकर सत्कर्मोंमें संलग्न रहना चाहिये॥ ६॥

पिता, माता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी [परलोकमें] आत्माके सहायतार्थ उपस्थित नहीं रहते; केवल धर्म ही उपस्थित होता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये। धर्मके ही साहाय्यसे मनुष्य दुस्तर अन्धकारको पार कर लेता है॥ ७-८॥

आचार ही प्रथम (मुख्य) धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है, अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने कल्याणके लिये इस सदाचारके पालनमें नित्य संलग्न रहे॥ ९॥

मनुष्य आचारसे आयु प्राप्त करता है, आचारसे सन्तानें प्राप्त करता है तथा आचारसे अक्षय अन्न प्राप्त करता है। यह आचार पापको नष्ट कर देता है॥ १०॥

आचार मनुष्योंका परम धर्म है तथा उनके लिये कल्याणप्रद है। सदाचारी व्यक्ति इस लोकमें सुखी रहकर परलोकमें भी सुख प्राप्त करता है॥ ११॥

मोहसे भ्रमित चित्तवाले तथा अज्ञानान्धकारमें भटकनेवाले लोगोंके लिये यह आचार धर्मरूपी महान् दीपक बनकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखाता है॥ १२॥

आचारसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है, आचारसे ही सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है और सत्कर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है—मनुका यह प्रसिद्ध वचन है॥ १३॥

यह आचार सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ तथा परम तप है।

उसीको ज्ञान भी कहा गया है। उसीसे सब कुछ सिद्ध कर लिया जाता है॥ १४॥

द्विजश्रेष्ठ होकर भी जो इस लोकमें आचारसे रहित है, वह शूद्रकी भाँति बहिष्कारके योग्य है; क्योंकि जैसा शूद्र है वैसा ही वह भी है॥ १५॥

आचार शास्त्रीय तथा लौकिक-भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। अपना कल्याण चाहनेवालेको इन दोनों ही आचारोंका सम्यक् पालन करना चाहिये और उनसे कभी भी विरत नहीं होना चाहिये॥ १६॥

हे मुने! सभी मनुष्योंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म तथा कुलधर्मोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये, उनका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये॥ १७॥

दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दुःख प्राप्त करता है और रोगसे सदा ग्रस्त रहता है॥ १८॥

जो अर्थ तथा काम धर्मसे रहित हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। साथ ही लोकविरुद्ध धर्मको भी छोड़ देना चाहिये; क्योंकि वह परिणाममें दुःखदायी होता है॥ १९॥

नारदजी बोले—हे मुने! जगत्‌में तो शास्त्रोंका बाहुल्य है; ऐसी स्थितिमें कुछ भी कैसे निश्चित किया जाय। धर्ममार्गका निर्णय करनेवाले कितने प्रमाण हैं; यह मुझे बताइये॥ २०॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] श्रुति तथा स्मृति दोनों नेत्र हैं तथा पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंमें जो भी कहा गया है, वही धर्म है, इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं॥ २१॥

इन तीनोंमें जहाँ परस्पर विरोध हो, वहाँ श्रुतिको प्रमाण मानना चाहिये। इसी प्रकार स्मृति तथा पुराणमें विरोध होनेपर स्मृति श्रेष्ठ है॥ २२॥

श्रुतिमें जहाँ दो वचनोंमें परस्पर विरोध हो तो वहाँ वे दोनों ही वचन धर्म हैं। यदि स्मृतिमें द्वैध-स्थिति हो जाय तो प्रसंगानुसार पृथक्-पृथक् विषय कल्पित कर लेने चाहिये॥ २३॥

पुराणोंमें कही-कहीं तन्त्र भी सूक्ष्मरूपसे व्याख्यायित किये गये हैं। जिसे धर्म बताया गया है, उसीको धर्मरूपसे ग्रहण करना चाहिये, किसी अन्यको किसी भी तरह नहीं॥ २४॥

यदि तन्त्रका वचन वेदविरोधी नहीं है तो उसकी प्रामाणिकतामें सन्देह नहीं है, किंतु श्रुतिसे जो प्रत्यक्ष विरुद्ध हो, वह वचन प्रमाण नहीं हो सकता॥ २५॥

वेद ही पूर्णरूपसे धर्म-मार्गके प्रमाण हैं। उस वेदराशिसे विरोध न रखनेवाला जो कुछ भी है, वही प्रमाण है; दूसरा नहीं॥ २६॥

वेद-प्रतिपादित धर्मको छोड़कर जो अन्यको प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे दण्डित करनेके लिये यमलोकमें नरककुण्ड स्थित हैं। अतएव सभी प्रयत्नोंसे वेदोक्त धर्मका ही आश्रय लेना चाहिये। स्मृति, पुराण, तन्त्र, शास्त्र तथा अन्य ग्रन्थ—इनके वेदमूलक होनेकी स्थितिमें ही वे प्रमाण होते हैं; इसके विपरीत वे कभी भी प्रमाण नहीं हो सकते॥ २७-२८$^{1}/_{2}$॥

जो लोग इस लोकमें मनुष्योंको निन्दित शास्त्रोंका उपदेश करते हैं, वे मुख नीचे तथा पैर ऊपर किये हुए नरकसागर जायँगे॥ २९$^{1}/_{2}$॥

स्वेच्छाचारी, पाशुपतमार्गावलम्बी, लिंगधारी, तप्त मुद्रासे अंकित तथा वैखानस मत माननेवाले जो भी लोग हैं, वेदमार्गसे विचलित होनेके कारण वे सभी नरक जाते हैं॥ ३०-३१॥

अतएव मनुष्यको सदा वेदोक्त सद्धर्मका ही पालन करना चाहिये। उसे सावधान होकर बार-बार विचार करना चाहिये कि आज मैंने कौन-कौन-सा कार्य किया, क्या दिया, क्या दिलाया अथवा वाणीसे कैसा सम्भाषण किया? यह भी सोचना चाहिये कि अत्यन्त दारुण सभी पातकों तथा उपपातकोंमें कहीं मेरी प्रवृत्ति तो नहीं हो गयी॥ ३२-३३॥

रात्रिके चौथे प्रहरमें [उठकर] ब्रह्मध्यान करना चाहिये। जंघाओंपर पैरको ऊपरकी ओर करके (पद्मासनमें) बैठे, बायीं जंघापर दाहिना पैर उत्तान करके रखना चाहिये। हनु (ठुड्डी)-को वक्षःस्थलसे लगाकर नेत्रोंको बन्द करके सहज भावमें स्थित होकर बैठना चाहिये, दाँतोंका दाँतोंसे स्पर्श नहीं करना चाहिये॥ ३४-३५॥

जिह्वाको तालुके समीप अचल स्थितिमें रखे, मुँह बन्द किये रहे, शान्तचित्त रहे, इन्द्रियसमूहोंपर नियन्त्रण रखे तथा बहुत नीचे आसनपर स्थित न हो। दो बार अथवा तीन बार

प्राणायाम करना चाहिये। तत्पश्चात् दीपकस्वरूप जो प्रभु हृदयमें अवस्थित हैं, उनका ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार विद्वान् व्यक्तिको अपने हृदयमें परमात्माके विराजमान रहनेकी धारणा करनी चाहिये ॥ ३६-३७½ ॥

सधूम (श्वाससहित), विधूम (श्वासरहित), सगर्भ (मन्त्र-जपसहित), अगर्भ (मन्त्ररहित), सलक्ष्य (इष्टदेवके ध्यानसहित) और अलक्ष्य (ध्यानरहित)—यह छः प्रकारका प्राणायाम होता है। प्राणायाममें वायुका नियमन किया जाता है, अतएव इस प्राणायामको ही योग कहा गया है ॥ ३८-३९ ॥

यह प्राणायाम भी रेचक, पूरक तथा कुम्भक भेदोंवाला कहा गया है। रेचक, पूरक तथा कुम्भक-संज्ञक प्राणायाम वर्णत्रयात्मक है, इसीको प्रणव कहा गया है। उस प्रणवमें तन्मय हो जाना ही प्राणायाम है ॥ ४०½ ॥

इडा नाड़ीसे वायुको ऊपर खींचकर उदरमें पूर्णरूपसे स्थित कर लेनेके अनन्तर पुनः दूसरी (पिंगला) नाड़ीसे धीरे-धीरे सोलह मात्रामें उस वायुको निकालना चाहिये। हे मुने! इस प्रकार यह सधूमप्राणायाम कहा गया है ॥ ४१-४२ ॥

मूलाधार, लिंग, नाभि, हृदय, कंठ तथा ललाट (भ्रूमध्य)-में क्रमशः चतुर्दल, षड्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल तथा द्विदल कमल विद्यमान हैं। मूलाधारचक्रमें



सिद्धासन

वँ, शँ, षँ, सँ वर्णों; स्वाधिष्ठानचक्रमें बँ, भँ, मँ, यँ, रँ, लँ वर्णों; मणिपूरकचक्रमें डँ, ढँ, णँ, तँ, थँ, दँ, धँ, नँ, पँ, फँ वर्णों; अनाहतचक्रमें कँ, खँ, गँ, घँ, ङँ, चँ, छँ, जँ, झँ, ञँ, टँ, ठँ वर्णों; विशुद्धाख्यचक्र (कण्ठदेश)-में सभी सोलह स्वरों तथा आज्ञाचक्रमें हँ, क्षँ वर्णोंवाले द्विदल पद्ममें विराजमान तत्त्वार्थयुक्त उन ब्रह्मस्वरूप सभी वर्णोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४३ ॥

जिसके चित्तमें एक बार भी अरुणकमलासना, पद्मरागके पुंजके समान वर्णवाली, शिवलिंगसे अंकित, कमलतन्तुके समान सूक्ष्म स्वरूपवाली, सूर्य-अग्नि-चन्द्र (-रूपी नेत्रों)-से आलोकित मुखमण्डल और उन्नत स्तनोंसे सुशोभित जगदम्बाका निवास हो जाता है, वही मुक्त है ॥ ४४ ॥

वे भगवती ही स्थिति हैं, वे ही गति हैं, वे ही यात्रा हैं, वे ही मति हैं, वे ही चिन्ता हैं, वे ही स्तुति हैं और वे ही वाणी हैं। मैं सर्वात्मा देवता हूँ और मेरे द्वारा की गयी स्तुति ही आपकी समस्त अर्चना है, मैं स्वयं देवीरूप हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं। मैं ही ब्रह्म हूँ, मुझमें शोक व्याप्त नहीं हो सकता और मैं सच्चिदानन्दस्वरूप हूँ—ऐसा अपनेको समझना चाहिये ॥ ४५-४६ ॥

प्रथम प्रयाणके समय अर्थात् मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रकी ओर (जाते समय) विद्युत्-सदृश प्रकाशमान, प्रतिप्रयाणमें अमृतसदृश प्रतीतिवाली तथा अन्तिम प्रयाणमें सुषुम्ना नाड़ीमें संचरित होनेवाली आनन्दस्वरूप भगवती कुण्डलिनीकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ ४७ ॥

तत्पश्चात् अपने ब्रह्मरन्ध्रमें ईश्वररूप उन गुरुका ध्यान करना चाहिये और मानसिक उपचारोंसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः साधकको संयतचित्त होकर इस मन्त्रसे गुरुकी प्रार्थना करनी चाहिये—'**गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥**' गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही देवता हैं, गुरु ही महेश्वर शिव हैं और गुरु ही परब्रह्म हैं; उन श्रीगुरुको नमस्कार है ॥ ४८-४९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'प्रातश्चिन्तन' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १ ॥

दूसरा अध्याय

शौचाचारका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] छहों अंगोंसहित अधीत किये गये वेद भी आचारविहीन व्यक्तिको पवित्र नहीं कर सकते। पढ़े गये छन्द (वेद) ऐसे आचारहीन प्राणीको उसी भाँति मृत्युकालमें छोड़ देते हैं, जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला त्याग देते हैं॥ १॥

विद्वान् पुरुषको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर आचारसम्बन्धी सभी कर्मोंको भलीभाँति सम्पादित करना चाहिये और रातके अन्तिम प्रहरमें वेदाभ्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् योगी पुरुष कुछ समय अपने इष्टदेवका चिन्तन करे और पुनः पूर्वोक्त मार्गसे ब्रह्मका ध्यान करे॥ २-३॥

हे नारद! ऐसा निरन्तर करनेसे जब जीव तथा ब्रह्ममें ऐक्य स्थापित हो जाता है, तब उसी क्षण वह जीवन्मुक्त हो जाता है॥ ४॥

रात्रिके अन्तमें पचपन घड़ीके बाद उषःकाल, सत्तावन घड़ीके बाद अरुणोदयकाल तथा अट्ठावन घड़ीके बाद प्रातःकाल होता है। इसके बादवाला शेष समय सूर्योदयकाल कहा गया है॥ ५॥

श्रेष्ठ द्विजको प्रातःकाल उठकर नैर्ऋत्यदिशामें धनुषसे छोड़े गये बाणद्वारा तय की गयी दूरीसे भी आगेकी भूमिपर जाकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ६॥

ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित द्विजको मल-मूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत अपने कानपर रख लेना चाहिये। वानप्रस्थ तथा गृहस्थ यज्ञोपवीतको आगे लटकाकर पीठपर कर ले॥ ७॥

गृहस्थको यज्ञोपवीत कण्ठीके समान पीठकी ओर लटकाकर और प्रथम आश्रममें स्थित ब्रह्मचारीको यज्ञोपवीत कानपर रखकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ८॥

तृणोंसे भूमिको ढँककर, सिरको वस्त्रसे आच्छादित करके, मौन हो करके, थूकने तथा श्वासक्रियासे रहित होकर मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये॥ ९॥

जोती हुई भूमिपर, जलमें, चिताके स्थानपर, पर्वतपर, जीर्ण देवस्थलोंपर, वल्मीक (बिमौट)-पर तथा हरी घासपर, मल-मूत्र नहीं करना चाहिये। मल-मूत्रका त्याग न तो जीव-जन्तुवाले गड्ढोंमें, न तो चलते हुए और न तो रास्तेमें स्थित होकर ही करे॥ १०$^1/_2$॥

दोनों सन्ध्याओंमें, जपकालमें, भोजनके समय, दन्तधावन करते समय, पितृ तथा देव-कार्य सम्पन्न करते समय, मल-मूत्रके उत्सर्गके समय, हर्षातिरेककी स्थितिमें, मैथुन करते समय, गुरुकी सन्निधिमें, यज्ञ करते समय, दान देते समय तथा ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय)-के समय द्विजको मौन धारण किये रहना चाहिये॥ ११-१२$^1/_2$॥

शौचसे पूर्व ऐसा उच्चारण करना चाहिये—सभी देवता, ऋषि, पिशाच, नाग, राक्षस तथा भूत-समुदाय यहाँसे चले जायँ; क्योंकि मैं यहाँ मल-त्याग करना चाहता हूँ। इस प्रकार प्रार्थना करके विधिपूर्वक शौच करना चाहिये॥ १३-१४॥

वायु, अग्नि, ब्राह्मण, सूर्य, जल तथा गौको देखते हुए मल-मूत्रका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। दिनमें उत्तर दिशाकी ओर तथा रातमें दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये। तत्पश्चात् मल-मूत्रको मिट्टीके ढेलों, पत्तों, तृण आदिसे ढँक करके पुनः उठकर जननेन्द्रियको पकड़े हुए जलके निकट जाना चाहिये। पात्रमें जल लेकर वहाँसे दूसरे स्थानपर जाना चाहिये॥ १५—१७॥

शुद्धिके लिये जलाशयके तटसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको श्वेत, क्षत्रियको लाल, वैश्यको पीली तथा शूद्रको काली मिट्टी लेनी चाहिये अथवा जिस स्थानपर जो मिट्टी उपलब्ध हो जाय; उत्तम द्विजको वही ले लेनी चाहिये। पानीके अन्दरसे, देवालयसे, वल्मीकसे तथा चूहेके बिलसे गृहीत और शौचसे अवशिष्ट—ये पाँच मिट्टियाँ ग्राह्य नहीं हैं॥ १८-१९$^1/_2$॥

मूत्र-त्यागकी अपेक्षा मल-त्यागमें दोगुनी तथा मैथुनके बाद तीन गुनी शुद्धि कही गयी है। मूत्र-त्यागके पश्चात् लिंगमें एक बार, बायें हाथमें तीन बार और पुनः दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाना बताया गया है; इसे मूत्र-शौच कहा गया है। मल-शौचमें यही क्रिया दोगुनी कही गयी है। मल-त्यागके पश्चात् शुद्धिहेतु लिंगमें दो बार,

गुदामें पाँच बार तथा दोनों हाथोंमें ग्यारह बार मिट्टी लगानी चाहिये॥ २०—२२॥

उत्तम बुद्धिवाले पुरुषको पहले अपने बायें पैर तथा बादमें दाहिने पैरमें—इस प्रकार प्रत्येकमें चार-चार बार मिट्टी लगाकर शुद्धि करनी चाहिये॥ २३॥

शुद्धि-सम्बन्धी यह नियम गृहस्थोंके लिये है। ब्रह्मचारीको इससे दुगुनी, वानप्रस्थको तीन गुनी तथा संन्यासीको चार गुनी शुद्धि करनेका विधान है॥ २४॥

शौचकर्ममें प्रत्येक बार आर्द्र आँवलेके बराबर मिट्टी सदा लेनी चाहिये, इससे कम कभी नहीं लेनी चाहिये। दिनमें मल-त्यागके बादकी शुद्धिका यही नियम है। रात्रिमें इससे आधे, रोगीके लिये उससे आधे तथा मार्गमें स्थित व्यक्तिके लिये उससे भी आधे परिमाणमें शुद्धिका विधान बताया गया है॥ २५-२६॥

स्त्रियों, शूद्रों, अशक्तजनों तथा बालकोंके लिये शौचकर्ममें मिट्टी लगानेकी कोई संख्या नहीं है। जितनी बारमें दुर्गन्ध समाप्त हो जाय, उतनी बार मिट्टी लगानी चाहिये। जबतक दुर्गन्धि मिट नहीं जाती, तबतक बार-बार मिट्टीके अनुलेपनसे शुद्धि-कर्म करनेका विधान है। यह नियम सभी वर्णोंके लिये है—ऐसा भगवान् मनुने कहा है॥ २७-२८॥

शुद्धि-कार्य दाहिने हाथसे न करके सदा बायें हाथसे ही करना चाहिये। नाभिसे नीचे बायें हाथ तथा इससे ऊपर दाहिने हाथका प्रयोग करना चाहिये। शौचकर्मके सम्बन्धमें श्रेष्ठ द्विजोंको यही नियम समझना चाहिये, इसके विपरीत नहीं॥ २९१/२॥

मल-मूत्रका त्याग करते समय विद्वान्‌को जलपात्र हाथमें नहीं लिये रहना चाहिये। यदि अज्ञानतावश लेता है तो बादमें प्रायश्चित्त करना चाहिये। मोह अथवा आलस्यवश यदि वह अपनी शुद्धि नहीं करता तो [इसके प्रायश्चित्तस्वरूप] तीन रात केवल जलके आहारपर रहना चाहिये। इसके बाद गायत्रीजपसे शुद्धि हो जाती है॥ ३०-३११/२॥

देश, काल, द्रव्य, शक्ति तथा अपने साधनोंपर भलीभाँति विचार करके शुद्धिकार्य करना चाहिये; इसमें आलस्य नहीं करना चाहिये॥ ३२१/२॥

मल-त्यागके उपरान्त शुद्धिके लिये बारह बार तथा मूत्र-त्यागके उपरान्त चार बार कुल्ला करना चाहिये; इससे कम कभी नहीं करना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि मुख नीचे करके कुल्लेका जल धीरे-धीरे अपने बायीं ओर फेंके॥ ३३-३४॥

तत्पश्चात् आचमन करके सावधानीपूर्वक दन्तधावन करना चाहिये। इसके लिये काँटे तथा दूधवाले वृक्षसे बारह अंगुलके प्रमाणवाली, छिद्ररहित, कनिष्ठिका अँगुलीके अग्र-भागके सदृश मोटाईवाली तथा आधे भागतक कूर्चके समान बनायी गयी दातौन लेनी चाहिये। करंज, गूलर, आम, कदम्ब, लोध, चम्पा तथा बेरके वृक्ष दन्तधावनके लिये उत्तम कहे गये हैं॥ ३५-३६॥

[उस समय ऐसी प्रार्थना करे] अन्न आदिको सुपाच्य बनाने तथा विघ्नोंको दूर करनेके लिये स्वयं ये [वनस्पतियोंके] राजा सोम यहाँ आये हुए हैं। वे अपने तेज तथा ऐश्वर्यसे मेरे मुखका प्रक्षालन करें। हे वनस्पते! आप मुझे आयु, बल, यश, तेज, प्रजा, पशु, धन, ब्रह्मज्ञान तथा मेधा प्रदान करें*॥ ३७-३८॥

दन्तकाष्ठके अभावमें अथवा निषिद्ध तिथियोंमें जलसे बारह बार कुल्ला कर लेनेसे दन्तधावनकी विधि पूर्ण हो जाती है॥ ३९॥

जो मनुष्य रविवारको दन्तधावन करता है, उसने मानो सूर्यका ही भक्षण कर लिया तथा अपने कुलका स्वयं विनाश कर लिया। साथ ही प्रतिपदा, अमावास्या, षष्ठी, नवमी, एकादशी तथा रविवारको काष्ठसे दन्तधावन करनेसे वह व्यक्ति अपनी सात पीढ़ियोंको जला डालता है॥ ४०-४१॥

पाद-प्रक्षालन करके तीन बार शुद्ध जलसे आचमन करनेके पश्चात् दो बार मुख पोंछ लेना चाहिये। तदनन्तर जल लेकर तर्जनी तथा अँगूठेसे दोनों नासिकाछिद्रोंका, अँगूठे तथा अनामिकासे दोनों नेत्रों तथा दोनों कानोंका, कनिष्ठा तथा अँगूठेसे नाभिस्थलका, हाथके तलसे हृदयका और सभी अँगुलियोंसे सिरका स्पर्श करना चाहिये॥ ४२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'शौचविधिवर्णन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

---

* अन्नाद्याय व्यूहध्वंसे सोमो राजायमागमत्। स मे मुखं प्रक्षाल्य तेजसा च भगेन च॥
आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजाः पशुवसूनि च। ब्रह्मप्रज्ञां च मेधां च त्वन्नो देहि वनस्पते॥ (श्रीमद्देवीभा० ११। २। ३७-३८)

तीसरा अध्याय

सदाचार-वर्णन और रुद्राक्ष-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण बोले—(शुद्ध, स्मार्त, पौराणिक, वैदिक, तान्त्रिक तथा श्रौत—यह छः प्रकारका श्रुति-प्रतिपादित आचमन कहा गया है। मल-मूत्रादिके विसर्जनके पश्चात् शुद्धिके लिये किया जानेवाला आचमन शुद्ध आचमन कहा गया है। कर्मके पूर्व किया गया आचमन स्मार्त तथा पौराणिक कहा जाता है। ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) आरम्भ करनेके पूर्व किया गया आचमन वैदिक तथा श्रौत एवं अस्त्र-विद्या आदि कर्मोंके प्रारम्भसे पूर्व कृत आचमन तान्त्रिक आचमन कहा जाता है।)

ॐकार तथा गायत्री मन्त्रका स्मरण करके शिखाबन्धन करे। तत्पश्चात् आचमन करके हृदय, दोनों भुजाओं तथा दोनों स्कन्धोंका स्पर्श करे॥ १॥

छींकने, थूकने, दाँतोंसे जूठनका स्पर्श हो जाने, झूठ बोलने तथा पतितोंसे बातचीत हो जानेपर शुद्धिहेतु दाहिने कानका स्पर्श करना चाहिये। हे नारद! अग्नि, जल, चारों वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु—ये सब ब्राह्मणके दाहिने कानपर विराजमान रहते हैं॥ २-३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! तत्पश्चात् नदी आदिपर जाकर देह-शुद्धिके लिये विधिपूर्वक प्रातःकालिक स्नान करना चाहिये। नौ द्वारोंसे निरन्तर मल निकालनेवाला शरीर अत्यन्त अशुद्ध रहता है, अतएव उसकी शुद्धिके लिये प्रभात-वेलामें स्नान किया जाता है। अगम्या स्त्रीके साथ गमन करने, प्रतिग्रह स्वीकार करने तथा एकान्तमें निन्द्य कर्म करनेसे जो पाप लगता है, उन सभीसे मनुष्य प्रातःस्नान कर लेनेसे मुक्त हो जाता है॥ ४—६॥

चूँकि प्रातःस्नान न करनेवालेकी सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं, अतएव प्रतिदिन प्रातःकालीन स्नान अवश्य ही करना चाहिये॥ ७॥

स्नान तथा सन्ध्यावन्दन-कार्य कुशसहित करना चाहिये। सात दिनोंतक प्रातःकाल स्नान न करनेवाला, तीन दिनोंतक सन्ध्योपासन न करनेवाला तथा बारह दिनोंतक अग्निकर्म (हवन) न करनेवाला द्विज शूद्रत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ८१/२॥

स्नानादिके अधिक समय-साध्य होनेके फलस्वरूप हवन-कर्मके लिये कम समय बचनेके कारण प्रातःकाल उस प्रकार स्नान न करे कि होम-कार्य उचित समयपर सम्पन्न न हो पानेसे कर्ताको निन्दाका पात्र बनना पड़े॥ ९१/२॥

गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है। चूँकि यह उच्चारण करनेवालेकी रक्षा करती है, अतः इसे गायत्री नामसे अभिहित किया जाता है॥ १०॥

तीन बार प्राणायाम करके विप्रको प्राणवायुको अपानवायुमें नियन्त्रित करना चाहिये और प्रणव (ॐकार) तथा व्याहृतियों (भूर्भुवः स्वः)-सहित गायत्री-जप करना चाहिये॥ १११/२॥

श्रुति-सम्पन्न ब्राह्मणको सदा अपने धर्मका पालन करना चाहिये। उसे वैदिक मन्त्रका जप करना चाहिये, लौकिक मन्त्रका जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १२१/२॥

गायकी सींगपर सरसों जितने समयतक स्थिर रह सकती है, उतने समय भी जिनका प्राणवायु प्राणायाम-कालमें नहीं रुकता, वे अपने दोनों पक्षों (माता-पिता)-की एक सौ एक पीढ़ियोंके पितरोंको कभी नहीं तार सकते। जपसहित किया गया प्राणायाम सगर्भ और केवल ध्यानयुक्त प्राणायाम अगर्भ नामवाला है॥ १३-१४॥

देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंको सन्तुष्ट करनेके निमित्त स्नानांग-तर्पण करना चाहिये। पुनः जलसे बाहर आकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करके विभूति तथा रुद्राक्षकी माला धारण करनी चाहिये। इस प्रकार जप-साधना करनेवालोंको क्रमसे यह सब सदैव करना चाहिये॥ १५-१६॥

जो व्यक्ति अपने कण्ठमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, दोनों कानोंमें छः-छः, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, दोनों बाहुओंमें चन्द्रकलाके बराबर सोलह-सोलह, दोनों नेत्रोंमें

एक-एक, शिखामें एक तथा वक्ष:स्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् नीलकण्ठ शिव हो जाता है॥ १७॥

हे मुने! सोने अथवा चाँदीके तारमें पिरोकर मनुष्यको शिखामें, दोनों कानोंमें, यज्ञोपवीतमें, हाथमें, कण्ठमें तथा उदरपर श्रीपंचाक्षर मन्त्र **'नमः शिवाय'** अथवा प्रणव (ओंकार)-के जपके साथ समाहित होकर रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८-१९॥

मेधावी पुरुषको निष्कपट भक्तिके साथ प्रसन्नतापूर्वक रुद्राक्ष धारण करना चाहिये; क्योंकि रुद्राक्ष धारण करना साक्षात् शिवज्ञानकी प्राप्तिका साधन है॥ २०॥

जो रुद्राक्ष शिखामें धारण किया जाता है, उसे तारक तत्त्वकी भाँति समझना चाहिये। हे ब्रह्मन्! दोनों कानोंमें धारण किये गये रुद्राक्षमें शिव तथा शिवाकी भावना करनी चाहिये। यज्ञोपवीतमें धारण किये गये रुद्राक्षको चारों वेद तथा हाथमें धारण किये गये रुद्राक्षको दिशाएँ जानना चाहिये। कण्ठमें धारित रुद्राक्षको देवी सरस्वती तथा अग्निके तुल्य मानना चाहिये॥ २१-२२॥

सभी आश्रमों तथा वर्णोंके लोगोंके लिये रुद्राक्ष-धारण करनेका विधान है। द्विजोंको मन्त्रोच्चारणके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये, किंतु अन्य वर्णके लोगोंको नहीं॥ २३॥

रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे व्यक्ति साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है। निषिद्ध चीजोंको देखने, उनके विषयमें सुनने, उनका स्मरण करने, उन्हें सूँघने, खाने, निरन्तर उनके विषयमें बातचीत करने, सदा ऐसे कर्म करने, अपरित्याज्य अर्थात् विहितका परित्याग करनेपर रुद्राक्ष धारण कर लेनेसे मनुष्य सभी प्रकारके पापोंसे प्रभावित नहीं होता। ऐसे व्यक्तिने जो कुछ ग्रहण कर लिया, उसे मानो शिवजीने स्वीकार कर लिया, उसने जो भी पी लिया, उसे शिवजीने पी लिया तथा जो कुछ सूँघ लिया, उसे भी मानो शिवजीने ही सूँघ लिया॥ २४—२६½॥

हे महामुने! जो लोग रुद्राक्ष धारण करनेमें लज्जाका अनुभव करते हैं, करोड़ों जन्मोंमें भी संसारसे उनका मोक्ष नहीं हो सकता॥ २७½॥

किसी रुद्राक्ष धारण करनेवालेको देखकर जो मनुष्य उसकी निन्दा करता है, उसके उत्पन्न होनेमें वर्णसंकरताका दोष निश्चितरूपसे विद्यमान होता है॥ २८½॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे ही रुद्र रुद्रत्वको प्राप्त हुए, मुनिगण सत्यसंकल्पवाले हुए तथा ब्रह्माजी ब्रह्मत्वको प्राप्त हुए। अतएव रुद्राक्ष धारण करनेसे अतिरिक्त कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है॥ २९-३०॥

जो मनुष्य रुद्राक्ष धारण करनेवालेको भक्तिपूर्वक वस्त्र तथा अन्न प्रदान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको जाता है॥ ३१॥

जो व्यक्ति प्रसन्न होकर रुद्राक्ष धारण करनेवालेको श्राद्धकर्ममें भोजन कराता है, वह पितृलोकको प्राप्त होता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ३२॥

रुद्राक्ष धारण करनेवालेके दोनों चरणोंको जलसे प्रक्षालित करके उस जलको पीनेवाला मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३३॥

भक्तिपूर्वक रुद्राक्षसहित हार, कड़ा या स्वर्णाभूषण धारण करनेवाला द्विजश्रेष्ठ रुद्रत्वको प्राप्त होता है॥ ३४॥

हे महामते! जो कोई भी मनुष्य जहाँ-कहीं भी समन्त्रक या अमन्त्रक अथवा भावरहित होकर अथवा लज्जासे भी भक्तिपूर्वक केवल रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सम्पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति कर लेता है॥ ३५-३६॥

अहो, मैं रुद्राक्षमाहात्म्यका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हूँ, अतएव पूर्ण प्रयत्नके साथ रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ ३७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'सदाचारनिरूपणमें रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

रुद्राक्षकी उत्पत्ति तथा उसके विभिन्न स्वरूपोंका वर्णन

नारदजी बोले—हे अनघ! इस प्रकारका यह आपका महान् अनुग्रह है जो आपने रुद्राक्षके विषयमें बताया; यह महान् लोगोंके लिये पूज्य है, इसका क्या कारण है, इसे बताइये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसी तरहसे पूर्व कालमें षडानन स्कन्दकुमारने गिरिशायी भगवान् रुद्रसे पूछा था; तब उन्होंने उनसे जो कहा था, उसे आप सुनिये॥ २॥

ईश्वर बोले—हे षडानन! सुनो, मैं [रुद्राक्षके विषयमें] संक्षेपमें यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ। प्राचीन कालमें सभी लोगोंसे अपराजेय त्रिपुर नामक एक दैत्य था॥ ३॥

उसने ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देवताओंको जीत लिया था। तब सभी देवताओंके द्वारा उसके विषयमें मुझसे बतानेपर मैं समस्त देवताओंकी शक्तिसे सम्पन्न, दिव्य, प्रज्वलित, भयानक रूपवाले तथा मनोहर अघोर नामक एक महान् अस्त्रके विषयमें कल्पना करने लगा॥ ४-५॥

उस त्रिपुरके संहार तथा देवताओंके उद्धारके लिये मैं समस्त विघ्नोंका नाश करनेवाले उस अघोरास्त्रके लिये चिन्तन करता रहा और दिव्य एक हजार वर्षोंतक मैं नेत्र खोले रह गया। तत्पश्चात् अत्यन्त आकुल मेरे नेत्रोंसे जलकी बूँदें गिरने लगीं॥ ६-७॥

उन अश्रु-बिन्दुओंसे रुद्राक्षके बड़े-बड़े वृक्ष उत्पन्न हो गये। हे महासेन! मेरी आज्ञासे सभी लोगोंके कल्याणार्थ वे अड़तीस प्रकारके रुद्राक्ष हुए। मेरे सूर्यनेत्र (दाहिने नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कपिलवर्णके थे, वे बारह प्रकारके कहे गये हैं। मेरे चन्द्रनेत्र (बायें नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष श्वेतवर्णवाले थे, वे क्रमसे सोलह प्रकारके हैं। इसी प्रकार अग्निनेत्र (तीसरे नेत्र)-से उत्पन्न रुद्राक्ष कृष्णवर्णके थे, उनके दस भेद हैं॥ ८—१०॥

श्वेतवर्णका रुद्राक्ष जातिसे ब्राह्मण, रक्तवर्णका रुद्राक्ष क्षत्रिय, मिश्रवर्णका रुद्राक्ष वैश्य तथा कृष्णवर्णका रुद्राक्ष शूद्र कहा जाता है॥ ११॥

एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है, वह ब्रह्महत्या-तकके पापको मिटा देता है। दोमुखी रुद्राक्ष देवी-देवता—इन दोनोंका स्वरूप है, वह दो प्रकारके पापोंका शमन करता है। तीन मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप है, वह स्त्री-वधजनित पापको क्षणभरमें भस्म कर डालता है। चार मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् ब्रह्मास्वरूप है, वह नरवधजनित पापको दूर करता है॥ १२-१३॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् कालाग्नि नामवाले रुद्रका स्वरूप है। पंचमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे मनुष्य अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणसे उत्पन्न होनेवाले तथा अगम्या नारीके साथ सहवास करनेसे लगे हुए सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४$^1/_2$॥

छः मुखवाला रुद्राक्ष कार्तिकेयका स्वरूप है, उसे दाहिने हाथमें धारण करना चाहिये। इसे धारण करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्या आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १५$^1/_2$॥

सप्तमुखी रुद्राक्ष अनंग नामवाले महाभाग्यशाली कामदेवका रूप है। उसे धारण करनेसे मनुष्य स्वर्णकी चोरी आदि पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १६$^1/_2$॥

हे महासेन! आठ मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् विनायक देव है। इसे धारण करनेसे अन्न, वस्त्र तथा स्वर्ण आदिकी विपुल मात्रामें प्राप्ति होती है। धारण करनेपर यह रुद्राक्ष दूषित कुलकी स्त्री तथा गुरुपत्नीके साथ संसर्ग करनेसे लगनेवाले पापों और इसी प्रकारके अन्यान्य पापोंको भी नष्ट कर देता है। उस मनुष्यकी सभी विघ्न-बाधाएँ विनष्ट हो जाती हैं तथा अन्तमें वह परमपदको प्राप्त होता है। ये सभी गुण अष्टमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे फलीभूत होते हैं॥ १७—१९$^1/_2$॥

नौ मुखवाला रुद्राक्ष भैरवस्वरूप है, इसे बायीं भुजापर धारण करना चाहिये। यह भोग तथा मोक्ष देनेवाला बताया गया है। इसे धारण करनेवाला मेरे समान बलवान् हो जाता है। हजारों भ्रूणहत्या तथा सैकड़ों ब्रह्महत्याके पाप इस नौमुखी रुद्राक्षके धारण करनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ २०-२१½॥

दसमुखी रुद्राक्ष साक्षात् देवेश्वर जनार्दन है। इस दस मुखवाले रुद्राक्षके धारण करनेसे ग्रहों, पिशाचों, बेतालों, ब्रह्मराक्षसों तथा पन्नगोंसे उत्पन्न होनेवाले विघ्न शान्त हो जाते हैं॥ २२-२३॥

ग्यारह मुखवाला रुद्राक्ष साक्षात् एकादश रुद्र है। जो मनुष्य इसे शिखामें धारण करता है, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनो। मनुष्य हजारों अश्वमेधयज्ञ करने, वाजपेय-यज्ञ करने और सम्यक्‌रूपसे लाखों गायोंके दान करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल उसे ग्यारहमुखी रुद्राक्ष धारण करनेसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ २४-२५½॥

बारह मुखवाले रुद्राक्षको कानमें धारण करनेसे द्वादश आदित्य प्रसन्न हो जाते हैं; क्योंकि वे रुद्राक्षके बारहों मुखपर विराजमान रहते हैं। अश्वमेध करनेसे जो फल मिलता है, वह फल केवल इसे धारण करनेमात्रसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है। उसे सींगवाले जानवरों, व्याघ्र आदि हिंसक पशुओं तथा शस्त्रधारी शत्रुओंका भय नहीं होता। उसे शारीरिक तथा मानसिक कष्टका भी भय नहीं होता। उसे किसी तरहका रोग नहीं होता तथा वह कहींसे भी किसी तरहके भयसे ग्रस्त न रहते हुए सदा सुख तथा ऐश्वर्यसे सम्पन्न रहता है। द्वादशमुखी रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य हाथी, घोड़े, मृग, बिल्ली, सर्प, चूहे, मेढक, गर्दभ, कुत्ते, सियार तथा अनेक प्रकारके जानवरोंको मारनेसे लगनेवाले पापसे मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २६—३०½॥

हे वत्स! तेरहमुखी रुद्राक्ष यदि प्राप्त हो जाय तो उसे कार्तिकेयके सदृश जानना चाहिये। वह सभी प्रकारकी कामनाओं, अर्थों तथा सिद्धियोंको देनेवाला है। उसके लिये रस-रसायन—सब कुछ सिद्ध हो जाता है तथा समस्त प्रकारके भोग्य-पदार्थ उसे प्राप्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हे षडानन! अपने माता-पिता अथवा भाईका वध करनेवाला व्यक्ति भी उस रुद्राक्षको धारण करनेमात्रसे समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३३½॥

हे पुत्र! यदि किसीको चौदह मुखवाला रुद्राक्ष मिल जाय और वह उसे निरन्तर अपने मस्तकपर धारण करे तो उसका शरीर साक्षात् शिवतुल्य हो जाता है॥ ३४½॥

[श्रीनारायण बोले—] हे मुने! अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या प्रयोजन? देवतालोग भी उसकी निरन्तर पूजा करते हैं और अन्तमें उसे परमगति मिलती है॥ ३५½॥

[शिवजी बोले—] हे षडानन! उत्तम द्विजोंको भक्तिपूर्वक एक रुद्राक्ष सिरपर धारण करना चाहिये। छब्बीस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे सिरपर, पचास रुद्राक्षकी माला हृदयपर, सोलह रुद्राक्षकी माला बाहुवलयपर तथा बारह रुद्राक्षकी माला मणिबन्धपर धारण करना चाहिये। एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी माला अथवा पचास रुद्राक्षोंकी माला अथवा सत्ताईस रुद्राक्षोंकी माला बनाकर उसे धारण करने अथवा उससे जप करनेसे अनन्त फल प्राप्त होता है॥ ३६—३८½॥

हे षडानन! यदि कोई मनुष्य एक सौ आठ रुद्राक्षोंसे निर्मित माला धारण करता है, तो वह प्रतिक्षण अश्वमेध-यज्ञ करनेका फल प्राप्त करता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ३९-४०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

जपमालाका स्वरूप तथा रुद्राक्ष-धारणका विधान

ईश्वर बोले—हे षडानन! अब मैं जपमालाका लक्षण बताऊँगा, उसे सुनो। रुद्राक्षके मुखको ब्रह्मा तथा बिन्दु (ऊपरी भाग)-को रुद्र कहा गया है। रुद्राक्षका पुच्छ (नीचेका भाग) विष्णुरूप है, यह भोग तथा मोक्षका फल प्रदान करता है॥ १$^{1}/_{2}$॥

श्वेतवर्ण या रक्तवर्ण या मिश्रित वर्णवाले, छिद्रयुक्त, अखण्डित तथा काँटेदार पाँच मुखवाले पचीस रुद्राक्षोंसे गायकी पूँछके आकारकी एक अक्षमाला बनानी चाहिये॥ २-३॥

[माला बनानेके लिये] एक दानेका मुख दूसरे दानेके मुखसे संयोजित करते हुए एक दानेका पुच्छ (नुकीला भाग) दूसरे दानेके पुच्छसे जोड़ते जाना चाहिये। सुमेरुका मुख ऊपरकी तरफ और नागपाश उसके ऊपर करना चाहिये॥ ४॥

इस प्रकार गूँथी गयी मन्त्र-सिद्धिप्रदायिनी मालाको पहले गन्धोदक और बादमें पंचगव्यसे विधिवत् प्रक्षालित करके तथा पुनः शिवाभिषिक्त जलसे स्नान करानेके पश्चात् इसमें मन्त्रोंका न्यास करना चाहिये। शिवास्त्रमन्त्रसे स्पर्श करके कवच-मन्त्र (हुम्)-से अवगुंठन करना चाहिये॥ ५-६॥

इसके बाद मूलमन्त्रसे पूर्ववत् न्यास करे तथा गुरु आदिसे न्यास कराये। पुनः सद्योजात आदि मन्त्रोंसे एक सौ आठ बार उसपर जलसे प्रोक्षण करनेके पश्चात् मूलमन्त्रका उच्चारण करके उसे शुद्ध भूमिपर रखकर उसके ऊपर जगत्‌के परम कारण साम्बसदाशिवका न्यास करना चाहिये॥ ७-८॥

इस प्रकार प्रतिष्ठित की गयी माला समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाली होती है। जिस देवताका जो मन्त्र सिद्ध करना हो, उसी मन्त्रसे उस मालाका पूजन करना चाहिये॥ ९॥

जपमालाको मस्तकपर, गलेमें अथवा कानपर धारण करना चाहिये और संयतचित्त होकर रुद्राक्षमालासे ही जप करना चाहिये। परम श्रद्धासे युक्त होकर रुद्राक्षकी माला कण्ठमें, मस्तकपर, हृदयपर, पार्श्वभागमें, कानमें तथा दोनों भुजाओंपर नित्य धारण करनी चाहिये॥ १०-११॥

रुद्राक्षके सम्बन्धमें अधिक कहने तथा बार-बार वर्णन करनेसे क्या लाभ? अतः नित्य रुद्राक्ष धारण करना श्रेयस्कर है। विशेष करके स्नान, दान, जप, होम, बलिवैश्वदेव, देवपूजन, प्रायश्चित्त कर्म, श्राद्ध तथा दीक्षाके समय इसे अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२-१३॥

रुद्राक्ष धारण न करके मोहपूर्वक कुछ भी वैदिक कृत्य सम्पन्न करनेवाला ब्राह्मण निश्चितरूपसे नरकमें पड़ता है॥ १४॥

सुवर्ण अथवा मणिसे जटित रुद्राक्ष मस्तक, कण्ठ, यज्ञोपवीत अथवा हाथमें धारण करना चाहिये। अन्य व्यक्तिके द्वारा धारण किया हुआ रुद्राक्ष अपने लिये शुद्ध तथा कल्याणकारी नहीं होता है॥ १५॥

अपवित्र अवस्थामें रुद्राक्ष नहीं धारण करना चाहिये; सर्वदा पवित्र अवस्थामें ही इसे भक्तिपूर्वक धारण करना चाहिये। रुद्राक्षके वृक्षसे चली हुई वायुके सम्पर्कमें आकर उगे हुए तृण भी पुण्यलोकमें जाते हैं और वहाँसे पुनः वे इस लोकमें नहीं आते॥ १६$^{1}/_{2}$॥

रुद्राक्ष धारण करनेवाला मनुष्य पाप करके भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है—ऐसा जाबालोपनिषद्‌में कहा गया है। रुद्राक्षधारणसे पशु भी रुद्रत्वको प्राप्त हो जाते हैं; फिर मनुष्य होकर जो लोग रुद्राक्षकी माला धारण करते हैं, उनकी बात ही क्या! शिवभक्तोंको एक रुद्राक्ष सिरपर सर्वदा अवश्य धारण करना चाहिये, इससे उनके सभी दुःखोंका नाश हो जाता है तथा सभी पापोंकी समाप्ति हो जाती है। जो लोग परमात्मा शिवके नामोंका उच्चारण करते हैं तथा जो रुद्राक्षसे अलंकृत रहते हैं, वे ही भगवान्‌के श्रेष्ठ भक्त होते हैं। अपने समस्त कल्याणकी कामना करनेवाले मनुष्यको कर्णपाशमें, शिखामें, कण्ठमें, हाथमें तथा उदरपर

रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १७—२१ १/२॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश, उनकी विभूतियाँ तथा सभी देवता भक्तिपूर्वक अवश्य ही रुद्राक्ष धारण करते हैं। गोत्रप्रवर्तक ऋषिगण, सभीके कूटस्थ मूल पुरुष, उनके वंशज तथा शुद्ध आत्मावाले श्रौतधर्मावलम्बी लोग भी रुद्राक्ष अवश्य धारण करते हैं॥ २२—२४॥

यदि आरम्भमें साक्षात् वेद-प्रतिपादित तथा मुक्तिदायक रुद्राक्षको धारण करनेमें श्रद्धा न उत्पन्न हो, तो भी अनेक जन्मोंके बाद भगवान् शिवके अनुग्रहसे रुद्राक्ष धारण करनेके प्रति स्वाभाविक रूपसे इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जाबालशाखाके सभी मुनिलोग अत्यन्त आदरपूर्वक रुद्राक्षके माहात्म्यका पाठ करते हैं और मैंने भी रुद्राक्ष-माहात्म्यके विषयमें पढ़ा है। हे पुत्र! रुद्राक्ष-धारणका फल तीनों लोकोंमें विख्यात है॥ २५—२७॥

रुद्राक्ष-फलके दर्शनसे महान् पुण्य मिलता है, इसके स्पर्शसे करोड़ गुना अधिक पुण्य होता है तथा इसे धारण कर लेनेपर मनुष्य सौ करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है। रुद्राक्ष-मालासे नित्य जप करनेसे वह सैकड़ों लाख-करोड़ गुना तथा हजारों लाख-करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २८-२९॥

जो अपने हाथमें, वक्षःस्थलपर, कण्ठमें, दोनों कानोंमें तथा मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र है; इसमें सन्देह नहीं है। वह सभी प्राणियोंसे अवध्य रहते हुए इस पृथ्वीपर रुद्रकी भाँति निर्भय होकर विचरण करता है और शिवजीकी तरह समस्त देवता तथा दानवोंके लिये वन्दनीय हो जाता है॥ ३०-३१॥

सभी मनुष्य भी रुद्राक्ष-धारण करनेवालेकी निरन्तर वन्दना करते हैं। उच्छिष्टकी भाँति त्याज्य, निषिद्ध कर्मोंमें रत तथा सभी प्रकारके पापोंसे युक्त मनुष्य भी रुद्राक्ष धारण करनेपर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। गलेमें रुद्राक्ष बँधा हुआ कुत्ता भी यदि मर जाय तो वह भी मुक्ति प्राप्त कर लेता है, फिर मनुष्यकी बात ही क्या? ॥ ३२-३३ १/२॥

जप तथा ध्यानसे विहीन रहता हुआ भी यदि कोई मनुष्य रुद्राक्ष धारण कर ले तो वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है। यदि कोई एक भी रुद्राक्ष प्रयत्नपूर्वक धारण करता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार करके अन्तमें रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसके बाद अब मैं रुद्राक्षकी और भी विधिका वर्णन करूँगा॥ ३४—३६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'रुद्राक्षजपमालाविधानवर्णन' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

छठा अध्याय

रुद्राक्षधारणकी महिमाके सन्दर्भमें गुणनिधिका उपाख्यान

ईश्वर बोले—हे महासेन! कुश-ग्रन्थि, पुत्रजीव (जियापोती) आदिसे निर्मित तथा अन्य वस्तुसे बनी हुई मालाओंमेंसे कोई एक भी रुद्राक्ष-मालाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकती॥ १॥

जैसे पुरुषोंमें विष्णु, ग्रहोंमें सूर्य, नदियोंमें गंगा, मुनियोंमें कश्यप, घोड़ोंमें उच्चैःश्रवा, देवताओंमें महेश्वर, देवियोंमें गौरी श्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार यह रुद्राक्ष श्रेष्ठ है॥ २-३॥

रुद्राक्षसे बढ़कर न कोई स्तोत्र है और न कोई व्रत है। सभी प्रकारके अक्षय दानोंकी तुलनामें रुद्राक्ष-दान विशेष महिमावाला है॥ ४॥

जो मनुष्य किसी शान्त स्वभाववाले शिवभक्तको उत्तम रुद्राक्षका दान करता है, उसके पुण्यफलकी सीमाका वर्णन करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ॥ ५॥

जो मनुष्य कण्ठमें रुद्राक्ष धारण किये हुए किसी व्यक्तिको अन्न प्रदान करता है, वह अपने इक्कीस कुलोंका उद्धार करके रुद्रलोकको जाता है॥ ६॥

जो ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्म नहीं लगाता, शरीरपर रुद्राक्ष नहीं धारण करता और शिवमन्दिरमें पूजा नहीं करता, वह चाण्डालोंमें भी अधम है॥ ७॥

मांस खानेवाला, सुरापान करनेवाला तथा अन्त्यजोंके सान्निध्यमें रहनेवाला भी सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेपर तज्जन्य पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ८॥

सभी प्रकारके यज्ञ, तप, दान तथा वेदाध्ययन करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल मात्र रुद्राक्ष-धारणसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है॥ ९॥

चारों वेदोंका स्वाध्याय करने, पुराणोंको पढ़ने, तीर्थोंका सेवन करने तथा सभी विद्याओंका अध्ययन करनेके फलस्वरूप जो पुण्य होता है, वह पुण्य मनुष्य केवल रुद्राक्षधारणसे तत्काल प्राप्त कर लेता है॥ १०$^{१}/_{२}$॥

प्रयाणकालमें रुद्राक्ष धारण करके यदि कोई मृत्युको प्राप्त होता है, तो वह रुद्रत्वको प्राप्त हो जाता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता॥ ११$^{१}/_{२}$॥

यदि मनुष्य कण्ठमें या दोनों भुजाओंपर रुद्राक्ष धारण किये हुए मर जाता है तो वह अपनी इक्कीस पीढ़ियोंको तारकर अन्तमें रुद्रलोकमें निवास करता है॥ १२$^{१}/_{२}$॥

जो भस्म तथा रुद्राक्ष धारण करता है; वह महादेव शिवके लोकमें पहुँच जाता है, चाहे वह ब्राह्मण हो या चाण्डाल और गुणवान् हो अथवा गुणसे रहित। पवित्र हो अथवा अपवित्र तथा चाहे वह अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करनेवाला ही क्यों न हो। म्लेच्छ हो अथवा चाण्डाल हो या सभी पातकोंसे युक्त ही क्यों न हो, वह केवल रुद्राक्षधारणसे ही रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १३—१५॥

सिरपर रुद्राक्ष धारण करनेसे करोड़ गुना, दोनों कानोंमें पहननेसे दस करोड़ गुना, गलेमें धारण करनेसे सौ करोड़ गुना, मस्तकपर धारण करनेसे हजार करोड़ गुना, यज्ञोपवीतमें धारण करनेसे इससे भी दस हजार गुना तथा दोनों भुजाओंपर धारण करनेसे लाख करोड़ गुना फल मिलता है और मणिबन्धमें धारण करनेपर यह रुद्राक्ष मोक्षका परम साधन बन जाता है॥ १६-१७॥

कोई ब्राह्मण रुद्राक्ष धारण करके भक्तिपूर्वक जो कुछ भी वैदिक कर्म करता है, उसे उसका महान् फल प्राप्त होता है॥ १८॥

श्रद्धारहित होकर भी यदि कोई गलेमें रुद्राक्ष धारण कर ले तो नित्य पापकर्ममें रत रहनेपर भी वह सभी बन्धनोंसे छूट जाता है॥ १९॥

जो अपने मनमें रुद्राक्ष धारण करनेकी भावना रखता है, किंतु उसे धारण नहीं कर पाता, तो भी वह महेश्वर-स्वरूप है और इस लोकमें शिवलिंगकी भाँति नमस्कारके योग्य है॥ २०॥

कोई व्यक्ति चाहे विद्यासम्पन्न हो अथवा विद्यारहित, वह रुद्राक्ष धारण कर लेनेमात्रसे ही शिवलोकको प्राप्त हो जाता है, जैसे कीकट नामक स्थानविशेषमें एक गर्दभ शिवलोक चला गया था॥ २१॥

स्कन्द बोले—हे देव! उस गर्दभने कीकटदेशमें किस कारणसे रुद्राक्षोंको धारण किया था और किसने उसे रुद्राक्ष दिया था? हे परमेश्वर! वह सारा वृत्तान्त आप मुझे बताइये॥ २२॥

श्रीभगवान् बोले—हे पुत्र! अब तुम एक प्राचीन वृत्तान्त सुनो। एक गर्दभ विन्ध्यपर्वतपर रुद्राक्षका बोझा ढोया करता था। एक समय पथिक अधिक बोझा लादकर उसे हाँकने लगा, जिससे अत्यधिक थका हुआ वह गर्दभ उस बोझको ढोनेमें असमर्थ होकर भूमिपर गिर पड़ा और उसने प्राण त्याग दिये। हे महासेन! इसके बाद मेरे अनुग्रहसे वह हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए तथा त्रिनेत्रधारी होकर महेश्वररूपमें मेरे पास आ गया॥ २३-२४$^{१}/_{२}$॥

रुद्राक्षके मुखोंकी जितनी दुर्लभ संख्या होती है, उतने हजार युगोंतक रुद्राक्ष धारण करनेवाला शिवलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ २५$^{१}/_{२}$॥

अपने शिष्यको ही रुद्राक्ष-माहात्म्य बताना चाहिये, जो शिष्य न हो उसे कभी नहीं बताना चाहिये, साथ ही अभक्तों तथा मूर्खोंके समक्ष इसे प्रकट नहीं करना

चाहिये ॥ २६½ ॥

चाहे कोई भक्तिपरायण हो अथवा भक्तिरहित हो, नीच हो अथवा नीचसे भी बढ़कर हो, यदि वह रुद्राक्ष धारण कर ले तो सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ २७½ ॥

रुद्राक्ष धारण करनेसे होनेवाले पुण्यकी तुलना भला किसके साथ की जा सकती है? तत्त्वदर्शी मुनिगण इस रुद्राक्षधारणको महाव्रतकी संज्ञा देते हैं ॥ २८½ ॥

जिस व्यक्तिने एक हजार रुद्राक्षके धारण करनेका नियम बना रखा है, सभी देवता उसे नमस्कार करते हैं, जैसे रुद्र हैं वैसे ही वह भी है ॥ २९ ॥

जो मनुष्य एक हजार रुद्राक्षके अभावकी स्थितिमें दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, शिखामें एक, दोनों हाथोंमें बारह-बारह, गलेमें बत्तीस, मस्तकपर चालीस, प्रत्येक कानमें छः-छः तथा वक्षःस्थलपर एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है; वह रुद्रके समान पूजित होता है ॥ ३०—३२ ॥

जो व्यक्ति मोती, मूँगा, स्फटिक, रौप्य, वैदूर्य तथा सुवर्ण आदिसे जटित रुद्राक्ष धारण करता है; वह साक्षात् शिवस्वरूप हो जाता है ॥ ३३ ॥

जो आलस्यवश केवल रुद्राक्षोंको ही धारण करता है, उस व्यक्तिको पाप उसी तरह स्पर्श नहीं कर सकते, जैसे अन्धकार सूर्यको स्पर्श नहीं कर पाता ॥ ३४ ॥

रुद्राक्षकी मालासे जपा गया मन्त्र अनन्त फल प्रदान करता है। जिसके शरीरपर अत्यन्त पुण्यदायक एक भी रुद्राक्ष नहीं रहता, उसका जन्म उसी भाँति निरर्थक है, जैसे त्रिपुण्ड्र धारण न करनेवालेका जीवन अर्थहीन होता है ॥ ३५½ ॥

जो अपने मस्तकपर रुद्राक्ष धारण करके शिरःस्नान करता है, उसे गंगास्नान करनेका फल प्राप्त होता है; इसमें संशय नहीं है ॥ ३६½ ॥

एकमुखी, पंचमुखी, ग्यारहमुखी, चौदहमुखी तथा और भी कुछ रुद्राक्षोंकी लोकमें पूजा की जाती है ॥ ३७½ ॥

साक्षात् शंकरके आत्मस्वरूप इस रुद्राक्षकी यदि नित्य भक्तिपूर्वक पूजा की जाय तो यह दरिद्र व्यक्तिको भी पृथ्वीपर राजा बना देता है ॥ ३८½ ॥

अब इस सम्बन्धमें मैं तुमसे एक प्राचीन उत्तम आख्यानका वर्णन करूँगा। ऐसा सुना जाता है कि कोसल-देशमें गिरिनाथ नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह महाधनी, धर्मात्मा, वेद-वेदांगमें पारंगत, यज्ञपरायण तथा दीक्षायुक्त था। उसका गुणनिधि नामसे विख्यात एक पुत्र था, जो युवा, मनोहर आकृतिवाला तथा कामदेवके समान सुन्दर था ॥ ३९—४१ ॥

उसने अपने रूप तथा मदयुक्त यौवनसे सुधिषण नामक अपने गुरुकी मुक्तावली नामवाली भार्याको मोहित कर लिया ॥ ४२ ॥

कुछ दिनोंतक मुक्तावलीके साथ उसका सम्पर्क रहा, किंतु बादमें गुरुसे भयके कारण उसने उन्हें विष दे दिया और वह निर्भय होकर सहवासपरायण हो गया ॥ ४३ ॥

जब उसके माता-पिताको इस कर्मके विषयमें कुछ ज्ञात हुआ, तब उसने माता-पिताको भी उसी क्षण विष देकर मार डाला ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् अनेक प्रकारके भोग-विलासोंमें सम्पूर्ण धनके व्यय हो जानेपर उस दुष्टने ब्राह्मणोंके घरमें चोरी करना आरम्भ कर दिया ॥ ४५ ॥

सुरापानसे निरन्तर मदोन्मत्त रहनेके कारण वह जातिसे बहिष्कृत कर दिया गया तथा सभी लोगोंने उसे गाँवसे बाहर निकाल दिया। तब वह वनमें विचरण करने लगा ॥ ४६ ॥

उस मुक्तावलीको साथमें लेकर वह घने जंगलमें चला गया। वहाँ मार्गमें स्थित होकर उसने [आने-जानेवाले] अनेक ब्राह्मणोंको धनके लोभसे मार डाला ॥ ४७ ॥

इस प्रकार बहुत समय बीत जानेके बाद वह नीच प्राणी मृत्युको प्राप्त हुआ और उसे लेनेके लिये हजारों यमदूत आये ॥ ४८ ॥

उसी समय शिवके गण शिवलोकसे वहाँ आ पहुँचे और फिर हे गिरिजानन्दन! उन दोनों (यमदूतों तथा शिवदूतों)-में परस्पर विवाद होने लगा॥ ४९॥

तब यमदूतोंने कहा—हे शम्भुके सेवको! आपलोग बतायें कि इसका कौन-सा पुण्य है, जो आपलोग इसे शिवलोक ले जाना चाहते हैं?॥ ५०॥

इसपर शिवदूत कहने लगे कि यह जिस स्थानपर मृत्युको प्राप्त हुआ है, उस भूमिके दस हाथ नीचे रुद्राक्ष विद्यमान है। हे यमदूतो! उसी रुद्राक्षके प्रभावसे इसे हमलोग शिवके पास ले जायँगे॥ ५१ १/२॥

तत्पश्चात् वह गुणनिधि नामक ब्राह्मण दिव्य रूप धारण करके विमानपर आरूढ़ होकर शिवदूतोंके साथ शिवलोक चला गया। हे सुव्रत! मैंने तुमसे रुद्राक्षका यह माहात्म्य कह दिया। इस प्रकार मेरे द्वारा संक्षेपमें वर्णित यह रुद्राक्षमाहात्म्य सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है॥ ५२—५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'रुद्राक्ष-माहात्म्यमें गुणनिधिमोक्षवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

विभिन्न प्रकारके रुद्राक्ष और उनके अधिदेवता

श्रीनारायण बोले—हे नारद! इस प्रकार गिरिशायी भगवान् शिवने षडाननको रुद्राक्षके विषयमें बताया और इस रुद्राक्षमहिमाको जानकर वे भी कृतार्थ हो गये। इस प्रकारके माहात्म्यवाले रुद्राक्षके विषयमें मैंने आपसे वर्णन कर दिया। अब सदाचारके प्रसंगमें रुद्राक्षसम्बन्धी अन्य बातें एकाग्रचित्त होकर सुनिये॥ १-२॥

जिस प्रकार मैंने अनन्त पुण्य प्रदान करनेवाली रुद्राक्ष-महिमाका वर्णन किया है, उसी प्रकार मैं रुद्राक्षके लक्षण तथा मन्त्र-विन्यासका वर्णन आपसे करूँगा॥ ३॥

रुद्राक्षके दर्शनसे एक लाख गुना तथा स्पर्शसे करोड़ गुना पुण्य होता है। रुद्राक्ष धारण कर लेनेपर मनुष्य उसका करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ४॥

रुद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा उसके द्वारा जपसे मनुष्य एक सौ लाख करोड़ गुना और हजार लाख करोड़ गुना पुण्य प्राप्त करता है॥ ५॥

भद्राक्ष धारण करनेकी अपेक्षा रुद्राक्ष धारण करनेका महान् फल होता है। जो रुद्राक्ष आँवलेके फलके परिमाणका होता है, वह श्रेष्ठ माना गया है॥ ६॥

विद्वानोंने बेरके फलके परिमाणवाले रुद्राक्षको मध्यम तथा चनेके परिमाण-तुल्य रुद्राक्षको अधम कहा है; यह एक सिद्धान्त है, जिसका वर्णन मैंने आपसे किया है॥ ७॥

शिवजीकी आज्ञासे पृथ्वीतलपर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-भेदानुसार उन-उन जातियोंवाले रुद्राक्षके श्रेष्ठ वृक्ष उत्पन्न हुए। श्वेत रुद्राक्षोंको ब्राह्मण, रक्त वर्णके रुद्राक्षोंको क्षत्रिय तथा पीले वर्णके रुद्राक्षोंको वैश्य जानना चाहिये। इसी प्रकार काले रंगके रुद्राक्ष शूद्र कहे जाते हैं॥ ८-९॥

ब्राह्मणको श्वेत वर्ण तथा राजा (क्षत्रिय)-को लाल वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये। इसी तरह वैश्यको पीले वर्ण तथा शूद्रको काले वर्णके रुद्राक्ष धारण करने चाहिये॥ १०॥

समरूप, चिकने, दृढ़ तथा स्पष्टरूपसे कंटक (काँटों)-की रेखाओंसे युक्त रुद्राक्ष श्रेष्ठ होते हैं; किंतु कीड़ोंद्वारा खाये गये, टूटे हुए, फूटे हुए, काँटोंकी रेखाओंसे रहित, व्रणयुक्त तथा परतसे आवृत—इन छः तरहके रुद्राक्षोंको नहीं धारण करना चाहिये॥ ११ १/२॥

जिस रुद्राक्षमें स्वयं ही छिद्र बना हो, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है और जिसमें मनुष्यके प्रयत्नसे छिद्र किया गया हो, वह मध्यम रुद्राक्ष होता है। सब ओरसे समान, चिकने, मजबूत और गोल रुद्राक्षोंको रेशमके डोरेमें

पिरोकर धारण करना चाहिये। शरीरके सभी (पूर्वोक्त) अंगोंपर उन्हें समानरूपसे धारण करना चाहिये। जिस रुद्राक्षको घिसनेसे समान तथा अति विलक्षण स्वर्ण-रेखाकी आभाके समान रेखा दिखायी दे, वह उत्तम रुद्राक्ष होता है। उसे शिवभक्तोंको अवश्य धारण करना चाहिये॥ १२—१४१/२॥

एक रुद्राक्ष शिखामें, तीस रुद्राक्ष सिरपर, छत्तीस रुद्राक्ष गलेमें, दोनों भुजाओंपर सोलह-सोलह, मणि-बन्धमें बारह तथा कन्धेपर पचास रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १५-१६॥

एक सौ आठ रुद्राक्षोंकी मालाका यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये और दो लड़ी या तीन लड़ीवाली रुद्राक्षकी माला गलेमें पहननी चाहिये॥ १७॥

मनुष्यको कुण्डलमें, मुकुटमें, कर्णिकामें, हारमें, केयूरमें, कटकमें तथा करधनीमें, शयन तथा भोजनपानादि सभी कालोंमें रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १८१/२॥

तीन सौ रुद्राक्षोंका धारण करना अधम तथा पाँच सौ रुद्राक्षोंका धारण करना मध्यम कहा जाता है और एक हजार रुद्राक्षोंका धारण करना उत्तम कहा गया है। इस प्रकार उत्तम, मध्यम तथा अधम-भेदसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये॥ १९१/२॥

पचास रुद्राक्षोंकी माला बनाकर ईशानमन्त्रसे सिरपर, तत्पुरुषमन्त्रसे कानमें, अघोरमन्त्रसे ललाट तथा हृदयपर और अघोरबीजमन्त्रसे दोनों हाथोंपर और वामदेवमन्त्रसे उदरपर धारण करना चाहिये। इस प्रकार ईशान आदि पाँच ब्रह्ममन्त्र तथा छः षडंग मन्त्रसे रुद्राक्ष धारण करना चाहिये। मूलमन्त्रका उच्चारण करके गूँथे गये सभी रुद्राक्षोंको धारण करना चाहिये॥ २०—२२१/२॥

एकमुखी रुद्राक्ष परमतत्त्वका प्रकाशक है। अतः इस परमतत्त्वमय एकमुखी रुद्राक्षके धारणसे उस ब्रह्मका साक्षात्कार हो जाता है॥ २३१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! दो मुखवाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर होता है। इसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर भगवान् अर्धनारीश्वर सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २४१/२॥

तीनमुखी रुद्राक्ष साक्षात् अग्निस्वरूप होता है। यह स्त्री-हत्याके पापको क्षणभरमें भस्म कर देता है। यह तीनमुखी रुद्राक्ष अग्नित्रय (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि)-के भी स्वरूपवाला है। उसे धारण करनेसे उस व्यक्तिपर अग्निदेवता सदा प्रसन्न रहते हैं॥ २५-२६॥

चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मास्वरूप है। उसे धारण करनेसे महान् वैभव, अत्यन्त उत्तम आरोग्य तथा विशद ज्ञान-सम्पदाकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको आत्मशुद्धिके लिये इसे धारण करना चाहिये॥ २७१/२॥

पंचमुखी रुद्राक्ष साक्षात् पंचब्रह्म-स्वरूप है। उसके धारणमात्रसे ही महेश्वर शिव उस व्यक्तिपर प्रसन्न हो जाते हैं॥ २८१/२॥

छः मुखी रुद्राक्षके अधिदेवता कार्तिकेय हैं और कुछ मनीषिगण विनायक गणेशको भी इस रुद्राक्षके देवतारूपमें बताते हैं॥ २९१/२॥

सातमुखी रुद्राक्षकी अधिदेवी सात मातृकाएँ हैं। इसके अधिदेवता सूर्य तथा सप्तर्षि भी हैं। इसे धारण करनेसे विपुल सम्पदा, उत्तम आरोग्य तथा महान् ज्ञान-राशिकी प्राप्ति होती है। पवित्र होकर ही मनुष्यको इसे धारण करना चाहिये॥ ३०-३११/२॥

आठमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता अष्टमातृकाएँ हैं। यह शुभ रुद्राक्ष आठों वसुओं तथा गंगाके लिये प्रीतिकर है। उसे धारण करनेसे ये सत्यवादी देवता प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३२-३३॥

नौमुखी रुद्राक्ष साक्षात् यमदेवके तुल्य माना गया है। उसे धारण करनेसे यमका कोई भय नहीं रहता॥ ३४॥

दसमुखी रुद्राक्षके देवता दसों दिशाएँ कही गयी हैं। उसे धारण करनेसे मनुष्य दसों दिशाओंके लिये प्रीतिजनक होता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३५॥

ग्यारहमुखी रुद्राक्षके अधिदेवता एकादश रुद्र हैं। कुछ लोग इन्द्रको भी निरन्तर सौख्यकी वृद्धि करनेवाले इस रुद्राक्षका देवता कहते हैं॥ ३६॥

बारहमुखी रुद्राक्ष महाविष्णुका स्वरूप है। इसके अधिदेवता बारह सूर्य हैं। ये देवगण उसे धारण करनेवालेका सदा भरण-पोषण करते हैं॥ ३७॥

तेरह मुखवाला रुद्राक्ष समस्त मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला, सिद्धियाँ प्रदान करनेवाला तथा कल्याण करनेवाला है। उसे धारण करनेमात्रसे कामदेव प्रसन्न हो जाते हैं॥ ३८॥

चौदह मुखवाला रुद्राक्ष भगवान् शंकरके नेत्रसे उत्पन्न हुआ है। यह सभी प्रकारकी व्याधियोंको नष्ट करनेवाला तथा सर्वविध आरोग्य प्रदान करनेवाला है॥ ३९॥

रुद्राक्ष धारण करनेवालेको मद्य, मांस, लहसुन, प्याज, सहिजन, लिसोडा तथा विड्वराहका आहारमें त्याग कर देना चाहिये। ग्रहणके समय, सूर्यके विषुवत् रेखापर, संक्रमणकालमें, उत्तरायण तथा दक्षिणायनके संक्रान्तिकालमें, अमावास्या तथा पूर्णिमाके समय तथा अन्यान्य पुण्य दिवसोंमें रुद्राक्ष धारण करनेसे मनुष्य शीघ्र समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ४०-४१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'रुद्राक्षमाहात्म्यवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

भूतशुद्धि

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! अब मैं भूतशुद्धिका प्रकार बता रहा हूँ। सर्वप्रथम मूलाधारसे उठकर सुषुम्नामार्गपर होती हुई ब्रह्मरन्ध्रतक देवी परदेवता कुण्डलिनीके पहुँचनेकी भावना करे। तत्पश्चात् साधक हंसमन्त्रसे जीवका ब्रह्ममें संयोजन करके अपने शरीरमें पैरोंसे लेकर घुटनोंतकके भागमें चतुष्कोण (चौकोर), वज्रचिह्नसे युक्त, पीतवर्णवाले तथा 'लं' बीजसे अंकित पृथ्वीमण्डलकी कल्पना करे॥ १—३॥

घुटनोंसे लेकर नाभितकके भागमें अर्धचन्द्रतुल्य आकृतिवाले, दो कमलोंसे युक्त, शुक्लवर्ण तथा 'वं' बीजमन्त्रसे अंकित जलमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ४॥

इसके बाद नाभिसे लेकर हृदयतकके भागमें त्रिकोणाकार, स्वस्तिक चिह्नसे अंकित, रक्तवर्णवाले तथा 'रं' बीजमन्त्रसे युक्त अग्निमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ५॥

पुनः हृदयसे ऊपर भ्रूमध्यतकके भागमें गोल, छः बिन्दुओंसे अंकित, धूम्रवर्णवाले तथा 'यं' बीजसे युक्त वायुमण्डलका स्मरण करना चाहिये॥ ६॥

इसके बाद भ्रूमध्यसे लेकर ब्रह्मरन्ध्रतकके भागमें वृत्ताकार, स्वच्छ, परम मनोहर तथा 'हं' बीजसे अंकित आकाशमण्डलका ध्यान करना चाहिये॥ ७॥

इस प्रकारसे पंचभूतोंकी भावना करके प्रत्येकका अपने कारणरूप दूसरे भूतमें लय करे। पृथ्वीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें विलीन करनेका ध्यान करके पुनः आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वको प्रकृतिमें और मायारूपी प्रकृतिको आत्मामें विलीन करना चाहिये॥ ८-९॥

इस प्रकार निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न होकर अपने शरीरमें पापपुरुषकी कल्पना करनी चाहिये कि यह मेरी बायीं कुक्षिमें स्थित है, यह काले रंगका है तथा अँगूठेके परिमाणवाला है, ब्रह्महत्या ही इसका सिर है, स्वर्णकी चोरी ही इसके बाहु हैं, सुरापान ही इसका हृदय है, गुरुतल्प (गुरुपत्नीगमन) ही इसका कटिप्रदेश है, इन महापातकोंसे संसर्ग ही इसके दोनों चरण हैं, उपपातक इसका मस्तक है, यह ढाल-तलवार लिये रहता है, यह कृष्णवर्णवाला है, सदा नीचेकी ओर मुख किये रहता है और अत्यन्त दुःसह है॥ १०—१२॥

तत्पश्चात् वायुबीज 'यं'का स्मरण करते हुए पूरक प्राणायामसे वायुको भरकर उसके द्वारा इस पापपुरुषको

सुखा देना चाहिये। पुनः 'रं' अग्निबीजमन्त्रके द्वारा अपने शरीरसे लगे हुए उस पापपुरुषको भस्म कर देना चाहिये॥ १३॥

कुम्भकके जपसे दग्ध किये गये पापपुरुषकी भस्मको वायुबीज 'यं'के जपसे रेचक प्राणायामद्वारा बाहर निकाल देना चाहिये॥ १४॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष अपने शरीरसे उत्पन्न हुए भस्मको सुधाबीज 'वं'के उच्चारणसे उत्पन्न अमृतसे आप्लावित करे। पुनः भू-बीजमन्त्र 'लं'से उस द्रवीभूत भस्मको घनीभूत करके उसके सोनेके अण्ड-जैसा बन जानेकी कल्पना करे॥ १५॥

इसके बाद आकाशबीज 'हं'का जप करते हुए उस सुवर्ण-अण्डकी एक स्वच्छ दर्पणकी तरह कल्पना करके बुद्धिमान् साधकको उसमें मस्तकसे लेकर चरणपर्यन्त सभी अंगोंकी मानसिक रचना करनी चाहिये॥ १६॥

पुनः चित्तमें आकाश आदि पाँचों भूतोंकी कल्पना करे और **'सोऽहम्'** मन्त्रके द्वारा आत्माको अपने हृदयकमलपर विराजित करे॥ १७॥

तत्पश्चात् जीवको ब्रह्ममें संयोजित करनेवाली कुण्डलिनीको तथा परमात्माके संसर्गसे सुधामय जीवको हृदयरूपी कमलपर स्थापित करके मूलाधारमें विराजनेवाली देवी कुण्डलिनीका [इस प्रकार] ध्यान करना चाहिये॥ १८॥

रक्तवर्णवाले जलका एक समुद्र है। उसमें एक पोत है, जिसपर एक अरुणवर्णका कमल खिला हुआ है। उस कमलपर विराजमान, अपने छः करकमलोंमें त्रिशूल, इक्षुधनुष, रत्नमय पाश, अंकुश, पाँच बाण तथा रक्तपूरित खप्पर धारण करनेवाली, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होनेवाली, स्थूल वक्षःस्थलवाली तथा बालसूर्यके समान वर्णवाली प्राणशक्तिस्वरूपा पराभगवती कुण्डलिनी हमें सुख प्रदान करनेवाली हों॥ १९॥

इस प्रकार परमात्मस्वरूपिणी प्राणशक्ति देवी कुण्डलिनीका ध्यान करके समस्त कार्योंमें अधिकार प्राप्त करनेके लिये विभूति धारण करना चाहिये॥ २०॥

विभूति धारण करनेसे महान् फल प्राप्त होता है; श्रुति तथा स्मृतिके प्रमाणके अनुसार भस्मधारण अतीव उत्तम है। अब मैं विभूतिके विषयमें विस्तारपूर्वक वर्णन करूँगा॥ २१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'भूतशुद्धिप्रकरणवर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

भस्म-धारण (शिरोव्रत)

श्रीनारायण बोले—जो द्विजातिगण शिरोव्रत (मस्तकपर भस्म धारण करनेके नियम)-का पालन करते हैं, उन्हींको अज्ञानको नष्ट करनेवाली पराविद्याके विषयमें बताना चाहिये॥ १॥

जो लोग भलीभाँति श्रद्धापूर्वक शिरोव्रतका पालन नहीं करते, उनके लिये श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें प्रतिपादित सदाचार व्यर्थ सिद्ध होता है॥ २॥

हे विद्वन्! ब्रह्मा आदि देवता शिरोव्रतके सदाचारसे ही देवत्वको प्राप्त हुए हैं; इसमें कोई अन्य हेतु नहीं था॥ ३॥

प्राचीन कालके महर्षियोंने शिरोव्रतका माहात्म्य प्रतिपादित किया है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तथा समस्त देवता भी भस्म धारण करते थे॥ ४॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक इस शिरोव्रतका अनुष्ठान करता है, वह सभी प्रकारके पातकोंसे युक्त होनेपर भी उन सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है—विद्वानोंने ऐसा कहा है॥ ५॥

अथर्ववेदके शिरोभागमें इस व्रतका उल्लेख होनेसे यह शिरोव्रत नामवाला है। इसके विषयमें जो वर्णन वहाँ मिलता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यह पुण्यसे

ही प्राप्त होता है॥ ६॥

हे मुनिश्रेष्ठ! विभिन्न शाखाओंमें इस व्रतके भिन्न-भिन्न नाम कहे गये हैं, किंतु नामभेद होनेपर भी यही एक व्रत सभी शाखाओंमें वर्णित है॥ ७॥

सभी शाखाओंमें मात्र एक शिव नामक सत्-चित्-घनरूपवाला पदार्थ है और इस पदार्थ (तत्त्व)-का ज्ञान तथा शिरोव्रत भी वैसा ही है॥ ८॥

सभी प्रकारकी विद्याओंमें पारंगत होनेपर भी यदि कोई मनुष्य शिरोव्रतसे विहीन है, तो वह सभी धर्मोंसे विहीन है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ९॥

यह शिरोव्रत पापरूपी वनको दग्ध करनेवाला तथा समस्त विद्याओंका साधन है, अतः इसका सम्यक् पालन करना चाहिये॥ १०॥

आथर्वण श्रुति अत्यन्त सूक्ष्म है तथा सूक्ष्म अर्थका प्रकाशन करनेवाली है। उसमें इस शिरोव्रतके विषयमें जो कहा गया है, उसका भलीभाँति प्रेमपूर्वक नित्य आचरण करना चाहिये॥ ११॥

'अग्निरिति भस्म' आदि इन छः आथर्वण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए शरीरके सभी अंगोंमें शुद्ध भस्म लगाना चाहिये, यह शिरोव्रत कहा गया है॥ १२॥

सभी सन्ध्याकालोंमें इस शिरोव्रतको तबतक करना चाहिये, जबतक ब्रह्मविद्याका उदय न हो। उसकी विद्या उत्तम है॥ १३॥

बारह वर्षतक या एक वर्षतक या छः मासतक या तीन मासतक अथवा कम-से-कम बारह दिनोंतक संकल्पके साथ इस शिरोव्रतका पालन करना चाहिये॥ १४॥

शिरोव्रतके स्नातकको जो गुरु ब्रह्मविद्याका उपदेश नहीं देता, वह अत्यन्त निर्दयी होता है और उसकी विद्याका नाश हो जाता है॥ १५॥

जिस प्रकार भगवान् सर्वेश्वर कोमलचित्त तथा परम कारुणिक होते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवाला गुरु भी साक्षात् मुनि तथा दयावान् होता है॥ १६॥

जो मनुष्य हजारों जन्म-जन्मान्तरोंमें निरन्तर धर्माचरण करते रहते हैं, उन्हींके हृदयमें शिरोव्रतके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, दूसरोंके हृदयमें कभी भी नहीं; अपितु उनके हृदयमें अज्ञानकी अधिकताके कारण विद्वेष उत्पन्न होता है। अतएव विद्वेषभावनासे युक्त मनुष्यको आत्मबोध नहीं हो पाता॥ १७-१८॥

हे विद्वन्! ब्रह्मविद्याके उपदेशके सच्चे अधिकारी वे ही हैं जो शिरोव्रतमें स्नातक हो चुके हैं, अन्य लोग नहीं॥ १९॥

जिन द्विजोंने आदरपूर्वक इस पाशुपत शिरोव्रतका अनुष्ठान किया है, उन्हींको ब्रह्मविद्याका उपदेश करना चाहिये—ऐसा वेदोंका आदेश है॥ २०॥

देहाभिमानी पशुतुल्य प्राणियोंको इस शिरोव्रतके पालनसे अपने पशुत्वका नाश करना चाहिये। वेदान्तशास्त्रका ऐसा निश्चय है कि इस व्रतके द्वारा पशुत्वनाशसे कोई हिंसाजन्य पाप भी नहीं होता॥ २१॥

जाबालश्रुतिके अवलम्बियोंद्वारा आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र-धारणका विधान बताया गया है। गृहस्थाश्रमका आचरण करनेवालेको त्रियम्बक मन्त्र अथवा तारकमन्त्र (ॐ)-के साथ **'नमः शिवाय'** मन्त्रका उच्चारण करके प्रतिदिन आदरपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। संन्यासीको ॐकारके साथ हंसमन्त्रका तीन बार उच्चारण करके प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये—ऐसा जाबालोपनिषद्का कथन है। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको त्रियम्बक-मन्त्रसे अथवा प्रणवसहित पंचाक्षरमन्त्रसे त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये। इसी प्रकार ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको **'मेधावी०'** इत्यादि मन्त्रसे प्रतिदिन त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

भस्ममें जल मिलाकर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। विधिपूर्वक त्रिपुण्ड्र भस्म लगानेसे ही ब्राह्मणका ब्राह्मणत्व प्रकट होता है। अतः उसे प्रतिदिन तिरछी रेखाओंवाला त्रिपुण्ड्र अपने ललाटपर धारण करना चाहिये। (शिवजीद्वारा अपने शरीरमें भस्म धारण करनेके

कारण उनके अनुयायियोंको भी भस्म धारण करना युक्तियुक्त है)। ब्राह्मणको प्रतिदिन त्रिपुण्ड्रधारण-व्रतका विधिपूर्वक पालन करना चाहिये। आदिब्राह्मणस्वरूप ब्रह्माजीने भी भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण किया था, अतः ब्राह्मणको सदा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २६—२८॥

वेदप्रतिपादित भस्मसे शरीरमें अनुलेपन करना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और नित्य शिवलिंगकी पूजा करनी चाहिये, भूलकर भी इनका परित्याग नहीं करना चाहिये॥ २९॥

हे महामुने! संन्यास-आश्रममें स्थित व्यक्तिको तारक मन्त्रके साथ त्रियम्बकमन्त्र और प्रणव (ॐ)-के साथ पंचाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए अपने ललाट, हृदयदेश तथा दोनों भुजदण्डोंपर नित्य त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३०-३१॥

ब्रह्मचारीको **त्र्यायुषमन्त्र**से अथवा **मेधावी०** इत्यादि मन्त्रसे गौण भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। निरन्तर सेवाकार्यमें तत्पर शूद्रको '**शिवाय नमः**' मन्त्रसे श्रद्धापूर्वक अपने पूरे शरीरमें भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे मुने! हे सुव्रत! इसी प्रकार अन्य सभी लोगोंको भी बिना मन्त्रका उच्चारण किये ही अपने शरीरमें भक्तिपूर्वक भस्म लगाना चाहिये तथा त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३२—३४॥

सम्पूर्ण शरीरमें भस्म लगाना तथा मस्तकपर तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी धर्मोंमें श्रेष्ठ है। अतः उसका प्रतिदिन पालन करना चाहिये॥ ३५॥

अग्निहोत्रजन्य भस्म तथा विरजाग्निजन्य भस्मको अत्यन्त आदरपूर्वक लेकर उसे किसी शुद्ध पात्रमें रखकर पुनः दोनों हाथ तथा पैर धोकर दो बार आचमन करके हाथमें भस्म लेकर एकाग्रचित्त हो धीरे-धीरे पाँच ब्रह्ममन्त्रों (**सद्योजातं प्रपद्यामि** आदि)-का उच्चारण करना चाहिये। तत्पश्चात् तीन बार प्राणायाम करके '**अग्निरिति भस्म**' आदि [छः आथर्वण मन्त्रों तथा बृहज्जाबालोपनिषद्के **तेजो भस्मेति**] कुल सात मन्त्रोंसे उसे तीन बार अभिमन्त्रित करना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतम्**' ऐसा उच्चारण करके शिवजीका ध्यानकर उन सात मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। इस श्वेत भस्मको पूरे शरीरमें लगाकर मनुष्य पापसे रहित तथा विशुद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३६—३९ १/२॥

तत्पश्चात् जगत्के स्वामी जलाधिपति महाविष्णुका ध्यान करके भस्ममें जल मिलाकर पुनः '**अग्निरिति**' आदि मन्त्रोंके द्वारा उसका संस्कार करके साम्ब सदाशिवका ध्यानकर उस भस्मको ऊर्ध्व मस्तकपर लगा लेना चाहिये। उस भस्ममें शिवजीकी भावना करके सभी आश्रमोंके लोगोंको अपने-अपने आश्रमके लिये विहित मन्त्रोंका उच्चारणकर ललाटपर, वक्षःस्थलपर तथा कन्धेपर उस ब्रह्मस्वरूप श्वेत भस्मसे मध्यमा-अनामिका तथा अँगूठेसे अनुलोम-विलोमक्रमसे प्रतिदिन तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ४०—४३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'त्रिपुण्ड्रधारणसहित शिरोव्रतवर्णन' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

भस्म-धारणकी विधि

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! हे ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! अग्निसे तैयार किया गया '**गौण**' भस्म भी अज्ञानका नाश करनेवाला तथा ज्ञानका साधन है। इस गौण भस्मको भी आप अनेक प्रकारवाला जानिये॥ १॥

हे मुने! अग्निहोत्राग्निजनित भस्म, उसी तरह विरजाग्निजनित भस्म, औपासनाग्निसे उत्पन्न भस्म, समिधाग्निजन्य भस्म, पचनाग्नि (भोजननिर्माण)-जन्य भस्म तथा दावाग्निसे उत्पन्न भस्म गौण भस्म हैं। हे

महामुने! समस्त त्रैवर्णिकों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य)-को अग्निहोत्रजन्य तथा विरजाग्निजन्य भस्म धारण करना चाहिये। गृहस्थोंको विशेषकर औपासन-अग्निजनित भस्म तथा ब्रह्मचारीको समिधाग्निसे उत्पन्न भस्म लगाना चाहिये। शूद्रोंको वैदिक ब्राह्मणकी पाकशालामें भोजननिर्माणसे उत्पन्न भस्म तथा अन्य सभी जनोंको दावानलजनित भस्म लगाना चाहिये॥ २—५१/२॥

[हे ब्रह्मन्! अब मैं विरजाग्निजन्य भस्मकी उत्पत्तिके विषयमें बता रहा हूँ] चित्रा नक्षत्रयुक्त पूर्णिमाकी तिथि तथा अपना निवासस्थान ही इसके निर्माणके लिये समीचीन है। इसके अतिरिक्त खेत, बाग तथा वन भी इस विरजाहोमके लिये शुभ लक्षणोंवाले तथा प्रशस्त हैं। पूर्णिमा तिथिके पूर्व त्रयोदशीको विधिवत् स्नान करके सन्ध्या आदि नित्य कर्म सम्पादितकर अपने आचार्यसे आज्ञा लेकर उनकी पूजा करे तथा उन्हें प्रणाम करे। तदनन्तर उनकी विशिष्ट पूजा करके स्वयं श्वेत वस्त्र धारणकर शुद्ध यज्ञोपवीत पहनकर श्वेत माला धारण करे तथा चन्दनादि लगाये॥ ६—८१/२॥

तत्पश्चात् कुशके आसनपर बैठकर हाथकी मुट्ठीमें कुश लेकर पूर्व अथवा उत्तर दिशाकी ओर मुख करके तीन बार प्राणायाम करना चाहिये। पुनः महादेव तथा महादेवीका ध्यान करके उनके द्वारा निर्दिष्ट रीतिके अनुसार इस प्रकार निवेदन करके संकल्पमें दीक्षित होना चाहिये—'मैं इस शिरोव्रतको इस शरीरकी समाप्तितक अथवा बारह वर्षतक अथवा छः वर्षतक अथवा तीन वर्षतक अथवा बारह मासतक अथवा छः मासतक अथवा तीन मासतक अथवा एक मासतक अथवा बारह दिनतक अथवा छः दिनतक अथवा तीन दिनतक अथवा एक दिनकी अवधितक अनुष्ठित करनेके लिये यह व्रत-संकल्प ग्रहण करता हूँ'॥ ९—१३॥

इसके बाद विरजाहोमके लिये विधिपूर्वक (अपनी शाखाके गृह्यसूत्रकी विधिसे) अग्न्याधान करके घृत, समिधा तथा चरुसे विधिवत् हवन करना चाहिये। पुनः इस पवित्र दिनके बाद चतुर्दशीको अपने तत्त्वोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उन्हीं समिधा आदि द्रव्योंसे आहुति प्रदान करनी चाहिये। मेरे शरीरमें ये तत्त्व शुद्धताको प्राप्त हो जायँ—ऐसी भावना करते हुए आहुति डालनी चाहिये। पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश), पंचतन्मात्राएँ (गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (हाथ, पैर, वाक्, पायु, उपस्थ), पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (नेत्र, कान, नासिका, जीभ, त्वचा), सात धातुएँ (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य) प्राण आदि पाँच वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान), मन, बुद्धि, अहंकार, तीनों गुण (सत्त्व, रज, तम), प्रकृति, पुरुष, राग, विद्या, कला, नियति, काल, माया, शुद्ध विद्या, महेश्वर, सदाशिव, शक्ति तथा शिवतत्त्व—ये क्रमशः तत्त्व कहे गये हैं॥ १४—१९॥

विरजामन्त्रोंसे आहुति प्रदान करके वह होता निष्पाप हो जाता है। इसके बाद गायका गोबर लेकर उसका पिण्ड बनाकर उसे [पंचाक्षरमन्त्रसे] अभिमन्त्रित करके पुनः उसे अग्निमें रखकर उसका संरक्षण करता रहे। उस दिन केवल हविष्यान्न ग्रहण करे। चतुर्दशीको प्रातःकाल पूर्वोक्त विधिसे [नित्यकर्म तथा हवन आदि] समस्त कार्य सम्पन्न करके उस दिन निराहार रहकर सम्पूर्ण समय व्यतीत करे॥ २०-२११/२॥

तत्पश्चात् पूर्णिमाके दिन प्रातःकाल नित्यकर्म करके हवन करे और होमके अनन्तर रुद्राग्निका विसर्जन करके सावधानीके साथ भस्म ग्रहण कर ले। तदनन्तर जटाधारी, मुण्डी अथवा शिखारूपी एक जटावाला होकर पुनः स्नान कर लेनेके अनन्तर यदि लज्जाशून्य हो गया हो तो दिगम्बर (नग्न) हो जाय, यदि नहीं तो गेरुआ वस्त्र अथवा मृगचर्म अथवा वस्त्रका एक टुकड़ा या एक वस्त्र या पेड़की छाल पहनकर हाथमें दण्ड तथा कटिप्रदेशमें मेखला धारण करे। तत्पश्चात् अपने दोनों पैर प्रक्षालित-कर दो बार आचमन करके विरजाग्निजन्य उस भस्मको एकत्र करके **'अग्निरिति भस्म'** आदि छः आथर्वण मन्त्रोंसे अंगोंका शोधन करके पुनः उन्हीं मन्त्रोंसे क्रमसे

मस्तकसे लेकर चरणतक भस्म लगाना चाहिये। इस क्रमसे उस भस्मद्वारा उद्धूलन करके प्रणव (ॐ) मन्त्रसे या शिवमन्त्रसे सम्पूर्ण शरीरमें भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसके बाद 'त्र्यायुष' संज्ञावाले मन्त्रसे त्रिपुण्ड्र धारण करे। ऐसा कर लेनेपर शिवभावको प्राप्त होकर शिवभावका ही आचरण करे॥ २२—२८१/२॥

इस प्रकार इस पाशुपतव्रतको प्रातःकालीन, मध्याह्नकालीन तथा सायंकालीन तीनों सन्ध्याओंके समय करना चाहिये। यह पाशुपतव्रत भोग तथा मोक्षको देनेवाला है और यह पशुत्वभावको दूर कर देता है। अतएव पशुत्व-विचारका त्याग करके पाशुपतव्रतका अनुष्ठान करनेके अनन्तर लिंगमूर्ति महादेव सदाशिवकी पूजा करनी चाहिये॥ २९-३०१/२॥

भस्मस्नान महान् पुण्यदायक; सभी सुखोंकी प्राप्ति करानेवाला; अतिश्रेष्ठ; आयु, बल, आरोग्य, लक्ष्मी तथा पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला है। अतः अपनी रक्षा, कल्याण तथा सर्वविधसम्पदाकी समृद्धिके लिये मनुष्योंको भस्म धारण करना चाहिये। भस्मस्नान करनेवाले मनुष्योंको महामारीका भय नहीं रहता है। यह भस्म शान्तिक (शान्तिकारक), पौष्टिक (पुष्टिकारक) तथा कामद (सिद्धिप्रदायक)—इन तीन प्रकारका होता है॥ ३१—३३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'भस्म-माहात्म्यके प्रसंगमें पाशुपतव्रतवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

भस्मके प्रकार

नारदजी बोले—हे देव! यह भस्म तीन प्रकारका कैसे कहा गया है? यह मुझे आप बताइये; क्योंकि इस विषयमें मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है॥ १॥

नारायण बोले—हे देवर्षे! मैं भस्मके तीन प्रकारोंका वर्णन करूँगा, आप सुनिये। यह महान् पापोंको नष्ट करनेवाला तथा विपुल कीर्ति प्रदान करनेवाला है॥ २॥

जो गोमय (गोबर) योनिसे सम्बद्ध अर्थात् योनिसे अलग होनेके पूर्व हाथपर ग्रहण कर लिया गया हो, उस गोमयको [सद्योजात० आदि] ब्राह्ममन्त्रोंसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे शान्तिक भस्म कहा जाता है॥ ३॥

जिस गोमयको [जमीनपर गिरनेसे पूर्व] अन्तरिक्षमें ही सावधानीपूर्वक हाथपर ले लिया गया हो, उस गोमयको षडंगमन्त्रसे दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे पौष्टिक भस्म कहा गया है। [हे देवर्षे!] अब इसके बाद कामद भस्मके विषयमें सुनिये। प्रासादमन्त्र (हौम्)-से दग्ध करनेपर जो भस्म बनती है, उसे कामद भस्म कहा गया है॥ ४-५॥

हे देवर्षे! भस्मव्रतपरायण मनुष्यको प्रातःकाल उठकर [नित्यकर्मसे] पवित्र होनेके पश्चात् गोशालामें जाकर गोवृन्दको नमस्कार करके वर्णानुरूप गायोंका शुद्ध गोमय लेना चाहिये। ब्राह्मणके लिये श्वेत, क्षत्रियके लिये लाल, वैश्यके लिये पीले तथा शूद्रके लिये काले रंगकी गाय [श्रेयस्कर] कही जाती है। विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको पूर्णिमा, अमावास्या अथवा अष्टमीको प्रासाद (हौम्) मन्त्रसे शुद्ध गोमय उठाकर हृदयमन्त्र (नमः)-से उस गोमयको पिण्डके आकारका बना लेनेके अनन्तर पुनः उस पिण्डको सूर्यकी किरणोंमें भलीभाँति सुखाकर उसे धानकी भूसी या [गेहूँ आदिके] भूसेसे वेष्टित करके प्रासादमन्त्रका उच्चारण करते हुए किसी सुन्दर तथा पवित्र स्थानपर रख देना चाहिये॥ ६—१०॥

तत्पश्चात् अरणिसे उत्पन्न अग्नि अथवा वैदिक ब्राह्मणके घरसे अग्नि लाकर शिवबीजमन्त्रसे उस पिण्डको

अग्निमें डाल देना चाहिये॥ ११॥

पुनः बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि उस अग्निकुण्डसे भस्म निकाले और एक नया पात्र लेकर उसमें भस्मको प्रासाद-मन्त्रसे रख दे। तत्पश्चात् विशुद्ध बुद्धिवाले व्यक्तिको केवड़ा, गुलाब, खस, चन्दन और केसर आदि विविध प्रकारके सुगन्धित द्रव्योंको सद्योजात मन्त्रसे उस पात्रमें स्थित भस्ममें मिला लेना चाहिये। पहले जल-स्नान करके उसके बाद ही भस्म-स्नान करना चाहिये॥ १२—१४॥

यदि जलस्नान करनेमें किसी प्रकारकी असमर्थता हो तो केवल भस्मस्नान ही करे। हाथ-पैर धोकर 'ईशान' मन्त्रसे सिरपर भस्म लगा करके 'तत्पुरुष' मन्त्रसे मुखपर, 'अघोर' मन्त्रसे हृदयपर, 'वामदेव' मन्त्रसे नाभिपर भस्म लगाये। तदनन्तर 'सद्योजात' मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंपर भस्म लगाकर बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि पहलेका धारण किया हुआ वस्त्र छोड़कर शुद्ध वस्त्र पहन ले॥ १५—१७॥

तत्पश्चात् हाथ-पैर धोकर आचमन करना चाहिये। और यदि पूरे शरीरपर भस्म न लगा सके तो केवल त्रिपुण्ड्र ही धारण कर लेनेका भी विधान है॥ १८॥

मध्याह्नके पूर्व भस्मको जलमें मिलाकर तथा इसके बाद लगाना हो तो जलरहित (सूखा) भस्मका त्रिपुण्ड्र तर्जनी, अनामिका तथा मध्यमा—इन तीनों अँगुलियोंसे धारण करना चाहिये॥ १९॥

सिर, ललाट, कान, कण्ठ, हृदय और दोनों बाहु—ये त्रिपुण्ड्र धारण करनेके स्थान बताये गये हैं। प्रासाद मन्त्रका उच्चारण करते हुए पाँचों अँगुलियोंसे सिरपर त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधकको चाहिये कि तीन अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से शिरोमन्त्र (स्वाहा)-द्वारा ललाटपर त्रिपुण्ड्र लगाये। साधकको सद्योजात मन्त्रसे दाहिने कानपर, वामदेव मन्त्रसे बायें कानपर तथा अघोर मन्त्रसे कण्ठपर मध्यमा अँगुलीद्वारा भस्म लगाना चाहिये॥ २०—२२॥

इसी प्रकार साधकको चाहिये कि हृदयमन्त्रसे तीनों अँगुलियोंद्वारा हृदयमें और शिखामन्त्रसे दाहिनी भुजापर त्रिपुण्ड्र धारण करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको उन्हीं तीनों अँगुलियोंद्वारा कवचमन्त्रसे बायीं भुजापर त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिये और मध्यमाद्वारा '**ईशानः सर्वविद्यानाम्०**'—इस मन्त्रसे नाभिपर भस्म धारण करना चाहिये॥ २३-२४॥

ये तीनों रेखाएँ ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वरका स्वरूप मानी गयी हैं। त्रिपुण्ड्रकी पहली रेखा ब्रह्मा, उसके बादवाली रेखा विष्णु तथा उसके ऊपरकी रेखा महेश्वरका स्वरूप है॥ २५॥

एक अँगुली (मध्यमा)-से जो भस्म लगायी जाती है, उस रेखाके देवता ईश्वर हैं। सिरमें साक्षात् ब्रह्मा, ललाटपर ईश्वर, कानोंमें दोनों अश्विनीकुमार और गलेमें गणेश विद्यमान हैं। क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रको सर्वांगमें भस्म नहीं लगाना चाहिये और समस्त अन्त्य जातियोंको मन्त्रोंका उच्चारण किये बिना ही भस्म धारण करना चाहिये। (इसी प्रकार दीक्षारहित मनुष्योंको भी मन्त्रके बिना ही भस्म लगाना चाहिये)॥ २६—२८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'त्रिविधभस्ममाहात्म्यवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

भस्म न धारण करनेपर दोष

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! अब रहस्य तथा विधानके साथ भस्म लगानेसे प्राप्त होनेवाले समस्त फलके विषयमें सुनिये। यह भस्मोद्धूलन सभी कामनाओंको सफल करनेवाला है॥ १॥

कपिला गायका स्वच्छ गोमय भूमिपर गिरनेके पूर्व ही हाथोंसे ग्रहण कर ले। वह न गीला हो, न कठोर हो,

न दुर्गन्धयुक्त हो और न बासी हो। यदि गोबर पृथ्वीपर गिर पड़ा हो तो ऊपर तथा नीचेका भाग छोड़कर बीचका अंश लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसे पिण्डके आकारका बनाकर मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शिवाग्निमें डाल देना चाहिये॥ २-३॥

जल जानेपर भस्मको निकालकर तथा उसे किसी शुद्ध वस्त्रसे छानकर एक सुन्दर, पवित्र, सुदृढ़, स्वच्छ, सम्यक् प्रक्षालित किये गये तथा प्रोक्षित भस्मपात्रमें रख ले। मन्त्रवेत्ताको चाहिये कि मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भस्मको पात्रमें रखे। भस्म रखनेके लिये किसी धातु (सोना, ताँबा आदि), काष्ठ, मिट्टी, वस्त्र अथवा किसी अन्य सुन्दर तथा शुद्ध पदार्थका भस्मपात्र बनाना चाहिये। अथवा किसी अति शुद्ध रेशमी वस्त्रसे बने पात्रमें धनकी तरह भस्मको सुरक्षित रखना चाहिये॥ ४—६॥

कहीं प्रस्थान करते समय भस्मपात्र या तो स्वयं लिये रहे अथवा साथ चलनेवाला अनुचर (सेवक) इसे लिये रहे। इसे न किसी अयोग्य व्यक्तिके हाथमें दे और न तो किसी अपवित्र स्थानपर ही रखे॥ ७॥

शरीरके नीचेके अंग (पैर आदि)-से भस्मको न तो स्पर्श करे, न तो उसे फेंके और न तो लाँघे। उस पात्रसे भस्म निकालकर अभिमन्त्रित करनेके बाद ही उसे धारण करना चाहिये॥ ८॥

विभूतिधारणकी जो विधि स्मृतिग्रन्थोंमें बतायी गयी है, मैंने उसीका वर्णन किया है। जिसके अनुसार आचरण करनेसे मनुष्य शिवतुल्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ९॥

भगवान् शिवकी सन्निधिमें वैदिक शिवभक्तोंद्वारा बनाये गये भस्मको ही परम श्रद्धाके साथ ग्रहण करना चाहिये और उसे माँगकर उसकी पूजा करनी चाहिये। तन्त्रशास्त्रमें कही गयी विधिसे तान्त्रिक पूजकोंद्वारा निर्मित किया गया भस्म तान्त्रिकोंके लिये ग्राह्य है, वैदिकोंके लिये नहीं। वैदिकोंको चाहिये कि वे शूद्रों, कापालिकों तथा पाखण्डियोंद्वारा ग्राह्य तथा जिस किसीको भी दिये जानेवाले भस्मको ग्रहण न करें। सभीको अत्यन्त श्रद्धापूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये और मनसे भी भस्मका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। श्रुतिके द्वारा इसका विधान किया गया है, अतः भस्मका त्याग करनेवाला पतित हो जाता है। द्विजको भक्तिपूर्वक मन्त्रोच्चारणके साथ त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये तथा शरीरपर भस्मका अनुलेपन करना चाहिये। इसका परित्याग करनेवालेका पतन हो जाता है॥ १०—१३१/२॥

जो लोग भक्तिपूर्वक सभी अंगोंमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, करोड़ों जन्मोंमें भी इस संसारसे उनकी मुक्ति नहीं हो सकती॥ १४१/२॥

हे मुनिवर! जिस मनुष्यने विहित मार्गसे भस्म धारण नहीं किया; हे मुने! आप उसके जन्मको सूअरके जन्मकी भाँति निरर्थक समझिये॥ १५१/२॥

जिन मनुष्योंका शरीर बिना त्रिपुण्ड्रके रहता है, उनका शरीर श्मशानके तुल्य होता है, पुण्यात्मा व्यक्तियोंको ऐसे शरीरपर दृष्टितक नहीं डालनी चाहिये॥ १६१/२॥

भस्मरहित मस्तकको धिक्कार है, शिवालयविहीन ग्रामको धिक्कार है, शिव-अर्चनसे विमुख व्यक्तिके जन्मको धिक्कार है तथा शिवका आश्रय प्रदान न करानेवाली विद्याको धिक्कार है॥ १७१/२॥

जो लोग त्रिपुण्ड्रकी निन्दा करते हैं, वे वस्तुतः शिवकी ही निन्दा करते हैं और जो लोग भक्तिपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे मानो साक्षात् शिवजीको ही धारण करते हैं॥ १८१/२॥

जिस तरह अग्निहोत्र किये बिना ब्राह्मण सुशोभित नहीं होता, उसी प्रकार भस्मरहित होकर किया गया शिवार्चन शोभा नहीं देता, चाहे वह सभी पूजनोपचारोंके साथ ही क्यों न किया गया हो॥ १९१/२॥

जो लोग श्रद्धापूर्वक अपने सर्वांगमें भस्म नहीं लगाते तथा त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते, उनके द्वारा पूर्वमें किया गया समस्त सत्कर्म भी विपरीत हो जाता है॥ २०१/२॥

वेदमन्त्रके साथ ही भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करना

चाहिये। वेदोचित आचारके बिना त्रिपुण्ड्र धारण करना स्मार्तोंके लिये अनर्थकारी होता है॥ २१½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता, उसके द्वारा किया गया कृत्य न किये हुएके समान, सुना गया वेदवचन न सुने हुएके समान तथा अधीत शास्त्र अध्ययन न किये हुएके समान हो जाता है॥ २२½ ॥

जो त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता उसके यज्ञ, दान, वेदाध्ययन, तपश्चरण, व्रत तथा उपवास—ये सभी व्यर्थ हो जाते हैं॥ २३½ ॥

जो मनुष्य भस्मधारणका त्याग करके मुक्तिकी अभिलाषा रखता है, वह मानो विषपान करके अपनेको अमर करना चाहता है॥ २४½ ॥

सृष्टिकर्ताने मस्तककी सृष्टिके बहाने ही त्रिपुण्ड्र धारण करना बतला दिया है; इसीलिये उन्होंने मस्तकको तिरछा तथा ऊँचा बनाया है, गोल नहीं॥ २५½ ॥

सभी देहधारियोंके ललाटपर तिरछी रेखाएँ स्पष्ट-रूपसे दिखायी पड़ती हैं, फिर भी मूर्ख मनुष्य त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करते॥ २६½ ॥

ब्राह्मण बिना तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण किये जो कुछ भी अनुष्ठान करता है, वह न तो ध्यान है, न तो मोक्ष है, न तो ज्ञान है और न तप ही है॥ २७½ ॥

जिस तरह शूद्र वेदके अध्ययनका अधिकारी नहीं है, उसी प्रकार बिना त्रिपुण्ड्र धारण किये ब्राह्मण शिवकी पूजाका अधिकारी नहीं है॥ २८½ ॥

पूर्व दिशाकी ओर मुख करके पूर्ववत् हाथ-पैर धोकर आचमन करके प्राणायाम करनेके अनन्तर संकल्प करके भस्म-स्नान करना चाहिये॥ २९½ ॥

अग्निहोत्रजन्य शुद्ध भस्म लेकर ईशान मन्त्रसे अपने मस्तकपर भस्म धारण करना चाहिये। इसके बाद उस भस्मको लेकर तत्पुरुष मन्त्रसे मुखपर, अघोर मन्त्रसे हृदयपर, वामदेव मन्त्रसे गुह्यस्थलपर तथा सद्योजात मन्त्रसे दोनों पैरोंपर भस्म लगाना चाहिये। तत्पश्चात् प्रणव मन्त्रसे शरीरके सभी अंगोंमें भस्म लगाना चाहिये। महर्षियोंके द्वारा इसे आग्नेय स्नान कहा गया है। बुद्धिमान् व्यक्तिको अपने सभी कर्मोंकी समृद्धिके लिये यह आग्नेयस्नान सबसे पहले करना चाहिये॥ ३०—३३½ ॥

तदनन्तर हाथ-पैर धोकर यथाविधि आचमन करके विधिपूर्वक 'सद्योजात' आदि पंच ब्रह्ममन्त्रोंका उच्चारण करके निर्मित भस्मसे ललाट, हृदयदेश तथा गलेमें तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करे। इस प्रकार धारण किया गया यह त्रिपुण्ड्र सभी कर्मोंमें पवित्रता प्रदान करनेवाला होता है। शूद्रोंको अन्त्यजोंके हाथका भस्म कभी नहीं लगाना चाहिये। अग्निहोत्रजन्य भस्म लगाकर ही कोई शुभ कर्म करना चाहिये; अन्यथा किये गये सभी कर्म कभी भी फलीभूत नहीं होते॥ ३४—३७ ॥

जो व्यक्ति त्रिपुण्ड्र धारण नहीं करता; उसका सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ तथा देवपूजन आदि—यह सब व्यर्थ हो जाता है॥ ३८ ॥

जो विप्रश्रेष्ठ शुद्ध मनसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है तथा रुद्राक्ष पहनता है; वह रोग, पाप, व्याधि, दुर्भिक्ष तथा चोर आदिको विनष्ट कर देता है। वह परब्रह्मका सांनिध्य प्राप्त कर लेता है, जहाँसे पुनः लौटकर नहीं आता। वह श्राद्धमें पंक्तिपावन ब्राह्मण माना जाता है तथा ब्राह्मणों और देवताओंद्वारा भी पूजित होता है॥ ३९-४० ॥

श्राद्ध, यज्ञ, जप, होम, वैश्वदेव तथा देवताओंके पूजन आदिमें जो त्रिपुण्ड्र धारण किये रहता है, वह पवित्र आत्मावाला मनुष्य मृत्युको भी जीत लेता है। अब मैं भस्म धारण करनेका और भी माहात्म्य आपसे कह रहा हूँ॥ ४१ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'भस्मधारणमाहात्म्यवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

भस्म तथा त्रिपुण्ड्र-धारणका माहात्म्य

श्रीनारायण बोले—हे मुनिश्रेष्ठ! भस्म धारण करनेसे महापातकोंके समूह तथा अन्य पातक भी नष्ट हो जाते हैं, यह मैं सच-सच कह रहा हूँ; इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

जिसने एकमात्र भस्म ही धारण किया हो, उसके पुण्यफलके विषयमें सुनिये। हे मुने! यह भस्मधारण संन्यासियोंको ब्रह्मज्ञान देनेवाला, वानप्रस्थलोगोंको विरक्ति प्रदान करनेवाला कहा गया है। उसी प्रकार यह गृहस्थोंके धर्मकी वृद्धि करनेवाला, ब्रह्मचर्य-आश्रममें स्थित लोगोंके लिये स्वाध्यायके प्रति प्रेरणा देनेवाला, शूद्रोंको नित्य पुण्य प्रदान करनेवाला तथा अन्य लोगोंके पापोंका नाश करनेवाला है॥ २-३१/२॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी जीवोंकी रक्षाके लिये है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ४१/२॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये यज्ञतुल्य है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ५१/२॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी (पाशुपत, शैव आदि) धर्मोंमें सामान्य नियम है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ६१/२॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना माहेश्वर लोगोंका चिह्न है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ७१/२॥

भस्म लगाना तथा तिरछा त्रिपुण्ड्र धारण करना सभी लोगोंके लिये ज्ञान-प्राप्तिका साधन है—वैदिकी श्रुति ऐसा विधान करती है॥ ८१/२॥

शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, हिरण्यगर्भ तथा उनके अवतारोंने और वरुण आदि देवताओंने भी त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ९-१०॥

देवी पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, अन्य सभी देवांगनाओं तथा अन्य आस्तिकजनोंने त्रिपुण्ड्र तथा उद्धूलनके रूपमें भस्म धारण किया था॥ ११॥

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर तथा मुनि आदिने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर तथा वर्णधर्मसे च्युत लोगोंने भी अपने शरीरपर भस्म तथा त्रिपुण्ड्र धारण किया था॥ १३॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जो लोग प्रसन्नतापूर्वक भस्मका अनुलेपन करते हैं तथा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे ही शिष्ट तथा विद्वान् हैं, अन्य लोग नहीं॥ १४॥

मोक्षरूपिणी नारीको वशीभूत करनेके निमित्त मनुष्योंके लिये शिवलिंग एक मणिरूप आभूषण है, पंचाक्षरमन्त्र (**नमः शिवाय**) मित्र है और भस्म औषधि है॥ १५॥

जहाँ मूर्ख या पण्डित कोई भी अपने शरीरमें भस्म धारण करके भोजन करता है, वहाँ मानो वृषध्वज महादेव अपनी भार्या पार्वतीके साथ भोजन करते हैं॥ १६॥

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेका अनुगमन करता है, वह सब पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबका पूजनीय हो जाता है॥ १७॥

जो मनुष्य सर्वांगमें भस्म धारण करनेवालेकी श्रद्धापूर्वक स्तुति करता है, वह सभी पापोंसे युक्त होनेपर भी शीघ्र ही सबके द्वारा पूजित होता है॥ १८॥

जिसने त्रिपुण्ड्र धारण करनेवालेको केवल भिक्षाभर दे दी, उसने मानो वेदोंका अध्ययन कर लिया, सम्पूर्ण श्रुतियोंको सुन लिया तथा सभी धार्मिक कार्योंको कर लिया॥ १९॥

यदि कोई ब्राह्मण अपने मस्तकपर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करके कीकट आदि देशोंमें भी नित्य निवास करता हो; तो विभूतिसे विभूषित उस मनुष्यके लिये वह स्थान काशीक्षेत्रके समान हो जाता है॥ २०१/२॥

कोई मनुष्य आचारवान् हो या आचारहीन, योगसम्पन्न हो या योग-लक्षणोंसे रहित, यदि उसने केवल भस्ममात्र धारण किया है तो वह मेरे पुत्र ब्रह्माके समान पूजनीय है॥ २११/२॥

छद्मसे भी यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्यमय भस्म धारण करता है, तो वह भी उस गतिको प्राप्त करता है, जो सैकड़ों यज्ञ करनेसे भी प्राप्त नहीं की जा सकती॥ २२१/२॥

जो भस्म धारण करनेवालेके सम्पर्कसे, विनोदमें अथवा भयसे ही विधिपूर्वक भस्म धारण करता है, वह मेरी तरह पूजनीय हो जाता है॥ २३१/२॥

यह भस्म ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अन्य देवगण, पार्वती, महालक्ष्मी तथा सरस्वतीकी तृप्तिका कारण है॥ २४१/२॥

जो पुण्य त्रिपुण्ड्र धारण करनेसे प्राप्त होता है; वह पुण्य न दानसे, न यज्ञसे, न दुःसाध्य तपस्याओंसे और न तो तीर्थयात्रासे ही प्राप्त होता है॥ २५१/२॥

हे नारद! दान, सभी यज्ञ, सभी धर्म, तीर्थयात्रा, ध्यान तथा तपस्या आदि त्रिपुण्ड्रकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते॥ २६१/२॥

जिस प्रकार राजा अपने चिह्नसे अंकित व्यक्तिको स्वजन समझता है, उसी प्रकार भगवान् शिव त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण करनेवालेको सदा अपना मानते हैं॥ २७१/२॥

द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) अथवा अन्य किसी जातिका मनुष्य यदि शुद्ध मनसे भस्मद्वारा त्रिपुण्ड्रका चिह्न धारण करे तो भगवान् शिव उसके वशीभूत हो जाते हैं॥ २८१/२॥

जिसने समस्त आश्रमोंके आचारोंका त्याग कर दिया है तथा समस्त नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंको छोड़ दिया है, वह भी यदि एक बार त्रिपुण्ड्र-चिह्न धारण कर ले तो मुक्त हो जाता है॥ २९१/२॥

हे नारद! इस त्रिपुण्ड्रधारीके न तो ज्ञानकी, न उसके कुलकी और न तो उसके व्रतकी ही परीक्षा करे; क्योंकि वह तो अपने त्रिपुण्ड्रांकित मस्तकके कारण ही पूज्य है॥ ३०१/२॥

शिवमन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नहीं है, शिवके समान कोई दूसरा देवता नहीं है, शिवके पूजनसे बढ़कर कोई पुण्य नहीं है और भस्मसे बढ़कर कोई तीर्थ नहीं है[1]॥ ३११/२॥

रुद्राग्निका जो परम तीर्थ है, उसे ही भस्म कहा गया है, वह सभी प्रकारके कष्टोंका नाश करनेवाला तथा सभी पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३२१/२॥

अन्त्यज, निर्धन, मूर्ख अथवा पण्डित कोई भी हो, वह नित्य भस्म धारण करके जिस देशमें निवास करता है, सदाशिव महादेव सभी भूतगणोंको साथमें लेकर सभी तीर्थोंसहित पार्वतीके साथ उस स्थानपर सदा विराजमान रहते हैं॥ ३३-३४॥

कामदेवको भस्म करनेवाले भगवान् शिवके अंगके भूषणस्वरूप तथा पंच-शिवमन्त्रोंसे पवित्र की गयी यह भस्मराशि त्रिपुण्ड्ररूपमें [ललाटपर] धारण करनेसे ललाटपट्टपर विधाताके द्वारा लिखे गये अभाग्यसूचक अक्षरोंको भी मिटा देती है[2]॥ ३५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'त्रिपुण्ड्रधारणमाहात्म्यवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

---

१. शिवमन्त्रात्परो मन्त्रो नास्ति तुल्यं शिवात्परम्॥ शिवार्चनात्परं पुण्यं न हि तीर्थं च भस्मना। (श्रीमद्देवीभा० ११। १३। ३१-३२)

२. एतानि पञ्चशिवमन्त्रपवित्रितानि भस्मानि कामदहनाङ्गविभूषितानि। त्रैपुण्ड्रकाणि रचितानि ललाटपट्टे लुम्पन्ति दैवलिखितानि दुरक्षराणि॥ (श्रीमद्देवीभा० ११। १३। ३५)

चौदहवाँ अध्याय

भस्मस्नानका महत्त्व

श्रीनारायण बोले—जो मनुष्य शरीरमें भस्म धारण करनेवालेको प्रसन्नतापूर्वक धन देता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ १॥

सभी श्रुतियाँ, स्मृतियाँ एवं समस्त पुराण भी विभूतिके माहात्म्यका वर्णन करते हैं, अतएव द्विजको विभूति धारण करना चाहिये॥ २॥

जो तीनों सन्ध्याओं (प्रातः, मध्याह्न एवं सायं)-के समय श्वेत भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ ३॥

जो योगी तीनों सन्ध्याओंको करते समय पैरोंके तलवेसे लेकर मस्तकपर्यन्त सभी अंगोंमें नित्य भस्म लगाता है (भस्मस्नान करता है), वह शीघ्र ही योगस्थिति प्राप्त कर लेता है॥ ४॥

भस्मस्नानसे मनुष्य अपने कुलका उद्धार करनेवाला हो जाता है। भस्मस्नान जलस्नानकी अपेक्षा असंख्य गुना फलदायी होता है॥ ५॥

सभी तीर्थोंका सेवन करनेसे जो पुण्य होता है तथा जो फल मिलता है, वह फल केवल भस्मस्नानसे ही प्राप्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ६॥

मनुष्य चाहे जितने भी महापातकों अथवा उपपातकोंसे युक्त हो; केवल भस्मस्नान उसके सभी पापोंको उसी प्रकार दग्ध कर देता है, जैसे अग्नि ईंधनको॥ ७॥

'भस्मस्नानसे बढ़कर पवित्र कोई दूसरा स्नान नहीं है'—ऐसा शिवजीने कहा है और शिवजीने ही सर्वप्रथम स्वयं भस्मस्नान किया था॥ ८॥

उसी समयसे कल्याणकी इच्छावाले ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनिगण सभी कर्मोंमें तत्परतापूर्वक भस्मस्नान करने लगे॥ ९॥

अतएव जो मनुष्य यह आग्नेय नामक शिरःस्नान करता है, वह इसी शरीरसे साक्षात् रुद्रस्वरूप हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ १०॥

जो लोग भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर आनन्दित होते हैं; वे देवताओं, दैत्यों तथा महर्षियोंसे नित्य पूजित होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ११॥

अपने शरीरके सभी अंगोंमें भस्म धारण किये हुए व्यक्तिको देखकर जो मनुष्य [श्रद्धाके साथ] उठ जाता है, उसे देखकर देवराज इन्द्र भी दण्डवत् प्रणाम करते हैं॥ १२॥

हे मुने! जो लोग भस्म धारण करके अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते हैं, उनके लिये वह भी भक्ष्य हो जाता है; इस विषयमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ १३॥

जो जलमें स्नान करनेके अनन्तर श्रद्धापूर्वक नित्य भस्मस्नान करता है, वह ब्रह्मचारी हो अथवा गृहस्थ हो अथवा वानप्रस्थी हो, सभी पापोंसे मुक्त होकर परमगतिको प्राप्त होता है। यतियोंके लिये भस्मके द्वारा अग्निस्नानको विशिष्ट कहा गया है॥ १४-१५॥

जलस्नानकी अपेक्षा भस्मस्नान श्रेष्ठ होता है; इसीसे आर्द्र (प्रकृति-बन्धन)-का नष्ट होना सम्भव है। आर्द्रको 'प्रकृति' समझना चाहिये और इस प्रकृतिको ही 'बन्धन' कहा गया है। अतएव इस प्रकृतिरूप बन्धनको काटनेके लिये भस्मसे स्नान करना चाहिये। हे ब्रह्मन्! तीनों लोकोंमें भस्मके समान कुछ भी नहीं है॥ १६-१७॥

पूर्व कालमें देवताओंने अपनी रक्षाके लिये; अपने कल्याणके लिये और पवित्रताके लिये भस्मको स्वीकार किया था। हे मुने! सबसे पहले शिवजीने भस्म प्राप्त करके इसे देवी पार्वतीको दिया था॥ १८॥

अतएव जो मनुष्य इस आग्नेय शिरःस्नानको करता है, वह सांसारिक बन्धनोंसे विमुक्त होकर शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १९॥

ज्वर, राक्षस, पिशाच, पूतनारोग, कुष्ठ, गुल्मरोग, सभी प्रकारका भगंदर रोग, अस्सी प्रकारके वातरोग, चौंसठ प्रकारके पित्तरोग, एक सौ पाँच प्रकारके कफरोग, बाघ आदि जन्तुओंका भय, चोरोंका भय और अन्य प्रकारके दुष्टग्रह—ये सब भस्मस्नानसे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे सिंहके द्वारा हाथी विनष्ट कर दिये जाते हैं॥ २०-२१½॥

जो मनुष्य शुद्ध तथा शीतल जल मिलाकर भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त करता है; इसमें सन्देह नहीं है। (जो कोई भी मनुष्य भस्मसे त्रिपुण्ड्र धारण करता है, वह पापोंसे मुक्त होकर ब्रह्मलोकको जाता है; इसमें संशय नहीं है)। ललाटपर विधिपूर्वक इस अग्निवीर्यरूपी भस्मको धारण करनेसे यह मनुष्यके भालपर अंकित यमकी लिपिको भी निश्चितरूपसे मिटा देता है। कण्ठके ऊपरी भागसे किया गया पाप भी उसके धारणसे नष्ट हो जाता है॥ २२—२४॥

कण्ठद्वारा अभक्ष्य पदार्थोंके भोगजनित पाप कण्ठपर भस्म धारण करनेसे, बाहुद्वारा किया गया पाप दोनों बाहुओंपर भस्म लगानेसे तथा मनद्वारा किये गये पाप वक्ष:स्थलपर भस्म धारण करनेसे नष्ट हो जाते हैं। नाभिपर भस्म लगानेसे लिंगजनित पाप तथा गुदापर भस्म लगानेसे गुदेन्द्रियजनित पाप मिट जाता है। हे ब्रह्मन्! दोनों पार्श्वमें भस्म धारण करनेसे परनारीका आलिंगन आदि करनेसे लगा हुआ पाप विनष्ट हो जाता है॥ २५-२६॥

सर्वत्र तीन तिर्यक् रेखावाला (त्रिपुण्ड्र) भस्म प्रशस्त माना गया है। जिसने त्रिपुण्ड्र धारण कर लिया, उसने मानो ब्रह्मा, विष्णु, महेश; तीनों अग्नि (गार्हपत्य, आहवनीय तथा दक्षिणाग्नि); तीनों गुणों (सत्त्व, रज, तम) और तीनों लोकोंको धारण कर लिया॥ २७½॥

भस्म धारण करनेवाला विद्वान् द्विज महापातकजन्य दोषोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है॥ २८½॥

भस्म धारण करनेवाले मनुष्यके दोष भस्मकी अग्निके सम्पर्कसे नष्ट हो जाते हैं। भस्म-स्नानसे विशुद्ध आत्मावाला व्यक्ति आत्मनिष्ठ कहा गया है॥ २९½॥

अपने सर्वांगमें भस्म लगानेवाला, भस्मसे प्रदीप्त त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला तथा भस्मपर ही शयन करनेवाला पुरुष 'भस्मनिष्ठ' कहा गया है॥ ३०½॥

भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ तथा अति दु:सह रोग भस्म धारण करनेवालेके पाससे भाग जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं है॥ ३१½॥

इस भस्मको ब्रह्मका भास करानेसे 'भसित', पापका भक्षण करनेके कारण 'भस्म', मनुष्योंको भूति (ऐश्वर्य तथा सिद्धियाँ आदि) प्रदान करनेसे 'भूति' तथा रक्षा करनेके कारण 'रक्षा' कहा गया है॥ ३२½॥

त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको अपने सम्मुख देखकर भूत-प्रेत आदि भयभीत होकर काँपने लगते हैं और वे शीघ्र ही उसी प्रकार विनष्ट हो जाते हैं, जैसे भगवान् रुद्रके स्मरणमात्रसे पाप दग्ध हो जाते हैं॥ ३३-३४॥

हजारों प्रकारके दुष्कृत्योंको करके भी जो मनुष्य भस्मसे स्नान करता है, उसके उन सभी कुकर्मोंको भस्म उसी प्रकार जला डालता है; जैसे अग्नि अपने तेजसे वनको भस्म कर देती है॥ ३५॥

जो द्विज घोर पाप करके भी यदि मृत्युके समय भस्मस्नान कर लेता है, वह तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३६॥

भस्मस्नान करके शुद्ध आत्मावाला, क्रोधको जीत लेनेवाला तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण कर लेनेवाला मनुष्य मेरे सांनिध्यमें आकर पुन: जन्म-मरणके बन्धनमें नहीं पड़ता॥ ३७॥

सोमवती अमावास्याके दिन भस्मसे अनुलिप्त देहवाला व्यक्ति पूजित हुए भगवान् शिवका दर्शन करके सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३८॥

दीर्घ आयुकी इच्छा रखनेवाले, विपुल ऐश्वर्यकी अभिलाषा रखनेवाले अथवा मोक्षकी कामना करनेवाले

विद्वान् द्विजको भस्म और ब्रह्मा, विष्णु, शिवके स्वरूपवाले परम पवित्र त्रिपुण्ड्रको नित्य धारण करना चाहिये॥ ३९१/२॥

भयंकर राक्षस, प्रेत तथा जो भी अन्य क्षुद्र जन्तु हैं, वे सभी त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए मनुष्यको देखकर भाग जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं है॥ ४०१/२॥

शौच आदि कार्योंसे निवृत्त होकर स्वच्छ जलमें स्नान करनेके पश्चात् मस्तकसे लेकर पैरके तलवेतक भस्म धारण करना चाहिये॥ ४११/२॥

जलका स्नान केवल बाह्य मलको धोनेवाला है, किंतु पवित्र भस्मस्नान बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों प्रकारके मलोंको नष्ट करनेवाला है। अतः जलस्नानका परित्याग करके भी भस्मस्नानके लिये तत्पर होना चाहिये; इसमें संशय नहीं है॥ ४२-४३॥

हे मुने! भस्मस्नानके बिना किया गया कृत्य न किये हुएके बराबर हो जाता है, यह सत्य है। यह वेदोक्त भस्मस्नान ही 'आग्नेयस्नान' कहा जाता है॥ ४४॥

भीतर तथा बाहरसे शुद्ध होनेपर ही मनुष्य शिवपूजाका फल प्राप्त कर सकता है। जो जलस्नान है वह तो केवल बाह्य मलका नाश करता है, किंतु वह भस्मस्नान प्राणीके बाहरी तथा भीतरी दोनों प्रकारके मलोंको बड़ी तीव्रतापूर्वक विनष्ट कर देता है॥ ४५१/२॥

हे मुने! नित्य करोड़ों बार श्रद्धापूर्वक जलस्नान करके भी कोई मनुष्य बिना भस्मस्नान किये पवित्र आत्मावाला नहीं हो सकता॥ ४६१/२॥

भस्मस्नानका जो माहात्म्य है, उसे तात्त्विकरूपसे या तो वेद जानते हैं और या समस्त देवताओंके शिखामणिस्वरूप भगवान् महादेव जानते हैं॥ ४७१/२॥

जो मनुष्य भस्मस्नान किये बिना ही वैदिक कर्म करता है, वह वस्तुतः उस कर्मकी चौथाई कलाके बराबर भी फल नहीं प्राप्त करता॥ ४८१/२॥

जो मनुष्य प्रयत्नपूर्वक विधि-विधानसे भस्मस्नान करता है, एकमात्र वही समस्त कर्मोंका अधिकारी है; वेदोंमें ऐसा प्रतिपादित किया गया है॥ ४९१/२॥

यह वेदप्रतिपादित भस्मस्नान पवित्रोंको भी पवित्र करनेवाला है। जो अज्ञानवश भस्मस्नान नहीं करता, वह महापातकी होता है॥ ५०१/२॥

द्विजगण असंख्य बार जलस्नान करके जो पुण्य प्राप्त करते हैं, उसका अनन्तगुना पुण्य केवल भस्मस्नानसे ही उन्हें मिल जाता है॥ ५११/२॥

तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रयत्नपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये। भस्मस्नान श्रौतकर्म कहा गया है, अतः इसका परित्याग करनेवाला पतित हो जाता है॥ ५२१/२॥

मल-मूत्र आदिका त्याग करनेके पश्चात् प्रयत्नके साथ भस्मस्नान करना चाहिये, अन्यथा इसे न करनेवाले मनुष्य पवित्र नहीं होंगे॥ ५३१/२॥

विधिपूर्वक शौच आदि कृत्य करनेके बाद भी बिना भस्मस्नानके कोई द्विज पवित्र अन्तःकरणवाला नहीं हो सकता और वह किसी कृत्यको सम्पादित करनेका अधिकारी भी नहीं हो सकता है॥ ५४१/२॥

अपान वायु निकलनेपर, जम्हाई आनेपर, दस्त हो जानेपर तथा श्लेष्मा (कफ) निकलनेपर प्रयत्नपूर्वक भस्मस्नान करना चाहिये॥ ५५१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! यह मैंने श्रीभस्मस्नानके मात्र एक अंशका वर्णन आपसे किया है। अब मैं भस्मस्नानसे प्राप्त होनेवाले फलके विषयमें पुनः बताऊँगा, सावधान मनसे सुनिये॥ ५६-५७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'विभूतिधारणमाहात्म्यवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

भस्म-माहात्म्यके सम्बन्धमें दुर्वासामुनि और कुम्भीपाकस्थ जीवोंका आख्यान, ऊर्ध्वपुण्ड्रका माहात्म्य

श्रीनारायण बोले—द्विजोंको **'अग्निरिति भस्म'** आदि मन्त्रोंसे भस्मको श्रद्धापूर्वक शुद्ध करके अपने ललाट आदिपर त्रिपुण्ड्ररूपमें धारण करना चाहिये॥ १॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य—ये सब द्विज कहे गये हैं। अतः द्विजोंको प्रतिदिन प्रयत्नपूर्वक त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २॥

हे ब्रह्मन्! जिसका उपनयन हो गया है, उसीको द्विज कहा जाता है। अतः द्विजोंको श्रुतिविहित त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ३॥

जो मनुष्य भस्म-धारणका त्याग करके कुछ भी सत्कृत्य करता है, उसका सब किया हुआ न कियेके बराबर हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४॥

बिना भस्म धारण किये गायत्रीमन्त्रका उपदेश सार्थक नहीं होता है, अतः अपने शरीरमें भस्म लगाकर ही गायत्रीजप करना चाहिये॥ ५॥

हे मुनिश्रेष्ठ! गायत्रीको ही ब्राह्मणत्वका मूल कहा गया है। भस्म धारण न करनेपर कोई भी उस गायत्रीका उपदेश देनेका अधिकारी नहीं हो सकता है॥ ६॥

हे मुने! उसी प्रकार जबतक अग्निहोत्रजनित भस्म ललाट आदि अंगोंमें धारण नहीं किया जाता, तबतक किसीको भी गायत्रीमन्त्र लेनेका अधिकार नहीं होता॥ ७॥

किसीके भस्मरहित ललाटसे उसके ब्राह्मणत्वका अनुमान नहीं किया जा सकता है; इसीलिये हे ब्रह्मन्! मैंने भस्मको अत्यन्त पुण्यदायक हेतु बतलाया है॥ ८॥

जिसके ललाटपर मन्त्रसे पवित्र किया गया श्वेत भस्म विद्यमान रहता है, वस्तुतः वही विद्वान् ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ ९॥

हे ब्रह्मन्! मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति रहती है, वस्तुतः वही ब्राह्मण है; ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ, किंतु मणिसंग्रह करनेकी भाँति भस्मसंग्रह करनेमें जिसकी स्वाभाविक प्रीति न हो तो ऐसा जान लेना चाहिये कि वह जन्म-जन्मान्तरमें निश्चित ही चाण्डाल रहा होगा॥ १०-११॥

त्रिपुण्ड्रधारण तथा भस्मोद्धूलन आदिमें जिसकी सहज निष्ठा नहीं होती, उसे चाण्डाल समझना चाहिये, ऐसा मैं सत्य कह रहा हूँ॥ १२॥

जो लोग भस्म-धारणका त्याग करके फल आदिका भक्षण करते हैं, वे सब घोर नरकको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है; (विभूतिधारणका त्याग करके जो शिवकी पूजा करता है, वह भाग्यहीन शिवसे द्वेष करनेवाला होता है और वह द्वेष उसके लिये नरकप्रदायक होता है। भस्म न धारण करनेवाला मनुष्य सभी प्रकारके कर्मोंका अनधिकारी होता है।) विभूतिधारणका त्याग करके स्वर्णका तुलादान करनेवाला भी उस दानका फल प्राप्त नहीं कर पाता और वह अपने धर्मसे भ्रष्ट हो जाता है॥ १३-१४॥

जिस प्रकार यज्ञोपवीतसे विहीन द्विज सन्ध्या नहीं करते, उसी प्रकार भस्मविहीन रहनेपर भी द्विजोंको सन्ध्या नहीं करनी चाहिये॥ १५॥

यज्ञोपवीतके च्युत हो जानेपर सन्ध्यामें गायत्री-जप आदि करनेके लिये तथा उसी प्रकार व्रत-उपवास आदिमें किसीको प्रतिनिधिके रूपमें नियुक्त किया जा सकता है, किंतु विभूतिधारणमें कोई दूसरा व्यक्ति प्रतिनिधिके रूपमें नहीं हो सकता। यदि विभूतिधारणका परित्याग करके कोई द्विज सन्ध्या करता है तो वह पापका भागी होता है; क्योंकि वह उस समय सन्ध्या करनेका अधिकारी ही नहीं है। जैसे अन्त्यजको वेदोंका श्रवण करनेसे पाप लगता है, उसी प्रकार भस्म न लगाकर सन्ध्या करनेवाले द्विजको भी पाप लगता है;

इसमें सन्देह नहीं है॥ १६—१८१/२॥

द्विजोंको सदैव यत्नपूर्वक श्रौताग्निजन्य या स्मार्ताग्निजन्य भस्म अथवा उनके अभावमें लौकिकाग्निजन्य भस्म ही अत्यन्त समाहितचित्त होकर धारण करना चाहिये। भस्म चाहे जैसा हो, वह सदा पवित्र होता है। अतः द्विजोंको चाहिये कि वे सन्ध्या आदि कर्मोंमें उसे प्रयत्नके साथ धारण करें। भस्मनिष्ठ मनुष्यमें पाप प्रविष्ट नहीं हो सकते, अतः ब्राह्मणोंको यत्नपूर्वक सदा भस्म धारण किये रहना चाहिये॥ १९—२११/२॥

यदि कोई अपने दाहिने हाथकी तीनों मध्यकी अँगुलियों (तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका)-से छः अंगुलतक अथवा इससे भी अधिक लम्बे परिमाणका अथवा एक नेत्रसे लेकर दूसरे नेत्रतक लम्बा देदीप्यमान त्रिपुण्ड्र भस्मसे अपने ललाटपर लगाये तो वह साक्षात् रुद्ररूप हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है। अनामिका अँगुलीको अकार, मध्यमाको उकार तथा तर्जनीको मकार कहा गया है। अतएव त्रिपुण्ड्र त्रिगुणात्मक है। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका अँगुलियोंसे अनुलोमक्रमसे त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ २२—२५॥

इस सम्बन्धमें आपसे एक प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय तपस्वियोंके शिरोमणि ऋषि दुर्वासा अपने सर्वांगमें भस्म धारण किये हुए तथा रुद्राक्षके आभूषण पहने हुए 'हे शिव! हे शंकर! हे सर्वात्मन्! हे श्रीमातः! हे जगदम्बिके!'— इन नामोंका उच्च स्वरसे उच्चारण करते हुए पितृलोक गये हुए थे॥ २६-२७१/२॥

उन्हें देखकर कव्यवाट् (अनल, सोम, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्ता, बर्हिषद्, सोमपा) आदि पितरोंने उठकर अभिवादनके द्वारा तथा आसन आदि उपचारोंसे उनका अत्यधिक सम्मान किया। तब वे अनेक प्रकारकी कथाओंके माध्यमसे परस्पर वार्तालाप करने लगे॥ २८-२९॥

उसी समय कुम्भीपाकनरकमें पड़े हुए पापियोंका भयंकर चीत्कार हुआ। 'हाय! हमलोग मारे जा रहे हैं'—वे ऐसा बोल रहे थे। उनमें कुछ चिल्ला रहे थे 'हम मर गये', दूसरे कह रहे थे 'हम जल गये', कुछ चीत्कार कर रहे थे 'हम कट गये' तथा कुछ चिल्ला रहे थे 'हम छेदे जा रहे हैं'—इस प्रकार कहकर वे रुदन कर रहे थे॥ ३०-३१॥

वह करुण-क्रन्दन सुनकर मुनिराज दुर्वासाके मनमें बड़ी व्यथा हुई और उन्होंने उन पितृदेवोंसे पूछा कि यह किन लोगोंकी ध्वनि है?॥ ३२॥

तब उन पितृदेवोंने कहा—हे मुने! यहींपर संयमनी नामक एक विशाल पुरी है। यहाँ पापियोंको उनके कर्मोंका भोग प्रदान करनेवाले यमराज रहते हैं॥ ३३॥

हे अनघ! साक्षात् कालरूप तथा कृष्णवर्णवाले अनेक भयानक दूतोंके साथ यमराज उस पुरीमें स्वामीके रूपमें निवास करते हैं॥ ३४॥

उस पुरीमें पापियोंको उनके कुकर्मका भोग प्रदान करनेवाले छियासी कुण्ड हैं, जो भयंकर रूपवाले दूतोंसे सदा घिरे रहते हैं॥ ३५॥

उनमें सबसे मुख्य कुम्भीपाक नामक एक विशाल कुण्ड है। उस नरककुण्डमें मिलनेवाली यातनाओंका वर्णन कोई भी सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं कर सकता॥ ३६१/२॥

हे मुने! जो शिव तथा विष्णुके द्रोही हैं और देवीके निन्दक हैं, वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३७१/२॥

जो वेदके निन्दक हैं एवं सूर्य, गणेश तथा ब्राह्मणोंके द्रोही हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें गिरते हैं॥ ३८१/२॥

जो लोग स्वेच्छाचारी हैं तथा जो तप्तमुद्रासे अंकित हैं तथा जो त्रिशूल धारण करते हैं, हे मुने! वे इसी 'कुम्भीपाक' नरककुण्डमें गिरते हैं॥ ३९१/२॥

जो लोग माता, पिता, गुरु, श्रेष्ठजनों, पुराणों तथा स्मृतियोंके निन्दक हैं और धर्मको दूषित करनेवाले हैं, हे मुने! वे लोग इसी कुण्डमें पड़ते हैं॥ ४०१/२॥

[हे मुने!] सुननेमें अत्यन्त दारुण तथा महाभयानक यह ध्वनि उन्हीं लोगोंकी है। हमलोग यह ध्वनि नित्य सुनते रहते हैं, जिसके सुननेसे वैराग्य उत्पन्न हो जाता है॥ ४१$^{१}/_{२}$॥

उन पितृगणोंकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा उन पापियोंको देखनेकी इच्छासे वहाँसे उठकर चल दिये और शीघ्र ही कुम्भीपाक नरककुण्डके पास पहुँच गये॥ ४२$^{१}/_{२}$॥

[श्रीनारायण कहते हैं—] हे मुने! मुख झुकाकर जब दुर्वासामुनि नीचेकी ओर देखने लगे, उसी समय उस कुण्डमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखका अनुभव होने लगा॥ ४३$^{१}/_{२}$॥

उनमेंसे कुछ हँसने लगे, कुछ गाने लगे तथा कुछ नाचने लगे। सुख-वृद्धिके कारण उन्मत्त होकर वे परस्पर क्रीडा करने लगे॥ ४४$^{१}/_{२}$॥

मृदंग, मुरज, वीणा, ढक्का तथा दुन्दुभिकी कोयलसदृश पंचम स्वरसे युक्त मधुर ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगीं और वासन्ती लताके पुष्पोंके सम्पर्कसे सुगन्धित हवाएँ बहने लगीं॥ ४५-४६॥

यह देखकर मुनि दुर्वासा आश्चर्यचकित हो गये और यमदूत भी अत्यन्त विस्मयमें पड़ गये। वे यमदूत सर्वज्ञ धर्मराजके पास शीघ्र पहुँचकर उनसे कहने लगे—हे महाराज! हे विभो! अभी-अभी एक अत्यन्त आश्चर्यजनक घटना घटी है। कुम्भीपाकमें स्थित पापियोंको स्वर्गसे भी अधिक सुख प्राप्त हो रहा है। हे विभो! यह कैसे हो गया, इसका कारण हम नहीं जानते। हे देव! इस घटनासे हम सभी लोग चकित हैं और आपके पास आये हुए हैं॥ ४७—४९॥

दूतोंकी वह बात सुनकर धर्मराज शीघ्र ही उठ खड़े हुए और एक विशाल महिषपर आरूढ होकर उस कुम्भीपाक नरककुण्डके लिये प्रस्थित हुए, जहाँ वे पापी पड़े हुए थे॥ ५०॥

उन्होंने अपने दूतोंद्वारा वह सन्देश अमरावती (इन्द्रपुरी)-में भेज दिया। उस सन्देशको सुनकर देवराज इन्द्र भी देवताओंके साथ वहाँ आ गये। इसी प्रकार ब्रह्मलोकसे ब्रह्मा, वैकुण्ठलोकसे विष्णु तथा अपने-अपने लोकोंसे समस्त दिक्पाल अपने गणोंसहित वहाँ आ गये॥ ५१-५२॥

वे सभी कुम्भीपाकको इधर-उधरसे घेरकर खड़े हो गये। उन्होंने वहाँपर स्थित जीवोंको स्वर्गसे भी अधिक सुखी देखा। विस्मयमें पड़े हुए वे सभी देवता उसका कारण नहीं जान पाये। वे कहने लगे—'अहो! यह कुण्ड तो पाप भोगनेके निमित्त है। जब यहाँपर ऐसा सुख प्राप्त हो रहा है तो फिर लोगोंको पापसे क्या भय रहेगा? परमेश्वरके द्वारा बनायी गयी वेदमर्यादा कैसे विनष्ट हो गयी? भगवान्‌ने अपने ही संकल्पको मिथ्या कैसे कर दिया? यह तो आश्चर्य है, यह तो आश्चर्य है'—ऐसा कहते हुए वे सभी देवता उदास हो गये; वे उस घटनाका कारण नहीं जान सके॥ ५३—५६$^{१}/_{२}$॥

इसी बीच भगवान् विष्णु देवताओं आदिसे मन्त्रणा करके कुछ देवगणोंके साथ शंकरजीके निवास-स्थानपर गये। वहाँपर उन्होंने पार्वतीके साथ विराजमान, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, परम रमणीय अंगोंवाले, लावण्यकी खान, अद्भुत, सदा सोलह वर्षकी अवस्थावाले, अनेकविध अलंकारोंसे सुशोभित, विविध गणोंसे घिरे हुए तथा परा शिवाको प्रमुदित करते हुए चतुर्वेदस्वरूप चन्द्रशेखर भगवान् शिवको देखा और उन्हें प्रणाम किया। तत्पश्चात् उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट वाणीमें उस आश्चर्यजनक घटनाको बताया—'हे देव! हम इस घटनाका कुछ भी कारण नहीं समझ पा रहे हैं। हे देव! इसका जो कारण हो, उसे आप बताइये; क्योंकि हे प्रभो! आप सर्वज्ञ हैं'॥ ५७—६१$^{१}/_{२}$॥

तब विष्णुका कथन सुनकर प्रसन्न मुखारविन्दवाले भगवान् शिवने मेघके समान गम्भीर वाणीमें यह मधुर वचन कहा—'हे विष्णो! उसका कारण सुनिये।' इस विषयमें कोई आश्चर्य नहीं है। यह भस्मकी महिमा है।

भस्मसे क्या नहीं हो सकता है?॥ ६२-६३१/२॥

शैवसम्मत होकर अर्थात् भस्म तथा त्रिपुण्ड्र आदि धारण करके दुर्वासामुनि कुम्भीपाक देखने गये थे। हे हरे! वे मुख झुकाकर नीचेकी ओर देखने लगे, तभी उनके ललाटपर स्थित भस्मके कुछ कण दैवयोगसे वायुके प्रभावसे उस कुण्डमें गिर पड़े। उसीसे यह सारी घटना हुई है; यह तो भस्मकी ही महिमा है॥ ६४-६५१/२॥

अबसे यह कुम्भीपाक पितृलोकमें निवास करनेवालोंके लिये तीर्थ बन जायगा, जिसमें स्नान करके सुख प्राप्त होगा; इसमें सन्देह नहीं है। आजसे उन्हींके नामसे यह 'पितृतीर्थ' नामवाला होगा। हे श्रेष्ठ! आप वहाँपर मेरे लिंग तथा देवीकी मूर्तिकी स्थापना करें, जिससे पितृलोकमें रहनेवाले हमारी पूजा कर सकें। तीनों लोकोंमें जितने तीर्थ हैं, उनमें यह श्रेष्ठ तीर्थ होगा। वहाँपर स्थापित पित्रीश्वरीकी पूजामात्रसे तीनों लोकोंकी पूजा हो जायगी॥ ६६—६९॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! महादेवजीकी यह बात सुनकर विष्णुजीने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनसे आज्ञा लेकर वे देवताओंके पास चले गये। वहाँ पहुँचकर भगवान् विष्णुने शंकरजीद्वारा बतायी गयी समस्त बातें उनसे कहीं, जिसपर वे सभी देवता सिर हिलाकर 'साधु-साधु'—ऐसा कहने लगे॥ ७०-७१॥

ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता भस्मके माहात्म्यकी प्रशंसा करने लगे और हे परंतप! कुम्भीपाकके तीर्थ हो जानेसे पितरोंको बड़ी प्रसन्नता हुई॥ ७२॥

देवताओंने उस तीर्थके तटपर शिवलिंग तथा देवीकी मूर्तिकी विधिपूर्वक स्थापना की और प्रतिदिन पूजन करने लगे॥ ७३॥

अपने पापकर्मोंका फल भोगनेके लिये उस कुण्डमें जितने भी जीव थे, वे सब विमानपर आरूढ होकर कैलासमण्डलको चले गये। वे इस समय भी वहाँ भद्रगण नामसे निवास करते हैं; और फिर वहाँसे दूर अन्य स्थानपर 'कुम्भीपाक' निर्मित हुआ और उसी दिनसे देवताओंने भस्म तथा त्रिपुण्ड्रधारी शैवोंका कुम्भीपाक नरककुण्ड जाना निरुद्ध कर दिया॥ ७४-७५१/२॥

इस प्रकार मैंने आपसे भस्मके उत्तम माहात्म्यका सारा वर्णन कर दिया। हे मुने! इस भस्मसे बढ़कर अन्य कुछ भी नहीं है॥ ७६१/२॥

हे मुनिशार्दूल! वैष्णवशास्त्रोंके अवलोकनसे प्राप्त ज्ञानके अनुसार अब अधिकार-भेदसे ऊर्ध्वपुण्ड्रकी विधिका भी वर्णन करूँगा॥ ७७१/२॥

हे मुने! अँगुलिके नापसे दिव्य ऊर्ध्वपुण्ड्रके प्रमाण, उसके रंग, उसके मन्त्र, उसके देवता तथा उसके फलोंका वर्णन करूँगा॥ ७८१/२॥

इसके लिये पर्वतकी चोटी, नदीके तट, विशेष रूपसे शिवक्षेत्र, समुद्रके तट, वल्मीक (बाँबी) और तुलसीके वृक्षकी जड़—इन्हीं स्थानोंकी मिट्टियोंको लेना चाहिये, इसके अतिरिक्त अन्य मिट्टियाँ नहीं लेनी चाहिये॥ ७९-८०॥

श्यामवर्णकी मिट्टी शान्तिदायिनी कही गयी है तथा रक्तवर्णकी मिट्टी वशमें करनेवाली होती है। इसी प्रकार पीली मिट्टी श्रीदायिनी तथा श्वेत मिट्टी धर्मकी ओर प्रवृत्त करनेवाली कही गयी है॥ ८१॥

अँगूठा पुष्टि देनेवाला कहा गया है। मध्यमा अँगुली आयु प्रदान करनेवाली है। अनामिका नित्य अन्न देनेवाली तथा तर्जनी मुक्तिदायिनी कही गयी है। अँगुलिभेदसे इन्हींसे ही ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा लगाते समय नखोंसे स्पर्श न करे। दीपककी बत्तीकी लौके आकारका, बाँसके पत्तेके आकारका, कमलकी कलीकी आकृतिका, मत्स्यके आकारका, कछुएके आकारका अथवा शंखके आकारका ऊर्ध्वपुण्ड्र प्रयत्नपूर्वक धारण करना चाहिये॥ ८२—८४॥

दस अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें उत्तम कहा जाता है। नौ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें मध्यम तथा आठ अंगुल परिमाणवाला ऊर्ध्वपुण्ड्र उत्तम कोटिमें कनिष्ठ होता है॥ ८५॥

इसी प्रकार सात, छः तथा पाँच अंगुल परिमाणवाला

मध्यम कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ]—तीन प्रकारका कहा गया है और चार, तीन तथा दो अंगुल परिमाणवाला कनिष्ठ कोटिका ऊर्ध्वपुण्ड्र भी [क्रमशः उत्तम, मध्यम तथा कनिष्ठ] तीन प्रकारका होता है॥ ८६॥

ललाटके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'केशव', उदरके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'नारायण', हृदयके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'माधव' तथा कण्ठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'गोविन्द' जानना चाहिये। उदरके दाहिने पार्श्वमें धारित ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'विष्णु' कहा जाता है। उदरके वाम पार्श्वके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'मधुसूदन', कर्णदेशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'त्रिविक्रम', वाम कुक्षिके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'वामन', बायें बाहुके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'श्रीधर', दाहिने कानके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'हृषीकेश', पीठके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'पद्मनाभ', ककुद्देशके ऊर्ध्वपुण्ड्रको 'दामोदर'—इन बारह नामोंसे तथा मूर्धाके ऊर्ध्वपुण्ड्रको वासुदेवके रूपमें समझकर उन-उन स्थानोंपर उन-उन देवताओंका स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार प्रातःकालीन तथा सायंकालीन पूजन तथा हवनके समय शान्तचित्त होकर इन नामोंका उच्चारण करके विधिपूर्वक ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ ८७—९१॥

कोई भी अपवित्र, अनाचारी अथवा मनसे भी निरन्तर पापकर्मका चिन्तन करनेवाला मनुष्य अपने सिरपर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण कर लेनेमात्रसे पवित्र हो जाता है॥ ९२॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले चाण्डाल मनुष्यकी भी मृत्यु चाहे कहीं भी हो, वह विमानमें स्थित होकर मेरे लोक पहुँचकर प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ९३॥

विशुद्ध आत्मावाले तथा मेरे स्वरूपको जाननेवाले महाभाग्यशाली ऐकान्तिक वैष्णवजन भगवान् विष्णुके चरणके आकारवाले तथा बीचमें रिक्त स्थानसे युक्त ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करते हैं। इसी प्रकार एकमात्र मेरे चरणोंके प्रति परायणता रखनेवाले परम ऐकान्तिक भक्त निर्मल, शूलकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रको हल्दीके चूर्णसे धारण करते हैं॥ ९४-९५॥

अन्य वैष्णवजनोंको भक्तिपूर्वक दीपककी बत्तीकी तरह, कमलकी तरह अथवा बाँसके पत्तेकी आकृतिके सदृश तथा रेखाओंके मध्य रिक्तस्थानरहित ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। साधारण वैष्णव गृहस्थ अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानसे रहित) अथवा सच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानयुक्त) कोई भी त्रिपुण्ड्र धारण कर सकते हैं। अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र लगानेसे उन्हें पाप नहीं लगता है। किंतु प्रपन्न ऐकान्तिक तथा परम ऐकान्तिक वैष्णवोंको अच्छिद्र ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेपर महान् पाप लगता है॥ ९६—९८॥

जो वैष्णव दण्डके आकारके, सुन्दर, रेखाओंके बीचमें रिक्त स्थान छोड़कर पूर्वोक्त 'केशव' आदिके साथ 'नमः' जोड़कर विभिन्न अंगोंमें विमल ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करता है, वह उन-उन स्थानोंपर मानो मेरा विशाल मन्दिर ही बनाता है॥ ९९-१००॥

ऊर्ध्वपुण्ड्रके मध्य विशाल तथा अत्यन्त मनोहर रिक्त स्थानमें शाश्वत विष्णुजी लक्ष्मीके साथ विराजमान होकर आनन्दित होते हैं॥ १०१॥

जो अधम द्विज रेखाओंके बीचमें रिक्तस्थान छोड़े बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह उस स्थानपर विराजमान विष्णु तथा लक्ष्मीका तिरस्कार करता है॥ १०२॥

जो मूर्ख अच्छिद्र (रेखाओंके बीच रिक्त स्थानरहित) ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करता है, वह क्रमशः इक्कीस नरकोंको प्राप्त होता रहता है॥ १०३॥

स्पष्ट तथा सीधी रेखाओंवाले, बीचमें रिक्त स्थानवाले, दण्ड, कमल, दीपककी लौ अथवा मत्स्यकी आकृतिवाले ऊर्ध्वपुण्ड्रोंको धारण करना चाहिये॥ १०४॥

द्विजको शिखा और यज्ञोपवीतकी भाँति ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये। हे महामुने! इसे धारण किये बिना किये गये समस्त कर्म निष्फल हो जाते हैं। अतः बुद्धिमान् ब्राह्मणको समस्त कर्मोंमें त्रिशूलके आकारका गोल अथवा चौकोर ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिये॥ १०५-१०६॥

वेदनिष्ठ ब्राह्मणको अर्धचन्द्रके आकारका

तिलक नहीं लगाना चाहिये। जन्मसे ब्राह्मणजातिमें उत्पन्न तथा वैदिकपन्थके अनुयायी व्यक्तिको भूलकर भी अपने ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्रके अतिरिक्त अन्य पुण्ड्र नहीं धारण करना चाहिये। श्रौत तिर्यक् त्रिपुण्ड्र छोड़कर प्रसिद्धि अथवा शारीरिक कान्ति आदिकी प्राप्तिके लिये वैष्णवशास्त्रादिमें वर्णित दूसरे प्रकारके पुण्ड्र वैदिक व्यक्तिको भूलकर भी नहीं धारण करने चाहिये॥ १०७—१०९॥

ललाटपर भस्मसे तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण न करके अज्ञानवश अन्य प्रकारका त्रिपुण्ड्र धारण करनेवाला वैदिक ब्राह्मण नरकगामी होता है। एकमात्र वेदमार्गका अनुयायी व्यक्ति यदि अज्ञानवश भी भिन्न प्रकारका पुण्ड्र शरीरपर धारण कर लेता है तो वह नरकमें अवश्य ही पड़ता है; इसमें संशय नहीं है॥ ११०-१११॥

वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यको अपने शरीरपर किसी प्रकारका चिह्न नहीं करना चाहिये। वैदिक धर्मका पालन करनेवालोंके लिये एकमात्र वैदिक चिह्न त्रिपुण्ड्र ही है। अश्रौत धर्ममें निष्ठ लोगोंके लिये अश्रौत चिह्न बताया गया है॥ ११२१/२॥

वेदोंमें जो-जो देवता वर्णित हैं, उनके चिह्न वैदिक ही हैं। अश्रौततन्त्रमें निष्ठा रखनेवाले जो लोग हैं, उनके चिह्न अश्रौत ही हैं॥ ११३१/२॥

भवबन्धनसे मुक्ति प्रदान करनेवाले वेदसिद्ध महादेवजी भक्तोंके उपकारके लिये श्रौत चिह्न (भस्म—त्रिपुण्ड्र) धारण करते हैं॥ ११४१/२॥

वेदसिद्ध भगवान् विष्णुका भी वैदिक चिह्न ही है, इसके अतिरिक्त दूसरा नहीं। विशेष अवतारोंमें भी उनका चिह्न वही [भस्म—त्रिपुण्ड्र] रहता है॥ ११५१/२॥

सर्वांगमें भस्म लगाने तथा त्रिपुण्ड्र धारण करनेको वैदिक चिह्न समझना चाहिये। ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि अश्रौत चिह्न हैं, तिर्यक् त्रिपुण्ड्र अश्रौत नहीं है॥ ११६१/२॥

एकमात्र वेदमार्गका अनुगमन करनेवालेको वेदोक्त पद्धतिसे भस्मद्वारा ललाटपर तिर्यक् त्रिपुण्ड्र धारण करना चाहिये। जो भगवान् नारायणके शरणागत हो तथा उनके परमपदका अभिलाषी हो, उसे गन्ध-द्रव्य-युक्त जलसे अपने ललाटपर शूलकी आकृति धारण करनी चाहिये॥ ११७-११८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'त्रिपुण्ड्र-ऊर्ध्वपुण्ड्रधारणविधिवर्णन' नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

सन्ध्योपासना तथा उसका माहात्म्य

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] मैंने आपसे भस्म धारण करनेके माहात्म्यका विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया; अब आप पुण्यदायक तथा उत्तम सन्ध्योपासनके विषयमें सुनिये॥ १॥

हे अनघ! मैं सर्वप्रथम आपसे प्रातःकालीन सन्ध्याका विधान कह रहा हूँ। प्रातःकालकी सन्ध्या आकाशमें तारोंके रहते-रहते, मध्याह्नकी सन्ध्या सूर्यके मध्य-आकाशमें आनेपर और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यके पश्चिम दिशामें रहनेपर करनेका विधान है; इस प्रकार इन तीनों सन्ध्याओंको करना चाहिये। हे देवर्षिश्रेष्ठ! अब मैं उनके भेद भी बताऊँगा, आप सुनिये॥ २-३॥

तारोंके आकाशमें विद्यमान रहते की जानेवाली प्रातःसन्ध्या उत्तम, तारोंके लुप्त होनेसे लेकर सूर्योदयके बीचकी अवधिमें की जानेवाली सन्ध्या मध्यम और सूर्यके उदय हो जानेपर की जानेवाली सन्ध्या अधम—यह तीन प्रकारकी प्रातःसन्ध्या कही गयी है। सायंकालमें सूर्यके विद्यमान रहते की गयी सायं-सन्ध्या उत्तम, सूर्यके अस्त होने तथा तारोंके उदयके पूर्व की गयी

सन्ध्या मध्यम और तारोंके उदयके पश्चात् की गयी सन्ध्या अधम—यह तीन प्रकारकी सायंसन्ध्या कही गयी है[1] ॥ ४-५ ॥

विप्र वृक्ष है, ये सन्ध्याएँ ही उसकी जड़ें हैं, वेद उसकी शाखाएँ हैं और सभी धर्म-कर्म उसके पत्ते हैं। अतएव प्रयत्नके साथ मूल अर्थात् सन्ध्याकी ही रक्षा करनी चाहिये; क्योंकि मूलके कट जानेपर न तो वृक्ष रहता है और न शाखा[2] ॥ ६ ॥

जिसने सन्ध्याका ज्ञान नहीं किया तथा जिसने सन्ध्योपासन नहीं किया, वह जीते-जी शूद्रके समान होता है और मृत्युके अनन्तर कुत्तेकी योनिमें जन्म लेता है ॥ ७ ॥

अत: द्विजको नित्य उत्तम सन्ध्या करनी चाहिये। उसे न करनेवाला अन्य किसी भी शुभ कर्मको करनेका अधिकारी नहीं है ॥ ८ ॥

सूर्यके उदय होने तथा अस्त होनेके तीन-तीन घड़ी बादतक सन्ध्योपासना कर लेनी चाहिये। उसके बाद सन्ध्या करनेपर प्रायश्चित्त करना पड़ता है ॥ ९ ॥

समय बीत जानेपर यदि सन्ध्या की जाय, तो [तीन अर्घ्यके अतिरिक्त] चौथा अर्घ्य देना चाहिये अथवा आरम्भमें एक सौ आठ बार गायत्रीका जप करके सन्ध्या करनी चाहिये ॥ १० ॥

जिस समय जो कर्म करना हो, उस समयकी अधीश्वरी उस गायत्री-स्वरूपिणी सन्ध्याकी उपासना करनेके अनन्तर ही उस कार्यमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ११ ॥

घरमें की गयी सन्ध्या साधारण कही गयी है, गोशालामें की गयी सन्ध्या मध्यम कोटिकी होती है, नदीके तटपर की गयी सन्ध्या उत्तम होती है और देवीमन्दिरमें की गयी सन्ध्या उससे भी उत्तम कही गयी है ॥ १२ ॥

सन्ध्योपासन देवीकी उपासना है, अत: देवीकी सन्निधिमें ही तीनों कालों (प्रात:, मध्याह्न, सायं)-की सन्ध्या करनी चाहिये, वह उन्हें अनन्त फल प्रदान करती है ॥ १३ ॥

ब्राह्मणोंके लिये इन गायत्रीदेवीके अतिरिक्त अन्य देवता नहीं है। विष्णु तथा शिवकी उपासना भी वैसी नित्य नहीं है, जैसी महादेवी गायत्रीकी वेदप्रतिपादित सन्ध्या नित्य है। गायत्रीदेवीकी आराधना सम्पूर्ण वेदोंका सार-स्वरूप है ॥ १४-१५ ॥

ब्रह्मा आदि देवता भी सन्ध्योपासनाके समय उन गायत्रीदेवीका ध्यान तथा जप करते हैं। वेद उन गायत्रीका नित्य जप करते हैं, अतएव वे 'वेदोपास्या' कही गयी हैं ॥ १६ ॥

इसीलिये सभी द्विज शाक्त हैं, वे न शैव हैं न वैष्णव। वे सभी वेदमाता आदिशक्ति गायत्रीकी उपासना करते हैं ॥ १७ ॥

केशव आदि नामोंसे आचमन करनेके बाद प्राणायाम करनेके अनन्तर सन्ध्योपासनमें प्रवृत्त होना चाहिये। केशव, नारायण, माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, संकर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, नरसिंह, अच्युत, जनार्दन, उपेन्द्र, हरि तथा श्रीकृष्ण—इन चौबीस नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'स्वाहा' जोड़कर जलका प्राशन (आचमन) और इन्हीं नामोंके पूर्व 'ॐकार' तथा अन्तमें 'नम:' लगाकर शरीरके विभिन्न अंगोंका स्पर्श करना चाहिये ॥ १८—२२ ॥

'ॐ केशवाय स्वाहा' आदि (**ॐ केशवाय स्वाहा, ॐ माधवाय स्वाहा, ॐ नारायणाय स्वाहा**) तीन नाम-मन्त्रोंसे आचमन करके **'ॐ गोविन्दाय नम:', 'ॐ विष्णवे नम:'**—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दोनों हाथोंका प्रक्षालन करना चाहिये। पुन: 'मधुसूदन' तथा 'त्रिविक्रम'—इन दो नामोंसे अँगूठेके मूलद्वारा दोनों ओष्ठोंका प्रक्षालन और 'वामन' तथा 'श्रीधर'—इन नामोंसे मुखका सम्मार्जन करना चाहिये ॥ २३ ॥

'हृषीकेश'—इस नामसे बायें हाथका, 'पद्मनाभ' नामसे दोनों पैरोंका, तथा 'दामोदर' नामसे सिरका प्रोक्षण करना चाहिये। इसी प्रकार 'संकर्षण' आदि देवनामोंसे

१- उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका। अधमा सूर्यसहिता प्रात:सन्ध्या त्रिधा मता॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमास्तमिते रवौ। अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥ (श्रीमद्देवीभा० ११।१६।४-५)

२- विप्रो वृक्षो मूलकान्यत्र सन्ध्या वेद: शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखा॥ (श्रीमद्देवीभा० ११।१६।६)

बारह अंगोंका स्पर्श करना चाहिये। ('संकर्षण' नामसे परस्पर मिली हुई बीचकी तीन अँगुलियोंद्वारा मुखका, 'वासुदेव' तथा 'प्रद्युम्न'—इन दो नामोंसे अँगूठे और तर्जनी अँगुलियोंद्वारा दोनों नासापुटोंका, 'अनिरुद्ध' तथा 'पुरुषोत्तम' से अँगूठे और अनामिकाद्वारा दोनों नेत्रोंका, 'अधोक्षज' और 'नारसिंह' नामोंद्वारा दोनों कानोंका, 'अच्युत' से कनिष्ठिका और अँगूठेद्वारा नाभिका, 'जनार्दन' से करतलद्वारा हृदयका, 'उपेन्द्र' से सिरका एवं '**ॐ हरये नमः**' तथा '**ॐ कृष्णाय नमः**'—इन दो नाम-मन्त्रोंसे दाहिनी और बायीं भुजाका स्पर्श करना चाहिये)॥ २४॥

बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि दाहिने हाथसे जल पीते समय बायें हाथसे उसे स्पर्श किये रहे; क्योंकि वह जल तबतक शुद्ध नहीं होता जबतक बायें हाथका स्पर्श नहीं होता॥ २५॥

हाथकी मुद्रा गायके कानके आकारकी बनाकर उससे मात्र एक माष जलसे आचमन करना चाहिये। उससे अधिक या कम जलसे आचमन करनेवाला द्विज सुरापान करनेवालेके समान होता है॥ २६॥

दाहिने हाथकी कनिष्ठिका तथा अँगूठेको अलग-अलग करके शेष तीन अँगुलियोंको सटाकर दाहिने हाथसे जलसे आचमन करना बताया गया है॥ २७॥

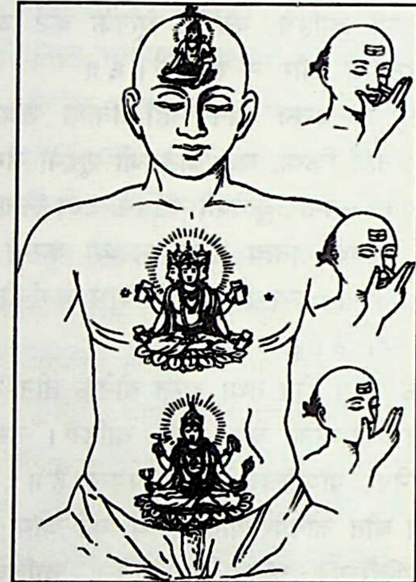
तत्पश्चात् प्रणवका उच्चारण करके गायत्रीशिरस् तथा गायत्रीके तुरीय (चतुर्थ) पादसहित गायत्रीका जप करते हुए प्राणायाम करना चाहिये॥ २८॥

नासिकाके दाहिने छिद्रसे वायुका रेचन करना चाहिये, बायें छिद्रसे वायुको उदरमें भरना चाहिये तथा उस वायुको उदरमें भरकर कुम्भरूपसे धारण किये रहना चाहिये—इसीको विद्वानोंने प्राणायाम कहा है॥ २९॥

[वायुको खींचते समय] नासिकाके दाहिने छिद्रको अँगूठेसे दबाये। तत्पश्चात् कनिष्ठिका तथा अनामिका अँगुलियोंसे बायें नासिका-छिद्रको बन्द कर ले; इसमें मध्यमा तथा तर्जनीका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥ ३०॥

संयमित चित्तवाले योगियोंने सभी शास्त्रोंमें इसी प्रकारके पूरक, कुम्भक तथा रेचकको ही प्राणायाम बताया है॥ ३१॥

'रेचक' वायुका सृजन करता है, 'पूरक' उसे पूर्ण करता है तथा साम्य स्थितिमें जो उसे धारण किये रहता है, वह कुम्भक कहा गया है॥ ३२॥



पूरक करते समय नीले कमल-पत्रके समान श्याम वर्णवाले चतुर्भुज परमात्मा श्रीहरिका नाभिदेशमें ध्यान करना चाहिये॥ ३३॥

कुम्भक करते समय कमलके आसनपर विराजमान, चार मुखवाले, जगत्के स्वामी प्रजापति ब्रह्माका हृदयमें ध्यान करना चाहिये॥ ३४॥

रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके सदृश, निर्मल तथा पापोंका नाश करनेवाले महेश्वर शिवका ललाटमें ध्यान करना चाहिये॥ ३५॥

मनुष्य पूरक प्राणायामसे विष्णु-सायुज्य, कुम्भक प्राणायामसे ब्रह्माका पद तथा तीसरे रेचक प्राणायामसे माहेश्वरपद प्राप्त करता है॥ ३६॥

हे देवर्षिश्रेष्ठ! मैंने पहले पौराणिक आचमन बता दिया है। हे मुने! अब आप पापको दूर करनेवाले 'श्रौत आचमन' के विषयमें सुनिये॥ ३७॥

पहले प्रणव (ॐ)-का उच्चारण करके गायत्रीकी

ऋचा (**तत्सवितुः** आदि) तथा पदके आदिमें तीनों व्याहृतियोंसे युक्त गायत्री मन्त्रको पढ़कर किया गया आचमन 'श्रौत-आचमन' कहा जाता है॥ ३८॥

गायत्रीके पूर्व तीनों व्याहृतियाँ लगाकर तथा प्रत्येक व्याहृतिमें प्रणव (ॐ) जोड़कर शिरोभागके साथ गायत्री मन्त्रका जप करना चाहिये। पूरक, कुम्भक तथा रेचक करते समय इसका तीन बार जप ही प्राणायाम है (अब लक्षणसहित प्राणायामका वर्णन किया जा रहा है। यह प्राणायाम नानाविध पापोंका शमन करनेवाला तथा महान् पुण्यफल प्रदान करनेवाला है)। गृहस्थ तथा वानप्रस्थको प्रणवमन्त्रसे पाँचों अँगुलियोंद्वारा नासिकाके अग्रभागको दबाना चाहिये। यह मुद्रा सभी प्रकारके पापोंका हरण करनेवाली है। ब्रह्मचारी और संन्यासी कनिष्ठिका, अनामिका तथा अँगूठा—इन अँगुलियोंसे प्राणायाम करें॥ ३९-४०१/२॥

'**आपो हि ष्ठा०**' इत्यादि तीन ऋचाओंसे कुशाके जलद्वारा शरीरका प्रोक्षण करे अथवा समाहित चित्तसे इन तीन ऋचाओंमें विद्यमान नौ पदोंके आदिमें प्रणवका उच्चारण करके उनसे मार्जन करे। इस मार्जनसे वर्षभरमें किया गया समस्त पाप मिट जाता है॥ ४१-४२१/२॥

तत्पश्चात् '**सूर्यश्च०**' इस मन्त्रसे जलसे आचमन करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसके अन्तःकरणमें प्रविष्ट पाप मिट जाता है॥ ४३१/२॥

प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके साथ आदिमें प्रणवसहित गायत्रीका और '**आपो हि ष्ठा०**' इस सूक्तका एक साथ उच्चारण करके मार्जन करना चाहिये॥ ४४१/२॥

दाहिने हाथको गायके कानके समान बनाकर उसमें जल भरे और उसे नासिकाके अग्रभागपर ले जाकर अपनी वामकुक्षिमें कृष्णवर्णवाले पुरुषरूप पापकी भावना करनी चाहिये और इसके बाद '**ऋतञ्च सत्यं०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये॥ ४५-४६॥

तत्पश्चात् '**द्रुपदा०**' इस ऋचाका पाठ करके नासिकाके दाहिने पुटसे श्वासमार्गद्वारा उस पापको दाहिने हाथके जलमें लाये और उस जलपर दृष्टिपात न करते हुए उसे अपने वामभागमें भूमिपर फेंक दे और यह भावना करे कि मेरा शरीर अब पापरहित हो गया है॥ ४७-४८॥

इसके बाद उठकर दोनों पैरोंको सीधा करके मिला ले। पुनः तर्जनी तथा अँगूठेको अलग रखते हुए अंजलिमें जल लेकर सूर्यकी ओर देखकर गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके तीन बार सूर्यको जलांजलि अर्पित करे। हे मुनिश्रेष्ठ! सूर्यार्घ्य-अर्पणकी यही विधि है॥ ४९-५०॥

तदनन्तर उस उपासकको आदित्य-मन्त्रसे सूर्यकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। मध्याह्नमें एक बार और प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें तीन-तीन बार अर्घ्यदान देना चाहिये॥ ५१॥

द्विजको चाहिये कि प्रातःकाल कुछ झुककर, मध्याह्नमें दण्डकी भाँति स्थित होकर तथा सायंकालमें आसनपर बैठकर सूर्यको जल अर्पण करे॥ ५२॥

हे नारद! सूर्यको जलका अर्पण क्यों किया जाता है, उसका कारण अब सुनिये। मन्देहा नामके महापराक्रमी तीस करोड़ राक्षस हैं। वे कृतघ्न, भयंकर तथा क्रूर राक्षस सूर्यको खा जाना चाहते हैं। ऐसी स्थितिमें सभी देवता तथा तपोधन ऋषिगण भगवती महासन्ध्याकी उपासना करते हैं और जलांजलि प्रदान करते हैं। इस प्रकार वज्रके समान हो जानेवाले उस जलसे वे दैत्य भस्म हो जाते हैं। इसी कारणसे विप्रगण नित्य सन्ध्याकी उपासना करते हैं। सन्ध्योपासन महापुण्यका जनक कहा गया है॥ ५३—५६॥

हे नारद! सुनिये, अब अर्घ्यका अंगरूप यह मन्त्र कहा जा रहा है, जिसके उच्चारणमात्रसे सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त होता है॥ ५७॥

वह सूर्य मैं ही हूँ, मैं ही आत्मज्योति हूँ, मैं ही शिव-सम्बन्धी ज्योति हूँ, आत्मज्योति भी मेरा ही रूप है, मैं सर्वशुक्ल ज्योति हूँ और मैं रसस्वरूप हूँ॥ ५८॥

हे वरदे! हे देवि! हे गायत्रि! हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप आइये और मेरे जप-अनुष्ठानकी सिद्धिहेतु मेरे हृदयमें प्रवेश कीजिये। हे देवि! उठिये और पुनः आगमनके लिये यहाँसे प्रस्थान कीजिये और हे देवि! इसी

अर्घ्यके जलमें स्थित होइये तथा पुनः मेरे हृदयदेशमें विराजमान होइये॥ ५९-६०॥

तत्पश्चात् विद्वान् पुरुष पवित्र स्थानपर अपना आसन लगाये और उसपर बैठकर वेदमाता गायत्रीका जप करे॥ ६१॥

हे मुने! इसी समय प्राणायामके पश्चात् खेचरी मुद्रा करनी चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! प्रातःकालीन सन्ध्याके विधानमें इस मुद्राको बताया गया है। हे नारद! अब मैं इसके नामका अर्थ बता रहा हूँ, आदरपूर्वक सुनिये। जिसके प्रभावसे चित्त आकाशमें विचरण करता है, जिह्वा भी आकाशमें जाकर संचरण करती है और दृष्टि दोनों भौंहोंके अन्तर्गत स्थिर रहती है, वही खेचरी मुद्रा होती है। हे नारद! सिद्धासनके समान कोई आसन नहीं है, कुम्भक वायुके समान कोई वायु नहीं है और खेचरी मुद्राके समान कोई मुद्रा नहीं है, यह ध्रुव सत्य है। घण्टा-ध्वनिके समान प्लुत स्वरसे प्रणवका उच्चारण करते हुए श्वासको यत्नपूर्वक रोककर अहंकार तथा ममतासे रहित होकर स्थिर भावसे स्थिरासनपर बैठना चाहिये। हे नारद! हे मुने! अब आप सिद्धासनका लक्षण सुनिये। ६२-६६॥

सिद्धासनमें एक पैरका मूल लिंगके मूलस्थानपर करके दूसरे पैरका मूल अण्डकोशके नीचे दृढ़तापूर्वक टिकाना चाहिये। हृदय आदि तथा शरीरको सीधा रखते हुए स्थाणुके रूपमें तथा संयमित इन्द्रियोंवाला होकर दोनों भौंहोंके बीचमें अचल दृष्टिसे देखते हुए स्थिर रहना चाहिये। योगियोंके लिये अत्यन्त सुखदायक इस आसनको सिद्धासन कहा जाता है॥ ६७॥

[हे नारद! अब मैं देवीके आवाहन तथा नमस्कारका मन्त्र बताता हूँ]—हे छन्दोंकी माता! आप वर प्रदान करनेवाली भगवती गायत्री हैं। आप अक्षरब्रह्मरूप हैं। हे ब्रह्मस्वरूपिणि! आप यहाँ आइये और मुझपर प्रसन्न होइये। मनुष्य दिनमें जो पाप करता है, वह पाप सायंकालीन उपासनासे नष्ट हो जाता है और जो पाप रातमें करता है, वह प्रातःकालीन उपासनासे मिट जाता है। हे सर्ववर्णस्वरूपिणि! हे महादेवि! हे सन्ध्याविद्ये! हे सरस्वति! हे अजरे! हे अमरे! हे देवि! हे सर्वदेवि! आपको नमस्कार है॥ ६८—७०॥

तदनन्तर '**तेजोऽसीति०**' आदि मन्त्रसे देवीका आवाहन करना चाहिये। पुनः इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे कि मैंने जो कुछ भी आपका अनुष्ठान किया है, मेरा वह सब कार्य पूर्ण हो॥ ७१॥

तत्पश्चात् शापसे मुक्त होनेके लिये सम्यक् प्रकारसे यत्न करना चाहिये। ब्रह्मशाप, विश्वामित्रशाप तथा वसिष्ठशाप—यह तीन प्रकारका शाप है। ब्रह्माका स्मरण करनेसे ही ब्रह्मशाप मिट जाता है। इसी प्रकार विश्वामित्रका स्मरण करनेसे विश्वामित्रके शापसे तथा वसिष्ठका स्मरण करनेसे वसिष्ठके शापसे निवृत्ति हो जाती है॥ ७२—७४॥

[हे नारद! परमात्माका इस प्रकार ध्यान करे]—मैं पुरुषाकार, सत्यात्मक, सम्पूर्ण जगत्के साक्षात् विग्रह, अद्वितीय, चिद्रूप, वाणीसे अगम्य, शाश्वत तथा परमात्मा संज्ञावाले परमेश्वरका अपने हृदयकमलमें नित्य ध्यान करता हूँ॥ ७५॥

हे नारद! अब मैं सन्ध्याके प्रधान अंगस्वरूप न्यासकी विधिका वर्णन करूँगा। सभी मन्त्रोंके पूर्व ॐकार लगाना चाहिये, इसके बाद उन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ७६॥

'**ॐ भूः पादाभ्यां नमः**' ऐसा बोलकर दोनों पैरोंका स्पर्श करना चाहिये। इसी प्रकार '**ॐ भुवः जानुभ्यां नमः**' बोलकर जानुका, '**ॐ स्वः कटिभ्यां नमः**' बोलकर कमरका, '**ॐ महः नाभ्यै नमः**' बोलकर नाभिका, '**ॐ जनः हृदयाय नमः**' बोलकर हृदयका, '**ॐ तपः कण्ठाय नमः**' बोलकर कण्ठका और '**ॐ सत्यं ललाटाय नमः**' बोलकर ललाटका स्पर्श करना चाहिये॥ ७७-७८॥

'**ॐ तत्सवितुः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः**', '**ॐ वरेण्यं तर्जनीभ्यां नमः**', '**ॐ भर्गो देवस्य मध्यमाभ्यां नमः**', '**ॐ धीमहि अनामाभ्यां नमः**', '**ॐ धियो यो नः**

कनिष्ठाभ्यां नमः', 'ॐ प्रचोदयात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः'—इस प्रकार उच्चारण करके बुद्धिमान् पुरुषको करन्यास करना चाहिये॥ ७९-८०॥

'ॐ तत्सवितुर्ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः', 'ॐ वरेण्यं विष्ण्वात्मने शिरसे नमः', 'ॐ भर्गो देवस्य रुद्रात्मने शिखायै नमः', 'ॐ धीमहि शक्त्यात्मने कवचाय नमः', 'ॐ धियो यो नः कालात्मने नेत्रत्रयाय नमः', 'ॐ प्रचोदयात् सर्वात्मने अस्त्राय नमः'—इस तरहसे उच्चारण करके हृदय आदि अंगोंमें न्यास करना चाहिये॥ ८१—८३॥

हे महामुने! अब इसके आगे मैं अक्षरन्यास बता रहा हूँ। गायत्रीके वर्णोंसे किया जानेवाला यह न्यास श्रेष्ठ तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है। पहले प्रणवका उच्चारण करके वर्णन्यास करनेकी विधि बतायी गयी है। आरम्भमें 'तत्'कारका उच्चारण करके पैरके दोनों अँगूठोंमें न्यास करना चाहिये। 'स'कारका उच्चारण करके दोनों गुल्फोंमें तथा 'वि'कारका उच्चारण करके दोनों जंघोंमें न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् 'तु'कारका उच्चारण करके दोनों जानुओंमें न्यास करके 'व'कारका दोनों उरुओंमें, 'रे'कारका गुदामें, 'णि'कारका लिंगमें, 'य'कारका कटिभागमें, 'भ'कारका नाभिमण्डलमें, 'गो'कारका हृदयमें, 'दे'कारका दोनों स्तनोंमें, 'व'कारका हृदयमें, 'स्य'कारका कण्ठकूपमें, 'धी'कारका मुखमें, 'म'कारका तालुदेशमें, 'हि'कारका नासिकाके अग्र-भागमें, 'धि'कारका नेत्रमण्डलमें, 'यो'कारका भ्रूमध्यमें, 'यो'कारका ललाटमें, 'न'कारका मुखके पूर्व भागमें, 'प्र'कारका मुखके दक्षिण भागमें, 'चो'कारका मुखके पश्चिम भागमें, 'द'कारका मुखके उत्तर भागमें, 'या'कारका मस्तकमें तथा 'त'कारका सम्पूर्ण शरीरमें न्यास करना चाहिये॥ ८४—९१॥

जपमें तत्पर रहनेवाले कुछ लोग न्यासकी इस विधिको अभीष्ट नहीं मानते हैं। न्यासके पश्चात् जगत्को उत्पन्न करनेवाली महाभगवती अम्बिकाका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—इन परमेश्वरीका विग्रह तेजोमय जपाकुसुमकी आभाके तुल्य है, ये कुमारी हैं, ये रक्त-कमलके आसनपर अवस्थित हैं, इनका श्रीविग्रह रक्त-चन्दनसे अनुलिप्त है, ये रक्तवर्णकी माला तथा वस्त्र धारण किये हुई हैं, ये चार मुखों तथा चार भुजाओंवाली हैं, इनके प्रत्येक मुखमें दो-दो नेत्र हैं। इन्होंने अपने हाथोंमें स्रुक्, स्रुवा, जपमाला तथा कमण्डलु धारण कर रखा है, ये सभी प्रकारके आभूषणोंसे प्रकाशित हैं, ये परा भगवती ऋग्वेदका पारायण कर रही हैं, ये हंसके वाहनपर विराजमान हैं, ये आहवनीय अग्निके मध्य स्थित हैं, ये ब्रह्माजीकी उपास्य देवता हैं, चारों वेद (ऋक्, यजुः, साम, अथर्व) ही इनके चार पद हैं, आठ दिशा (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व, अधः, अन्तरिक्ष तथा अवान्तर)-रूपी कुक्षियोंसे ये शोभायमान हैं, सात सिरों (व्याकरण, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष, इतिहास-पुराण तथा उपनिषद्)-से मण्डित हैं, ये अग्निरूप मुख; रुद्ररूप शिखा तथा विष्णुरूप चित्तवाली हैं—ऐसे स्वरूपवाली परमेश्वरी भगवतीकी भावना करनी चाहिये। ब्रह्मा जिनके कवच हैं तथा सांख्यायन जिनका गोत्र कहा गया है, आदित्यमण्डलमें विराजमान ऐसी भगवती महेश्वरीका ध्यान करना चाहिये॥ ९२—९७॥

इस प्रकार विधिपूर्वक वेदमाता गायत्रीका ध्यान करनेके अनन्तर भगवतीको प्रसन्न करनेवाली कल्याणकारी मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९८॥

सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर और पल्लव—इन चौबीस मुद्राओंको गायत्रीके समक्ष प्रदर्शित करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि सौ अक्षरोंवाली गायत्रीकी एक आवृत्ति करे॥ ९९—१०२॥

गायत्रीके चौबीस अक्षर तो बताये ही गये हैं। उसके बाद **'जातवेदस'** नामक ऋचाका तथा त्र्यम्बक

ऋचा (**त्र्यम्बकं यजामहे०**)-की आवृत्ति करनेसे यह सौ अक्षरोंवाली गायत्री होती है।* विद्वानोंको एक बार इस महापुण्यदायिनी गायत्रीका जप करना चाहिये। तत्पश्चात् पहले ॐकारका उच्चारण करके '**भूर्भुवः स्वः**' के बाद चौबीस अक्षरोंवाली गायत्रीका जप करना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मणको नित्य जप करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह विप्रश्रेष्ठ सन्ध्याका सम्पूर्ण फल प्राप्त करके सुखी हो जाता है॥ १०३—१०६॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'सन्ध्योपासननिरूपण' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

गायत्री-महिमा

श्रीनारायण बोले—हे नारद! भिन्न पादवाली गायत्री ब्रह्महत्याका शमन करनेवाली है तथा अभिन्न पादवाली गायत्रीके जपसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। जो द्विज अभिन्न पादवाली गायत्रीका जप करते हैं, वे कई सौ करोड़ कल्पोंतक नीचे मुख करके लटके हुए रहते हैं॥ १-२॥

हे सुव्रत! धर्मशास्त्रों, पुराणों और इतिहासोंमें गायत्री विविध प्रकारकी मानी गयी है; यथा—प्रणवसे सम्पुटित तथा छः ॐकारसे संयुक्त। पाँच प्रणववाली गायत्रीका जप करना चाहिये, ऐसा भी शास्त्रोंका आदेश है। जितनी जप-संख्या करना अभीष्ट हो, उसके आठवें-आठवें भागके अन्तमें गायत्रीके चौथे पदका जप करना चाहिये। इस तरहसे जप करनेवाले उस द्विजको परम ज्ञानी समझना चाहिये; वह द्विज परम सायुज्य प्राप्त कर लेता है। जो इसके विपरीत गायत्रीका जप करता है, वह जप व्यर्थ हो जाता है॥ ३—५॥

एक सम्पुटवाली तथा छः ॐकारवाली जो गायत्री है, वह केवल एकनिष्ठ ब्रह्मचारियोंके लिये है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा मोक्षकी कामना करनेवालेको तुरीया गायत्रीका जप करना चाहिये। गायत्रीका तुरीय पाद **'परोरजसे सावदोम्'** यही है। हे नारद! अब मैं इसके ध्यानके विषयमें बता रहा हूँ, जो जपके सांगोपांग फलको देनेवाला है॥ ६-७॥

हृदयदेशमें सूर्य-चन्द्र तथा अग्निमण्डलसे युक्त, प्रणवमय तथा अचिन्त्य विकसित कमल ही जिनका आसन है—वे ब्रह्म अचल, परम सूक्ष्म, ज्योतिस्वरूप तथा आकाशके साररूप हैं। वे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर मेरी प्रसन्नताके हेतु बनें॥ ८॥

त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग, अम्बुज तथा महामुद्रा—ये सात मुद्राएँ गायत्रीको प्रदर्शित करनी चाहिये॥ ९॥

जो सन्ध्या हैं, वे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणी गायत्री हैं। ब्राह्मणको उन गायत्रीका नित्य पूजन तथा नमन करना चाहिये॥ १०॥

ध्यान किये गये देवताकी पाँच उपचारोंसे [मानसिक] पूजा करनी चाहिये। **'लं'** पृथ्वीस्वरूपिणी देवीको गन्ध अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। **'हं'** आकाशस्वरूपिणी देवीको पुष्प अर्पित करता हूँ, उन्हें बार-बार नमस्कार है। तत्पश्चात् **'यं'** वायुस्वरूपिणी देवीको धूप अर्पित करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। तदनन्तर **'रं'** अग्निस्वरूपिणी देवीको दीपक अर्पित करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। पुनः **'वं'** अमृतस्वरूपिणी देवीको नैवेद्य भी (उसी प्रकार) अर्पित करना चाहिये॥ ११—१३॥

अन्तमें यं, रं, लं, वं, हं—ऐसा उच्चारण करके पुष्पांजलि अर्पित करनी चाहिये। इस प्रकार मानसिक पूजन करनेके उपरान्त मुद्राएँ दिखानी चाहिये॥ १४॥

* ॐभूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यम्। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः। स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नात्रैव सिन्धुं दुरितात्यग्निः—यह सौ अक्षरकी गायत्री है। इसमें 'भूर्भुवः स्वः' तीन व्याहृतियाँ नहीं गिनी जाती हैं। ॐ (एक प्रणव)-से सम्पन्न है।

मनसे देवीका ध्यान करना चाहिये और मन्त्रका उच्चारण धीरे-धीरे करना चाहिये। इस समय सिर तथा गर्दन नहीं हिलाना चाहिये और दाँत नहीं दिखाने चाहिये॥ १५॥

एक सौ आठ बार या अट्ठाईस बार अथवा अशक्त होनेकी स्थितिमें दस बार ही विधिपूर्वक गायत्रीका जप करना चाहिये, किंतु इससे कम जप कभी नहीं करना चाहिये॥ १६॥

इसके बाद '**उत्तम०**' इत्यादि अनुवाक् मन्त्र उच्चारण करके देवीका विसर्जन करना चाहिये। विद्वान् व्यक्तिको चाहिये कि जलमें स्थित रहकर गायत्रीमन्त्रका जप कभी भी न करे; क्योंकि वे अग्निमुखी कही गयी हैं—ऐसा कुछ महर्षियोंने कहा है। जपके अनन्तर सुरभि, ज्ञान, शूर्प, कूर्म, योनि, पंकज, लिंग और निर्वाण—ये आठ मुद्राएँ प्रदर्शित करनी चाहिये। इसके बाद इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—कश्यपके प्रति प्रिय सम्भाषण करनेवाली हे देवि! मेरे उच्चारणमें अक्षरों तथा पदोंका जो विचलन हुआ हो और स्वर तथा व्यंजनसम्बन्धी जो दोष रहा हो; उन सबको आप क्षमा कीजिये।* हे महामुने! इसके बाद गायत्री-तर्पण करना चाहिये॥ १७—२०॥

'गायत्री' इसका छन्द कहा गया है, 'विश्वामित्र' इसके ऋषि कहे गये हैं और 'सविता' इसके देवता कहे गये हैं। तर्पणक्रियामें इसका विनियोग किया जाता है। '**भूः**' ऐसा बोलकर ऋग्वेद-पुरुषका तर्पण करता हूँ और '**भुवः**' ऐसा उच्चारण करके यजुर्वेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**स्वः**' व्याहृतिका उच्चारण करके सामवेदका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे और '**महः**' ऐसा बोलकर अथर्ववेदका तर्पण करे। पुनः '**जनः**' पदके साथ इतिहास-पुराणका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहे। '**तपः**' से सम्पूर्ण आगमस्वरूप पुरुषका और '**सत्यं**' से सत्यलोकाख्य पुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। तदनन्तर '**ॐ भूः**' से भूर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ, '**भुवः**' से भुवर्लोकपुरुषका तर्पण करता हूँ तथा '**स्वः**' से स्वर्गलोकपुरुषका तर्पण करता हूँ—ऐसा कहना चाहिये। इसके बाद '**ॐ भूः**' से एकपदा नामवाली गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ और '**भुवः**' से द्विपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—ऐसा बोलना चाहिये। '**स्वः**' से त्रिपदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ और '**ॐ भूर्भुवः स्वः**' से चतुष्पदा गायत्रीका तर्पण कर रहा हूँ—इस प्रकार बोलना चाहिये॥ २१—२८॥

तदनन्तर उषसी, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, वेदमाता, पृथ्वी, अजा, कौशिकी, सांकृति और सार्वजिति—इन नामोंको उच्चारित करके गायत्रीदेवीका तर्पण करना चाहिये। तर्पणके अन्तमें शान्तिके लिये '**जातवेदसम्०**'—इस ऋचाका पाठ करना चाहिये। इसी प्रकार विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शान्तिके लिये '**मानस्तोके०**'—इस मन्त्रका भी पाठ करे। तत्पश्चात् शान्तिके लिये '**त्र्यम्बकम्**'—इस मन्त्रका भी पाठ करना बताया गया है। शान्तिहेतु '**तच्छंयो०**' इस मन्त्रका भी जप करना चाहिये। इसके बाद '**देवा गातु०**' इस मन्त्रके द्वारा अपने दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करना चाहिये और '**स्योना पृथिवी०**' मन्त्रके द्वारा पृथ्वीको प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम करते समय द्विजश्रेष्ठको विधिके अनुसार अपने गोत्र आदिका उच्चारण कर लेना चाहिये। प्रातःकालीन सन्ध्या-सम्बन्धी इस प्रकारका विधान कहा गया है। सन्ध्याकर्म समाप्त करनेके उपरान्त स्वयं अग्निहोत्र भी करना चाहिये॥ २९—३४॥

तत्पश्चात् एकाग्रचित्त हो पंचायतनपूजा करनी चाहिये; इसमें शिवा, शिव, गणेश, सूर्य तथा विष्णुकी अर्चना करनी चाहिये। पुरुषसूक्त, व्याहृति, मूल मन्त्र अथवा '**ह्रीश्च ते०**' इस मन्त्रसे समाहितचित्त होकर पूजन करना चाहिये॥ ३५-३६॥

देवीकी पंचायतनपूजामें मण्डलके मध्यमें भवानीका पूजन करना चाहिये। मण्डलके ईशानकोणमें माधव, अग्निकोणमें पार्वतीपति शंकर, नैर्ऋत्यकोणमें गणेश और वायव्यकोणमें सूर्यका अर्चन करना चाहिये। देवी-पंचायतनमें देवताओंकी स्थापनाका यही क्रम है। मनुष्य सोलह ऋचाओंका पाठ करके सोलह प्रकारके पूजनोपचार अर्पित करे॥ ३७-३८॥

* यदक्षरपदभ्रष्टं स्वरव्यञ्जनवर्जितम्॥ तत्सर्वं क्षम्यतां देवि कश्यपप्रियवादिनी। (श्रीमद्देवीभा० ११।१७।१९-२०)

सर्वप्रथम देवीकी पूजा करके ही क्रमशः अन्य देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। देवीके पूजनसे बढ़कर अधिक पुण्यप्रद कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता॥ ३९॥

इसीलिये सन्ध्याकालोंमें सन्ध्या (गायत्री)-की उपासना श्रुतियोंमें कही गयी है। अक्षतसे भगवान् विष्णुकी, तुलसीसे गणेशकी, दूर्वासे दुर्गाकी तथा केतकी-पुष्पसे शंकरकी पूजा नहीं करनी चाहिये। मल्लिका, जातिपुष्प, कुटज, पनस, किंशुक, बकुल, कुन्द, लोध्र, करवीर, शिंशपा, अपराजिता, बन्धूक, अगस्त्य, मदंत, सिन्दुवार, पलाश-पुष्प, दूर्वांकुर, बिल्वदल, कुश-मंजरी, शल्लकी, माधवी, अर्क, मन्दार, केतकी, कर्णिकार, कदम्ब, नागकेसर, चम्पा, जूही और तगर आदि—ये पुष्प देवीको प्रसन्नता प्रदान करनेवाले हैं॥ ४०—४५॥

भवानीके लिये गुग्गुलका धूप तथा तिलके तेलका दीपक अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार देवताओंका पूजन करके मूल मन्त्रका जप करना चाहिये। इस रीतिसे पूजा समाप्त करनेके अनन्तर ही विद्वान् व्यक्तिको वेदाभ्यासमें प्रवृत्त होना चाहिये। इसके बाद बुद्धिमान् पुरुषको दिनके तीसरे भागमें नियमपूर्वक अपनी वृत्तिके अनुसार अपने आश्रितवर्गके भरण-पोषणहेतु प्रयत्न करना चाहिये॥ ४६-४७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'सन्ध्यादिकृत्यवर्णन' नामक सत्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

भगवतीकी पूजा-विधिका वर्णन, अन्नपूर्णादेवीके माहात्म्यमें राजा बृहद्रथका आख्यान

नारदजी बोले—हे मानद! अब मैं श्रीदेवीकी विशेष पूजाका विधान सुनना चाहता हूँ, जिसके करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे देवर्षे! समस्त आपदाओंको दूर करनेवाले तथा साक्षात् भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेवाले श्रीमाताके पूजनका क्रम मैं बता रहा हूँ; आप इसे सुनिये॥ २॥

वाक्संयमीको सर्वप्रथम आचमन करके संकल्प करनेके बाद भूतशुद्धि आदि करनी चाहिये। पुनः पहले मातृकान्यास करके षडंगन्यास करना चाहिये॥ ३॥

तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शंखकी स्थापना करके कलश-स्थापन करनेके अनन्तर अस्त्र-मन्त्रसे समस्त पूजाद्रव्योंका प्रोक्षण करे। इसके बाद गुरुसे आदेश प्राप्त करके पूजा आरम्भ करनी चाहिये। पहले पीठ-पूजन करके बादमें देवीका ध्यान करना चाहिये॥ ४-५॥

भगवतीको भक्ति तथा प्रेमसे युक्त होकर आसन आदि उपचार अर्पण करनेके पश्चात् पंचामृत तथा रस आदिसे उन्हें स्नान कराना चाहिये। जो मनुष्य पौण्ड्र नामक गन्नेके रससे भरे हुए सौ कलशोंद्वारा भगवती महेश्वरीको स्नान कराता है, वह पुनः जन्म ग्रहण नहीं करता॥ ६-७॥

इसी प्रकार जो पुरुष वेदका पारायण करके आमके रससे तथा ईखके रससे जगदम्बिकाको स्नान कराता है, लक्ष्मी तथा सरस्वती उसके घरका त्याग कभी नहीं करतीं। जो श्रेष्ठ मानव वेदपारायण करते हुए द्राक्षारससे भगवती महेश्वरीका अभिषेक करता है, वह अपने कुटुम्ब-सहित उस रसमें विद्यमान रेणुओंकी संख्याके बराबर वर्षोंतक देवीलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है॥ ८—१०॥

वेद-पारायण करते हुए जो पुरुष कर्पूर, अगुरु, केसर, कस्तूरी और कमलके जलसे भगवतीको स्नान कराता है; उसके सैकड़ों जन्मोंके अर्जित पाप भस्म हो जाते हैं। जो पुरुष वेदमन्त्रोंका पाठ करते हुए दुग्धसे पूर्ण कलशोंसे देवीको स्नान कराता है, वह क्षीरसागरमें कल्पपर्यन्त निरन्तर वास करता है। जो उन भगवतीको दधिसे स्नापित करता है, वह दधिकुल्या नदीका स्वामी होता है॥ ११—१३॥

इसी प्रकार जो मनुष्य मधुसे, घृतसे तथा शर्करासे

भगवतीको स्नान कराता है, वह मधुकुल्या आदि नदियोंका अधिपति होता है॥ १४॥

भक्तिमें तत्पर होकर हजार कलशोंसे देवीको स्नान करानेवाला मनुष्य इस लोकमें सुखी होकर परलोकमें भी सुखी होता है॥ १५॥

भगवतीको एक जोड़ा रेशमी वस्त्र प्रदान करके वह पुरुष वायुलोकमें जाता है। इसी प्रकार रत्नोंसे निर्मित आभूषण प्रदान करनेवाला निधिपति हो जाता है॥ १६॥

देवीको कस्तूरीकी बिन्दीसे सुशोभित केसरका चन्दन, ललाटपर सिन्दूर तथा उनके चरणोंमें महावर अर्पित करनेसे वह व्यक्ति इन्द्रासनपर विराजमान होकर दूसरे देवेन्द्रके रूपमें सुशोभित होता है॥ १७१/२॥

साधुपुरुषोंने पूजाकर्ममें प्रयुक्त होनेवाले अनेक प्रकारके पुष्पोंका वर्णन किया है; यथोपलब्ध उन पुष्पोंको देवीको अर्पण करके मनुष्य स्वयं कैलासधाम प्राप्त कर लेता है॥ १८१/२॥

जो मनुष्य पराशक्ति जगदम्बाको अमोघ बिल्वपत्र अर्पित करता है, उसे कभी किसी भी परिस्थितिमें दुःख नहीं होता है॥ १९१/२॥

तीन पत्तेवाले बिल्वदलपर लाल चन्दनसे यत्नपूर्वक अत्यन्त स्पष्ट एवं सुन्दर अक्षरोंमें मायाबीज (**ह्रीं**) तीन बार लिखे। मायाबीज जिसके आदिमें हो, भुवनेश्वरी इस नामके साथ चतुर्थी विभक्तिका उच्चारण करके उसके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर (**ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यै नमः**) इस मन्त्रसे महादेवी भगवतीके चरणकमलमें परम भक्तिपूर्वक वह कोमल बिल्वपत्र समर्पित करे। जो इस प्रकार भक्तिपूर्वक करता है, वह मनुत्व प्राप्त कर लेता है और जो अत्यन्त कोमल तथा निर्मल एक करोड़ बिल्वपत्रोंसे भुवनेश्वरीकी पूजा करता है, वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका अधिपति होता है॥ २०—२३१/२॥

अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ नवीन तथा सुन्दर कुन्द-पुष्पोंसे जो उनकी पूजा करता है, वह निश्चितरूपसे प्रजापतिका पद प्राप्त करता है। इसी प्रकार अष्टगन्धसे चर्चित एक करोड़ मल्लिका तथा मालतीके पुष्पोंसे भगवतीकी पूजाके द्वारा वह चतुर्मुख ब्रह्मा हो जाता है॥ २४-२५१/२॥

हे मुने! इसी तरह दस करोड़ उन्हीं पुष्पोंसे भगवतीका अर्चन करके मनुष्य विष्णुत्व प्राप्त कर लेता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। अपना विष्णुपद प्राप्त करनेके लिये भगवान् विष्णुने भी पूर्वकालमें यह व्रत किया था। सौ करोड़ पुष्पोंसे देवीकी पूजा करनेवाला मनुष्य सूत्रात्मत्व (सूक्ष्म ब्रह्मपद) अवश्य ही प्राप्त कर लेता है। भगवान् विष्णुने भी पूर्व कालमें प्रयत्नपूर्वक भक्तिके साथ सम्यक् प्रकारसे इस, व्रतको अनुष्ठित किया था; उसी व्रतके प्रभावसे वे हिरण्यगर्भ हुए॥ २६—२८१/२॥

जपाकुसुम, बन्धूक और दाडिमका पुष्प भी देवीको अर्पित किया जाता है—ऐसी विधि कही गयी है। इसी प्रकार अन्य पुष्प भी श्रीदेवीको विधिपूर्वक अर्पित करने चाहिये। उसके पुण्यफलकी सीमा वे ईश्वर भी नहीं जानते॥ २९-३०१/२॥

जिस-जिस ऋतुमें जो-जो पुष्प उपलब्ध हो सकें, सहस्रनामकी संख्याके अनुसार उन पुष्पोंको प्रमाद-रहित होकर प्रत्येक वर्ष भगवतीको समर्पित करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक ऐसा करता है, वह महापातकों तथा उपपातकोंसे युक्त होनेपर भी सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३१-३२१/२॥

हे मुने! ऐसा श्रेष्ठ साधक देहावसानके पश्चात् श्रेष्ठ देवताओंके लिये भी दुर्लभ श्रीदेवीके चरणकमलको प्राप्त कर लेता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है॥ ३३१/२॥

कृष्ण अगुरु, कर्पूर, चन्दन, सिल्हक (लोहबान), घृत और गुग्गुलसे संयुक्त धूप महादेवीको समर्पित करना चाहिये, जिससे मन्दिर धूपित हो जाय; इससे प्रसन्न होकर देवेश्वरी तीनों लोक प्रदान कर देती हैं॥ ३४-३५१/२॥

देवीको कर्पूर-खण्डोंसे युक्त दीपक निरन्तर अर्पित करना चाहिये; ऐसा करनेवाला उपासक सूर्यलोक प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं करना चाहिये। समाहितचित्त होकर एक सौ अथवा हजार दीपक देवीको प्रदान करने चाहिये॥ ३६-३७॥

देवीके सम्मुख पर्वतकी आकृतिके रूपमें नैवेद्यराशि

स्थापित करे; जिसमें लेह्य, चोष्य, पेय तथा षड्रसोंवाले पदार्थ हों। अनेक प्रकारके दिव्य, स्वादिष्ट तथा रसमय फल एवं अन्न स्वर्णपात्रमें रखकर भगवतीको निरन्तर अर्पित करे॥ ३८-३९॥

श्रीमहादेवीके तृप्त होनेपर तीनों लोक तृप्त हो जाते हैं; क्योंकि सम्पूर्ण जगत् उन्हींका आत्मरूप है; जिस प्रकार रज्जुमें सर्पका आभास मिथ्या है, उसी प्रकार जगत्का आभास भी मिथ्या है॥ ४०॥

तत्पश्चात् अत्यन्त पवित्र गंगाजल भगवतीको पीनेके लिये निवेदित करे और कर्पूर तथा नारियलजलसे युक्त कलशका शीतल जल भी देवीको समर्पित करे॥ ४१॥

तत्पश्चात् कर्पूरके छोटे-छोटे टुकड़ों, लवंग तथा इलायचीसे युक्त और मुखको सुगन्धि प्रदान करनेवाला ताम्बूल अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवीको अर्पित करे, जिससे देवी प्रसन्न हो जायँ। इसके बाद मृदंग, वीणा, मुरज, ढक्का तथा दुन्दुभि आदिकी ध्वनियोंसे; अत्यन्त मनोहर गीतोंसे; वेदपारायणोंसे; स्तोत्रोंसे तथा पुराण आदिके पाठसे जगत्को धारण करनेवाली भगवतीको सन्तुष्ट करना चाहिये॥ ४२—४४॥

तदनन्तर समाहितचित्त होकर देवीको छत्र तथा दो चँवर अर्पण करे। उन श्रीदेवीको नित्य राजोचित उपचार समर्पित करना चाहिये॥ ४५॥

अनेक प्रकारसे देवीकी प्रदक्षिणा करे तथा उन्हें नमस्कार करे और जगद्धात्री जगदम्बासे बार-बार क्षमाप्रार्थना करे॥ ४६॥

एक बारके स्मरणमात्रसे जब देवी प्रसन्न हो जाती हैं तब इस प्रकारके पूजनोपचारोंसे वे प्रसन्न हो जायँ तो इसमें कौन-सा आश्चर्य है?॥ ४७॥

माता स्वाभाविक रूपसे पुत्रपर अति करुणा करनेवाली होती है, फिर जो माताके प्रति भक्तिपरायण है, उसके विषयमें कहना ही क्या?॥ ४८॥

इस विषयमें मैं राजर्षि बृहद्रथसे सम्बद्ध एक रोचक तथा भक्तिप्रदायक सनातन पौराणिक आख्यानका वर्णन आपसे करूँगा॥ ४९॥

हिमालयपर किसी जगह एक चक्रवाक पक्षी रहता था। वह अनेकविध देशोंका भ्रमण करता हुआ काशीपुरी पहुँच गया॥ ५०॥

वहाँ वह पक्षी प्रारब्धवश अनाथकी भाँति अन्न-कणोंके लोभसे लीलापूर्वक भगवती अन्नपूर्णाके दिव्य धाममें जा पहुँचा॥ ५१॥

आकाशमें घूमते हुए वह पक्षी मन्दिरकी एक प्रदक्षिणा करके मुक्तिदायिनी काशीको छोड़कर किसी अन्य देशमें चला गया॥ ५२॥

कालान्तरमें वह मृत्युको प्राप्त हो गया और स्वर्ग चला गया। वहाँ एक दिव्य रूपधारी युवक होकर वह समस्त सुखोंका भोग करने लगा॥ ५३॥

इस प्रकार दो कल्पतक वहाँ सुखोपभोग करनेके बाद वह पुनः पृथ्वीलोकमें आया। क्षत्रियोंके कुलमें उसने सर्वोत्तम जन्म प्राप्त किया और पृथ्वीमण्डलपर बृहद्रथ नामसे प्रसिद्ध हुआ। वह महान् यज्ञनिष्ठ, धर्मपरायण, सत्यवादी, इन्द्रियजयी, त्रिकालज्ञ, सार्वभौम, संयमी और शत्रु-राज्योंको जीतनेवाला राजा हुआ। उसे पूर्व-जन्मकी बातोंका स्मरण था, जो पृथ्वीपर दूसरोंके लिये दुर्लभ है॥ ५४—५६॥

जनश्रुतिके माध्यमसे उसके विषयमें सुनकर मुनिगण वहाँ आये। उन नृपेन्द्रसे आतिथ्य-सत्कार पाकर वे आसनोंपर विराजमान हुए॥ ५७॥

तत्पश्चात् सभी मुनियोंने पूछा—हे राजन्! हमलोगोंको इस बातका महान् सन्देह है कि किस पुण्यके प्रभावसे आपको पूर्वजन्मकी स्मृति हो जाती है और किस पुण्यके प्रभावसे आपको तीनों कालों (भूत, भविष्य, वर्तमान)-का ज्ञान है? आपके उस ज्ञानके विषयमें जाननेके लिये हमलोग आपके पास आये हुए हैं। आप निष्कपट भावसे यथार्थरूपमें उसे हमें बतायें॥ ५८-५९½॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! उनकी यह बात सुनकर परम धार्मिक राजा अपने त्रिकालज्ञानका सारा रहस्य बताने लगे॥ ६०½॥

हे मुनिगणो! आपलोग मेरे इस ज्ञानका कारण सुनिये। मैं पूर्वजन्ममें चक्रवाक पक्षी था। नीच योनिमें जन्म लेनेपर भी मैंने अज्ञानपूर्वक भगवती अन्नपूर्णाकी प्रदक्षिणा

कर ली थी। हे सुव्रतो! उसी पुण्यप्रभावसे मैंने दो कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास किया और उसके बाद इस जन्ममें भी मुझमें त्रिकालज्ञता विद्यमान है॥ ६१—६३॥

जगदम्बाके चरणोंके स्मरणका कितना फल होता है—इसे कौन जान सकता है? उनकी महिमाका स्मरण करते ही मेरी आँखोंसे निरन्तर अश्रु गिरने लगते हैं॥ ६४॥

किंतु उन कृतघ्न तथा पापियोंके जन्मको धिक्कार है, जो सभी प्राणियोंकी जननी तथा अपनी उपास्य भगवतीकी आराधना नहीं करते॥ ६५॥

न तो शिवकी उपासना नित्य है और न तो विष्णुकी उपासना नित्य है। एकमात्र परा भगवतीकी उपासना ही नित्य है; क्योंकि श्रुतिद्वारा वे नित्या कही गयी हैं॥ ६६॥

इस सन्देहरहित विषयमें मैं अधिक क्या कहूँ! भगवतीके चरणकमलोंकी सेवा निरन्तर करनी चाहिये॥ ६७॥

इन भगवतीसे बढ़कर इस धरातलपर श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। अतः सगुणा अथवा निर्गुणा किसी भी रूपमें उन परा भगवतीकी उपासना करनी चाहिये॥ ६८॥

श्रीनारायण बोले—उन धार्मिक राजर्षिका यह वचन सुनकर प्रसन्न हृदयवाले वे सभी मुनि अपने-अपने स्थानपर चले गये॥ ६९॥

वे भगवती जगदम्बा इस प्रकारके प्रभाववाली हैं तथा उनकी पूजाका कितना फल होता है—इस विषयमें न कोई पूछनेमें समर्थ है और न कोई बतानेमें समर्थ है॥ ७०॥

जिनका जन्म सफल होनेको होता है, उन्हीं लोगोंके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। जो लोग वर्णसंकर जन्मवाले हैं, उनके मनमें देवीके प्रति श्रद्धा नहीं उत्पन्न होती॥ ७१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'देवीमाहात्म्यमें बृहद्रथकथानक' नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

मध्याह्नसन्ध्या तथा गायत्रीजपका फल

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब आप मध्याह्न-कालीन पुण्यदायिनी सन्ध्याके विषयमें सुनिये, जिसका अनुष्ठान करनेसे अद्भुत तथा अतिश्रेष्ठ फल प्राप्त होता है॥ १॥

युवावस्थावाली, श्वेत वर्णवाली, तीन नेत्रोंवाली, हाथोंमें वरदमुद्रा-अक्षमाला-त्रिशूल तथा अभयमुद्रा धारण करनेवाली, वृषभपर विराजमान, यजुर्वेदसंहितास्वरूपिणी, रुद्रके द्वारा उपास्य, तमोगुणसे सम्पन्न, भुवर्लोकमें स्थित रहनेवाली तथा सूर्यको उनके मार्गपर संचरण करानेवाली, महामाया गायत्रीको मैं प्रणाम करता हूँ—इस प्रकार आदिदेवीका ध्यान करके आचमन आदि सभी क्रियाएँ पूर्वकी भाँति करनी चाहिये॥ २—४॥

अब अर्घ्यका प्रकरण बताता हूँ। इसके लिये पुष्प चुनना चाहिये। पुष्पके अभावमें बिल्वपत्रको जलमें मिला लेना चाहिये और सूर्यकी ओर मुख करके ऊपरकी ओर जल छोड़कर अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। आदिसे लेकर अन्ततक सभी नियम प्रातःकालीन सन्ध्याके ही समान हैं॥ ५-६॥

कुछ लोग मध्याह्नसन्ध्यामें गायत्रीमन्त्र **'तत्सवितुः०'** पढ़कर अर्घ्य प्रदान करनेकी सम्मति देते हैं, किंतु वह कर्म परम्पराविरुद्ध है और इससे कार्यकी हानि होती है॥ ७॥

[प्रातः तथा सायं] दोनों सन्ध्याओंको करनेका वेदोक्त कारण यह है कि मन्देहा नामवाले राक्षस सूर्यका भक्षण करना चाहते हैं। अतएव उन राक्षसोंके निवारणके निमित्त ब्राह्मणको प्रयत्नपूर्वक सन्ध्या करनी चाहिये। प्रातः तथा सायंकालकी दोनों सन्ध्याओंमें नित्य प्रणवसहित गायत्रीमन्त्रसे [अर्घ्यके निमित्त] जलका प्रक्षेप करना चाहिये, अन्यथा वह श्रुतिघातक होता है। [मध्याह्नकालकी सन्ध्यामें] जलमिश्रित पुष्पोंसे और यदि पुष्प न मिल सके तो बिल्व और दूर्वा आदिके पत्रसे पूर्वमें बतायी गयी विधिके अनुसार प्रयत्नपूर्वक **'आकृष्णेन०'** इस मन्त्रसे

सूर्यको अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। ऐसा करनेवाला सांगोपांग सन्ध्याका फल प्राप्त करता है॥ ८—११॥

हे देवर्षिसत्तम! अब इसी प्रकरणमें तर्पणकी विधि बता रहा हूँ, उसे सुनिये। **'भुवः पूरुषं तर्पयामि नमो नमः'**, **'यजुर्वेदं तर्पयामि नमो नमः'**, **'मण्डलं तर्पयामि नमो नमः'**—इसी प्रकार हिरण्यगर्भ, अन्तरात्मा, सावित्री, देवमाता, सांकृति, सन्ध्या, युवती, रुद्राणी, नीमृजा, सर्वार्थसिद्धिकरी, सर्वार्थमन्त्रसिद्धिदा और **भूर्भुवः स्वः पूरुषं**—इन नामोंके साथ **'तर्पयामि नमो नमः'** जोड़कर तर्पण करना चाहिये। यह मध्याह्न-तर्पण है॥ १२—१५॥

तदनन्तर **'उदुत्यम्०'** तथा **'चित्रं देवानाम्०'**—इन मन्त्रोंसे सूर्योपस्थान करना चाहिये। तत्पश्चात् मन्त्र-साधनमें तत्पर रहनेवाले साधकको जप करना चाहिये। हे नारद! अब मैं जपका भी प्रकार बताऊँगा; सुनिये॥ १६-१७॥

प्रातःकाल दोनों हाथोंको उत्तान करके, सायंकालमें हाथोंको नीचेकी ओर करके तथा मध्याह्न-कालमें उन्हें हृदयके पास करके जप करना चाहिये॥ १८॥

अनामिका अँगुलीके दूसरे पर्व (मध्य पोर)-से आरम्भ करके कनिष्ठिका आदिके क्रमसे तर्जनी अँगुलीके मूलपर्यन्त करमाला कही गयी है॥ १९॥

जो गोहत्यारा, माता-पिताकी हत्या करनेवाला, भ्रूणघाती, गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला, ब्राह्मणका धन तथा भूमि हरनेवाला है और जो विप्र सुरापान करता है, वह गायत्रीके एक हजार जपसे पवित्र हो जाता है। गायत्री-जप तीन जन्मोंके मानसिक तथा वाचिक पाप और विषयेन्द्रियोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले पापको विनष्ट कर देता है। जो मनुष्य गायत्रीमन्त्र नहीं जानता, उसका सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ है॥ २०—२२॥

मनुष्य एक ओर चारों वेदोंको पढ़े तथा दूसरी ओर गायत्रीजप करे, इनमें वेदोंकी आवृत्तिसे गायत्रीजप उत्तम है।* यह मैंने आपको मध्याह्न-सन्ध्याकी विधि बतायी और अब ब्रह्मयज्ञकी विधिका क्रम बताऊँगा॥ २३-२४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'मध्याह्न-सन्ध्यावर्णन' नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

तर्पण तथा सायंसन्ध्याका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे नारद! द्विजको चाहिये कि पहले तीन बार आचमन करके दो बार मार्जन करे। इसके बाद पहले अपने दाहिने हाथका तदनन्तर पैरोंका प्रोक्षण करे। इसी प्रकार सिर, नेत्र, नासिका, कान, हृदय तथा शिखाका विधिवत् प्रोक्षण करना चाहिये॥ १-२॥

तदनन्तर देश-कालका उच्चारण करके ब्रह्मयज्ञ करे। दाहिने हाथमें दो कुशा, बायें हाथमें तीन कुशा, आसनपर एक कुशा, यज्ञोपवीतमें एक कुशा, शिखापर एक कुशा और पादमूलमें एक कुशा रखे। इसके बाद विमुक्त होनेके लिये, सम्पूर्ण पापोंके विनाशहेतु तथा सूत्रोक्त देवताकी प्रसन्नताके लिये मैं ब्रह्मयज्ञ कर रहा हूँ—ऐसा संकल्प करे॥ ३-४१/२॥

पहले तीन बार गायत्रीका जप करे और इसके बाद **'अग्निमीडे०'**, फिर **'यदङ्गे०'** का उच्चारण करके **'अग्निर्वै०'** इस मन्त्रको बोलना चाहिये। तत्पश्चात् **'अथ महाव्रतं चैव पन्थाः०'**—इसका भी पाठ करना चाहिये॥ ५-६॥

तत्पश्चात् संहिताके **'विदा मघवत्०'**, **'महाव्रतस्य०'**, **'इषे त्वोर्जे०'**, **'अग्न आयाहि०'**, **'शन्नो देवी०'**, **'अथ तस्य समाम्नायो वृद्धिरादैच्०'**, **'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि०'**,

* पठेच्च चतुरो वेदान् गायत्रीं चैकतो जपेत्। वेदानां चावृतेस्तद्वद् गायत्रीजप उत्तमः॥ (श्रीमद्देवीभा० ११।१९।२३)

'**पञ्चसंवत्सर०**', '**मयरसतजभन०**' और '**गौर्ग्मा०**' इत्यादि मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये। पुनः '**अथातो धर्मजिज्ञासा**' और '**अथातो ब्रह्मजिज्ञासा**' के साथ '**तच्छंयो०**' तथा '**ब्रह्मणे नमः**'—इन मन्त्रोंका भी पाठ करना चाहिये॥ ७—१०॥

तदनन्तर देवताओंका तर्पण करके प्रदक्षिणा करनी चाहिये। [तर्पणके समय] प्रजापति, ब्रह्मा, वेद, देवता, ऋषि, सभी छन्द, ॐकार, वषट्कार, व्याहृतियाँ, सावित्री, गायत्री, यज्ञ, द्यावा, पृथ्वी, अन्तरिक्ष, अहोरात्र, सांख्य, सिद्ध, समुद्र, नदियाँ, पर्वत, क्षेत्र, औषधि, वनस्पतियाँ, गन्धर्व, अप्सराएँ, नाग, पक्षी, गौएँ, साध्यगण, विप्रगण, यक्ष, राक्षस, भूत एवं यमराज आदिके नामोंका उच्चारण करना चाहिये॥ ११—१५॥

एतदनन्तर यज्ञोपवीतको कण्ठीकी भाँति करके शतर्चि, माध्यम, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भरद्वाज, वसिष्ठ, प्रगाथ, पावमान्य, क्षुद्रसूक्त, महासूक्त, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोहलि तथा पंचशीर्ष—इन ऋषियोंका तर्पण करना चाहिये। इसके बाद अपसव्य होकर सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन, पैल, सूत्र, भाष्य, भारत, महाभारत तथा धर्माचार्योंका तर्पण करे तथा ये सभी तृप्त हो जायँ—ऐसा उच्चारण करे। इसी प्रकार जानन्ति, बाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल, बाभ्रव्य, माण्डव्य, माण्डूकेय, गार्गी, वाचक्नवी, वडवा, प्रातिथेयी, सुलभा, मैत्रेयी, कहोल, कौषीतक, महाकौषीतक, भारद्वाज, पैंग्य, महापैंग्य, सुयज्ञ, सांख्यायन, ऐतरेय, महैतरेय, बाष्कल, शाकल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, सौजामि, शौनक और आश्वलायन—इनका तर्पण करे तथा जो अन्य आचार्य हों, वे सब भी तृप्तिको प्राप्त हों—ऐसा कहे। इसके बाद इस प्रकार उच्चारण करते हुए तर्पण करे—जो कोई भी मेरे कुलमें उत्पन्न होकर अपुत्र ही दिवंगत हो चुके हैं तथा मेरे गोत्रसे सम्बद्ध हैं, वे मेरे द्वारा वस्त्र निचोड़कर दिये गये जलको ग्रहण करें। हे महामुने! इस प्रकार मैंने आपको ब्रह्मयज्ञकी विधि बतला दी॥ १६—२७॥

जो साधक ब्रह्मयज्ञकी इस उत्तम विधिका सम्यक् पालन करता है, वह अंगोंसहित समस्त वेदोंके पाठका फल प्राप्त कर लेता है॥ २८॥

इसके बाद वैश्वदेव तथा नित्यश्राद्ध करना चाहिये। अतिथियोंको अन्नदान नित्य करना चाहिये॥ २९॥

गोग्रास देनेके पश्चात् ब्राह्मणोंके साथ बैठकर भोजन करना चाहिये। यह उत्तम कार्य दिनके पाँचवें भागमें करना चाहिये॥ ३०॥

दिनका छठाँ तथा सातवाँ भाग इतिहास, पुराण आदिके स्वाध्यायमें व्यतीत करना चाहिये। दिनके आठवें भागमें लोकव्यवहारसम्बन्धी कार्योंको करे और इसके बाद सायंसन्ध्या करे॥ ३१॥

हे महामुने! अब मैं सायंकालकी सन्ध्याका वर्णन करूँगा, जिसके अनुष्ठानमात्रसे भगवती महामाया प्रसन्न हो जाती हैं॥ ३२॥

सायं वेलामें साधक योगीको आचमन तथा प्राणायाम करके शान्तचित्त हो पद्मासन लगाकर निश्चलरूपसे बैठ जाना चाहिये॥ ३३॥

श्रुति-स्मृतिसम्बन्धी कर्मोंमें प्राणवायुको संयमित करके किया जानेवाला समन्त्रक प्राणायाम सगर्भ कहा गया है तथा ध्यानमात्रवाला प्राणायाम अगर्भ है; वह अगर्भ प्राणायाम अमन्त्रक कहा गया है॥ ३४॥

भूतशुद्धि आदि करके ही कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये, अन्यथा उसे कर्म नहीं कहा जा सकता। लक्ष्य स्थिर करके पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायामद्वारा इष्ट देवताका ध्यान करके विद्वान् पुरुषको सायंकालमें सन्ध्या करते समय इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—'भगवती सरस्वती वृद्धावस्थाको प्राप्त हैं, कृष्णवर्ण हैं, वे कृष्ण वस्त्र धारण की हुई हैं, उन्होंने हाथोंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण कर रखा है, वे गरुडरूपी वाहनपर विराजमान हैं, वे अनेक प्रकारके रत्नोंसे जटित वेशभूषासे सुशोभित हो रही हैं, उनकी पैजनी तथा करधनीसे ध्वनि निकल रही है, उनके मस्तकपर अमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट विद्यमान है, वे तारोंके हारकी आवलीसे युक्त हैं, मणिमय कुण्डलोंकी कान्तिसे उनके कपोल सुशोभित हो रहे हैं, उन्होंने पीताम्बर धारण कर रखा है, वे सत्-चित्-आनन्दस्वरूपवाली हैं, वे सामवेद तथा सत्त्वमार्गसे संयुक्त हैं, वे स्वर्गलोकमें व्यवस्थित हैं, वे सूर्यपथपर गमन करनेवाली हैं, सूर्यमण्डलसे

निकलकर मेरी ओर आती हुई इन देवीका मैं आवाहन कर रहा हूँ'॥ ३५—४०॥

इस प्रकार उन देवीका ध्यान करके सायंकालकी सन्ध्याका संकल्प करना चाहिये। **'आपो हि ष्ठा०'** इस मन्त्रसे मार्जन तथा **'अग्निश्च०'** इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये। शेष कर्म प्रातःकालीन सन्ध्याके समान बताया गया है॥ ४१½॥

साधक पुरुषको शुद्ध मनवाला होकर भगवान् नारायणके प्रसन्नतार्थ गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य देना चाहिये॥ ४२½॥

दोनों पैरोंको समानरूपसे सीधा करके हाथकी अंजलिमें जल लेकर मण्डलस्थ देवताका ध्यान करके क्रमसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये॥ ४३½॥

जो मूढात्मा तथा अज्ञानी द्विज जलमें अर्घ्य प्रदान करता है, वह स्मृतिमन्त्रोंका उल्लंघन करके प्रायश्चित्तका भागी होता है॥ ४४½॥

तत्पश्चात् **'असावादित्य०'** इस मन्त्रसे सूर्योपस्थान करके कुशके आसनपर बैठकर श्रीदेवीका ध्यान करते हुए एक हजार अथवा उसकी आधी संख्यामें गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ४५-४६॥

जैसे प्रातःकालकी सन्ध्यामें उपस्थान आदि किये जाते हैं, उसी तरह सायंकालीन सन्ध्याके तर्पणमें उपस्थान आदि क्रमसे करने चाहिये॥ ४७॥

सायंकालीन सन्ध्यामें सरस्वतीरूपा गायत्रीके ऋषि 'वसिष्ठ' कहे गये हैं, देवता वे विष्णुरूपा 'सरस्वती' हैं तथा छन्द भी वे 'सरस्वती' ही हैं। सायंकालकी सन्ध्याके तर्पणमें इसका विनियोग किया जाता है। स्वः पुरुष, सामवेद, मण्डल, हिरण्यगर्भ, परमात्मा, सरस्वती, वेदमाता, संकृति, सन्ध्या, विष्णुस्वरूपिणी, वृद्धा, उषसी, निर्मृजी, सर्वसिद्धिकारिणी, सर्वमन्त्राधिपतिका तथा भूर्भुवः स्वः पूरुष—इस प्रकार उच्चारण करके श्रुतिसम्मत सायंकालीन सन्ध्याका तर्पण करना चाहिये॥ ४८—५२½॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पापोंका नाश करनेवाले, सभी प्रकारके दुःखोंको दूर करनेवाले, व्याधियोंका शमन करनेवाले तथा मोक्ष देनेवाले सायंकालीन सन्ध्या-विधानका वर्णन कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! समस्त सदाचारोंमें सन्ध्याकी प्रधानता है। सन्ध्याका सम्यक् आचरण करनेसे भगवती भक्तको मनोवांछित फल प्रदान करती हैं॥ ५३-५४॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'ब्रह्मयज्ञादिकीर्तन' नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

गायत्रीपुरश्चरण और उसका फल

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! इसके बाद अब आप देवीके पापनाशक, पुण्यप्रद और यथेष्ट फल देनेवाले पुरश्चरणके विषयमें सुनिये॥ १॥

पर्वतके शिखरपर, नदीके तटपर, बिल्व-वृक्षके नीचे, जलाशयके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, पीपलके नीचे, उद्यानमें, तुलसीवनमें, पुण्यक्षेत्रमें अथवा गुरुके पास अथवा जहाँ भी चित्तकी एकाग्रता बनी रहे—उस स्थानपर मन्त्रका पुरश्चरण करनेवाला व्यक्ति सिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ २-३॥

जिस किसी भी मन्त्रका पुरश्चरण आरम्भ करना हो, उसके पूर्व तीनों व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः)-सहित दस हजार गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ ४॥

नृसिंह, सूर्य तथा वराह—इन देवताओंका जो भी तान्त्रिक अथवा वैदिक कर्म बिना गायत्रीका जप किये सम्पन्न किया जाता है, वह सब निष्फल हो जाता है॥ ५॥

सभी द्विज शाक्त कहे गये हैं; शैव और वैष्णव नहीं; क्योंकि सभी द्विज आदिशक्ति वेदमाता गायत्रीकी उपासना करते हैं॥ ६॥

गायत्रीके जपद्वारा मन्त्रको शुद्ध करके यत्नपूर्वक पुरश्चरणमें तत्पर हो जाना चाहिये। मन्त्रशोधनके पूर्व

आत्मशुद्धि कर लेना उत्तम होता है॥ ७॥

आत्मतत्त्वके शोधनके लिये विद्वान् पुरुषको श्रुतियोंके द्वारा बताये गये नियमके अनुसार गायत्री-मन्त्रका तीन लाख अथवा एक लाख जप करना चाहिये॥ ८॥

कर्ताकी आत्मशुद्धिके बिना की गयी जप-होमादि क्रियाएँ निष्फल ही समझी जानी चाहिये; क्योंकि आत्मशुद्धि करना श्रुतिसम्मत है॥ ९॥

तपस्याके द्वारा अपने शरीरको तपाना चाहिये और पितरों तथा देवताओंको तृप्त रखना चाहिये। तपस्यासे मनुष्य स्वर्ग तथा महान् फल प्राप्त करता है॥ १०॥

क्षत्रियको बाहुबलसे, वैश्यको धनसे, शूद्रको द्विजातियोंकी सेवासे और श्रेष्ठ ब्राह्मणको जप तथा होमसे अपनी आपदाओंका निवारण करना चाहिये॥ ११॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! प्रयत्नपूर्वक तपस्या करनी चाहिये। तपस्वियोंने शरीर सुखानेको ही उत्तम तप बतलाया है। विहित मार्गसे कृच्छ्र तथा चान्द्रायण आदि व्रतोंके द्वारा शरीरका शोधन करना चाहिये। हे नारद! अब मैं अन्न-शुद्धिका प्रकरण बताऊँगा; उसे सुनिये॥ १२-१३॥

अयाचित, उञ्छ, शुक्ल तथा भिक्षा—ये आजीविकाके चार मुख्य साधन हैं। तान्त्रिकों और वैदिकोंके द्वारा इन वृत्तियोंसे प्राप्त अन्नकी विशुद्धता कही गयी है॥ १४॥

भिक्षासे प्राप्त शुद्ध अन्न लाकर उसके चार भाग करके एक भाग द्विजोंके लिये, दूसरा भाग गोग्रासके रूपमें गौके लिये, तीसरा भाग अतिथियोंके लिये तथा चौथा भाग भार्यासहित अपने लिये व्यवस्थित करे। जिस आश्रममें ग्रासकी जो विधि निश्चित है, उसी क्रमसे उसका पालन करना चाहिये॥ १५-१६॥

आरम्भमें उस अन्नपर शक्ति तथा क्रमके अनुसार गोमूत्रका छींटा देकर वानप्रस्थी तथा गृहस्थाश्रमीको ग्रासकी संख्या निर्धारित करनी चाहिये॥ १७॥

ग्रासका परिमाण मुर्गीके अण्डेके बराबर होना चाहिये। गृहस्थको आठ ग्रास, वानप्रस्थीको उसका आधा (चार ग्रास) तथा ब्रह्मचारीको यथेष्ट ग्रास लेनेका विधान है। सर्वप्रथम गोमूत्रकी विधि सम्पन्न करके नौ, छः अथवा तीन बार अन्नका प्रोक्षण करना चाहिये। अँगुलियोंको परस्पर छिद्ररहित करके '**तत्सवितुः०**' इस गायत्री-ऋचाके साथ प्रोक्षण होना चाहिये। मन्त्रका मन-ही-मन उच्चारण करते हुए प्रोक्षण करनेकी विधि कही गयी है॥ १८—२०॥

चोर, चाण्डाल, वैश्य तथा क्षत्रिय—इनमेंसे कोई भी यदि अन्न प्रदान करता है तो अन्न-प्राप्तिकी इस विधिको अधम कहा गया है॥ २१॥

जो विप्र शूद्रका अन्न खाते हैं, शूद्रके साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं तथा शूद्रके साथ भोजन करते हैं; वे तबतक घोर नरकमें वास करते हैं जबतक सूर्य तथा चन्द्रमाका अस्तित्व रहता है॥ २२॥

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ २३॥

विश्वामित्रका मत है कि बत्तीस लाख जप होना चाहिये। जिस प्रकार प्राणरहित शरीर समस्त कार्योंको करनेमें समर्थ नहीं होता, उसी प्रकार पुरश्चरणसे हीन मन्त्र भी फल देनेमें असमर्थ कहा गया है॥ २४$^{१}/_{२}$॥

ज्येष्ठ, आषाढ़, भाद्रपद, पौष, अधिकमास, मंगलवार, शनिवार, व्यतीपात, वैधृति, अष्टमी, नवमी, षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावास्या, प्रदोष, रात्रि, भरणी, कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, श्रवण, जन्म-नक्षत्र, मेष, कर्क, तुला, कुम्भ तथा मकर (लग्न)—इन्हें छोड़ देना चाहिये; पुरश्चरणकर्ममें ये सब त्याज्य हैं॥ २५—२८॥

चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंके अनुकूल रहनेपर और मुख्यरूपसे शुक्ल पक्षमें पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये; ऐसा करनेसे मन्त्रसिद्धि होती है॥ २९॥

आरम्भमें विधिपूर्वक स्वस्तिवाचन तथा नान्दीश्राद्ध सम्पन्न करना चाहिये। भोजन तथा वस्त्र आदिसे ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करके पुनः उनसे आज्ञा लेकर पुरश्चरण आरम्भ करना चाहिये। द्विजको चाहिये कि शिवमन्दिर तथा अन्य किसी भी शिवस्थानपर पूर्वाभिमुख बैठकर जप करे॥ ३०-३१॥

काशीपुरी, केदार, महाकाल, नासिक और महाक्षेत्र त्र्यम्बक—ये पाँच स्थान पृथ्वीलोकमें दीप (सिद्धिस्थान) हैं। इन स्थानोंके अतिरिक्त सभी जगह कूर्मासनको दीप (सिद्धिस्थान) कहा गया है। प्रारम्भके दिनसे लेकर समाप्तिके दिनतक किसी भी दिन न तो अधिक और न तो कम जप करना चाहिये; श्रेष्ठ मुनिगण निरन्तर पुरश्चरण करते रहते हैं॥ ३२—३४॥

प्रातःकालसे आरम्भ करके मध्याह्नतक विधिवत् जप करना चाहिये। जपकी अवधिमें मनपर नियन्त्रण रखे, पवित्रतासे रहे, इष्टदेवताका ध्यान करता रहे तथा मन्त्रके अर्थका चिन्तन करता रहे॥ ३५॥

गायत्रीछन्दवाले मन्त्रमें अक्षरोंकी जितनी संख्या है, उतने लाख अर्थात् चौबीस लाख जपसे पुरश्चरण सम्पन्न करना चाहिये॥ ३६॥

घृत तथा मधुमिश्रित खीर, तिल, बिल्वपत्र, पुष्प तथा यव आदि द्रव्योंसे जपसंख्याके दशांशसे आहुति देनी चाहिये। दसवें अंशसे हवन करना चाहिये, तभी मन्त्र सिद्ध होता है। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली गायत्रीकी सम्यक् उपासना करनी चाहिये॥ ३७-३८॥

नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य—इन तीनों कर्मोंमें गायत्री-उपासनामें तत्पर रहना चाहिये। गायत्रीसे बढ़कर इस लोक तथा परलोकमें दूसरा कुछ भी नहीं है॥ ३९॥

[पुरश्चरणकी दूसरी विधि यह भी है] मध्याह्नकालमें अल्प भोजन करे, मौन रहे, तीनों समय स्नान करे और सन्ध्योपासन करे। बुद्धिमान् पुरुषको अन्य वृत्तियोंसे मनको हटाकर जलमें तीन लाख मन्त्रोंका जप करना चाहिये॥ ४०॥

इस प्रकार पहले पुरश्चरणकर्म करनेके पश्चात् अभिलषित काम्य कर्मोंके निमित्त जप करना चाहिये। जबतक कार्यमें सिद्धिकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक जप आदि करते रहना चाहिये॥ ४१॥

सामान्य काम्य कर्मोंमें यथावत् विधि कही गयी है। सूर्योदयकालमें स्नान करके प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये। ऐसा करनेवाला साधक आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य तथा धन अवश्य प्राप्त करता है और तीन मास, छः मास अथवा एक वर्षके अन्तमें सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३॥

एक लाख घृताक्त कमलपुष्पोंका अग्निमें होम करनेसे मनुष्य सम्पूर्ण वांछित फलको प्राप्त कर लेता है तथा उसे मोक्ष भी सुलभ हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं है॥ ४४॥

मन्त्रसिद्धि किये बिना कर्ताकी जप-होम आदि क्रियाएँ, काम्यकर्म अथवा मोक्ष आदि जो भी हो; वह सब निष्फल हो जाता है॥ ४५॥

पचीस लाख गायत्री-जपसे तथा दही अथवा दूधसे हवन करनेसे मनुष्य सिद्धशरीर हो जाता है—ऐसा महर्षियोंका मत है॥ ४६॥

मनुष्य अष्टांगयोगके द्वारा जो फल प्राप्त करता है, वही फल इस जपसे सिद्ध हो जाता है; इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ ४७॥

साधक सशक्त हो अथवा अशक्त, किंतु उसे नियत आहार ग्रहण करना चाहिये। गुरुके प्रति सदा भक्तिपरायण रहते हुए जो जप करता रहता है, उसे छः महीनेमें सिद्धि मिल जाती है॥ ४८॥

गायत्री-जप करनेवालेको एक दिन पंचगव्यके आहारपर, एक दिन वायुके आहारपर तथा एक दिन ब्राह्मणसे प्राप्त अन्नके आहारपर रहना चाहिये॥ ४९॥

गंगा आदि पवित्र नदियोंमें स्नान करके जलके भीतर ही एक सौ जप करना चाहिये। इसके बाद एक सौ मन्त्रोंका उच्चारण करके जलका पान कर लेनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। ऐसा करनेवालेको चान्द्रायण और कृच्छ्र आदि व्रतोंका फल निश्चितरूपसे प्राप्त हो जाता है। यदि साधक राजा अथवा ब्राह्मण हो तो उसे अपने घरपर ही तपरूपी पुरश्चरण करना चाहिये। गृहस्थ, ब्रह्मचारी अथवा वानप्रस्थीको भी अपने-अपने अधिकारके अनुसार जपयज्ञ करनेके पश्चात् [पुरश्चरण सम्पन्न हो जानेपर] फल प्राप्त हो जाता है॥ ५०—५२॥

मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुष श्रौत और स्मार्त आदि कर्म करते हैं। साधकको फल, मूल तथा जल आदिके आहारपर रहते हुए विद्वानोंके द्वारा सम्यक् शिक्षा प्राप्त करके सदाचारी तथा अग्निहोत्री होकर प्रयत्नपूर्वक

जप करना चाहिये। भिक्षामें प्राप्त शुद्ध अन्न ही ग्रहण करे, जिसमें स्वयं मात्र आठ ग्रास ही भोजन करे॥ ५३-५४॥ हे देवर्षे! इस प्रकार पुरश्चरण करके मनुष्य मन्त्रसिद्धि प्राप्त कर लेता है; इसके अनुष्ठानमात्रसे दरिद्रता समाप्त हो जाती है और इसके श्रवणसे भी मनुष्य पुण्योंकी महती सिद्धि प्राप्त कर लेता है॥ ५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'गायत्रीपुरश्चरणविधिकथन' नामक इक्कीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

बलिवैश्वदेव और प्राणाग्निहोत्रकी विधि

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मन्! अब वैश्वदेवकी विधि सुनिये। पुरश्चरणके प्रसंगमें यह भी मेरी स्मृतिमें आ गया है॥ १॥

देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और पाँचवाँ मनुष्ययज्ञ—ये महायज्ञ हैं॥ २॥

गृहस्थके घरमें चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली, जलका घड़ा—इन पाँच वस्तुओंसे होनेवाले पापकी शान्तिके लिये यह यज्ञ आवश्यक होता है। चूल्हा, लौहपात्र, पृथ्वी, मिट्टीके बर्तन, कुण्ड अथवा वेदीपर बलिवैश्वदेव नहीं करना चाहिये॥ ३-४॥

हाथसे, सूपसे अथवा पवित्र मृगचर्म आदिसे धौंककर अग्निको प्रज्वलित नहीं करना चाहिये, अपितु मुखसे फूँककर अग्निको प्रज्वलित करना चाहिये; क्योंकि अग्निका प्राकट्य मुखसे ही हुआ है॥ ५॥

कपड़ेसे हवा करनेपर व्याधि, सूपसे हवा करनेपर धननाश तथा हाथसे हवा करनेपर मृत्युकी प्राप्ति होती है। मुखसे फूँककर आग प्रज्वलित करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है॥ ६॥

फल, दही, घी, मूल, शाक, जल आदिसे बलिवैश्वदेव करना चाहिये। इन वस्तुओंके उपलब्ध न होनेपर काष्ठ, मूल अथवा तृण आदि जिस किसी भी वस्तुसे उसे कर लेना चाहिये॥ ७॥

घृतसे सिक्त किये हुए हव्य-पदार्थसे हवन करना चाहिये। तैल तथा लवणमिश्रित पदार्थ हवनहेतु वर्जित हैं। दधि-मिश्रित अथवा दूध-मिश्रित और यदि इनका भी अभाव हो तो जल-मिश्रित द्रव्यसे भी हवन सम्पन्न किया जा सकता है॥ ८॥

मनुष्य शुष्क अथवा बासी अन्नसे हवन करनेपर कुष्ठी होता है, जूठे अन्नसे हवन करनेपर शत्रुका वशवर्ती हो जाता है, रुक्ष अन्नसे हवन करनेपर दरिद्र होता है तथा क्षार-वस्तुओंसे हवन करनेपर अधोगामी होता है॥ ९॥

कुछ भस्ममिश्रित अंगारोंको अग्निके उत्तरकी ओरसे निकालकर फेंक दे, तत्पश्चात् क्षार आदिसे रहित वस्तुओंसे वैश्वदेवके लिये हवन करे॥ १०॥

जो मूर्खबुद्धि द्विज विना बलिवैश्वदेव किये भोजन करता है, वह मूर्ख 'कालसूत्र' नरकमें सिर नीचेकी ओर किये हुए निवास करता है॥ ११॥

शाक, पत्र, मूल अथवा फल—जो कुछ भी भोजनके लिये उपलब्ध हों, उसमेंसे संकल्पपूर्वक अग्निमें हवन भी करना चाहिये॥ १२॥

वैश्वदेव करनेसे पूर्व ही भिक्षाके लिये किसी भिक्षुकके आ जानेपर वैश्वदेवके लिये सामग्री अलग करके शेष सामग्रीमेंसे भिक्षा देकर उसे विदा कर देना चाहिये; क्योंकि पहले वैश्वदेव न करनेसे उत्पन्न दोषको शान्त करनेमें भिक्षुक तो समर्थ है, किंतु भिक्षुकके अपमानजन्य दोषका शमन करनेमें वैश्वदेव समर्थ नहीं हैं॥ १३-१४॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी—ये दोनों ही पके हुए अन्नके स्वामी हैं, अतएव इन्हें अन्न प्रदान किये बिना ही भोजन कर लेनेपर मनुष्यको चान्द्रायण व्रत करना चाहिये॥ १५॥

बलिवैश्वदेव करनेके पश्चात् गोग्रास निकालना चाहिये। हे देवर्षिपूजित! उसका विधान मैं बता रहा हूँ,

आप सुनिये॥ १६॥

हे सुरभे! आप सुरभि नामक वैष्णवी माता हैं, आप सदा वैकुण्ठमें विराजमान रहती हैं। आप मेरे द्वारा निवेदित किये गये इस गोग्रासको स्वीकार कीजिये।* **गोभ्यः नमः**—ऐसा कहकर गो-पूजन करके वह गोग्रास गौको अर्पित कर दे; क्योंकि गोग्राससे गोमाता सुरभि परम प्रसन्न होती हैं॥ १७-१८॥

तत्पश्चात् गोदोहनकालतक अतिथिकी प्रतीक्षामें घरके आँगनमें स्थित रहना चाहिये; क्योंकि अतिथि निराश होकर जिसके घरसे लौट जाता है, वह अतिथि उसे अपना पाप देकर उसका पुण्य लेकर चला जाता है॥ १९१/२॥

माता, पिता, गुरु, भाई, प्रजा, सेवक, अपने आश्रयमें रहनेवाला व्यक्ति, अभ्यागत, अतिथि और अग्नि—ये पोष्य कहे गये हैं। ऐसा जानकर जो व्यक्ति मोहवश धर्मपूर्वक गृहस्थाश्रमका पालन नहीं करता, उसका न तो यह लोक बनता है और न परलोक ही बनता है। धनवान् द्विज सोमयज्ञ करनेसे जो फल प्राप्त करता है, वही फल एक दरिद्र पंचमहायज्ञोंके द्वारा सम्यक्‌रूपसे प्राप्त कर लेता है॥ २०-२२१/२॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं प्राणाग्निहोत्रके विषयमें बताऊँगा, जिसे जानकर मनुष्य जन्म, मृत्यु, जरा आदिसे मुक्त हो जाता है। इसके सम्यक् ज्ञान होनेसे मनुष्य समस्त प्रकारके पापों तथा दोषोंसे छूट जाते हैं॥ २३-२४॥

जो विप्र इस विधिसे भोजन करता है, वह तीनों ऋणों (पितृ-ऋण, देव-ऋण, ऋषि-ऋण)-से मुक्त हो जाता है और अपनी इक्कीस पीढ़ियोंका नरकसे उद्धार कर देता है। उसे सभी यज्ञोंके फल प्राप्त हो जाते हैं तथा वह सभी लोकोंमें जानेका सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है॥ २५१/२॥

हृदयरूपी कमल अरणि है, मन मन्थन-काष्ठ है, वायु रस्सी है और यह नेत्र अध्वर्यु बनकर अग्निका मन्थन कर रहा है—ऐसी भावना करके तर्जनी, मध्यमा और अँगूठेसे प्राणके लिये आहुति डालनी चाहिये। मध्यमा, अनामिका और अँगूठेसे अपानके लिये आहुति डालनी चाहिये। कनिष्ठिका, अनामिका और अँगूठेसे व्यानके लिये और पुनः तर्जनी तथा अँगूठेसे उदानके लिये आहुति डालनी चाहिये। इसके बाद सम्पूर्ण अँगुलियोंसे अन्न उठाकर समानाग्निके लिये आहुति डालनी चाहिये। इनके आदिमें प्रणव '**ॐ**' तथा अन्तमें '**स्वाहा**' जोड़कर नाममन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये [यथा **ॐ प्राणाय स्वाहा, ॐ अपानाय स्वाहा** आदि]॥ २६-२९१/२॥

तदनन्तर मुखमें आहवनीय अग्नि, हृदयमें गार्हपत्य अग्नि, नाभिमें दक्षिणाग्नि तथा नीचेके भागमें सभ्याग्नि और आवसथ्यकाग्नि विद्यमान हैं—ऐसा चिन्तन करे। वाणी होता है, प्राण उद्‌गाता है, नेत्र ही अध्वर्यु है, मन ब्रह्मा है, श्रोत्र आग्नीध्रस्थान है, अहंकार यज्ञ-पशु है और प्रणवको पय कहा गया है। बुद्धिको पत्नी कहा गया है, जिसके अधीन गृहस्थ रहता है। वक्षःस्थल वेदी है, शरीरके रोम कुश हैं तथा दोनों हाथ स्रुक्-स्रुवा हैं॥ ३०—३३॥

सुवर्णके समान कान्तिवाले क्षुधाग्निको इस प्राणमन्त्र (**ॐ प्राणाय स्वाहा**)-का ऋषि, आदित्यको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा जाता है। '**ॐ प्राणाय स्वाहा**'—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये और मन्त्रके अन्तमें '**इदमादित्यदेवाय न मम**'—यह भी कहना चाहिये॥ ३४-३५॥

गायके दूधके समान श्वेत वर्णवाले श्रद्धाग्नि अपान मन्त्रके ऋषि हैं। सोमको इस मन्त्रका देवता कहा गया है। उष्णिक् इसका छन्द है। '**ॐ अपानाय स्वाहा**' मन्त्रके अन्तमें '**इदं सोमाय न मम**'—ऐसा पूर्वकी भाँति उच्चारण करना चाहिये॥ ३६-३७॥

कमलके समान वर्णवाले आख्यात नामक अग्नि व्यानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। अग्नि इस मन्त्रके देवता हैं तथा अनुष्टुप् इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ व्यानाय स्वाहा**' के अन्तमें '**इदमग्नये न मम**'—यह भी कहना चाहिये। इन्द्रगोपके समान रक्त वर्णवाले अग्नि उदान मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, वायु इसके देवता कहे गये हैं और बृहती इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति ही '**ॐ उदानाय स्वाहा**', '**इदं वायवे न मम**'—ऐसा द्विजको उच्चारण करना चाहिये॥ ३८—४०१/२॥

* सुरभिर्वैष्णवी माता नित्यं विष्णुपदे स्थिता। गोग्रासं च मया दत्तं सुरभे प्रतिगृह्यताम्॥ (श्रीमद्देवीभा० ११।२२।१७)

विद्युत्के समान वर्णवाले विरूपकसंज्ञक अग्नि समानमन्त्रके ऋषि कहे गये हैं, पर्जन्यको इस मन्त्रका देवता माना गया है और पंक्तिको इसका छन्द कहा गया है। पूर्वकी भाँति '**ॐ समानाय स्वाहा**', '**इदं पर्जन्याय न मम**' इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। एतदनन्तर छठी आहुति डालनी चाहिये। वैश्वानर नामक महान् अग्नि इस मन्त्रके ऋषि कहे गये हैं। आत्माको इसका देवता और गायत्रीको इसका छन्द कहा गया है। '**ॐ परमात्मने स्वाहा**' के बाद '**इदं परमात्मने न मम**' का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार प्राणाग्निहोत्र सम्पन्न हुआ। [हे नारद!] इस विधिको जानकर तथा उसके अनुसार आचरण करके मनुष्य ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। इस प्रकार मैंने इस प्राणाग्निहोत्रविद्याका वर्णन आपसे संक्षेपमें कर दिया॥ ४१—४५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'वैश्वदेवादिविधिनिरूपण' नामक बाईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

कृच्छ्रचान्द्रायण, प्राजापत्य आदि व्रतोंका वर्णन

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] साधकोंमें उत्तम विद्वान् पुरुषको भोजनके पश्चात् '**ॐ अमृतापिधानमसि**'—इस मन्त्रका उच्चारण करके आचमन करना चाहिये और पात्रमें अवशिष्ट अन्न उच्छिष्टभागी पितरोंको अर्पित करना चाहिये। [उस समय इस प्रकार कहना चाहिये] 'मेरे कुलमें जो उत्पन्न हुए हों तथा जो दास-दासियाँ रही हों, साथ ही मुझसे अन्न पानेकी अभिलाषा रखनेवाले हों—वे सब मेरे द्वारा भूमिपर रखे गये इस अन्नसे तृप्त हो जायँ*॥ १-२॥

तत्पश्चात् यह बोलकर जल प्रदान करे—रौरव नामक अपवित्र नरकमें पद्म तथा अर्बुद वर्षोंसे यातना भोगते हुए निवास करनेवाले तथा मुझसे जल पानेकी अभिलाषा रखनेवालोंको यह मेरे द्वारा प्रदत्त अक्षय्योदक प्राप्त हो॥ ३॥

[भोजनके समय अँगुलीमें पड़े हुए] पवित्रककी ग्रन्थि खोलकर पृथ्वीपर रख दे। जो विप्र उसे पात्रमें ही रख देता है, वह पंक्तिदूषक कहा जाता है॥ ४॥

यदि उच्छिष्ट द्विजका किसी उच्छिष्टसे या कुत्ते अथवा शूद्रसे स्पर्श हो जाता है, तो वह द्विज एक रात उपवास करके पुनः पंचगव्य ग्रहण करनेसे शुद्ध हो जाता है और अनुच्छिष्टसे स्पर्श होनेपर केवल स्नान करनेका विधान है। प्राणाग्निमें एक आहुति देनेसे करोड़ यज्ञका फल मिलता है, पाँच आहुतियाँ देनेसे पाँच करोड़ यज्ञोंका अनन्त फल प्राप्त होना बताया गया है। जो मनुष्य प्राणाग्निहोत्रवेत्ताको अन्नका दान करता है, उस दाताको जो पुण्य होता है तथा भोक्ताको जो फल मिलता है, वह उनको समानरूपमें प्राप्त होता है। वे दोनों ही स्वर्ग प्राप्त करते हैं॥ ५—८॥

जो विप्र हाथमें पवित्रक धारण करके विधिपूर्वक भोजन ग्रहण करता है, उसे प्रत्येक ग्रासमें पंचगव्य-प्राशनके समान फल प्राप्त होता है॥ ९॥

पूजाके तीनों कालों (प्रातः, मध्याह्न, सायं)-में प्रतिदिन जप, तर्पण, होम, ब्राह्मणभोजन [तथा मार्जन]-को पुरश्चरण कहा जाता है। वह साधक नीचे भूमिपर शयन करे, धर्मपरायण रहे, क्रोधपर तथा इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखे, अल्प; मधुर तथा हितकर पदार्थोंको ग्रहण करे, शान्त मनसे विनम्रतापूर्वक रहे। नित्य तीनों समय स्नान करे तथा सदा सुन्दर वाणी बोले। हे मुनिवर! स्त्री, शूद्र, पतित, व्रात्य, नास्तिक, जूठे मुखवाले व्यक्ति तथा चाण्डालसे वार्तालाप नहीं करना चाहिये। जप, होम, पूजन आदिके समय किसीको नमस्कार करके बातचीत नहीं करनी चाहिये॥ १०—१३॥

* ये के चास्मत्कुले जाता दासदास्योऽन्नकाङ्क्षिणः। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन भूतले॥ (श्रीमद्देवीभा० ११। २३। २)

मन, वाणी तथा कर्मसे सभी स्थितियोंमें सर्वदा मैथुनसम्बन्धी बातचीत तथा उससे सम्बन्धित गोष्ठीका भी त्याग कर देना चाहिये। सभी तरहसे मैथुनका त्याग ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। राजा तथा गृहस्थके लिये भी ब्रह्मचर्यपालन बताया गया है॥ १४-१५॥

ऋतुस्नान की हुई अपनी भार्याके साथ ही विधिपूर्वक सहवास करना चाहिये। अपने समान वर्णवाली पाणि-गृहीती भार्याका ऋतुकाल उपस्थित जानकर ही प्रयत्नपूर्वक रात्रिमें उसके साथ गमन करना चाहिये। उससे ब्रह्मचर्यका नाश नहीं होता है। तीनों ऋणोंका मार्जन, पुत्रोंकी उत्पत्ति तथा पंचमहायज्ञादि किये बिना ही मोक्षकी कामना करनेवाले व्यक्तिका अध:पतन हो जाता है। बकरीके गलेके स्तनकी भाँति उसका जन्म श्रुतियोंद्वारा निष्फल बताया गया है॥ १६—१८॥

अतएव हे विप्रेन्द्र! तीनों ऋणोंसे मुक्त होनेका प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य देवताओं, ऋषियों तथा पितरोंके ऋणी होते हैं। मनुष्य ब्रह्मचर्यद्वारा ऋषियोंके, तिलोदकदानसे पितरोंके तथा यज्ञानुष्ठानसे देवताओंके ऋणसे मुक्त हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि अपने-अपने आश्रमसम्बन्धी धर्मोंका पालन करे॥ १९-२०॥

कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत करनेवाले विद्वान्‌को दुग्ध, फल, शाक, हविष्यान्न तथा भिक्षान्नके आहारपर रहते हुए जप करना चाहिये। उसे लवण, क्षार, अम्ल, गाजर, कांस्यपात्रमें भोजन, ताम्बूल, दो बार भोजन, दुष्टोंकी संगति, उन्मत्तता, श्रुति-स्मृतिके विरुद्ध व्यवहार तथा रातमें जप आदिका त्याग कर देना चाहिये। जुआ खेलने, स्त्रीसंग करने तथा निन्दा आदिमें समयको व्यर्थ व्यतीत नहीं करना चाहिये; अपितु देवताओंकी पूजा, स्तुति तथा शास्त्रावलोकनमें ही समय व्यतीत करना चाहिये॥ २१—२३$^{1}/_{2}$॥

भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यपालन, मौनधारण, प्रतिदिन त्रिकाल स्नान, नीच कर्मोंसे विरत रहना, प्रतिदिन पूजा करना, दान देना, आनन्दित रहना, स्तुति करना, कीर्तनमें तत्पर रहना, नैमित्तिक पूजन तथा गुरु और देवतामें विश्वास रखना—जपपरायण पुरुषके लिये महान् सिद्धि प्रदान करनेवाले ये बारह धर्म हैं॥ २४—२६॥

प्रतिदिन सूर्योपस्थान करके उनके सम्मुख होकर जप करना चाहिये। देवप्रतिमा आदि अथवा अग्निमें सूर्यका अभ्यर्चन करके उनके सम्मुख स्थित होकर जप करना चाहिये। इस प्रकार स्नान, पूजा, जप, ध्यान, होम तथा तर्पणमें तत्पर रहना चाहिये और निष्काम होकर अपने सम्पूर्ण कर्म देवताको समर्पित कर देने चाहिये। पुरश्चरण करनेवाले व्यक्तिको चाहिये कि वह इन प्रारम्भिक नियमोंका पालन अवश्य करे। अतएव द्विजको प्रसन्न मनसे जप तथा होममें लगे रहना चाहिये। उसे तपस्या तथा अध्ययनमें निरत और प्राणियोंके प्रति दयाभाववाला होना चाहिये॥ २७—२९$^{1}/_{2}$॥

मनुष्य तपस्यासे स्वर्ग प्राप्त करता है तथा तपस्यासे महान् फल पाता है। संयत आत्मावाला तपपरायण पुरुष विद्वेषण, संहरण, मारण तथा रोगशमन आदि सभी कार्योंको सिद्ध कर लेता है॥ ३०-३१॥

जिस-जिस ऋषिने जिस-जिस प्रयोजनके लिये देवताओंकी स्तुति की, उन सभीकी वह-वह कामना सिद्ध हुई। अब उन कर्मों तथा उनके विधानोंके विषयमें बताऊँगा। कर्मोंके आरम्भके पूर्व पुरश्चरण कर लेना कर्मसिद्धिका कारक होता है॥ ३२-३३॥

स्वाध्यायाभ्यसन अर्थात् गायत्रीमन्त्रके पुरश्चरणमें द्विजको पहले प्राजापत्यव्रत करना चाहिये। इसके लिये सिर तथा दाढ़ीके केश और नखोंको कटाकर शुद्ध हो जाय। इसके बाद एक दिन-रात शरीरकी पवित्रता बनाये रखे। वाणीसे पवित्र रहे। सत्य भाषण करे और पवित्र मन्त्रोंका जप करे। गायत्रीकी व्याहृतियोंके आदिमें ॐकार लगाकर **'तत्सवितुः०'** इस सावित्री ऋचाका जप करना चाहिये। **'आपो हि ष्ठा०'** यह सूक्त पवित्र तथा पापनाशक है। इसी प्रकार **'पुनन्त्यः स्वस्तिमत्यश्च०'** एवं **'पावमान्यः०'**—इन पवित्र मन्त्रोंका प्रयोग सभी कर्मोंके आदि तथा अन्तमें सर्वत्र करना चाहिये। शान्तिके लिये एक हजार, एक सौ अथवा दस बार इनका जप कर लेना चाहिये। अथवा ॐकार और तीनों व्याहृतियोंसहित गायत्रीमन्त्रका दस हजार जप करना चाहिये॥ ३४—३८॥

आचार्यों, ऋषियों, छन्दों तथा देवताओंका जलसे तर्पण करना चाहिये। अनार्य, शूद्र, निन्द्य पुरुषों, ऋतुमती स्त्री, पुत्रवधू, पतितजनों, चाण्डालों, देवता-ब्राह्मणसे द्वेष रखनेवाले, आचार्य तथा गुरुकी निन्दा करनेवाले और माता-पितासे द्वेष रखनेवाले व्यक्तियोंके साथ बातचीत न करे तथा किसीका भी अपमान न करे। सम्पूर्ण कृच्छ्र व्रतोंकी यही विधि है, जिसका आनुपूर्वी वर्णन मैंने कर दिया॥ ३९—४१॥

अब कृच्छ्र, प्राजापत्य, सान्तपन, पराक, चान्द्रायण आदि कृच्छ्र व्रतोंकी विधि कही जाती है। इसके प्रभावसे मनुष्य पाँच प्रकारके पातकों तथा समस्त दुष्कृत्योंसे मुक्त हो जाता है। तप्तकृच्छ्रव्रतसे मनुष्यके सम्पूर्ण पाप क्षणभरमें भस्म हो जाते हैं॥ ४२-४३॥

तीन चान्द्रायणव्रतोंको कर लेनेसे मनुष्य पवित्र होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है, आठ चान्द्रायणव्रतोंसे वर प्रदान करनेवाले देवताओंका साक्षात् दर्शन प्राप्त कर लेता है और दस चान्द्रायणव्रतोंके द्वारा वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके अपने सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है॥ ४४१/२॥

तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन सायंकाल तथा तीन दिन बिना माँगे प्राप्त हुआ भोज्यपदार्थ ग्रहण करे। इसके बाद तीन दिनोंतक कुछ भी नहीं ग्रहण करना चाहिये; इस प्रकारसे द्विजको प्राजापत्यव्रत करना चाहिये॥ ४५१/२॥

प्रथम दिन गोमूत्र, गोमय, गोदुग्ध, दधि, घृत तथा कुशोदकको एकमें सम्मिश्रित करके पी ले; फिर दूसरे दिन उपवास करे—यह कृच्छ्रसान्तपनव्रत कहा जाता है॥ ४६१/२॥

तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास प्रातःकाल तथा तीन दिनोंतक एक-एक ग्रास सायंकाल और तीन दिनोंतक अयाचित रूपसे एक-एक ग्रास ग्रहण करना चाहिये और तीन दिनोंतक उपवास करना चाहिये; इस प्रकार द्विजको अतिकृच्छ्रव्रत करना चाहिये। इस व्रतके नियमोंका तीन गुने रूपसे पालन करना महासान्तपनव्रत कहा गया है॥ ४७-४८॥

इसी प्रकार तप्तकृच्छ्रव्रतका अनुष्ठान करनेवाले विप्रको चाहिये कि समाहितचित्त होकर तीन-तीन दिनोंतक क्रमसे उष्ण जल, उष्ण दुग्ध, उष्ण घृत तथा उष्ण वायुके आहारपर रहे और एक बार स्नान करे॥ ४९॥

नियमपूर्वक केवल जल पीकर रहना प्राजापत्यव्रतकी विधि कही गयी है। मनको अधिकारमें रखना, प्रमत्तकी भाँति आचरण न करना तथा बारह दिनोंतक उपवास करना—यही पराक नामक कृच्छ्रव्रत है; यह समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला है॥ ५०१/२॥

[अब चान्द्रायणव्रतकी विधि कही जा रही है]—कृष्णपक्षमें एक-एक ग्रास कम करके तथा शुक्लपक्षमें एक-एक ग्रास बढ़ाकर आहार ग्रहण करना चाहिये तथा अमावास्याके दिन भोजन नहीं करना चाहिये—इस प्रकारकी विधिका चान्द्रायण-व्रतमें पालन करना चाहिये। इसमें तीनों समय स्नान करनेका विधान है। इन सभी नियमोंका पालन चान्द्रायणव्रत कहा गया है॥ ५१-५२॥

प्रातःकाल स्नान आदि आह्निक कृत्य सम्पन्नकर विप्र प्रातः चार ग्रास भोजन करे तथा सूर्यास्त हो जानेपर भी चार ही ग्रास ग्रहण करे, इसे शिशुचान्द्रायणव्रत कहा गया है। संयमित आत्मावाले पुरुषको [मासपर्यन्त] दिनके मध्याह्नकालमें हविष्यके आठ-आठ ग्रास ग्रहण करने चाहिये। इसे यतिचान्द्रायणव्रत कहते हैं॥ ५३-५४॥

रुद्र, आदित्य, वसुगण, मरुद्गण, पृथ्वी तथा सभी कुशल देवता इस व्रतका अनुष्ठान सदैव करते रहते हैं। विधि-विधानसे किया गया यह व्रत सात रात्रिमें शरीरकी त्वचा, रक्त, मांस, अस्थि, मेद, मज्जा तथा वसा—इन धातुओंको एक-एक करके पवित्र कर देता है; इस प्रकार सात रातोंमें वह व्रती शुद्ध हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५५-५६१/२॥

अतएव व्रतीको चाहिये कि इन व्रतोंके द्वारा पवित्र मनवाला होकर सदा सत्कर्म करता रहे। इस प्रकार शुद्धिको प्राप्त हुए मनुष्यके सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। मनुष्यको विशुद्धात्मा, सत्यवादी तथा जितेन्द्रिय होकर कर्म करना चाहिये; तभी वह अपनी सम्पूर्ण अभिलषित कामनाओंकी प्राप्ति करता है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ५७-५८१/२॥

सम्पूर्ण कर्मोंसे अनासक्त होकर पहले तीन दिन उपवास रखे अथवा तीन दिन केवल रातमें भोजन करे; इसके बाद कार्यका आरम्भ करे। यह विधान पुरश्चरणका फल प्रदान करनेवाला कहा गया है। हे देवर्षे! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण वांछित फल प्रदान करनेवाले तथा महान् पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीपुरश्चरणका वर्णन आपसे कर दिया॥ ५९—६१ ॥

मन्त्रसाधकको आरम्भमें शरीरकी शुद्धि करनेवाला व्रत करना चाहिये। इसके बाद ही पुरश्चरण प्रारम्भ करना चाहिये, तभी साधक सम्पूर्ण फलका भागी होता है॥ ६२॥

[हे नारद!] इस प्रकार मैंने पुरश्चरणका यह गोपनीय विधान आपको बता दिया है। इसे दूसरोंको नहीं बताना चाहिये; क्योंकि यह श्रुतियोंका सार कहा गया है॥ ६३॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'तप्तकृच्छ्रादिलक्षणवर्णन' नामक तेईसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

कामना-सिद्धि और उपद्रव-शान्तिके लिये गायत्रीके विविध प्रयोग

नारदजी बोले—हे महाभाग! हे नारायण! हे करुणा-निधान! अब आप गायत्रीके शान्ति आदिसे सम्बद्ध प्रयोगोंका संक्षेपमें वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे ब्रह्मापुत्र! आपने यह अत्यन्त गोपनीय बात पूछी है; किसी भी दुष्ट तथा चुगलखोरको इसे नहीं बताना चाहिये॥ २॥

हे नारद! अब मैं शान्तिका वर्णन करता हूँ। द्विजको दुग्धमिश्रित समिधाओंसे हवन करना चाहिये। शमीकी समिधाओंसे भूत, रोग, ग्रह आदि शान्त हो जाते हैं। द्विजको चाहिये कि भूत, रोग आदिकी शान्तिके लिये क्षीरवृक्ष (पीपल, गूलर, पाकड़, वट आदि)-की ग़ीली समिधाओंसे हवन करे अथवा उन क्षीरवृक्षोंकी समिधाओंके खण्डोंसे हवन करे॥ ३-४॥

दोनों हाथोंमें जल लेकर सूर्यका तर्पण करे और इससे शान्ति प्राप्त करे। जानुपर्यन्त जलमें स्थित होकर गायत्रीका जप करके अपने सभी दोषोंको शान्त करे। कण्ठपर्यन्त जलमें स्थित होकर जप करनेसे मनुष्य प्राणका अन्त करनेवाले भयसे भी मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके शान्तिकर्मोंके लिये जलमें निमग्न होकर गायत्रीका जप करना बताया गया है॥ ५-६॥

[अब दूसरा प्रयोग कहा जाता है—] सोना, चाँदी, ताँबा, मिट्टी अथवा दूधवाले वृक्षकी लकड़ीके छिद्ररहित पात्रमें रखे हुए पंचगव्यद्वारा प्रज्वलित अग्निमें क्षीरवाले वृक्षकी समिधाओंसे एक हजार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करके हवन करे। यह कार्य धीरे-धीरे सम्पन्न करे। प्रत्येक आहुतिके समय पंचगव्यका स्पर्श करते हुए हवन करके पात्रमें अवशिष्ट पंचगव्यको हजार बार गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रितकर मन्त्रका स्मरण करते हुए कुशोंद्वारा पंचगव्यसे वहाँके स्थानका प्रोक्षण करे॥ ७—९॥

तदनन्तर बलि-द्रव्य विकीर्ण करते हुए इष्ट देवताका ध्यान करना चाहिये। ऐसा करनेसे अभिचार कर्मोंसे उत्पन्न कृत्या तथा पापका नाश हो जाता है। यदि कोई ऐसा करता है तो देवता, भूत तथा पिशाच उसके वशीभूत हो जाते हैं। साथ ही उसके इस कर्मसे गृह, ग्राम, पुर तथा राष्ट्र—ये सब उनके अनिष्टकारी प्रभावसे मुक्त हो जाते हैं॥ १०-११॥

भूमिपर चतुष्कोणमण्डल बनाकर उसके मध्य भागमें गायत्रीमन्त्र पढ़कर त्रिशूल गाड़ दे। इससे भी उन पिशाचादिसे मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेता है। अथवा मन्त्रज्ञ पुरुषको चाहिये कि सभी प्रकारकी शान्तिके लिये पूर्वोक्त मण्डलमें ही गायत्रीके एक हजार मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके त्रिशूलको गाड़े और वहाँपर सोने, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका एक छिद्ररहित, सूत्रवेष्टित नवीन तथा दिव्य कलश बालूसे बनी हुई एक वेदीपर स्थापित करके जलसे उसे भर दे॥ १२—१४॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ द्विजको चारों दिशाओंके तीर्थोंका

उसमें आवाहन करके इलायची, चन्दन, कपूर, जाती, गुलाब, मालती, बिल्वपत्र, विष्णुक्रान्ता, सहदेवी, धान, यव, तिल, सरसों तथा दूधवाले वृक्षोंके कोमल पत्तोंको उस कलशमें छोड़ देना चाहिये और उसमें कुशोंसे बनाया गया एक कूर्च भी रख देना चाहिये। इस प्रकार सब कुछ सम्पन्न हो जानेपर स्नान आदिसे पवित्र बुद्धिमान् विप्रको एकाग्रचित्त होकर एक हजार गायत्रीमन्त्रसे उस कलशको अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ १५—१७॥

पुनः वेदज्ञ ब्राह्मणोंको चारों दिशाओंमें बैठकर सूर्य-सम्बन्धी मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। उस भूतादिग्रस्त पुरुषको वह अभिमन्त्रित जल पिलाना चाहिये और उसीसे उसका प्रोक्षण तथा अभिषेक भी करना चाहिये। इस अभिषेकसे वह व्यक्ति भूतों, रोगों तथा अभिचारोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है; साक्षात् मृत्युके मुखमें गया हुआ प्राणी भी अभिषेकसे मुक्त हो जाता है॥ १८-१९॥

दीर्घ कालतक जीवन धारण करनेकी अभिलाषा रखनेवाले विद्वान् राजाको ऐसे अनुष्ठान अवश्य कराने चाहिये। हे मुने! अभिषेककी समाप्तिपर ऋत्विजोंको एक सौ गायें प्रदान करनी चाहिये और दक्षिणा उतनी हो, जिससे ऋत्विक् सन्तुष्ट हो जायँ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार भी दक्षिणा दी जा सकती है॥ २०१/२॥

द्विजको चाहिये कि शनिवारको पीपलवृक्षके नीचे गायत्रीका सौ बार जप करे। इससे वह भूत, रोग तथा अभिचारसे उत्पन्न महान् भयसे मुक्त हो जाता है॥ २११/२॥

द्विजको गाँठोंपरसे खण्ड-खण्ड किये गये गुरुचको दूधमें भिगोकर उससे हवन करना चाहिये। यह 'मृत्युंजयहोम' है, जो समस्त व्याधियोंका नाश करनेवाला है॥ २२१/२॥

ज्वरकी शान्तिके लिये दूधमें भिगोये गये आमके पत्तोंकी आहुति देनी चाहिये। दूधमें भिगोये गये 'वच' का हवन करनेसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है। तीनों मधु (दूध, दही, घृत)-से किये गये हवनसे राजयक्ष्मा नष्ट हो जाता है। खीरका हवन करके उसे सूर्यको अर्पित करनेके बाद राजयक्ष्मासे ग्रस्त पुरुषको [प्रसाद-रूपमें] उसका प्राशन कराना चाहिये, जिससे रोग शान्त हो जाता है॥ २३—२५॥

द्विजको क्षयरोगकी शान्तिके लिये सोमलताको गाँठोंपरसे अलग-अलग करके उसे दूधमें भिगोकर अमावास्या तिथिको उससे हवन करना चाहिये। शंखवृक्षके पुष्पोंसे हवन करके कुष्ठरोग दूर करे। इसी तरह अपामार्गके बीजोंसे हवन करनेपर अपस्मार (मिर्गी) रोगका नाश हो जाता है॥ २६-२७॥

क्षीरवृक्षकी समिधासे किये गये होमसे उन्माद रोग दूर हो जाता है। गूलरकी समिधासे हवन करनेपर अतिमेहरोग नष्ट हो जाता है; साथ ही मधु अथवा ईखके रससे हवन करके मनुष्य प्रमेहरोगको शान्त कर सकता है। मनुष्य त्रिमधु (दूध, दही और घी)-के हवनसे चेचकरोगको समाप्त कर सकता है, उसी प्रकार कपिला गायके घीसे हवन करके भी चेचकरोगको शान्त कर सकता है और गूलर, वट तथा पीपलकी समिधाओंसे हवन करके गाय, घोड़े और हाथियोंके रोगको नष्ट कर सकता है॥ २८—३०॥

पिपीलिका और मधुवल्मीक जन्तुओंका घरमें उपद्रव होनेपर घृतयुक्त शमीकी समिधाओं तथा भातसे प्रत्येक कार्यके लिये सौ-सौ आहुतियाँ द्विजको देनी चाहिये। ऐसा करनेसे उनके द्वारा उत्पन्न उपद्रव शान्त हो जाता है। इसके बाद बचे हुए पदार्थोंसे वहाँ बलि प्रदान करनी चाहिये॥ ३११/२॥

बिजली गिरने और भूकम्प आदिके लक्षित होनेपर जंगली बेंतकी समिधासे सात दिनोंतक हवन करना चाहिये; इससे राष्ट्रमें राज्यसुख विद्यमान रहता है॥ ३२१/२॥

कोई पुरुष सौ बार गायत्रीमन्त्रका जप करके जिस दिशामें मिट्टीका ढेला फेंकता है, उसे उस दिशामें अग्नि, हवा तथा शत्रुओंसे होनेवाला भय दूर हो जाता है। मन-ही-मन इस गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे बन्धनमें पड़ा मनुष्य उस बन्धनसे छूट जाता है॥ ३३-३४॥

कोई मनुष्य भूत, रोग तथा विषसे संग्रस्त व्यक्तिको स्पर्श करते हुए गायत्रीका जप करके इनसे मुक्त कर देता है। गायत्रीसे अभिमन्त्रित जल पीकर मनुष्य भूत-प्रेतादिसे मुक्त हो जाता है॥ ३५॥

भूत आदिसे शान्तिके लिये गायत्रीमन्त्रका सौ बार उच्चारण करके भस्मको अभिमन्त्रितकर उसे रख लेना

चाहिये और **'तत्सवितु०'** ऋचासे उस भस्मको सिरपर धारण करना चाहिये॥ ३६॥

ऐसा करनेसे वह पुरुष समस्त व्याधियोंसे मुक्त होकर सौ वर्षतक सुखपूर्वक जीता है। यदि कोई इसे करनेमें असमर्थ हो तो किसी विप्रको दक्षिणा देकर उससे शान्ति-कर्म करा लेना चाहिये॥ ३७॥

पुष्पोंकी आहुति देकर द्विज पुष्टि, श्री तथा लक्ष्मी प्राप्त करता है। लक्ष्मीकी कामना करनेवाले पुरुषको लाल कमलपुष्पोंसे हवन करना चाहिये, इससे वह श्रीकी प्राप्ति करता है। जातीके नवीन शुभ पुष्पोंसे आहुति देकर मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है तथा शालिके चावलोंके हवनसे वियुक्त लक्ष्मी प्राप्त करता है। बिल्ववृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य लक्ष्मी प्राप्त करता है। साथ ही बिल्वफलके खण्डों, पत्तों, पुष्पों, फलों तथा बिल्ववृक्षके मूलके खण्डोंसे हवन करके उत्तम लक्ष्मी प्राप्त करता है। इसी प्रकार खीर तथा घृतसे मिश्रित बिल्ववृक्षकी समिधाओंकी सात दिनोंतक सौ-सौ आहुतियाँ देकर मनुष्य लक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४१ $^{१}/_{२}$॥

मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त लावाका हवन करनेसे पुरुष कन्या प्राप्त करता है और इसी विधिसे कन्या भी अभिलषित वर प्राप्त कर लेती है। एक सप्ताहतक रक्तकमलकी सौ आहुतियाँ देकर पुरुष सुवर्ण प्राप्त कर लेता है और सूर्यके बिम्बमें जलकी आहुति देकर मनुष्य जलमें स्थित सोना प्राप्त कर लेता है॥ ४२-४३ $^{१}/_{२}$॥

अन्नका हवन करके मनुष्य अन्न प्राप्त करता है तथा व्रीहिका हवन करके व्रीहिका स्वामी हो जाता है। बछड़ेके गोमयके चूर्णसे हवन करके पुरुष पशुओंकी प्राप्ति करता है। प्रियंगु, दूध तथा घीके द्वारा हवनसे प्रजा—सन्तान प्राप्त होती है। खीरका हवन करके तथा सूर्यको निवेदित करके उसे ऋतुस्नाता स्त्रीको खिलाये; ऐसा करनेवाला पुरुष श्रेष्ठ पुत्र प्राप्त करता है॥ ४४—४६॥

अंकुरित शाखाओंवाली आर्द्र समिधाओंसे हवन करनेपर आयुकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार दूधवाले वृक्षोंकी समिधासे हवन करके मनुष्य आयु प्राप्त करता है। अंकुरित शाखाओंवाली गीली, लाल समिधाओं और मधुत्रय (दूध, दही, घी)-से युक्त व्रीहिकी सौ आहुति देकर मनुष्य स्वर्ण तथा दीर्घ आयु प्राप्त करता है॥ ४७-४८॥

सुनहरे रंगके कमलकी आहुति देकर मनुष्य सौ वर्षकी आयु प्राप्त करता है। दूर्वा, दूध, मधु अथवा घीसे सप्ताहपर्यन्त प्रतिदिन सौ-सौ आहुति देकर मनुष्य अपमृत्यु दूर कर देता है। उसी प्रकार शमीकी समिधाओं, अन्न, दूध तथा घीसे एक सप्ताहतक प्रतिदिन सौ-सौ आहुतियोंसे अपमृत्युका विनाश कर देता है। बरगदकी समिधाओंसे हवन करके खीरका हवन करना चाहिये; एक सप्ताहतक प्रतिदिन इनकी सौ-सौ आहुतियोंसे मनुष्य अपमृत्युको नष्ट कर देता है। यदि कोई दुग्धके आहारपर रहकर गायत्रीका जप करे तो वह सप्ताहभरमें मृत्युपर विजय प्राप्त कर लेता है और बिना कुछ आहार ग्रहण किये मौन रहकर जप करे तो तीन रातमें ही यमसे मुक्ति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार यदि जलमें निमग्न होकर जप करे तो वह उसी क्षण मृत्युसे मुक्ति पा लेता है॥ ४९—५३॥

बिल्ववृक्षके नीचे जप करनेसे एक मासमें राज्य मिल जाता है। बिल्ववृक्षके मूल, फल तथा पल्लवकी आहुतिसे भी मनुष्य राज्य प्राप्त कर लेता है॥ ५४॥

एक मासतक कमलकी सौ आहुति देनेपर मनुष्य निष्कण्टक राज्य प्राप्त करता है। शालिचावलकी लपसीकी आहुतिसे ग्रामकी प्राप्ति होती है। पीपलवृक्षकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य युद्ध आदिमें विजय करता है और मदारकी समिधाओंसे हवन करके सभी जगह विजयी सिद्ध होता है॥ ५५-५६॥

दुग्ध तथा खीरसे युक्त बेंतके पुष्पों अथवा पत्रोंसे सप्ताहपर्यन्त सौ-सौ आहुति देनेसे वृष्टि प्राप्त होती है। नाभिपर्यन्त जलमें खड़े रहकर एक सप्ताहतक जप करनेसे वृष्टि होती है। जलमें भस्मकी सौ आहुति देनेसे महावृष्टिका निवारण हो जाता है॥ ५७-५८॥

पलाशकी समिधाओंसे हवन करके मनुष्य ब्रह्मतेज प्राप्त करता है और पलाशके पुष्पोंसे हवनद्वारा उसे समस्त अभीष्टकी प्राप्ति हो जाती है॥ ५९॥

मनुष्य दूधकी आहुति देकर मेधा तथा घीकी आहुति देकर बुद्धि प्राप्त करता है। गायत्रीमन्त्रसे अभिमन्त्रित ब्राह्मीके रसका पान करनेसे मनुष्यको मेधाकी प्राप्ति होती है॥ ६०॥

ब्राह्मीपुष्पोंके हवनसे सुगन्ध तथा उसके तन्तुओंके हवनसे उसीके समान वस्त्रकी प्राप्ति होती है। मधु-मिश्रित लवणकी आहुति देकर मनुष्य अभीष्टको वशमें कर लेता है। इसी प्रकार शहदसे सिक्त किये गये बिल्वपुष्पोंसे हवन करनेपर मनुष्य अपने इष्टको वशमें कर लेता है। जलमें खड़े होकर [गायत्रीमन्त्रका जप करते हुए] अंजलिसे अपने ऊपर नित्य अभिषेक करनेसे मनुष्य बुद्धि, आरोग्य, उत्तम आयु और स्वास्थ्य प्राप्त करता है। यदि किसी अन्य व्यक्तिके निमित्त कोई ब्राह्मण ऐसा करे तो वह भी पुष्टि प्राप्त करता है॥ ६१—६३॥

आयुकी कामना करनेवालेको किसी पवित्र स्थानमें उत्तम विधिके साथ मासपर्यन्त प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीका जप करना चाहिये; इससे उसे उत्तम आयु प्राप्त होती है। आयु तथा आरोग्य दोनोंकी कामना करनेवाले द्विजको दो मासतक गायत्रीजप करना चाहिये। इसी प्रकार आयु, आरोग्य तथा लक्ष्मीकी कामना करनेवालेको तीन मासतक जप करना चाहिये। द्विजको चार मासतक जप करनेसे आयु, लक्ष्मी, पुत्र, स्त्री तथा यशकी प्राप्ति होती है और पाँच मासतक जप करनेसे पुत्र, स्त्री, आयु, आरोग्य, लक्ष्मी और विद्याकी प्राप्ति होती है। इस तरहसे जितने मनोरथ संख्यामें बढ़ते जायँ, उसीके अनुसार जपके लिये मास-संख्या भी बढ़ानी चाहिये। विप्रको एक पैरपर स्थित होकर बिना किसी आश्रयके बाँहोंको ऊपर किये हुए तीन सौ गायत्रीमन्त्रोंका प्रतिदिन मासपर्यन्त जप करना चाहिये; ऐसा करनेसे वह सभी मनोरथोंको पूर्ण कर लेता है। इस प्रकार ग्यारह सौ मन्त्र नित्य मासपर्यन्त जप करके वह सब कुछ प्राप्त कर लेता है॥ ६४—६८॥

प्राण और अपान वायु रोककर प्रतिदिन तीन सौ गायत्रीमन्त्रका जप मासपर्यन्त करनेसे पुरुषको वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है, जिसकी वह अभिलाषा रखता है; और इसी तरह एक हजार जप करनेसे सर्वस्वकी प्राप्ति हो जाती है॥ ६९॥

इन्द्रियोंको वशमें करके एक पैरपर स्थित होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास निरुद्ध करके मासभर प्रतिदिन एक सौ गायत्रीमन्त्र जपनेसे मनुष्य जो चाहता है, उसकी वह अभिलाषा पूर्ण हो जाती है—ऐसा विश्वामित्रजीका कथन है। इसी प्रकार तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर लेता है। जलमें निमग्न होकर एक मासतक प्रतिदिन सौ मन्त्रोंका जप करनेसे मनुष्य अपना अभीष्ट प्राप्त कर लेता है; इसी तरह तेरह सौ मन्त्रोंका जप करनेसे वह सब कुछ पा लेता है॥ ७०-७१$^{1}/_{2}$॥

बिना किसी अवलम्बके एक पैरपर खड़े होकर बाँहें ऊपर उठाये हुए श्वास-नियमन करके एक वर्षतक जप करे और रात्रिमें केवल हविष्यान्न भक्षण करे तो वह पुरुष ऋषित्वको प्राप्त हो जाता है। इसी तरह यदि मनुष्य दो वर्षतक जप करे तो उसकी वाणी अमोघ हो जाती है॥ ७२-७३॥

इसी प्रकार तीन वर्षोंतक जप करे तो मनुष्य त्रिकालदर्शी हो जाता है और यदि चार वर्षोंतक जप करे तो भगवान् सूर्यदेव स्वयं उस व्यक्तिके समक्ष प्रकट हो जाते हैं। इसी प्रकार पाँच वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त कर लेता है और इसी प्रकार छः वर्षोंतक जप करके वह कामरूपित्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७४-७५॥

सात वर्षोंतक जप करनेसे पुरुषको देवत्व, नौ वर्षोंतक जप करनेसे मनुत्व और दस वर्षोंतक जप करनेसे इन्द्रत्वकी प्राप्ति हो जाती है। ग्यारह वर्षोंतक जप करनेसे मनुष्य प्रजापति हो जाता है तथा बारह वर्षोंतक जप करके वह ब्रह्मत्वको प्राप्त हो जाता है॥ ७६-७७॥

इसी प्रकारकी तपस्याके द्वारा नारद आदि ऋषियोंने सम्पूर्ण लोकोंको जीत लिया था। कुछ ऋषि केवल शाकके आहारपर, कुछ फलपर, कुछ मूलपर और कुछ दूधके आहारपर रहते थे। कुछ ऋषिगण घीके आहारपर, कुछ सोमरसके आहारपर और अन्य ऋषि चरुके आहारपर रहते थे। इसी प्रकार कुछ ऋषि पूरे पक्षभरं केवल एक बार भोजन ग्रहण करते थे तथा कुछ ऋषि प्रतिदिन भिक्षान्नके आहारपर रहते थे और कुछ ऋषि हविष्यान्न ग्रहण करते हुए कठोर तपश्चर्या करते थे॥ ७८-७९$^{1}/_{2}$॥

द्विजको चाहिये कि प्रच्छन्न पातकोंकी शुद्धिके लिये तीन हजार गायत्रीके मन्त्रोंका जप करे। द्विजोंमें श्रेष्ठ पुरुष एक महीनेतक प्रतिदिन इस प्रकार जप करनेसे सुवर्णकी चोरीके पापसे मुक्त हो जाता है। सुरापान करनेवाला मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार जप करे तो वह शुद्ध हो

जाता है। गुरुपत्नीके साथ गमन करनेवाला व्यक्ति महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्र जपनेसे पवित्र हो जाता है। वनमें कुटी बनाकर वहीं रहते हुए महीनेभर प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीजप करनेसे ब्रह्मघाती उस पापसे मुक्त हो जाता है—ऐसा विश्वामित्रऋषिने कहा है। जलमें निमग्न होकर बारह दिनोंतक प्रतिदिन एक-एक हजार गायत्रीमन्त्रका जप करनेसे सभी महापातकी द्विज सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाते हैं॥ ८०—८३१/२॥

महापातकी व्यक्ति मौन रहकर प्राणायामपूर्वक मासपर्यन्त प्रतिदिन तीन हजार गायत्रीमन्त्रका जप करे तो वह महान् भयसे मुक्त हो जाता है। एक हजार प्राणायाम करनेसे ब्रह्महत्यारा भी पापसे मुक्त हो जाता है॥ ८४-८५॥

प्राण और अपान वायुको ऊपर खींचकर संयमपूर्वक गायत्रीमन्त्रका छः बार जप करे; यह प्राणायाम सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला है॥ ८६॥

मासपर्यन्त प्रतिदिन एक हजार गायत्रीका जप करनेसे राजा पवित्र हो जाता है। गोवधजन्य पापसे शुद्धिहेतु द्विजको बारह दिनोंतक प्रतिदिन तीन-तीन हजार गायत्रीजप करना चाहिये॥ ८७॥

दस हजार गायत्रीका जप द्विजको अगम्यागमन, चोरी, हिंसा तथा अभक्ष्यभक्षणके पापसे शुद्ध कर देता है। सौ बार प्राणायाम करके मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। सभी प्रकारके मिले-जुले पापोंसे शुद्धिके लिये प्रतिदिन एक मासतक **तत्सवितु०** ऋचाका एक हजार जप वनमें रहकर करना चाहिये। इसका तीन हजार जप उपवासके समकक्ष होता है॥ ८८—९०॥

चौबीस हजार गायत्रीजप कृच्छ्रव्रतके समान और चौंसठ हजार गायत्रीजप चान्द्रायणव्रतके समान कहा गया है॥ ९१॥

प्रातः तथा सायंकालीन दोनों सन्ध्याओंके समय नित्य प्राणायाम करके '**तत्सवितु०**' इस ऋचाका एक सौ जप करनेवाले पुरुषके सभी पाप पूर्णरूपसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ९२॥

जलमें निमग्न होकर सूर्यस्वरूपिणी देवीका ध्यान करते हुए गायत्रीमन्त्रका नित्य सौ बार जप करनेवाला समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९३॥

हे नारद! इस प्रकार मैंने शान्ति, शुद्धि आदिसे सम्बन्धित अनुष्ठानोंका वर्णन आपसे कर दिया। रहस्योंमें भी अति रहस्य इस प्रसंगको आपको सदा गोपनीय रखना चाहिये; इस प्रकार यह सदाचार-संग्रह संक्षेपमें बतला दिया। इस सदाचारका विधिपूर्वक पालन करनेसे महामाया दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं॥ ९४-९५॥

जो मनुष्य नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य कर्मोंसे सम्बद्ध आचारोंका विधिपूर्वक पालन करता है, वह भोग तथा मोक्षके फलका अधिकारी होता है॥ ९६॥

आचार प्रथम धर्म है और धर्मकी अधिष्ठात्री भगवती जगदम्बा हैं। इस प्रकार सभी शास्त्रोंमें सदाचारका महान् फल बताया गया है॥ ९७॥

हे नारद! सदाचारपरायण पुरुष सर्वदा पवित्र, सुखी तथा धन्य होता है; यह सत्य है, सत्य है॥ ९८॥

सदाचारका विधान देवीकी प्रसन्नताको उत्पन्न करनेवाला है। इस विधानको सुननेमात्रसे मनुष्य विपुल सम्पदा तथा सुखका अधिकारी हो जाता है। सदाचारके पालनसे मनुष्यको ऐहिक तथा पारलौकिक सुख सुलभ हो जाता है। उसी सदाचारका वर्णन मैंने आपसे किया है। [हे नारद!] अब आप और क्या सुनना चाहते हैं॥ ९९-१००॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत ग्यारहवें स्कन्धका 'सदाचारनिरूपण' नामक चौबीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २४॥

॥ एकादश स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीजगदम्बिकायै नमः ॥

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण

द्वादश स्कन्ध

पहला अध्याय

गायत्रीजपका माहात्म्य तथा गायत्रीके चौबीस वर्णोंके ऋषि, छन्द आदिका वर्णन

नारदजी बोले—हे देव! हे प्रभो! आपने सदाचारविधिका वर्णन कर दिया; उस विधिका माहात्म्य अत्यन्त अतुलनीय तथा सभी पापोंका नाश करनेवाला है॥ १॥

आपके मुखकमलसे निःसृत देवीके कथारूप अमृतका श्रवण तो कर लिया; किंतु आपने जिन चान्द्रायण आदि मुख्य व्रतोंका वर्णन किया है, कर्तृसाध्य उन व्रतोंको मैं अत्यन्त कष्टसाध्य समझता हूँ। इसलिये अब आप ऐसा उपाय बताइये, जो मनुष्योंके लिये सुखसाध्य हो। हे स्वामिन्! हे सुरेश्वर! आप मुझे कृपापूर्वक उस कर्मानुष्ठानके विषयमें बताइये; जो मंगलकारी, सिद्धि देनेवाला तथा भगवतीकी प्रसन्नताकी प्राप्ति करानेवाला हो॥ २—४॥

सदाचारविधानके अन्तर्गत आपने जिस गायत्रीविधिका वर्णन किया है, उसमें मुख्यतम वस्तु क्या है और क्या करनेसे अधिक पुण्यकी प्राप्ति होती है?॥ ५॥

आपने गायत्रीके जिन चौबीस अक्षरोंको बताया है, उन अक्षरोंके कौन-कौन ऋषि, कौन-कौन छन्द तथा कौन-कौन देवता कहे गये हैं? हे प्रभो! यह सब मुझे बताइये; क्योंकि इस सम्बन्धमें मेरे मनमें महान् कौतूहल उत्पन्न हो रहा है॥ ६-७॥

श्रीनारायण बोले—द्विज कोई दूसरा अनुष्ठान आदि कर्म करे अथवा न करे, किंतु एकनिष्ठ होकर केवल गायत्रीका अनुष्ठान कर ले तो वह कृतकृत्य हो जाता है॥ ८॥

हे मुने! तीनों संध्याओंमें भगवान् सूर्यको अर्घ्य प्रदान करनेवाला तथा तीन हजार गायत्रीजप करनेवाला पुरुष देवताओंका पूज्य हो जाता है॥ ९॥

न्यास करे अथवा न करे, किंतु निष्कपट भावसे सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीका ध्यान करके गायत्रीजप अवश्य करना चाहिये॥ १०॥

उसके एक अक्षरकी भी सिद्धि हो जानेपर ब्राह्मणश्रेष्ठ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सूर्य, चन्द्र और अग्निके साथ स्पर्धा करनेयोग्य हो जाता है॥ ११॥

हे ब्रह्मन्! अब आप गायत्रीके वर्ण, ऋषि, छन्द, देवता तथा तत्त्व आदिके विषयमें क्रमसे सुनिये॥ १२॥

वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ, शुक्र, कण्व, पराशर, महातेजस्वी विश्वामित्र, कपिल, महान् शौनक, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज, तपोनिधि जमदग्नि, गौतम, मुद्गल, वेदव्यास, लोमश, अगस्त्य, कौशिक, वत्स, पुलस्त्य, माण्डुक, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ दुर्वासा, नारद और कश्यप—हे मुने! ये चौबीस ऋषि क्रमसे गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके 'ऋषि' कहे गये हैं। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप्,

जगती, अतिजगती, शक्वरी, अतिशक्वरी, धृति, अतिधृति, विराट्, प्रस्तारपंक्ति, कृति, प्रकृति, आकृति, विकृति, संकृति, अक्षरपंक्ति, भूः, भुवः, स्वः तथा ज्योतिष्मती—हे महामुने! ये गायत्रीमन्त्रके वर्णोंके क्रमशः छन्द कहे गये हैं॥ १३—१९॥

हे प्राज्ञ! अब क्रमशः उन वर्णोंके देवताओंके नाम सुनिये। पहले वर्णके देवता अग्नि, दूसरेके प्रजापति, तीसरेके चन्द्रमा, चौथेके ईशान, पाँचवेंके सविता, छठेके आदित्य, सातवेंके बृहस्पति, आठवेंके मित्रावरुण, नौवेंके भग, दसवेंके ईश्वर, ग्यारहवेंके गणेश, बारहवेंके त्वष्टा, तेरहवेंके पूषा, चौदहवेंके इन्द्राग्नि, पन्द्रहवेंके वायु, सोलहवेंके वामदेव, सत्रहवेंके मित्रावरुण, अठारहवेंके विश्वेदेव, उन्नीसवेंके मातृक, बीसवेंके विष्णु, इक्कीसवेंके वसु, बाईसवेंके रुद्र, तेईसवेंके कुबेर और चौबीसवें वर्णके देवता अश्विनीकुमार कहे गये हैं। हे मुने! इस प्रकार मैंने गायत्रीके चौबीस वर्णोंके देवताओंका वर्णन कर दिया। यह नामसंग्रह परम श्रेष्ठ और महान् पापोंका विनाश करनेवाला है, जिसके श्रवणमात्रसे सांगोपांग गायत्रीजपका फल प्राप्त हो जाता है॥ २०—२७॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीविचार' नामक पहला अध्याय पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

गायत्रीके चौबीस वर्णोंकी शक्तियों, रंगों एवं मुद्राओंका वर्णन

श्रीनारायण बोले—हे महामुने! उन वर्णोंकी कौन-कौन-सी शक्तियाँ हैं, अब आप उन्हें सुनिये। वामदेवी, प्रिया, सत्या, विश्वा, भद्रविलासिनी, प्रभावती, जया, शान्ता, कान्ता, दुर्गा, सरस्वती, विद्रुमा, विशालेशा, व्यापिनी, विमला, तमोपहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जया, वशा, पद्मालया, पराशोभा, भद्रा तथा त्रिपदा—चौबीस गायत्रीवर्णोंकी ये शक्तियाँ कही गयी हैं॥ १—३१/२॥

[हे मुने!] अब मैं उन अक्षरोंके वास्तविक वर्णों (रंगों)-के विषयमें बता रहा हूँ। गायत्रीके चौबीस वर्णोंके रंग क्रमशः चम्पा, अलसी-पुष्प, मूँगा, स्फटिक, कमल-पुष्प, तरुण सूर्य, शंख-कुन्द-चन्द्रमा, रक्त कमलपत्र, पद्मराग, इन्द्रनीलमणि, मोती, कुमकुम, अंजन, रक्तचन्दन, वैदूर्य, मधु, हरिद्रा, कुन्द एवं दुग्ध, सूर्यकान्तमणि, तोतेकी पूँछ, कमल, केतकीपुष्प, मल्लिकापुष्प और कनेरके पुष्पकी आभाके समान कहे गये हैं। चौबीस अक्षरोंके बताये गये ये चौबीस वर्ण महान् पापोंको नष्ट करनेवाले हैं॥ ४—९१/२॥

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, जननेन्द्रिय, गुदा, पाद, हस्त, वागिन्द्रिय, नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान, प्राण, अपान, व्यान तथा समान—ये वर्णोंके क्रमशः चौबीस तत्त्व कहे गये हैं॥ १०—१२१/२॥

[हे नारद!] अब मैं क्रमशः वर्णोंकी मुद्राओंका वर्णन करूँगा। सुमुख, सम्पुट, वितत, विस्तृत, द्विमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापकांजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सन्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टिक, मत्स्य, कूर्म, वराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर तथा पल्लव—गायत्रीके अक्षरोंकी ये चौबीस मुद्राएँ हैं। त्रिशूल, योनि, सुरभि, अक्षमाला, लिंग और अम्बुज—ये महामुद्राएँ गायत्रीके चौथे चरणकी कही गयी हैं। हे महामुने! गायत्रीके वर्णोंकी इन मुद्राओंको मैंने आपको बता दिया। हे मुने! ये मुद्राएँ महान् पापोंका नाश करनेवाली, कीर्ति देनेवाली तथा कान्ति प्रदान करनेवाली हैं॥ १३—१८॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीशक्त्यादिप्रतिपादन' नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

श्रीगायत्रीका ध्यान और गायत्रीकवचका वर्णन

नारदजी बोले—हे स्वामिन्! हे सम्पूर्ण जगत्‌के नाथ! हे प्रभो! हे चौंसठ कलाओंके ज्ञाता! हे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! मनुष्य किस पुण्यकर्मसे पापमुक्त हो सकता है, किस प्रकार ब्रह्मरूपत्व प्राप्त कर सकता है और किस कर्मसे उसका देह देवतारूप तथा विशेषरूपसे मन्त्ररूप हो सकता है? हे प्रभो! उस कर्मके विषयमें साथ ही विधिपूर्वक न्यास, ऋषि, छन्द, अधिदेवता तथा ध्यानको विधिवत् सुनना चाहता हूँ॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—गायत्रीकवच नामक एक परम गोपनीय उपाय है, जिसके पाठ करने तथा धारण करनेसे मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं तथा वह स्वयं देवीरूप हो जाता है॥ ४१/२॥

हे नारद! इस गायत्रीकवचके ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश ऋषि हैं। ऋक्, यजुः, साम तथा अथर्व इसके छन्द हैं। परम कलाओंसे सम्पन्न ब्रह्मस्वरूपिणी 'गायत्री' इसकी देवता कही गयी हैं॥ ५-६॥

भर्ग इसका बीज है, विद्वानोंने स्वयं इसीको शक्ति कहा है, बुद्धिको इसका कीलक कहा गया है और मोक्षके लिये इसके विनियोगका भी विधान बताया गया है॥ ७॥

चार वर्णोंसे इसका हृदय, तीन वर्णोंसे शिर, चार वर्णोंसे शिखा, तीन वर्णोंसे कवच, चार वर्णोंसे नेत्र तथा चार वर्णोंसे अस्त्र कहा गया है॥ ८१/२॥

[हे नारद!] अब मैं साधकोंको उनके अभीष्टकी प्राप्ति करानेवाले ध्यानका वर्णन करूँगा। मोती, मूँगा, स्वर्ण, नील और धवल आभावाले [पाँच] मुखों, तीन नेत्रों तथा चन्द्रकलायुक्त रत्नमुकुटको धारण करनेवाली, चौबीस अक्षरोंसे विभूषित और हाथोंमें वरद-अभयमुद्रा, अंकुश, चाबुक, शुभ्र कपाल, रज्जु, शंख, चक्र तथा दो कमलपुष्प धारण करनेवाली भगवती गायत्रीका मैं ध्यान करता हूँ॥ ९-१०॥

[इस प्रकार ध्यान करके कवचका पाठ करे—]

पूर्व दिशामें गायत्री मेरी रक्षा करें, दक्षिण दिशामें सावित्री रक्षा करें, पश्चिममें ब्रह्मसन्ध्या तथा उत्तरमें सरस्वती मेरी रक्षा करें। जलमें व्याप्त रहनेवाली भगवती पार्वती अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। राक्षसोंमें भय उत्पन्न करनेवाली भगवती यातुधानी नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। वायुमें विलासलीला करनेवाली भगवती पावमानी वायव्यकोणमें मेरी रक्षा करें। रुद्ररूप धारण करनेवाली भगवती रुद्राणी ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। ब्रह्माणी ऊपरकी ओर तथा वैष्णवी नीचेकी ओर मेरी रक्षा करें। इस प्रकार भगवती भुवनेश्वरी दसों दिशाओंमें मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करें॥ ११—१४॥

'**तत्**' पद मेरे दोनों पैरोंकी, '**सवितुः**' पद मेरी दोनों जंघाओंकी, '**वरेण्यं**' पद कटिदेशकी, '**भर्गः**' पद नाभिकी, '**देवस्य**' पद हृदयकी, '**धीमहि**' पद दोनों कपोलोंकी, '**धियः**' पद दोनों नेत्रोंकी, '**यः**' पद ललाटकी, '**नः**' पद मस्तककी तथा '**प्रचोदयात्**' पद मेरी शिखाकी रक्षा करे॥ १५-१६१/२॥

'**तत्**' पद मस्तककी रक्षा करे तथा '**स**' कार ललाटकी रक्षा करे। इसी तरह '**वि**' कार दोनों नेत्रोंकी, '**तु**' कार दोनों कपोलोंकी, '**व**' कार नासापुटकी, '**रे**' कार मुखकी, '**णि**' कार ऊपरी ओष्ठकी, '**य**' कार नीचेके ओष्ठकी, '**भ**' कार मुखके मध्यभागकी, रेफयुक्त '**गो**' कार (**र्गो**) ठुड्डीकी, '**दे**' कार कण्ठकी, '**व**' कार कन्धोंकी, '**स्य**' कार दाहिने हाथकी, '**धी**' कार बायें हाथकी, '**म**' कार हृदयकी, '**हि**' कार उंदरकी, '**धि**' कार नाभिदेशकी, '**यो**' कार कटिप्रदेशकी, पुनः '**यो**' कार गुह्य अंगोंकी, '**नः**' पद दोनों ऊरुओंकी, '**प्र**' कार दोनों घुटनोंकी, '**चो**' कार दोनों जंघाओंकी, '**द**' कार गुल्फोंकी, '**या**' कार दोनों पैरोंकी और '**त**' कार व्यंजन (**त्**) सर्वदा मेरे सम्पूर्ण अंगोंकी रक्षा करे॥ १७—२३॥

[हे नारद!] भगवती गायत्रीका यह दिव्य कवच सैकड़ों विघ्नोंका विनाश करनेवाला, चौंसठ कलाओं तथा समस्त विद्याओंको देनेवाला और मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है। इस कवचके प्रभावसे व्यक्ति सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है और परब्रह्म-भावकी प्राप्ति कर लेता है। इसे पढ़ने अथवा सुननेसे भी मनुष्य एक हजार गोदानका फल प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीमन्त्रकवचवर्णन' नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

गायत्रीहृदय तथा उसका अंगन्यास

नारदजी बोले—हे भगवन्! हे देवदेवेश! हे भूतभव्यजगत्प्रभो! मैंने गायत्रीमन्त्रविग्रह तथा दिव्य गायत्री-कवचके विषयमें सुन लिया। अब मैं श्रेष्ठ 'गायत्रीहृदय' सुनना चाहता हूँ, जिसके धारण करनेसे गायत्रीजपसे प्राप्त होनेवाला सम्पूर्ण पुण्य प्राप्त हो जाता है॥ १-२॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! देवीका गायत्रीहृदय अथर्ववेदमें स्पष्टरूपसे वर्णित है। रहस्योंमें भी अति रहस्ययुक्त उसी प्रसंगका वर्णन मैं आपसे करूँगा॥ ३॥

विराट् रूपवाली वेदमाता महादेवी गायत्रीका ध्यान करनेके बाद अंगोंमें इन देवताओंका ध्यान करना चाहिये॥ ४॥

पिण्ड तथा ब्रह्माण्डमें स्थापित एकत्वकी भाँति अपने तथा देवीमें अभेदकी भावना करनी चाहिये। साधकको देवीके रूपमें तथा अपने शरीरमें तन्मयताभाव रखना चाहिये॥ ५॥

देवभावसे सम्पन्न हुए बिना देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिये—ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है। इसलिये अभेदसम्पादनके लिये अपने शरीरमें इन देवताओंकी भावना करनी चाहिये॥ ६॥

[हे नारद!] अब मैं वह उपाय बता रहा हूँ, जिससे तन्मयता प्राप्त हो सकती है। स्वयं मैं नारायण ही इस गायत्रीहृदयका ऋषि कहा गया हूँ। गायत्री इसका छन्द है और भगवती परमेश्वरी इसकी देवता हैं। पूर्वमें कही गयी रीतिसे अपने छहों अंगोंमें क्रमसे इनका न्यास करना चाहिये। इसके लिये सर्वप्रथम निर्जन स्थानमें किसी आसनपर बैठकर एकाग्रचित्त हो भगवती गायत्रीका ध्यान करना चाहिये॥ ७-८॥

[अब अंगन्यासकी विधि बतायी जाती है—] मस्तकमें द्यौ नामक देवता, दन्तपंक्तिमें दोनों अश्विनीकुमारों, दोनों ओठोंमें दोनों संध्याओं, मुखमें अग्नि, जिह्वामें सरस्वती, ग्रीवामें बृहस्पति, दोनों स्तनोंमें आठों वसुओं, दोनों भुजाओंमें मरुद्गणों, हृदयमें पर्जन्य, उदरमें आकाश, नाभिमें अन्तरिक्ष, दोनों कटिदेशमें इन्द्र तथा अग्नि, जघनमें विज्ञानघन प्रजापति, एक उरुमें कैलास तथा मलयगिरि, दोनों घुटनोंमें विश्वेदेवों, पिण्डलीमें कौशिक, गुह्यदेशमें उत्तरायण एवं दक्षिणायनके अधिष्ठातृदेवता, दूसरे उरुमें पितरों, पैरोंमें पृथ्वी, अँगुलियोंमें वनस्पतियों, रोमोंमें ऋषियों, नखोंमें मुहूर्तों, हड्डियोंमें ग्रहों तथा रुधिर एवं मांसमें ऋतुओंकी भावना करे। संवत्सर जिनके लिये एक पलके समान है तथा जिनके आदेशसे सूर्य और चन्द्रमा दिन-रातका विभाजन करते हैं, मैं उन परम श्रेष्ठ, दिव्य तथा सहस्र नेत्रोंवाली भगवती गायत्रीकी शरण ग्रहण करता हूँ। ॐ सूर्यके उस श्रेष्ठ तेजको नमस्कार है। ॐ पूर्व दिशामें उदय होनेवाले उन सूर्यको नमस्कार है। प्रातःकालीन उन सूर्यको नमस्कार है। आदित्यमण्डलमें प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाली उन गायत्रीको नमस्कार है। प्रातःकाल गायत्रीहृदयका पाठ करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापका नाश करता है, सायंकालमें इसका पाठ करनेवाला दिनमें किये गये पापोंका शमन करता है और सायं तथा प्रातः दोनों वेलाओंमें पाठ करनेवाला निष्पाप हो जाता है। वह समस्त तीर्थोंमें स्नान किया हुआ हो जाता है। वह सभी देवताओंके लिये ज्ञात हो जाता है। गायत्रीकी कृपासे मनुष्य अभाष्यभाषण, अभक्ष्यभक्षण, अभोज्यभोजन, अचोष्यचोषण, असाध्यसाधन, लाखों दुष्प्रतिग्रहों, सभी प्रकारके प्रतिग्रहों, पंक्तिदूषण तथा असत्यवचन—इन सभीसे पवित्र हो जाता है। उनकी कृपासे अब्रह्मचारी भी ब्रह्मचारी हो जाता है। इस गायत्रीहृदयके पाठसे हजार यज्ञोंके करनेसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है। इसके पाठसे साठ लाख गायत्रीजपसे मिलनेवाले फल प्राप्त हो जाते हैं। इसके अनुष्ठानमें सम्यक् प्रकारसे आठ ब्राह्मणोंका वरण करना चाहिये; ऐसा करनेसे उस व्यक्तिको सिद्धि प्राप्त हो जाती है। जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल पवित्र होकर इस गायत्रीहृदयका पाठ करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है—ऐसा स्वयं भगवान् श्रीनारायणने कहा है।

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीहृदय' नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

गायत्रीस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारदजी बोले—हे भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले! हे सर्वज्ञ! आपने पापोंका नाश करनेवाले गायत्रीहृदयका तो वर्णन कर दिया; अब गायत्रीस्तोत्रका कथन कीजिये॥ १॥

श्रीनारायण बोले—हे आदिशक्ते! हे जगन्मात:! हे भक्तोंपर कृपा करनेवाली! हे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाली! हे अनन्ते! हे श्रीसन्ध्ये! आपको नमस्कार है॥ २॥

आप ही सन्ध्या, गायत्री, सावित्री, सरस्वती, ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री हैं। आप रक्त, श्वेत तथा कृष्ण वर्णोंवाली हैं॥ ३॥

आप प्रात:कालमें बाल्यावस्थावाली, मध्याह्नकालमें युवावस्थासे युक्त तथा सायंकालमें वृद्धावस्थासे सम्पन्न हो जाती हैं। मुनिगण इन रूपोंमें आप भगवतीका सदा चिन्तन करते रहते हैं॥ ४॥

आप प्रात:काल हंसपर, मध्याह्नकालमें गरुडपर तथा सायंकालमें वृषभपर विराजमान रहती हैं। आप ऋग्वेदका पाठ करती हुई भूमण्डलपर तपस्वियोंको दृष्टिगोचर होती हैं। आप यजुर्वेदका पाठ करती हुई अन्तरिक्षमें विराजमान रहती हैं। वही आप सामगान करती हुई भूमण्डलपर सर्वत्र भ्रमण करती रहती हैं॥ ५-६॥

विष्णुलोकमें निवास करनेवाली आप रुद्रलोकमें भी गमन करती हैं। देवताओंपर अनुग्रह करनेवाली आप ब्रह्मलोकमें भी विराजमान रहती हैं॥ ७॥

मायास्वरूपिणी आप सप्तर्षियोंको प्रसन्न करनेवाली तथा अनेक प्रकारके वर प्रदान करनेवाली हैं। आप शिव-शक्तिके हाथ, नेत्र, अश्रु तथा स्वेदसे दस प्रकारकी दुर्गाके रूपमें प्रादुर्भूत हुई हैं। आप आनन्दकी जननी हैं। वरेण्या, वरदा, वरिष्ठा, वरवर्णिनी, गरिष्ठा, वरार्हा, सातवीं वरारोहा, नीलगंगा, सन्ध्या और भोगमोक्षदा—आपके ये दस नाम हैं॥ ८—१०॥

आप मृत्युलोकमें भागीरथी, पातालमें भोगवती और स्वर्गमें त्रिलोकवाहिनी (मन्दाकिनी)-देवीके रूपमें तीनों लोकोंमें निवास करती हैं॥ ११॥

लोकको धारण करनेवाली आप ही धरित्रीरूपसे भूलोकमें निवास करती हैं। आप भुवर्लोकमें वायुशक्ति, स्वर्लोकमें तेजोनिधि, महर्लोकमें महासिद्धि, जनलोकमें जना, तपोलोकमें तपस्विनी, सत्यलोकमें सत्यवाक्, विष्णुलोकमें कमला, ब्रह्मलोकमें गायत्री और रुद्रलोकमें शंकरके अर्धांगमें निवास करनेवाली गौरीके रूपमें स्थित हैं॥ १२—१४॥

अहंकार और महत् तत्त्वोंकी प्रकृतिके रूपमें आप ही कही जाती हैं। नित्य साम्य अवस्थामें विराजमान आप शबल ब्रह्मस्वरूपिणी हैं॥ १५॥

आप उससे भी बड़ी 'पराशक्ति' तथा 'परमा' कही गयी हैं। आप इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिके रूपमें विद्यमान हैं और इन तीनों शक्तियोंको प्रदान करनेवाली हैं॥ १६॥

आप गंगा, यमुना, विपाशा, सरस्वती, सरयू, देविका, सिन्धु, नर्मदा, इरावती, गोदावरी, शतद्रु, देवलोकमें गमन करनेवाली कावेरी, कौशिकी, चन्द्रभागा, वितस्ता, सरस्वती, गण्डकी, तापिनी, तोया, गोमती तथा वेत्रवती नदियोंके रूपमें विराजमान हैं और इडा, पिंगला, तीसरी सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, अपूषा, अलम्बुषा, कुहू और शंखिनी—इन प्राणवाहिनी नाड़ियोंके रूपमें आपको ही प्राचीन विद्वानोंने शरीरमें स्थित बताया है। आप हृदयकमलमें प्राणशक्तिके रूपमें, कण्ठदेशमें स्वप्ननायिकाके रूपमें, तालुओंमें सर्वाधारस्वरूपिणीके रूपमें और भ्रूमध्यमें बिन्दुमालिनीके रूपमें विराजमान रहती हैं। आप मूलाधारमें कुण्डलीशक्तिके रूपमें तथा चूडामूलपर्यन्त व्यापिनीशक्तिके रूपमें स्थित हैं। शिखाके मध्यभागमें परमात्मशक्तिके रूपमें तथा शिखाके अग्रभागमें मनोन्मनीशक्तिके रूपमें आप ही विराजमान रहती हैं। हे महादेवि! अधिक कहनेसे क्या लाभ? तीनों लोकोंमें जो कुछ भी है, वह सब आप ही हैं। हे सन्ध्ये! मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये आपको नमस्कार

है ॥ १७—२३१/२ ॥

[हे नारद!] सन्ध्याके समय पढ़ा गया यह स्तोत्र अत्यधिक पुण्य प्रदान करनेवाला, महान् पापोंका नाश करनेवाला तथा महान् सिद्धियोंकी प्राप्ति करानेवाला है। जो व्यक्ति एकाग्रचित्त होकर सन्ध्याकालमें इस गायत्री-स्तोत्रका पाठ करता है, वह यदि पुत्रहीन है तो पुत्र और यदि धनका अभिलाषी है तो धन प्राप्त कर लेता है। ऐसा करनेवालेको समस्त तीर्थ, तप, दान, यज्ञ तथा योगका फल प्राप्त हो जाता है और दीर्घ कालतक सुखोंका उपभोग करके अन्तमें वह मोक्षको प्राप्त होता है ॥ २४—२६१/२ ॥

हे नारद! जो पुरुष स्नानकालमें तपस्वियोंद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह जहाँ कहीं भी जलमें स्नान करे, उसे सन्ध्यारूपी मज्जनसे होनेवाला फल प्राप्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है; मेरा यह कथन सत्य है, सत्य है ॥ २७-२८ ॥

हे नारद! सन्ध्याको उद्देश्य करके कहे गये इस अमृततुल्य स्तोत्रको जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक सुनता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है ॥ २९ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीस्तोत्र' नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

छठा अध्याय

गायत्रीसहस्त्रनामस्तोत्र तथा उसके पाठका फल

नारदजी बोले—सभी धर्मोंको जाननेवाले तथा सभी शास्त्रोंमें निष्णात हे भगवन्! मैंने आपके मुखसे श्रुतियों, स्मृतियों तथा पुराणोंसे सम्बद्ध सभी प्रकारके पापोंका नाश करनेवाला वह रहस्य सुन लिया, जिससे विद्याकी प्राप्ति होती है। हे देव! किसके द्वारा ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है और मोक्षका साधन क्या है? हे कमलनयन! किस साधनसे ब्राह्मणोंको उत्तम गति मिलती है, किससे मृत्युका नाश होता है? और किसके आश्रयसे मनुष्यको इहलोक तथा परलोकमें उत्तम फल प्राप्त होता है? इस सम्बन्धमें प्रारम्भसे लेकर सम्पूर्ण बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १—३१/२ ॥

श्रीनारायण बोले—हे महाप्राज्ञ! हे अनघ! आपको साधुवाद है, जो आपने इतनी उत्तम बात पूछी है। सुनिये, मैं प्रयत्नपूर्वक गायत्रीके दिव्य तथा मंगलकारी एक हजार आठ नामोंवाले सर्वपापहारीस्तोत्रका वर्णन करता हूँ ॥ ४-५ ॥

पूर्व कालमें सृष्टिके आदिमें भगवान्‌ने जिसे कहा था, वही मैं आपको बता रहा हूँ। इस एक हजार आठ नामवाले स्तोत्रके ऋषि ब्रह्माजी कहे गये हैं। अनुष्टुप् इसका छन्द है तथा भगवती गायत्री इसकी देवता कही गयी हैं। हल् (व्यंजन) वर्ण इसके बीज और स्वर इसकी शक्तियाँ कही गयी हैं। मातृकामन्त्रके छः अक्षर ही इसके छः अंगन्यास और करन्यास कहे जाते हैं ॥ ६-७१/२ ॥

अब साधकोंके कल्याणके लिये देवीका ध्यान बताता हूँ। रक्त-श्वेत-पीत-नील एवं धवलवर्ण (-वाले मुखों)-से सम्पन्न, तीन नेत्रोंसे देदीप्यमान विग्रहवाली, रक्तवर्णवाली, नवीन रक्तपुष्पोंकी माला धारण करनेवाली, अनेक मणिसमूहोंसे युक्त, कमलके आसनपर विराजमान, अपने दो हाथोंमें कमल और कुण्डिका एवं अन्य दो हाथोंमें वर तथा अक्षमाला धारण करनेवाली, कमलके समान नेत्रोंवाली, हंसपर विराजमान रहनेवाली तथा कुमारी अवस्थासे सम्पन्न भगवती गायत्रीकी मैं उपासना करता हूँ ॥ ८-९ ॥ [देवीके सहस्रनाम इस प्रकार हैं—]

१. **अचिन्त्यलक्षणा** (बुद्धिकी पहुँचसे परे लक्षणोंवाली), २. **अव्यक्ता**, ३. **अर्थमातृमहेश्वरी** (अर्थ आदि पार्थिव पदार्थोंके परिच्छेदक ब्रह्मा आदि देवताओंपर नियन्त्रण करनेवाली), ४. **अमृता** (अमृतस्वरूपिणी), ५. **अर्णवमध्यस्था** (समुद्रके भीतर विराजमान रहनेवाली), ६. **अजिता**, ७. **अपराजिता**, ८. **अणिमादिगुणाधारा**

(अणिमा आदि सिद्धियोंकी आश्रयभूता), **९. अर्कमण्डलसंस्थिता** (सूर्यमण्डलमें विराजमान), **१०. अजरा** (सदा तरुण अवस्थामें रहनेवाली), **११. अजा** (जन्मरहित), **१२. अपरा** (जिनसे अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है), **१३. अधर्मा** (जात्यादिनिमित्तक लोकधर्मोंसे रहित), **१४. अक्षसूत्रधरा** (अक्षसूत्र धारण करनेवाली), **१५. अधरा** (अपने ही आधारपर स्थित) ॥ १०-११ ॥

१६. अकारादिक्षकारान्ता (जिनके आदिमें अकार तथा अन्तमें क्षकार है, वे वर्णमातृकास्वरूपिणी देवी), **१७. अरिषड्वर्गभेदिनी** (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य—इन छः प्रकारके शत्रुओंका भेदन करनेवाली), **१८. अञ्जनाद्रिप्रतीकाशा** (अंजनगिरिके समान कृष्णवर्णकी प्रभासे सुशोभित), **१९. अञ्जनाद्रिनिवासिनी** (अंजनगिरिपर निवास करनेवाली) ॥ १२ ॥

२०. अदितिः (देवताओंकी माता), **२१. अजपा** (अजपाजपरूपिणी), **२२. अविद्या** (माया), **२३. अरविन्दनिभेक्षणा** (कमलसदृश नेत्रोंवाली), **२४. अन्तर्बहिःस्थिता** (सभीके भीतर तथा बाहर स्थित रहनेवाली), **२५. अविद्याध्वंसिनी** (अविद्याका नाश करनेवाली), **२६. अन्तरात्मिका** (सभीके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली) ॥ १३ ॥

२७. अजा (जन्मसे रहित प्रकृतिस्वरूपिणी), **२८. अजमुखावासा** (ब्रह्माके मुखमें निवास करनेवाली), **२९. अरविन्दनिभानना** (कमलके समान प्रफुल्लित मुखवाली), **३०. अर्धमात्रा** (प्रणवांगभूत अर्धमात्रास्वरूपा), **३१. अर्थदानज्ञा** (धर्म आदि चारों पुरुषार्थोंका दान करनेमें कुशल), **३२. अरिमण्डलमर्दिनी** (शत्रुसमूहोंका मर्दन करनेवाली) ॥ १४ ॥

३३. असुरघ्नी (राक्षसोंका संहार करनेवाली), **३४. अमावास्या** (अमावस्यातिथिरूपा), **३५. अलक्ष्मीघ्न्यन्त्यजार्चिता** (अलक्ष्मीका संहार करनेवाली अन्त्यजा—मातंगीदेवीसे अर्चित होनेवाली), **३६. आदिलक्ष्मीः**, **३७. आदिशक्तिः** (महामाया), **३८. आकृतिः** (आकारस्वरूपिणी), **३९. आयतानना** (विशाल मुखवाली) ॥ १५ ॥

४०. आदित्यपदवीचारा (आदित्यमार्गपर चलनेवाली सूर्यगतिरूपा), **४१. आदित्यपरिसेविता** (सूर्य आदि देवताओंसे सुसेवित), **४२. आचार्या** (सदाचारकी व्याख्या करनेवाली), **४३. आवर्तना** (भ्रमणशील जगत्‌की रचना करनेवाली), **४४. आचारा** (आचारस्वरूपिणी), **४५. आदिमूर्तिनिवासिनी** (आदिमूर्ति अर्थात् ब्रह्ममें निवास करनेवाली) ॥ १६ ॥

४६. आग्नेयी (अग्निकी अधिष्ठात्री), **४७. आमरी** (देवताओंकी पुरी जिनका रूप माना जाता है), **४८. आद्या** (आदिस्वरूपिणी), **४९. आराध्या** (सभीके द्वारा आराधित), **५०. आसनस्थिता** (दिव्य आसनपर विराजमान रहनेवाली), **५१. आधारनिलया** (मूलाधारमें निवास करनेवाली कुण्डलिनीस्वरूपिणी), **५२. आधारा** (जगत्‌को धारण करनेवाली), **५३. आकाशान्तनिवासिनी** (आकाशतत्त्वके अन्तरूप अहंकारमें निवास करनेवाली) ॥ १७ ॥

५४. आद्याक्षरसमायुक्ता (आदि अक्षर अर्थात् अकारसे युक्त), **५५. आन्तराकाशरूपिणी** (दहराकाशरूपिणी), **५६. आदित्यमण्डलगता** (सूर्यमण्डलमें विद्यमान), **५७. आन्तरध्वान्तनाशिनी** (अज्ञानरूप आन्तरिक अन्धकारका नाश करनेवाली) ॥ १८ ॥

५८. इन्दिरा (लक्ष्मी), **५९. इष्टदा** (मनोरथ पूर्ण करनेवाली), **६०. इष्टा** (साधकोंकी अभीष्ट देवतारूपिणी), **६१. इन्दीवरनिभेक्षणा** (सुन्दर नीलकमलके समान नेत्रोंवाली), **६२. इरावती** (इरा अर्थात् पृथ्वीसे युक्त), **६३. इन्द्रपदा** (अपनी कृपासे इन्द्रको पद दिलानेवाली), **६४. इन्द्राणी** (शचीरूपसे विराजमान), **६५. इन्दुरूपिणी** (चन्द्रमाके समान सुन्दर रूपवाली) ॥ १९ ॥

६६. इक्षुकोदण्डसंयुक्ता (हाथमें इक्षुका धनुष धारण करनेवाली), **६७. इषुसन्धानकारिणी** (बाणोंका संधान करनेमें दक्ष), **६८. इन्द्रनीलसमाकारा** (इन्द्रनीलमणिके समान प्रभावाली), **६९. इडापिङ्गलरूपिणी** (इडा और पिंगला आदि नाड़ीरूपिणी) ॥ २० ॥

७०. इन्द्राक्षी (शताक्षी नामवाली देवी), **७१.**

ईश्वरी देवी (अखिल ऐश्वर्योंसे युक्त भगवती), ७२. **ईहात्रयविवर्जिता** (तीन प्रकारकी ईहा अर्थात् लोकैषणा, वित्तैषणा और पुत्रैषणासे रहित), ७३. **उमा**, ७४. **उषा**, ७५. **उडुनिभा** (नक्षत्रके सदृश प्रभावाली), ७६. **उर्वारुकफलानना** (ककड़ीके फलके समान सदा प्रफुल्लित मुखवाली) ॥ २१ ॥

७७. **उडुप्रभा** (जलके समान वर्णवाली), ७८. **उडुमती** (रात्रिरूपिणी), ७९. **उडुपा** (चन्द्रमा अथवा नौकारूपिणी), ८०. **उडुमध्यगा** (नक्षत्रमण्डलके मध्य विराजमान), ८१. **ऊर्ध्वम्** (ऊर्ध्वदेशरूपिणी), ८२. **ऊर्ध्वकेशी** (ऊपरकी ओर उठे हुए केशोंवाली), ८३. **ऊर्ध्वाधोगतिभेदिनी** (ऊर्ध्वगति अर्थात् स्वर्ग और अधोगति अर्थात् नरक दोनोंका भेदन करनेवाली) ॥ २२ ॥

८४. **ऊर्ध्वबाहुप्रिया** (भुजाओंको ऊपर उठाकर आराधना करनेवाले भक्तोंसे प्रेम करनेवाली), ८५. **ऊर्मिमालावाग्ग्रन्थदायिनी** (तरंगमालाओंके समान श्रेष्ठ वाणीसे सम्पन्न ग्रन्थ-रचनाका सामर्थ्य प्रदान करनेवाली), ८६. **ऋतम्** (सूनृत-स्वरूपिणी), ८७. **ऋषिः** (वेदरूपा), ८८. **ऋतुमती**, ८९. **ऋषिदेवनमस्कृता** (ऋषियों तथा देवताओंसे नमस्कृत होनेवाली) ॥ २३ ॥

९०. **ऋग्वेदा** (ऋग्वेदरूपा), ९१. **ऋणहर्त्री** (देव-ऋण, ऋषि-ऋण और पितृ-ऋणका नाश करनेवाली), ९२. **ऋषिमण्डलचारिणी** (ऋषियोंकी मण्डलीमें विचरण करनेवाली), ९३. **ऋद्धिदा** (समृद्धि प्रदान करनेवाली), ९४. **ऋजुमार्गस्था** (सदाचारके मार्गपर चलनेवाली), ९५. **ऋजुधर्मा** (सहज धर्मवाली), ९६. **ऋतुप्रदा** (अपनी कृपासे विभिन्न ऋतुएँ प्रदान करनेवाली) ॥ २४ ॥

९७. **ऋग्वेदनिलया** (ऋग्वेदमें निवास करनेवाली), ९८. **ऋज्वी** (सरलस्वभाववाली), ९९. **लुप्तधर्मप्रवर्तिनी** (लुप्त धर्मोंका पुनः प्रवर्तन करनेवाली), १००. **लूतारिवरसम्भूता** (लूता नामक रोगविशेषके महान् शत्रुरूपी मन्त्रोंको उत्पन्न करनेवाली), १०१. **लूतादिविषहारिणी** (मकड़ी आदिके विषका हरण करनेवाली) ॥ २५ ॥

१०२. **एकाक्षरा** (एक अक्षरसे युक्त), १०३. **एकमात्रा** (एक मात्रामें विराजनेवाली), १०४. **एका** (अद्वितीय), १०५. **एकनिष्ठा** (सर्वदा एकनिष्ठ भावमें रहनेवाली), १०६. **ऐन्द्री** (इन्द्रकी शक्तिस्वरूपा), १०७. **ऐरावतारूढा** (ऐरावतपर आरूढ़ रहनेवाली), १०८. **ऐहिकामुष्मिकप्रदा** (इहलोक तथा परलोकका फल प्रदान करनेवाली) ॥ २६ ॥

१०९. **ओंकारा** (प्रणवस्वरूपिणी), ११०. **ओषधी** (सांसारिक रोगोंसे ग्रस्त प्राणियोंके लिये ओषधिरूपा), १११. **ओता** (मणिमें सूत्रकी भाँति सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तःकरणमें विराजमान), ११२. **ओतप्रोतनिवासिनी** (ब्रह्मसे व्याप्त ब्रह्माण्डमें निवास करनेवाली), ११३. **और्वा** (वाडवाग्निस्वरूपिणी), ११४. **औषधसम्पन्ना** (भवरोगके शमनहेतु औषधियोंसे सम्पन्न), ११५. **औपासनफलप्रदा** (उपासना करनेवालोंको श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाली) ॥ २७ ॥

११६. **अण्डमध्यस्थिता देवी** (ब्रह्माण्डके भीतर विराजमान देवी), ११७. **अःकारमनुरूपिणी** (अःकार अर्थात् विसर्गरूप मन्त्रमय विग्रहवाली), ११८. **कात्यायनी** (कात्यायनऋषिद्वारा उपासित), ११९. **कालरात्रि** (दानवोंके संहारके लिये कालरात्रिके रूपमें प्रकट होनेवाली), १२०. **कामाक्षी** (कामको नेत्रोंमें धारण करनेवाली), १२१. **कामसुन्दरी** (यथेच्छ सुन्दर स्वरूप धारण करनेवाली) ॥ २८ ॥

१२२. **कमला**, १२३. **कामिनी**, १२४. **कान्ता**, १२५. **कामदा**, १२६. **कालकण्ठिनी** (कालको अपने कण्ठमें समाहित कर लेनेवाली), १२७. **करिकुम्भस्तनभरा** (हाथीके कुम्भसदृश पयोधरोंवाली), १२८. **करवीरसुवासिनी** (करवीर अर्थात् महालक्ष्मीक्षेत्रमें निवास करनेवाली) ॥ २९ ॥

१२९. **कल्याणी** , १३०. **कुण्डलवती** , १३१. **कुरुक्षेत्रनिवासिनी**, १३२. **कुरुविन्ददलाकारा** (कुरुविन्ददलके समान आकारवाली), १३३. **कुण्डली**, १३४. **कुमुदालया**, १३५. **कालजिह्वा** (राक्षसोंके संहारके लिये कालरूपिणी जिह्वासे सम्पन्न), १३६. **करालास्या** (शत्रुओंके

समक्ष विकराल मुखाकृतिवाली), १३७. **कालिका**, १३८. **कालरूपिणी**, १३९. **कमनीयगुणा** (सुन्दर गुणोंसे सम्पन्न), १४०. **कान्तिः**, १४१. **कलाधारा** (समस्त चौंसठ कलाओंको धारण करनेवाली), १४२. **कुमुद्वती** ॥ ३०-३१ ॥

१४३. **कौशिकी**, १४४. **कमलाकारा** (कमलके समान सुन्दर आकार धारण करनेवाली), १४५. **कामचार-प्रभञ्जिनी** (स्वेच्छाचारका ध्वंस करनेवाली), १४६. **कौमारी**, १४७. **करुणापाङ्गी** (करुणामय कटाक्षसे भक्तोंपर कृपा करनेवाली), १४८. **ककुबन्ता** (दिशाओंकी अवसानरूपा), १४९. **करिप्रिया** (जिन्हें हाथी प्रिय है) ॥ ३२ ॥

१५०. **केसरी**, १५१. **केशवनुता** (भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा प्रणम्य), १५२. **कदम्बकुसुमप्रिया** (कदम्बके पुष्पसे प्रेम करनेवाली), १५३. **कालिन्दी**, १५४. **कालिका**, १५५. **काञ्ची**, १५६. **कलशोद्भवसंस्तुता** (अगस्त्यमुनिसे स्तुत होनेवाली), १५७. **काममाता**, १५८. **क्रतुमती** (यज्ञमय विग्रह धारण करनेवाली), १५९. **कामरूपा**, १६०. **कृपावती**, १६१. **कुमारी**, १६२. **कुण्ड-निलया** (हवनकुण्डमें विराजनेवाली), १६३. **किराती** (भक्तोंका कार्यसाधन करनेके लिये किरात-वेष धारण करनेवाली), १६४. **कीरवाहना** (तोतापक्षीको वाहनरूपमें रखनेवाली) ॥ ३३-३४ ॥

१६५. **कैकेयी**, १६६. **कोकिलालापा**, १६७. **केतकी**, १६८. **कुसुमप्रिया**, १६९. **कमण्डलुधरा** (ब्रह्मचारिणीके रूपमें कमण्डलु धारण करनेवाली), १७०. **काली**, १७१. **कर्मनिर्मूलकारिणी** (आराधित होनेपर कर्मोंको निर्मूल कर देनेवाली) ॥ ३५ ॥

१७२. **कलहंसगतिः**, १७३. **कक्षा**, १७४. **कृतकौतुकमङ्गला** (सर्वदा मंगलमय वैवाहिक वेष धारण करनेवाली), १७५. **कस्तूरीतिलका**, १७६. **कम्रा** (चंचला), १७७. **करीन्द्रगमना** (ऐरावतपर आरूढ होनेवाली), १७८. **कुहूः** (अमावस्या नामसे प्रसिद्ध) ॥ ३६ ॥

१७९. **कर्पूरलेपना**, १८०. **कृष्णा**, १८१. **कपिला**, १८२. **कुहराश्रया** (बुद्धिरूपी गुहामें स्थित रहनेवाली), १८३. **कूटस्था** (पर्वतशिखरपर निवास करनेवाली), १८४. **कुधरा** (पृथ्वीको धारण करनेवाली), १८५. **कम्रा** (अत्यन्त सुन्दरी), १८६. **कुक्षिस्थाखिलविष्टपा** (अपनी कुक्षिमें स्थित अखिल जगत्‌की रक्षा करनेवाली) ॥ ३७ ॥

१८७. **खड्गखेटकरा** (दानवोंको मारनेके लिये हाथमें ढाल-तलवार धारण करनेवाली), १८८. **खर्वा** (अभिमानिनी), १८९. **खेचरी**, १९०. **खगवाहना**, १९१. **खट्वाङ्गधारिणी**, १९२. **ख्याता**, १९३. **खगराजो-परिस्थिता** (गरुडके ऊपर विराजमान रहनेवाली) ॥ ३८ ॥

१९४. **खलघ्नी**, १९५. **खण्डितजरा** (बुढ़ापेसे रहित विग्रहवाली), १९६. **खण्डाख्यानप्रदायिनी** (मधुर कथाओंको प्रदान करनेवाली), १९७. **खण्डेन्दुतिलका** (ललाटपर खण्डित चन्द्रमा अर्थात् द्वितीयाके चन्द्रमाको तिलकरूपमें धारण करनेवाली), १९८. **गङ्गा**, १९९. **गणेशगुहपूजिता** (गणेश तथा कार्तिकेयसे पूजित) ॥ ३९ ॥

२००. **गायत्री** (अपना गुणगान करनेवालोंकी संरक्षिका), २०१. **गोमती**, २०२. **गीता**, २०३. **गान्धारी**, २०४. **गानलोलुपा**, २०५. **गौतमी**, २०६. **गामिनी**, २०७. **गाधा** (पृथ्वीको आश्रय देनेवाली), २०८. **गन्धर्वाप्सरसेविता** (गन्धर्व तथा अप्सराओंसे सेवित) ॥ ४० ॥

२०९. **गोविन्दचरणाक्रान्ता** (श्रीविष्णुके चरणोंसे आक्रान्त अर्थात् पृथ्वीस्वरूपिणी), २१०. **गुणत्रयविभाविता** (तीन गुणोंके साथ आविर्भूत होनेवाली), २११. **गन्धर्वी**, २१२. **गह्वरी** (दुरूह महिमावाली), २१३. **गोत्रा** (पृथ्वीरूपा), २१४. **गिरीशा** (पर्वतकी अधिष्ठात्री), २१५. **गहना** (गूढ़ स्वभाववाली), २१६. **गमी** (गमनशीला) ॥ ४१ ॥

२१७. **गुहावासा**, २१८. **गुणवती**, २१९. **गुरु-पापप्रणाशिनी** (महान् पापोंका नाश करनेवाली), २२०. **गुर्वी**, २२१. **गुणवती**, २२२. **गुह्या**, २२३. **गोप्तव्या** (हृदयमें छिपाये रखनेयोग्य), २२४. **गुणदायिनी** ॥ ४२ ॥

२२५. **गिरिजा**, २२६. **गुह्यमातङ्गी** (ब्रह्म-

विद्यास्वरूपिणी), २२७. **गरुडध्वजवल्लभा** (विष्णुकी परम प्रिया), २२८. **गर्वापहारिणी** (अभिमानका नाश करनेवाली), २२९. **गोदा** (गौ अथवा पृथ्वीका दान करनेवाली), २३०. **गोकुलस्था**, २३१. **गदाधरा** ॥ ४३ ॥

२३२. **गोकर्णनिलयासक्ता** (गोकर्ण नामक तीर्थ-स्थानमें निवासहेतु तत्पर रहनेवाली), २३३. **गुह्यमण्डलवर्तिनी** (अत्यन्त गोपनीय मण्डलमें विद्यमान रहनेवाली), २३४. **घर्मदा** (ऊष्मा प्रदान करनेवाली), २३५. **घनदा** (मेघ उत्पन्न करनेवाली), २३६. **घण्टा**, २३७. **घोरदानवमर्दिनी** ॥ ४४ ॥

२३८. **घृणिमन्त्रमयी** (सूर्यको प्रसन्न करनेवाले मन्त्ररूपसे विराजमान), २३९. **घोषा** (युद्धमें भयावह नाद करनेवाली), २४०. **घनसम्पातदायिनी** (मेघोंको जलवृष्टिकी आज्ञा देनेवाली), २४१. **घण्टारवप्रिया** (घण्टाध्वनिसे प्रसन्न होनेवाली), २४२. **घ्राणा** (घ्राणेन्द्रियकी अधिष्ठात्री देवी), २४३. **घृणिसन्तुष्टकारिणी** (सूर्यको सन्तुष्ट करनेवाली) ॥ ४५ ॥

२४४. **घनारिमण्डला** (अनेकानेक शत्रुओंसे परिवृता), २४५. **घूर्णा** (सर्वत्र भ्रमणशीला), २४६. **घृताची** (सरस्वतीरूपा अथवा रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), २४७. **घनवेगिनी** (प्रचण्ड वेगवाली), २४८. **ज्ञानधातुमयी** (चिन्मय धातुओंसे बनी हुई), २४९. **चर्चा**, २५०. **चर्चिता** (चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सुपूजित), २५१. **चारुहासिनी** ॥ ४६ ॥

२५२. **चटुला**, २५३. **चण्डिका**, २५४. **चित्रा**, २५५. **चित्रमाल्यविभूषिता** (अनेक प्रकारके रंगोंकी मालाओंसे सुशोभित), २५६. **चतुर्भुजा**, २५७. **चारुदन्ता**, २५८. **चातुरी**, २५९. **चरितप्रदा** (सदाचारकी शिक्षा प्रदान करनेवाली) ॥ ४७ ॥

२६०. **चूलिका** (देवी-देवताओंमें शीर्ष स्थानवाली), २६१. **चित्रवस्त्रान्ता**, २६२. **चन्द्रमःकर्णकुण्डला** (कानोंमें चन्द्राकार कुण्डल धारण करनेवाली), २६३. **चन्द्रहासा**, २६४. **चारुदात्री**, २६५. **चकोरी**, २६६. **चन्द्रहासिनी** (चन्द्रमाको अपने मुखसौन्दर्यसे आह्लादित करनेवाली) ॥ ४८ ॥

२६७. **चन्द्रिका**, २६८. **चन्द्रधात्री**, २६९. **चौरी** (अपनी शक्तिको गुप्त रखनेवाली), २७०. **चौरा** (भक्तोंका पाप हरण करनेवाली), २७१. **चण्डिका**, २७२. **चञ्चद्वाग्वादिनी** (चंचलतापूर्वक सम्भाषण करनेवाली), २७३. **चन्द्रचूडा**, २७४. **चोरविनाशिनी** (चौरवृत्तिमें लिप्त लोगोंका विनाश करनेवाली) ॥ ४९ ॥

२७५. **चारुचन्दनलिप्ताङ्गी** (सुन्दर चन्दनसे अनुलिप्त अंगोंवाली), २७६. **चञ्चच्चामरवीजिता** (निरन्तर डुलाये जाते हुए चँवरोंसे सुसेवित), २७७. **चारुमध्या** (सुन्दर कटिप्रदेशवाली), २७८. **चारुगतिः** (मनमोहक गतिवाली), २७९. **चन्दिला**, २८०. **चन्द्ररूपिणी** ॥ ५० ॥

२८१. **चारुहोमप्रिया** (श्रेष्ठ हवनसे प्रसन्न होनेवाली), २८२. **चार्वाचरिता** (उत्तम आचरणसे सम्पन्न), २८३. **चक्रबाहुका**, २८४. **चन्द्रमण्डलमध्यस्था**, २८५. **चन्द्रमण्डलदर्पणा** (चन्द्रमण्डलरूपी दर्पणको धारण करनेवाली) ॥ ५१ ॥

२८६. **चक्रवाकस्तनी** (चक्रवाकके समान स्तनोंवाली), २८७. **चेष्टा**, २८८. **चित्रा**, २८९. **चारुविलासिनी**, २९०. **चित्स्वरूपा** (चिन्मय स्वरूपवाली), २९१. **चन्द्रवती**, २९२. **चन्द्रमा**, २९३. **चन्दनप्रिया** ॥ ५२ ॥

२९४. **चोदयित्री** (भक्तोंको प्रेरणा प्रदान करनेवाली), २९५. **चिरप्रज्ञा** (सनातन विद्यास्वरूपिणी), २९६. **चातका** (चातकके समान दृढ संकल्पवाली), २९७. **चारुहेतुकी**, २९८. **छत्रयाता** (छत्रयुक्त होकर गमन करनेवाली), २९९. **छत्रधरा**, ३००. **छाया**, ३०१. **छन्दःपरिच्छदा** (वेदोंसे ज्ञात होनेवाली) ॥ ५३ ॥

३०२. **छायादेवी**, ३०३. **छिद्रनखा**, ३०४. **छन्नेन्द्रियविसर्पिणी** (जितेन्द्रिय योगियोंके पास पधारनेवाली), ३०५. **छन्दोऽनुष्टुप्प्रतिष्ठान्ता** (अनुष्टुप् छन्दमें प्रतिष्ठित रहनेवाली), ३०६. **छिद्रोपद्रवभेदिनी** (कपटरूप उपद्रवको

शान्त करनेवाली) ॥ ५४ ॥

३०७. छेदा (पापोंका उच्छेदन करनेवाली), **३०८. छत्रेश्वरी, ३०९. छिन्ना, ३१०. छुरिका, ३११. छेदनप्रिया, ३१२. जननी, ३१३. जन्मरहिता, ३१४. जातवेदा** (अग्निस्वरूपिणी), **३१५. जगन्मयी** ॥ ५५ ॥

३१६. जाह्नवी, ३१७. जटिला, ३१८. जेत्री, ३१९. जरामरणवर्जिता, ३२०. जम्बूद्वीपवती, ३२१. ज्वाला, ३२२. जयन्ती, ३२३. जलशालिनी, ३२४. जितेन्द्रिया, ३२५. जितक्रोधा, ३२६. जितामित्रा, ३२७. जगत्प्रिया, ३२८. जातरूपमयी (परम सुन्दर रूपवाली), **३२९. जिह्वा, ३३०. जानकी, ३३१. जगती, ३३२. जरा** (सन्ध्याकालमें वृद्धरूप धारण करनेवाली) ॥ ५६-५७ ॥

३३३. जनित्री, ३३४. जह्नुतनया, ३३५. जगत्त्रयहितैषिणी (तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली), **३३६. ज्वालामुखी, ३३७. जपवती** (सदा ब्रह्मके जपमें तत्पर रहनेवाली), **३३८. ज्वरघ्नी, ३३९. जितविष्टपा** (सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त करनेवाली) ॥ ५८ ॥

३४०. जिताक्रान्तमयी (सबको आक्रान्त करनेके लिये विजयशालिनी देवी), **३४१. ज्वाला, ३४२. जाग्रती, ३४३. ज्वरदेवता, ३४४. ज्वलन्ती, ३४५. जलदा, ३४६. ज्येष्ठा, ३४७. ज्याघोषास्फोटदिङ्मुखी** (दिशाओं-विदिशाओंको अपने धनुषकी स्पष्ट तथा भीषण टंकारसे व्याप्त कर देनेवाली) ॥ ५९ ॥

३४८. जम्भिनी (अपने दाँतोंसे दानवोंको पीस डालनेवाली), **३४९. जृम्भणा, ३५०. जृम्भा, ३५१. ज्वलन्माणिक्यकुण्डला** (प्रभायुक्त मणियोंके कुण्डलोंसे सुशोभित), **३५२. झिंझिका** (झींगुरसदृश तुच्छ प्राणीको भी अपने अंशसे उत्पन्न करनेवाली), **३५३. झणनिर्घोषा** (कंकणकी झंकार ध्वनिसे सर्वदा मुखरित), **३५४. झंझामारुतवेगिनी** (झंझावातके सदृश भयावह वेगशाली) ॥ ६० ॥

३५५. झल्लरीवाद्यकुशला (झाँझ नामक वाद्य बजानेमें अत्यन्त निपुण), **३५६. ञरूपा** (बलीवर्दके समान रूपवाली), **३५७. ञभुजा** (बलीवर्दके समान पराक्रमी भुजाओंवाली), **३५८. टङ्कबाणसमायुक्ता, ३५९. टङ्किनी, ३६०. टङ्कभेदिनी** ॥ ६१ ॥

३६१. टङ्कीगणकृताघोषा (रुद्रगणके समान गम्भीर ध्वनि करनेवाली), **३६२. टङ्कनीयमहोरसा** (वर्णनीय महान् वक्षःस्थलवाली), **३६३. टङ्कारकारिणीदेवी, ३६४. ठठशब्दनिनादिनी** (ठ ठ शब्दके घोर निनादसे शत्रुओंको भयाक्रान्त करनेवाली) ॥ ६२ ॥

३६५. डामरी, ३६६. डाकिनी, ३६७. डिम्भा, ३६८. डुण्डुमारैकनिर्जिता (डुण्डुमार नामक राक्षसको परास्त करनेवाली), **३६९. डामरीतन्त्रमार्गस्था** (डामरतन्त्रके मार्गपर स्थित), **३७०. डमड्डमरुनादिनी** (डमरुसे डमड्-डमड् ध्वनि उत्पन्न करनेवाली) ॥ ६३ ॥

३७१. डिण्डीरवसहा (डिण्डी नामक वाद्यकी ध्वनिको सहन करनेवाली), **३७२. डिम्भलसत्क्रीडापरायणा** (छोटे बच्चोंके साथ प्रेमपूर्वक क्रीडा करनेमें संलग्न), **३७३. ढुण्ढिविघ्नेशजननी, ३७४. ढक्काहस्ता, ३७५. ढिलिव्रजा** (ढिलि नामक गणसमूहोंसे समन्वित) ॥ ६४ ॥

३७६. नित्यज्ञाना, ३७७. निरुपमा, ३७८. निर्गुणा, ३७९. नर्मदा, ३८०. नदी, ३८१. त्रिगुणा, ३८२. त्रिपदा, ३८३. तन्त्री, ३८४. तुलसीतरुणातरुः (वृक्षोंमें तरुणी तुलसीरूपसे विराजमान) ॥ ६५ ॥

३८५. त्रिविक्रमपदाक्रान्ता (भगवान् वामनके तीन डगोंसे आक्रान्त पृथ्वीरूपा), **३८६. तुरीयपदगामिनी** (चतुर्थ पादमें गमन करनेवाली), **३८७. तरुणादित्यसङ्काशा** (प्रचण्ड सूर्यके समान तेजवाली), **३८८. तामसी, ३८९. तुहिना** (चन्द्रमासदृश शीतल किरणोंवाली), **३९०. तुरा** (शीघ्र गमन करनेवाली) ॥ ६६ ॥

३९१. त्रिकालज्ञानसम्पन्ना, ३९२. त्रिवेणी (गंगा-यमुना-सरस्वतीरूपा), **३९३. त्रिलोचना, ३९४. त्रिशक्तिः** (इच्छाशक्ति-क्रियाशक्ति-ज्ञानशक्तिरूपा), **३९५. त्रिपुरा, ३९६. तुङ्गा, ३९७. तुरङ्गवदना** ॥ ६७ ॥

३९८. तिमिङ्गिलगिला (मत्स्यभोजी तिमिंगिलको

भी खा जानेवाली), **३९९. तीव्रा**, **४००. त्रिस्रोता**, **४०१. तामसादिनी** (अज्ञानरूपी अन्धकारका भक्षण करनेवाली), **४०२. तन्त्रमन्त्रविशेषज्ञा**, **४०३. तनुमध्या**, **४०४. त्रिविष्टपा** ॥ ६८ ॥

४०५. त्रिसन्ध्या, **४०६. त्रिस्तनी** (राजा मलयध्वजके यहाँ कन्याके रूपमें विराजमान), **४०७. तोषासंस्था** (सदा सन्तुष्ट भावमें स्थित), **४०८. तालप्रतापिनी** (ताली बजाकर शत्रुओंको आतंकित करनेवाली), **४०९. ताटङ्किनी**, **४१०. तुषाराभा** (बर्फके समान धवल कान्तिवाली), **४११. तुहिनाचलवासिनी** (हिमालयमें निवास करनेवाली) ॥ ६९ ॥

४१२. तन्तुजालसमायुक्ता, **४१३. तारहारावलिप्रिया** (चमकीले तारोंसे युक्त हार-पंक्तियोंसे प्रेम करनेवाली), **४१४. तिलहोमप्रिया**, **४१५. तीर्था**, **४१६. तमालकुसुमाकृतिः** (तमालपुष्पके समान श्याम आकृतिवाली) ॥ ७० ॥

४१७. तारका (भक्तोंको तारनेवाली), **४१८. त्रियुता**, **४१९. तन्वी**, **४२०. त्रिशङ्कुपरिवारिता** (राजा त्रिशंकुके द्वारा उपास्यरूपमें वरण की हुई), **४२१. तलोदरी** (पृथ्वीको उदरके रूपमें धारण करनेवाली), **४२२. तिलाभूषा** (तिलके पुष्पके सदृश नीलकान्तिवाली), **४२३. ताटङ्कप्रियवाहिनी** (कानोंमें सुन्दर कर्णफूल धारण करनेवाली) ॥ ७१ ॥

४२४. त्रिजटा, **४२५. तित्तिरी**, **४२६. तृष्णा**, **४२७. त्रिविधा**, **४२८. तरुणाकृतिः**, **४२९. तप्तकाञ्चनसङ्काशा** (तप्त सोनेके सदृश प्रभावाली), **४३०. तप्तकाञ्चनभूषणा** (तप्त सोनेके सदृश दीप्तिवाले आभूषणोंसे अलंकृत) ॥ ७२ ॥

४३१. त्रैयम्बका, **४३२. त्रिवर्गा**, **४३३. त्रिकालज्ञानदायिनी**, **४३४. तर्पणा**, **४३५. तृप्तिदा**, **४३६. तृप्ता**, **४३७. तामसी**, **४३८. तुम्बुरुस्तुता**, **४३९. तार्क्ष्यस्था** (गरुडपर विराजमान रहनेवाली), **४४०. त्रिगुणाकारा**, **४४१. त्रिभङ्गी**, **४४२. तनुवल्लरिः** (कोमल लताकी भाँति कमनीय अंगोंवाली), **४४३. थात्कारी** (युद्धभूमिमें 'थात्' शब्दका उच्चारण करनेवाली), **४४४. थारवा** (भयसे मुक्त करनेवाले शब्दका उच्चारण करनेवाली), **४४५. थान्ता** (मंगलमयी देवी), **४४६. दोहिनी** (यथेच्छ दोहन करनेयोग्य कामधेनुस्वरूपिणी), **४४७. दीनवत्सला** ॥ ७३-७४ ॥

४४८. दानवान्तकरी, **४४९. दुर्गा**, **४५०. दुर्गासुरनिबर्हिणी** (दुर्ग नामक राक्षसका वध करनेवाली), **४५१. देवरीतिः** (दिव्य मार्गसे सम्पन्न), **४५२. दिवारात्रिः**, **४५३. द्रौपदी**, **४५४. दुन्दुभिस्वना** (दुन्दुभिके समान तीव्र ध्वनि करनेवाली) ॥ ७५ ॥

४५५. देवयानी, **४५६. दुरावासा**, **४५७. दारिद्र्योद्भेदिनी** (दरिद्रता दूर करनेवाली), **४५८. दिवा**, **४५९. दामोदरप्रिया**, **४६०. दीप्ता**, **४६१. दिग्वासा** (दिशारूपी वस्त्रवाली), **४६२. दिग्विमोहिनी** (समस्त दिशाओंको मोहित करनेवाली) ॥ ७६ ॥

४६३. दण्डकारण्यनिलया, **४६४. दण्डिनी**, **४६५. देवपूजिता**, **४६६. देववन्द्या**, **४६७. दिविषदा** (सदा स्वर्गमें विराजमान रहनेवाली), **४६८. द्वेषिणी** (राक्षसोंसे द्वेष करनेवाली), **४६९. दानवाकृतिः** (समयानुसार दानवसदृश आकृति धारण करनेवाली) ॥ ७७ ॥

४७०. दीनानाथस्तुता, **४७१. दीक्षा**, **४७२. दैवतादिस्वरूपिणी**, **४७३. धात्री**, **४७४. धनुर्धरा**, **४७५. धेनुः**, **४७६. धारिणी**, **४७७. धर्मचारिणी**, **४७८. धरंधरा**, **४७९. धराधारा**, **४८०. धनदा**, **४८१. धान्यदोहिनी**, **४८२. धर्मशीला**, **४८३. धनाध्यक्षा**, **४८४. धनुर्वेदविशारदा** ॥ ७८-७९ ॥

४८५. धृतिः, **४८६. धन्या**, **४८७. धृतपदा**, **४८८. धर्मराजप्रिया**, **४८९. ध्रुवा**, **४९०. धूमावती**, **४९१. धूमकेशी**, **४९२. धर्मशास्त्रप्रकाशिनी**, **४९३. नन्दा**, **४९४. नन्दप्रिया**, **४९५. निद्रा**, **४९६. नृनुता** (मनुष्योंद्वारा नमस्कृत), **४९७. नन्दनात्मिका**, **४९८. नर्मदा**, **४९९. नलिनी**, **५००. नीला**, **५०१. नीलकण्ठसमाश्रया**

(नीलकण्ठ महादेवकी आश्रयरूपा) ॥ ८०-८१ ॥

५०२. नारायणप्रिया, ५०३. नित्या, ५०४. निर्मला, ५०५. निर्गुणा, ५०६. निधिः, ५०७. निराधारा, ५०८. निरुपमा, ५०९. नित्यशुद्धा, ५१०. निरञ्जना (मायासे रहित), **५११. नादबिन्दुकलातीता** (नाद-बिन्दु-कलासे परे), **५१२. नादबिन्दुकलात्मिका** (नादबिन्दुकलारूपिणी), **५१३. नृसिंहरूपा, ५१४. नगधरा, ५१५. नृपनागविभूषिता** (नागराजसे विभूषित) ॥ ८२-८३ ॥

५१६. नरकक्लेशशमनी, ५१७. नारायणपदोद्भवा (भगवान् विष्णुके चरणसे प्रकट गंगास्वरूपिणी), **५१८. निरवद्या** (दोषरहित), **५१९. निराकारा, ५२०. नारदप्रियकारिणी, ५२१. नानाज्योतिःसमाख्याता** (अनेकविध ज्योतिरूपसे विख्यात), **५२२. निधिदा, ५२३. निर्मलात्मिका** (विशुद्धस्वरूपा), **५२४. नवसूत्रधरा** (नवीन सूत्र धारण करनेवाली), **५२५. नीतिः, ५२६. निरुपद्रवकारिणी** (समस्त उपद्रवोंको समाप्त कर देनेवाली) ॥ ८४-८५ ॥

५२७. नन्दजा (नन्दकी पुत्री), **५२८. नवरत्नाढ्या** (नौ प्रकारके रत्नोंसे विभूषित), **५२९. नैमिषारण्यवासिनी** (नैमिषारण्यमें लिंगधारिणी ललितादेवीके रूपमें विराजमान), **५३०. नवनीतप्रिया, ५३१. नारी, ५३२. नीलजीमूतनिःस्वना** (नीले मेघके समान गर्जन करनेवाली), **५३३. निमेषिणी** (निमेषरूपा), **५३४. नदीरूपा, ५३५. नीलग्रीवा, ५३६. निशीश्वरी** (रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी), **५३७. नामावलिः** (नानाविध नामोंवाली), **५३८. निशुम्भघ्नी** (निशुम्भ दैत्यका संहार करनेवाली), **५३९. नागलोकनिवासिनी** ॥ ८६-८७ ॥

५४०. नवजाम्बूनदप्रख्या (नवीन सुवर्णसदृश कान्तिसे सम्पन्न), **५४१. नागलोकाधिदेवता** (पाताललोककी अधिष्ठात्री देवी), **५४२. नूपुराक्रान्तचरणा** (नूपुरोंकी झंकारसे समन्वित चरणोंवाली), **५४३. नरचित्तप्रमोदिनी, ५४४. निमग्नारक्तनयना** (धँसी हुई लाल आँखोंवाली), **५४५. निर्घातसमनिःस्वना** (वज्रपातके समान भीषण शब्द करनेवाली), **५४६. नन्दनोद्याननिलया** (नन्दनवनमें विहार करनेवाली), **५४७. निर्व्यूहोपरिचारिणी** (बिना व्यूहरचनाके आकाशमें स्वच्छन्द विचरण करनेवाली) ॥ ८८-८९ ॥

५४८. पार्वती, ५४९. परमोदारा, ५५०. परब्रह्मात्मिका, ५५१. परा, ५५२. पञ्चकोशविनिर्मुक्ता (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय—इन पाँच कोशोंसे रहित विग्रहवाली), **५५३. पञ्चपातकनाशिनी** (पाँच प्रकारके महापातकोंका नाश करनेवाली), **५५४. परचित्तविधानज्ञा** (दूसरोंके मनोभावोंको समझनेवाली), **५५५. पञ्चिका** (पंचिकादेवीके नामसे प्रसिद्ध), **५५६. पञ्चरूपिणी, ५५७. पूर्णिमा, ५५८. परमा, ५५९. प्रीतिः, ५६०. परतेजः** (परमतेजस्विनी), **५६१. प्रकाशिनी** ॥ ९०-९१ ॥

५६२. पुराणी, ५६३. पौरुषी, ५६४. पुण्या, ५६५. पुण्डरीकनिभेक्षणा (विकसित कमलके सदृश नेत्रोंवाली), **५६६. पातालतलनिर्मग्ना** (पातालके तलतक प्रविष्ट होनेकी सामर्थ्यसे सम्पन्न), **५६७. प्रीता, ५६८. प्रीतिविवर्धनी, ५६९. पावनी, ५७०. पादसहिता** (तीन पदोंसे शोभा पानेवाली), **५७१. पेशला** (परम सुन्दर विग्रहवाली), **५७२. पवनाशिनी** (वायुका भक्षण करनेवाली), **५७३. प्रजापतिः, ५७४. परिश्रान्ता** (प्रयत्नशीला), **५७५. पर्वतस्तनमण्डला** (विशाल स्तनोंसे सुशोभित) ॥ ९२-९३ ॥

५७६. पद्मप्रिया (कमलपुष्प अर्पित करनेसे प्रसन्न होनेवाली), **५७७. पद्मसंस्था** (कमलके आसनपर स्थित रहनेवाली), **५७८. पद्माक्षी, ५७९. पद्मसम्भवा, ५८०. पद्मपत्रा** (कमलपत्रकी भाँति जगत्से निर्लिप्त रहनेवाली), **५८१. पद्मपदा** (कमलके समान कोमल चरणोंवाली), **५८२. पद्मिनी** (हाथमें कमल धारण करनेवाली), **५८३. प्रियभाषिणी** ॥ ९४ ॥

५८४. पशुपाशविनिर्मुक्ता (पाशविक बन्धनोंसे मुक्त), **५८५. पुरन्ध्री** (गृहस्थीके कार्यमें संलग्न स्त्रीके रूपमें विराजमान), **५८६. पुरवासिनी, ५८७. पुष्कला, ५८८.**

पुरुषा (पुरुषार्थमयी), **५८९. पर्वा** (पर्वस्वरूपा), **५९०. पारिजातसुमप्रिया** (पारिजात पुष्पसे अत्यधिक प्रेम रखनेवाली), **५९१. पतिव्रता, ५९२. पवित्राङ्गी, ५९३. पुष्पहासपरायणा** (खिले हुए पुष्पके समान हँसनेवाली), **५९४. प्रज्ञावतीसुता, ५९५. पौत्री, ५९६. पुत्रपूज्या, ५९७. पयस्विनी** (प्राणियोंके संवर्धनहेतु अमृततुल्य दुग्ध प्रदान करनेवाली) ॥ ९५-९६ ॥

५९८. पट्टिपाशधरा, ५९९. पंक्तिः, ६००. पितृलोकप्रदायिनी, ६०१. पुराणी, ६०२. पुण्यशीला, ६०३. प्रणतार्तिविनाशिनी (शरणागतजनोंका क्लेश दूर करनेवाली), **६०४. प्रद्युम्नजननी, ६०५. पुष्टा** (पुष्टिरूपा), **६०६. पितामहपरिग्रहा** (आदिशक्तिद्वारा पितामह ब्रह्माके लिये अर्पित की गयी देवी), **६०७. पुण्डरीकपुरावासा** (पुण्डरीकपुर अर्थात् चिदम्बरक्षेत्रमें निवास करनेवाली), **६०८. पुण्डरीकसमानना** (कमलसदृश सुन्दर मुखवाली) ॥ ९७-९८ ॥

६०९. पृथुजङ्घा (विशाल जाँघोंवाली), **६१०. पृथुभुजा** (दीर्घ भुजाओंवाली), **६११. पृथुपादा** (बृहत् चरणोंवाली), **६१२. पृथूदरी** (विशाल उदरवाली), **६१३. प्रवालशोभा** (मूँगेके समान कान्तिसे सम्पन्न), **६१४. पिङ्गाक्षी, ६१५. पीतवासाः, ६१६. प्रचापला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), **६१७. प्रसवा** (सम्पूर्ण जगत्को उत्पन्न करनेवाली), **६१८. पुष्टिदा, ६१९. पुण्या, ६२०. प्रतिष्ठा, ६२१. प्रणवागतिः** (ओंकारकी मूलरूपा), **६२२. पञ्चवर्णा, ६२३. पञ्चवाणी, ६२४. पञ्चिका, ६२५. पञ्जरस्थिता** (प्राणियोंके शरीरमें स्थित रहनेवाली) ॥ ९९-१०० ॥

६२६. परमाया (परम मायारूपा), **६२७. परज्योतिः, ६२८. परप्रीतिः, ६२९. परागतिः, ६३०. पराकाष्ठा** (ब्रह्माण्डकी अन्तिम सीमा), **६३१. परेशानी** (परमेश्वरी), **६३२. पावनी, ६३३. पावकद्युतिः, ६३४. पुण्यभद्रा** (पवित्र करनेमें अतीव दक्ष), **६३५. परिच्छेद्या** (सबसे विलक्षण स्वभाववाली), **६३६. पुष्पहासा, ६३७. पृथूदरी, ६३८. पीताङ्गी, ६३९. पीतवसना, ६४०. पीतशय्या** (पीले रंगकी शय्यापर शयन करनेवाली), **६४१. पिशाचिनी** (पिशाचोंके गण साथमें रखनेवाली) ॥ १०१-१०२ ॥

६४२. पीतक्रिया (मधुपानक्रियारूपा), **६४३. पिशाचघ्नी, ६४४. पाटलाक्षी** (विकसित गुलाब-पुष्पसदृश नयनोंवाली), **६४५. पटुक्रिया** (चतुरताके साथ कार्य सम्पन्न करनेवाली), **६४६. पञ्चभक्षप्रियाचारा** (भोज्य-चर्व्य-चोष्य-लेह्य और पेय—इन पाँचों प्रकारके पदार्थोंका प्रेमपूर्वक आहार करनेवाली), **६४७. पूतनाप्राणघातिनी** (पूतनाके प्राणोंका नाश करनेवाली), **६४८. पुन्नागवनमध्यस्था** (जायफलके वनके मध्य भागमें विराजमान रहनेवाली), **६४९. पुण्यतीर्थनिषेविता** (पुण्यमय तीर्थोंमें निवास करनेवाली), **६५०. पञ्चाङ्गी, ६५१. पराशक्तिः, ६५२. परमाह्लादकारिणी** (परम आनन्द प्रदान करनेवाली) ॥ १०३-१०४ ॥

६५३. पुष्पकाण्डस्थिता (फूलोंके डंठलोंपर स्थित रहनेवाली), **६५४. पूषा, ६५५. पोषिताखिलविष्टपा** (सम्पूर्ण संसारका भरण-पोषण करनेवाली), **६५६. पानप्रिया, ६५७. पञ्चशिखा, ६५८. पन्नगोपरिशायनी** (सर्पोंपर शयन करनेवाली), **६५९. पञ्चमात्रात्मिका, ६६०. पृथ्वी, ६६१. पथिका, ६६२. पृथुदोहिनी** (पर्याप्त दोहन करनेवाली), **६६३. पुराणन्यायमीमांसा** (पुराण, न्याय तथा मीमांसास्वरूपिणी), **६६४. पाटली, ६६५. पुष्पगन्धिनी, ६६६. पुण्यप्रजा, ६६७. पारदात्री, ६६८. परमार्गैकगोचरा** (एकमात्र श्रेष्ठ मार्गद्वारा अनुभवगम्य), **६६९. प्रवालशोभा** (मूँगेसे सुशोभित विग्रहवाली), **६७०. पूर्णाशा, ६७१. प्रणवा** (ॐकारस्वरूपिणी), **६७२. पल्लवोदरी** (नवीन पल्लवके समान सुकोमल उदरवाली) ॥ १०५—१०७ ॥

६७३. फलिनी (फलरूपिणी), **६७४. फलदा, ६७५. फल्गुः** (फल्गु नामक नदीके रूपमें विद्यमान), **६७६. फूत्कारी** (क्रोधावस्थामें फूत्कार करनेवाली), **६७७. फलकाकृतिः** (बाणके अग्रभागके समान

आकारवाली), ६७८. **फणीन्द्रभोगशयना** (नागराज शेषनागके फनपर शयन करनेवाली), ६७९. **फणिमण्डलमण्डिता** (नागमण्डलोंसे सुशोभित)॥ १०८॥

६८०. **बालबाला** (बालिकाओंमें बालारूपिणी), ६८१. **बहुमता**, ६८२. **बालातपनिभांशुका** (उदयकालके सूर्यकी भाँति अरुण वस्त्र धारण करनेवाली), ६८३. **बलभद्रप्रिया**, ६८४. **वन्द्या**, ६८५. **वडवा**, ६८६. **बुद्धिसंस्तुता**, ६८७. **बन्दीदेवी**, ६८८. **बिलवती** (गुहामें रहनेवाली), ६८९. **बडिशघ्नी** (कपटका विनाश करनेवाली), ६९०. **बलिप्रिया**, ६९१. **बान्धवी**, ६९२. **बोधिता**, ६९३. **बुद्धिः**, ६९४. **बन्धूककुसुमप्रिया** (बन्धूकपुष्पसे प्रसन्न होनेवाली)॥ १०९-११०॥

६९५. **बालभानुप्रभाकारा** (प्रातःकालीन सूर्यकी प्रभासे युक्त विग्रहवाली), ६९६. **ब्राह्मी**, ६९७. **ब्राह्मण-देवता**, ६९८. **बृहस्पतिस्तुता**, ६९९. **वृन्दा**, ७००. **वृन्दावनविहारिणी**, ७०१. **बालाकिनी** (बगुलोंकी पंक्तिसदृश रूपवाली), ७०२. **बिलाहारा** (कर्मोंके दोषका निवारण करनेवाली), ७०३. **बिलवासा** (बिलरूपिणी गुहामें निवास करनेवाली), ७०४. **बहूदका**, ७०५. **बहुनेत्रा**, ७०६. **बहुपदा**, ७०७. **बहुकर्णावतंसिका** (अनेक प्रकारके कर्णभूषणोंसे अलंकृत)॥ १११-११२॥

७०८. **बहुबाहुयुता**, ७०९. **बीजरूपिणी**, ७१०. **बहुरूपिणी**, ७११. **बिन्दुनादकलातीता** (बिन्दु, नाद और कलासे सर्वथा परे), ७१२. **बिन्दुनादस्वरूपिणी** (बिन्दु और नादके स्वरूपवाली), ७१३. **बद्धगोधाङ्गुलित्राणा** (गोधाके चर्मका अंगुलित्राण धारण करनेवाली), ७१४. **बदर्याश्रमवासिनी** (बदरिकाश्रममें निवास करनेवाली), ७१५. **बृन्दारका**, ७१६. **बृहत्स्कन्धा** (विशाल कन्धोंवाली), ७१७. **बृहती**, ७१८. **बाणपातिनी** (बाणोंकी वर्षा करनेवाली)॥ ११३-११४॥

७१९. **वृन्दाध्यक्षा** (वृन्दा आदि कृष्णसखियोंमें प्रमुखतम), ७२०. **बहुनुता** (सभीके द्वारा नमस्कृत), ७२१. **वनिता**, ७२२. **बहुविक्रमा**, ७२३. **बद्धपद्मासनासीना**, ७२४. **बिल्वपत्रतलस्थिता**, ७२५. **बोधिद्रुम-निजावासा** (पीपलके वृक्षके नीचे अपना निवासस्थान बनानेवाली), ७२६. **बडिस्था**, ७२७. **बिन्दुदर्पणा** (अव्यक्तमायारूप दर्पणवाली), ७२८. **बाला**, ७२९. **बाणासनवती** (हाथमें धनुष धारण करनेवाली), ७३०. **वडवानलवेगिनी** (वडवाग्निके समान वेग धारण करनेवाली)॥ ११५-११६॥

७३१. **ब्रह्माण्डबहिरन्तःस्था** (ब्रह्माण्डके भीतर तथा बाहर दोनों स्थानोंमें रहनेवाली), ७३२. **ब्रह्मकङ्कणसूत्रिणी** (ब्रह्माकी कंकणसूत्रस्वरूपिणी), ७३३. **भवानी**, ७३४. **भीषणवती** (दानवोंके वधके लिये भयावह रूप धारण करनेवाली), ७३५. **भाविनी** (जगत्‌की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करनेवाली), ७३६. **भयहारिणी**, ७३७. **भद्रकाली**, ७३८. **भुजङ्गाक्षी**, ७३९. **भारती**, ७४०. **भारताशया** (अपने ध्यानमें रत पुरुषोंके अन्तःकरणमें विराजमान रहनेवाली), ७४१. **भैरवी**, ७४२. **भीषणाकारा**, ७४३. **भूतिदा** (ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली), ७४४. **भूतिमालिनी** (विपुल ऐश्वर्यसे सम्पन्न)॥ ११७-११८॥

७४५. **भामिनी**, ७४६. **भोगनिरता**, ७४७. **भद्रदा**, ७४८. **भूरिविक्रमा** (अत्यधिक पराक्रमसे सम्पन्न), ७४९. **भूतवासा** (सभी प्राणियोंमें विद्यमान रहनेवाली), ७५०. **भृगुलता**, ७५१. **भार्गवी** (भृगु-मुनिकी शक्तिके रूपमें विराजमान), ७५२. **भूसुरार्चिता** (ब्राह्मणोंके द्वारा अर्चित), ७५३. **भागीरथी**, ७५४. **भोगवती**, ७५५. **भवनस्था**, ७५६. **भिषग्वरा** (भवरोग दूर करनेके लिये श्रेष्ठ वैद्यरूपा), ७५७. **भामिनी**, ७५८. **भोगिनी**, ७५९. **भाषा**, ७६०. **भवानी**, ७६१. **भूरिदक्षिणा**॥ ११९-१२०॥

७६२. **भर्गात्मिका** (परम तेजसे सम्पन्न), ७६३. **भीमवती**, ७६४. **भवबन्धविमोचिनी**, ७६५. **भजनीया**, ७६६. **भूतधात्रीरञ्जिता** (प्राणियोंका पालन तथा अनुरंजन करनेवाली), ७६७. **भुवनेश्वरी**, ७६८. **भुजङ्गवलया**

(साँपोंको वलयाकृतिके रूपमें हाथोंमें धारण करनेवाली), **७६९. भीमा, ७७०. भेरुण्डा** (भेरुण्डा नामसे प्रसिद्ध देवी), **७७१. भागधेयिनी** (परम सौभाग्यवती), **७७२. माता, ७७३. माया, ७७४. मधुमती** (मधुपान करनेवाली), **७७५. मधुजिह्वा, ७७६. मधुप्रिया** (मधुसे अतिशय प्रीति रखनेवाली) ॥ १२१-१२२ ॥

७७७. महादेवी, ७७८. महाभागा, ७७९. मालिनी, ७८०. मीनलोचना (मछलीके समान नेत्रोंवाली), **७८१. मायातीता, ७८२. मधुमती, ७८३. मधुमांसा, ७८४. मधुद्रवा** (मधुका अर्पण करनेसे भक्तोंपर द्रवित होनेवाली), **७८५. मानवी** (मानवरूप धारण करनेवाली), **७८६. मधुसम्भूता** (चैत्रमासमें प्रकट होनेवाली), **७८७. मिथिला-पुरवासिनी** (मिथिलापुरीमें निवास करनेवाली सीता-स्वरूपिणी), **७८८. मधुकैटभसंहर्त्री** (मधु तथा कैटभ दानवोंका संहार करनेवाली), **७८९. मेदिनी** (पृथ्वी-स्वरूपिणी), **७९०. मेघमालिनी** (मेघमालाओंसे घिरी हुई) ॥ १२३-१२४ ॥

७९१. मन्दोदरी, ७९२. महामाया, ७९३. मैथिली, ७९४. मसृणप्रिया (मधुर पदार्थोंसे प्रेम करनेवाली), **७९५. महालक्ष्मीः, ७९६. महाकाली, ७९७. महाकन्या, ७९८. महेश्वरी, ७९९. माहेन्द्री** (शचीके रूपमें विराजमान), **८००. मेरुतनया, ८०१. मन्दारकुसुमार्चिता** (मन्दारपुष्पसे पूजित होनेवाली), **८०२. मञ्जुमञ्जीरचरणा** (चरणोंमें सुन्दर पायल धारण करनेवाली), **८०३. मोक्षदा, ८०४. मञ्जुभाषिणी** ॥ १२५-१२६ ॥

८०५. मधुरद्राविणी (भक्तिसे द्रवित होकर मधुर वचन बोलनेवाली), **८०६. मुद्रा, ८०७. मलया** (मलया-चलपर निवास करनेवाली), **८०८. मलयान्विता** (मलयगिरि चन्दनसे युक्त), **८०९. मेधा, ८१०. मरकतश्यामा** (मरकतमणिके सदृश श्याम वर्णवाली), **८११. मागधी, ८१२. मेनकात्मजा, ८१३. महामारी, ८१४. महावीरा, ८१५. महाश्यामा, ८१६. मनुस्तुता** (मनुके द्वारा स्तुत), **८१७. मातृका, ८१८. मिहिराभासा** (सूर्यके समान प्रभावाली), **८१९. मुकुन्दपदविक्रमा** (भगवान् विष्णुके पदका अनुसरण करनेवाली) ॥ १२७-१२८ ॥

८२०. मूलाधारस्थिता (मूलाधारचक्रमें कुण्डलिनीके रूपमें स्थित रहनेवाली), **८२१. मुग्धा** (सर्वदा प्रसन्नचित्त रहनेवाली), **८२२. मणिपूरकवासिनी** (मणिपूर नामक चक्रमें निवास करनेवाली), **८२३. मृगाक्षी** (मृगके समान नेत्रोंवाली), **८२४. महिषारूढा** (महिषपर आरूढ़ होनेवाली), **८२५. महिषासुरमर्दिनी** (महिष नामक दानवका वध करनेवाली) ॥ १२९ ॥

८२६. योगासना, ८२७. योगगम्या, ८२८. योगा, ८२९. यौवनकाश्रया (सदा यौवनावस्थामें विराजमान), **८३०. यौवनी, ८३१. युद्धमध्यस्था, ८३२. यमुना, ८३३. युगधारिणी, ८३४. यक्षिणी, ८३५. योगयुक्ता, ८३६. यक्षराजप्रसूतिनी** (यक्षराजको उत्पन्न करनेवाली), **८३७. यात्रा, ८३८. यानविधानज्ञा** (विमानोंकी व्यवस्थाका विशेष ज्ञान रखनेवाली), **८३९. यदुवंशसमुद्भवा** (यदुवंशमें प्रादुर्भूत देवी) ॥ १३०-१३१ ॥

८४०. यकारादिहकारान्ता (यकारसे लेकर हकारतक सभी वर्णोंके रूपवाली), **८४१. याजुषी** (यजुर्वेदस्वरूपिणी), **८४२. यज्ञरूपिणी, ८४३. यामिनी, ८४४. योगनिरता, ८४५. यातुधानभयङ्करी** (राक्षसोंको भय उत्पन्न करनेवाली) ॥ १३२ ॥

८४६. रुक्मिणी, ८४७. रमणी, ८४८. रामा, ८४९. रेवती, ८५०. रेणुका, ८५१. रतिः, ८५२. रौद्री, ८५३. रौद्रप्रियाकारा (रौद्र आकृतिसे प्रीति करनेवाली), **८५४. राममाता** (कौसल्यारूपमें विराजमान), **८५५. रतिप्रिया, ८५६. रोहिणी, ८५७. राज्यदा, ८५८. रेवा** (नर्मदासंज्ञक नदी), **८५९. रमा, ८६०. राजीवलोचना, ८६१. राकेशी, ८६२. रूपसम्पन्ना, ८६३. रत्न-सिंहासनस्थिता** (रत्नसे निर्मित सिंहासनपर विराजमान रहनेवाली) ॥ १३३-१३४ ॥

८६४. रक्तमाल्याम्बरधरा, ८६५. रक्तगन्धानुलेपना, ८६६. राजहंससमारूढा, ८६७. रम्भा, ८६८. रक्तबलिप्रिया, ८६९. रमणीययुगाधारा (रमणीय युगकी आश्रयस्वरूपिणी), **८७०. राजिताखिलभूतला** (सम्पूर्ण पृथ्वीतलको सुशोभित करनेवाली), **८७१. रुरुचर्मपरीधाना** (मृगचर्मको वस्त्रके रूपमें धारण करनेवाली), **८७२. रथिनी, ८७३. रत्नमालिका** ॥ १३५-१३६ ॥

८७४. रोगेशी (रोगोंपर शासन करनेवाली), **८७५. रोगशमनी, ८७६. राविणी** (भयावह गर्जन करनेवाली), **८७७. रोमहर्षिणी, ८७८. रामचन्द्रपदाक्रान्ता, ८७९. रावणच्छेदकारिणी** (रावणका संहार करनेवाली), **८८०. रत्नवस्त्रपरिच्छन्ना** (रत्न तथा वस्त्रोंसे सम्यक् आच्छादित), **८८१. रथस्था, ८८२. रुक्मभूषणा** (स्वर्णमय आभूषणोंसे सुशोभित), **८८३. लज्जाधिदेवता, ८८४. लोला** (अत्यन्त चंचल स्वभाववाली), **८८५. ललिता, ८८६. लिङ्गधारिणी** ॥ १३७-१३८ ॥

८८७. लक्ष्मीः, ८८८. लोला, ८८९. लुप्तविषा (विषसे निष्प्रभावित रहनेवाली), **८९०. लोकिनी, ८९१. लोकविश्रुता, ८९२. लज्जा, ८९३. लम्बोदरीदेवी, ८९४. ललना** (स्त्रीस्वरूपा), **८९५. लोकधारिणी** ॥ १३९ ॥

८९६. वरदा, ८९७. वन्दिता, ८९८. विद्या, ८९९. वैष्णवी, ९००. विमलाकृतिः, ९०१. वाराही (वराहरूप धारण करनेवाली), **९०२. विरजा, ९०३. वर्षा** (वृष्टिरूपा), **९०४. वरलक्ष्मीः, ९०५. विलासिनी, ९०६. विनता, ९०७. व्योममध्यस्था, ९०८. वारिजासनसंस्थिता** (कमलके आसनपर विराजमान रहनेवाली), **९०९. वारुणी** (वरुणकी शक्तिस्वरूपिणी), **९१०. वेणुसम्भूता** (बाँससे प्रकट होनेवाली), **९११. वीतिहोत्रा** (अग्निस्वरूपिणी), **९१२. विरूपिणी** (विशिष्टरूपसे सम्पन्न) ॥ १४०-१४१ ॥

९१३. वायुमण्डलमध्यस्था, ९१४. विष्णुरूपा, ९१५. विधिप्रिया, ९१६. विष्णुपत्नी, ९१७. विष्णुमती, ९१८. विशालाक्षी (विशाल नेत्रोंवाली), **९१९. वसुन्धरा, ९२०. वामदेवप्रिया** (रुद्राणीरूपसे विद्यमान), **९२१. वेला** (समयकी अधिष्ठात्री देवी), **९२२. वज्रिणी, ९२३. वसुदोहिनी** (सम्पदाका दोहन करनेवाली), **९२४. वेदाक्षरपरीताङ्गी** (वेदाक्षरोंसे युक्त अंगोंवाली), **९२५. वाजपेयफलप्रदा** (वाजपेययज्ञका फल प्रदान करनेवाली), **९२६. वासवी, ९२७. वामजननी** (वामदेवकी जननी), **९२८. वैकुण्ठनिलया, ९२९. वरा, ९३०. व्यासप्रिया, ९३१. वर्मधरा** (कवच धारण करनेवाली), **९३२. वाल्मीकिपरिसेविता** (वाल्मीकिके द्वारा भलीभाँति सेवित) ॥ १४२—१४४ ॥

९३३. शाकम्भरी (शाकम्भरीदेवी नामसे प्रसिद्ध), **९३४. शिवा, ९३५. शान्ता, ९३६. शारदा, ९३७. शरणागतिः, ९३८. शातोदरी** (तेजसे युक्त उदरवाली), **९३९. शुभाचारा** (पवित्र आचरणवाली), **९४०. शुम्भासुरविमर्दिनी** (शुम्भ नामक दानवका वध करनेवाली), **९४१. शोभावती, ९४२. शिवाकारा** (कल्याणमयी आकृति धारण करनेवाली), **९४३. शङ्करार्धशरीरिणी** (शिवकी अर्धांगिनी), **९४४. शोणा** (रक्त वर्णवाली), **९४५. शुभाशया** (मंगलकारी अभिप्रायसे युक्त), **९४६. शुभ्रा, ९४७. शिरःसन्धानकारिणी** (दैत्योंके मस्तकपर संधान करनेवाली) ॥ १४५-१४६ ॥

९४८. शरावती (बाणोंसे रक्षा करनेवाली), **९४९. शरानन्दा** (आनन्दपूर्वक बाणका संचालन करनेवाली), **९५०. शरज्ज्योत्स्ना** (शरत्कालीन चन्द्रमाके समान धवल किरणोंवाली), **९५१. शुभानना, ९५२. शरभा** (हरिणीस्वरूपा), **९५३. शूलिनी, ९५४. शुद्धा, ९५५. शबरी, ९५६. शुकवाहना** (शुकपर सवार होनेवाली), **९५७. श्रीमती, ९५८. श्रीधरानन्दा** (विष्णुको आनन्द प्रदान करनेवाली), **९५९. श्रवणानन्ददायिनी** (देवी-चरित्र सुननेसे भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाली), **९६०. शर्वाणी** (शंकरकी शक्तिरूपा

भगवती पार्वती), **९६१. शर्वरीवन्द्या** (रात्रिमें पूजित होनेवाली), **९६२. षड्भाषा** (छः भाषाओंके रूपवाली), **९६३. षड्ऋतुप्रिया** (सभी छः ऋतुओंसे प्रीति रखनेवाली) ॥ १४७-१४८ ॥

९६४. षडाधारस्थितादेवी (छः प्रकारके आधारोंमें विराजमान होनेवाली भगवती), **९६५. षण्मुखप्रियकारिणी** (कार्तिकेयका प्रिय करनेवाली), **९६६. षडङ्गरूप-सुमतिसुरासुरनमस्कृता** (षडंग रूपवाले सुमति नामक देवताओं तथा असुरोंद्वारा नमस्कृत), **९६७. सरस्वती, ९६८. सदाधारा** (सत्यपर प्रतिष्ठित रहनेवाली), **९६९. सर्वमङ्गलकारिणी** (सबका कल्याण करनेवाली), **९७०. सामगानप्रिया, ९७१. सूक्ष्मा, ९७२. सावित्री, ९७३. सामसम्भवा** (सामवेदसे प्रादुर्भूत होनेवाली) ॥ १४९-१५० ॥

९७४. सर्वावासा (सबमें व्याप्त रहनेवाली), **९७५. सदानन्दा, ९७६. सुस्तनी, ९७७. सागराम्बरा** (वस्त्रके रूपमें सागरको धारण करनेवाली), **९७८. सर्वैश्वर्यप्रिया** (समस्त ऐश्वर्योंसे प्रेम करनेवाली), **९७९. सिद्धिः, ९८०. साधुबन्धुपराक्रमा** (सज्जनों तथा प्रिय भक्तजनोंके लिये पराक्रम प्रदर्शित करनेवाली), **९८१. सप्तर्षि-मण्डलगता, ९८२. सोममण्डलवासिनी** (चन्द्रमण्डलमें विराजमान रहनेवाली), **९८३. सर्वज्ञा, ९८४. सान्द्रकरुणा** (अतीव करुणामयी), **९८५. समानाधिकवर्जिता** (सदा एकर्समान रहनेवाली) ॥ १५१-१५२ ॥

९८६. सर्वोत्तुङ्गा (सर्वोच्च स्थान रखनेवाली), **९८७. सङ्गहीना** (आसक्तिभावनासे रहित), **९८८. सद्गुणा, ९८९. सकलेष्टदा** (सभी अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली), **९९०. सरघा** (मधुमक्षिकास्वरूपिणी), **९९१. सूर्यतनया** (सूर्यपुत्री), **९९२. सुकेशी** (सुन्दर केशोंसे सम्पन्न), **९९३. सोमसंहतिः** (अनेक चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न) ॥ १५३ ॥

९९४. हिरण्यवर्णा (स्वर्णके समान वर्णवाली), **९९५. हरिणी, ९९६. ह्रींकारी** (ह्रीं-बीजस्वरूपिणी), **९९७. हंसवाहिनी** (हंसपर सवार होनेवाली), **९९८. क्षौमवस्त्रपरीताङ्गी** (रेशमी वस्त्रोंसे ढँके हुए अंगोंवाली), **९९९. क्षीराब्धितनया** (क्षीरसागरकी पुत्रीस्वरूपा), **१०००. क्षमा, १००१. गायत्री, १००२. सावित्री, १००३. पार्वती, १००४. सरस्वती, १००५. वेदगर्भा, १००६. वरारोहा, १००७. श्रीगायत्री, १००८. पराम्बिका** ॥ १५४-१५५ ॥

हे नारद! भगवती गायत्रीका यह सहस्रनाम है। यह अत्यन्त पुण्यदायक, सभी पापोंका नाश करनेवाला तथा विपुल सम्पदाओंको प्रदान करनेवाला है ॥ १५६ ॥

इस प्रकार कहे गये ये नाम गायत्रीको सन्तुष्टि प्रदान करनेवाले हैं। ब्राह्मणोंके साथ विशेष करके अष्टमी तिथिको इस सहस्रनामका पाठ करना चाहिये। भलीभाँति जप, होम, पूजा और ध्यान करके इसका पाठ करना चाहिये। जिस किसीको भी इस गायत्रीसहस्रनामका उपदेश नहीं करना चाहिये; अपितु योग्य भक्त, उत्तम शिष्य तथा ब्राह्मणको ही इसे बताना चाहिये। पथभ्रष्ट साधकों अथवा ऐसे अपने बन्धुओंके भी समक्ष इसे प्रदर्शित नहीं करना चाहिये ॥ १५७—१५९ ॥

जिस व्यक्तिके घरमें यह गायत्रीसम्बन्धी शास्त्र लिखा होता है, उसे किसीका भी भय नहीं रहता और अत्यन्त चपल लक्ष्मी भी उस घरमें स्थिर होकर विराजमान रहती हैं ॥ १६० ॥

यह परम रहस्य गुह्यसे भी अत्यन्त गुह्य है। यह मनुष्योंको पुण्य प्रदान करानेवाला, दरिद्रोंको सम्पत्ति सुलभ करानेवाला, मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालोंको मोक्षप्राप्ति करानेवाला तथा सकाम पुरुषोंको समस्त अभीष्ट फल प्रदान करनेवाला है। इस सहस्रनामके प्रभावसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है तथा बन्धनमें पड़ा हुआ मनुष्य बन्धनसे छूट जाता है। ब्रह्महत्या, सुरापान स्वर्णकी चोरी तथा गुरुपत्नीगमनसदृश महान् पाप करनेवाले भी इसके एक बारके पाठसे पापमुक्त हो जाते हैं ॥ १६१—१६३ ॥

इसका पाठ करनेसे मनुष्य निन्दनीय दान लेने,

अभक्ष्यभक्षण करने, पाखण्डपूर्ण व्यवहार करने और मिथ्याभाषण करने आदि प्रमुख पापोंसे मुक्त हो जाता है। हे ब्रह्मापुत्र नारद! मेरे द्वारा कहा गया यह परम पवित्र रहस्य मनुष्योंको ब्रह्मसायुज्य प्रदान करनेवाला है। यह बात सत्य है, सत्य है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १६४-१६५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'गायत्रीसहस्रनामस्तोत्रवर्णन' नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

दीक्षाविधि

नारदजी बोले—[हे भगवन्!] मैंने यह श्रीगायत्री-देवीका सहस्रनामसंज्ञक श्रेष्ठ फल प्रदान करनेवाला, महान् उन्नतिकी प्राप्ति करानेवाला तथा महान् भाग्योदय करनेवाला स्तोत्र सुन लिया। अब मैं दीक्षाका उत्तम लक्षण सुनना चाहता हूँ; जिसके बिना ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा स्त्रियोंको देवीमन्त्र जपनेका अधिकार प्राप्त नहीं होता। अतः हे प्रभो! सामान्य विधिसे [दीक्षासम्बन्धी] सम्पूर्ण प्रसंगका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १—३॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] सुनिये, मैं आपको पुण्यात्मा शिष्योंके दीक्षा लेनेका विधान बता रहा हूँ, जिससे उन्हें देवता, अग्नि तथा गुरुकी पूजा आदिका अधिकार प्राप्त हो जाता है॥ ४॥

जो दिव्य ज्ञान दे और जो पापोंका क्षय करे, उसीको वेदतन्त्रोंके पारगामी विद्वानोंने 'दीक्षा' इस नामकी संज्ञा दी है॥ ५॥

दीक्षा अवश्य लेनी चाहिये; क्योंकि यह अनेक फल प्रदान करनेवाली बतायी गयी है। इस दीक्षाग्रहणकार्यमें गुरु तथा शिष्य दोनों ही अत्यन्त शुद्ध भाववाले होने चाहिये॥ ६॥

गुरुको चाहिये कि प्रातःकालीन सम्पूर्ण कृत्य विधिवत् सम्पन्न करके पुनः विधानके अनुसार स्नान तथा सन्ध्या आदि करनेके अनन्तर हाथमें कमण्डलु लेकर मौनभावसे नदीतटसे घरपर आये और यज्ञमण्डपमें पहुँचकर वहाँ एक उत्तम आसनपर बैठ जाय॥ ७-८॥

तदनन्तर आचमन तथा प्राणायाम करके **'ॐ फट्'** इस अस्त्रमन्त्रको सात बार जपते हुए गन्ध और पुष्पसे मिश्रित जलको अभिमन्त्रित करे। पुनः बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करते हुए उसी जलसे सम्पूर्ण द्वारका प्रोक्षण करे और उसके बाद पूजन करे॥ ९-१०॥

दरवाजेके ऊपरी भागमें भगवान् गणेश, लक्ष्मी तथा सरस्वतीका पूजन नाममन्त्रोंका उच्चारण करते हुए गन्ध तथा पुष्प आदि अर्पित करके करना चाहिये। तत्पश्चात् द्वारकी दक्षिणशाखामें भगवती गंगा और विघ्नेश्वर गणेशकी एवं द्वारकी वामशाखामें क्षेत्रपाल तथा सूर्यपुत्री यमुनाकी पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार देहलीपर अस्त्रमन्त्रसे अस्त्रदेवताकी पूजा करे। सब ओर ऐसी भावना करे कि सम्पूर्ण दृश्य जगत् देवीमय ही है॥ ११—१३॥

पुनः अस्त्रमन्त्रके जपद्वारा दैवीविघ्नोंका उच्छेद करे और पदके आघातोंसे अन्तरिक्ष तथा भूतलके विघ्नोंका अपसारण करे॥ १४॥

इसके बाद द्वारदेशकी बायीं शाखाका स्पर्श करते हुए पहले दाहिना पैर रखकर मण्डपमें प्रवेश करे। भीतर प्रवेश करके जलका कलश रखकर सामान्य अर्घ्य बना ले और उसी अर्घ्यजलसे तथा गन्ध-पुष्प-अक्षत आदिसे नैर्ऋत्य दिशामें वास्तुके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्माकी पूजा करे॥ १५-१६॥

तत्पश्चात् पंचगव्य बनाना चाहिये और पुनः गुरुका उस पंचगव्य तथा अर्घ्य-जलके द्वारा तोरणसे लेकर स्तम्भतक उस मण्डपका प्रोक्षण करना चाहिये। उस समय मनमें यह भावना करे कि यह सब कुछ देवीमय है।

भक्तिपूर्वक मूलमन्त्रका जप करते हुए अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करना चाहिये॥ १७-१८॥

अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके मण्डपभूमिका ताडन करे और इसके बाद **'हुम्'**—इस मन्त्रका उच्चारण करके उसपर जलके छींटे दे। तदनन्तर धूप आदि सुगन्धित पदार्थोंसे धूपित करे और विघ्नकी शान्तिहेतु जल, चन्दन, सरसों, अक्षत, दूर्वा और भस्म वहाँ विकिरित कर दे। पुनः कुशकी निर्मित मार्जनीसे उनका मार्जन करे। हे मुने! उन मार्जित द्रव्योंको एकत्र करके ईशान दिशामें किसी उचित स्थानपर रख दे। तत्पश्चात् पुण्याहवाचन करके दीनों और अनाथोंको सन्तुष्ट करे॥ १९—२१॥

इसके बाद पूर्व दिशाकी ओर मुख करके कोमल आसनपर बैठना चाहिये और अपने गुरुको नमस्कार करके देयमन्त्रके देवताका विधिवत् ध्यान करना चाहिये॥ २२॥

हे मुने! पूर्वोक्त विधिसे ही भूतशुद्धि आदि क्रिया करके देयमन्त्रके ऋषि आदिका न्यास करना चाहिये॥ २३॥

मस्तकमें देयमन्त्रके ऋषिका, मुखमें छन्दका, हृदयकमलमें देवताका, गुह्यमें बीजका और दोनों पैरोंमें शक्तिका न्यास करके तीन बार ताली बजाये, फिर साधक पुरुषको चाहिये कि तीन बार चुटकी बजाकर दिग्बन्ध करे॥ २४-२५॥

तत्पश्चात् प्राणायाम करके मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए अपनी देहमें मातृकाका न्यास करना चाहिये। उसकी विधि इस प्रकार बतायी जा रही है। हे मुने! मन्त्रवित्को चाहिये कि **'ॐ अं नमः'** का उच्चारण करके सिरमें मातृकान्यास करे, इसी प्रकार शरीरके सभी अंगोंमें न्यास करे॥ २६-२७॥

श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अंगुष्ठ आदि अँगुलियों और हृदय आदि अंगोंमें क्रमशः मूलमन्त्रसे षडंगन्यास करे॥ २८॥

'नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्'—इन पदोंके साथ **'ॐ'** लगे हुए छः मन्त्रोंसे ही षडंगन्यास करना चाहिये। तदनन्तर देय मूलमन्त्रके वर्णोंसे तत्तत् कल्पित स्थानोंमें न्यास करे, यही न्यासकी विधि कही गयी है॥ २९-३०॥

तदनन्तर अपने इस शरीरमें एक पवित्र आसनकी भावना करनी चाहिये। हे मुने! इसके दक्षिण भागमें धर्म, वामभागमें ज्ञान, वाम ऊरूमें वैराग्य और दक्षिण ऊरूमें ऐश्वर्यका न्यास करना चाहिये। मुखदेशमें धर्मका न्यास करना चाहिये। साथ ही वामपार्श्व, नाभिस्थल तथा दक्षिणपार्श्वमें नञ् समासपूर्वक क्रमशः धर्म, ज्ञान तथा वैराग्यका (अर्थात् अधर्म आदिका) न्यास करना चाहिये॥ ३१—३३॥

हे मुने! उस आसनके ये धर्मादि पाये कहे गये हैं तथा मुनिश्रेष्ठोंने अधर्म आदिको उसका शरीर बताया है॥ ३४॥

तत्पश्चात् ऐसी भावना करे कि इस अत्यन्त सुकोमल आसनके मध्यमें हृदय है, जिसमें भगवान् अनन्त विराजमान हैं। पुनः उस अनन्तमें प्रपंचमय विमल कमलका चिन्तन करे और साधकको चाहिये कि उस कमलके ऊपर कलायुक्त सूर्य, चन्द्रमा और अग्निकी भावना करे। अब मैं संक्षेपमें उन कलाओंके विषयमें बताता हूँ। सूर्यकी बारह, चन्द्रमाकी सोलह और अग्निकी दस कलाएँ कही गयी हैं। उन कलाओंके साथ उन सूर्य आदिका भी स्मरण करना चाहिये। इसके बाद उनके ऊपर सत्त्व, रज और तमका न्यास करना चाहिये। पुनः विद्वान् पुरुषको चाहिये कि उस पीठकी चारों दिशाओंमें आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्माका न्यास करे। इस प्रकार पीठकी कल्पना करनी चाहिये॥ ३५—३८॥

तदनन्तर साधक पुरुष **'अमुकासनाय नमः'**—इस मन्त्रसे शरीररूपी आसनकी पूजा करके उसपर पराम्बिकाका ध्यान करे। इसके बाद मन्त्रवित्को चाहिये कि कल्पोक्त विधिसे मानसिक उपचारोंद्वारा देयमन्त्रके देवता उन भगवतीकी विधिपूर्वक पूजा करे॥ ३९-४०॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली कल्पोक्त मुद्राएँ प्रदर्शित करे, जिन्हें बनाकर प्रदर्शित

करनेसे देवीको परम प्रसन्नता होती है॥ ४१॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] तत्पश्चात् अपने वामभागके अग्रस्थानमें षट्कोण चक्र बनाये और उसके ऊपर एक गोल चक्र बनाये और उसके ऊपर चतुष्कोण मण्डलका निर्माण करे। तत्पश्चात् उस मण्डलके मध्यमें त्रिकोण लिखकर शंखमुद्रा प्रदर्शित करे और छः कोणोंमें छः अंगोंकी पुष्प आदिसे पूजा करे। हे मुनिश्रेष्ठ! अग्नि आदि कोणोंमें छः अंगोंका अर्चन करे। तत्पश्चात् शंख रखनेका पात्र लेकर **'फट्'**—इस अस्त्रमन्त्रसे प्रोक्षण करके उसे मण्डलमें स्थापित करे। **'मं वह्निमण्डलाय नमः'** मन्त्र पढ़कर **'दशकलात्मने अमुकदेव्या अर्घ्यपात्रस्थानाय नमः'** इसका उच्चारण करना चाहिये। विद्वान् पुरुषोंने शंखके आधारस्थापनके लिये यही मन्त्र बताया है। आधारदेशमें पूर्वसे आरम्भ करके दक्षिणके क्रमसे अग्निमण्डलमें निवास करनेवाली दसों अग्निकलाओंकी पूजा करनी चाहिये॥ ४२—४७॥

तत्पश्चात् मूलमन्त्रद्वारा प्रोक्षित किये गये उत्तम शंखको वहीं आधारपर मूलमन्त्रका स्मरण करते हुए रख देना चाहिये। फिर **'अं सूर्यमण्डलाय नमः'** कहकर **'द्वादशान्ते कलात्मने अमुकदेव्यर्घ्यपात्राय नमः'**—इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये॥ ४८-४९॥

इसके बाद **'शं शङ्खाय नमः'** इस पदका उच्चारण करके उसीसे उस शंखका प्रोक्षण करे और उस शंखमें सूर्यकी 'तपिनी' आदि बारह कलाओंकी यथाक्रम रीतिसे पूजा करे। फिर विलोम मातृका और विलोम मूलमन्त्रका उच्चारण करके शंखको जलसे भर दे और उसमें चन्द्रमाकी कलाओंका न्यास करे। **'उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने अमुकार्घ्यामृताय हृदयाय नमः'** यह मन्त्रका रूप बतलाया गया है। उसी मन्त्रके द्वारा अंकुशमुद्रासे जलकी पूजा करनी चाहिये॥ ५०—५३॥

वहींपर तीर्थोंका आवाहन करके आठ बार इस मन्त्रका जप करे। फिर जलमें षडंगन्यास करके **'हृदयाय नमः'** इस मन्त्रसे जलका पूजन करना चाहिये॥ ५४॥

तत्पश्चात् आठ बार मूलमन्त्रका जप करके मत्स्य-मुद्रासे जलको ढक दे, फिर दक्षिणभागमें शंखकी प्रोक्षणी रखे। शंखसे कुछ जल लेकर उसके द्वारा सब ओर प्रोक्षण करे। पूजन-सामग्री और अपने शरीरका भी उस जलसे प्रोक्षण करे। तत्पश्चात् अपने शरीरकी परमशुद्धिकी कल्पना कर ले॥ ५५-५६॥

श्रीनारायण बोले—[हे नारद!] इसके बाद अपने सामने वेदीपर 'सर्वतोभद्रमण्डल' बनाकर उसकी कर्णिकाके मध्यभागको अगहनी धानके चावलसे भर दे। वहीं पर 'कूर्च' संज्ञावाले कुशोंको स्थापित करके **'ॐ आधारशक्तये नमः'**, **'ॐ मूलप्रकृत्यै नमः'**, **'ॐ कूर्माय नमः'**, **'ॐ शेषाय नमः'** **'ॐ क्षमायै नमः'**, **'ॐ सुधासिन्धवे नमः'**, **'ॐ दुर्गादेवीयोग-पीठाय नमः'**—इन मन्त्रोंका उच्चारण करके पीठका पूजन करे॥ ५७-५८॥

तदनन्तर छिद्ररहित कलश हाथमें लेकर 'फट्'—इस अस्त्रमन्त्रसे अभिमन्त्रित जलके द्वारा उसे प्रक्षालित करे। इसके बाद तिगुने रक्तसूत्रसे उस कलशको आवेष्टित करे। उस कलशमें नवरत्न तथा कूर्च डालकर गन्ध आदिसे उसका पूजनकर प्रणवमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस पीठपर कलशको साधक स्थापित कर दे॥ ५९-६०॥

हे मुने! तत्पश्चात् कलश और पीठमें ऐक्यकी भावना करे; फिर प्रतिलोमके क्रमसे मातृकामन्त्रका उच्चारण करते हुए तीर्थके जलसे उस कलशको भर दे। देव-बुद्धिसे मूलमन्त्रका जप करके उस कलशको पूर्ण करे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि पीपल, कटहल तथा आमके कोमल नवीन पल्लवोंसे कलशका मुख आच्छादित कर दे और उसके ऊपर फल और अक्षतसहित पात्र रखकर दो वस्त्रोंसे उस कलशको वेष्टित कर दे॥ ६१—६३॥

तदनन्तर प्राणप्रतिष्ठाके मन्त्रसे प्राणप्रतिष्ठाकी क्रिया सम्पन्न करे; फिर आवाहन आदि मुद्राओंसे परादेवता भगवतीको प्रसन्न करे। इसके बाद कल्पोक्तविधिसे

उन परमेश्वरीका ध्यान करे और उन भगवतीके आगे स्वागत तथा कुशल-प्रश्न-सम्बन्धी वाक्योंका उच्चारण करे॥ ६४-६५॥

तत्पश्चात् पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मधुपर्क और अभ्यंगसहित स्नान आदि देवीको निवेदित करे। इसके बाद उन्हें रक्तवर्णवाले तथा स्वच्छ दो रेशमी वस्त्र प्रदान करके नानाविध मणियोंसे जटित आभूषण कल्पित करने चाहिये॥ ६६-६७॥

तदनन्तर मन्त्र-पुटित वर्णोंद्वारा विधिपूर्वक देवीके अंगोंमें मातृकाका न्यास करके चन्दन आदि उपचारोंसे भलीभाँति उनकी पूजा करनी चाहिये॥ ६८॥

हे मुने! काले अगुरु तथा कपूरसे युक्त गन्ध, कस्तूरीयुक्त केसर, चन्दन, कुन्दपुष्प तथा अन्य प्रकारके पुष्प आदि परा भगवतीको अर्पित करे। अगुरु, गुग्गुल, उशीर तथा चन्दनके चूर्णमें शर्करा और मधु मिलाकर बनाया गया धूप देवीके लिये सदा अत्यन्त प्रिय कहा गया है। विद्वान् पुरुष अनेक प्रकारके दीपक प्रदर्शित करके देवीको नैवेद्य अर्पण करे। प्रत्येक पूजन-द्रव्यमें प्रोक्षणीमें स्थित कुछ जल अवश्य छोड़े, अन्य जलका प्रयोग न करे। तत्पश्चात् अंगपूजा तथा कल्पोक्त-आवरणपूजा करे॥ ६९—७२॥

देवीकी सांगपूजा करनेके बाद विश्वेदेवकी पूजा करे। तदनन्तर दक्षिण दिशामें वेदी बनाकर उसपर अग्नि-स्थापन करके कलशस्थित देवताका आवाहनकर क्रमसे अर्चन करे। इसके बाद प्रणवपूर्वक व्याहृतियोंसहित मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतसहित खीरकी पचीस आहुतियाँ दे; तत्पश्चात् हे मुने! व्याहृति-मन्त्रोंसे हवन करे॥ ७३—७५॥

तदनन्तर गन्ध आदि उपचारोंसे देवीकी पूजा करके उन्हें उस पीठपर विराजित करे। उसके बाद अग्निको विसर्जित करके वहाँ होमसे अवशिष्ट खीरको बलि-प्रदानके रूपमें चारों ओर बिखेर दे॥ ७६॥

प्रधान देवताके पार्षदोंको गन्ध-पुष्प आदिसे युक्त पंचोपचार अर्पण करके उन्हें ताम्बूल, छत्र तथा चामर समर्पित करे। इसके बाद देवीके मन्त्रका एक हजार जप करे। परमेश्वरीको वह जप समर्पित करके ईशान दिग्भागमें स्थित विकिरके ऊपर कर्करी (करवा) स्थापित करे और उसके ऊपर भगवती दुर्गाका आवाहन करके उनका पूजन करे। तत्पश्चात् 'रक्ष-रक्ष'—इस मन्त्रका उच्चारण करके उस करवेकी टोंटीसे जल गिराते हुए तथा 'फट्' मन्त्रका जप करते हुए दाहिनी ओरके मण्डपस्थानको सींचे। इसके बाद कर्करीको अपनी जगह रख दे और अस्त्रदेवताका पूजन करे॥ ७७—८०॥

तदनन्तर गुरु मौन होकर शिष्यके साथ भोजन करे और उस रात उसी वेदीपर प्रयत्नपूर्वक शयन करे॥ ८१॥

श्रीनारायणजी बोले—हे मुने! अब मैं कुण्ड तथा वेदीके विधि-विधानसे किये जानेवाले संस्कारका संक्षेपमें वर्णन करूँगा॥ ८२॥

सर्वप्रथम मूलमन्त्रका उच्चारण करके कुण्ड अथवा वेदीका निरीक्षण करे, फिर **'फट्'** इस अस्त्र-मन्त्रसे समिधा आदिका प्रोक्षण तथा ताडन करे। इसके बाद **'हुं'**—इस कवचमन्त्रसे अभ्युक्षण करे और फिर उसपर प्रागग्र तथा उदगग्र तीन-तीन रेखाएँ खींचे॥ ८३-८४॥

इसके बाद प्रणवमन्त्रसे अभ्युक्षण करके **'ॐ आधारशक्तये नमः'** से आरम्भ करके पीठमन्त्र (**ॐ अमुकदेवीयोगपीठाय नमः**)-तकके मन्त्रोंको पढ़कर भगवतीके पीठकी पूजा करे॥ ८५॥

तदनन्तर उस पीठपर जगत्के परम कारण भगवान् शिव और पार्वतीका आवाहन करके गन्ध आदि उपचारोंसे एकाग्रचित्त होकर उनका पूजन करे। उस समय इस प्रकार देवीका ध्यान करे कि 'भगवती पार्वती ऋतुस्नानसे निवृत्त होकर आसक्त भावसे भगवान् शिवके साथ विराजमान हैं। उन दोनोंके परस्पर हासविलासकी क्रीड़ाकी भी कुछ कालतक भावना करनी चाहिये॥ ८६-८७॥

तत्पश्चात् एक पात्रमें अग्नि लाकर सामने रखे और उसमेंसे क्रव्यादांशका परित्याग करके पूर्वोक्त वीक्षण

आदि क्रियाओंद्वारा अग्निका संस्कार करके **'रं'**—इस बीज-मन्त्रका उच्चारणकर उस अग्निमें चैतन्यकी भावना करे। पुनः सात बार प्रणवका उच्चारणकर उसे अभिमन्त्रित करे। तत्पश्चात् गुरु अग्निको धेनुमुद्रा प्रदर्शित करें। इसके बाद **'फट्'**—इस अस्त्रमन्त्रका उच्चारण करके अग्निको सुरक्षितकर **'हुं'**—इस कवच-मन्त्रसे अवगुण्ठन करे॥ ८८—९०॥

तत्पश्चात् श्रेष्ठ पुरुषको चाहिये कि अपने घुटनोंको पृथ्वीपर टेककर तारमन्त्रका जप करते हुए भलीभाँति पूजित अग्निको प्रदक्षिणाके क्रमसे कुण्डके ऊपर तीन बार घुमाकर उस अग्निमें शिवबीजकी भावना करके उसे देवीकी कुण्डरूपा योनिमें छोड़ दे। इसके बाद भगवान् शिव और भगवती जगदम्बिकाको आचमन कराये॥ ९१-९२॥

'चित्पिङ्गल हन हन दह दह पच पच सर्वज्ञाज्ञापय स्वाहा' यह अग्निदीपनका मन्त्र है। जातवेदा नामसे प्रसिद्ध, तेजोमय, सुवर्णके समान पीतवर्णवाले, निर्मल, परम प्रदीप्त तथा सभी ओर मुखवाले हुतभुक् अग्निदेवको मैं प्रणाम करता हूँ।* श्रेष्ठ साधकको अत्यन्त आदरपूर्वक इस मन्त्रसे उन अग्निदेवकी स्तुति करनी चाहिये और इसके बाद वह्निमन्त्रसे षडंगन्यास करना चाहिये। **'सहस्रार्चिषे हृदयाय नमः'**, **'स्वस्तिपूर्णाय शिरसे स्वाहा'**, **'उत्तिष्ठपुरुषाय शिखायै वषट्'**, **'धूमव्यापिने कवचाय हुम्'**, **'सप्तजिह्वाय नेत्रत्रयाय वौषट्'**, **'धनुर्धराय अस्त्राय फट्'** इस प्रकार क्रमसे पूर्व स्थानोंमें षडंगन्यास करे। ये नाम अंगन्यासके समय जातियुक्त अर्थात् नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और फट्—इन पदोंसे युक्त होने चाहिये। इसके बाद अग्निका इस प्रकार ध्यान करे—ये सुवर्णतुल्य वर्णवाले, तीन नेत्र धारण किये हुए, कमलके आसनपर विराजमान, इष्टशक्ति-स्वस्तिक-अभयमुद्रा धारण किये हुए तथा परम मंगल स्वरूप हैं॥ ९३—९७१/२॥

इसके बाद मन्त्रवित्को चाहिये कि मेखलासे ऊपर कुण्डका सेचन करे और कुशोंसे परिस्तरण करे। पुनः कुण्डके चारों ओर परिधियाँ बनाये। अग्निस्थापनके पूर्व त्रिकोण, वृत्त, षट्कोण, अष्टदल कमल और भूपुरसहित यन्त्र लिखे अथवा अग्निस्थापन करके भी उसे लिख ले। हे मुने! उसके मध्यमें वह्निमन्त्रसे अग्निकी पूजा करे। **'वैश्वानर जातवेद इहावह लोहिताक्ष सर्वकर्माणि साधय स्वाहा'**—यह अग्निमन्त्र है, इससे अग्निकी पूजा करे। यन्त्रके मध्यमें तथा छः कोणोंमें हिरण्या, गगना, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरक्तिका—इन सात जिह्वाओंकी पूजा करे। केसरोंमें अंगपूजन करना चाहिये और दलोंमें शक्ति तथा स्वस्तिक धारण करनेवाली मूर्तियोंका पूजन करना चाहिये। जातवेदा, सप्तजिह्व, हव्यवाहन, अश्वोदरज, वैश्वानर, कौमारतेज, विश्वमुख और देवमुख—ये अग्नियाँ कही गयी हैं। इन अग्निनामोंके आदिमें **'ॐ अग्नये'** तथा अन्तमें **'नमः'** पद लगाकर यथा **'ॐ अग्नये जातवेदसे नमः'** इत्यादिके द्वारा पूजनका विधान है। इसके बाद चारों दिशाओंमें वज्र आदि आयुध धारण करनेवाले लोकपालोंका पूजन करे॥ ९८—१०६॥

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] तत्पश्चात् स्रुक्, स्रुवा और घृतका संस्कार करके स्रुवासे घी लेकर अग्निमें हवन करना चाहिये। हे मुनिश्रेष्ठ! दक्षिण भागसे घृत उठाकर **'ॐ अग्नये स्वाहा'**—ऐसा उच्चारण करके अग्निके दक्षिणनेत्रमें हवन करे। इसी प्रकार वामभागसे घृत उठाकर **'ॐ सोमाय स्वाहा'**—ऐसा बोलकर बायें नेत्रमें तथा मध्यभागसे घृत लेकर **'ॐ अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा'**—ऐसा उच्चारण करके अग्निके मध्य नेत्रमें हवन करे॥ १०७—१०९॥

तत्पश्चात् दक्षिणभागसे पुनः घृत लेकर **'ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा'**—इस मन्त्रसे अग्निके मुखमें आहुति डाले॥ ११०॥

---

* अग्निं प्रज्वलितं वन्दे जातवेदं हुताशनम्। सुवर्णवर्णममलं समिद्धं विश्वतोमुखम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १२।७।९४)

तदनन्तर साधक पुरुष प्रणवयुक्त व्याहृतियोंके द्वारा हवन करे; पुनः अग्निमन्त्रसे तीन बार आहुति प्रदान करे॥ १११॥

हे मुने! तदनन्तर प्रणवमन्त्रसे गर्भाधान आदि संस्कारोंके निमित्त घृतकी आठ-आठ आहुतियाँ देनी चाहिये। गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, व्रतबन्ध, महानाम्न्यव्रत, औपनिषद-व्रत, गोदान (केशान्तसंस्कार) और उद्वाहक (विवाह)—ये वेदप्रतिपादित संस्कार बताये गये हैं। तत्पश्चात् शिव और पार्वतीकी पूजा करके उनका विसर्जन करना चाहिये॥ ११२—११५॥

इसके बाद साधकको चाहिये कि अग्निको उद्देश्य करके पाँच समिधाओंका हवन करे, फिर आवरण-देवताओंके निमित्त भी एक-एक आहुति प्रदान करे॥ ११६॥

हे मुने! तत्पश्चात् स्रुक्‌में घृत रखकर उसे ढँक दे, पुनः अपने आसनपर बैठे हुए ही स्रुवाके द्वारा उसी घृतसे अग्निमन्त्रके साथ वौषट् लगाकर चार बार आहुति प्रदान करे। इसके बाद महागणेश मन्त्रसे दस आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११७-११८॥

तत्पश्चात् देयमन्त्रके देवताके पीठासनकी अग्निमें पूजा करके उसी अग्निमें उनका ध्यान करके उनके मुखके एकीकरणके निमित्त मुखमें मूलमन्त्रसे पचीस आहुतियाँ देनी चाहिये। इसके बाद अग्नि तथा देयमन्त्रके देवताके ऐक्यकी भावना करते हुए अपने साथ इनके एकीभूत होनेकी कल्पना करनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रेष्ठ साधकको चाहिये कि छः अंगवाले देवताओंको पृथक्-पृथक् आहुतियाँ प्रदान करे॥ ११९—१२१॥

हे मुनिश्रेष्ठ! अग्निदेव और देयमन्त्रके देवताकी नाड़ियोंके एकीकरणके निमित्त ग्यारह आहुतियाँ देनी चाहिये। हे मुने! एक देवताके उद्देश्यसे एक आहुति होनी चाहिये, इस प्रकार आवृत्तिपूर्वक घृतसे क्रमशः एक-एक आहुति प्रदान करनी चाहिये॥ १२२-१२३॥

इसके बाद कल्पोक्त द्रव्यों अथवा तिलोंसे देवताके मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करे॥ १२४॥

हे मुने! इस प्रकार आहुति देनेके पश्चात् यह भावना करे कि भगवती अब पूर्णरूपसे प्रसन्न हो गयी हैं। उसी तरह इस आवृत्तिसे देवी, अग्नि तथा देयमन्त्रके देवता भी प्रसन्न हो गये हैं॥ १२५॥

तत्पश्चात् भलीभाँति स्नान किये हुए, संध्या आदि क्रियाओंसे निवृत्त, दो वस्त्र धारण किये हुए, स्वर्णके आभूषणसे अलंकृत तथा हाथमें कमण्डलु धारण किये पवित्र शिष्यको आचार्य कुण्डके पास ले आये और शिष्य वहाँ आकर गुरुजनोंको तथा सभासदोंको नमस्कार करनेके अनन्तर कुलदेवको नमस्कार करके कुशासनपर बैठ जाय। इसके बाद गुरु उस शिष्यको कृपादृष्टिसे देखे और अपने शरीरके अन्दर उस शिष्यके चैतन्यकी समाविष्ट होनेकी भावना करे। तत्पश्चात् विद्वान् गुरुको चाहिये कि अपनी दिव्य दृष्टिके अवलोकनस्वरूप होमद्वारा शिष्यके शरीरमें स्थित अध्वोंका शोधन करे, जिससे शुद्ध आत्मावाला वह शिष्य देवता आदिके अनुग्रहके योग्य हो जाय॥ १२६—१३०॥

श्रीनारायण बोले—[हे मुने!] गुरु शिष्यके शरीरमें क्रमसे छः अध्वोंका चिन्तन करे। दोनों पैरोंमें कलाध्वका, लिंगमें तत्त्वाध्वका, नाभिमें भुवनाध्वका, हृदयमें वर्णाध्वका, ललाटमें पदाध्वका तथा मस्तकमें मन्त्राध्वका चिन्तन करना चाहिये॥ १३१-१३२॥

गुरुको चाहिये कि कूर्चसे शिष्यको स्पर्श करते हुए **'ॐ अमुमध्वानं शोधयामि स्वाहा'** इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए घृतमिश्रित तिलोंसे प्रत्येक अध्वके निमित्त आठ बार आहुति प्रदान करे। तत्पश्चात् उन छहों अध्वोंके ब्रह्ममें लीन हो जानेकी भावना करे॥ १३३-१३४॥

इसके बाद गुरु ब्रह्ममें लीन उन अध्वों (मार्गों)-को पुनः सृष्टिमार्गसे उत्पन्न करनेकी भावना करें और अपने शरीरमें स्थित उस चैतन्यको पुनः शिष्यमें

नियोजित करें॥ १३५॥

तत्पश्चात् पूर्णाहुति प्रदान करके आवाहित देवताको कलशमें प्रतिष्ठित करे और इसके बाद व्याहृतियोंका उच्चारण करके अग्निके अंगोंके निमित्त आहुतियाँ दे। गुरुको चाहिये कि एक-एक देवताके लिये एक-एक आहुति देकर अपनी आत्मामें अग्निका विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् गुरु 'वौषट्' इस नेत्रमन्त्रका उच्चारण करके वस्त्रसे शिष्यके दोनों नेत्रोंको बाँध दे और फिर उस शिष्यको कुण्ड-स्थलसे मण्डलमें ले जाय। इसके बाद शिष्यके हाथसे प्रधान देवीके लिये पुष्पांजलि अर्पित कराये॥ १३६—१३८॥

तदनन्तर नेत्रोंका आवरण हटाकर शिष्यको कुशके आसनपर बैठा दे और पूर्वोक्त रीतिसे शिष्यकी देहमें भूतशुद्धि करे॥ १३९॥

शिष्यके शरीरमें मन्त्रोक्त न्यास करनेके पश्चात् शिष्यको दूसरे मण्डलमें बैठाये। तत्पश्चात् कलशपर स्थित पल्लवोंको शिष्यके सिरपर रखे और मातृका-जप करे। इसके बाद कलशमें स्थित देवमय जलसे शिष्यको स्नान कराये। स्नानके पश्चात् शिष्यकी रक्षाके लिये वर्धनीसंज्ञक कलशके जलसे भलीभाँति अभिषेक करे। इसके बाद शिष्य उठकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करे और भस्म आदि लगाकर गुरुके समीप बैठ जाय। तत्पश्चात् करुणानिधान गुरुदेव यह भावना करें कि भगवती शिवा उनके हृदयसे निकलकर अब शिष्यके हृदयमें प्रविष्ट हो गयी हैं। अतः शिष्य तथा देवी उन दोनोंमें तादात्म्यकी भावना करते हुए वे गन्ध-पुष्प आदिसे शिष्यका पूजन करें॥ १४०—१४४॥

तत्पश्चात् गुरु अपना दाहिना हाथ शिष्यके सिरपर रखते हुए उसके दाहिने कानमें महाभगवतीके महामन्त्रका तीस बार उपदेश करें। हे मुने! इसके बाद शिष्य उस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करे। पुनः पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर उन देवतास्वरूप गुरुको प्रणाम करे॥ १४५-१४६॥

इसके बाद शिष्य जीवनभरके लिये गुरुके प्रति अनन्यबुद्धिवाला होकर गुरुके प्रति एकनिष्ठ भावसे अपना सर्वस्व उन्हें अर्पण कर दे। तदनन्तर ऋत्विजोंको दक्षिणा देकर ब्राह्मणों, सौभाग्यवती स्त्रियों, कन्याओं और बटुकोंको भलीभाँति भोजन कराये। साथ ही धनकी कृपणतासे रहित होकर दीनों, अनाथों तथा दरिद्रोंको सन्तुष्ट करे। अपनेको कृतार्थ समझकर मन्त्रकी नित्य उपासना करे। इस प्रकार दीक्षाकी यह उत्तम विधि मैंने आपको बतला दी॥ १४७—१४९॥

इस विषयमें पूर्णरूपसे विचार करके अब आप देवीके चरण-कमलका सेवन कीजिये। ब्राह्मणके लिये इसके अतिरिक्त कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं है॥ १५०॥

वैदिक पुरुष अपने-अपने गृह्यसूत्रमें कहे गये नियमके अनुसार तथा तान्त्रिक पुरुष तन्त्र-पद्धतिके अनुसार मन्त्रका उपदेश करें; यही सनातन नियम है। जिनके लिये जो-जो प्रयोग बताये गये हैं, उन्हें उसीका उपयोग करना चाहिये; दूसरे नियमोंका नहीं॥ १५१$^{१}/_{२}$॥

श्रीनारायण बोले—हे नारद! आपने जो पूछा था, वह सब मैंने बता दिया। अब आप पराम्बा भगवतीके पदारविन्दकी नित्य उपासना कीजिये। मैं भी उसी चरणकमलकी नित्य आराधना करके परम शान्तिको प्राप्त हुआ हूँ॥ १५२-१५३॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस प्रकार यह सम्पूर्ण उत्तम प्रसंग नारदजीसे कहकर श्रेष्ठ मुनियोंके भी शिरोमणि भगवान् नारायण अपने नेत्र बन्द करके समाधिस्थ होकर भगवतीके चरण-कमलका ध्यान करने लगे। नारदजीने भी उन परम गुरु भगवान् नारायणको प्रणाम करके भगवतीके दर्शनकी लालसासे तपस्या करनेके लिये उसी क्षण प्रस्थान कर दिया॥ १५४-१५५॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'मन्त्रदीक्षाविधिवर्णन' नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

देवताओंका विजयगर्व तथा भगवती उमाद्वारा उसका भंजन, भगवती उमाका इन्द्रको दर्शन देकर ज्ञानोपदेश देना

जनमेजय बोले—सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओंमें श्रेष्ठ तथा समस्त धर्मोंको जाननेवाले हे भगवन्! सभी द्विजातियोंके लिये शक्तिकी उपासना नित्य होनेके कारण तीनों सन्ध्या-कालोंमें तथा अन्य समयमें भी करणीय है—ऐसा श्रुतिका कथन है; तो फिर हे विभो! उन भगवतीको छोड़कर द्विजगण अन्य देवताओंकी उपासना क्यों करते हैं?॥ १-२॥

कुछ विष्णुके उपासक, कुछ गणपतिके उपासक, कुछ कापालिक, कुछ चीनमार्गी, कुछ वल्कलधारी, कुछ दिगम्बर, कुछ बौद्ध, कुछ चार्वाक आदि दिखायी पड़ते हैं। इसी प्रकार लोकमें बहुतसे ऐसे लोग भी दिखायी देते हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धा-भावसे रहित हैं। हे ब्रह्मन्! इसमें क्या कारण है? वह मुझे बतानेकी आप कृपा कीजिये॥ ३-४१/२॥

कुछ बुद्धिमान् पण्डित और अनेक प्रकारके तर्क करनेमें दक्ष विद्वान् लोग भी हैं, जो वेदोंके प्रति श्रद्धासे विहीन हैं। कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर अपने कल्याणका परित्याग नहीं करना चाहता है, तो फिर वे ऐसा क्यों करते हैं? हे वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ! इसमें क्या कारण है; मुझे बतलाइये॥ ५-६१/२॥

आपने पहले मणिद्वीपकी महिमाका वर्णन किया था। भगवतीका वह परम उत्तम स्थान कैसा है? हे अनघ! आप मुझ श्रद्धावान् भक्तको इसे भी बताइये; क्योंकि प्रसन्न गुरुजन गुप्त बात भी बता देते हैं॥ ७-८१/२॥

सूतजी बोले—हे मुनीश्वरो! महाराज जनमेजयकी यह बात सुनकर भगवान् वेदव्यासने उन्हें क्रमसे वह सब कुछ बतला दिया, जिसे सुनकर द्विजातियोंके मनमें वेदोंके प्रति श्रद्धा बढ़ जाती है॥ ९-१०॥

व्यासजी बोले—हे राजन्! इस समय आपने जो पूछा है, वह अत्युत्तम तथा कालके अनुरूप ही है। आप बुद्धिमान् तथा वेदोंमें श्रद्धा रखनेवाले प्रतीत होते हैं॥ ११॥

हे महाराज! पूर्वकालमें मदसे उन्मत्त दानवोंने देवताओंके साथ सौ वर्षोंतक एक अत्यन्त विस्मयकारक युद्ध किया था॥ १२॥

हे नृप! अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहार तथा अनेक प्रकारकी मायाओंके प्रयोगसे भरा उनका वह युद्ध जगत्के लिये अत्यन्त विनाशकारी सिद्ध हुआ॥ १३॥

उस समय पराशक्ति भगवतीकी कृपासे देवताओंने युद्धमें दैत्योंको जीत लिया और वे दैत्य भूलोक तथा स्वर्ग छोड़कर पाताललोकमें चले गये॥ १४॥

इस विजयसे अत्यन्त हर्षित देवतागण मोहके कारण अभिमानयुक्त होकर चारों ओर परस्पर अपने पराक्रमकी इस प्रकार चर्चा करने लगे—हमारी विजय क्यों न हो? क्योंकि हमारी महिमा सर्वोत्तम है। कहाँ ये अधम और पराक्रमहीन दैत्य तथा कहाँ सृजन, पालन तथा संहार करनेवाले हम यशस्वी देवता! तो फिर हमारे सामने असहाय दैत्योंकी बात ही क्या॥ १५—१७॥

हे राजन्! पराशक्तिके प्रभावको न जाननेके कारण ही वे देवता मोहित हो गये थे। तब उनके ऊपर अनुग्रह करनेके लिये दयामयी जगदम्बा एक यक्षके रूपमें प्रकट



हुईं॥ १८१/२॥

करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशवाले, करोड़ों चन्द्रमाओंके

समान अत्यन्त शीतल, करोड़ों विद्युत्के समान आभावाले और हाथ-पैर आदि अवयवोंसे रहित, पहले कभी न देखे गये उस परम सुन्दर तेजको देखकर देवता महान् विस्मयमें पड़ गये और कहने लगे—यह क्या है! यह क्या है! यह दैत्योंकी चेष्टा है अथवा कोई बलवती माया है? देवताओंको आश्चर्यचकित करनेवाली यह माया किसके द्वारा रची गयी है? तब उन सभी देवताओंने एकत्र होकर उत्तम विचार किया कि यक्षके समीप जाकर पूछना चाहिये कि 'तुम कौन हो?' इस प्रकार उसके बलाबलकी जानकारी कर लेनेके पश्चात् ही कोई प्रतिक्रिया करनी चाहिये॥ १९—२३॥

तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने अग्निको बुलाकर उनसे कहा—'हे अग्निदेव! आप जाइये। चूँकि आप ही हम लोगोंके उत्तम मुख हैं, इसलिये वहाँ जाकर इसकी जानकारी कीजिये कि यह यक्ष कौन है'॥ २४½॥

हजार नेत्रोंवाले इन्द्रके मुखसे अपने प्रति पराक्रमसे युक्त वचन सुनकर वे अग्निदेव अत्यन्त वेगपूर्वक निकल पड़े और शीघ्र ही यक्षके पास जा पहुँचे॥ २५½॥

तब यक्षने उन अग्निसे पूछा—'तुम कौन हो? तुममें कौन-सा पराक्रम है? जो हो वह सब मुझे बतलाओ'॥ २६½॥

इसपर उसने कहा—'मैं अग्नि हूँ; मैं जातवेदा हूँ। सम्पूर्ण विश्वको दग्ध कर डालनेका सामर्थ्य मुझमें विद्यमान है'॥ २७½॥

तब परम तेजस्वी यक्षने अग्निके समक्ष एक तृण रख दिया और कहा—'यदि विश्वको भस्म करनेकी शक्ति तुममें है, तो इसे जला दो'॥ २८½॥

तब अग्निने अपनी सम्पूर्ण शक्तिका प्रयोग करते हुए



उस तृणको जलानेका प्रयास किया, किंतु वे उस तृणको भस्म करनेमें समर्थ नहीं हुए और लज्जित होकर देवताओंके पास लौट गये॥ २९½॥

देवताओंके द्वारा वृत्तान्त पूछे जानेपर अग्निदेवने सब कुछ बता दिया और कहा—हे देवताओ! सर्वेश आदि बननेमें हमलोगोंका अभिमान सर्वथा व्यर्थ है॥ ३०½॥

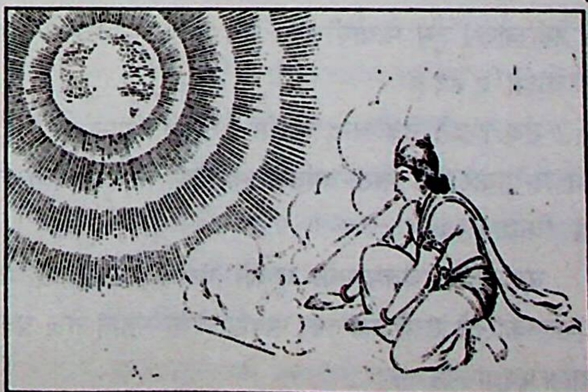
तत्पश्चात् वृत्रासुरका संहार करनेवाले इन्द्रने वायुको बुलाकर यह कहा—सम्पूर्ण जगत् आपमें व्याप्त है और आपकी ही चेष्टाओंसे यह क्रियाशील है। आप प्राणरूप होकर सभी प्राणियोंमें सम्पूर्ण शक्तिका संचार करते हैं। आप ही जाकर यह जानकारी प्राप्त कीजिये कि यह यक्ष कौन है? क्योंकि अन्य कोई भी उस परम तेजस्वी यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं है॥ ३१—३३॥

गुण और गौरवसे समन्वित इन्द्रकी बात सुनकर वे वायुदेव अभिमानसे भर उठे और शीघ्र ही वहाँ पहुँच गये, जहाँ यक्ष विराजमान था॥ ३४॥

तब वायुको देखकर यक्षने मधुर वाणीमें कहा—तुम कौन हो? तुममें कौन-सी शक्ति है? यह सब मेरे सामने बतलाओ॥ ३५॥

यक्षका वचन सुनकर वायुने गर्वपूर्वक कहा—'मैं मातरिश्वा हूँ; मैं वायु हूँ। सबको संचालित करने तथा ग्रहण करनेकी शक्ति मुझमें विद्यमान है। मेरी चेष्टासे ही सम्पूर्ण जगत् सब प्रकारके व्यवहारवाला होता है'॥ ३६-३७॥

वायुकी यह वाणी सुनकर परम तेजस्वी यक्षने कहा—तुम्हारे सामने यह जो तृण रखा हुआ है, उसे तुम अपनी इच्छाके अनुसार गतिमान् कर दो; अन्यथा इस अभिमान का त्याग करके लज्जित हो इन्द्रके पास लौट जाओ॥ ३८½॥



यक्षका वचन सुनकर वायुदेवने अपनी सम्पूर्ण शक्ति

लगाकर उस तृणको उड़ानेका प्रयत्न किया, किंतु वह तृण अपने स्थानसे हिलातक नहीं। तब वे पवनदेव लज्जित होकर अभिमानका त्याग करके इन्द्रके पास चले गये॥ ३९-४०॥

उन्होंने अभिमानको चूर करनेवाला सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'मिथ्या गर्व तथा अभिमान करनेवाले हमलोग इस यक्षको जाननेमें समर्थ नहीं हैं। परम प्रचण्ड तेजवाला यह यक्ष अलौकिक प्रतीत हो रहा है'॥ ४१½॥

तत्पश्चात् सभी देवताओंने सहस्र नेत्रोंवाले इन्द्रसे कहा—'आप देवताओंके स्वामी हैं, अतः अब आप ही यक्षके विषयमें ठीक-ठीक जाननेका प्रयत्न कीजिये'॥ ४२½॥

तब इन्द्र अत्यन्त अभिमानपूर्वक उस यक्षके पास गये। उनके पहुँचते ही यक्षरूप परात्पर परम तेज शीघ्र ही अदृश्य हो गया। जब वह यक्ष इन्द्रके सामनेसे अन्तर्हित हो गया तब देवराज इन्द्र अत्यन्त लज्जित हो गये और यक्षके उनसे बाततक न करनेके कारण वे मनमें अपनेको छोटा समझने लगे। वे सोचने लगे कि अब मुझे देवताओंके समाजमें नहीं जाना चाहिये; क्योंकि वहाँ देवताओंके समक्ष अपनी इस हीनताके विषयमें क्या बताऊँगा। अतः शरीरका त्याग कर देना ही मेरे लिये अच्छा होगा; क्योंकि मान ही महापुरुषोंका धन होता है। मानके नष्ट हो जानेपर मनुष्यका जीवित रहना मृत्युके समान है, इसमें संशय नहीं है॥ ४३—४७॥

यह निश्चय करके देवराज इन्द्र अभिमान त्यागकर उन्हीं पराशक्तिकी शरणमें गये, जिनकी ऐसी अद्भुत लीला है॥ ४८॥

उसी क्षण गगन-मण्डलमें यह आकाशवाणी हुई—'हे सहस्राक्ष! तुम मायाबीजका जप करो और उससे सुखी हो जाओ'॥ ४९॥

तब इन्द्रने नेत्र बन्द करके देवीका ध्यान करते हुए निराहार रहकर एक लाख वर्षतक अतिश्रेष्ठ परम मायाबीजका जप किया॥ ५०॥

एक दिन चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें नवमी तिथिको मध्याह्नकालमें उसी स्थलपर सहसा एक महान् तेज प्रकट हुआ॥ ५१॥

इन्द्रने उस तेजमण्डलके मध्यमें नूतन यौवनसे सम्पन्न, कुमारी अवस्थामें विद्यमान, प्रभायुक्त जपाकुसुमकी कान्तिसे सम्पन्न, प्रातःकालीन करोड़ों सूर्यकी प्रभासे सुशोभित, द्वितीयाके चन्द्रमासदृश मुकुट धारण किये हुई, वस्त्रके अन्दरसे परिलक्षित होते हुए वक्षःस्थलवाली, अपने चारों श्रेष्ठ हाथोंमें वर-पाश-अंकुश और अभयमुद्रा धारण करनेवाली, अत्यन्त मनोहर अंगोंसे सम्पन्न, कोमल लताके समान अंगोंवाली, कल्याणस्वरूपिणी, भक्तोंके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा, नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित, तीन नेत्रोंवाली, अपनी वेणीमें चमेलीकी माला धारण की हुई, चारों दिशाओंमें स्थित होकर मूर्तिमान् चारों वेदोंद्वारा स्तुत होती हुई, अपने दाँतोंकी प्रभासे वहाँकी भूमिको पद्मरागमय बना देनेवाली, प्रसन्नता तथा मुसकानयुक्त मुखमण्डलवाली, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर रक्तवर्णके वस्त्र धारण की हुई, लालचन्दनसे अनुलिप्त विग्रहवाली, समस्त कारणोंकी भी कारण तथा बिना किसी हेतुके साक्षात् करुणाकी मूर्तिस्वरूपा उमा नामसे विख्यात जगदम्बा हैमवती भगवती



शिवाको अपने समक्ष देखा। इससे इन्द्रका अन्तःकरण प्रेमसे गद्गद हो उठा॥ ५२—५८॥

प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण नयनवाले तथा रोमांचित शरीरवाले इन्द्रने उन जगदीश्वरीके चरणोंमें दण्डकी भाँति गिरकर प्रणाम किया और अनेक प्रकारके स्तोत्रोंद्वारा उनकी स्तुति की। भक्ति-भावसे सम्पन्न हो सिर झुकाकर परम प्रसन्नतापूर्वक इन्द्रने देवीसे कहा—हे सुशोभने! यह यक्ष कौन था और किसलिये प्रकट हुआ था? यह सब आप मुझे

बतलाइये ॥ ५९-६०१/२ ॥

उनकी यह बात सुनकर करुणासागर भगवतीने कहा—यह मेरा ही रूप है; यही ब्रह्म है जो मायाका अधिष्ठानस्वरूप, सबका साक्षी, निर्विकार और समस्त कारणोंका भी कारण है ॥ ६१-६२ ॥

सभी वेद जिस पदका बार-बार प्रतिपादन करते हैं, समस्त तप भी तपश्चरणके द्वारा जिस पदकी प्राप्तिको बताते हैं और साधकगण जिसकी प्राप्तिकी अभिलाषासे ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उसी पदको मैं तुम्हें नामपूर्वक बतलाती हूँ ॥ ६३ ॥

उसीको 'ॐ' एक अक्षरवाला ब्रह्म कहते हैं और वही 'ह्रीं' रूप भी है। हे सुरश्रेष्ठ! ह्रीं और ॐ ये दो मेरे मुख्य बीजमन्त्र हैं। इन्हीं दो भागोंसे सम्पन्न होकर मैं सम्पूर्ण जगत्का सृजन करती हूँ। उनमें एक भाग सच्चिदानन्द नामवाला कहा गया है और दूसरा भाग मायाप्रकृति संज्ञावाला कहा गया है। वह माया ही परा शक्ति है और सम्पूर्ण जगत्पर प्रभुत्व रखनेवाली वह शक्तिशालिनी देवी मैं ही हूँ ॥ ६४—६६ ॥

यह माया चन्द्रमाकी चाँदनीकी भाँति अभिन्नरूपसे सर्वदा मुझमें विराजमान रहती है। हे सुरोत्तम! साम्यावस्थास्वरूपिणी मेरी यह माया सम्पूर्ण जगत्के प्रलय होते समय भी मुझसे भिन्न नहीं रहती है। प्राणियोंके कर्मपरिपाकवश मायाका वही अव्यक्तरूप पुनः व्यक्तरूप धारण कर लेता है ॥ ६७-६८१/२ ॥

जो अवस्था अन्तर्मुखी है, वह माया कही जाती है और जो बहिर्मुखी अवस्थावाली माया है, वह तम (अविद्या) नामसे कही जाती है। तमोरूपिणी उस बहिर्मुखी मायासे प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। हे सुरश्रेष्ठ! सृष्टिके आदिमें यह माया रजोगुणरूपसे विद्यमान रहती है ॥ ६९-७०१/२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ये देवता त्रिगुणात्मक कहे गये हैं। ब्रह्मामें रजोगुणकी अधिकता, विष्णुमें सत्त्वगुणकी अधिकता तथा सभी कारणोंके स्वरूपवाले रुद्रमें तमोगुणकी अधिकता रहती है ॥ ७१-७२ ॥

ब्रह्मा स्थूलदेहवाले हैं। विष्णु लिंगदेहवाले तथा रुद्र कारणदेहवाले कहे गये हैं। जो सर्वान्तर्यामिस्वरूपिणी साम्यावस्था कही गयी है, वह तुरीयरूपा मैं ही हूँ और इसके भी ऊपर जो निराकार परब्रह्म है, वह भी मेरा ही रूप है ॥ ७३-७४ ॥

निर्गुण तथा सगुण—यह मेरा दो प्रकारका रूप कहा जाता है। मायासे रहित रूप निर्गुण और मायायुक्त रूप सगुण है। वही मैं सम्पूर्ण जगत्की रचना करके उसके भीतर भलीभाँति प्रविष्ट होकर जीवको उसके कर्म तथा शास्त्रके अनुसार निरन्तर प्रेरित करती रहती हूँ ॥ ७५-७६ ॥

ब्रह्माको सृष्टि करने, विष्णुको जगत्का पालन करने और कारणरूप रुद्रको संहार करनेके लिये मैं ही प्रेरणा प्रदान करती हूँ ॥ ७७ ॥

वायु मेरे भयसे प्रवाहित होता है और सूर्य मेरा भय मानकर निरन्तर गति करता रहता है। उन्हींकी भाँति इन्द्र, अग्नि और यम भी मेरे भयसे अपने-अपने कार्य सम्पन्न करते हैं। इसीलिये मैं सर्वश्रेष्ठ कही गयी हूँ ॥ ७८ ॥

आप सभी देवताओंने मेरी ही कृपासे सब प्रकारकी विजय प्राप्त की है। मैं आपलोगोंको कठपुतलीके समान नचाती रहती हूँ ॥ ७९ ॥

मैं कभी देवताओंकी विजय कराती हूँ और कभी दैत्योंकी। मैं स्वतन्त्र होकर अपनी इच्छासे सभीके कर्म-विपाकके अनुसार सब कुछ सम्पादित करती हूँ ॥ ८० ॥

अहंकारसे आवृत बुद्धिवाले तुमलोग अपने गर्वसे वैसी प्रभाववाली मुझ सर्वात्मिका भगवतीको भूलकर दुःखदायी मोहको प्राप्त हो गये थे। इसलिये तुमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये तुमलोगोंके शरीरसे मेरा दिव्य तेज निकलकर यक्षके रूपमें प्रकट हो गया था ॥ ८१-८२ ॥

अब तुमलोग अपने देहसे उत्पन्न गर्वका सब प्रकारसे त्याग करके मुझ सच्चिदानन्दस्वरूपिणी भगवतीकी ही शरणमें आ जाओ ॥ ८३ ॥

व्यासजी बोले—[हे जनमेजय!] ऐसा कहकर मूलप्रकृतिरूपा सर्वेश्वरी महादेवी देवताओंके द्वारा भक्तिपूर्वक सुपूजित होकर तत्काल अन्तर्धान हो गयीं ॥ ८४ ॥

तत्पश्चात् सभी देवता अपने अभिमानका त्याग करके भगवतीके परात्पर चरणकमलकी विधिवत् आराधना करने लगे। वे सब तीनों सन्ध्याओंमें सदा गायत्री-जपमें संलग्न रहते थे और यज्ञ-भाग आदिके द्वारा नित्य भगवतीकी उपासना करते थे॥ ८५-८६॥

इस प्रकार सत्ययुगमें सभी लोग गायत्री-जपमें तत्पर थे और वे प्रणव तथा हृल्लेखाके जपमें भी दत्तचित्त रहते थे॥ ८७॥

वेदके द्वारा कहीं भी विष्णुकी उपासना तथा विष्णु-दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है; उसी प्रकार शिवकी भी उपासना तथा दीक्षा नित्य नहीं कही गयी है, किंतु गायत्रीकी उपासना सभी वेदोंके द्वारा नित्य कही गयी है, जिसके बिना ब्राह्मणका सब प्रकार अधःपतन हो जाता है। द्विज केवल उतनेसे ही कृतकृत्य हो जाता है, उसे किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं रहती। केवल गायत्री-उपासनामें ही तत्पर रहकर द्विज मोक्ष प्राप्त कर लेता है, चाहे वह अन्य कार्य करे अथवा न करे—ऐसा मनुने स्वयं कहा है। उन गायत्रीके बिना विष्णु तथा शिवकी उपासनामें संलग्न रहनेवाला विप्र सब प्रकारसे नरकगामी होता है। इसीलिये हे राजन्! सत्ययुगमें सभी उत्तम द्विजगण गायत्रीजप तथा भगवतीके चरणकमलकी उपासनामें निरन्तर संलग्न रहते थे॥ ८८—९२॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'पराशक्तिके आविर्भावका वर्णन' नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

नौवाँ अध्याय

भगवती गायत्रीकी कृपासे गौतमके द्वारा अनेक ब्राह्मणपरिवारोंकी रक्षा, ब्राह्मणोंकी कृतघ्नता और गौतमके द्वारा ब्राह्मणोंको घोर शाप-प्रदान

व्यासजी बोले—हे विभो! एक समयकी बात है, प्राणियोंको कर्म-फलका भोग करानेके लिये इन्द्रने पन्द्रह वर्षोंतक वृष्टि नहीं की॥ १॥

इस अनावृष्टिके कारण घोर विनाशकारी दुर्भिक्ष पड़ गया। घर-घरमें शवोंकी संख्याका आकलन नहीं किया जा सकता था॥ २॥

क्षुधासे पीड़ित कुछ लोग घोड़ों और सूअरोंका भक्षण कर जाते थे और कुछ लोग मनुष्योंके शवतक खा जाते थे। माता अपने बच्चेको और पुरुष पत्नीको खा जाते थे। इस प्रकार सभी लोग क्षुधासे पीड़ित होकर एक-दूसरेको खानेके लिये दौड़ पड़ते थे॥ ३-४॥

तब बहुत-से ब्राह्मणोंने एकत्र होकर यह उत्तम विचार प्रस्तुत किया कि महर्षि गौतम तपस्याके महान् धनी हैं। वे हमारे कष्टका निवारण कर देंगे। अतएव इस समय हम सभी लोगोंको मिलकर गौतमके आश्रममें चलना चाहिये। सुना गया है कि गायत्रीजपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले गौतमके आश्रममें इस समय भी सुभिक्ष है और बहुत लोग वहाँ गये हुए हैं॥ ५-६ $^1/_2$॥

इस प्रकार परस्पर विचार करके वे सभी ब्राह्मण अग्निहोत्रकी सामग्री, अपने परिवारजनों, गोधन तथा दासोंको साथमें लेकर गौतमऋषिके आश्रमपर गये। कुछ लोग पूर्व दिशासे, कुछ लोग दक्षिण दिशासे, कुछ लोग पश्चिम दिशासे और कुछ लोग उत्तर दिशासे—इस प्रकार अनेक स्थलोंसे लोग वहाँ पहुँच गये॥ ७-८ $^1/_2$॥

ब्राह्मणोंके उस समाजको देखकर उन गौतमऋषिने प्रणाम किया और आसन आदि उपचारोंसे विप्रोंकी पूजा की। तत्पश्चात् महर्षि गौतमने उनका कुशल-क्षेम तथा उनके वहाँ आनेका कारण पूछा॥ ९-१०॥

उन सभी ब्राह्मणोंने उदास होकर अपना-अपना वृत्तान्त कहा। मुनि गौतमने उन विप्रोंको दुःखित देखकर उन्हें अभय प्रदान किया। [और कहा—] हे विप्रो! यह आश्रम आपलोगोंका घर है और मैं हर तरहसे आपलोगोंका दास हूँ। मुझ दासके रहते आपलोगोंको चिन्ता किस बात की? आप सभी तपोधन ब्राह्मण यहाँ आये हैं, इसलिये मैं अपनेको धन्य मानता हूँ।

जिनके दर्शनमात्रसे दुष्कृत भी सुकृतमें परिणत हो जाता है, वे सभी विप्रगण अपने चरणरजसे मेरे आश्रमको पवित्र बना रहे हैं। आपलोगोंके अनुग्रहसे मुझसे बढ़कर धन्य दूसरा कौन है? सन्ध्या और जपमें निरन्तर संलग्न रहनेवाले आप सभी लोग सुखपूर्वक यहाँ रहिये॥ ११—१४१/२॥

व्यासजी बोले—[हे राजन्!] इस प्रकार सभी ब्राह्मणोंको आश्वस्त करके मुनिराज गौतम भक्ति-भावसे सिर झुकाकर गायत्रीकी प्रार्थना करने लगे—हे देवि! आपको नमस्कार है। आप महाविद्या, वेदमाता और परात्परस्वरूपिणी हैं। व्याहृति आदि महामन्त्रों तथा प्रणवके स्वरूपवाली, साम्यावस्थामें विराजमान रहनेवाली तथा ह्रींकार स्वरूपवाली हे मातः! आपको नमस्कार है॥ १५—१७॥

स्वाहा और स्वधा-रूपसे शोभा पानेवाली हे देवि! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली, भक्तोंके लिये कल्पलतासदृश, तीनों अवस्थाओंकी साक्षिणी-स्वरूपा, तुरीयावस्थासे अतीत स्वरूपवाली, सच्चिदानन्द-स्वरूपिणी, सभी वेदान्तोंकी वेद्यविषयरूपा, सूर्यमण्डलमें विराजमान रहनेवाली, प्रातःकालमें बाल्यावस्था तथा रक्तवर्णवाली, मध्याह्नकालमें श्रेष्ठ युवतीकी भाँति शोभा पानेवाली और सायंकालमें वृद्धास्वरूपिणी तथा कृष्णवर्णवाली उन भगवतीको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ। सम्पूर्ण प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली हे परमेश्वरि! हे देवि! आप क्षमा करें॥ १८—२०१/२॥

गौतमजीके इस प्रकार स्तुति करनेपर जगज्जननी भगवतीने उन्हें अपना प्रत्यक्ष दर्शन दिया। उन्होंने उन गौतमऋषिको एक ऐसा पूर्णपात्र प्रदान किया, जिसके द्वारा



सबका भरण-पोषण हो सके॥ २११/२॥

उन जगदम्बाने मुनिसे कहा—आप जिस-जिस वस्तुकी कामना करेंगे, मेरे द्वारा प्रदत्त यह पूर्णपात्र उसकी पूर्ति करनेवाला सिद्ध होगा॥ २२१/२॥

ऐसा कहकर श्रेष्ठ कलास्वरूपिणी भगवती गायत्री अन्तर्धान हो गयीं। हे राजन्! उस पात्रसे पर्वतके समान विशाल अन्नराशि, छः प्रकारके रस, भाँति-भाँतिके तृण, दिव्य आभूषण, रेशमी वस्त्र, यज्ञोंकी सामग्रियाँ तथा अनेक प्रकारके पात्र निकले॥ २३—२५॥

हे राजन्! उन महात्मा गौतमको जिस-जिस पदार्थकी अभिलाषा होती थी, वे सभी पदार्थ भगवती गायत्रीके द्वारा प्रदत्त उस पूर्णपात्रसे निकल आते थे॥ २६॥

इसके बाद मुनिवर गौतमने सभी मुनियोंको बुलाकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक धन-धान्य, आभूषण तथा वस्त्र आदि प्रदान किये। उस पूर्णपात्रसे निर्गत गाय-भैंस आदि पशु तथा स्रुक्-स्रुवा आदि यज्ञकी सामग्रियाँ सभी मुनियोंको दी गयीं॥ २७-२८॥

तदनन्तर वे सभी मुनि एकत्र होकर गौतमऋषिकी आज्ञासे नानाविध यज्ञ करने लगे। इस प्रकार वह आश्रम स्वर्गके समान एक अत्यन्त दिव्य स्थान हो गया॥ २९॥

तीनों लोकोंमें जो कुछ भी सुन्दर वस्तु दृष्टिगत होती, वह सब कुछ गायत्रीके द्वारा दिये गये पात्रसे प्राप्त हो जाती थी॥ ३०॥

मुनियोंकी स्त्रियाँ भूषण आदिके द्वारा देवांगनाओंकी भाँति और मुनिगण वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे देवताओंके समान सुशोभित हो रहे थे॥ ३१॥

गौतमऋषिके आश्रममें चारों ओर नित्य उत्सव मनाया जाने लगा। किसीको भी रोग आदिका कोई भी भय नहीं था और दैत्योंका कहीं भी भय नहीं रहा॥ ३२॥

गौतममुनिका वह आश्रम चारों ओरसे सौ योजनके विस्तारवाला हो गया; और भी अन्य जिन प्राणियोंको इसकी जानकारी हुई, वे भी वहाँ आ गये। तब आत्मज्ञानी गौतममुनिने उन्हें अभय प्रदान करके उन सभीके भरण-पोषणका समुचित प्रबन्ध कर दिया। अनेक प्रकारके महायज्ञोंके विधिपूर्वक सम्पन्न हो जानेसे देवतागण परम प्रसन्न हुए और मुनिका यशोगान करने लगे। वृत्रासुरका संहार करनेवाले महान् यशस्वी इन्द्रने भी अपनी सभामें

बार-बार यह श्लोक कहा—अहो, इस समय ये गौतमऋषि हमारे लिये साक्षात् कल्पवृक्षके रूपमें प्रतिष्ठित होकर हमारे सभी मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं, अन्यथा इस दुष्कालमें जहाँ जीवनकी आशा भी अत्यन्त दुर्लभ थी, फिर हमलोग हवि कैसे प्राप्त करते?॥ ३३—३६॥

इस प्रकार वे मुनिवर गौतम अभिमानकी गन्धतकसे रहित होकर बारह वर्षोंतक उन श्रेष्ठ मुनियोंका पुत्रवत् पालन-पोषण करते रहे॥ ३७॥

उन मुनिश्रेष्ठ गौतमने गायत्रीकी उपासनाहेतु एक पवित्र स्थलका निर्माण कराया, जहाँ सभी श्रेष्ठ मुनिगण पुरश्चरण आदि कर्मोंके द्वारा परम भक्तिके साथ तीनों कालों—प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकालमें भगवती जगदम्बाकी पूजा करते थे। उस स्थानपर आज भी वे भगवती प्रातःकाल बाला-रूपमें, मध्याह्नकालमें युवतीके रूपमें तथा सायंकालमें वृद्धाके रूपमें दृष्टिगोचर होती हैं॥ ३८-३९½॥

एक बार मुनिश्रेष्ठ नारदजी अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए और गायत्रीके उत्तम गुणोंका गान करते हुए वहाँ आये और पुण्यात्मा मुनियोंकी सभामें बैठ गये॥ ४०-४१॥

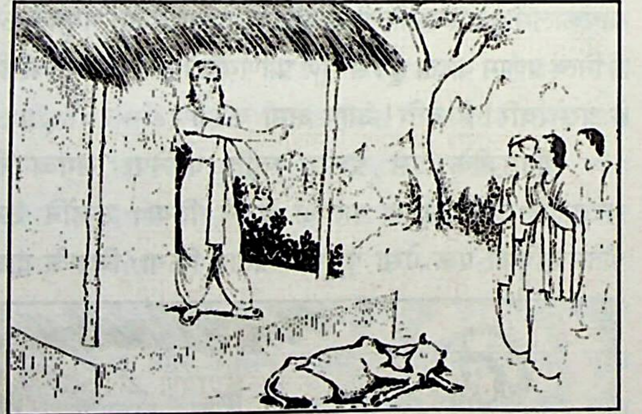
तत्पश्चात् गौतम आदि श्रेष्ठ मुनियोंसे विधिवत् पूजित होकर शान्त मनवाले नारदजी गौतमकी यश-सम्बन्धी विविध कथाओंका वर्णन करने लगे—हे ब्रह्मर्षे! देवराज इन्द्रने मुनियोंके भरण-पोषणसे सम्बन्धित आपकी विमल कीर्तिका गान देवताओंकी सभामें अनेक प्रकारसे किया है। शचीपति इन्द्रकी वही वाणी सुनकर आपका दर्शन करनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! जगदम्बाकी कृपासे आप धन्य हैं॥ ४२—४४॥

उन मुनिवर गौतमसे ऐसा कहकर नारदजी गायत्री-सदनमें गये। प्रेमसे प्रफुल्लित नेत्रोंवाले नारदजीने वहाँ उन भगवती जगदम्बाका दर्शन किया और विधिवत् उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् उन्होंने स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। इसके बाद वहाँपर मुनि गौतमके द्वारा पालित-पोषित जो ब्राह्मण थे, वे मुनिका उत्कर्ष सुनकर ईर्ष्यासे दुःखी हो गये। कुछ समय बीतनेके बाद उन सभीने यह निश्चय किया कि किसी भी प्रकारसे हमलोगोंको सर्वथा वही प्रयत्न करना चाहिये, जिससे इस गौतमऋषिका यश न बढ़े॥ ४५—४७½॥

हे महाराज! कुछ कालके अनन्तर पृथ्वीतलपर वृष्टि भी होने लगी और सभी देशोंमें सुभिक्ष हो गया। सर्वत्र सुभिक्षकी बात सुनकर वे ब्राह्मण एकत्र हो गये और हे राजन्! हाय-हाय! वे गौतमको शाप देनेका प्रयत्न करने लगे। वे माता-पिता भी आज धन्य हो गये, जिनके यहाँ ऐसे [कृतघ्न ब्राह्मण-] पुत्रोंका जन्म हुआ है॥ ४८—५०॥

हे राजन्! कालकी महिमा भला कौन जान सकता है? उस समय उन ब्राह्मणोंने मायाके द्वारा एक मरणासन्न वृद्ध गाय बनायी, जब मुनि हवन कर रहे थे, उसी समय वह गाय यज्ञशालामें पहुँची। मुनि गौतमने 'हुं हुं' शब्दोंसे उसे आनेसे रोका; उसी क्षण उसने अपने प्राण त्याग दिये॥ ५१-५२॥

तब वे ब्राह्मण जोर-जोरसे कहने लगे कि इस दुष्ट गौतमने गौकी हत्या कर दी। तब मुनिराज गौतम हवन समाप्त करनेके पश्चात् इस घटनासे अत्यन्त आश्चर्यचकित हो उठे। वे अपने नेत्र बन्द करके समाधिमें स्थित होकर इसके कारणपर विचार करने लगे। यह सब कुछ ब्राह्मणोंने ही किया है—ऐसा जानकर उन्होंने प्रलयकालीन रुद्रके क्रोधके समान परम कोप किया। इस प्रकार कोपसे लाल



नेत्रोंवाले उन गौतमने सभी ऋषियोंको यह शाप दे दिया—'अधम ब्राह्मणो! तुमलोग वेदमाता गायत्रीकी उपासना, ध्यान और उनके मन्त्र-जपसे सर्वथा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! वेद, वेदोक्त यज्ञों तथा वेदसम्बन्धी वार्ताओंसे तुम सभी सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! तुम सभी शिवोपासना, शिव-मन्त्रके जप तथा शिव-सम्बन्धी शास्त्रोंसे सर्वदा विमुख हो जाओ॥ ५३—५८॥

हे अधम ब्राह्मणो! मूलप्रकृति भगवती श्रीदेवीकी उपासना, उनके ध्यान तथा उनकी कथाओंसे तुमलोग सदा विमुख हो जाओ। हे अधम ब्राह्मणो! देवीके मन्त्र-जप, उनकी प्रतिष्ठास्थली तथा उनके अनुष्ठान-कर्मसे तुमलोग सदा पराङ्मुख हो जाओ॥ ५९-६०॥

हे अधम ब्राह्मणो! देवीका उत्सव देखने तथा उनके नामोंके कीर्तनसे तुम सब सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! देवी-भक्तके समीप रहने तथा देवी-भक्तोंकी अर्चना करनेसे तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६१-६२॥

हे अधम ब्राह्मणो! भगवान् शिवका उत्सव देखने तथा शिव-भक्तका पूजन करनेसे तुम सदा विमुख रहो। हे अधम ब्राह्मणो! रुद्राक्ष, बिल्वपत्र तथा शुद्ध भस्मसे तुमलोग सर्वदा वंचित रहो॥ ६३-६४॥

हे अधम ब्राह्मणो! श्रौत-स्मार्त-सम्बन्धी सदाचार तथा ज्ञान-मार्गसे तुमलोग सदा वंचित रहो। हे अधम ब्राह्मणो! अद्वैत ज्ञाननिष्ठा और शम-दम आदि साधनोंसे तुमलोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६५-६६॥

हे अधम ब्राह्मणो! नित्यकर्म आदिके अनुष्ठान तथा अग्निहोत्र आदि सम्पन्न करनेसे भी तुमलोग सदा वंचित हो जाओ॥ ६७॥

हे अधम ब्राह्मणो! स्वाध्याय-अध्ययन तथा प्रवचन आदिसे भी तुम सभी लोग सर्वदा विमुख रहो॥ ६८॥

हे अधम ब्राह्मणो! गौ आदिके दान और पितरोंके श्राद्धकर्मसे तुम सभी लोग सदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ६९॥

हे अधम ब्राह्मणो! कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रतों तथा पाप आदिके प्रायश्चित्त कर्मोंसे तुम सभी लोग सर्वदाके लिये विमुख हो जाओ॥ ७०॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग देवी भगवतीके अतिरिक्त अन्य देवताओंके प्रति श्रद्धा तथा भक्तिसे युक्त होकर और शंख-चक्र आदिका चिह्न धारण करनेवाले हो जाओ॥ ७१॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग कापालिक मतमें आसक्त, बौद्ध शास्त्रोंके परायण तथा पाखण्डपूर्ण आचारमें निरत रहो॥ ७२॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पिता, माता, पुत्री, भाई, कन्या और पत्नीका विक्रय करनेवाले व्यक्तियोंके समान हो जाओ॥ ७३॥

हे अधम ब्राह्मणो! वेदका विक्रय करनेवाले, तीर्थ बेचनेवाले और धर्म बेचनेवाले व्यक्तियोंके समान तुमलोग हो जाओ॥ ७४॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग पांचरात्र, कामशास्त्र, कापालिक मत और बौद्ध मतके प्रति श्रद्धा रखनेवाले हो जाओ॥ ७५॥

हे अधम ब्राह्मणो! तुमलोग माता, कन्या, भगिनी तथा परायी स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेवाले हो जाओ॥ ७६॥

तुम्हारे वंशमें उत्पन्न स्त्रियाँ तथा पुरुष मेरे द्वारा दिये हुए इस शापसे दग्ध होकर तुमलोगोंके ही समान हो जायँगे॥ ७७॥

मेरे अधिक कहनेसे क्या प्रयोजन! मूलप्रकृति परमेश्वरी भगवती गायत्रीका अवश्य ही तुमलोगोंपर महान् कोप है। अतः तुमलोगोंका अन्धकूप आदि नरककुण्डोंमें सदा वास होगा॥ ७८$^{1}/_{2}$॥

व्यासजी बोले—इस प्रकारका वाग्दण्ड देकर गौतममुनिने आचमन किया और तत्पश्चात् भगवती गायत्रीके दर्शनार्थ अत्यन्त उत्सुक होकर वे देवी-मन्दिर गये। वहाँ उन्होंने महादेवीको प्रणाम किया। वे परात्परा भगवती गायत्री भी ब्राह्मणोंकी कृतघ्नताको देखकर स्वयं अपने मनमें चकित हो रही थीं और आज भी उनका मुख आश्चर्यसे युक्त दिखायी पड़ता है॥ ७९—८१॥

आश्चर्ययुक्त मुखकमलवाली भगवती गायत्रीने उन मुनिवर गौतमसे कहा—'हे महाभाग! सर्पको दिया गया दुग्ध उसके विषको ही बढ़ानेवाला होता है। अब आप धैर्य धारण कीजिये; क्योंकि कर्मकी ऐसी ही गति होती है।' तत्पश्चात् भगवतीको प्रणामकर गौतमजी अपने आश्रमके लिये चल दिये॥ ८२-८३॥

तब शापदग्ध वे ब्राह्मण वेदोंको भूल गये। उन सभीको गायत्री मन्त्र भी विस्मृत हो गया। ऐसी आश्चर्यकारी घटना हुई॥ ८४॥

अब वे सभी ब्राह्मण एकत्र होकर पश्चात्ताप करने

लगे और दण्डकी भाँति पृथ्वीपर गिरकर उन्होंने मुनिवर गौतमको प्रणाम किया॥ ८५॥

लज्जासे अपने मुख नीचेकी ओर किये हुए वे कुछ भी वाक्य नहीं बोल सके। वे चारों ओरसे मुनीश्वरको घेरकर बार-बार यही प्रार्थना करने लगे—आप प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये॥ ८६$^{१}/_{२}$॥

इसपर मुनिका हृदय करुणासे भर आया और वे उन ब्राह्मणोंसे बोले—'कृष्णावतारपर्यन्त तुमलोगोंको कुम्भीपाक नरकमें वास करना पड़ेगा; क्योंकि मेरा वचन मिथ्या कदापि नहीं हो सकता—इसे तुमलोग भलीभाँति जान लो। तत्पश्चात् कलियुगमें भूमण्डलपर तुमलोगोंका जन्म होगा। मेरे द्वारा कही गयी ये सारी बातें अन्यथा नहीं हो सकतीं। यदि मेरे शापसे मुक्तिकी तुमलोगोंको इच्छा है, तो तुम सब भगवती गायत्रीके चरणकमलकी सदा उपासना करो'॥ ८७—९०॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर मुनिश्रेष्ठ गौतमने सभी ब्राह्मणोंको विदा कर दिया। तत्पश्चात् 'यह सब प्रारब्धका प्रभाव है'—ऐसा मानकर उन्होंने अपना चित्त शान्त कर लिया। हे राजन्! यही कारण है कि बुद्धिसम्पन्न भगवान् श्रीकृष्णके महाप्रयाण करनेके पश्चात् कलियुग आनेपर वे सभी ब्राह्मण कुम्भीपाक नरककुण्डसे निकल आये॥ ९१-९२॥

इस प्रकार पूर्वकालमें शापसे दग्ध वे ब्राह्मण भूमण्डलपर उत्पन्न हुए; जो त्रिकाल सन्ध्यासे हीन, भगवती गायत्रीकी भक्तिसे विमुख, वेदोंके प्रति श्रद्धारहित, पाखण्डमतका अनुसरण करनेवाले, अग्निहोत्र आदि सत्कर्म न करनेवाले और स्वाहा-स्वधासे रहित हैं। उनमें कुछ ऐसे हैं, जो मूलप्रकृति तथा अव्यक्तस्वरूपिणी गायत्रीके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। कोई-कोई तप्तमुद्रा धारण करके स्वेच्छाचार-परायण हो गये हैं। उनमेंसे कुछ कापालिक, कौलिक, बौद्ध तथा जैनमतको माननेवाले हैं, वे सभी पण्डित होते हुए भी दुराचारके प्रवर्तक हैं। परायी स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेवाले सभी लम्पट अपने कुत्सित कर्मोंके कारण पुनः उसी कुम्भीपाक नरककुण्डमें जायँगे॥ ९३—९७॥

अतएव हे राजन्! हर प्रकारसे परमेश्वरीकी उपासना करनी चाहिये। न विष्णुकी उपासना नित्य है और न तो शिवकी ही उपासना नित्य है; केवल शक्तिकी उपासना नित्य है, जिसके न करनेसे मनुष्यका अधःपतन हो जाता है। हे निष्पाप! आपने मुझसे जो पूछा था, वह सब मैंने संक्षेपमें बता दिया। अब आप मणिद्वीपका मनोरम वर्णन सुनिये, जो जगत्को उत्पन्न करनेवाली आदिशक्तिस्वरूपिणी भुवनेश्वरीका परमधाम है॥ ९८—१००॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'ब्राह्मणोंका गायत्रीसे भिन्न अन्य देवोपासनामें श्रद्धाके हेतुका निरूपण' नामक नौवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ९॥

दसवाँ अध्याय

मणिद्वीपका वर्णन

व्यासजी बोले—[हे महाराज जनमेजय!] ब्रह्मलोकसे ऊपरके भागमें जो सर्वलोक सुना गया है, वही मणिद्वीप है; जहाँ भगवती विराजमान रहती हैं॥ १॥

चूँकि यह सभी लोकोंसे श्रेष्ठ है, इसलिये इसे सर्वलोक कहा गया है। पूर्वकालमें मूलप्रकृतिस्वरूपिणी पराम्बा भगवतीने सबसे प्रारम्भमें अपने निवासहेतु स्वेच्छासे इसका निर्माण किया था। यह लोक कैलास, वैकुण्ठ और गोलोकसे भी महान् तथा उत्तम है। समस्त लोकोंसे श्रेष्ठ होनेके कारण यह सर्वलोक कहा गया है। तीनों लोकोंमें उसके समान सुन्दर स्थान कहीं नहीं है॥ २—४॥

हे सत्तम! वह मणिद्वीप तीनों जगत्का छत्रस्वरूप तथा सांसारिक सन्तापोंका नाश करनेवाला है और सभी ब्रह्माण्डोंका भी छायास्वरूप वही है॥ ५॥

उस मणिद्वीपके चारों ओर अनेक योजन विस्तारवाला तथा परिमाणमें उतना ही गहरा अमृतका सागर विद्यमान है, जो पवनके आघातसे उठी हुई सैकड़ों तरंगोंसे परिपूर्ण,

रत्नमयी स्वच्छ बालुकासे युक्त, मत्स्य और शंखोंसे सम्पन्न, तरंगोंके परस्पर संघर्षसे उत्पन्न बड़ी-बड़ी लहरोंद्वारा विकीर्ण शीतल जल-कणोंसे शोभायमान और अनेक प्रकारकी ध्वजाओंसे युक्त नानाविध आवागमनवाले पोतोंसे मण्डित है॥ ६—८॥

उस सुधासागरके चारों ओर तटोंपर रत्नमय वृक्ष विराजमान हैं। उसके उत्तर तरफ लौहधातुकी बनी हुई सात योजन विस्तारवाली एक गगनस्पर्शी महान् चहारदीवारी है॥ ९½॥

उसमें अनेक प्रकारके शस्त्रोंके प्रहारमें दक्ष तथा नानाविध युद्धकलाओंमें पारंगत बहुत-से रक्षक सभी ओर आनन्दपूर्वक निवास करते हैं॥ १०½॥

हे राजन्! उस परकोटेमें चार द्वार तथा सैकड़ों द्वारपाल हैं। भगवतीमें भक्ति रखनेवाले अनेक गणोंसे वह चारों ओरसे घिरा हुआ है। जो देवता भगवती जगदीश्वरीके दर्शनार्थ आते हैं, उनके गण तथा वाहन यहाँ रहते हैं॥ ११-१२½॥

यह सैकड़ों विमानोंकी घरघराहट तथा घंटा-ध्वनिसे सदा परिपूर्ण रहता है। घोड़ोंकी हिनहिनाहट तथा उनके खुरोंके आघातकी ध्वनिसे दिशाएँ बधिर-सी हो जाती हैं। हे राजन्! किलकिलाहटकी ध्वनि करते हुए तथा हाथमें बेंत लिये हुए देवी-गणोंके द्वारा ताडित देवताओंके सेवक वहाँ सदा विराजमान रहते हैं॥ १३-१४½॥

हे राजन्! उस कोलाहलमें कोई किसीकी बात नहीं सुन पाता। अनेक प्रकारकी ध्वनियोंसे मिश्रित उस स्थानपर अत्यधिक चेष्टा करनेपर ही किसीकी बात सुनी जा सकती है। हे राजन्! वहाँ स्थान-स्थानपर मीठे जलसे परिपूर्ण सरोवर और रत्नमय वृक्षोंसे युक्त अनेक प्रकारके उद्यान सुशोभित हो रहे हैं॥ १५-१६½॥

उस परकोटेके आगे कांस्य धातुसे बना हुआ उससे भी विशाल दूसरा मण्डलाकार परकोटा है, जिसका शिखर आकाशको छूता रहता है। यह परकोटा पहले परकोटेसे तेजमें सौ गुना अधिक है॥ १७-१८॥

गोपुर और द्वारसे शोभा पानेवाला यह प्राकारमण्डल अनेक वृक्षोंसे युक्त है। वृक्षोंकी जितनी जातियाँ होती हैं, वे सब वहाँपर हैं। वे वृक्ष सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते हैं तथा वे नये-नये पल्लवों और उत्तम सुगन्धसे सदा परिपूर्ण रहते हैं॥ १९-२०॥

कटहल, मौलसिरी, लोध, कर्णिकार, शीशम, देवदारु, कचनार, आम, सुमेरु, लिकुच, हिंगुल, इलायची, लौंग, कट्फल, पाटल, मुचुकुन्द, फलिनी, जघनेफल, ताल, तमाल, साल, कंकोल, नागभद्र, नागकेसर, पीलु, साल्व, कर्पूरशाखी, अश्वकर्ण, हस्तिकर्ण, तालपर्ण, दाडिम, गणिका, बन्धुजीव, जम्भीरी नीबू, कुरण्डक, चम्पा, बन्धुजीव, धतूरा, कालागुरु, चन्दन, खजूर, जूही, तालपर्णी, ईख, क्षीरवृक्ष, खैर, इमली, भेलावा, बिजौरा नीबू, कुटज तथा बिल्वके वृक्ष वहाँ सुशोभित रहते हैं। तुलसी तथा मल्लिकाके वन भी वहाँ विद्यमान हैं। हे राजन्! अनेक जातिवाले वृक्षोंके वन तथा उपवन यहाँ शोभायमान हैं, जो सैकड़ों बावलियोंसे युक्त हैं॥ २१—२८॥

कोयलोंकी मीठी ध्वनिसे युक्त, भौंरोके गुंजारसे भूषित तथा शीतल छाया प्रदान करनेवाले वे सभी उत्तम वृक्ष निरन्तर रसस्राव करते रहते हैं। अनेक ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले वे वृक्ष अनेक प्रकारके पक्षियोंसे सदा युक्त रहते हैं। वे अनेकविध रस प्रवाहित करनेवाली नदियोंसे सर्वदा सुशोभित रहते हैं। कबूतर, तोता, मैना तथा हंस आदि पक्षियोंके पंखोंसे निकली हुई वायुसे वहाँके वृक्ष सदा हिलते रहते हैं। सुगन्धि-मिश्रित पवनसे परिपूर्ण वह वन इधर-उधर दौड़ती हुई हरिणियोंके समूहोंसे सदा शोभा प्राप्त करता है। नाचते हुए मोरोंकी सुखदायक केका-ध्वनियोंसे मुखरित वह दिव्य वन सदा मधुका स्राव करता रहता है॥ २९—३३॥

उस कांस्यके प्राकारके आगे ताम्रकी चहारदीवारी बतायी गयी है, जो आकारमें चौकोर तथा ऊँचाईमें सात योजन परिमाणवाली है। हे राजन्! उन दोनों प्राकारोंके मध्यमें एक कल्पवाटिका कही गयी है, जिसके वृक्षोंके पुष्प तथा पत्ते सुवर्ण-सदृश आभावाले हैं और बीज तथा फल रत्नके समान हैं। वहाँ चारों ओर दस योजनतक सुगन्ध फैली रहती है॥ ३४—३६॥

हे राजन्! वसन्त ऋतु उस वनकी सदा सुरक्षा करता

रहता है। पुष्पके भूषणसे विभूषित, पुष्प-छत्रसे सुशोभित तथा पुष्पके आसवका सेवन करके मदमत्त वह वसन्त पुष्पके सिंहासनपर विराजमान रहता है। मधुश्री तथा माधवश्री नामक मुसकानयुक्त मुखवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं, जो सदा पुष्पोंके गुच्छोंका कन्दुक बनाकर क्रीडा करती रहती हैं। वह अत्यन्त रम्य वन चारों ओर मधुकी धारा प्रवाहित करता रहता है॥ ३७—३९॥

पुष्पोंकी गन्धको लेकर प्रवाहित होनेवाली वायुके द्वारा वहाँका दस योजनपर्यन्त स्थान सदा सुवासित रहता है। इस प्रकार वह दिव्य वन वसन्तलक्ष्मीसे संयुक्त, कामियोंके कामको उद्दीप्त करनेवाला, मतवाले कोकिलोंकी ध्वनिसे मुखरित तथा अपनी अंगनाओंसहित गान-लोलुप दिव्य गन्धर्वोंसे सदा सुशोभित रहता है॥ ४०-४१॥

उस ताम्रके परकोटेके आगे एक सीसेका परकोटा है; इसकी भी ऊँचाई सात योजन कही गयी है। हे राजन्! इन दोनों प्राकारोंके मध्यमें सन्तान नामक वाटिका है। वहाँके पुष्पोंकी सुगन्धि चारों ओर दस योजनतक फैली रहती है। सुवर्णकी आभावाले खिले हुए फूल तथा अमृत-तुल्य मधुर रसोंसे परिपूर्ण मधुर फल वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं॥ ४२—४४॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस वाटिकाका नायक ग्रीष्मऋतु है। शुकश्री तथा शुचिश्री नामवाली उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। सन्तापसे व्याकुल प्राणी उस वाटिकाके वृक्षोंकी छायामें सुखपूर्वक स्थित रहते हैं। अनेक सिद्धों तथा देवताओंसे वह प्राकार सदा समन्वित रहता है॥ ४५-४६॥

हे राजन्! पुष्प-मालाओंसे विभूषित होकर अपने करकमलोंमें ताड़का पंखा लिये और अपने अंगोंमें चन्दन लगाये तथा शीतल जलका सेवन करनेवाली अनेक विलासिनी अंगनाओंके द्वारा वह प्राकार नित्य सुशोभित रहता है॥ ४७१/२॥

हे राजन्! उस सीसेके प्राकारके भी आगे परिमाणमें सात योजन लम्बा पीतलकी धातुसे निर्मित एक सुन्दर परकोटा है॥ ४८१/२॥

उन दोनों परकोटोंके मध्यमें हरिचन्दन वृक्षोंकी एक वाटिका कही गयी है। वहाँका स्वामी मेघोंपर आसीन रहनेवाला वर्षाऋतु है। वह पिंगल-वर्णवाले विद्युत्को नेत्रके रूपमें तथा मेघोंको कवचके रूपमें धारण करनेवाला कहा गया है। विद्युत्का गर्जन ही इसका मुख है और वह इन्द्रधनुषको धनुषरूपमें धारण किये रहता है। वह अपने गणोंसे आवृत होकर चारों ओर हजारों जलधाराएँ छोड़ता रहता है॥ ४९—५१॥

नभःश्री, नभस्यश्री, स्वरस्या, रस्यमालिनी, अम्बा, दुला, निरत्नि, अभ्रमन्ती, मेघयन्तिका, वर्षयन्ती, चिपुणिका और वारिधारा—ये बारह वर्षाऋतुकी प्रिय शक्तियाँ कही गयी हैं, जो सदा मदसे विह्वल रहती हैं॥ ५२-५३॥

नवीन लताओंसे समन्वित तथा नवीन पल्लवोंसे युक्त वृक्ष तथा हरे-भरे तृण वहाँ सदा विद्यमान रहते हैं, जिनसे वहाँकी सम्पूर्ण भूमि आच्छादित रहती है। वहाँ नदी तथा नद अत्यन्त वेगसे प्रवाहित होते रहते हैं। राग-द्वेषसे युक्त मनुष्योंके चित्तके समान गन्दे जलवाले अनेक सरोवर भी वहाँ विद्यमान हैं॥ ५४-५५॥

देवता तथा सिद्धपुरुष वहाँ निवास करते हैं। देवी-कर्ममें निरन्तर तत्पर रहनेवाले तथा वापी, कूप और तालाबका निर्माण कराके देवीको अर्पण करनेवाले वे लोग अपनी स्त्रियोंके साथ वहाँ आनन्दपूर्वक रहते हैं॥ ५६१/२॥

उस पीतलके प्राकारके आगे सात योजनकी लम्बाईवाला एक पंचलौह-निर्मित परकोटा है, जिसके बीचमें नानाविध पुष्पों, लताओं तथा पल्लवोंसे सुशोभित मन्दारवाटिका विराजमान है॥ ५७-५८॥

विकाररहित शरद् ऋतुको यहाँका अधिष्ठाता कहा गया है। इक्षुलक्ष्मी और ऊर्जलक्ष्मी—ये उसकी दो प्रिय भार्याएँ हैं। अनेक सिद्धलोग अपनी भार्याओं तथा अनुचरोंके साथ यहाँ निवास करते हैं॥ ५९१/२॥

उस पंचलौहमय परकोटेके आगे विशाल शिखरों तथा सात योजन लम्बाईवाला एक दीप्तियुक्त रजत-निर्मित परकोटा है। उसके मध्यमें पुष्पोंके गुच्छोंसे परिपूर्ण पारिजात-वन विद्यमान है॥ ६०-६१॥

चारों ओर दस योजनकी दूरीतक सुगन्ध फैलानेवाले पुष्प वहाँपर देवी-पूजन आदि कर्मोंमें तत्पर सभी गणोंको प्रसन्न किये रहते हैं॥ ६२॥

हे राजन्! महान् उज्ज्वल हेमन्तऋतु वहाँका स्वामी कहा गया है। वह सभी रागी पुरुषोंको आनन्दित करते हुए हाथमें आयुध लेकर अपने गणोंके साथ वहाँ उपस्थित रहता है॥ ६३॥

उसकी सहश्री तथा सहस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। भगवतीका व्रत करनेवाले जो सिद्धलोग हैं, वे वहाँ निवास करते हैं॥ ६४॥

उस रजतके परकोटेके आगे तप्त स्वर्णसे निर्मित सात योजन लम्बा एक अन्य परकोटा है, जिसे सौवर्णसाल कहा गया है॥ ६५॥

उसके बीचमें पुष्पों तथा पल्लवोंसे सुशोभित एक कदम्ब-वाटिका है, जहाँ कदम्बके आसवकी हजारों धाराएँ निरन्तर बहती रहती हैं, जिसका सेवन करनेसे आत्मानन्दका अनुभव होता है। वहाँका स्वामी श्रेष्ठ शिशिर ऋतु कहा गया है॥ ६६-६७॥

उसकी तपःश्री और तपस्यश्री नामक दो प्रिय भार्याएँ हैं। अपने अनेक गणोंसे घिरा हुआ शिशिर ऋतु इन दोनों भार्याओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक अनेकविध क्रीडाओंमें तत्पर रहता है॥ ६८१/२॥

देवीकी प्रसन्नताके निमित्त अनेक दान करनेवाले जो महान् सिद्धपुरुष हैं, वे अनेकविध भोगोंसे उत्पन्न महानन्दसे युक्त होकर और अपने परिवारजनों तथा भार्याओंको साथ लेकर वहाँ समूहमें निवास करते हैं॥ ६९-७०॥

उस स्वर्णनिर्मित परकोटेके आगे कुमकुमके समान अरुणवर्णवाला तथा सात योजन लम्बा पुष्परागमणिनिर्मित परकोटा है॥ ७१॥

वहाँकी भूमि पुष्परागमयी है। इसी प्रकार वहाँके वन, उपवन तथा थालोंसमेत वृक्ष पुष्परागरत्नसे युक्त कहे गये हैं॥ ७२॥

वहाँ जिस रत्नका परकोटा बना हुआ है, उसी रत्नसे वहाँके वृक्ष, वन, भूमि, पक्षी, मण्डप, मण्डपोंके स्तम्भ, सरोवर और कमल भी निर्मित हैं; वहाँ जल भी उसी रत्नके वर्णका है। उस परकोटेके अन्दर जो-जो वस्तुएँ हैं, वे सब उसी रत्नके समान हैं॥ ७३-७४॥

हे प्रभो! रत्ननिर्मित परकोटेंके विषयमें मैंने आपको यह सम्यक् परिचय दे दिया। हे राजन्! इनमें प्रत्येक अगला प्राकार अपने पहलेवाले प्राकारसे एक लाख गुना अधिक तेजसम्पन्न है॥ ७५॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले दिक्पाल अपना एक समूह बनाकर हाथोंमें श्रेष्ठ तथा अत्यन्त तेजोमय आयुध धारण किये हुए यहाँ निवास करते हैं॥ ७६॥

इस मणिद्वीपकी पूर्वदिशामें ऊँचे शिखरोंसे युक्त अमरावतीपुरी है। अनेकविध उपवनोंसे युक्त उस पुरीमें इन्द्र विराजमान रहते हैं॥ ७७॥

स्वर्गलोकमें जितनी शोभा स्वर्गकी है, उससे भी अधिक शोभा इस अमरावतीपुरीकी है। अनेक इन्द्रोंके हजार गुनेसे भी अधिक इसकी शोभा कही गयी है। अपने ऐरावतपर आरूढ होकर हाथमें वज्र धारण किये हुए प्रतापी इन्द्र देवसेनाके साथ यहाँ सुशोभित होते हैं और वहींपर अनेक देवांगनाओंके साथ शची भी विराजमान रहती हैं॥ ७८-७९१/२॥

हे राजन्! उस मणिद्वीपके अग्निकोणमें अग्निसदृश प्रज्वलित वह्निपुरी है। वहाँपर अपने देवगणोंसे घिरे हुए अग्निदेव अपने वाहनों तथा भूषणोंसे सुशोभित होकर 'स्वाहा' और 'स्वधा'—इन दो शक्तियोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८०-८१॥

मणिद्वीपकी दक्षिणदिशामें यमपुरी है। हे राजन्! सूर्यपुत्र महाभाग श्रेष्ठ यमराज चित्रगुप्त आदि मन्त्रियोंके साथ अपने अनुचरोंसे घिरे रहकर हाथमें दण्ड धारण किये अपनी शक्तिके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ८२१/२॥

इस मणिद्वीपके नैर्ऋत्यकोणमें राक्षसोंकी पुरी विद्यमान है, जिसमें खड्गधारी निर्ऋति अपनी शक्तिके साथ राक्षसोंसे घिरे हुए विराजमान रहते हैं॥ ८३१/२॥

पश्चिमदिशामें वरुणलोकमें वारुणीपानसे विह्वल, पाश धारण करनेवाले प्रतापवान् वरुणराज विशाल मत्स्यपर सवार होकर वरुणानीमें आसक्त रहते हुए अपनी शक्ति वरुणानी तथा अपने गणोंके साथ विराजमान रहते हैं॥ ८४-८५१/२॥

मणिद्वीपके वायव्यकोणमें वायुलोक स्थित है। विशाल नेत्रोंवाले वायुदेव प्राणायाम करनेमें परम सिद्ध योगियोंके समूह तथा मरुद्गणोंसे सदा घिरे रहकर हाथमें ध्वजा धारण

करके मृगपर आरूढ होकर अपनी शक्तिके साथ वहाँ निवास करते हैं ॥ ८६-८७१/२ ॥

हे राजन्! मणिद्वीपकी उत्तरदिशामें यक्षोंका महान् लोक है। वहाँपर अपनी शक्तिसहित यक्षोंके अधिराज तुन्दिल कुबेर वृद्धि-ऋद्धि आदि शक्तियों, नौ निधियों और मणिभद्र, पूर्णभद्र, मणिमान्, मणिकन्धर, मणिभूष, मणिस्रग्वी, मणिकार्मुकधारक आदि यक्षसेनानियोंके साथ अपनी शक्तिसे समन्वित होकर विराजमान रहते हैं ॥ ८८—९०१/२ ॥

मणिद्वीपके ईशानकोणमें बहुमूल्य रत्नोंसे सम्पन्न महान् रुद्रलोक कहा गया है, जहाँ प्रज्वलित नेत्रों तथा कोपयुक्त विग्रहवाले भगवान् रुद्र अपनी पीठपर महान् तरकस बाँधे तथा बायें हाथमें तेजस्वी धनुष लिये हुए अधिदेवताके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे भगवान् रुद्र धनुष्कोटिपर प्रत्यंचा चढ़ाये हुए धनुर्धारियों, हाथमें शूल तथा श्रेष्ठ आयुध धारण करनेवाले, विकृत मुखवाले, विकराल मुखाकृतिवाले, मुखसे निरन्तर अग्निज्वाला उगलनेवाले, दस भुजाओंवाले, कोई सौ भुजाओंवाले, कितने हजार भुजाओंवाले, दस पैरोंवाले, दस गर्दनवाले, तीन नेत्रोंवाले और अत्यन्त उग्र विग्रहवाले अपने ही सदृश असंख्य रुद्रोंसे सदा घिरे रहते हैं। अन्तरिक्षलोकमें तथा भूलोकमें विचरण करनेवाले जो-जो रुद्र प्रसिद्ध हैं और रुद्राध्यायमें भी जो रुद्र वर्णित हैं; उन सबसे वे भगवान् रुद्र वहाँ आवृत रहते हैं। इसी प्रकार वे करोड़ों रुद्राणियों, भद्रकाली आदि मातृकाओं और विविध शक्तियोंसे युक्त डामरी आदि गणोंसे सदा घिरे रहते हैं। हे राजन्! गलेमें मुण्डकी माला, हाथमें सर्प-वलय, कन्धेपर सर्पका यज्ञोपवीत, शरीरपर बाघम्बर और उत्तरीयके रूपमें गज-चर्म धारण करनेवाले; शरीरके अंगोंमें सदा चिताकी भस्म लगाये रहनेवाले; अपने डमरूकी तीव्र ध्वनिसे दिशाओंको बधिर बना देनेवाले; अपने अट्टहास और आस्फोट शब्दोंसे गगनमण्डलको भयभीत कर देनेवाले, भूतसमुदायसे युक्त रहनेवाले तथा समस्त प्राणियोंके आवासस्वरूप भगवान् महेश्वर रुद्र वहाँपर वीरभद्र आदि गणोंके साथ सदा विराजमान रहते हैं। ये ईशानदिशाके अधिपति हैं; इसीलिये ये 'ईशान' नामसे विख्यात हैं ॥ ९१—१०० ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'मणिद्वीपवर्णन' नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १० ॥

ग्यारहवाँ अध्याय

मणिद्वीपके रत्नमय नौ प्राकारोंका वर्णन

व्यासजी बोले—पुष्परागनिर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला पद्मरागमणियुक्त प्राकार है, जिसके मध्यमें भूमि भी उसी प्रकारकी है। अनेक गोपुर और द्वारोंसे युक्त यह प्राकार लम्बाईमें दस योजन परिमाणवाला है। हे राजन्! वहाँ उसी मणिसे निर्मित खम्भोंसे युक्त सैकड़ों मण्डप विद्यमान हैं ॥ १-२ ॥

उसके मध्यकी भूमिपर रत्नमय भूषणोंसे भूषित, अनेक आयुध धारण करनेवाली तथा पराक्रमसम्पन्न चौंसठ कलाएँ विराजमान रहती हैं। उन कलाओंका एक-एक पृथक् लोक है और अपने-अपने लोककी वे अधीश्वरी हैं। वहाँ चारों ओरकी सभी वस्तुएँ पद्मरागमणिसे निर्मित हैं। अपने-अपने लोकके वाहनों तथा आयुधोंसे युक्त वे कलाएँ अपने-अपने लोकके निवासियोंसे सदा घिरी रहती हैं। हे जनमेजय! अब मैं उन कलाओंके नाम बता रहा हूँ; आप सुनें ॥ ३—५ ॥

पिंगलाक्षी, विशालाक्षी, समृद्धि, वृद्धि, श्रद्धा, स्वाहा, स्वधा, अभिख्या, माया, संज्ञा, वसुन्धरा, त्रिलोकधात्री, सावित्री, गायत्री, त्रिदशेश्वरी, सुरूपा, बहुरूपा, स्कन्दमाता, अच्युतप्रिया, विमला, अमला, अरुणी, आरुणी, प्रकृति, विकृति, सृष्टि, स्थिति, संहृति, सन्ध्यामाता, सती, हंसी, मर्दिका, परा वज्रिका, देवमाता, भगवती, देवकी, कमलासना, त्रिमुखी, सप्तमुखी, सुरासुरविमर्दिनी, लम्बोष्ठी, ऊर्ध्वकेशी, बहुशीर्षा, वृकोदरी, रथरेखा, शशिरेखा, गगनवेगा, पवनवेगा, भुवनपाला, मदनातुरा, अनंगा, अनंगमथना, अनंगमेखला,

अनंगकुसुमा, विश्वरूपा, सुरादिका, क्षयंकरी, शक्ति, अक्षोभ्या, सत्यवादिनी, बहुरूपा, शुचिव्रता, उदारा और वागीशी—ये चौंसठ कलाएँ कही गयी हैं॥ ६—१४॥

क्रोधके कारण अति रक्त नेत्रोंवाली तथा प्रज्वलित जिह्वासे युक्त मुखवाली वे सभी कलाएँ प्रचण्ड अग्नि उगलती हुई सदा इन शब्दोंका उच्चारण करती रहती हैं—'हम अभी सम्पूर्ण जल पी डालेंगी, हम अग्निको नष्ट कर देंगी, हम वायुको रोक देंगी और समस्त संसारका भक्षण कर डालेंगी'॥ १५-१६॥

वे सभी कलाएँ धनुष-बाण धारण करके सदा युद्धके लिये तत्पर रहती हैं और दाँतोंके कटकटानेकी ध्वनिसे दिशाओंको बधिर-सी बना देती हैं॥ १७॥

अपने हाथमें सदा धनुष और बाण धारण करनेवाली ये शक्तियाँ पिंगलवर्णके उठे हुए केशोंसे सम्पन्न कही गयी हैं। इनमेंसे एक-एक कलाके पास सौ-सौ अक्षौहिणी सेना बतायी गयी है। लाखों ब्रह्माण्डोंको नष्ट कर डालनेकी क्षमता एक-एक शक्तिमें विद्यमान है। हे नृपश्रेष्ठ! तो फिर वैसी शक्तियोंसे सम्पन्न सौ अक्षौहिणी सेना इस संसारमें क्या नहीं कर सकती—उसे बतानेमें मैं असमर्थ हूँ॥ १८-१९$^{1}/_{2}$॥

हे मुने! युद्धकी समस्त सामग्री उस पद्मरागके प्राकारमें सदा विद्यमान रहती है। उसमें रथों, घोड़ों, हाथियों और शस्त्रोंकी गणना नहीं है। उसी प्रकार गणोंकी भी कोई गणना नहीं है॥ २०-२१॥

इस पद्मरागमय प्राकारके आगे गोमेदमणिसे निर्मित दस योजन लम्बा एक परकोटा है, जो प्रभायुक्त जपाकुसुमके समान कान्तिमान् है। इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही है। वहाँके निवासियोंके भवन, पक्षी, उत्तम खम्भे, वृक्ष, वापी तथा सरोवर—ये सभी गोमेदमणिसे ही निर्मित हैं। गोमेदमणिसे बनी वहाँकी सभी वस्तुओंका विग्रह कुमकुमके समान अरुण वर्णका है॥ २२—२४॥

उस प्राकारके मध्यमें गोमेदमणिसे भूषित तथा अनेकविध शस्त्र धारण करनेवाली बत्तीस महादेवियाँ निवास करती हैं, जो शक्तियाँ कही गयी हैं। हे राजन्! गोमेदनिर्मित उस प्राकारमें पिशाचोंके समान भयंकर मुखवाली प्रत्येक लोककी निवासिनी शक्तियाँ सावधान होकर चारों ओरसे उसे घेरकर स्थित रहती हैं॥ २५-२६॥

स्वर्गलोकके निवासियोंद्वारा नित्य पूजी जानेवाली वे शक्तियाँ हृदयमें युद्धकी लालसासे युक्त होकर हाथोंमें चक्र धारण किये हुए तथा क्रोधके कारण नेत्र लाल करके 'काटो, पकाओ, छेदो और भस्म कर डालो'—इन शब्दोंको निरन्तर बोलती रहती हैं। उनमें एक-एक महाशक्तिके पास दस-दस अक्षौहिणी सेना कही गयी है। उस सेनाकी एक ही शक्ति एक लाख ब्रह्माण्डोंका संहार करनेमें समर्थ है तो हे राजन्! उस प्रकारकी शक्तियोंसे युक्त विशाल सेनाका वर्णन कैसे किया जा सकता है!॥ २७—२९॥

उनके रथों तथा वाहनोंकी गणना नहीं की जा सकती। भगवतीकी युद्ध-सम्बन्धी समस्त सामग्री वहाँ विद्यमान रहती है। अब मैं भगवतीकी शक्तियोंके पापनाशक नामोंका वर्णन करूँगा—विद्या, ह्री, पुष्टि, प्रज्ञा, सिनीवाली, कुहू, रुद्रा, वीर्या, प्रभा, नन्दा, पोषिणी, ऋद्धिदा, शुभ्रा, कालरात्रि, महारात्रि, भद्रकाली, कपर्दिनी, विकृति, दण्डिनी, मुण्डिनी, सेन्दुखण्डा, शिखण्डिनी, निशुम्भशुम्भमथिनी, महिषासुरमर्दिनी, इन्द्राणी, रुद्राणी, शंकरार्धशरीरिणी, नारी, नारायणी, त्रिशूलिनी, पालिनी, अम्बिका और ह्लादिनी—ये शक्तियाँ कही गयी हैं। यदि ये देवियाँ कुपित हो जायँ, तो सम्पूर्ण ब्रह्माण्डका तत्क्षण नाश हो जायगा। कहीं किसी भी समय इन शक्तियोंकी पराजय सम्भव नहीं है॥ ३०—३५$^{1}/_{2}$॥

गोमेदनिर्मित प्राकारके आगे वज्रमणि (हीरे)-से निर्मित दस योजन ऊँचाईवाला एक परकोटा है। उस परकोटेमें अनेक गोपुर तथा द्वार बने हुए हैं। वह परकोटा कपाट और सांकलसे बन्द रहता है तथा नये-नये वृक्षोंसे सदा सुशोभित रहता है। उस प्राकारके मध्यभागकी समस्त भूमि हीरायुक्त कही गयी है। भवन, गलियाँ, चौराहे, महामार्ग, आँगन, वृक्षोंके थाले, वृक्ष, सारंग, अनेक बावलियाँ, वापी, तडाग तथा कुएँ—ये सब उसी प्रकार हीरकमय हैं॥ ३६—३९॥

उस प्राकारमें भगवती भुवनेश्वरीकी परिचारिकाएँ

रहती हैं। मदसे गर्वित रहनेवाली एक-एक परिचारिका लाखों दासियोंसे सेवित रहती हैं॥ ४०॥

अत्यधिक गर्वित कई परिचारिकाएँ ताड़के पंखे, कई अपने करकमलोंमें मधुपात्र तथा कई अपने हाथमें ताम्बूलपात्र धारण किये रहती हैं। कई परिचारिकाएँ छत्र लिये रहती हैं, कई चामर धारण किये रहती हैं, कुछ अनेक प्रकारके वस्त्र धारण किये रहती हैं और कुछ अपने कमलसदृश हाथोंमें पुष्प लिये स्थित रहती हैं॥ ४१-४२॥

कुछ परिचारिकाएँ अपने हाथोंमें दर्पण, कुछ कुमकुमका लेप, कुछ काजल और कुछ सिन्दूर-पात्र धारण किये खड़ी रहती हैं। कुछ चित्रकारी बनाने, कुछ चरण दबाने, कुछ भूषण सजाने तथा कुछ भगवतीके भूषणसे पूरित रत्नमय पात्र धारण करनेमें तत्पर रहती हैं। कुछ पुष्पोंके आभूषण बनानेवाली, कुछ पुष्प-शृंगारमें कुशल तथा अनेक प्रकारके विलासमें चतुर इसी तरहकी बहुत-सी युवतियाँ वहाँ विद्यमान रहती हैं॥ ४३—४५॥

सुन्दर-सुन्दर परिधान धारण की हुई वे सभी युवतियाँ भगवतीकी लेशमात्र कृपाके प्रभावसे तीनों लोकोंको तुच्छ समझती हैं। शृंगारके मदमें उन्मत्त ये सब देवीकी दूतिकाएँ कही गयी हैं। हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उनके नाम बता रहा हूँ, सुनिये॥ ४६-४७॥

पहली अनंगरूपा, दूसरी अनंगमदना और तीसरी सुन्दर रूपवाली मदनातुरा कही गयी है। तत्पश्चात् भुवनवेगा, भुवनपालिका, सर्वशिशिरा, अनंगवदना और अनंगमेखला हैं। इनके सभी अंग विद्युत्‌की कान्तिके समान प्रकाशमान रहते हैं, इनके कटिभाग कई लड़ियोंवाली ध्वनिमय किंकिणियोंसे सुशोभित हैं और इनके चरण ध्वनि करते हुए नूपुरसे सुशोभित हैं। ये सभी दूतियाँ वेगपूर्वक बाहर तथा भीतर जाते समय विद्युत्‌की लताके सदृश सुशोभित होती हैं। हाथमें बेंत लेकर सभी ओर भ्रमण करनेवाली ये दूतियाँ सभी कार्योंमें दक्ष हैं। इस प्राकारसे बाहर आठों दिशाओंमें इन दूतियोंके निवासहेतु अनेकविध वाहनों तथा शस्त्रोंसे सम्पन्न भवन विद्यमान हैं॥ ४८—५२॥

वज्रमणि-निर्मित प्राकारसे आगे वैदूर्यमणिसे बना हुआ एक प्राकार है। अनेक गोपुरों तथा द्वारोंसे सुशोभित वह प्राकार दस योजन ऊँचाईवाला है॥ ५३॥

वहाँकी सम्पूर्ण भूमि वैदूर्यमणियुक्त है। वहाँके अनेक प्रकारके भवन, गलियाँ, चौराहे तथा महामार्ग—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं। इस परकोटेकी बावलियाँ, कुएँ, तडाग, नदियोंके तट और बालू—ये सब वैदूर्यमणिसे निर्मित हैं॥ ५४-५५॥

हे नृपश्रेष्ठ! उस प्राकारकी आठों दिशाओंमें सब ओर अपने गणोंसे सदा घिरी रहनेवाली ब्राह्मी आदि देवियोंका मण्डल सुशोभित रहता है। वे प्रत्येक ब्रह्माण्डके मातृकाओंकी समष्टियाँ कही गयी हैं। ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी और चामुण्डा—ये सात मातृकाएँ और आठवीं महालक्ष्मी नामवाली—इस प्रकार ये आठ मातृकाएँ कही गयी हैं॥ ५६—५८॥

जगत्‌का कल्याण करनेवाली तथा अपनी-अपनी सेनाओंसे घिरी हुई वे मातृकाएँ ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओंके समान आकारवाली कही गयी हैं॥ ५९॥

हे राजन्! उस परकोटेके चारों द्वारोंपर महेश्वरी भगवतीके वाहन अलंकारोंसे सुसज्जित होकर सर्वदा विराजमान रहते हैं॥ ६०॥

उनके वाहनके रूपमें करोड़ों हाथी, करोड़ों घोड़े, पालकियाँ, हंस, सिंह, गरुड, मयूर और वृषभ हैं। हे नृपनन्दन! उन वाहनोंसे युक्त करोड़ों रथ वहाँ विद्यमान रहते हैं, जिनपर सेनापति विराजमान रहते हैं और आकाशतक पहुँचनेवाली पताकाएँ सुशोभित रहती हैं॥ ६१-६२॥

अनेकविध वाद्य-यन्त्रोंसे युक्त, विशाल ध्वजाओंसे सुशोभित और अनेक प्रकारके चिह्नोंसे अंकित करोड़ों विमान उस प्राकारमें स्थित रहते हैं॥ ६३॥

वैदूर्यमणिमय प्राकारके भी आगे इन्द्रनीलमणि-निर्मित दस योजन ऊँचा एक दूसरा प्राकार कहा गया है॥ ६४॥

उस प्राकारके मध्यकी भूमि, गलियाँ, राजमार्ग, भवन, वापी, कुएँ और सरोवर—ये सब उसी मणिसे बने हुए हैं॥ ६५॥

वहाँपर दूसरे सुदर्शन चक्रकी भाँति प्रतीत होनेवाला, अनेक योजन विस्तृत तथा सोलह दलोंवाला एक दीप्तिमान् कमल विद्यमान कहा गया है। उसपर सोलह शक्तियोंके लिये सभी सामग्रियों तथा समृद्धियोंसे सम्पन्न विविध स्थान बने हुए हैं॥ ६६-६७॥

हे नृपश्रेष्ठ! अब मैं उन शक्तियोंके नामोंका वर्णन करूँगा, सुनिये—कराली, विकराली, उमा, सरस्वती, श्री, दुर्गा, उषा, लक्ष्मी, श्रुति, स्मृति, धृति, श्रद्धा, मेधा, मति, कान्ति और आर्या—ये सोलह शक्तियाँ हैं॥ ६८-६९॥

अपने करकमलोंमें ढाल तथा तलवार धारण किये हुए, नीले मेघके समान वर्णवाली तथा अपने मनमें सदा युद्धकी लालसा रखनेवाली ये सभी शक्तियाँ जगदीश्वरी श्रीदेवीकी सेनानी हैं। ये प्रत्येक ब्रह्माण्डमें स्थित रहनेवाली शक्तियोंकी नायिकाएँ कही गयी हैं॥ ७०-७१॥

अनेक शक्तियोंको साथ लेकर भाँति-भाँतिके रथोंपर विराजमान ये शक्तियाँ भगवती जगदम्बाकी शक्तिसे सम्पन्न होनेके कारण सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको क्षुब्ध करनेमें समर्थ हैं। हजार मुखवाले शेषनाग भी इनके पराक्रमका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं॥ ७२१/२॥

उस इन्द्रनीलमणिके विशाल प्राकारके आगे दस योजनकी ऊँचाईतक उठा हुआ एक अतिविस्तीर्ण तथा प्रकाशमान मोतीका प्राकार है। इसके मध्यकी भूमि भी मोतीकी बनी हुई कही गयी है। उसके मध्यमें मुक्तामणियोंसे निर्मित तथा केसरयुक्त आठ दलोंवाला एक विशाल कमल विद्यमान है। उन आठों दलोंपर भगवती जगदम्बाके ही समान आकारवाली देवियाँ अपने हाथोंमें आयुध धारण किये सदा विराजमान रहती हैं। जगत्‌का समाचार सूचित करनेवाली ये आठ देवियाँ भगवतीकी मन्त्रिणी कही गयी हैं॥ ७३—७५१/२॥

वे देवियाँ भगवतीके समान भोगवाली, उनके संकेतको समझनेवाली, बुद्धिसम्पन्न, सभी कार्योंमें कुशल, अपनी स्वामिनीके कार्य-सम्पादनमें तत्पर, भगवतीके अभिप्रायको जाननेवाली, चतुर तथा अत्यन्त सुन्दर हैं॥ ७६-७७॥

विविध शक्तियोंसे सम्पन्न वे देवियाँ अपनी ज्ञान-शक्तिके द्वारा प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले प्राणियोंका समाचार जान लेती हैं। हे नृपश्रेष्ठ! मैं उनके नाम बता रहा हूँ, आप सुनिये—अनंगकुसुमा, अनंगकुसुमातुरा, अनंगमदना, अनंगमदनातुरा, भुवनपाला, गगनवेगा, शशिरेखा और गगनरेखा। अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्राएँ धारण किये हुए लाल विग्रहवाली वे देवियाँ विश्वसे सम्बन्धित सभी बातोंसे भगवतीको प्रतिक्षण अवगत कराती रहती हैं॥ ७८—८११/२॥

इस मुक्ता-प्राकारके आगे महामरकतमणिसे निर्मित एक दूसरा श्रेष्ठ प्राकार कहा गया है। वह दस योजन लम्बा और अनेकविध सौभाग्य तथा भोगवाली सामग्रियोंसे परिपूर्ण है॥ ८२-८३॥

इसके मध्यकी भूमि भी वैसी ही अर्थात् मरकतमणिके सदृश है और वहाँके भवन भी उसी मणिसे निर्मित हैं। उस प्राकारमें भगवतीका एक विशाल तथा छः कोणोंवाला यन्त्र है। अब आप उन कोणोंपर विराजमान रहनेवाले देवताओंके विषयमें सुनिये॥ ८४॥

इसके पूर्वकोणमें कमण्डलु, अक्षसूत्र, अभयमुद्रा, दण्ड तथा आयुध धारण करनेवाले चतुर्मुख श्रेष्ठ ब्रह्माजी भगवती गायत्रीके साथ विराजमान रहते हैं। परादेवता भगवती गायत्री भी उन्हीं आयुधोंको धारण किये रहती हैं। समस्त वेद, विविध शास्त्र, स्मृतियाँ तथा पुराण मूर्तिमान् होकर वहाँ निवास करते हैं। ब्रह्माके जो विग्रह हैं, गायत्रीके जो विग्रह हैं और व्याहृतियोंके जो विग्रह हैं—वे सभी वहाँ नित्य निवास करते हैं॥ ८५—८७१/२॥

नैर्ऋत्यकोणमें भगवती सावित्री अपने करकमलमें शंख, चक्र, गदा और कमल धारण किये विराजमान हैं। महाविष्णु भी वहाँपर उसी रूपमें विराजमान रहते हैं। मत्स्य तथा कूर्म आदि जो महाविष्णुके विग्रह हैं और जो भगवती सावित्रीके विग्रह हैं—वे सब वहाँ निवास करते हैं॥ ८८-८९१/२॥

वायुकोणमें परशु, अक्षमाला, अभय और वरमुद्रा धारण करनेवाले महारुद्र विराजमान हैं और सरस्वती भी उसी रूपमें वहाँ रहती हैं। हे राजन्! भगवान् रुद्रके दक्षिणास्य आदि जो-जो रूप हैं और इसी प्रकार भगवती गौरीके जो-जो रूप हैं—वे सभी वहाँ निवास करते हैं।

चौंसठ प्रकारके जो आगम तथा इसके अतिरिक्त भी जो अन्य आगमशास्त्र कहे गये हैं—वे सभी मूर्तिमान् होकर वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९०—९२१/२ ॥

अग्निकोणमें धन प्रदान करनेवाले कुबेर अपने दोनों हाथोंमें रत्नयुक्त कुम्भ तथा मणिमय करण्डक (पात्र) धारण किये हुए विराजमान हैं। अनेक प्रकारकी वीथियोंसे युक्त और अपने सद्गुणोंसे सम्पन्न देवीकी निधिके स्वामी कुबेर महालक्ष्मीके साथ वहाँ विराजमान रहते हैं॥ ९३-९४१/२ ॥

पश्चिमके महान् वरुणकोणमें अपनी भुजाओंमें पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाले कामदेव रतिके साथ निवास करते हैं। सभी प्रकारके शृंगार मूर्तिमान् होकर वहाँ सदा विराजमान रहते हैं॥ ९५-९६ ॥

ईशानकोणमें विघ्नको दूर करनेवाले तथा पराक्रमी विघ्नेश्वर गणेशजी अपने हाथोंमें पाश तथा अंकुश धारण किये हुए देवी पुष्टिके साथ सदा विराजमान रहते हैं। हे नृपश्रेष्ठ! गणेशजीकी जो-जो विभूतियाँ हैं, वे सभी महान् ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर वहाँ निवास करती हैं॥ ९७-९८ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी समष्टियाँ ब्रह्मा आदि नामसे कही गयी हैं—ये सभी भगवती जगदीश्वरीकी सेवामें संलग्न रहती हैं॥ ९९ ॥

इस महामरकतमणि-निर्मित प्राकारके आगे कुमकुमके समान अरुण विग्रहवाला तथा सौ योजन लम्बाईवाला एक दूसरा प्रवालमणिका प्राकार है। उसके मध्यकी भूमि तथा भवन भी उसी प्रकारके कहे गये हैं। उसके मध्यभागमें पंचभूतोंकी पाँच स्वामिनियाँ निवास करती हैं। हृल्लेखा, गगना, रक्ता, चौथी करालिका और पाँचवीं महोच्छुष्मा नामक ये शक्तियाँ पंचभूतोंके समान ही प्रभावाली हैं। पाश, अंकुश, वर तथा अभय मुद्रा धारण करनेवाली ये शक्तियाँ अनेक प्रकारके भूषणोंसे अलंकृत, नूतन यौवनसे गर्वित और भगवती जगदम्बाके सदृश वेषभूषासे मण्डित हैं॥ १००—१०३ ॥

हे राजन्! इस प्रवालमय प्राकारके आगे नौ रत्नोंसे बना हुआ अनेक योजन विस्तृत एक विशाल प्राकार है। आम्नायमें वर्णित देवियोंके बहुतसे भवन, तडाग तथा सरोवर—वे सभी उन्हीं नौ रत्नोंसे निर्मित हैं। हे भूपाल! श्रीदेवीके जो-जो अवतार हैं, वे सब वहाँ निवास करते हैं और महाविद्याके सभी रूप वहाँ विद्यमान हैं। करोड़ों सूर्योंके समान प्रभासे युक्त सभी देवियाँ अपनी-अपनी आवरणशक्तियों, अपने भूषणों तथा वाहनोंके साथ वहाँ विराजमान रहती हैं। सात करोड़ महामन्त्रोंके देवता भी वहाँ रहते हैं॥ १०४—१०७१/२ ॥

इस नौ रत्नमय प्राकारके आगे चिन्तामणिसे बना हुआ एक विशाल भवन है। वहाँकी प्रत्येक वस्तु चिन्तामणिसे निर्मित है। उसमें सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत्के समान दीप्तिवाले पत्थरोंसे निर्मित हजारों स्तम्भ हैं, जिनकी तीव्र प्रभाके कारण उस भवनके अन्दर स्थित कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं हो पाती है॥ १०८—११० ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'पद्मरागादिमणिविनिर्मित प्राकारवर्णन' नामक ग्यारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ ११ ॥

बारहवाँ अध्याय

भगवती जगदम्बाके मण्डपका वर्णन तथा मणिद्वीपकी महिमा

व्यासजी बोले—त्रिकोणके मध्यभागमें भगवती जगदम्बाका वही चिन्तामणि नामक भवन विराजमान है। उसमें हजार स्तम्भोंवाले चार मण्डप विद्यमान हैं॥ १ ॥

उनमें पहला शृंगारमण्डप, दूसरा मुक्तिमण्डप, तीसरा ज्ञानमण्डप और चौथा एकान्तमण्डप कहा गया है॥ २१/२ ॥

अनेक प्रकारके वितानोंसे युक्त तथा नानाविध धूपोंसे सुवासित ये सुन्दर मण्डप कान्तिमें करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् रहते हैं॥ ३१/२ ॥

हे राजन्! उन मण्डपोंके चारों ओर केसर, मल्लिका और कुन्दकी वाटिकाएँ बतायी गयी हैं, जिनमें मृगमदोंसे

परिपूर्ण तथा मदस्रावी असंख्य गन्धमृग स्थित हैं। उसी प्रकार मण्डपोंके चारों ओर रत्नसे निर्मित सोपानोंवाली महापद्माटवी है। वह अमृतरससे परिपूर्ण, गुंजार करते हुए मतवाले भौरोंसे युक्त, कारण्डवों तथा हंसोंसे सदा सुशोभित और चारों ओरसे सुगन्धसे परिपूर्ण तटवाली है। इस प्रकार वह मणिद्वीप इन वाटिकाओंकी सुगन्धोंसे सदा सुवासित रहता है॥ ४—७॥

शृंगारमण्डपके मध्यभागमें विराजमान जगदम्बिकाके चारों ओर सभासद्के रूपमें श्रेष्ठ देवगण विद्यमान रहते हैं और वहाँ देवियाँ नानाविध स्वरोंमें सदा गाती रहती हैं। मुक्तिमण्डपके मध्यमें विराजमान होकर कल्याणमयी भगवती जगदम्बा भक्तोंको सदा मुक्ति प्रदान करती रहती हैं और हे राजन्! तीसरे ज्ञानमण्डपमें विराजमान होकर वे ज्ञानका उपदेश करती हैं। एकान्तमण्डप नामक चौथे मण्डपमें अपनी मन्त्रिणियोंके साथ भगवती जगत्की रक्षाके विषयमें नित्य विचार-विमर्श किया करती हैं॥ ८—१०॥

हे राजन्! चिन्तामणिगृहमें भगवतीके शक्तितत्त्वरूपी दस श्रेष्ठ सोपानोंसे युक्त उनका मंच अत्यधिक सुशोभित होता है॥ ११॥

ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और सदाशिव ईश्वर—ये उस मंचके पाये कहे गये हैं। सदाशिव मंचके फलक हैं। उसके ऊपर भुवनेश्वर महादेव विराजमान हैं॥ १२$^1/_2$॥

सृष्टिके आदिमें अपनी लीला करनेके लिये जो भगवती स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुई थीं, उन्हींके अर्धांगस्वरूप ये भगवान् महेश्वर हैं॥ १३$^1/_2$॥

वे कामदेवके अभिमानका नाश करनेमें परम कुशल, करोड़ों कामदेवके समान सुन्दर, पाँच मुख तथा तीन नेत्रोंसे युक्त और मणिके भूषणोंसे विभूषित हैं॥ १४$^1/_2$॥

सदा सोलह वर्षके प्रतीत होनेवाले वे सर्वेश्वर महादेव अपनी भुजाओंमें हरिण, अभयमुद्रा, परशु तथा वरमुद्रा धारण किये हुए हैं॥ १५$^1/_2$॥

वे त्रिनेत्र महादेव करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान, करोड़ों चन्द्रमाके समान शीतल, शुद्ध स्फटिकमणिके समान आभावाले तथा शीतल कान्तिवाले हैं॥ १६$^1/_2$॥

इनके वाम अंकमें देवी श्रीभुवनेश्वरी विराजमान हैं, वे नौ प्रकारके रत्नोंसे जटित सुवर्णकी करधनीसे सुशोभित हैं और तप्त सुवर्ण तथा वैदूर्यमणिसे निर्मित बाजूबन्दसे भूषित हैं॥ १७-१८॥

कमलके समान मुखवाली भगवतीके कानोंमें श्रीचक्रकी आकृतिके समान सुवर्णका कर्णफूल सुशोभित हो रहा है। उनके ललाटकी कान्तिके वैभवने अर्धचन्द्रके सौन्दर्यको जीत लिया है॥ १९॥

वे बिम्बाफलकी कान्तिको तिरस्कृत करनेवाले होठोंसे सुशोभित हैं। कुमकुम-कस्तूरीके तिलकसे अनुलिप्त उनका मुखमण्डल अति प्रकाशित है॥ २०॥

कान्तियुक्त चन्द्रमा तथा सूर्यके समान दिव्य तथा उज्ज्वल रत्नमय चूडामणि उनके मस्तकपर विराजमान है। उदयकालीन शुक्रनक्षत्रके सदृश स्वच्छ नासिकाभूषणसे वे सुशोभित हैं॥ २१॥

चिन्ताक नामक कण्ठभूषणमें लटकते हुए मोतीके गुच्छसे वे सुशोभित हो रही हैं। चन्दन, कपूर और कुमकुमके अनुलेपसे उनका वक्षःस्थल अलंकृत है॥ २२॥

वे अनेक रूपोंसे सुसज्जित, शंखके समान ग्रीवावाली तथा अनारके दानोंके सदृश दन्तपंक्तिसे सुशोभित हो रही हैं॥ २३॥

वे अपने मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंसे निर्मित मुकुट धारण किये रहती हैं। उनके मुखकमलपर मतवाले भ्रमरोंकी पंक्तिके सदृश अलकावली सुशोभित है॥ २४॥

वे कलंककी कालिमासे रहित शारदीय चन्द्रमाके सदृश मुखमण्डलवाली हैं और गंगाके जलावर्त (भँवर)-तुल्य सुन्दर नाभिसे विभूषित हैं॥ २५॥

वे माणिक्यके दानोंसे जटित मुद्रिकासे युक्त अँगुलियोंसे सुशोभित हैं और कमलदलकी आकृतिवाले तीन नेत्रोंसे वे अत्यन्त सौन्दर्यमयी प्रतीत होती हैं॥ २६॥

वे शानपर चढ़ाकर अतीव स्वच्छ किये गये महाराग तथा पद्मरागमणिके सदृश उज्ज्वल कान्तिसे सम्पन्न हैं और रत्नमय घुँघरूवाली करधनी तथा रत्ननिर्मित कंकणसे सुशोभित हैं॥ २७॥

उनके चरणकमल मणियों और मोतियोंकी मालाओंमें विराजमान रहनेवाली अपार शोभासे सम्पन्न हैं। वे रत्नोंसे

युक्त अँगुलियोंसे फैलते हुए प्रभाजालसे सुशोभित हाथवाली हैं॥ २८॥

उनकी कंचुकीमें गुथे हुए नानाविध रत्नोंकी पंक्तियोंसे अनुपम प्रकाश निर्गत हो रहा है। मल्लिकाकी सुगन्धिसे पूर्ण केशके जूड़ेपर स्थित मल्लिकाकी मालापर मँडरानेवाले भौंरोंके समूहसे देवी सुशोभित हो रही हैं॥ २९॥

वृत्ताकार, सघन तथा उन्नत उरोजोंके भारसे कल्याणमयी भगवती अलसायी हुई प्रतीत होती हैं। उनकी चारों भुजाओंमें वर, पाश, अंकुश तथा अभयमुद्रा सुशोभित हो रही है॥ ३०॥

वे भगवती समस्त शृंगारवेषसे सम्पन्न, लताके समान अत्यन्त कोमल अंगोंवाली, समस्त सौन्दर्योंकी आधारस्वरूपा तथा निष्कपट करुणासे ओतप्रोत हैं॥ ३१॥

वे अपनी वाणीकी मधुरतासे वीणाके स्वरोंको भी तुच्छ कर देती हैं। वे परा भगवती करोड़ों-करोड़ों सूर्यों तथा चन्द्रमाओंकी कान्ति धारण करती हैं॥ ३२॥

वे बहुत-सी सखियों, दासियों, देवांगनाओं तथा समस्त देवताओंसे चारों ओरसे सदा घिरी रहती हैं॥ ३३॥

वे इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्तिसे सम्पन्न हैं। लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, कीर्ति, कान्ति, क्षमा, दया, बुद्धि, मेधा, स्मृति तथा लक्ष्मी—ये मूर्तिमती अंगनाएँ कही गयी हैं। जया, विजया, अजिता, अपराजिता, नित्या, विलासिनी, दोग्ध्री, अघोरा और मंगला—ये नौ पीठशक्तियाँ उन भगवती पराम्बाकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं॥ ३४—३६॥

शंख तथा पद्म नामक वे दोनों निधियाँ उन भगवतीके पार्श्वभागमें विराजमान रहती हैं। नवरत्नवहा (नौ प्रकारके रत्नोंका वहन करनेवाली), कांचनस्रवा (स्वर्णका स्राव करनेवाली) तथा सप्तधातुवहा (सातों धातुओंका वहन करनेवाली) नामक नदियाँ उन्हीं दोनों निधियोंसे निकली हुई हैं और हे राजेन्द्र! वे सभी नदियाँ अन्तमें सुधा-सिन्धुमें जाकर समाहित होती हैं॥ ३७-३८॥

वे भगवती भुवनेश्वरी परमेश्वरके वाम अंकमें विराजमान रहती हैं। उन्हीं भगवतीके सांनिध्यसे महेश्वरको सर्वेश्वरत्व प्राप्त है, इसमें सन्देह नहीं है॥ ३९॥

हे भूपाल! अब आप इस चिन्तामणिगृहके परिमाणके विषयमें सुनिये। यह विशाल भवन हजार योजन विस्तारवाला कहा जाता है॥ ४०॥

उसके उत्तर भागमें अनेक विशाल प्राकार हैं, जो परिमाणमें पूर्व प्राकारसे दुगुने कहे गये हैं। भगवतीका यह मणिद्वीप बिना किसी आधारके अन्तरिक्षमें विराजमान है॥ ४१॥

जैसे किसी कार्यवश पटका संकोच तथा विकास होता रहता है, वैसे ही प्रलयावस्थामें इस मणिद्वीपका संकोच तथा सृष्टिकालमें विकास हो जाता है। इसका सृष्टि-विनाश नहीं होता॥ ४२॥

सभी परकोटोंकी सम्पूर्ण कान्तिकी परम सीमाको ही चिन्तामणिगृह कहा गया है, जहाँ तेजोमयी देवी विराजमान रहती हैं॥ ४३॥

हे भूपाल! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले तथा देवलोक, नागलोक, मनुष्यलोक एवं अन्य लोकोंमें निवास करनेवाले जो भी श्रीदेवी भुवनेश्वरीके उपासक हैं, वे सब इसी मणिद्वीपको प्राप्त होते हैं॥ ४४१/२॥

जो लोग भगवतीकी आराधनामें संलग्न रहते हुए देवीक्षेत्रमें प्राणोत्सर्ग करते हैं वे सब वहीं जाते हैं, जहाँ महानन्दस्वरूपिणी भगवती विराजमान रहती हैं॥ ४५१/२॥

घृतकुल्या, दुग्धकुल्या, दधिकुल्या तथा मधुस्रवा नदियाँ वहाँ सदा प्रवाहित रहती हैं। उसी प्रकार अमृतवहा, द्राक्षारसवहा, जम्बूरसवहा, आम्ररसवाहिनी तथा इक्षुरसवाहिनी हजारों अन्य नदियाँ भी वहाँ हैं॥ ४६-४७१/२॥

वहाँ मनोरथरूपी फलवाले अनेक वृक्ष तथा वैसे ही बावलियाँ और कूप भी विद्यमान हैं, जो प्राणियोंकी इच्छाके अनुरूप उन्हें यथेष्ट फल तथा जल प्रदान करते हैं। वहाँ किसी प्रकारका अभाव नहीं है॥ ४८१/२॥

उस मणिद्वीपमें किसीको भी रोगोंसे जर्जरता, बुढ़ापा, चिन्ता, मात्सर्य, काम, क्रोध आदि कभी नहीं होते॥ ४९१/२॥

वहाँ रहनेवाले सभी लोग युवावस्थासे सम्पन्न, स्त्रीयुक्त और हजारों सूर्योंके समान तेजस्वी रहते हैं और वे श्रीभुवनेश्वरीदेवीकी निरन्तर उपासना करते हैं॥ ५०१/२॥

उपासना-परायण लोगोंमेंसे कुछ लोग सालोक्य मुक्ति

प्राप्त कर चुके हैं, कुछ सामीप्य मुक्तिको प्राप्त हुए हैं, कुछ सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं तथा कुछ अन्य प्राणी सार्ष्टि मुक्तिके अधिकारी हुए हैं॥ ५१½ ॥

प्रत्येक ब्रह्माण्डमें रहनेवाले जो-जो देवता हैं, उनके अनेक समूह वहाँ स्थित रहकर जगदीश्वरीकी उपासना करते हैं। मूर्तिमान् होकर सात करोड़ महामन्त्र तथा समस्त महाविद्याएँ उन साम्यावस्थावाली, कारणब्रह्मस्वरूपिणी तथा मायाशबलविग्रह धारण करनेवाली कल्याणमयी भगवतीकी उपासनामें तत्पर रहते हैं॥ ५२—५४ ॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने अत्यन्त महान् मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। करोड़ों सूर्य, चन्द्रमा, विद्युत् और अग्नि—वे सब इस मणिद्वीपकी प्रभाके करोड़वें अंशके करोड़वें अंशके भी बराबर नहीं हैं। वहाँ कहींपर मूँगेके समान प्रकाश फैल रहा है, कहीं मरकतमणिकी छवि छिटक रही है, कहीं विद्युत् तथा भानुसदृश तेज विद्यमान है, कहीं मध्याह्नकालीन सूर्यके समान प्रचण्ड तेज फैला हुआ है और कहीं करोड़ों बिजलियोंकी महान् धाराओंकी दिव्य कान्ति व्याप्त है। कहीं सिन्दूर, नीलेन्द्रमणि और माणिक्यके समान छवि विद्यमान है। कुछ दिशाओंका भाग हीरा-मोतीकी रश्मियोंसे प्रकाशित हो रहा है, वह कान्तिमें दावानल तथा तपाये हुए सुवर्णके समान प्रतीत हो रहा है। कहीं-कहीं चन्द्रकान्तमणि और सूर्यकान्तमणिसे बने स्थान हैं॥ ५५—५९ ॥

इस मणिद्वीपका शिखर रत्नमय तथा इसके प्राकार और गोपुर भी रत्ननिर्मित हैं। यह रत्नमय पत्रों, फलों तथा वृक्षोंसे पूर्णतः मण्डित है॥ ६० ॥

यह पुरी मयूरसमूहोंके नृत्यों, कबूतरोंकी बोलियों और कोयलोंकी काकली तथा शुकोंकी मधुर ध्वनियोंसे सुशोभित रहती है॥ ६१ ॥

यह सुरम्य तथा रमणीय जलवाले लाखों सरोवरोंसे घिरा हुआ है। इस मणिद्वीपका मध्यभाग विकसित रत्नमय कमलोंसे सुशोभित है॥ ६२ ॥

उसके चारों ओर सौ योजनतकका क्षेत्र उत्तम गन्धोंसे सर्वदा सुवासित रहता है। मन्द गतिसे प्रवाहित वायुके द्वारा हिलाये गये वृक्षोंसे यह व्याप्त रहता है॥ ६३ ॥

चिन्तामणिके समूहोंकी ज्योतिसे वहाँका विस्तृत आकाश सदा प्रकाशित रहता है और रत्नोंकी प्रभासे सभी दिशाएँ प्रज्वलित रहती हैं॥ ६४ ॥

वृक्षसमूहोंकी मधुर सुगन्धोंसे सुपूरित वायु वहाँ सदा बहती रहती है। हे राजन्! दस हजार योजनतक प्रकाशमान वह मणिद्वीप सदा सुगन्धित धूपसे सुवासित रहता है॥ ६५ ॥

रत्नमयी जालियोंके छिद्रोंसे निकलनेवाली चपल किरणोंकी कान्ति तथा दर्पणसे युक्त यह मणिद्वीप दिशाभ्रम उत्पन्न कर देनेवाला है॥ ६६ ॥

हे राजन्! समग्र ऐश्वर्य, सम्पूर्ण श्रृंगार, समस्त सर्वज्ञता, समग्र तेज, अखिल पराक्रम, समस्त उत्तम गुण और समग्र दयाकी इस मणिद्वीपमें अन्तिम सीमा है॥ ६७-६८ ॥

एक राजाके आनन्दसे लेकर ब्रह्मलोकपर्यन्त जो-जो आनन्द हो सकते हैं, वे सब इस मणिद्वीपके आनन्दमें अन्तर्निहित हैं॥ ६९ ॥

हे राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे अति महनीय मणिद्वीपका वर्णन कर दिया। महादेवीका यह परम धाम सम्पूर्ण उत्तम लोकोंसे भी उत्तम है॥ ७० ॥

इस मणिद्वीपके स्मरणमात्रसे सम्पूर्ण पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और मृत्युकालमें इसका स्मरण हो जानेपर प्राणी उसी पुरीको प्राप्त हो जाता है॥ ७१ ॥

इन पाँच अध्यायोंका (अध्याय आठसे लेकर बारहतक) जो प्राणी सावधान होकर नित्य पाठ करता है; उसे भूत, प्रेत, पिशाच आदि बाधाएँ नहीं होतीं॥ ७२ ॥

नये भवनके निर्माण तथा वास्तुयज्ञके अवसरपर प्रयत्नपूर्वक इसका पाठ करना चाहिये; उससे कल्याण होता है॥ ७३ ॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'मणिद्वीपवर्णन' नामक बारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १२ ॥

तेरहवाँ अध्याय

राजा जनमेजयद्वारा अम्बायज्ञ और श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणका माहात्म्य

व्यासजी बोले—हे राजन्! हे अनघ! आपने मुझसे जो-जो पूछा था, वह मैंने आपको बता दिया, जिसे पूर्वमें नारायणने महात्मा नारदसे कहा था॥ १॥

महादेवीका यह परम अद्भुत पुराण सुनकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है और वह भगवतीका प्रियतम हो जाता है॥ २॥

हे राजेन्द्र! चूँकि अपने पिताकी दुर्गतिके विषयमें जानकर आप अत्यन्त विषादग्रस्त हैं, अतएव हे राजन्! अब आप अपने पिताके उद्धारके निमित्त देवीयज्ञ कीजिये। आप विधि-विधानके अनुसार महादेवीके सर्वोत्तमोत्तम मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण कीजिये, जो मनुष्य-जन्मको सार्थक कर देता है॥ ३-४॥

सूतजी बोले—उसे सुनकर नृपश्रेष्ठ जनमेजयने मुनीन्द्र व्याससे प्रार्थना करके उन्हींसे विधिपूर्वक देवीके प्रणवसंज्ञक महामन्त्रकी दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात् महाराजने नवरात्रके आनेपर धौम्य आदि मुनियोंको बुलाकर धनकी कृपणता किये बिना शीघ्रतापूर्वक अम्बायज्ञ आरम्भ कर दिया। इसमें उन्होंने भगवती जगदम्बाकी प्रसन्नताके लिये उनके समक्ष ब्राह्मणोंके द्वारा इस परम उत्तम देवीभागवत-महापुराणका पाठ कराया॥ ५—७१/२॥

इस यज्ञमें उन्होंने असंख्य ब्राह्मणों, सुवासिनी स्त्रियों, कुमारी कन्याओं, ब्रह्मचारियों, दीनों तथा अनाथोंको भोजन कराया। तत्पश्चात् धन-दानके द्वारा उन सभीको पूर्ण सन्तुष्ट करनेके बाद पृथ्वीपति जनमेजय यज्ञ समाप्त करके ज्यों ही अपने स्थानपर विराजमान हुए, उसी समय प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजवाले देवर्षि नारद अपनी महती नामक वीणा बजाते हुए आकाशसे उतरे॥ ८—१०१/२॥

उन नारदमुनिको देखकर आश्चर्यचकित हो महाराज जनमेजय अपने आसनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने आसन आदि उपचारोंसे उनका पूजन किया। तत्पश्चात् वे कुशल-क्षेमसम्बन्धी प्रश्न करके उनके आनेका कारण पूछने लगे॥ ११-१२॥

राजा बोले—हे साधो! आप कहाँसे आ रहे हैं? आप मुझे यह बताइये कि मैं आपकी क्या सेवा करूँ? मैं आपके आगमनसे सनाथ और कृतार्थ हो गया हूँ॥ १३॥

राजाकी यह बात सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारदने कहा—हे नृपश्रेष्ठ! आज मैंने देवलोकमें एक आश्चर्यजनक घटना देखी है। उसीको बतानेके लिये मैं विस्मित होकर आपके पास आया हूँ॥ १४१/२॥

अपने विपरीत कर्मोंके कारण आपके पिताजी दुर्गतिमें पड़े हुए थे। वे ही अब दिव्य शरीर धारण करके श्रेष्ठ विमानपर चढ़कर श्रेष्ठ देवताओं तथा अप्सराओंसे चारों ओरसे भलीभाँति स्तुत होते हुए मणिद्वीपको चले गये हैं॥ १५-१६१/२॥

इस देवीभागवतके श्रवणजनितफल तथा देवीयज्ञके फलसे ही आपके पिताजी उत्तम गतिको प्राप्त हुए हैं। हे कुलभूषण! आप धन्य तथा कृतकृत्य हो गये हैं और आपका जीवन सफल हो गया। आपने नरकसे अपने पिताजीका उद्धार कर दिया है और आज देवलोकमें आपकी महान् कीर्ति और अधिक विस्तृत हो गयी है॥ १७—१९॥

सूतजी बोले—[हे मुनीश्वरो!] नारदजीका यह वचन सुनकर महाराज जनमेजयका हृदय प्रेमसे गद्गद हो गया और वे अद्भुत कर्मोंवाले व्यासजीके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। [वे कहने लगे—] हे देव! आपकी कृपासे ही मैं कृतार्थ हुआ हूँ। हे महामुने! नमस्कारके अतिरिक्त मैं आपके लिये विशेष कर ही क्या सकता हूँ। हे मुने! आप मुझपर इसी प्रकार अनुग्रह सदा करते रहें॥ २०-२११/२॥

राजाका यह वचन सुनकर भगवान् बादरायण व्यासने अपने आशीर्वचनोंसे उनका अभिनन्दनकर मधुर वाणीमें कहा—हे राजन्! सब कुछ त्याग करके आप भगवतीके चरणकमलोंकी उपासना कीजिये और दत्तचित्त होकर नित्य देवीभागवतपुराणका पाठ कीजिये। साथ ही नित्य आलस्यरहित होकर भक्तिपूर्वक देवीयज्ञका अनुष्ठान कीजिये; उसके फलस्वरूप आप भव-बन्धनसे अनायास ही छूट जायँगे॥ २२—२४१/२॥

यद्यपि विष्णुपुराण तथा शिवपुराण आदि अनेक पुराण हैं, किंतु वे इस देवीभागवतपुराणकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते। यह देवीभागवत समस्त वेदों तथा पुराणोंका सारस्वरूप है॥ २५-२६॥

हे नृपश्रेष्ठ! जिस देवीभागवतमें साक्षात् मूलप्रकृतिका ही प्रतिपादन किया गया है, उसके समान अन्य कोई पुराण भला कैसे हो सकता है?॥ २७॥

हे जनमेजय! जिस देवीभागवतपुराणका पाठ करनेसे वेद-पाठके समान पुण्य प्राप्त होता है, उसका पाठ श्रेष्ठ विद्वानोंको प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये॥ २८॥

उन नृपश्रेष्ठ जनमेजयसे ऐसा कहकर मुनिराज व्यास चले गये। उसके बाद विमलात्मा धौम्य आदि मुनि भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। उन्होंने देवीभागवतकी ही श्रेष्ठ प्रशंसा की। तदनन्तर सन्तुष्ट मनवाले महाराज जनमेजय देवीभागवतपुराणका निरन्तर पाठ तथा श्रवण करते हुए पृथ्वीका शासन करने लगे॥ २९-३०॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'जनमेजयके द्वारा अम्बामखकरण और देवीभागवतश्रवणपूर्वक स्वपितृुद्धारवर्णन' नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणकी महिमा

सूतजी बोले—पराम्बा देवीके मुखकमलसे वेद-सिद्धान्तका बोधक जो आधा श्लोक* निकला था और जिसका उपदेश स्वयं देवीने वट-पटपर शयन करनेवाले विष्णुको किया था, उसीको पूर्वकालमें ब्रह्माजीने सौ करोड़ श्लोकोंके रूपमें विस्तृत कर दिया॥ १-२॥

तत्पश्चात् व्यासजीने शुकदेवजीको पढ़ानेके लिये इसके सारभागको एकत्र करके अठारह हजार श्लोकों तथा बारह स्कन्धोंसे युक्त श्रीमद्देवीभागवत नामक पुराणकी रचना की। वह पुराण अब भी देवलोकमें वैसे ही विस्तृतरूपसे विद्यमान है॥ ३-४॥

इस पुराणके समान पुण्यदायक, पवित्र तथा पापनाशक दूसरा कोई पुराण नहीं है। इसके एक-एक पदका पाठ करनेसे मनुष्य अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है॥ ५॥

हे मुने! स्वयं अपने हाथसे देवीभागवतपुराण लिखकर या किसी लेखकसे लिखवाकर पुराणका वाचन करनेवाले विद्वान्‌को इसे देकर वस्त्र तथा आभूषण आदिसे उनकी पूजा करके उनके प्रति व्यासबुद्धि रखकर नियमपूर्वक उनके मुखसे इस पुराणका श्रवण करना चाहिये। कथाकी समाप्तिके दिन भाद्रपदपूर्णिमा तिथिको स्वर्णसिंहासनपर स्थापित करके इस पुराणका दान उस पौराणिक विद्वान्‌को करना चाहिये। पुनः दक्षिणाके रूपमें उन्हें विविध अलंकारों तथा सोनेके हारसे विभूषित और बछड़ेसे युक्त दूध देनेवाली कपिला गौ प्रदान करनी चाहिये॥ ६—८॥

कथाके अन्तमें पुराणमें जितने अध्याय हैं; उतने ही ब्राह्मणों तथा उतनी ही सुवासिनियोंको, उतनी ही कुमारियों और बालकोंके साथ भोजन कराना चाहिये। उन सबमें देवीकी भावना करके वस्त्र, आभूषण, चन्दन, माला, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे एवं उत्तम पायसान्न (खीर)-का भोजन कराये॥ ९-१०॥

मनुष्य इस पुराणके दानसे पृथ्वीके दानका फल प्राप्त करता है और इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें देवीलोकको प्राप्त होता है॥ ११॥

जो इस श्रेष्ठ श्रीमद्देवीभागवतका नित्य भक्तिपूर्वक श्रवण करता है, उसके लिये कुछ भी कहीं और कभी दुर्लभ नहीं है। इसके श्रवणसे पुत्रहीन व्यक्तिको पुत्र, धन चाहनेवालेको धन और विद्याके अभिलाषीको विद्याकी प्राप्ति हो जाती है, साथ ही सम्पूर्ण पृथ्वीलोकमें वह कीर्तिमान् हो जाता है॥ १२-१३॥

जो स्त्री वन्ध्या, काकवन्ध्या अथवा मृतवन्ध्या हो;

*सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्॥ (श्रीमद्देवीभा० १।१५।५२) अर्थात् सब कुछ मैं ही हूँ और दूसरा कोई भी सनातन नहीं है।

वह इस पुराणके श्रवणसे उस दोषसे मुक्त हो जाती है; इसमें सन्देह नहीं है॥ १४॥

यह पुराण जिस घरमें विधिपूर्वक पूजित होकर स्थित रहता है, उस घरको लक्ष्मी तथा सरस्वती कभी नहीं छोड़तीं और वेताल, डाकिनी तथा राक्षस आदि वहाँ झाँकतेतक नहीं। यदि ज्वरग्रस्त मनुष्यको स्पर्श करके एकाग्रचित्त होकर इस पुराणका पाठ किया जाय तो दाहक ज्वर उसके मण्डलको छोड़कर भाग जाता है। इसकी एक सौ आवृत्तिके पाठसे क्षयरोग समाप्त हो जाता है॥ १५—१७॥

जो मनुष्य प्रत्येक सन्ध्याके अवसरपर दत्तचित्त होकर सन्ध्या-विधि सम्पन्न करके इस पुराणके एक-एक अध्यायका पाठ करता है, वह ज्ञानवान् हो जाता है॥ १८॥

कार्य-अकार्यके अवसरोंपर इस पुराणके द्वारा शकुनका भी विचार करना चाहिये। हे मुने! उसकी विधिका वर्णन मेरे द्वारा पहले किया जा चुका है॥ १९॥

शारदीय नवरात्रमें परम भक्तिसे इस पुराणका नित्य पाठ करना चाहिये। इससे जगदम्बा उस व्यक्तिपर प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करती हैं॥ २०॥

वैष्णव, शैव, सौर तथा गाणपत्यजनोंको अपने-अपने इष्टदेवकी शक्तिकी सन्तुष्टिके लिये चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघ—इन मासोंके चारों नवरात्रोंमें इस पुराणका प्रयत्नपूर्वक पाठ करना चाहिये; इससे रमा, उमा आदि शक्तियाँ उसपर सदा प्रसन्न रहती हैं। हे मुने! इसी प्रकार वैदिकोंको भी अपनी गायत्रीकी प्रसन्नताके लिये इसका नित्य पाठ करना चाहिये। इस पुराणमें कहीं किसीका विरोधवचन नहीं है। [वैष्णव, सौर आदि] सभी जनोंकी उपासना सदा शक्तियुक्त ही होती है, इसलिये शक्तिको सन्तुष्ट करनेके लिये द्विजोंको इस पुराणका सदा पाठ करना चाहिये। स्त्रियों तथा शूद्रोंको चाहिये कि वे अज्ञानवश इसका कभी पाठ न करें, अपितु वे ब्राह्मणके मुखसे ही इसका नित्य श्रवण करें, यही मर्यादा है। अधिक कहनेसे क्या लाभ, मैं आपको इसका वास्तविक सार बताऊँगा॥ २१—२५॥

हे श्रेष्ठ मुनियो! यह पुराण परम पवित्र तथा वेदोंका सारस्वरूप है। इसके पढ़ने तथा सुननेसे वेदपाठके समान फल प्राप्त होता है॥ २६॥

गायत्री नामसे प्रतिपादित उन सच्चिदानन्दस्वरूपिणी ह्रींमयी भगवतीको मैं प्रणाम करता हूँ, वे हमारी बुद्धिको प्रेरणा प्रदान करें—

सच्चिदानन्दरूपां तां गायत्रीप्रतिपादिताम्।
नमामि ह्रींमयीं देवीं धियो यो नः प्रचोदयात्॥ २७॥

पौराणिकोंमें श्रेष्ठ सूतजीका यह वचन सुनकर नैमिषारण्यवासी तपोधन मुनियोंने बड़े समारोहके साथ उनका सम्मान किया॥ २८॥

भगवतीके चरणकमलोंके उपासक वे सभी मुनि प्रसन्न हृदयवाले हो गये। इस पुराणके प्रभावसे वे परम शान्तिको प्राप्त हुए॥ २९॥

मुनियोंने सूतजीको नमस्कार किया और बार-बार क्षमा-प्रार्थना करके कहा—हे तात! इस संसार-सागरसे पार करनेके लिये आप ही निश्चितरूपसे हमारे लिये नौकास्वरूप हैं॥ ३०॥

इस प्रकार सभी श्रेष्ठ मुनियोंके समक्ष सभी वेदोंके गुह्य विषयरूप इस दुर्गाचरित्रप्रतिपादक श्रीमद्देवीभागवत-पुराणको विनयसम्पन्न मुनिजनोंको सुनाकर तथा उनके आशीर्वादसे वृद्धिको प्राप्त होकर भगवतीके चरणकमलोंके भृंगस्वरूप सूतजी वहाँसे चले गये॥ ३१॥

॥ इस प्रकार अठारह हजार श्लोकोंवाली श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणसंहिताके अन्तर्गत बारहवें स्कन्धका 'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराणश्रवणफलवर्णन' नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

॥ द्वादश स्कन्ध समाप्त॥

॥ श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण सम्पूर्ण॥

नम्र निवेदन एवं क्षमा-प्रार्थना

पिछले वर्ष **'श्रीमद्देवीभागवत' (पूर्वार्ध—प्रथमसे षष्ठस्कन्धतक)**-का हिन्दी अनुवाद 'कल्याण' के विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित हुआ था। पराम्बा भगवतीकी करुणामयी कृपासे इस वर्ष कल्याणका विशेषाङ्क **'श्रीमद्देवीभागवत' (उत्तरार्ध—सप्तमसे द्वादशस्कन्ध)**-का हिन्दी अनुवाद पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत है। बहुत दिनोंसे प्रेमी पाठकोंका यह आग्रह था कि मूल देवीभागवतका सानुवाद प्रकाशन विशेषाङ्कके रूपमें किया जाय। मूलसहित सानुवाद प्रकाशन दो वर्षोंमें भी सम्भव न होनेके कारण यह निर्णय लिया गया कि 'श्रीमद्देवीभागवत' का मूलपाठ पुस्तकरूपमें प्रकाशित किया जाय तथा प्रत्येक श्लोकका अनुवाद श्लोकसंख्यासहित विशेषाङ्कके रूपमें प्रकाशित किया जाय। इसीके अनुसार दो वर्षोंमें यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

पुराण-वाङ्मयमें **'श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण'** का अत्यन्त महिमामय स्थान है। पुराणोंकी परिगणनामें वेदतुल्य, पवित्र और सभी लक्षणोंसे युक्त यह पुराण पाँचवाँ है। शक्तिके उपासक इस पुराणको शाक्तभागवत कहते हैं। इस ग्रन्थके आदि, मध्य और अन्तमें—सर्वत्र भगवती आद्याशक्तिकी महिमाका प्रतिपादन किया गया है। इस पुराणमें मुख्यरूपसे परब्रह्म परमात्माके मातृरूप और उनकी उपासनाका वर्णन है। भगवती आद्याशक्तिकी लीलाएँ अनन्त हैं, उन लीलाकथाओंका प्रतिपादन ही ग्रन्थका मुख्य प्रतिपाद्य-विषय है, जिनके सम्यक् अवगाहनसे साधकों—भक्तोंका मन देवीके पद्मपरागका भ्रमर बनकर मुक्तिमार्गका पथिक बन ज़ाता है।

श्रीवेदव्यासजीने राजा जनमेजयको यह पुराण स्वयं सुनाया था। पूर्वकालमें जनमेजयके पिता राजा परीक्षित् तक्षक नागद्वारा काट लिये गये। अत: पिताकी संशुद्धि (सद्गति)-के लिये राजाने तीनों लोकोंकी जननी भगवती देवीका विधिवत् पूजन-अर्चन करके नौ दिनोंतक व्यासजीके मुखारविन्दसे इस 'श्रीमद्देवीभागवतपुराण' का श्रवण किया। इस नवाह-यज्ञके पूर्ण हो जानेपर राजा परीक्षित्ने उसी समय दिव्य रूप धारण करके देवीका सालोक्य प्राप्त किया। राजा जनमेजय अपने पिताकी दिव्य गति देखकर और महर्षि वेदव्यासकी विधिवत् पूजा करके परम प्रसन्न हुए।

वास्तवमें 'श्रीमद्देवीभागवत' की समस्त कथाओं और उपदेशोंका सार यह है कि हमें आसक्तिका त्यागकर वैराग्यकी ओर प्रवृत्त होना चाहिये तथा सांसारिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके लिये एकमात्र पराम्बा भगवतीकी शरणमें जाना चाहिये। मनुष्य अपने ऐहिक जीवनको किस प्रकार सुख-समृद्धि एवं शान्तिसे सम्पन्न कर सकता है और उसी जीवनसे जीवमात्रके कल्याणमें सहायक होता हुआ कैसे अपने परम ध्येय पराम्बा भगवतीकी करुणामयी कृपाको प्राप्त कर सकता है—इसके विधिवत् साधनोंको उपदेशपूर्ण इतिवृत्तों—कथानकोंके साथ इस पुराणमें प्रस्तुत किया गया है।

'श्रीमद्देवीभागवतपुराण' के श्रवण और पठनसे स्वाभाविक ही पुण्यलाभ तथा अन्त:करणकी परिशुद्धि, पराम्बा भगवतीमें रति और विषयोंमें विरति तो होती ही है, साथ ही मनुष्योंको ऐहिक और पारलौकिक हानि-लाभका यथार्थ ज्ञान भी हो जाता है। तदनुसार जीवनमें कर्तव्य निश्चय करनेकी अनुभूत शिक्षा मिलती है, साथ ही जो जिज्ञासु शास्त्रमर्यादाके अनुसार अपना जीवन-यापन करना चाहते हैं, उन्हें इस पुराणसे कल्याणकारी ज्ञान, साधन, सुन्दर एवं पवित्र जीवन-यापनकी शिक्षा भी प्राप्त होती है। इस प्रकार यह पुराण जिज्ञासुओंके लिये अत्यधिक उपादेय, ज्ञानवर्धक, सरस तथा उनके यथार्थ अभ्युदयमें पूर्णत: सहायक है।

आज भारतवासियोंका जीवन त्यागमय न रहकर भोग-परायण हो चुका है। पाश्चात्योंकी-सी विलासिता, उन्हींका-सा रहन-सहन तथा जीवन-यापनका ढंग, वैसा ही खान-पान, वैसी ही वेश-भूषा एवं रीति-नीति आदि भारतीय समाजमें घर कर रही है। इससे उनका जीवन बाह्याडम्बरपूर्ण, बहुत खर्चीला, दम्भपूर्ण तथा केवल अधिकारलिप्सा और अर्थलिप्सामें ही संलग्न रहनेवाला बन रहा है। भारतीय धर्म एवं संस्कृतिमें भौतिकता या भोगोंका सर्वथा निषेध नहीं है, वरन् उनकी मानवजीवनके एक क्षेत्रमें आवश्यकता बतायी गयी है, पर वे होने चाहिये धर्मके द्वारा नियन्त्रित तथा मोक्ष एवं भगवत्प्राप्तिके साधनरूप। केवल भोग तो आसुरी सम्पदाकी वस्तु है और वह मनुष्यका अध:पतन करनेवाला है। आधिभौतिक उन्नति हो, पर वह हो अध्यात्मकी भूमिपर—आध्यात्मिक लक्ष्यकी पूर्तिके लिये। ऐसा न होनेपर केवल कामुक भोगपरायणता मनुष्यको असुर-राक्षस बनाकर उसके अपने तथा जगत्के अन्यान्य प्राणियोंके लिये घोर सन्ताप, अशान्ति, चिन्ता, पाप तथा दुर्गतिकी प्राप्ति करानेवाली होती है। आजके भौतिकवादी, भोगपरायण मानव-जगत्में यही हो रहा है। इसी कारण नित्य नये उपद्रव, अशान्ति, पाप तथा दु:ख बढ़ रहे हैं। कीट-पतंगोंकी तरह सहस्रों मानवोंका जीवन एक क्षणमें एक साथ समाप्त हो जाता है। अपने देशमें इस अनर्थका उत्पादन करनेवाली भोगपरायणताका विस्तार बड़े जोरोंसे हो रहा है।

अतः इस समय इसकी बड़ी आवश्यकता है कि मानव पतनके प्रवाहसे निकलकर और पाप-पथसे लौटकर फिर वास्तविक उत्थान, प्रगति तथा पुण्यके पथपर आरूढ़—अग्रसर हो। इस दिशामें यदि उचितरूपसे इस पुराणका अध्ययन तथा तदनुसार आचरण किया जाय तो यह विशेषाङ्क मानवके भौतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्षमें बहुत कुछ सहायक सिद्ध हो सकेगा।

भगवती जगदम्बाकी लीला-कथाओं तथा पुण्यचरित्रोंका प्रतिपादन ही मुख्यरूपसे इस पुराणमें हुआ है। पाठकोंकी सुविधाके लिये '**श्रीमद्देवीभागवत (उत्तरार्ध)**'-के भावोंका सारसंक्षेप इस विशेषाङ्कके प्रारम्भमें सिंहावलोकनके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसके अवलोकनसे श्रीमद्देवीभागवतके प्रमुख प्रतिपाद्य-विषय पाठकोंके ध्यानमें आ सकेंगे। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

इस अंकमें सूर्यवंशी राजाओंका पावन चरित्र, राजा हरिश्चन्द्रका आख्यान, शक्तिपीठोंकी उत्पत्तिकी कथा, भारतवर्षकी महिमा, नरकोंका वर्णन, भगवती तुलसी तथा शालग्रामका कथा-प्रसंग, सावित्री-सत्यवान्‌की कथा, स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, षष्ठी, मनसा, मंगलचण्डी तथा राधा आदि देवियोंका आख्यान, भस्म-रुद्राक्ष, सन्ध्योपासन तथा गायत्रीका माहात्म्य प्रस्तुत किया गया है।

परम करुणामयी पराम्बा भगवती जगदम्बाकी अनुकम्पासे इस वर्ष विशेषाङ्कका सब कार्य सानन्द सम्पन्न हुआ। इस पुराणका अनुवाद करनेमें मूल श्लोकोंके भावोंको स्पष्ट करनेका विशेष ध्यान रखा गया है। पुराणोंमें कुछ ऐसे भी स्थल हैं, जो सर्वसाधारणके लिये उपयोगी प्रतीत नहीं होते तथा उनकी समझकी क्षमताके बाहर भी हैं, इनके समावलोकनसे सामान्य लोगोंके मनमें संशय-विपर्ययकी स्थिति भी उत्पन्न हो सकती है; ऐसे स्थलोंके मूलको सुरक्षित रखते हुए अनुवादको संक्षेप करना ही हितकर समझा गया।

इस पुराणके मूल श्लोकोंके अनुवादमें तथा इनके संशोधन तथा परिवर्धनमें 'कल्याण' के सहसम्पादक डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़ने पूर्ण परिश्रमपूर्वक अपना योगदान प्रदान किया। इसके साथ ही अनुवादके संशोधन तथा परिवर्धनसे सम्बन्धित शंकाओंका समाधान प्रयागराजके 'श्रीहरीराम गोपालकृष्ण-सनातनधर्म संस्कृत महाविद्यालय' के पूर्व प्राचार्य आदरणीय पं० श्रीरामकृष्णजी शास्त्रीने पूर्ण मनोयोगसे सम्पन्न किया। मैं इनके प्रति आभार व्यक्त करता हुआ इनके चरणोंमें प्रणति निवेदन करता हूँ।

अभी कुछ समयपूर्व पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री, जिनका गीताप्रेस और 'कल्याण' से अटूट सम्बन्ध था, काशीमें दिवंगत हो गये। आप सनातनधर्मकी वैदिक-परम्पराके शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् थे। सिद्धान्तके विपरीत किसी बातका शास्त्रानुसार प्रत्युत्तर देनेकी आपमें अपूर्व क्षमता थी। गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित 'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश', 'अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश', 'हम कैसे रहें' आदि पुस्तकों तथा इनके अतिरिक्त अन्य कई पुस्तकोंका प्रणयन आपद्वारा सम्पन्न हुआ। आयुर्वेदपद्धतिसे असाध्य रोगोंकी चिकित्साकर कितने ही लोगोंको आपने स्वस्थ कर दिया। अविवाहित जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मचारीके रूपमें जीवनपर्यन्त आप जन-सामान्यकी सेवामें संलग्न रहे। अन्तिम क्षणोंतक 'कल्याण' पर आपका विशेष अनुग्रह बना रहा। सत्पुरुषोंके अभावकी पूर्ति तो आजकलके समयमें हो नहीं पा रही है। भगवान्‌की कृपाका ही सम्बल है। वास्तवमें 'कल्याण' का कार्य भगवान्‌का कार्य है। अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं। हम तो केवल निमित्तमात्र हैं।

इस विशेषाङ्कके अनुवाद तथा उसकी आवृत्ति, प्रूफ-संशोधन तथा सम्पादनके कार्योंमें सम्पादकीय विभागके मेरे सहयोगी विद्वानोंने तथा अन्य सभी लोगोंने मनोयोगपूर्वक सहयोग प्रदान किया है, फिर भी अनुवाद, संशोधन तथा छपाई आदिमें कोई भूल हो; इसके लिये हमारा अपना अज्ञान तथा प्रमाद ही कारण है। अतः इसके लिये अपने पाठकोंके प्रति क्षमाप्रार्थी हैं।

इस बार 'श्रीमद्देवीभागवत' के सम्पादनकार्यके क्रममें परम करुणामयी पराम्बा जगदम्बा और उनकी ललित कथाओंका चिन्तन, मनन तथा स्वाध्यायका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा। यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात है। हमें आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी यह सौभाग्य-लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

पाठक-पाठिकागण इस पुण्य-पुराणको पढ़कर लाभ उठायें और लोक-परलोकमें सुख-शान्ति तथा मानव-जीवनके परम एवं चरम लक्ष्य पराम्बा भगवतीकी करुणामयी कृपा प्राप्त करें—यही प्रार्थना है।

अन्तमें अपनी त्रुटियोंके लिये हम सबसे क्षमा माँगते हुए अपने इस लघु प्रयासको त्रिपुरसुन्दरी भगवती जगदम्बाके पावन चरण-कमलोंमें अर्पित करते हैं और साथ ही जगज्जननीके श्रीचरणोंमें यह प्रार्थना निवेदित करते हैं—

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

—राधेश्याम खेमका
(सम्पादक)

॥ श्रीहरिः ॥

गीताप्रेस, गोरखपुर—प्रकाशन

कोड — मूल्य रु०

श्रीमद्भगवद्गीता

गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) २५१५ प्रश्न और उत्तर-रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 1 बृहदाकार — १४०
- ■ 2 ,, ग्रन्थाकार विशिष्ट संस्करण — ८० [बँगला, तमिल, ओड़िआ, कन्नड, अंग्रेजी, तेलुगु, गुजराती, मराठीमें भी]
- ■ 3 ,, साधारण संस्करण — ५०

गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार—स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझनेहेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें हिन्दी-टीका, सचित्र, सजिल्द

- ■ 5 बृहदाकार, परिशिष्टसहित — २१०
- ■ 6 ,, ग्रन्थाकार, परिशिष्टसहित — १२० [मराठी, तमिल (दो खण्डोंमें), गुजराती, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें), कन्नड (दो खण्डोंमें), बँगला, ओड़िआमें भी]
- ■ 8 गीता-दर्पण—(स्वामी श्रीरामसुखदासजीद्वारा) गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीता-व्याकरण और छन्द-सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द [मराठी, बँगला, गुजराती, ओड़िआमें भी] — ५०
- ■ 1562 गीता-प्रबोधनी—पुस्तकाकार — ३५ (बंगला, ओड़िआ, पंजाबीमें भी)
- ■ 1590 ,, पॉकेट, वि०सं० — २०
- ■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढ़ार्थ-दीपिका (मराठी) — १३०
- ■ 748 ,, मूल, गुटका (मराठी) — ३०
- ■ 859 ,, मूल; मझला (मराठी) — ४०
- ■ 10 गीता-शांकर-भाष्य — ६०
- ■ 581 गीता-रामानुज-भाष्य — ४०
- ■ 11 गीता-चिन्तन—(श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों आदिका संग्रह) — ४०
- ■ 17 गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी प्रधान लेखसहित, सचित्र, सजिल्द [गुजराती, बँगला, मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिलमें भी] — ३०
- ■ 16 गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द, मोटे अक्षरोंमें (मराठीमें भी) — ३०
- ■ 1555 गीता-माहात्म्य (वि०सं०) — ४०
- ■ 19 गीता—केवल भाषा (तेलुगु, उर्दू, तमिलमें भी) — ७
- ■ 18 गीता-भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान विषय, मोटा टाइप [ओड़िआ, गुजराती, मराठीमें भी] — १५
- ■ 502 गीता- ,, ,, (सजि०) — २३ [तेलुगु, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तमिलमें भी]
- ■ 20 ,, -भाषा-टीका, पॉकेट साइज — ६ [अंग्रेजी, मराठी, बँगला, असमिया, ओड़िआ, गुजराती, कन्नड, तेलुगुमें भी]
- ■ 1566 गीता—भाषा-टीका, पॉकेट साइज, सजिल्द — १२ [गुजराती, बँगला, अंग्रेजी भी]
- ■ 21 श्रीपञ्चरत्नगीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष (मोटे अक्षरोंमें) [ओड़िआमें भी] — १७
- ■ 1628 ,, (नित्यस्तुति एवं गजल-गीतासहित) पॉकेट साइज — ६
- ■ 22 गीता—मूल, मोटे अक्षरों वाली [तेलुगु, गुजरातीमें भी] — ८
- ■ 23 गीता—मूल, विष्णुसहस्रनामसहित — ३ [कन्नड, तेलुगु, तमिल, मलयालम, ओड़िआमें भी]
- ■ 1556 गीता—श्लोकार्थसहित—लघु आकार — ५
- ■ 1602 गीता—सजिल्द (वि०सं०)—लघु आकार — ८
- ■ 700 गीता—मूल, लघु आकार (ओड़िआ, बँगला, तेलुगुमें भी) — २
- ■ 1392 गीता ताबीजी—(सजिल्द) (गुजराती, बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) — ४
- ■ 566 गीता—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (१०० प्रति एक साथ) — .२५
- ▲ 289 गीता-निबन्धावली
- ▲ 297 गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप — २
- ▲ 388 गीता-माधुर्य-सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी) — ८ [तमिल, मराठी, गुजराती, उर्दू, तेलुगु, बँगला, असमिया, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, संस्कृतमें भी]
- ▲ 679 गीतामाधुर्य (केवल मूल) — ६
- ■ 1242 पाण्डवगीता एवं हंसगीता — ३
- ■ 1431 गीता-दैनन्दिनी (२००८) पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (बँगला, तेलुगु, ओड़िआमें भी) — ५०
- ■ 503 गीता-दैनन्दिनी (२००८) रोमन, पुस्तकाकार, प्लास्टिक जिल्द — ३५
- ■ 506 गीता-दैनन्दिनी (२००८) पॉकेट साइज, (वि०सं०) — २०
- ■ 1769 गीता-दैनन्दिनी (२००८) लघु आकार — १२
- ▲ 464 गीता-ज्ञान-प्रवेशिका — १५
- ■ 508 गीता-सुधा-तरंगिनी

रामायण

- ■ 1389 श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार (विशिष्ट संस्करण) — ४००
- ■ 80 ,, बृहदाकार — २८०
- ■ 1095 ,, ग्रन्थाकार (वि०सं०) (गुजरातीमें भी) — २१०
- ■ 81 ,, ग्रन्थाकार सचित्र, सटीक, मोटा टाइप, — १५० [ओड़िआ, बँगला, तेलुगु, मराठी, गुजराती, कन्नड, अंग्रेजी, नेपालीमें भी]
- ■ 1402 ,, सटीक, ग्रंथाकार (सामान्य) — १२०
- ■ 1563 श्रीरामचरितमानस—मझला, सटीक विशिष्ट सं० — ८५
- ■ 82 ,, मझला साइज, सटीक — ७५ सजिल्द [गुजराती, अंग्रेजी भी]
- ■ 1318 ,, रोमन एवं अंग्रेजी अनुवादसहित — २००
- ■ 456 ,, अंग्रेजी अनुवादसहित — १२०
- ■ 786 ,, मझला ,, ,, — ७०
- ■ 1436 ,, मूलपाठ बृहदाकार — १६५
- ■ 83 ,, मूलपाठ, ग्रंथाकार — ८० [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 84 ,, मूल, मझला साइज [गुजराती भी] — ४५
- ■ 85 ,, मूल, गुटका [,,] — ३०
- ■ 1544 ,, मूल गुटका (वि०सं०) — ३५
- ■ 790 ,, केवल भाषा

[श्रीरामचरितमानस—अलग-अलग काण्ड (सटीक)]

- ■ 94 श्रीरामचरितमानस-बालकाण्ड — २०
- ■ 95 ,, अयोध्याकाण्ड — १८
- ■ 98 ,, सुन्दरकाण्ड [कन्नड, तेलुगु, बँगला भी] — ५
- ■ 1349 ,, सुन्दरकाण्ड सटीक मोटा टाइप (लाल अक्षरोंमें) (श्रीहनुमानचालीसासहित) [गुजरातीमें भी] — १७
- ■ 101 श्रीरामचरितमानस-लंकाकाण्ड — १०
- ■ 102 ,, उत्तरकाण्ड — १०
- ■ 141 ,, अरण्य, किष्किन्धा एवं सुन्दरकाण्ड — १०
- ■ 830 ,, सुन्दरकाण्ड-मूल, ग्रन्थाकार, मोटा (रंगीन) — १२
- ■ 1583 ,, सुन्दरकाण्ड, (मूल) मोटा (आड़ी) रंगीन — ६
- ■ 99 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका [गुजराती भी] — ३
- ■ 100 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, मोटा टाइप — ५ [गुजराती, ओड़िआ भी]
- ■ 1378 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल-मोटा टाइप (लाल रंगमें) — ६
- ■ 858 ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, लघु आकार [गुजराती भी] — २
- ■ 1710 ,, किष्किन्धाकाण्ड — २
- ■ 1376 मानस-गूढ़ार्थ-चन्द्रिका—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार-प० प० प्रज्ञानानन्द सरस्वती (सातों खण्ड) — ७६०

(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■ 86 मानसपीयूष-(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण (सातों खण्ड) — १२२५

(अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)

- ■ 1291 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण-कथा-सुधा-सागर
- ■ 75, 76 श्रीमद्वाल्मीकीय-रामायण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट [तेलुगु भी] — २६०
- ■ 1337, 1338 रामायण—भाषा (मोटा टाइप) दो खण्डोंमें सेट — २४०
- ■ 77 ,, केवल भाषा — १६०
- ■ 583 ,, (मूलमात्रम्) — १००
- ■ 78 रामायण—सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम् [तमिल भी] — १८
- ■ 1549 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड-सटीक [तमिल भी] — ५०
- ■ 452, 453 श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण (अंग्रेजी अनुवादसहित दो खण्डोंमें सेट) — ३००
- ■ 1002 सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क
- ■ 74 अध्यात्मरामायण—सटीक [तमिल, तेलुगु, कन्नड, मराठी भी] — ७०
- ■ 223 मूल रामायण [गुजराती, मराठी भी] — २

☞ भारतमें डाक खर्च, पैकिंग तथा फारवर्डिंगकी देय राशिः—२ रुपया-प्रत्येक १० रु० या उसके अंशके मूल्यकी पुस्तकोंपर। —रजिस्ट्री / वी० पी० पी० के लिये २० रु० प्रति पैकेट अतिरिक्त।[पैकेटका अधिकतम वजन ५ किलो (अनुमानित पुस्तक मूल्य रु० २५०)]

☞ रंगीन चित्रोंपर २० रु० प्रति पैकेट स्पेशल पैकिंग चार्ज अतिरिक्त।

☞ रु० ५००/-से अधिककी पुस्तकोंपर ५% पैकिंग, हैण्डलिंग तथा वास्तविक डाकव्यय देय होगा।

☞ पुस्तकोंके मूल्य एवं डाकदरमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित मूल्य / डाकदर देय होगा।

☞ पुस्तक-विक्रेताओंके नियमोंकी पुस्तिका अलग है। विदेशोंमें निर्यातके अलग नियम हैं।

☞ रु० २००० से अधिककी पुस्तकें एक साथ लेनेपर १५% छूट (▲चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०%) छूट देय। (पैकिंग, रेल भाड़ा आदि अतिरिक्त)।

नोट—अन्य भारतीय भाषाओंकी पुस्तकोंका मूल्य एवं कोड पृष्ठ-५०१ से ५०४ पर देखें तथा अप्रैल २००८ से प्रकाशित नवीन प्रकाशनोंको पृष्ठ-५०४ पर देखें।

सम्पर्क करें—व्यवस्थापक—गीताप्रेस, गोरखपुर

कोड		मूल्य रु०
▲1654	लवकुश-चरित्र	२०
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	८
■ 103	मानस-रहस्य	३५
■ 104	मानस-शंका-समाधान	१२

अन्य तुलसीकृत साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 105	विनयपत्रिका—सरल भावार्थसहित	२८
■1701	विनयपत्रिका, सजिल्द	३५
■ 106	गीतावली— ,,	२५
■ 107	दोहावली—भावार्थसहित	१२
■ 108	कवितावली— ,,	१२
■ 109	रामाज्ञाप्रश्न— ,,	८
■ 110	श्रीकृष्णगीतावली ,,	५
■ 111	जानकीमंगल— ,,	४
■ 112	हनुमानबाहुक— ,,	३
■ 113	पार्वतीमंगल— ,,	३
■ 114	वैराग्य-संदीपनी एवं बरवै रामायण	३

सूर-साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 555	श्रीकृष्णमाधुरी	२०
■ 61	सूर-विनय-पत्रिका	२०
■ 62	श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी	२०
■ 735	सूर-रामचरितावली	१८
■ 547	विरह-पदावली	१८
■ 864	अनुराग-पदावली—	२०

पुराण, उपनिषद् आदि

कोड		मूल्य रु०
■ 28	श्रीमद्भागवत-सुधासागर [गुजराती भी]	१५०
■1490	,, (विशिष्ट संस्करण) (अंग्रेजी भी)	२००
■ 25	श्रीशुकसुधासागर—बृहदाकार, बड़े टाइपमें	३२०
■1190, 1191	श्रीशुकसुधासागर, बड़े टाइपमें ग्रन्थाकार, दो खण्डोंमें सेट,	३००
■1535, 1536	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट, (विशिष्ट संस्करण)	३४०
■ 26, 27	श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक, दो खण्डोंमें सेट (गुजराती, मराठी, बंगला भी)	२६०
■ 564, 565	श्रीमद्भागवतमहापुराण—अंग्रेजी सेट	२५०
■ 29	,, मूल मोटा टाइप (तेलुगु भी)	११०
■ 124	,, मूल मझला	६५
■ 571	श्रीकृष्णलीलाचिन्तन	
■ 30	श्रीप्रेम-सुधासागर	६०
■ 31	भागवत एकादश स्कन्ध—सचित्र, सजिल्द [तमिल भी]	२५
■ 728	महाभारत—हिन्दी टीकासहित, सजिल्द, सचित्र [छः खण्डोंमें] सेट (अलग-अलग खण्ड भी उपलब्ध)	१३५०
■ 38	महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण—सटीक	२००
■1589	,, केवल हिन्दी	१८०
■ 637	जैमिनीय अश्वमेध पर्व	५०
■ 39, 511	संक्षिप्त महाभारत—केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द सेट (दो खण्डोंमें) [बँगला भी]	२६०
■ 44	संक्षिप्त पद्मपुराण—सचित्र, सजिल्द	१५०
■1468	सं० शिवपुराण (वि० सं०)	१६५
■ 789	सं० शिवपुराण—मोटा टाइप [गुजराती भी]	१३०
■1133	सं० देवीभागवत [,,]	१५०
■1770	श्रीमद्देवीभागवत-मूल	१२०
■ 48	श्रीविष्णुपुराण—सटीक, सचित्र	१००
■1364	श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	६५
■1183	सं० नारदपुराण	१२०
■ 279	सं० स्कन्दपुराणाङ्क	२००
■ 539	सं० मार्कण्डेयपुराण	६०
■1111	सं० ब्रह्मपुराण	८०
■1113	नरसिंहपुराणम् —सटीक	६०
■1189	सं० गरुडपुराण	१००
■1362	अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद)	१३०
■1361	सं० श्रीवराहपुराण	७५
■ 584	सं० भविष्यपुराण	११०
■1131	कूर्मपुराण—सटीक	८०
■ 631	सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण	१३०
■1432	वामनपुराण—सटीक	८५
■ 557	मत्स्यमहापुराण—,,	१६५
■1610	देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क	८०
■ 517	गर्गसंहिता	१००
■ 47	पातञ्जलयोग-प्रदीप	१२०
■ 135	पातञ्जलयोगदर्शन—[बँगला भी]	११
■ 582	छान्दोग्योपनिषद्—सानुवाद शांकरभाष्य	७०
■ 577	बृहदारण्यकोपनिषद्—(,,)	१००
■1421	ईशादि नौ उपनिषद्- (,,) एक ही जिल्दमें	१००
■ 66	ईशादि नौ उपनिषद्—अन्वय-हिन्दी व्याख्या [बँगला भी]	५०
■ 67	ईशावास्योपनिषद्-सानुवाद, शांकरभाष्य [तेलुगु, कन्नड भी]	४
■ 68	केनोपनिषद्— सानुवाद, शांकरभाष्य	१०
■ 578	कठोपनिषद्— ,,	१२
■ 69	माण्डूक्योपनिषद्—,,	२२
■ 513	मुण्डकोपनिषद्— ,,	९
■ 70	प्रश्नोपनिषद्— ,,	१०
■ 71	तैत्तिरीयोपनिषद्— ,,	१८
■ 72	ऐतरेयोपनिषद्— ,,	८
■ 73	श्वेताश्वतरोपनिषद्-,,	२०
■ 65	वेदान्त-दर्शन—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	४०
■ 639	श्रीनारायणीयम्—सानुवाद [तेलुगु, तमिल भी]	३५

भक्त-चरित्र

कोड		मूल्य रु०
■ 40	भक्त चरिताङ्क-सचित्र, सजिल्द	१४०
■ 51	श्रीतुकाराम-चरित—जीवनी और उपदेश	३५
■ 121	एकनाथ-चरित्र	१७
■ 53	भागवतरत्न प्रह्लाद	१८
■ 123	चैतन्य-चरितावली-सम्पूर्ण एक साथ	१००
■ 751	देवर्षि नारद	१२
■ 167	भक्त भारती	
■ 168	भक्त नरसिंह मेहता [मराठी, गुजराती भी]	१३
■1564	महापुरुष श्रीमन्त शंकरदेव	८
■ 169	भक्त बालक-गोविन्द, मोहन आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, मराठी भी]	५
■ 170	भक्त नारी—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	५
■ 171	भक्त पञ्चरत्न—रघुनाथ, दामोदर आदिकी (तेलुगु भी)	८
■ 172	आदर्श भक्त—शिबि, रन्तिदेव आदिकी गाथा [तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	८
■ 175	भक्त-कुसुम—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	६
■ 173	भक्त सप्तरत्न-दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड भी]	६
■ 174	भक्त चन्द्रिका—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा [गुजराती, कन्नड, तेलुगु, मराठी, ओड़िआ भी]	६
■ 176	प्रेमी भक्त-विल्वमंगल, जयदेव आदि [गुजराती भी]	६
■ 177	प्राचीन भक्त—मार्कण्डेय, उत्तंक आदि	१२
■ 178	भक्त सरोज—गंगाधरदास, श्रीधर आदि (गुजराती भी)	८
■ 179	भक्त सुमन—नामदेव, राँका-बाँका आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 180	भक्त सौरभ—व्यासदास, प्रयागदास आदि	८
■ 181	भक्त सुधाकर—रामचन्द्र, लाखा आदिकी भक्तगाथा [गुजराती भी]	८
■ 182	भक्त महिलारत्न—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि [गुजराती भी]	८
■ 183	भक्त दिवाकर—सुव्रत, वैश्वानर आदिकी भक्तगाथा	८
■ 184	भक्त रत्नाकर—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	८
■ 185	भक्तराज हनुमान्—हनुमान्जीका जीवनचरित्र [मराठी, ओड़िआ, तमिल, तेलुगु, कन्नड, गुजराती भी]	५
■ 186	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र [ओड़िआ भी]	५
■ 187	प्रेमी भक्त उद्धव [तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ भी]	४
■ 188	महात्मा विदुर [गुजराती, तमिल, ओड़िआ भी]	४
■ 136	विदुरनीति	१२
■ 138	भीष्मपितामह [तेलुगु भी]	१०
■ 189	भक्तराज ध्रुव [तेलुगु भी]	४

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■683	तत्त्वचिन्तामणि—(सभी खण्ड एक साथ) [गुजराती भी]	९०
■814	साधन-कल्पतरु (१३ महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंका संग्रह)	७०
▲1597	चिन्ता-शोक कैसे मिटें ?	८
▲1631	भगवान् कैसे मिलें ?	६
▲1653	मनुष्य-जीवनका उद्देश्य	६
▲1681	भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं	६
▲1747	भगवत्प्राप्ति कैसे हो ?	७
▲1666	कल्याण कैसे हो ?	८
▲ 527	प्रेमयोगका तत्त्व—[अंग्रेजी भी]	१५
▲ 242	महत्त्वपूर्ण शिक्षा—[तेलुगु भी]	१८
▲ 528	ज्ञानयोगका तत्त्व [अंग्रेजी भी]	१४
▲ 266	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-१) (गुजराती भी)	१०
▲ 267	कर्मयोगका तत्त्व—(भाग-२)	१०
▲ 303	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय [तमिल, गुजराती भी]	१२
▲ 298	भगवान्के स्वभावका रहस्य [तमिल, गुजराती, मराठी भी]	९
▲ 243	परम साधन—भाग-१	९
▲ 244	,, ,, —भाग-२	८
▲ 245	आत्मोद्धारके साधन (भाग-१)	१२
▲ 335	अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति—(आत्मोद्धारके साधन भाग-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 579	अमूल्य समयका सदुपयोग [तेलुगु, गुजराती, मराठी, कन्नड़, ओड़िआ भी]	७
▲ 246	मनुष्यका परम कर्तव्य (भाग-१)	१०
▲ 247	,, ,, (भाग-२)	९
▲ 611	इसी जन्ममें परमात्मप्राप्ति [गुजराती भी]	८
▲ 588	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति [गुजराती भी]	९
▲1296	कर्णवासका सत्संग [तमिल भी]	७
▲1015	भगवत्प्राप्तिमें भावकी प्रधानता [गुजराती भी]	९
▲ 248	कल्याणप्राप्तिके उपाय-(त०चि०म०भा०१)[बँगला भी]	१३
▲ 249	शीघ्र कल्याणके सोपान-भाग-२, खण्ड-१ [गुजराती भी]	१२
▲ 250	ईश्वर और संसार—भाग-२, (खण्ड-२)	१४
▲ 519	अमूल्य शिक्षा—भाग-३, (खण्ड-१)	९
▲ 253	धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि—भाग-३, (खण्ड-२)	९
▲ 251	अमूल्य वचन तत्त्वचिन्तामणि-भाग-४, (खण्ड-१)	१२
▲ 252	भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा-भाग-४ (खण्ड-२)	१२
▲ 254	व्यवहारमें परमार्थकी कला—त० चि० भाग-५,(खण्ड-१) [गुजराती भी]	१०
▲ 255	श्रद्धा-विश्वास और प्रेम-गुजराती, भाग-५, (खण्ड-२) [गुजराती भी]	१०
▲ 258	तत्त्वचिन्तामणि—भाग-६, (खण्ड-१)	९
▲ 257	परमानन्दकी खेती—भाग-६, (खण्ड-२)	९
▲ 260	समता अमृत और विषमता विष-भाग-७, (खण्ड-१)	१२
▲ 259	भक्ति-भक्त-भगवान्-भाग-७, (खण्ड-२)	१०
▲ 256	आत्मोद्धारके सरल उपाय	१२
▲261	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान [मराठी, कन्नड, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	३
▲ 262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तमिल, मराठी भी]	७
▲ 263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र [तेलुगु, अंग्रेजी, कन्नड़, गुजराती, तमिल, मराठी भी]	६
▲ 264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—१	१०
▲ 265	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग—२	७
▲ 268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१(गुजराती भी)	९
▲ 269	परमशान्तिका मार्ग-(भाग-२)	९
▲1792	शान्तिका उपाय	९
▲ 543	परमार्थ-सूत्र-संग्रह [ओड़िआ भी]	८
▲1530	आनन्द कैसे मिले ?	६
▲ 769	साधन नवनीत [गुजराती, ओड़िआ, कन्नड भी]	८
▲ 599	हमारा आश्चर्य	८
▲ 681	रहस्यमय प्रवचन	८
▲1021	आध्यात्मिक प्रवचन [गुजराती भी]	८

कोड		मूल्य रु०
▲1324	अमृत वचन [बँगला भी]	९
▲1409	भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय	८
▲1433	साधना पथ	६
▲1483	भगवत्पथ-दर्शन	८
▲1493	नेत्रोंमें भगवान्‌को बसा लें	६
▲1435	आत्मकल्याणके विविध उपाय	६
▲1529	सम्पूर्ण दुःखोंका अभाव कैसे हो ?	६
▲1561	दुःखोंका नाश कैसे हो ?	८
▲1587	जीवन-सुधारकी बातें	८
▲1022	निष्काम श्रद्धा और प्रेम [ओड़िआ भी]	८
▲ 292	नवधा भक्ति [तेलुगु, मराठी, कन्नड भी]	६
▲ 274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी	६
▲ 273	नल-दमयन्ती [मराठी, तमिल, कन्नड, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी]	३
▲ 277	उद्धार कैसे हो ?— ५१ पत्रोंका संग्रह [गुजराती, ओड़िआ, मराठी भी]	५
▲1790	जन्म-मरणसे छुटकारा	७
▲ 278	सच्ची सलाह— ८० पत्रोंका संग्रह	८
▲ 280	साधनोपयोगी पत्र	८
▲ 281	शिक्षाप्रद पत्र	१०
▲ 282	पारमार्थिक पत्र	१०
▲ 284	अध्यात्मविषयक पत्र	७
▲ 283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ [अंग्रेजी, कन्नड, गुजराती, मराठी, तेलुगु, ओड़िआ भी]	६
▲1120	सिद्धान्त एवं रहस्यकी बातें	८
▲ 680	उपदेशप्रद कहानियाँ [अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड, तेलुगु भी]	८
▲ 891	प्रेममें विलक्षण एकता [मराठी, गुजराती भी]	८
▲ 958	मेरा अनुभव [गुजराती, मराठी भी]	८
▲1283	सत्संगकी मार्मिक बातें [गुजराती भी]	७
▲1150	साधनकी आवश्यकता [मराठी भी]	८
▲ 320	वास्तविक त्याग	५
▲1791	त्यागकी महिमा	७
▲ 285	आदर्श भ्रातृप्रेम [ओड़िआ भी]	५
▲ 286	बालशिक्षा [तेलुगु, कन्नड, ओडिआ, गुजराती भी]	४
▲ 287	बालकोंके कर्तव्य [ओड़िआ भी]	४
▲ 272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा [कन्नड, गुजराती भी]	८
▲ 290	आदर्श नारी सुशीला [बँगला, तेलुगु, तमिल, ओड़िआ, गुजराती, मराठी भी]	३
▲ 291	आदर्श देवियाँ [ओड़िआ भी]	४
▲ 300	नारीधर्म	३
▲ 293	सच्चा सुख और....... [गुजराती भी]	२
▲ 294	संत-महिमा [गुजराती, ओड़िआ भी]	२
▲ 295	सत्संगकी कुछ सार बातें [बँगला, तमिल, तेलुगु, गुजराती, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	२
▲ 301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म	२
▲ 310	सावित्री और सत्यवान् [गुजराती, तमिल, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, मराठी भी]	२
▲ 623	धर्मके नामपर पाप (गुजराती भी)	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 299	श्रीप्रेमभक्ति-प्रकाश— ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप [तेलुगु व अंग्रेजी भी]	३
▲ 304	गीता पढ़नेके लाभ और त्यागसे भगवत्प्राप्ति— गजल-गीतासहित [गुजराती, असमिया, तमिल, मराठी भी]	२
▲ 297	गीतोक्त सन्यास तथा निष्काम कर्मयोगका स्वरूप	२
▲ 309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय [ओड़िआ भी]	३
▲ 311	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य [ओड़िआ भी]	२
▲ 306	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ? [गुजराती, ओड़िआ व अंग्रेजी भी]	२
▲ 307	भगवान्‌की दया (भगवत्कृपा एवं कुछ अमृत-कण) [ओड़िआ, कन्नड, गुजराती भी]	२
▲ 316	ईश्वर-साक्षात्कारके लिये और सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता और हमारा कर्तव्य [गुजराती, मराठी भी]	२
▲ 315	चेतावनी और सामयिक चेतावनी [गुजराती भी]	२
▲ 318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है और अवतारका सिद्धान्त [गुजराती, तेलुगु भी]	२
▲ 271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?	२
▲ 270	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द एवं महात्मा किसे कहते हैं ? (तेलुगु भी)	२
▲ 302	ध्यान और मानसिक पूजा [गुजराती भी]	२
▲ 326	प्रेमका सच्चा स्वरूप और शोकनाशके उपाय [ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार) सभी खण्ड एक साथ	७०
■ 050	पदरत्नाकर	५०
■ 049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	५०
▲ 058	अमृत-कण	१८
▲ 332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	२२
▲ 333	सुख-शान्तिका मार्ग	१५
▲ 343	मधुर	१६
▲ 056	मानव-जीवनका लक्ष्य	१२
▲ 331	सुखी बननेके उपाय	१२
▲ 334	व्यवहार और परमार्थ	१२
▲ 514	दुःखमें भगवत्कृपा	१२
▲ 386	सत्संग-सुधा	१०
▲ 342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल [तमिल भी, तीन भागमें]	१५
▲ 347	तुलसीदल	१२
▲ 339	सत्संगके बिखरे मोती	१२
▲ 349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	१८
▲ 350	साधकोंका सहारा—	१६
▲ 351	भगवच्चर्चा—(भाग-५)	१६
▲ 352	पूर्ण समर्पण	१७
▲ 353	लोक-परलोक-सुधार (भाग-१)	१०
▲ 354	आनन्दका स्वरूप	१०
▲ 355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर	१५
▲ 356	शान्ति कैसे मिले ?	१५
▲ 357	दुःख क्यों होते हैं ?	१४
▲ 348	नैवेद्य	१२
▲ 337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श [गुजराती, तेलुगु भी]	७
▲ 336	नारीशिक्षा [गुजराती, कन्नड भी]	८
▲ 340	श्रीरामचिन्तन	९
▲ 338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन	१०
▲ 345	भवरोगकी रामबाण दवा [ओड़िआ भी]	७
▲ 346	सुखी बनो	७
▲ 341	प्रेमदर्शन [तेलुगु, मराठी भी]	१०
▲ 358	कल्याण-कुंज— (क० कुं० भाग-१)	६
▲ 359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प— (क० कुं० भाग-२)	७
▲ 360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं (क० कुं० भाग-३)	८
▲ 361	मानव-कल्याणके साधन (क० कुं० भाग-४)	१२
▲ 362	दिव्य सुखकी सरिता— (क० कुं० भाग-५) [गुजराती भी]	६
▲ 363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ- (क० कुं० भाग-६)	६
▲ 364	परमार्थकी मन्दाकिनी— (क० कुं० भाग-७)	६
▲ 366	मानव-धर्म—	५
▲ 526	महाभाव-कल्लोलिनी	५
▲ 367	दैनिक कल्याण-सूत्र—	४
▲ 369	गोपीप्रेम [अंग्रेजी भी]	३
▲ 368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष [ओड़िआ भी]	५
▲ 370	श्रीभगवन्नाम [ओड़िआ भी]	३
▲ 373	कल्याणकारी आचरण	१
▲ 374	साधन-पथ—सचित्र [गुजराती, तमिल भी]	४
▲ 375	वर्तमान शिक्षा	३
▲ 376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	३
▲ 377	मनको वश करनेके कुछ उपाय [गुजराती भी]	१
▲ 378	आनन्दकी लहरें [बँगला, ओड़िआ, गुजराती, अंग्रेजी भी]	२
▲ 379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य	
▲ 380	ब्रह्मचर्य [ओड़िआ भी]	
▲ 381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य	१
▲ 382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन	२
▲ 344	उपनिषदोंके चौदह रत्न	६
▲ 371	राधा-माधव-रससुधा- (षोडशगीत) सटीक	३
▲ 384	विवाहमें दहेज—	१
▲ 809	दिव्य संदेश एवं मनुष्य सर्वप्रिय और जीवन कैसे बनें ?	१

परम श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजीके कल्याणकारी साहित्य

कोड		मूल्य रु०
■ 465	साधन-सुधा-सिन्धु [ओड़िआ, गुजराती भी] (४३ पुस्तकें एक ही जिल्दमें)	९५
▲1675	सागरके मोती	१०
▲1598	सत्संगके फूल	१०
▲1733	संत-समागम	६
▲1633	एक संतकी वसीयत [बँगला भी]	२
▲ 400	कल्याण-पथ	८
▲ 401	मानसमें नाम-वन्दना	८
▲ 605	जित देखूँ तित-तू [गुजराती, मराठी भी]	८
▲ 406	भगवत्प्राप्ति सहज है [अंग्रेजी भी]	७
▲ 535	सुन्दर समाजका निर्माण	९
▲1485	ज्ञानके दीप जले	१४
▲1447	मानवमात्रके कल्याणके लिये (मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती, अंग्रेजी, नेपाली भी)	१२
▲1175	प्रश्नोत्तर मणिमाला [बँगला, ओड़िआ, गुजराती भी]	९
▲1247	मेरे तो गिरधर गोपाल	६
▲ 403	जीवनका कर्तव्य [गुजराती भी]	८
▲ 436	कल्याणकारी प्रवचन [गुजराती, अंग्रेजी, बँगला, ओड़िआ भी]	६
▲ 405	नित्ययोगकी प्राप्ति [ओड़िआ भी]	७
▲1093	आदर्श कहानियाँ [ओड़िआ, बँगला भी]	७
▲ 407	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता [कन्नड, मराठी भी]	६
▲ 408	भगवान्‌से अपनापन [गुजराती, ओड़िआ भी]	५
▲ 861	सत्संग-मुक्ताहार [गुजराती, ओड़िआ भी]	४
▲ 860	मुक्तिमें सबका अधिकार [गुजराती भी]	१
▲ 409	वास्तविक सुख [तमिल, ओड़िआ भी]	६
▲1308	प्रेरक कहानियाँ [बँगला, ओड़िआ भी]	७
▲1408	सब साधनोंका सार [बँगला भी]	४
▲ 411	साधन और साध्य [मराठी, बँगला, गुजराती भी]	५
▲ 412	तात्त्विक प्रवचन [मराठी, ओड़िआ, बँगला, गुजराती भी]	५
▲ 414	तत्त्वज्ञान कैसे हो ? एवं मुक्तिमें सबका समान अधिकार [बँगला, गुजराती भी]	७
▲ 410	जीवनोपयोगी प्रवचन [अंग्रेजी भी]	६
▲ 822	अमृत-बिन्दु [बँगला, तमिल, ओड़िआ, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, कन्नड भी]	७
▲ 821	किसान और गाय [तेलुगु भी]	२
▲ 417	भगवन्नाम [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 416	जीवनका सत्य [गुजराती, अंग्रेजी भी]	५
▲ 418	साधकोंके प्रति [बँगला, मराठी भी]	४
▲ 419	सत्संगकी विलक्षणता [गुजराती भी]	४
▲ 545	जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग [गुजराती भी]	४
▲ 420	मातृशक्तिका घोर अपमान [तमिल, बँगला, मराठी, गुजराती, ओड़िआ भी]	३
▲ 421	जिन खोजा तिन पाइयाँ [बँगला भी]	५
▲ 422	कर्मरहस्य [बँगला, तमिल, कन्नड, ओड़िआ भी]	५
▲ 424	वासुदेवः सर्वम् [मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 425	अच्छे बनो [अंग्रेजी भी]	५
▲ 426	सत्संगका प्रसाद [गुजराती भी]	५
▲1019	सत्यकी खोज [गुजराती, अंग्रेजी भी]	६
▲1479	साधनके दो प्रधान सूत्र [ओड़िआ, बँगला भी]	४
▲1035	सत्यकी स्वीकृतिसे कल्याण	१
▲1360	तू-ही-तू	२
▲1434	एक नयी बात	२
▲1440	परम पितासे प्रार्थना	१
▲1441	संसारका असर कैसे छुटे ?	२

कोड		मूल्य रु०
▲1176	शिखा (चोटी) धारणकी आवश्यकता और..[बँगला भी]	२
▲ 431	स्वाधीन कैसे बनें? [अंग्रेजी भी]	२
▲ 702	यह विकास है या....	
▲ 589	भगवान् और उनकी भक्ति [गुजराती, ओड़िआ भी]	६
▲ 617	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम [तमिल, बँगला, तेलुगु, ओड़िआ, कन्नड, गुजराती, मराठी भी]	४
▲ 770	अमरताकी ओर [गुजराती भी]	६
▲ 434	शरणागति [तमिल, ओड़िआ, तेलुगु, कन्नड भी]	४
▲ 432	एकै साधे सब सधै [गुजराती, तमिल, तेलुगु भी]	५
▲ 427	गृहस्थमें कैसे रहें? [बँगला, मराठी, कन्नड, ओड़िआ, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु, गुजराती, असमिया, पंजाबी भी]	६
▲ 433	सहज साधना [गुजराती, बँगला, ओड़िआ, मराठी, अंग्रेजी भी]	४
▲ 435	आवश्यक शिक्षा (सन्तानका कर्तव्य एवं आहारशुद्धि) [गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी, मराठी भी]	५
■1012	पञ्चामृत—(१०० पन्नोंका पैकेटमें) [गुजराती भी]	१
■1037	हे मेरे नाथ मैं आपको भूलूँ नहीं (१०० पन्नोंका पैकेटमें)	१
■1611	मैं भगवान्का अंश हूँ (,,)	१
■1612	सच्ची और पक्की बात (,,)	१
▲1072	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? [गुजराती, ओड़िआ भी]	४
▲ 515	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन [गुजराती, अंग्रेजी, तमिल, तेलुगु भी]	१
▲ 438	दुर्गतिसे बचो [गुजराती, बँगला (गुरुतत्त्वसहित), मराठी भी]	२
▲ 439	महापापसे बचो [बँगला, तेलुगु, कन्नड, गुजराती, तमिल भी]	२
▲ 440	सच्चा गुरु कौन? [ओड़िआ भी]	२
▲ 444	नित्य-स्तुति और प्रार्थना [कन्नड, तेलुगु भी]	२
▲ 729	सार-संग्रह एवं सत्संगके अमृत-कण [गुजराती भी]	२
▲ 447	मूर्तिपूजा-नाम-जपकी महिमा [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	२
▲ 445	हम ईश्वरको क्यों मानें? [बँगला भी]	२
▲ 745	भगवत्तत्त्व [गुजराती भी]	२
▲ 632	सब जग ईश्वररूप है [ओड़िआ, गुजराती भी]	५

नित्य पाठ-साधन-भजन एवं कर्मकाण्ड-हेतु

कोड		मूल्य रु०
■1593	अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश	७५
■ 592	नित्यकर्म-पूजाप्रकाश [गुजराती भी]	४०
■1416	गरुडपुराण-सारोद्धार (सानुवाद)	२०
■1627	रुद्राष्टाध्यायी-सानुवाद	१८
■1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	२०
■1774	देवीस्तोत्ररत्नाकर	२२
■1623	ललितासहस्रनामस्तोत्रम् [तेलुगु भी]	६
■ 610	व्रतपरिचय	३०
■1162	एकादशी-व्रतका माहात्म्य—मोटा टाइप [गुजराती भी]	१५
■1136	वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य	२२
■1588	माघमासका माहात्म्य	५
■1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	८
■ 052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]	२२
■1629	,, ,, सजिल्द	३२
■1567	दुर्गासप्तशती—मूल, मोटा (बेड़िया)	२५
■ 117	,, मूल, मोटा टाइप [तेलुगु, कन्नड भी]	१५
■ 876	,, मूल गुटका	९
■1727	,, -मूल, लघु आकार	८
■1346	,, सानुवाद मोटा टाइप	२२
■ 118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]	१८
■ 489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]	२७
■1281	,, ,, (विशिष्ट सं०)	३५
■ 866	,, केवल हिन्दी	१२
■1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द	३५
■ 819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	१८
■ 206	श्रीविष्णुसहस्रनाम—सटीक	४
■ 226	श्रीविष्णुसहस्रनाम—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]	२
■ 509	सूक्ति-सुधाकर	१८
■ 207	रामस्तवराज—(सटीक)	३
■ 211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]	२
■ 224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र [तेलुगु, ओड़िआ भी]	४
■ 231	रामरक्षास्तोत्रम्—[तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]	२
■ 715	महामन्त्रराजस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	४
■1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	६५
■1599	श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1600	श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1601	श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1663	श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1664	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1665	श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्	५
■1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्	५
■ 810	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 495	दत्तात्रेय-वज्रकवच—सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]	३
■ 563	शिवमहिम्नस्तोत्र [तेलुगु भी]	३
■1748	संतानगोपालस्तोत्र	४
■ 054	भजन-संग्रह	२५
■ 229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]	२
■ 230	अमोघ शिवकवच	२
■ 140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	१८
■ 142	चेतावनी-पद-संग्रह—(दोनों भाग)	१८
■ 144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	८
■1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	५
■1214	मानस-स्तुति-संग्रह	१०
■1344	सचित्र-आरती-संग्रह	१०
■1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप	१०
■ 153	आरती-संग्रह	६
■ 208	सीतारामभजन	३
■ 221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)	३
▲ 385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]	२
■ 222	हरेरामभजन—१४ माला	१२
■ 576	विनय-पत्रिकाके पैंतीस पद	
■ 225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद [तेलुगु, कन्नड ओड़िआ भी]	२
■1505	भीष्मस्तवराज	३
■ 699	गङ्गालहरी	२
■1094	हनुमानचालीसा—हिन्दी भावार्थसहित	४
■1181	हनुमानचालीसा मूल (रंगीन)	२
■ 227	,, —(पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]	१.५०
■ 695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ भी]	१
■1524	हनुमानचालीसा—विशिष्ट सं०(लघु आकार)	१
■ 228	शिवचालीसा—(असमिया भी)	२
■1185	शिवचालीसा—लघु आकार	१
■1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]	१
■ 232	श्रीरामगीता	३
■ 383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....	२
■ 851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा	२
■1033	,, —लघु आकार	१
■ 203	अपरोक्षानुभूति	४
■ 139	नित्यकर्म-प्रयोग	१०
■ 524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री	३
■1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य	४
■ 210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]	४
■ 236	साधकदैनन्दिनी	४
■ 614	सन्ध्या	२

बालोपयोगी पाठ्य पुस्तकें

कोड		मूल्य रु०
■ 573	बालक-अङ्क—(कल्याण-वर्ष २७)	११०
■1316	बालपोथी (शिशु), रंगीन	१०
■ 461	,, ,, भाग-१	३
■ 212	,, ,, भाग-२	३
■ 684	,, ,, भाग-३	३
■ 764	,, ,, भाग-४	८
■ 765	,, ,, भाग-५	८
■ 125	,, ,, रंगीन, (भाग-१)	४
■1692	बालककी दिनचर्या रंगीन, ग्रन्थाकार	१५
■1693	बालकोंकी सीख ,,	१५
■1694	बालकके आचरण ,,	१५
■ 216	बालककी दिनचर्या	४
■ 214	बालकके गुण	५
■ 217	बालकोंके सीख	४
■ 219	बालकके आचरण	४
■ 218	बाल-अमृत-वचन	३
■ 696	बाल-प्रश्नोत्तरी [गुजराती भी]	३
■ 215	आओ बच्चो तुम्हें बतायें	४
■1689	,, ,, ग्रन्थाकार, रंगीन	१५
■ 213	बालकोंकी बोल-चाल	४
■ 145	बालकोंकी बातें	८
■ 146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा [ओड़िआ भी]	८
■ 150	पिताकी सीख [गुजराती भी]	१०
■ 396	आदर्श ऋषि-मुनि	५
■ 397	आदर्श देशभक्त	६
■ 398	आदर्श सम्राट् [गुजराती भी]	५
■ 402	आदर्श सुधारक	६
■ 399	आदर्श संत	६
■ 516	आदर्श चरितावली	५
■ 116	लघुसिद्धान्तकौमुदी, सजिल्द	२७
■1437	वीर बालक (रंगीन)	८
■1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक (रंगीन)	८
■1450	सच्चे-ईमानदार बालक-रंगीन	८
■1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ (रंगीन)	८
■1448	वीर बालिकाएँ (रंगीन)	८
■ 727	स्वास्थ्य, सम्मान और सुख	३

सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य रु०
■ 698	मार्क्सवाद और रामराज्य—स्वामी करपात्रीजी	
■1673	सत्य एवं प्रेरक घटनाएँ	१५
■1595	साधकमें साधुता	२०
■ 202	मनोबोध	६
■1657	भलेका फल भला	३
■ 747	सप्त महाव्रत	३
■ 542	ईश्वर	३
■ 196	मननमाला	
■ 57	मानसिक दक्षता	२०
■ 59	जीवनमें नया प्रकाश	१७
■ 60	आशाकी नयी किरणें	१८
■ 119	अमृतके घूँट	१५
■ 132	स्वर्णपथ	१४
■ 55	महकते जीवनफूल	२४
■1381	क्या करें? क्या न करें? [गुजराती भी]	२०
■1461	हम कैसे रहें?	८
■ 64	प्रेमयोग	२२
■ 774	कल्याणकारी दोहा-संग्रह, गीताप्रेस-परिचयसहित	५
■ 387	प्रेम-सत्संग-सुधामाला	१५
■ 668	प्रश्नोत्तरी	२
■ 501	उद्धव-सन्देश	१८
■ 191	भगवान् कृष्ण [तमिल, तेलुगु, मराठी, गुजराती भी]	५
■ 193	भगवान् राम [गुजराती भी]	५
■ 195	भगवान्पर विश्वास	६
■ 120	आनन्दमय जीवन	१४
■ 130	तत्त्वविचार	९
■ 133	विवेक-चूडामणि [तेलुगु, बँगला भी]	१२
■ 862	मुझे बचाओ, मेरा क्या कसूर?	
■ 131	सुखी जीवन	११
■ 122	एक लोटा पानी	१२
▲ 701	गर्भपात उचित या...... [ओड़िआ, बँगला, तमिल, तेलुगु, मराठी, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड भी]	३
■ 888	परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ [बँगला भी]	१२
■1217	भवनभास्कर	१०
■ 134	सती द्रौपदी	१०
■1624	पौराणिक कथाएँ	१०
■1669	पौराणिक कहानियाँ	१०
■ 137	उपयोगी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, कन्नड, गुजराती, बँगला भी]	९
■ 159	आदर्श उपकार—(पढ़ो, समझो और करो)	१०
■ 160	कलेजेके अक्षर ,,	१०
■ 161	हृदयकी आदर्श विशालता ,,	१०
■ 162	उपकारका बदला ,,	१०
■ 163	आदर्श मानव-हृदय ,,	१०

कोड — मूल्य रु०

■ 164 भगवान्‌के सामने सच्चा सो सच्चा (पढ़ो, समझो और करो) १०
■ 165 मानवताका पुजारी " १०
■ 166 परोपकार और सच्चाईका फल " १०
■ 510 असीम नीचता और असीम साधुता १०
■ 157 सती सुकला ४
■ 147 चोखी कहानियाँ [तेलुगु, तमिल, गुजराती, मराठी भी] ५
■ 129 एक महात्माका प्रसाद [गुजराती भी] २०
■1688 तीस रोचक कथाएँ १०
■ 151 सत्संगमाला एवं ज्ञानमणिमाला १०
■1363 शरणागति रहस्य २०

चित्रकथा

■1114 श्रीकृष्णलीला (राजस्थानी-शैली, १८वीं शताब्दी) १००
■1647 देवीभागवतकी प्रमुख कथाएँ १५
■1646 महाभारतके प्रमुख पात्र १७
■ 190 बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला १२
■ 868 भगवान् सूर्य (ग्रंथाकार) १५
■1156 एकादश रुद्र (शिव) ५०
■1032 बालचित्र-रामायण-पुस्तकाकार ४
■ 869 कन्हैया [बँगला, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, तेलुगु भी] १०
■ 870 गोपाल [बँगला, तेलुगु, तमिल भी] १०
■ 871 मोहन [बँगला, तेलुगु, तमिल, गुजराती, ओड़िआ, अंग्रेजी भी] १०
■ 872 श्रीकृष्ण [बँगला, तमिल, तेलुगु भी] १०
■1018 नवग्रह—चित्र एवं परिचय [बँगला भी] १०
■1016 रामलला [तेलुगु, अंग्रेजी भी] १७
■1116 राजा राम [तेलुगु भी] १७
■1017 श्रीराम १७
■1394 भगवान् श्रीराम (पुस्तकाकार) १०
■1418 श्रीकृष्णलीला-दर्शन " १०
■1278 दशमहाविद्या [बँगला भी] १०
■1343 हर-हर महादेव १७
■ 829 अष्टविनायक [ओड़िआ, मराठी, गुजराती भी] १०
■ 204 ॐ नमः शिवाय [बँगला, ओड़िआ, कन्नड भी] १७
■ 787 जय हनुमान् [तेलुगु, ओड़िआ भी] १७
■1794 सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र, १५
■ 779 दशावतार [बँगला भी] १०
■1215 प्रमुख देवता १०
■1216 प्रमुख देवियाँ १०
■1442 प्रमुख ऋषि-मुनि १७
■1443 रामायणके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] १५
■1488 श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र [तेलुगु भी] १५
■1537 श्रीमद्भागवतकी प्रमुख कथाएँ १७
■1538 महाभारतकी प्रमुख कथाएँ १७
■1420 पौराणिक देवियाँ १०
■1307 नवदुर्गा—पॉकेट साइज ४
■ 205 नवदुर्गा [तेलुगु, गुजराती, असमिया, कन्नड, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी] १०
■ 537 बाल-चित्रमय बुद्धलीला ७
■ 194 बाल-चित्रमय चैतन्यलीला [ओड़िआ, बँगला भी] ८
■ 656 गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ [तमिल, तेलुगु भी] ८
■ 651 गोसेवाके चमत्कार [तमिल भी] १०

रंगीन चित्र-प्रकाशन

▲1695 चित्र—भगवती सरस्वती ८
▲1582 चित्र भगवान् श्रीकृष्ण ८
▲ 237 जय श्रीराम—भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
▲ 546 जय श्रीकृष्ण—भगवान् श्रीकृष्णकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण १५
▲1001 जगज्जननी श्रीराधा ८
▲1020 श्रीराधा-कृष्ण—युगल छवि ८
▲ 491 हनुमान्‌जी—(भक्तराज हनुमान्) ८
▲ 492 भगवान् विष्णु ८
▲1568 भगवान् श्रीराम-बालरूपमें ८
▲ 560 लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालस्वरूप) ८
▲1674 " (प्लास्टिक कोटेड) १५
▲1351 सुमधुर गोपाल ८
▲ 776 सीताराम—युगल छवि ८
▲ 548 मुरलीमनोहर—(भगवान् मुरलीमनोहर) ८
▲ 782 श्रीरामदरबारकी झाँकी ८
▲1290 नटराज शिव ८
▲ 630 सर्वदेवमयी गौ ८
▲ 531 श्रीबाँकेबिहारी ८
▲ 812 नवदुर्गा (माँ दुर्गाके नौ स्वरूपोंका चित्रण) ८
▲ 437 कल्याण-चित्रावली—I ८
▲1320 कल्याण-चित्रावली—II ८

'कल्याण' के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

■1184 श्रीकृष्णाङ्क १२०
■ 749 ईश्वराङ्क
■ 635 शिवाङ्क
■ 41 शक्ति-अङ्क १२०
■ 616 योगाङ्क १००
■ 627 संत-अङ्क १५०
■ 604 साधनाङ्क
■1002 सं० वाल्मीकीय-रामायणाङ्क
■1773 गो-अङ्क १२०
■ 44 संक्षिप्त पद्मपुराण १५०
■ 539 संक्षिप्तमार्कण्डेयपुराण ६०
■1111 संक्षिप्त ब्रह्मपुराण ८०
■ 43 नारी-अङ्क
■ 659 उपनिषद्-अङ्क १२५
■ 518 हिन्दू-संस्कृति-अङ्क १५०
■ 279 सं० स्कन्दपुराण २००
■ 40 भक्त-चरिताङ्क १४०
■ 573 बालक-अङ्क ११०
■1183 सं० नारदपुराण १२०
■ 667 संतवाणी-अङ्क ११०
■ 587 सत्कथा-अङ्क
■ 636 तीर्थाङ्क १२०
■ 574 संक्षिप्त योगवासिष्ठ
■1133 सं० देवीभागवत-मोटा टाइप १५०
■ 789 सं० शिवपुराण-(बड़ा टाइप) १३०
■ 631 सं० ब्रह्मवैवर्तपुराण १३०
■ 572 परलोक-पुनर्जन्माङ्क
■1135 भगवन्नाम-महिमा और प्रार्थना-अङ्क
■ 517 गर्ग-संहिता १००
■1113 नरसिंहपुराणम्—सानुवाद ६०
■1362 अग्निपुराण (मूल संस्कृतका हिन्दी-अनुवाद) १३०
■1432 वामनपुराण ८५
■ 557 मत्स्यमहापुराण (सानुवाद) १६५
■ 657 श्रीगणेश-अङ्क ९०
■ 42 हनुमान-अङ्क ९०
■1361 सं० श्रीवाराहपुराण ७५
■ 791 सूर्याङ्क ७०
■ 584 सं० भविष्यपुराण ११०
■ 586 शिवोपासनाङ्क ८५
■ 628 रामभक्ति-अङ्क
■ 653 गोसेवा-अङ्क ७५
■1132 धर्मशास्त्रांक ९०
■1131 कूर्मपुराण ८०
▲ 448 भगवल्लीला-अङ्क ६५
■1044 वेद-कथाङ्क ८०
■1189 सं० गरुडपुराण १००
▲1542 भगवत्प्रेम-अंक-अजि० ८०
▲1467 भगवत्प्रेम-अङ्क-सजि० १०० (११ मासिक अङ्क उपहारस्वरूप)
■1592 आरोग्य-अङ्क (परिवर्धित संस्करण) १३०
■1610 देवीपुराण (महाभागवत) शक्तिपीठाङ्क ८०
■1734 अवतार-कथाङ्क ९०
■1793 श्रीमद्देवीभागवताङ्क (पूर्वार्द्ध) १००

Annual Issues of Kalyan-Kalpataru

■ 1395 Woman No. 40
■ 2017 Rāma No. 40
■ 1397 Manusmṛti No. 40
■ 1398 Hindu Saṁskṛti No. 40
■ 602 Divine Love Number 60
■ 1396 Garg Saṁhitā Number (Part-I) 80

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन

बँगला

■1577 श्रीमद्भागवतपुराण सटीक, भाग-I १५०
■1744 श्रीमद्भागवतमहापुराण—सटीक (भाग-२) १५०
■1785 भागवतेरमणिभुक्तेर १५
■1662 श्रीचैतन्यचरितामृत १००
■1603 ईशादि नौ उपनिषद् ५०
■ 954 श्रीरामचरितमानस-ग्रन्थाकार १५०
■1786 मूल वाल्मीकीयरामायण ५
■1574 संक्षिप्त महाभारत-भाग-I १४०
■1660 " " भाग-II १४०
■ 763 गीता-साधक-संजीवनी—परिशिष्टसहित १३०
■1118 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
■ 556 गीता-दर्पण ४०
■1736 गीता-प्रबोधनी ३०
■1489 गीता-दैनन्दिनी (२००९) ५०
■ 013 गीता-पदच्छेद ३०
■1444 गीता-ताबीजी—सजिल्द ४
■1455 गीता-लघु आकार २
■1322 दुर्गासप्तशती—सटीक १८
■1604 पातञ्जलयोगदर्शन १२
■1460 विवेक चूडामणि १०
■1075 ॐ नमः शिवाय (चित्रकथा) १७
■1787 महावीर हनुमान् १७
■1043 नवदुर्गा (चित्रकथा) १०
■1439 दश महाविद्या (") १०
■1292 दशावतार (") १०
■1096 कन्हैया (") १०
■1097 गोपाल (") १०
■1098 मोहन (") १०
■1123 श्रीकृष्ण (") १०
■1495 बालचित्रमय चैतन्यलीला ७
■1393 गीता भाषा-टीका (पॉकेट साइज) सजि. १२
■1454 स्तोत्ररत्नावली २०
■1659 श्रीश्रीकृष्णेर अष्टोत्तरशतनाम १
■ 496 गीता-भाषा-टीका (पॉकेट) ७
▲1581 गीतार-सारात्सार ६
■1496 परलोक और पुनर्जन्मकी सत्य घटनाएँ १०
▲1795 मनको वश करनेके कुछ उपाय व आनन्दकी लहरें ४
▲ 275 कल्याण-प्राप्तिके उपाय १५
▲1305 प्रश्नोत्तर मणिमाला ८
▲ 395 गीतामाधुर्य ६
▲1102 अमृत-बिन्दु ६
■1356 सुन्दरकाण्ड—सटीक ८
▲ 816 कल्याणकारी प्रवचन ५
▲ 276 परमार्थ-पत्रावली (भाग-१) ५
▲1306 कर्तव्य साधनासे भगवत्प्राप्ति ५
▲1119 ईश्वर और धर्म क्यों? ९
▲1456 भगवत्प्राप्तिका पथ व पाथेय ८
▲1580 अध्यात्मसाधनाय कर्महीनतानय ६
▲1452 आदर्श कहानियाँ ७
▲1453 प्रेरक कहानियाँ ५
■1513 मूल्यवान् कहानियाँ ८
▲1469 सब साधनोंका सार ४
▲1478 मानवमात्रके कल्याणके लिये १०
▲1359 जिन खोजा तिन पाइयाँ ६
▲1115 तत्त्वज्ञान कैसे हो? ५
▲1303 साधकोंके प्रति ४
▲1358 कर्म रहस्य ४
▲1122 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ४
▲1742 शरणागति ४
▲1784 प्रेमभक्ति प्रकाश तथा ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप ३
▲ 625 देशकी वर्तमान दशा.... ४
▲ 428 गृहस्थमें कैसे रहें? ५
▲ 903 सहज साधना ३
▲1368 साधना ३
▲1415 अमृतवाणी ८
▲ 312 आदर्श नारी सुशीला ३
▲1541 साधनके दो प्रधान सूत्र ४
▲ 955 तात्त्विक प्रवचन ४
■1103 मूल रामायण एवं रामरक्षास्तोत्र ३
■1652 नवग्रह (चित्रकथा) १०
▲ 449 दुर्गतिसे बचो सच्चा गुरु कौन? ३
▲ 956 साधन और साध्य ४
▲1579 साधनार मनोभूमि ६
▲ 330 नारद एवं शांडिल्य-भक्ति-सूत्र २
▲ 762 गर्भपात उचित या अनुचित— ३
▲ 848 आनन्दकी लहरें २
■ 626 हनुमानचालीसा २

कोड — मूल्य रु०

■1743 शिवचालीसा, लघु आकार १
■1797 स्तवमाला २
▲1319 कल्याणके तीन सुगम मार्ग २
▲1651 हे महाजीवन! हे महामरण! २
▲1293 शिखा धारणकी……… २
▲ 450 हम ईश्वरको क्यों मानें? २
▲ 849 मातृशक्तिका घोर अपमान २
▲ 451 महापापसे बचो २
▲ 469 मूर्तिपूजा १
▲ 296 सत्संगकी सार बातें १
▲ 443 संतानका कर्तव्य १
▲1140 भगवान्‌के दर्शन प्रत्यक्ष...... २

मराठी

■1314 श्रीरामचरितमानस सटीक, मोटा टाइप १५०
■1687 सुन्दरकाण्ड, सटीक ५
■1508 अध्यात्मरामायण ७०
■ 784 ज्ञानेश्वरी गूढार्थ-दीपिका १५०
■1780 श्रीदासबोध, मझला साइज ६०
■1781 दासबोध (गद्यरूपान्तरासह) १२०
■ 853 एकनाथी भागवत—मूल १२०
■1678 श्रीमद्भागवतमहापुराण, (खण्ड-१) १३०
■1735 श्रीमद्भागवतमहापुराण सटीक (खण्ड-२) १३०
■1776 श्रीमद्भागवतमहापुराण (केवल मराठी अनुवाद) १५०
■ 7 गीता-साधक-संजीवनी टीका १२०
■1304 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
■1474 श्रीसकल संतवाणी (भाग-१) ७०
1475 ,, ,, (भाग-२) १८०
71 श्रीनामदेवांची गाथा ७०
359 ज्ञानेश्वरी—मूल मझला ४५
15 गीता-माहात्म्यसहित ४०
504 गीता-दर्पण ३५
748 ज्ञानेश्वरी—मूल गुटका ३०
■ 14 गीता—पदच्छेद ३०
■1388 गीता—श्लोकार्थसहित (मोटा टाइप) १०
■1257 गीता—श्लोकार्थसहित ७
■1168 भक्त नरसिंह मेहता १०
■1671 महाराष्ट्रातील निवडक संतांची चरित्रे ८
▲ 429 गृहस्थमें कैसे रहें? ९
▲1703 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ४
▲1387 प्रेममें विलक्षण एकता ८
■ 857 अष्ट विनायक (चित्रकथा) १०
▲ 391 गीतामाधुर्य ७
▲1099 अमूल्य समयका सदुपयोग ७
▲1335 रामायणके कुछ आदर्श पात्र ८
▲1155 उद्धार कैसे हो? ४
▲1716 भगवान् कैसे मिले? ७
▲1719 चिन्ता,शोक कैसे मिटे? ८
▲1717 मनुष्य जीवनका उद्देश्य ६
▲1074 आध्यात्मिक पत्रावली ६
▲1275 नवधा भक्ति ५
▲1386 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र ६
▲1340 अमृत-बिन्दु ६
▲1382 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ ६
▲1210 जित देखूँ तित-तू ७
▲1330 मेरा अनुभव ८
■1277 भक्त बालक ६
■1073 भक्त चन्द्रिका ५
■1383 भक्तराज हनुमान् ५
▲ 886 साधकोंके प्रति ५
▲ 885 तात्त्विक प्रवचन ५
■1607 रुक्मिणी स्वयंवर १२
■1640 सार्थ मनाचे श्लोक ४
■1333 भगवान् श्रीकृष्ण ५
■1331 कृष्ण भक्त उद्धव ४
■1682 सार्थ सं० देवीपाठ ५
■1332 दत्तात्रेय-वज्रकवच ३

कोड — मूल्य रु०

■1732 शिवलीलामृत ३०
■1768 श्रीशिवलीलामृतांतील-अकरावा अध्याय ३
■1670 मूल रामायण, पॉकिट साइज ३
■1679 मनाचे श्लोक, पॉकिट साइज ३
■1680 सार्थ श्रीगणपत्यथर्वशीर्ष ३
■1683 सार्थ ज्ञानदेवी गीता १०
■1645 हरीपाठ (सार्थ सविवरण) ८
■ 855 हरीपाठ ३
■1169 चोखी कहानियाँ ४
▲1385 नल-दमयंती ३
▲1384 सती सावित्री-कथा २
▲ 880 साधन और साध्य ४
▲1006 वासुदेवः सर्वम् ४
▲1276 आदर्श नारी सुशीला ३
▲1334 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान ३
▲1749 श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश व ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप ३
▲ 899 देशकी वर्तमान दशा··· ३
▲1339 कल्याणके तीन सुगम मार्ग और सत्यकी शरणसे मुक्ति ४
▲1428 आवश्यक शिक्षा ४
▲1341 सहज साधना ४
▲1711 शिखा (चोटी) धारण की आवश्यकता २
▲ 802 गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका २
▲ 882 मातृशक्तिका घोर अपमान ३
▲ 883 मूर्तिपूजा २
■1746 मनोबोधभक्तिसूत्र ८
▲ 884 सन्तानका कर्तव्य २
▲1279 सत्संगकी कुछ सार बातें २
▲1613 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य ९
▲1642 प्रेमदर्शन ९
▲1641 साधनकी आवश्यकता ८
▲ 901 नाम-जपकी महिमा २
▲ 900 दुर्गतिसे बचो २
▲1171 गीता पढ़नेके लाभ २
▲ 902 आहार-शुद्धि
▲1170 हमारा कर्तव्य २
▲ 881 भगवत्प्राप्तिकी सुगमता ६
▲ 898 भगवन्नाम ४
▲1578 मानवमात्रके कल्याणके लिये १४

गुजराती

■1533 श्रीरामचरितमानस—बड़ी, सटीक (वि०सं०) २१०
■ 799 ,, ग्रन्थाकार १५०
■1430 ,, मूल, मोटा ६०
■1552 भागवत—सटीक (खण्ड-१) १२०
■1553 भागवत—सटीक (खण्ड-२) १२०
■1608 श्रीमद्भागवत-सुधासागर २००
■1326 सं० देवीभागवत १५०
■1286 संक्षिप्त शिवपुराण १३०
■1650 तत्त्वचिन्तामणि, ग्रन्थाकार ८०
■1630 साधन-सुधा-सिन्धु १००
■ 467 गीता-साधक-संजीवनी १२०
■1313 गीता-तत्त्व-विवेचनी ८०
■ 785 श्रीरामचरितमानस—मझला, सटीक ७०
■ 468 गीता-दर्पण ४५
■ 878 श्रीरामचरितमानस—मूल मझला ४५
■ 879 ,, —मूल गुटका ३०
■1637 सुन्दरकाण्ड-सटीक, मोटा टाइप १७
■1365 नित्यकर्म-पूजाप्रकाश ४०
■1620 क्या करें? क्या न करें? २०
■1565 गीता-मोटे अक्षरवाली सजिल्द २५
■1668 एकादशीव्रतका माहात्म्य १२
■ 12 गीता-पदच्छेद ३०
■1315 गीता—सटीक, मोटा टाइप १८
■1366 दुर्गासप्तशती—सटीक २०
■1634 ,, ,, सजिल्द २७
■1227 सचित्र आरतियाँ १०

कोड — मूल्य रु०

■ 936 गीता छोटी—सटीक ७
■1034 गीता छोटी—सजिल्द १२
■1636 श्रीमद्भगवद्गीता—मूल, मोटा टाइप ७
■1225 मोहन— (चित्रकथा) १०
■1224 कन्हैया—(,,) १०
■1228 नवदुर्गा—(,,) १०
■1656 गीता-ताबीजी, मूल, सजिल्द ४
■ 948 सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा ६
■1085 भगवान् राम— ५
■ 950 सुन्दरकाण्ड—मूल गुटका ३
■1199 सुन्दरकाण्ड—मूल लघु आकार २
■1226 अष्ट विनायक (चित्रकथा) १०
■ 613 भक्त नरसिंह मेहता १२
▲1518 भगवान्‌के स्वभावका रहस्य १०
▲1486 मानवमात्रके कल्याणके लिये १०
▲1164 शीघ्र कल्याणके सोपान १२
▲1146 श्रद्धा, विश्वास और प्रेम १२
▲1144 व्यवहारमें परमार्थकी कला ८
▲1062 नारीशिक्षा ८
▲1129 अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति १०
■1400 पिताकी सीख १०
■1425 वीर बालिकाएँ ५
■1423 गुरु, माता-पिताके भक्त बालक ६
■1422 वीर बालक ६
■1424 दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ ५
■1258 आदर्श सम्राट् ५
▲1128 दाम्पत्य-जीवनका आदर्श ७
▲1061 साधन नवनीत ९
▲1520 कर्मयोगका तत्त्व (भाग—१) १०
▲1264 मेरा अनुभव ८
▲1046 स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा ७
■1143 भक्त सुमन ७
■1142 भक्त सरोज ७
▲1211 जीवनका कर्तव्य ८
▲ 404 कल्याणकारी प्रवचन ७
▲ 877 अनन्य भक्तिसे भगवत्प्राप्ति १०
▲ 818 उपदेशप्रद कहानियाँ ८
▲1265 आध्यात्मिक प्रवचन ८
▲1516 परमशान्तिका मार्ग (भाग-१) १०
▲1504 प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय १०
■1212 एक महात्माका प्रसाद २०
▲1539 सत्संगकी मार्मिक बातें ७
▲1457 प्रेममें विलक्षण एकता ८
▲1655 प्रश्नोत्तर-मणिमाला ८
▲1503 भगवत्प्रेमकी प्राप्तिमें भावकी प्रधानता ८
▲1325 सब जग ईश्वररूप है ५
▲1052 इसी जन्ममें भगवत्प्राप्ति ६
■ 934 उपयोगी कहानियाँ ७
■1076 आदर्श भक्त ६
■1084 भक्त महिलारत्न ६
■ 875 भक्त सुधाकर ६
▲1067 दिव्य सुखकी सरिता ६
▲ 933 रामायणके कुछ आदर्श पात्र ९
▲1295 जित देखूँ तित-तू ७
▲ 943 गृहस्थमें कैसे रहें? ६
▲1260 तत्वज्ञान कैसे हो? ६
▲1263 साधन और साध्य ५
▲1294 भगवान् और उनकी भक्ति ५
▲ 932 अमूल्य समयका सदुपयोग ७
▲ 392 गीतामाधुर्य ८
■1082 भक्त सप्तरत्न ५
■1087 प्रेमी भक्त ५
▲1077 शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ ५
▲ 940 अमृत-बिन्दु ६
▲ 931 उद्धार कैसे हो? ५
▲ 894 महाभारतके कुछ आदर्श पात्र ५
▲ 413 तात्त्विक प्रवचन ५
■ 892 भक्त चन्द्रिका ४

कोड — मूल्य रु०

■ 895 भगवान् श्रीकृष्ण ६
▲1126 साधन-पथ ४
▲ 946 सत्संगका प्रसाद ५
▲ 942 जीवनका सत्य ५
▲1145 अमरताकी ओर ६
▲1066 भगवान्‌से अपनापन ६
■ 806 रामभक्त हनुमान् ५
▲1086 कल्याणकारी प्रवचन (भाग-२) ५
▲1287 सत्यकी खोज ५
▲1088 एकै साधे सब सधै ४
■1399 चोखी कहानियाँ ५
▲ 889 भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान ३
▲1141 क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं? ४
▲ 939 मातृ-शक्तिका घोर अपमान ३
■ 890 प्रेमी भक्त उद्धव ३
▲1047 आदर्श नारी सुशीला ४
▲1059 नल-दमयन्ती ४
▲1045 बालशिक्षा ४
▲1063 सत्संगकी विलक्षणता ३
▲1064 जीवनोपयोगी कल्याण-मार्ग ४
▲1165 सहज साधना ४
▲1151 सत्संगमुक्ताहार ४
■1401 बालप्रश्नोत्तरी ३
■ 935 संक्षिप्त रामायण २
▲ 893 सती सावित्री २
▲ 941 देशकी वर्तमान दशा··· २
▲1177 आवश्यक शिक्षा ३
▲ 804 गर्भपात उचित या अनुचित २
▲1049 आनन्दकी लहरें २
■ 947 महात्मा विदुर ३
■ 937 विष्णुसहस्रनाम २
▲1058 मनको वश करनेके उपाय एवं कल्याणकारी आचरण २
▲1050 सच्चा सुख २
▲1060 त्यागसे भगवत्प्राप्ति और गीता पढ़नेके लाभ २
■ 828 हनुमानचालीसा २
▲ 844 सत्संगकी कुछ सार बातें २
▲1055 हमारा कर्तव्य एवं व्यापार सुधारकी आवश्यकता १.५०
▲1048 संत-महिमा २
▲1310 धर्मके नामपर पाप २
▲1179 दुर्गतिसे बचो २
▲1178 सार-संग्रह, सत्संगके अमृत कण २
▲1152 मुक्तिमें सबका अधिकार १.५०
▲1207 मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा १.५०
▲1167 भगवत्तत्त्व १.५०
▲1206 धर्म क्या है? भगवान् क्या है? २
▲1500 सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व २
▲1051 भगवान्‌की दया १.५०
■1198 हनुमानचालीसा—लघु आकार १
■1648 ,, —गुजराती, रोमन ३
■1649 हनुमानचालीसा, अति लघु आकार १
■1229 पंचामृत
▲1054 प्रेमका सच्चा स्वरूप और सत्यकी शरणसे मुक्ति २
▲ 938 सर्वोच्चपदप्राप्तिके साधन १
▲1056 चेतावनी एवं सामयिक... १
▲1053 अवतारका सिद्धान्त और ईश्वर दयालु एवं न्यायकारी १.५०
▲1127 ध्यान और मानसिक पूजा १.५०
▲1148 महापापसे बचो २
▲1153 अलौकिक प्रेम १.५०

तमिल

■1426 साधक-संजीवनी (भाग-१) ७५
■1427 साधक-संजीवनी (भाग-२) ७५
■ 800 गीता-तत्त्व-विवेचनी ९०
■1534 वा० रा० सुन्दरकाण्ड ७०

कोड		मूल्य रु०
■1256	अध्यात्मरामायण	६०
■ 823	गीता—पदच्छेद	४०
■ 743	गीता—मूलम्	१५
■ 795	गीता—भाषा	८
■1606	श्रीमन्नारायणीयम्, सटीक	६०
■1605	भागवत एकादश-स्कन्ध—सटीक	५५
■1618	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड वचनमु	३०
■1619	वाल्मीकीयरामायण सुन्दरकाण्ड मूलम्	२५
▲ 389	गीतामाधुर्य	९
■1788	श्रीमुरुगनुतुदिमालै	९
■1789	तिरुप्पावैविलक्कम्	१३
■ 365	गोसेवाके चमत्कार	१०
■1134	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
▲1007	अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति	८
▲ 553	गृहस्थमें कैसे रहें ?	१०
▲ 850	संतवाणी—(भाग १)	७
▲ 952	" (" २)	७
▲ 953	" (" ३)	७
▲1353	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲1354	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	८
■ 646	चोखी कहानियाँ	८
■ 608	भक्तराज हनुमान्	७
■1246	भक्तचरित्रम्	७
▲ 643	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	५
▲ 550	नाम-जपकी महिमा	२
▲1289	साधन-पथ	५
▲1480	भगवान्के स्वभावका रहस्य	७
▲1481	प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय	७
▲1482	भक्तियोगका तत्त्व	७
■ 793	गीता मूल-विष्णुसहस्रनाम	६
▲1117	देशकी वर्तमान दशा...	५
▲1110	अमृत-बिन्दु	६
▲ 655	एकै साधे सब सधै	५
▲1243	वास्तविक सुख	६
■ 741	महात्मा विदुर	५
▲ 536	गीता पढ़नेके लाभ, सत्यकी शरणसे मुक्ति	४
▲ 591	महापापसे बचो, संतानका कर्तव्य	३
▲ 609	सावित्री और सत्यवान्	३
▲ 644	आदर्श नारी सुशीला	३
▲ 568	शरणागति	५
▲ 805	मातृशक्तिका घोर अपमान	२
▲ 607	सबका कल्याण कैसे हो ?	२
■ 794	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्	३
■ 127	उपयोगी कहानियाँ	८
■ 600	हनुमानचालीसा	३
▲ 466	सत्संगकी सार बातें	२
▲ 499	नारद-भक्ति-सूत्र	१.५०
■ 601	भगवान् श्रीकृष्ण	७
■ 642	प्रेमी भक्त उद्धव	८
■ 647	कन्हैया (चित्रकथा)	
■ 648	श्रीकृष्ण—(" ")	
■ 649	गोपाल— (" ")	
■ 650	मोहन— (" ")	
■1042	पञ्चामृत	
▲ 742	गर्भपात उचित या....	२.५०
▲ 423	कर्मरहस्य	४
▲ 569	मूर्तिपूजा	१.५०
▲ 551	आहारशुद्धि	२
▲ 645	नल-दमयन्ती	६
▲ 606	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲ 792	आवश्यक चेतावनी	३

कन्नड़

■1112	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1369 / 1370	गीता-साधक-संजीवनी (दो खण्डोंमें सेट)	१६०
■1728	सार्थ ज्ञानेश्वरी	१२०

कोड		मूल्य रु०
■1739	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-१	१३०
■1740	श्रीमद्भागवतमहापुराण (सटीक) खण्ड-२	१३०
■1558	अध्यात्मरामायण	७०
■1560	रामचरितमानस-सटीक	११०
■1559	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-सुन्दरकाण्ड	६०
■ 726	गीता-पदच्छेद	३०
■ 718	गीता-तात्पर्यके साथ	१५
■1372	गीता-माहात्म्य	९
■1723	श्रीभीष्मपितामह	१०
■1724	भक्त नरसिंह मेहता	१०
■1726	प्रेमी भक्त	७
■1720	कृष्ण-भक्त उद्धव	४
▲1721	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
■1725	महात्मा विदुर	४
▲1722	बालकोंके कर्तव्य	४
■1375	ॐ नमः शिवाय	१७
■1357	नवदुर्गा	१०
▲1109	उपदेशप्रद कहानियाँ	१२
▲ 945	साधन नवनीत	१०
■ 724	उपयोगी कहानियाँ	९
▲1499	नवधा भक्ति	५
▲1498	भगवत्कृपा	४
▲ 833	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 834	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य-शिक्षा	९
■1107	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■1288	गीता—श्लोकार्थ	७
▲ 716	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	७
■ 832	सुन्दरकाण्ड (सटीक)	८
■ 840	आदर्श भक्त	८
■ 841	भक्त सप्तरत्न	८
■ 843	दुर्गासप्तशती—मूल	१०
▲ 390	गीतामाधुर्य	७
▲1625	नारीशिक्षा	८
▲1626	अमृत-बिन्दु	६
▲ 720	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1374	अमूल्य समयका सदुपयोग	६
▲ 128	गृहस्थमें कैसे रहें ?	६
■ 661	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	५
■ 721	भक्त बालक	६
■ 951	भक्त चन्द्रिका	८
■ 835	श्रीरामभक्त हनुमान्	७
■ 837	विष्णुसहस्रनाम—सटीक	६
■ 842	ललितासहस्रनामस्तोत्र	५
■1373	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1106	ईशावास्योपनिषद्	३
▲ 717	सावित्री-सत्यवान् और आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 723	नाम-जपकी महिमा और आहारशुद्धि	३
▲ 725	भगवान्की दया एवं···	३
▲ 722	सत्यकी शरणसे मुक्ति, गीता पढ़नेके लाभ	३
▲ 325	कर्मरहस्य	४
▲ 597	महापापसे बचो	१.५०
▲ 719	बालशिक्षा	४
▲ 839	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲1371	शरणागति	४
▲ 836	नल-दमयन्ती	३
▲ 838	गर्भपात उचित या अनुचित···	२
■ 737	विष्णुसहस्रनाम एवं सहस्रनामावली	३
■ 736	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
■1105	श्रीवाल्मीकि रामायणम्-संक्षिप्त	२
■ 738	हनुमत्-स्तोत्रावली	२
▲ 593	भगवत्प्राप्तिकी सुगमता	६
▲ 598	वास्तविक सुख	४

कोड		मूल्य रु०
▲ 831	देशकी वर्तमान दशा तथा···	४

असमिया

■ 714	गीता—भाषा-टीका-पॉकेट	७
■1222	श्रीमद्भागवतमाहात्म्य	८
■ 825	नवदुर्गा	५
▲ 624	गीतामाधुर्य	६
▲1487	गृहस्थमें कैसे रहें ?	७
▲1715	आदर्श नारी सुशीला	४
■1323	श्रीहनुमानचालीसा	२
■1515	शिवचालीसा	२
▲ 703	गीता पढ़नेके लाभ	१

ओड़िआ

■1551	संत जगन्नाथदासकृत भागवत	१५०
■1750	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध	२०
■1777	सन्त जगन्नाथदासकृत श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध	६०
■1121	गीता-साधक-संजीवनी	१३०
■1100	गीता-तत्त्व-विवेचनी	८०
■1463	रामचरितमानस—सटीक, मोटा टाइप	१५०
■1218	" मूल, मोटा टाइप	८०
■1473	साधन-सुधा-सिन्धु	१००
■1298	गीता-दर्पण	४०
■1672	गीता-प्रबोधनी	३५
■ 815	गीता-श्लोकार्थसहित (सजिल्द)	२०
■1219	गीता-पञ्चरत्न	२०
■1702	गीता-ताबीजी	४
■1009	जय हनुमान् (चित्रकथा)	१७
■1250	ॐ नमः शिवाय (")	१५
■1010	अष्ट विनायक (")	१०
■1248	मोहन (")	१०
■1249	कन्हैया (")	१०
■ 863	नवदुर्गा (")	१०
■1494	बालचित्रमय चैतन्यलीला	७
■1157	गीता-सटीक, मोटे अक्षर	१५
■1465	गीता-अन्वयअर्थसहित पॉकेट साइज	१५
▲1511	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१०
■1476	दुर्गासप्तशती-सटीक	१८
▲1251	भवरोगकी रामबाण दवा	९
▲1270	नित्ययोगकी प्राप्ति	६
▲1268	वास्तविक सुख	६
▲1209	प्रश्नोत्तर-मणिमाला	८
▲1464	अमृत-बिन्दु	७
▲1274	परमार्थ सूत्र-संग्रह	८
▲1254	साधन नवनीत	९
■1008	गीता—पॉकेट साइज	८
▲ 754	गीतामाधुर्य	७
▲1208	आदर्श कहानियाँ	७
▲1139	कल्याणकारी प्रवचन	६
■1342	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा	७
▲1205	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	७
▲1506	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲1272	निष्काम श्रद्धा और प्रेम	८
■1204	सुन्दरकाण्ड—मूल मोटा	५
▲1299	भगवान् और उनकी भक्ति	५
■ 854	भक्तराज हनुमान्	५
▲1004	तात्त्विक प्रवचन	५
▲1138	भगवान्से अपनापन	५
▲1187	आदर्श भ्रातृप्रेम	४
▲ 430	गृहस्थमें कैसे रहें ?	५
▲1321	सब जग ईश्वररूप है	५
▲1269	आवश्यक शिक्षा	५
▲ 865	प्रार्थना	३
▲ 796	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	३
▲1130	क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं ?	४
■1154	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■1200	सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र	४

कोड		मूल्य रु०
▲1174	आदर्श नारी सुशीला	३
▲1507	उद्धार कैसे हो	५
■ 541	गीता-मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	३
▲1614	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
■1644	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२००९)	५०
▲1635	प्रेरक कहानियाँ	६
▲1003	सत्संगमुक्ताहार	४
▲1512	साधनके दो प्रधान सूत्र	४
▲ 817	कर्मरहस्य	४
▲1078	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय	४
▲1079	बालशिक्षा	४
▲1163	बालकोंके कर्तव्य	४
▲1252	भगवान्के रहनेके पाँच स्थान	३
▲ 757	शरणागति	४
▲1186	श्रीभगवन्नाम	३
▲1267	सहज साधना	४
▲1005	मातृशक्तिका घोर अपमान	३
▲1203	नल-दमयन्ती	३
▲1253	परलोक और पुनर्जन्म एवं वैराग्य	३
▲1220	सावित्री और सत्यवान्	२
▲ 826	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२
▲ 798	गुरुतत्त्व	१.५०
■ 856	हनुमानचालीसा	२
■1661	" " (लघु आकार)	१
▲ 797	सन्तानका कर्तव्य-	१.५०
■1036	गीता—मूल, लघु आकार	२
■1509	रामरक्षास्तोत्र	२
■1070	आदित्यहृदयस्तोत्र	२
■1068	गजेन्द्रमोक्ष	२
■1069	नारायणकवच	२
▲1089	धर्म क्या है ? भगवान् क्या हैं ?	२
▲1039	भगवान्की दया एवं भगवत्कृपा	१.५०
▲1090	प्रेमका सच्चा स्वरूप	१.५०
▲1091	हमारा कर्तव्य	१.५०
▲1040	सत्संगकी कुछ सार बातें	२
▲1011	आनन्दकी लहरें	२
▲ 852	मूर्तिपूजा-नामजपकी महिमा	१.५०
▲1038	संत-महिमा	१.५०
▲1041	ब्रह्मचर्य एवं मनको वश करनेके कुछ उपाय	२
▲1221	आदर्श देवियाँ	३
■1201	महात्मा विदुर	३
■1202	प्रेमी भक्त उद्धव	३
■1173	भक्त चन्द्रिका	५

उर्दू

■1446	गीता उर्दू	८
▲ 393	गीतामाधुर्य	
▲ 590	मनकी खटपट कैसे मिटे	

तेलुगु

■1573	श्रीमद्भागवत-मूल मोटा टाइप	१२०
■1738	श्रीमद्भागवत संग्रहमु	८०
■1698	श्रीमन्नारायणीयम्—श्लोकार्थसहितम्	४०
■1699	श्रीमहाभागवत मकंदालु	१५
■1632	महाभारत विराटपर्व	५५
■1352	रामचरितमानस-सटीक, ग्रन्थाकार	१४०
■1419	रामचरितमानस—केवल भाषा	८०
■1557	वाल्मीकिरामायण-(भाग१)	११०
■1622	" " (भाग-२)	१३०
■1745	श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण (भाग-३)	१४५
■1429	श्रीमद्वाल्मीकिरामायण सुन्दरकांड (तात्पर्यसहित)	७५
■1477	" " (सामान्य)	६५
■1714	गीता-दैनन्दिनी-पुस्तकाकार, विशिष्ट संस्करण (२००९)	५०
■1172	गीता-तत्त्व-विवेचनी	९०

कोड		मूल्य रु०
■ 845	अध्यात्मरामायण	८५
■ 772	गीता-पदच्छेद-अन्वयसहित	३०
■ 914	स्तोत्ररत्नावली	२२
■1569	हनुमत्स्तोत्रावली	३
■1684	श्रीगणेशस्तोत्रावली	३
■1685	श्रीदेवीस्तोत्रावली	३
■1639	बालरामायण-लघु आकार	१
■1466	वाल्मीकीयरामायण- सुन्दरकाण्ड, मूल, पुस्तकाकार	३०
■ 924	,, ,, मूल गुटका	१८
■1532	,, ,, वचनमु	३५
■1026	पंच सूक्तमुलु-रुद्रमु	६
■ 771	गीता—तात्पर्यसहित	२०
■ 910	विवेकचूडामणि	१५
▲ 904	नारद-भक्तिसूत्र मुलु (प्रेमदर्शन-)	१२
■ 959	कन्हैया (चित्रकथा)	१०
■ 960	गोपाल (,,)	१०
■ 961	मोहन (,,)	१०
■ 962	श्रीकृष्ण (,,)	१०
■ 963	रामलला (,,)	१५
■ 964	राजा राम (,,)	१५
■ 966	भगवान् सूर्य (,,)	१७
■ 965	दशावतार (,,)	१०
■1686	अष्टविनायक (,,)	१०
■ 967	रामायणके प्रमुख पात्र (चित्रकथा)	१५
■ 968	श्रीमद्भागवतके प्रमुख पात्र (चित्रकथा)	१७
■ 887	जय हनुमान् (,,)	१७
■1301	नवदुर्गा (,,)	१०
■ 909	दुर्गासप्तशती—मूलम्	१२
■1029	भजन-संकीर्तनावली	१७

कोड		मूल्य रु०
■1309	गीता-माहात्म्यकी कहानियाँ	१०
■1390	गीता तात्पर्य-पॅकिट,मोटा टाइप	१०
■ 691	श्रीभीष्मपितामह	१२
▲1028	गीतामाधुर्य	१२
▲ 915	उपदेशप्रद कहानियाँ	१०
▲1572	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ	६
▲ 905	आदर्श दाम्पत्य-जीवनमु	९
■1526	गीता-मूल मोटे अक्षर, पॅकिट	८
■1570	गीता-तावीजी	४
■1031	गीता—छोटी, पॉकिट साइज	७
■1571	गीता-लघु आकार	२
■ 929	महाभक्तुलु	८
■ 919	मंचि कथलु (उपयोगी कहानियाँ)	७
■1502	श्रीनामरामायणम् एवं हनुमान-चालीसा (लघु आकार)	१
▲ 766	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र	७
▲ 768	रामायणके कुछ आदर्श पात्र	९
▲ 733	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
■ 908	नारायणीयम्—मूलम्	१५
■ 682	भक्त पञ्चरत्न	७
■ 687	आदर्श भक्त	६
■ 767	भक्तराज हनुमान्	७
■ 917	भक्त चन्द्रिका	८
■ 918	भक्त सप्तरत्न	८
■ 641	भगवान् श्रीकृष्ण	६
■ 663	गीता भाषा	७
■ 662	गीता-मूल (विष्णुसहस्रनामसहित)	४
■ 753	सुन्दरकाण्ड— सटीक	५
■ 685	भक्त बालक	५
■ 692	चोखी कहानियाँ	५
▲ 920	परमार्थ-पत्रावली	५
■ 930	दत्तात्रेय-वज्रकवच	३

कोड		मूल्य रु०
■ 846	ईशावास्योपनिषद्	३
■ 686	प्रेमी भक्त उद्धव	४
■1023	श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रम्-सटीक	३
■ 973	शिवस्तोत्रावली	३
■ 972	शतकत्रयम्	५
■1025	स्तोत्रकदम्बम्	३
■ 674	गोविन्ददामोदरस्तोत्र	३
■ 675	सं० रामायणम्, रामरक्षास्तोत्रम्	३
▲ 906	भगन्तुडे आत्मेयुणु	३
■ 801	ललितासहस्रनाम	४
■ 974	,, ,, (लघु आकार)	३
■1024	श्रीनारायणकवचमु तात्पर्यसहितमु	३
■1030	सन्ध्योपासनविधि	१२
■ 688	भक्तराज ध्रुव	३
■ 670	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२
■ 911	,, -मूल (लघु आकार)	१
■1527	विष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् नामावलिसहितम्	४
■ 912	रामरक्षास्तोत्र, सटीक	२
■ 677	गजेन्द्रमोक्षम्	२
■1531	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मोटा टाइप	८
■ 732	नित्यस्तुतिः, आदित्यहृदयस्तोत्रम्	२
▲ 923	भगवन्तु दयालु न्यायमूर्ति	२
▲ 913	भगवत्प्राप्ति सर्वोत्कृष्ट साधनमु-नाम स्मरणमे	१.५०
▲ 760	महत्त्वपूर्ण शिक्षा	६
▲ 761	एकै साधे सब सधै	५
▲ 922	सर्वोत्तम साधन	५
▲ 759	शरणागति एवं मुकुन्दमाला	४
▲ 752	गर्भपात उचित या अनुचित फैसला आपका	२

कोड		मूल्य रु०
▲ 734	आहारशुद्धि, मूर्तिपूजा	२
▲ 664	सावित्री-सत्यवान्	३
▲ 665	आदर्श नारी सुशीला	४
▲ 921	नवधा भक्ति	४
▲ 666	अमूल्य समयका सदुपयोग	७
▲ 672	सत्यकी शरणसे मुक्ति	२
▲ 671	नामजपकी महिमा	१
▲ 678	सत्संगकी कुछ सार बातें	१
▲ 731	महापापसे बचो	२
▲ 925	सर्वोच्चपदकी प्राप्तिके साधन	२
▲1547	किसान और गाय	२
▲ 758	देशकी वर्तमान दशा तथा उसका परिणाम	४
▲ 916	नल-दमयन्ती	५
▲ 689	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान	४
▲ 690	बालशिक्षा	४
▲ 907	प्रेमभक्ति-प्रकाशिका	१.५०
▲ 673	भगवान्‌का हेतुरहित सौहार्द	१.५०
▲ 926	सन्तानका कर्तव्य	२
	मलयालम	
■ 739	गीता-विष्णुसहस्रनाम, मूल	५
■ 740	विष्णुसहस्रनाम—मूल	२
	पंजाबी	
■1697	गीता प्रबोधनी	३०
▲1616	गृहस्थमें कैसे रहें?	७
	नेपाली	
■1609	श्रीरामचरितमानस— सटीक, मोटा टाइप	१४०
▲1621	मानवमात्रके कल्याणके लिये	१२

Our English Publications

■1318 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text, Transliteration & English Translation) 200
■1617 Śrī Rāmacaritamānasa A Romanized Edition with English Translation
■ 456 Śrī Rāmacaritamānasa (With Hindi Text and English Translation) 120
■ 786 ,, ,, Medium 70
■1550 Sunder Kand (Roman) 12
■ 452/453 Śrīmad Vālmīki Rāmāyaṇa (With Sanskrit Text and English Translation) Set of 2 volumes 300
■ 564/565 Śrīmad Bhāgavata (With Sanskrit Text and English Translation) Set 250
■ 1159/1160 Śrīmad Bhāgavata Mahapurana only English Translation set of 2 volumes 150
■ 1080/1081 Śrīmad Bhagavadgītā Sādhaka-Sañjīvanī (By Swami Ramsukhdas) (English Commentary) Set of 2 Volumes 100
▲ 783 Abortion Right or Wrong You Decide 2

■ 457 Śrimad Bhagavadgītā Tattva-Vivecanī (By Jayadayal Goyandka) Detailed Commentary 80
■ 455 Bhagavadgītā (With Sanskrit Text and English Translation) Pocket size 6
■ 534 ,, (Bound) 10
■ 1658 Śrimad Bhagavadgītā (Sanskrit text with hindi and English Translation) 12
■ 824 Songs from Bhartṛhari 3
■ 1491 Mohana (Picture Story) 10
■ 1643 Ramaraksastotram (With Sanskrit Text, English Translation) 2
■ 494 The Immanence of God (By Madan Mohan Malaviya) 3
■ 1528 Hanumāna Cālīsā (Roman) (Pocket Size) 3
■ 1638 ,, Small size 2
■ 1492 Rāma Lalā (Picture Story) 15
■ 1445 Virtuous Children 15
■ 1545 Brave and Honest Children 15

By Jayadayal Goyandka

▲ 477 Gems of Truth [Vol. I] 8
▲ 478 ,, ,, [Vol. II] 8
▲ 479 Sure Steps to God-Realization 14
▲ 481 Way to Divine Bliss 5
▲ 482 What is Dharma? What is God? 2
▲ 480 Instructive Eleven Stories 5
▲1285 Moral Stories 12
▲1284 Some Ideal Characters of Rāmāyaṇa 8
▲1245 Some Exemplary Characters of the Mahābhārata 7
▲ 694 Dialogue with the Lord During Meditation 2
▲1125 Five Divine Abodes 3
▲ 520 Secret of Jñānayoga 15
▲ 521 ,, ,, Premayoga 10
▲ 522 ,, ,, Karmayoga 12
▲ 523 ,, ,, Bhaktiyoga 15
▲ 658 ,, ,, Gītā 6
▲1013 Gems of Satsaṅga 2
▲1501 Real Love 5

By Hanuman Prasad Poddar

▲ 484 Look Beyond the Veil 8
▲ 622 How to Attain Eternal Happiness? 10
▲ 483 Turn to God 8
▲ 485 Path to Divinity 8
▲ 847 Gopis'Love for Śrī Kṛṣṇa 4
▲ 620 The Divine Name and Its Practice 3
▲ 486 Wavelets of Bliss & the Divine Message

By Swami Ramsukhdas

▲1470 For Salvation of Mankind 12
▲ 619 Ease in God-Realization 5
▲ 471 Benedictory Discourses 6
▲ 473 Art of Living 6
▲ 487 Gitā Mādhurya 7
▲1101 The Drops of Nectar (Amṛta Bindu) 6
▲1523 Is Salvation Not Possible without a Guru? 5
▲ 472 How to Lead A Household Life 6
▲ 570 Let Us Know the Truth 4
▲ 638 Sahaja Sādhanā 5
▲ 621 Invaluable Advice 3
▲ 474 Be Good 10
▲ 497 Truthfulness of Life 2
▲ 669 The Divine Name 3
▲ 476 How to be Self-Reliant
▲ 552 Way to Attain the Supreme Bliss 1
▲ 562 Ancient Idealism for Modernday Living 1

Special Editions

■ 1411 Gītā Roman (Sanskrit text, Transliteration & English Translation) Book Size 22
■ 1584 ,, (Pocket Size) 12
■ 1407 The Drops of Nectar (By Swami Ramsukhdas) 10
■ 1406 Gītā Mādhurya (,,) 15
■ 1438 Discovery of Truth and Immortality (By Swami Ramsukhdas) 18
■ 1413 All is God (,,) 10
■ 1414 The Story of Mīrā Bāī (Bankey Behari) 15

अप्रैल २००८ से प्रकाशित नवीन प्रकाशन

■1771 जैमिनीकृत महाभारतमें भक्तोंकी गाथा पुस्तकाकार, सजिल्द ५०
■1809 गया श्राद्धपद्धति २०
■1782 प्रेरणाप्रद-कथाएँ १३
■1800 पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह ५
■1801 श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (हिन्दी-अनुवादसहित) ५
▲1837 अनन्यभक्ति कैसे प्राप्त हो? ६
■1796 श्रीज्ञानेश्वरी (हिन्दी अनुवाद) ७०

बँगला

■1839 कृत्तिवासी रामायण १००
■1835 सत्यनिष्ठ साहसी बालक.. १५
■1834 श्रीमद्भगवद्गीता मूल विष्णु.. ६
▲1838 जीवनोपयोगी प्रवचन ८

गुजराती

■1798 सं० महाभारत (खण्ड-१) १६०
■1799 सं० महाभारत (खण्ड-२) १६०

■1823 विनय-पत्रिका ३०

मराठी

■1836 श्रीगुरुचरित्र ८५
■1814 सामाजिक संस्कार कथा १२
■1815 घराघरातील संस्कार-कथा १२
■1808 श्रीतुकाराममहाराजांची गाथा ८०
■1778 जीवनादर्शश्रीराम १७
■1810 कन्हैया-चित्रकथा १०
■1811 गोपाल-चित्रकथा १०
■1812 मोहन ,, १०
■1813 श्रीकृष्ण-चित्रकथा १०
■1779 भलेका फल भला ३

ओड़िआ

■1831 श्रीमद्भागवत-महापुराण (खण्ड-१) १५०
■1832 श्रीमद्भागवत-महापुराण (खण्ड-२) १५०

॥ श्रीहरिः ॥

'कल्याण' का उद्देश्य और इसके नियम

भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, धर्म और सदाचारसमन्वित लेखोंद्वारा जन-जनको कल्याण-पथ (आत्मोद्धारके सुमार्ग)-पर अग्रसरित करनेकी प्रेरणा देना इसका एकमात्र उद्देश्य है।

नियम—भगवद्भक्ति, ज्ञान, वैराग्यादि प्रेरणाप्रद एवं कल्याण-मार्गमें सहायक अध्यात्मविषयक, व्यक्तिगत आक्षेपरहित लेखोंके अतिरिक्त अन्य विषयोंके लेख 'कल्याण' में प्रकाशित नहीं किये जाते। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने-न-छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमुद्रित लेख बिना माँगे लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मतके लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। १-'कल्याण' का वर्तमान वार्षिक सदस्यता-शुल्क डाक-व्ययसहित भारतमें अजिल्द विशेषाङ्कका रु० १५० (सजिल्दका रु० १७०) है। विदेशके लिये सजिल्द विशेषाङ्कका समुद्री डाक (Sea mail)-से US$25 (रु० १२५०) तथा हवाई डाक (Air mail)-से US$40 (रु० २०००) है। समुद्री डाकसे पहुँचनेमें बहुत समय लग सकता है, अतः हवाई डाकसे ही अङ्क मँगवाना चाहिये। सदस्यता-शुल्कके साथ बैंक कलेक्शन चार्ज US$6 अतिरिक्त भेजना चाहिये। २-**'कल्याण' का नया वर्ष जनवरीसे आरम्भ होकर दिसम्बरतक रहता है, अतः ग्राहक जनवरीसे ही बनाये जाते हैं।** वर्षके मध्यमें बननेवाले ग्राहकोंको जनवरीसे ही अङ्क दिये जाते हैं। एक वर्षसे कमके लिये ग्राहक नहीं बनाये जाते हैं। ३-**ग्राहकोंको वार्षिक शुल्क १५ दिसम्बरतक 'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर अथवा गीताप्रेसकी पुस्तक-दूकानोंपर अवश्य भेज देना चाहिये, जिससे उन्हें विशेषाङ्क रजिस्ट्रीसे भेजा जा सके।** जिन ग्राहक-सज्जनोंसे शुल्क-राशि अग्रिम प्राप्त नहीं होती, उन्हें विशेषाङ्क वी०पी०पी० द्वारा भेजनेका नियम है। वी०पी०पी० द्वारा 'कल्याण'-विशेषाङ्क भेजनेमें यद्यपि वी०पी०पी० डाक-शुल्कके रूपमें रु० १० ग्राहकको अधिक देना पड़ता है; परंतु अङ्क सुविधापूर्वक सुरक्षित मिल जाता है। **अतः सभी ग्राहकोंको वी०पी०पी० ठीक समयसे छुड़ा लेनी चाहिये।** पाँच वर्षके लिये भी ग्राहक बनाये जाते हैं, इससे आप प्रतिवर्ष शुल्क भेजने/वी०पी०पी० छुड़ानेके अतिरिक्त खर्चसे बच सकते हैं। ४-जनवरीका विशेषाङ्क रजिस्ट्री/वी०पी०पी०से प्रेषित किया जाता है। फरवरीसे दिसम्बरतकके अङ्क प्रतिमास भली प्रकार जाँच करके मासके प्रथम सप्ताहतक साधारण डाकसे भेजे जाते हैं। यदि किसी मासका अङ्क माहके अन्तिम तारीखतक न मिले तो डाक-विभागसे जाँच करनेके उपरान्त हमें सूचित करना चाहिये। खोये हुए मासिक अङ्कोंके उपलब्ध होनेकी स्थितिमें पुनः भेजनेका प्रयास किया जाता है। ५-पता बदलनेकी सूचना समयसे भेज देनी चाहिये, जिससे अङ्क-प्राप्तिमें असुविधा एवं विलम्ब न हो। पत्रोंमें **ग्राहक-संख्या, पिनकोडसहित पुराना और नया—पूरा पता पढ़नेयोग्य सुस्पष्ट तथा सुन्दर अक्षरोंमें लिखना चाहिये।** ६-पत्र-व्यवहारमें 'ग्राहक-संख्या' न लिखे जानेपर कार्यवाही होना कठिन है। अतः 'ग्राहक-संख्या' प्रत्येक पत्रमें अवश्य लिखी जानी चाहिये। ७-जनवरीका विशेषाङ्क ही वर्षका प्रथम अङ्क होता है। वर्षपर्यन्त मासिक अङ्क ग्राहकोंको उसी शुल्क-राशिमें भेजे जाते हैं। ८-**'कल्याण' में व्यवसायियोंके विज्ञापन किसी भी स्थितिमें प्रकाशित नहीं किये जाते।**

'कल्याण' के पञ्चवर्षीय ग्राहक

पाँच वर्षके लिये सदस्यता-शुल्क (भारतमें) अजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ७५०, सजिल्द विशेषाङ्कके लिये रु० ८५० है। फर्म, प्रतिष्ठान आदि भी ग्राहक बन सकते हैं। किसी अनिवार्य कारणवश यदि 'कल्याण' का प्रकाशन बंद हो जाय तो जितने अङ्क मिले हों उतनेमें ही संतोष करना चाहिये।

व्यवस्थापक—**'कल्याण', पत्रालय—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)**

गीताभवन, स्वर्गाश्रमके सत्संगकी सूचना

गीताभवन, स्वर्गाश्रम ऋषिकेशमें ग्रीष्मकालमें सत्संगका लाभ श्रद्धालु एवं आत्मकल्याण चाहनेवाले साधकोंको प्रारम्भसे ही प्राप्त होता रहा है। **पूर्वकी भाँति इस वर्ष भी वैशाख कृष्णपक्ष द्वितीया (११ अप्रैल)-से सत्संगका आयोजन किया गया है।** इस अवसरपर संत-महात्मा एवं विद्वद्गणोंके पधारनेकी बात है। **इसके पूर्व चैत्र नवरात्रके प्रारम्भसे श्रीरामचरितमानसका सामूहिक नवाह्नपाठका कार्यक्रम है।** गीताभवनमें आयोजित दुर्लभ सत्संगका लाभ श्रद्धालु और कल्याणकामी साधकोंको यहाँ पधारकर अवश्य उठाना चाहिये। गीताभवनमें संयमित साधक जीवन व्यतीत करते हुए सत्संग-कार्यक्रमोंमें सम्मिलित होना अनिवार्य है। यहाँ आवास, भोजन, राशन-सामग्री आदिकी यथासाध्य व्यवस्था रहती है।

महिलाओंको अकेले नहीं आना चाहिये, उन्हें किसी निकट सम्बन्धीके साथ ही यहाँ आना चाहिये। गहने आदि जोखिमकी वस्तुओंको जहाँतक सम्भव हो नहीं लाना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम—२४९३०४**

प्र० ति० २०-१२-२००८
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/09
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR/-03/2009

आचारः परमो धर्मः

आत्मैव न सहायार्थं पिता माता च तिष्ठति। न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलम्॥
तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं सञ्चिनु साधनैः। धर्मेणैव सहायात्तु तमस्तरति दुस्तरम्॥
आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एव च। तस्मादस्मिन्समायुक्तो नित्यं स्यादात्मनो द्विजः॥
आचाराल्लभते चायुराचाराल्लभते प्रजाः। आचारादन्नमक्षय्यमाचारो हन्ति पातकम्॥
आचारः परमो धर्मो नृणां कल्याणकारकः। इह लोके सुखी भूत्वा परत्र लभते सुखम्॥
अज्ञानान्धजनानां तु मोहितैर्भ्रामितात्मनाम्। धर्मरूपो महादीपो मुक्तिमार्गप्रदर्शकः॥
आचारात्प्राप्यते श्रैष्ठ्यमाचारात्कर्म लभ्यते। कर्मणो जायते ज्ञानमिति वाक्यं मनोः स्मृतम्॥
सर्वधर्मवरिष्ठोऽयमाचारः परमं तपः। तदेव ज्ञानमुद्दिष्टं तेन सर्वं प्रसाध्यते॥
आचारो द्विविधः प्रोक्तः शास्त्रीयो लौकिकस्तथा। उभावपि प्रकर्तव्यौ न त्याज्यौ शुभमिच्छता॥
ग्रामधर्मा जातिधर्मा देशधर्माः कुलोद्भवाः। परिग्राह्या नृभिः सर्वैर्नैव तांल्लङ्घयेन्मुने॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः। दुःखभागी च सततं व्याधिना व्याप्त एव च॥
परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ। धर्ममप्यसुखोदर्कं लोकविद्विष्टमेव च॥
श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्। एतत्त्रयोक्त एव स्याद्धर्मो नान्यत्र कुत्रचित्॥
आचारहीनं न पुनन्ति वेदा यदप्यधीताः सह षड्भिरङ्गैः।
छन्दांस्येनं मृत्युकाले त्यजन्ति नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः॥

[श्रीनारायणने देवर्षि नारदजीसे कहा—] पिता, माता, पुत्र, पत्नी तथा बन्धु-बान्धव कोई भी [परलोकमें] आत्माके सहायतार्थ उपस्थित नहीं रहते; केवल धर्म ही उपस्थित होता है। अतः आत्मकल्याणके लिये समस्त साधनोंसे धर्मका नित्य संचय करना चाहिये। धर्मके ही साहाय्यसे मनुष्य दुस्तर अन्धकारको पार कर लेता है। आचार ही प्रथम (मुख्य) धर्म है—ऐसा श्रुतियों तथा स्मृतियोंमें कहा गया है, अतएव द्विजको चाहिये कि वह अपने कल्याणके लिये इस सदाचारके पालनमें नित्य संलग्न रहे। मनुष्य आचारसे आयु प्राप्त करता है, आचारसे सन्तानें प्राप्त करता है तथा आचारसे अक्षय अन्न प्राप्त करता है। यह आचार पापको नष्ट कर देता है। आचार मनुष्योंका परम धर्म है तथा उनके लिये कल्याणप्रद है। सदाचारी व्यक्ति इस लोकमें सुखी रहकर परलोकमें भी सुख प्राप्त करता है। मोहसे भ्रमित चित्तवाले तथा अज्ञानान्धकारमें भटकनेवाले लोगोंके लिये यह आचार धर्मरूपी महान् दीपक बनकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखाता है। आचारसे श्रेष्ठता प्राप्त होती है, आचारसे ही सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति होती है और सत्कर्मसे ज्ञान उत्पन्न होता है—मनुका यह प्रसिद्ध वचन है। यह आचार सभी धर्मोंसे श्रेष्ठ तथा परम तप है। उसीको ज्ञान भी कहा गया है। उसीसे सब कुछ सिद्ध कर लिया जाता है। आचार शास्त्रीय तथा लौकिक-भेदसे दो प्रकारका कहा गया है। अपना कल्याण चाहनेवालेको इन दोनों ही आचारोंका सम्यक् पालन करना चाहिये और उनसे कभी भी विरत नहीं होना चाहिये। हे मुने! सभी मनुष्योंको ग्रामधर्म, जातिधर्म, देशधर्म तथा कुलधर्मोंका भलीभाँति पालन करना चाहिये, उनका कभी उल्लंघन नहीं करना चाहिये। दुराचारी पुरुष लोकमें निन्दित होता है, दुःख प्राप्त करता है और रोगसे सदा ग्रस्त रहता है। जो अर्थ तथा काम धर्मसे रहित हों, उनका त्याग कर देना चाहिये। साथ ही लोकविरुद्ध धर्मको भी छोड़ देना चाहिये; क्योंकि वह परिणाममें दुःखदायी होता है। श्रुति तथा स्मृति दोनों नेत्र हैं तथा पुराणको हृदय कहा गया है। इन तीनोंमें जो भी कहा गया है, वही धर्म है, इसके अतिरिक्त कहीं भी नहीं। छहों अंगोंसहित अधीत किये गये वेद भी आचारविहीन व्यक्तिको पवित्र नहीं कर सकते। पढ़े गये छन्द (वेद) ऐसे आचारहीन प्राणीको उसी भाँति मृत्युकालमें छोड़ देते हैं, जैसे पंख निकल आनेपर पक्षी अपना घोंसला त्याग देते हैं। **[श्रीमद्देवीभागवत]**

रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/09
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LICENCE NO. WPP/GR-03/2009

मिलनेका पता—
'कल्याण'-कार्यालय
पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)
